श्रीरघुनाथतर्कवागीशप्रणीतः

आगमतत्त्वविलासः

ĀGAMATATTVA-VILĀSAḤ

भाषाभाष्यसंवलितः

भाषाभाष्यकारः

एस. एन. खण्डेलवाल

4

खण्डेलवाल

आगमतत्त्वविलासः

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
505

श्रीरघुनाथतर्कवागीशप्रणीतः

आगमतत्त्वविलासः

भाषाभाष्यसंवलितः

[चतुर्थो भागः]

भाषाभाष्यकारः
श्री एस० एन० खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 0542 2335263
ई-मेल : csp_naveen@yahoo.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण 2012 ई.
मूल्य : 700.00

ISBN : 978-93-80326-66-5 (Set)
978-93-80326-89-4 (Vol. IV)

प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : 011 23286537
ई-मेल : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

❖

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

❖

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

THE
CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHMALA
505

ĀGAMATATTVA-VILĀSAḤ

of

Raghunātha Tarka-Vāgīśa

[VOL : 4]

Hindi Commentary by

Sri S. N. Khandelwal

Chaukhamba Surbharati Prakashan
Varanasi

© All rights reserved.
No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronical or mechanical, including photocopying, recording or any information storage or retrieval system, without prior permission in writing from the publisher.

ISBN : 978-93-80326-66-5 (Set)
978-93-80326-89-4 (Vol. IV)

Publishers :

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
(Oriental Publishers & Distributors)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
Varanasi 221001
Tel. : 2335263
e-mail : csp_naveen@yahoo.co.in

Also can be had from :

CHAUKHAMBA PUBLISHING HOUSE
4697/2, Ground Floor
Gali No. 21-A, Ansari Road
Daryaganj, New Delhi 110002
Tel. : 32996391
e-mail : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U.A. Bungalow Road, Jawahar Nagar
Post Box No. 2113
Delhi 110007

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
Chowk (Behind to Bank of Baroda Building)
Post Box No. 1069
Varanasi 221001

विषयानुक्रम

विषय	पृष्ठाङ्क
भुवनेश्वरी मन्त्र	१
'भुवनेश्वरी' शब्द का अर्थ	२
भुवनेश्वरी-पूजनप्रयोग	२
भुवनेश्वरी-पूजनयन्त्र	५
आठ प्रकार के द्रव्य	१०
भुवनेश्वरी का अन्य मन्त्र	१३
भुवनेश्वरी का अन्य मन्त्र	१४
आन्नपूर्णा मन्त्र	१६
त्रिपुटा मन्त्र	२०
त्वरिता मन्त्र	२४
नित्या मन्त्र	२९
वज्रप्रस्तारिणी मन्त्र	३१
शूलिनी मन्त्र	३३
दुर्गा मन्त्र	३५
दुर्गा का अन्य मन्त्र	४०
दुर्गा यन्त्र	४४
जयदुर्गा मन्त्र	४५
महिषमर्दिनी मन्त्र	४७
पूजाप्रयोग	४९
काली प्रकरण	५२
दक्षिणाकाली मन्त्र	५३
कुलदर्भ	५७
कालिका गायत्री	६२
मन्त्राचमन	६५
पूजाविधि	६६
भूतशुद्धि	७४

विषय	पृष्ठाङ्क
षोढा न्यास	७८
तत्त्व न्यास	८१
बीज न्यास	८२
काली का ध्यान	८४
काली का अन्य ध्यान	८७
विरूपाक्षकृत काली-ध्यान	८८
काली का पूजन यन्त्र	९०
काली का अन्य यन्त्र	९१
काली का पुरश्चरण	१०१
कालीमन्त्र के भेद	१०४
काली का अन्य मन्त्र	१०७
काली-पूजन यन्त्र	१२१
गुह्यकाली मन्त्र	१२२
भद्रकाली मन्त्र	१२६
महाकाली मन्त्र	१२८
श्मशानकाली मन्त्र	१३१
सर्वाङ्गकालिका गायत्री	१३४
तारिणी प्रकरण	१३५
ताराविद्या का आविर्भाव	१४२
तारिणी की सखियाँ	१५३
तारिणीमन्त्र के भेद	१५६
तारिणीमन्त्रों की सपर्याविधि	१६६
पूजाविधि	१७४
तारा का षोढा न्यास	१९६
व्यापक न्यास	२०७
तारामन्त्रों के भेद	२२६

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
नीलसरस्वती मन्त्र	२३६	प्रधान षोडशी	३३९
प्रचण्डचण्डिका प्रकरण	२३८	सप्तदशाक्षरी मन्त्र	३४४
प्रचण्डचण्डिका के मन्त्र	२३८	अष्टादशाक्षरी मन्त्र	३४५
प्रचण्डचण्डिका का अन्य मन्त्र	२५८	कामराज विद्या	३४७
त्रिपुरभैरवी मन्त्र	२६४	ब्रह्म विद्या	३४८
त्रिपुरभैरवी पूजन यन्त्र	२७६	बीजावली पञ्चदशी	३५७
सम्पत्प्रदा भैरवी मन्त्र	२७९	पञ्चमी विद्या	३६२
कौलेश भैरवी मन्त्र	२८१	शक्तिकूट का प्रकारान्तर	३६५
भयविध्वंसिनी भैरवी मन्त्र	२८२	प्राणयोग	३७०
सकलसिद्धिदा भैरवी मन्त्र	२८२	श्रीविद्या दीपनी	३७२
चैतन्यभैरवी मन्त्र	२८३	श्रीयन्त्र	३७४
कामेश्वरी भैरवी मन्त्र	२८६	श्रीविद्या की संक्षिप्त पूजापद्धति	३७५
षट्कूटा भैरवी मन्त्र	२८७	बगलामुखी प्रकरण	३८८
भोगमोक्षदा भैरवी मन्त्र	२८९	बगलामुखी का धारणयन्त्र	३९३
रुद्रभैरवी मन्त्र	२९०	बगलामुखी का प्रयोगान्तर	३९४
भुवनेश्वरी भैरवी मन्त्र	२९३	मातङ्गी प्रकरण	३९५
त्रिपुरा वालामन्त्र	२९४	उच्छिष्टचाण्डालिनी प्रकरण	३९७
त्रिपुरा वाला का अन्य मन्त्र	२९५	धूमावती प्रकरण	४०१
नवाक्षरी मन्त्र	३००	विदर्भ-लक्षण	४०६
अन्य मन्त्र	३०१	कर्णपिशाची प्रकरण	४०७
नवकूटा बालामन्त्र	३०२	विशालाक्षी प्रकरण	४०९
दीपनी विद्या	३०३	गौरी प्रकरण	४१०
अन्नपूर्णेश्वरी भैरवी मन्त्र	३०४	कात्यायनी प्रकरण	४१२
श्मशानभैरवी मन्त्र	३०९	ब्रह्मश्री मन्त्र	४१७
दश त्रिकूट-विवेचन	३०९	राजमुखी मन्त्र	४१८
चतुष्कूट-विवेचन	३२४	ज्वालामालिनी मन्त्र	४१८
षट्कूट-विवेचन	३२६	निगडबन्धनमोक्षण मन्त्र	४२०
पारिभाषिक षोडशियाँ	३२६	चिटि मन्त्र	४२०
महाषोडशी	३२८	गरुड मन्त्र	४२१
बीजावली षोडशी	३३८	गरुडस्तव	४२५

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
वृश्चिक दंशहर मन्त्र	४२६	श्रीरामरक्षावेदसागर	४८१
मूषिक विषहर मन्त्र	४२६	श्रीकृष्ण स्तोत्र	४८३
दुर्गा का लूताविषहर मन्त्र	४२७	गोपालस्तव	४८४
विष्णु का समस्त कीटविषहर मन्त्र	४२७	श्रीकृष्ण कवच	४८६
सुखपूर्वक प्रसव का मन्त्र	४२७	नृसिंह कवच	४८८
हनुमत्कल्प	४२७	विष्णुनामाष्टक स्तोत्र	४९०
बेतालसिद्धि	४३१	नारायणोपनिषत्	४९०
परिशिष्टम्	**४३५**	अथर्वाङ्गिरस	४९१
श्रीसूर्य कवच	४३७	अपामार्जन स्तोत्र	४९१
त्रैलोक्यमङ्गल नामक		विष्णुस्तव	४९३
श्रीकृष्ण कवच	४३८	सरस्वती स्तोत्र	४९४
ताराष्टक स्तोत्र	४४१	प्रचण्डचण्डिका स्तोत्र	४९५
तारा कवच	४४२	प्रचण्डचण्डिका कवच	४९७
उग्रतारा कवच	४४४	बगलामुखी कवच	४९९
षोढा कवच	४४७	अन्नपूर्णा स्तोत्र	५००
महिषमर्दिनी स्तोत्र	४४९	अन्नपूर्णा कवच	५०१
महिषमर्दिनी कवच	४५१	भुवनेश्वरीस्तव	५०३
भैरवी स्तोत्र	४५२	भुवनेश्वरी कवच	५०६
भैरवी कवच	४५४	त्रिपूटास्तव	५०८
कालीस्तव	४५६	त्रिपूटा कवच	५११
शिवस्तव	४५९	त्रिपूटा का अन्य स्तोत्र	५१२
शिव कवच	४६०	दुर्गा का शतनाम स्तोत्र	५१४
बटुक स्तोत्र	४६१	दुर्गा कवच	५१५
बटुकभैरव स्तवराज	४६२	श्रीविद्या स्तोत्र	५१६
योगप्रक्रिया	४६४	किङ्किणी स्तोत्र	५१८
ज्ञानयोग	४६९	श्रीकवच	५१९
रामस्तव	४७५	महात्रिपुरसुन्दरी कवच	५२०
रामाष्टक स्तोत्र	४७६	लक्ष्मी स्तोत्र	५२१
रामाष्टक शतक	४७८	लक्ष्मी कवच	५२१

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

हिन्दीभाष्यकारः श्रीकपिलदेवनारायण

'श्रीविद्या' शब्द श्रीत्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र एवं उसके अधिष्ठात्री देवता—इन दोनों का बोधक है। सामान्यता 'श्री' शब्द 'लक्ष्मी' अर्थ में प्रसिद्ध है; परन्तु हारितायन संहिता, ब्रह्माण्डपुराण-उत्तरखण्ड आदि पुराणेतिहासों में वर्णित आखियायिकाओं के अनुसार 'श्री' शब्द का मुख्य अर्थ 'महात्रिपुरसुन्दरी' ही है। श्री महालक्ष्मी ने महात्रिपुरसुन्दरी की चिरकाल-पर्यन्त आराधना कर जो अनेक वरदान प्राप्त किये हैं, उनमें एक वरदान 'श्री' की आख्या से लोक में ख्याति प्राप्त करने का भी है। अस्तु; 'श्री' शब्द का 'महालक्ष्मी' अर्थ तो गौण ही है; मुख्य अर्थ है—'श्री' अर्थात महात्रिपुरसुन्दरी की प्रतिपादिका विद्या—मन्त्र = 'श्रीविद्या'। वाच्य एवं वाचक का भेद मानकर इस मन्त्र की अधिष्ठात्री देवता भी 'श्रीविद्या' ही सिद्ध होती है। इस श्रीविद्या के उपासकों को लौकिक फल तो प्राप्त होते ही है; आत्मज्ञानी को प्राप्त होने वाला शोकोत्तीर्णतारूप फल भी श्रीविद्यापासकों को निश्चित रूप से प्राप्त होना है; साथ ही यही फल ब्रह्मविद्या से भी प्राप्त होता है; अतः फलैक्य होने के कारण श्रीविद्या ही ब्रह्मविद्या है—यह निर्विवाद सत्य प्रतिष्ठापित होता है।

'श्रीविद्या' का साङ्गोपाङ्ग विवेचन करने वाला सर्वप्रामाणिक महनीय ग्रन्थ 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' न केवल श्री विद्या; अपितु दश महाविद्याओं के विशद् विवेचन के साथ-साथ शैव, शाक्त, गाणपत्य, वैष्णव, सौर आदि सभी मन्त्रों एवं उनके तत्तद् यन्त्रों से पाठक को साक्षात्कार कराने वाला एक बृहत्काय ग्रन्थ है। स्वामी विद्यारण्य यति द्वारा छत्तीस श्वासों में गुम्फित यह ग्रन्थरत्न पूर्वार्द्ध एवं उत्तारार्द्ध रूप दो खण्डों में समुपलब्ध है। अंग-उपांगसहित श्रीविद्या के सविधि विवेचन के साथ-साथ अन्य देवी-देवताओं के भी मन्त्र-यन्त्रों का समग्र रूप मे विवेचन, उनके उपसना की विधि एवं उपासना के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले फलों को स्पष्टतया अभिव्यक्त करना इस ग्रन्थ की सर्वातिशायी विशेषता है। अन्य ग्रन्थों में जहाँ किसी भी उपस्य देवता के एक, दो, चार अथवा कतिपय प्रमुख मन्त्र-यन्त्रों का ही विवेचन उपलब्ध होता है; वही इस ग्रन्थ में विवेच्य समस्त देवी-देवताओं के प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी मन्त्र-यन्त्रों को उनकी विधियों सहित स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है; फलस्वरूप सम्बद्ध देवता के किसी भी मन्त्र-यन्त्र अथवा उसकी विधि को जानने के लिये साधक को किसी अन्य ग्रन्थ का अवलम्ब ग्रहण करने की लेशमात्र भी आवश्यकता नही रह जाती। संक्षेप में कहा जा सकता है कि श्रीविद्यारण्य यति-प्रणीत 'श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्' एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जो साधक के समस्त कामनाओं की पूर्ति करने में सर्वतोभवेन समर्थ है।

अस्तु; यह ग्रन्थ अद्यावधि अपने मूल स्वरूप में ही, बिना किसी भाषा-टीका के उपलब्ध था, जिससे जिज्ञासु साधकों को आराधना में पग-पग पर दुरूह कठिनाइयों का अनुभव होता था एवं ग्रन्थ के तात्पर्य से अवगत ने हो पाने के कारण वे बार-बार विशयग्रस्त हो जाते थे। इसी को हृदयङ्गम कर तन्त्रग्रन्थों के ख्यातिनाम भाषा-भाष्यकार श्री कपिलदेव नारायण ने इस विशालकाय ग्रन्थ को भाषा टीका से अलंकृत कर सर्वनहृद्य बनाने का साहसिक प्रयास किया है। सर्वनसुलभी इस हिन्दी भाष्य द्वारा श्री नारायण ने कूटाक्षर में निबद्ध मन्त्र-यन्त्रों को भी स्पष्ट करके साधकों का महनीय उपकार किया है।

पूर्वार्द्ध-उत्तरार्द्ध के विभाजन से दो भागों में विभक्त यह विशालकाय ग्रन्थ भाषा-भाष्य से अलंकृत होने के फलस्वरूप और भी बृहद् कलेवर को प्राप्त हो गयाः फलस्वरूप जिज्ञासुओं के सौकर्य को दृष्टिगत कर इसे पाँच भागों (पूर्वार्द्ध—दो भाग एवं उत्तरार्द्ध—तीन भाग) में प्रकाशित किया जा रहा है। वृहत्तन्त्रसार, देवीरहस्य आदि मूल ग्रन्थों को सर्वजनसंवेद्य भाषा भाष्य से विभूषित कर सर्वजन सुलभ बनाने वाले विद्धान् भाष्यकार श्री कपिलदेवनारायण द्वारा प्रयोगपरक भाषा भाष्य से अलंकृत यह ग्रन्थ जिज्ञासुओं की समस्त जिज्ञासाओं का शमन करने में सर्वविध समर्थ होगा—इसमें विचिकित्सा के लिये लेशमात्र भी स्थान नही है।

सैट (पाँच भागों में) संस्करण : 2012 मूल्य : 7500.00

॥ श्रीः ॥

श्रीरघुनाथतर्कवागीशप्रणीतः

आगमतत्त्वविलासः

भाषाभाष्यसंवलितः

चतुर्थः परिच्छेदः

ॐ भुवनेश्वर्यै नमः

अथ वक्ष्यामि जपतामीश्वरीं भुवनेश्वरीम् ।
ब्रह्मादयो न यां वेत्तुं महामायां समीशते ॥१॥

ईश्वर कहते हैं—ब्रह्मा प्रभृति देवगण उन महामाया को सम्यक् रूपेण जानने में समर्थ नहीं होते। अब मैं उन जपकारीगण की ईश्वरी भुवनेश्वरी का मन्त्र कहता हूँ।।१।।

नकुलीशोऽग्निमारूढो वामनेत्रार्द्धचन्द्रवान् ।
बीजमस्याः समाख्यातं सेवितं सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥२॥

नकुलीश (हकार) अग्नि (रेफ) पर आरूढ़ होकर वामनेत्र ईकार तथा अर्द्धचन्द्र अनुस्वार से युक्त होगा। यह सिद्धिकामी साधकों द्वारा सेवित भुवनेश्वरी का बीजमन्त्र कहा गया है।।२।।

अस्यार्थः—नकुलीशो हकारः। अग्निं रेफः। वामनेत्रमीकारः। तेन मायाबीजमायातम्। कालिकापुराणे तु ह्रीमित्यस्य चतुरक्षरत्वमुक्तम् ॥३॥

इसका अर्थ है—नकुलीश = ह। अग्नि = रेफ। वाम नेत्र = ई। इससे मायाबीज (ह्रीं) का मन्त्रोद्धार होता है। कालिकापुराण में 'ह्रीं' बीज को चतुरक्षर कहा गया है।।३।।

यथा—

चतुरक्षरमन्त्रेण पाद्यादीनथ षोडश ।
वितरेदुपचारांश्च पूर्वप्रोक्तांश्च भैरव! ॥४॥

कालिकापुराण में कहा है कि हे भैरव! पूर्वोक्त चतुरक्षर मन्त्र द्वारा देवी को पाद्यादि षोडश उपचार वितरण (निवेदन) करना चाहिये।।४।।

भुवनेश्वरीशब्दस्यार्थमाह दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

व्योमबीजे महेशानि! कैलाशादि प्रतिष्ठितम्।
वह्निबीजात् सुवर्णादि निष्पन्नं बहुधा प्रिये।।५।।

दक्षिणामूर्त्ति संहिता में 'भुवनेश्वरी' शब्द का अर्थ इस प्रकार कहा गया है—हे महेशानि! व्योम बीज में कैलास-प्रभृति प्रतिष्ठित है। हे प्रिये! वह्निबीज से सुवर्णादि अनेक प्रकार से निष्पन्न होता है।।५।।

तेनायं वर्त्तते लोको भूमिमण्डलसंस्थितः।
तुर्यस्वरेण पाताले शेषरूपेण धार्यते।।६।।
तेनायं महाभूमण्डलं तस्मात् पातालस्यापि नायिका।
अतएव महेशानि! भुवनाधीश्वरी प्रिये!।।७।।

भूमिमण्डलस्थ जो यह लोक है, उसके द्वारा ही स्थित है। शेषरूप (अनन्तरूप) तुर्यस्वर के द्वारा यह महाभूमण्डल धृत है। इसलिये यह पाताल की भी नायिका हैं। हे महेशानि! हे प्रिये! इसी कारण वे भुवनेश्वरी हैं।।६-७।।

अथास्य मन्त्रस्य पूजाप्रयोगः। सामान्यपूजापद्धत्युक्तप्रातःकृत्यादि पीठन्यासान्तं कर्म विधाय हृत्पद्मस्य पूर्वादिकेशरेषु पीठशक्तिर्न्यसेत्। यथा ॐ जयायै नमः, एवं विजयायै नमः, अजितायै, अपराजितायै, नित्यायै, विलासिन्यै, दोग्ध्र्यै, अघोरायै, मध्ये—मङ्गलायै, कर्णिकायां ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः।।८।।

अब मन्त्र का पूजाप्रयोग कहा जा रहा है। सामान्य पूजापद्धति में कहे गये प्रातःकृत्य से पीठन्यास-पर्यन्त कर्म-विधान सम्पन्न करके हृत्पद्म के पूर्वादि केशरसमूह में पीठशक्ति का न्यास करे। जैसे—ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ अजितायै नमः, ॐ अपराजितायै नमः, ॐ नित्यायै नमः, ॐ विलासिन्यै नमः, ॐ दोग्ध्र्यै नमः, ॐ अघोरायै नमः। मध्य में—ॐ मङ्गलायै नमः। कर्णिका में—ॐ ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः।।८।।

ततः ऋष्यादिन्यासः। अस्य भुवनेश्वरीमन्त्रस्य शक्तिर्ऋषिर्गायत्रीछन्दः हकारो बीजं ईकारः शक्तिः रेफः कीलकं भुवनेश्वरी देवता चतुर्वर्गसिद्ध्यर्थे विनियोगः। शिरसि—शक्तये ऋषये नमः। मुखे—गायत्री छन्दसे नमः।

हृदि—भुवनेश्वर्यै देवतायै नमः। गुह्ये—हं बीजाय नमः। पादयोः—ईं शक्तये नमः। सर्वाङ्गे—रं कीलकाय नमः॥९॥

अब ऋष्यादि न्यास कहते हैं। जैसे—ॐ अस्य भुवनेश्वरीमन्त्रस्य शक्तिः ऋषिः गायत्री छन्दः भुवनेश्वरी देवता हकारो बीजम् ईकारः शक्तिः रेफः कीलकं चतुर्वर्गसिद्ध्यर्थे विनियोगः। मस्तक—शक्तये ऋषये नमः। मुख—ॐ गायत्री छन्दसे नमः। हृदय—ॐ भुवनेश्वर्यै देवतायै नमः। गुह्य—ॐ हं बीजाय नमः। पादद्वय—ॐ ईं शक्तये नमः। सर्वाङ्ग—ॐ रं कीलकाय नमः।।९।।

ततो मन्त्रन्यासः। शिरसि—ॐ हृल्लेखायै नमः। वदने—ऐं गगनायै नमः। हृदि—ॐ उं रक्तायै नमः। गुह्ये—इं करालिकायै नमः। पादयोः—अं महोच्छूष्मायै नमः। एवमात्मनः शिवरूपतया ऊर्ध्वप्राग्याम्योदीच्य-पश्चिमेषु मुखेषु तान्न्यसेत्। एतासां बीजानि यथा निबन्धे—

सत्यादि पञ्चहृस्वाढ्या न्यस्तव्या भूतसप्रभाः ।

सत्य ओकारस्तदादित्वं प्रातिलोम्येन । ओकारेकारयोस्तु तन्त्रे ह्रस्वत्व-व्यवहारः ॥१०॥

इस हृल्लेखादि बीज के सम्बन्ध में जैसा कि शारदातिलक में कहा है कि पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूतवर्ग की प्रभा के समान वर्णों वाली हृल्लेखा प्रभृति को पाँच ह्रस्व वर्ण से युक्त बीजों द्वारा भूषित करके न्यास करने का नियम है। यहाँ सत्य = ओकार। 'प्रातिलोमे तदादि' अर्थात् इस क्रम से ओ ए उ इ ओ अ। 'ओ' तथा 'ए' का व्यवहार तन्त्रों में ह्रस्वत्वरूपेण किया जाता है।।१०।।

ततः षड्दीर्घभाजा मायाबीजेन कराङ्गन्यासौ। यथा—षड्दीर्घभाजा बीजेन कुर्यादङ्गक्रियां मनोरिति। स्वच्छन्दसंग्रहे—

स्वरं विहाय बीजन्तु दीर्घषट्केन योजयेत् ।
षड्ङ्गानि विधेयानि सर्वत्रायं विधिः स्मृतः ॥११॥

अस्यार्थः—ह्रीङ्कारस्य दीर्घेकारं त्यक्त्वा आकारादि योजयेत्। सर्वत्र कराङ्गन्यासयोरेवं क्रमः। न्यासेऽङ्गुलिनियमस्तु प्रागुक्तः॥१२॥

अब कराङ्ग न्यास करना है। षड्दीर्घ युक्त 'ह्रीं' (मायाबीज) से कराङ्गन्यास करे। स्वच्छन्द संग्रह में कहा है कि छः दीर्घयुक्त मायावीज द्वारा मन्त्र की अङ्गक्रिया (न्यास) होगी।

'बीज के स्वर को (ईकारादि को) परित्याग करके (अर्थात् बीज में पहले से जो स्वर लगा हो, उसे हटाकर) उस बीज का योग छः दीर्घस्वर से क्रमशः करना चाहिये। इससे षडङ्ग न्यास करना होगा। सर्वत्र यही विधि कही गयी है'।

इस श्लोक का तात्पर्य है कि 'ह्रीं' के दीर्घ ई का त्याग करके 'आ' इत्यादि दीर्घ स्वर का योग करना चाहिये। न्यासार्थ अंगुलिनियम इस ग्रन्थ में पूर्वकथित विधि के अनुसार ही है। अब करन्यास है—ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं, ॐ ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। इसी प्रकार हृदयादि में ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि प्रकार से अंगन्यास होगा।।११-१२।।

ततः कपाले—ॐ गायत्रीसहितब्रह्मणे नमः। दक्षिणकपाले—ॐ सावित्रीसहितविष्णवे नमः। वामकपाले—ॐ वागीश्वरीसहितमहेश्वराय नमः। वामकर्णोपरि—ॐ श्रीसहितधनपतये नमः। मुखे—ॐ रतिसहितस्मराय नमः। दक्षकर्णोपरि—ॐ पुष्टिसहितगणपतये नमः। दक्षिणगण्डे कर्णान्तराले—ॐ शङ्खनिधये नमः। वामगण्डे कर्णान्तराले—ॐ पद्मनिधये नमः। चिबुके—ॐ भुवनैश्वर्यै देवतायै नमः॥१३॥

एवं कण्ठमूलदक्षिणस्तनवामस्तनवामांसहृदयदक्षिणांसपार्श्वद्वयनाभिषु तान् न्यसेत्। यथा कण्ठमूले गायत्रीसहितब्रह्मणे नमः। दक्षिणस्तने—ॐ सावित्रीसहितविष्णवे नमः। वामस्तने—ॐ वागीश्वरीसहितमहेश्वराय नमः। वामांसे—ॐ श्रीसहितधनपतये नमः। हृदये—ॐ रतिसहितस्मराय नमः। दक्षिणांसे—ॐ पुष्टिसहितगणपतये नमः। (पार्श्वद्वये) दक्षिणपार्श्वे—ॐ शङ्खनिधये नमः। वामपार्श्वे—ॐ पद्मनिधये नमः। नाभौ—ॐ भुवनेश्वर्यै देवतायै नमः॥१४॥

ऊपर योनिन्यास स्पष्ट लिखा है; अतः भाषानुवाद आवश्यक नहीं है।।१३-१४।।

ततो भाले—ॐ ब्राह्म्यै नमः। वामांसे—माहेश्वर्यै नमः। वामपार्श्वे—ॐ कौमार्यै नमः। जठरे—ॐ वैष्णव्यै नमः। दक्षिणपार्श्वे—वाराह्यै नमः। दक्षिणांसे—इन्द्राण्यै नमः। गले—चामुण्डायै नमः। हृदि—महालक्ष्म्यै नमः। एवं विन्यस्य मूलेन व्यापकत्रयं कुर्यात्। ततो ध्यानम्॥१५॥

तत्पश्चात् अष्टशक्ति न्यास कर्त्तव्य है। भाल (मस्तक में)—ॐ ब्राह्म्यै नमः। वाम स्कन्ध में—ॐ माहेश्वर्यै नमः। वाम पार्श्व में—ॐ कौमार्यै नमः। जठर में—ॐ वैष्णव्यै नमः। दक्षिण पार्श्व में—ॐ वाराह्यै नमः। दाहिने स्कन्ध में—ॐ इन्द्राण्यै नमः। गले में—ॐ चामुण्डायै नमः। हृदय में—ॐ महालक्ष्म्यै नमः। इस प्रकार से न्यास करके मूल मन्त्र द्वारा मस्तक से पैर के अंगूठे पर्यन्त तीन बार व्यापक न्यास करके ध्यान करना चाहिये।।१५।।

उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशभीतिकरां प्रभजेद्भुवनेशीम् ॥१६॥

इनः सूर्यः।

उदीयमान बाल सूर्य के समान कान्ति वाली, चन्द्रमा से मण्डित मुकुट धारण करने वाली, उन्नत स्तनों से युक्त, त्रिनेत्रा, तनिक हास्ययुक्त, वर, पाश, अंकुश तथा अभय मुद्रा-धारिणी भुवनेश्वरी का भजन करता हूँ।।१६।।

एवं ध्यात्वा मानसैरुपचारैः सम्पूज्य सामान्यपूजापद्धत्युक्तरीत्याऽर्घस्थापनं कुर्यात्॥१७॥

ईन—सूर्य। इस प्रकार ध्यानोपरान्त मानसोपचार पूजन सामान्य पूजाविधि के अनुसार अर्घ्यस्थापन करे।।१७।।

अस्या पूजायन्त्रं यथा—

पद्ममष्टदलं बाह्ये वृत्तं षोडशभिर्दलैः।
विलिखेत् कर्णिकामध्ये षट्कोणमतिसुन्दरम्।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ॥१८॥

अब भुवनेश्वरी का पूजायन्त्र कहते हैं। प्रथमतः अष्टदल कमल अङ्कित करना चाहिये। तदनन्तर एक वृत्त, जो १६ दलों से युक्त है, अङ्कित करे। अष्टदल कमल की कर्णिका में अतिसुन्दर षट्कोण का अङ्कन करना चाहिये। तदनन्तर सब के बाहर एक चतुर्द्वार युक्त चतुरस्र (भूपर) का अङ्कन किया जाये। इस प्रकार से पूजा यन्त्र बनता है।।१८।।

ततः सामान्यपूजापद्धत्युक्तरीत्या पीठपूजां तत्र कृत्वा [illegible] यथा पूर्वादिकेशरेषु—ॐ जयायै नमः। एवं विजयायै, अजितायै, अपराजितायै, नित्यायै, विलासिन्यै, दोग्ध्र्यै, अघोरायै, मङ्गलायै [illegible] तदुपरि ह्रीं सर्वशक्तिपद्मासनाय। ततो मूलेन मूर्तिं सङ्कल्प्य [illegible] वाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणानि पूजयेत्॥ [illegible]

तदनन्तर सामान्य पूजापद्धति के अनुसार इस पूजा [illegible] पीठशक्तियों का पूजन करे। प्रदक्षिणक्रमानुसार केशर में ॐ जयायै नमः, [illegible] के केशर में—ॐ विजयायै नमः, दक्षिणकेशर में—ॐ अजितायै नमः, [illegible] कोण के केशर में—ॐ अपराजितायै नमः, पश्चिम के केशर में—ॐ नित्यायै नमः, वायव्यकोण के केशर में—ॐ विलासिन्यै नमः, उत्तर के केशर में—ॐ [illegible]

इस श्लोक का तात्पर्य है कि 'ह्रीं' के दीर्घ ई का त्याग करके 'आ' इत्यादि दीर्घ स्वर का योग करना चाहिये। न्यासार्थ अंगुलिनियम इस ग्रन्थ में पूर्वकथित विधि के अनुसार ही है। अब करन्यास है—ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नम:, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं, ॐ ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। इसी प्रकार हृदयादि में ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि प्रकार से अंगन्यास होगा।।११-१२।।

ततः कपाले—ॐ गायत्रीसहितब्रह्मणे नमः। दक्षिणकपाले—ॐ सावित्रीसहितविष्णवे नमः। वामकपाले—ॐ वागीश्वरीसहितमहेश्वराय नमः। वामकर्णोपरि—ॐ श्रीसहितधनपतये नमः। मुखे—ॐ रतिसहितस्मराय नमः। दक्षकर्णोपरि—ॐ पुष्टिसहितगणपतये नमः। दक्षिणगण्डे कर्णान्तराले—ॐ शङ्खनिधये नमः। वामगण्डे कर्णान्तराले—ॐ पद्मनिधये नमः। चिबुके—ॐ भुवनैश्वर्यै देवतायै नमः॥१३॥

एवं कण्ठमूलदक्षिणस्तनवामस्तनवामांसहृदयदक्षिणांसपार्श्वद्वयनाभिषु तान् न्यसेत्। यथा कण्ठमूले गायत्रीसहितब्रह्मणे नमः। दक्षिणस्तने—ॐ सावित्रीसहितविष्णवे नमः। वामस्तने—ॐ वागीश्वरीसहितमहेश्वराय नमः। वामांसे—ॐ श्रीसहितधनपतये नमः। हृदये—ॐ रतिसहितस्मराय नमः। दक्षिणांसे—ॐ पुष्टिसहितगणपतये नमः। (पार्श्वद्वये) दक्षिणपार्श्वे—ॐ शङ्खनिधये नमः। वामपार्श्वे—ॐ पद्मनिधये नमः। नाभौ—ॐ भुवनेश्वर्यै देवतायै नमः॥१४॥

ऊपर योनिन्यास स्पष्ट लिखा है; अत: भाषानुवाद आवश्यक नहीं है।।१३-१४।।

ततो भाले—ॐ ब्राह्म्यै नमः। वामांसे—माहेश्वर्यै नमः। वामपार्श्वे—ॐ कौमार्यै नमः। जठरे—ॐ वैष्णव्यै नमः। दक्षिणपार्श्वे—वाराह्यै नमः। दक्षिणांसे—इन्द्राण्यै नमः। गले—चामुण्डायै नमः। हृदि—महालक्ष्म्यै नमः। एवं विन्यस्य मूलेन व्यापकत्रयं कुर्यात्। ततो ध्यानम्॥१५॥

तत्पश्चात् अष्टशक्ति न्यास कर्त्तव्य है। भाल (मस्तक में)—ॐ ब्राह्म्यै नम:। वाम स्कन्ध में—ॐ माहेश्वर्यै नम:। वाम पार्श्व में—ॐ कौमार्यै नम:। जठर में—ॐ वैष्णव्यै नम:। दक्षिण पार्श्व में—ॐ वाराह्यै नम:। दाहिने स्कन्ध में—ॐ इन्द्राण्यै नम:। गले में—ॐ चामुण्डायै नम:। हृदय में—ॐ महालक्ष्म्यै नम:। इस प्रकार से न्यास करके मूल मन्त्र द्वारा मस्तक से पैर के अंगूठे पर्यन्त तीन बार व्यापक न्यास करके ध्यान करना चाहिये।।१५।।

उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशभीतिकरां प्रभजेद्भुवनेशीम् ॥१६॥

इनः सूर्यः।

उदीयमान बाल सूर्य के समान कान्ति वाली, चन्द्रमा से मण्डित मुकुट धारण करने वाली, उन्नत स्तनों से युक्त, त्रिनेत्रा, तनिक हास्ययुक्त, वर, पाश, अंकुश तथा अभय मुद्रा-धारिणी भुवनेश्वरी का भजन करता हूँ।।१६।।

एवं ध्यात्वा मानसैरुपचारैः सम्पूज्य सामान्यपूजापद्धत्युक्तरीत्याऽर्घस्थापनं कुर्यात्॥१७॥

ईन—सूर्य। इस प्रकार ध्यानोपरान्त मानसोपचार पूजन सामान्य पूजाविधि के अनुसार अर्घ्यस्थापन करे।।१७।।

अस्या पूजायन्त्रं यथा—

पद्ममष्टदलं बाह्ये वृत्तं षोडशभिर्दलैः।
विलिखेत् कर्णिकामध्ये षट्कोणमतिसुन्दरम्।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ॥१८॥

अब भुवनेश्वरी का पूजायन्त्र कहते हैं। प्रथमतः अष्टदल कमल अङ्कित करना चाहिये। तदनन्तर एक वृत्त, जो १६ दलों से युक्त हो, अङ्कित करे। अष्टदल कमल की कर्णिका में अतिसुन्दर षट्कोण का अङ्कन करना चाहिये। तत्पश्चात् पद्म के बाहर एक चतुर्द्वार युक्त चतुरस्र (भूपर) का अङ्कन किया जायेगा। इस प्रकार से पूजा यन्त्र बनता है।।१८।।

ततः सामान्यपूजापद्धत्युक्तरीत्या पीठपूजां तत्र कृत्वा पीठशक्तिरर्चयेत्। यथा पूर्वादिकेशरेषु—ॐ जयायै नमः। एवं विजयायै, अजितायै, अपराजितायै, नित्यायै, विलासिन्यै, दोग्ध्र्यै, अघोरायै, मध्ये मङ्गलायै, तदुपरि ह्रीं सर्वशक्तिपद्मासनाय। ततो मूलेन मूर्त्तिं सङ्कल्प्य पूर्ववद्ध्यात्वा वाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणानि पूजयेत्॥१९॥

तदनन्तर सामान्य पूजापद्धति के अनुसार इस पूजा यन्त्र में पीठपूजा करके पीठशक्तियों का पूजन करे। प्रदक्षिणक्रमानुसार केशर में ॐ जयायै नमः, अग्निकोण के केशर में—ॐ विजयायै नमः, दक्षिणकेशर में—ॐ अजितायै नमः, नैर्ऋत्य कोण के केशर में—ॐ अपराजितायै नमः, पश्चिम के केशर में—ॐ नित्यायै नमः, वायव्यकोण के केशर में—ॐ विलासिन्यै नमः, उत्तर के केशर में—ॐ दोग्ध्र्यै

नमः, ईशान कोण के केशर में—ॐ अघोरायै नमः, मध्य में—ॐ मङ्गलायै नमः। उसके ऊपरी भाग में—ॐ ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः। इसके पश्चात् मूल मन्त्र से मूर्त्ति की कल्पना करके पूर्ववत् ध्यान करके आवाहनादि करके पञ्चपुष्पाञ्जलिदान पर्यन्त समस्त कार्य करके आवरण देवता का पूजन करे।।१९।।

विशेष—ध्यानानन्तर पाश, अङ्कुश, अभय, वर, पुस्तक, ज्ञान तथा योनिमुद्रादि का प्रदर्शन करना चाहिये। तत्पश्चात् 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परामृतरूपे भगवति! चन्द्रमण्डल-वासिनि! चन्द्रामृतेन पूरय द्रव्यमिदं पवित्रय पूरय श्रीं ह्रीं ऐं स्वाहा' इस मन्त्र से स्वयं का तथा पूजा के उपकरणों का प्रोक्षण करना चाहिये। यह प्रकरण इस ग्रन्थ में नहीं है। यह विधान राघवभट्ट ने लिखा है।

यथा कर्णिकामध्ये—ॐ हृल्लेखायै नमः। पूर्वे—एं गगनायै नमः। दक्षिणे—उं रक्तायै नमः। उत्तरे—ऐं करालिकायै नमः। पश्चिमे—अं महोच्छूष्मायै नमः। षट्कोणेषु पूर्वे—ॐ गायत्र्यै नमः ॐ ब्रह्मणे नमः। एवं नैर्ऋत्ये—सावित्र्यै विष्णवे। वायव्ये—सरस्वत्यै रुद्राय। वह्निकोणे—श्रियै धनपतये नमः। पश्चिमे—रत्यै स्मराय। ऐशान्यां—पुष्ट्यै गणपतये। षट्कोणस्योभयपार्श्वयोः—शङ्खनिधये पद्मनिधये॥२०॥

अब आवरण देवता का पूजन कहते हैं। जैसे—कर्णिका में—ॐ ओं हृल्लेखायै नमः, उस कर्णिका के पूर्व में—ॐ एं गगनायै नमः, दक्षिण में—ॐ उं रक्तायै नमः, उत्तर में—ॐ इं करालिकायै नमः, पश्चिम में—ॐ अं महोच्छूष्मायै नमः।

अब षट्कोण के ऊर्ध्वभाग में त्रिकोण से दक्षिण क्रम से मिथुन देवता की पूजा कर्त्तव्य है। जैसे—इन्द्रकोण में—ॐ गायत्र्यै नमः ॐ ब्रह्मणे नमः, नैर्ऋत्य कोण में—ॐ सावित्र्यै नमः ॐ विष्णवे नमः, वायुकोण में—ॐ सरस्वत्यै नमः ॐ रुद्राय नमः, अग्निकोण में—ॐ श्रियै नमः ॐ धनपतये नमः, पश्चिम में—ॐ रत्यै नमः ॐ स्मराय नमः, ईशान कोण में—ॐ पुष्ट्यै नमः ॐ गणपतये नमः, षट्कोण के दोनों ओर—ॐ शङ्खनिधये नमः ॐ पद्मनिधये नमः।।२०।।

केशरेष्वग्निनिर्ऋतिवाय्वीशानकोणेषु मध्ये चतुर्दिक्षु च ह्रां हृदयाय नम इत्यादिना षडङ्गानि पूजयेत्॥२१॥

अब षडङ्ग देवता का पूजन कहते हैं। केशर के अन्तर्गत अग्निकोण में—ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ईशान कोण में—ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा नमः, नैर्ऋत्य कोण में—ॐ ह्रूं शिखायै वषट् नमः, वायुकोण में—ॐ ह्रैं कवचाय हुं नमः, मध्य में—ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् नमः। कर्णिका के सामने—ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् नमः।।२१।।

निबन्धे—

केशरेष्वग्निकोणादौ हृदयादीनि पूजयेत्।
नेत्रमग्ने दिशास्वस्त्रं ध्यातव्याश्चाङ्गदेवताः ॥२२॥

निबन्ध में कहा गया है कि केशर के अग्निकोणादि में हृदयादि अंगदेवता की .।। करे। आगे नेत्र का तथा दिक् समूह में अस्त्र का पूजन करे। अंग देवता का ध्यान भी करना चाहिये।।२२।।

विशेष—ग्रन्थकार ने मिथुन देवता पूजनोपरान्त षडङ्ग देवता-पूजन का विधान किया है; किन्तु शारदातिलक में षडङ्ग देवता के पूजनोपरान्त मिथुन देवता के पूजन का विधान है। यह सब सम्प्रदायानुसार करना चाहिये।

दिशास्वस्त्रमिति चतुर्दिक्षु अस्त्रमन्त्रस्यावृत्तिरित्यर्थः। एवं सर्वत्र। भैरव्यादौ तु विशेषो वक्तव्यः॥२३॥

'दिशासु अस्त्रम्' इसका अर्थ है कि चतुर्दिक पूजान्त में मन्त्र की आवृत्ति करनी होगी। ऐसा ही सर्वत्र जानना चाहिये। भैरवादि पुरश्चरण में विशेष वक्तव्य है।।२३।।

ततोऽष्टदलेषु पूर्वादितः अनङ्गकुसुमायै नमः। एवं अनङ्गकुसुमातुरायै, अनङ्गमदनायै, अनङ्गमदनातुरायै, भुवनपाशायै, गगनवेगायै, शशिरेखायै, गगनरेखायै। पूर्वादिषोडशदलेषु करात्यै, विकरात्यै, उमायै, सरस्वत्यै, श्रियै, दुर्गायै, भवायै, लक्ष्म्यै, श्रुत्यै, स्मृत्यै, धृत्यै, श्रद्धायै, मेधायै, मत्यै, कान्त्यै, आर्यायै॥२४॥

तत्पश्चात् अष्टदल में पूर्वादिक्रमेण—ॐ अनङ्गकुसुमायै नमः, ॐ अनङ्गकुसुमातुरायै नमः, ॐ अनङ्गमदनायै नमः, ॐ अनङ्गमदनातुरायै नमः, ॐ भुवनपाशायै नमः, ॐ गगनवेगायै नमः, ॐ शशिरेखायै नमः, ॐ गगनरेखायै नमः मन्त्रों से इनका पूजन करना होगा।।२४।।

तद्बहिर्भूतगृहे पूर्वादितः अनङ्गरूपायै, अनङ्गमदनायै, अनङ्गमदनातुरायै, भुवनवेगायै, भुवनपालिकायै, सर्वशिशिरायै, अनङ्गवदनायै, अनङ्ग-मेखलायै॥२५॥

षोडश दल के बहिर्भाग में भूगृह में पूर्वादिक्रमेण ॐ अनङ्गरूपायै नमः। इसी प्रकार ॐ अनङ्गमदनायै नमः, ॐ मदनातुरायै नमः, ॐ भुवनवेगायै नमः, ॐ भुवन-पालिकायै नमः, ॐ सर्वशिशिरायै नमः, ॐ अनङ्गवेदनायै नमः, ॐ अनङ्गमेखलायै नमः से पूजा करनी चाहिये।।२५।।

तद्बहिश्चतुरस्रे पूर्वादितः ॐ लां इन्द्राय देवाधिपतये सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय नमः। ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये सायुधायेत्यादि। ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये सायुधायेत्यादि। ॐ क्षां निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये सायुधायेत्यादि। ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये सायुधायेत्यादि। ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये सायुधायेत्यादि। ॐ सां सोमाय ताराधिपतये सायुधायेत्यादि। ॐ हां ईशानाय गणाधिपतये सायुधायेत्यादि। इन्द्रेशान-योर्मध्ये ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये सायुधायेत्यादि। निर्ऋतिवरुणयोर्मध्ये ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये सायुधायेत्यादि॥२६॥

अब लोकपाल-पूजन करे। भूगृह के बाहरी भाग में चतुरस्रमध्य में पूर्वादिक्रम से इस प्रकार पूजन करे—

पूर्व में—ॐ लां इन्द्राय सुराधिपतये वज्रायुधाय ऐरावतवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय भुवनेश्वरीपारिषदाय नमः।

अग्निकोण में—ॐ रां अग्नये तेजोऽधिपतये शक्त्यायुधाय अजवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय भुवनेश्वरीपारिषदाय नमः।

दक्षिण में—ॐ यां यमाय प्रेताधिपतये दण्डायुधाय महिषवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय भुवनेश्वरीपारिषदाय नमः।

नैर्ऋत्य में—ॐ क्षां रक्षोधिपतये अस्यायुधाय नरवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय भुवनेश्वरीपारिषदाय नमः।

पश्चिम में—ॐ वां वरुणाय जलाधिपतये पाशायुधाय मकरवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय भुवनेश्वरीपारिषदाय नमः।

वायुकोण में—ॐ यां वायवे प्राणाधिपतये अङ्कुशायुधाय मृगवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय भुवनेश्वरीपारिषदाय नमः।

उत्तर में—ॐ सां सोमाय ताराधिपतये गदायुधाय अश्ववाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय भुवनेश्वरीपारिषदाय नमः।

ईशान कोण में—ॐ हां ईशानाय गणाधिपतये शूलायुधाय वृषभवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय भुवनेश्वरीपारिषदाय नमः।

इन्द्र तथा ईशान के मध्य में—ॐ आं ब्रह्मणे प्रजाधिपतये चक्रायुधाय रथवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय भुवनेश्वरीपारिषदाय नमः।

नैर्ऋत्य कोण तथा वरुण (पश्चिम दिशा) के मध्य में ॐ ह्रीं अनन्ताय नागाधिपतये पद्मायुधाय हंसवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय भुवनेश्वरीपारिषदाय नमः से पूजन करे।।२६।।

तथा च—

लोकपाला बहिः पूज्याः समस्ताश्चतुरस्त्रके।
पुरुहूतेशयोर्मध्ये रक्षावरुणयोस्तथा।
ब्रह्मविष्णू सदा पूज्यौ दिगीशार्चां विदुर्बुधाः ॥२७॥

तभी कहा भी गया है कि दल के बाहरी भाग में चतुरस्र के मध्य चारो ओर आठ लोकपाल का पूजन करे। पूर्व (पुरुहूत) तथा ईश अर्थात् इन्द्र तथा ईशान के मध्य में तथा रक्ष (नैर्ऋत्य) तथा वरुण (पश्चिम) के मध्य में सदा ब्रह्मा तथा विष्णु का पूजन करना चाहिये। पण्डितगण दिक्पतियों की पूजा इस प्रकार से करें।।२७।।

इन्द्रादिलोकपालानां ये मन्त्रास्ते ध्रुवात्मिकाः।
स्वस्वबीजान्विताः सर्वे सचतुर्थीनमोऽन्तकाः ॥२८॥

ध्रुवः प्रणवः।

इन्द्रादि लोकपाल गण के मन्त्रसमूह में आदि में प्रणव लगेगा। उनका नाम अपने-अपने बीजों से युक्त होने पर चतुर्थी विभक्तियुक्त तथा अन्त में नमः से युक्त होगा।।२८।।

स्वबीजमाह मन्त्रदर्शने—

पृथ्व्यग्निपवनानन्तवरुणानिलसेश्वरैः।
अनन्तबिन्दुसंयुक्तैरर्च्या पाशेन मायया ॥२९॥

दिक्पालगण का बीजमन्त्र दर्शन ग्रन्थ के अनुसार कहा जा रहा है। अनन्त (आ) तथा (ं) बिन्दुसंयुक्त पृथिवी (लं), अग्नि (र), पवन (य), अनन्त (क्ष), वरुण (व), अनिल (य), (स-) सकार तथा ईश्वर (ह) द्वारा आठ दिक्पालों का बीज होता है। पाश (आं) तथा माया (ह्रीं) से अनन्त तथा ब्रह्मा का बीज होता है।।२९।।

अस्यार्थः—पृथ्वी लकारः, अग्नीः रेफः, पवनो यकारः, अनन्तः क्षकारः, वरुणो वकारः, अनिलो यकारः, सः सकारः, ईश्वरो हकारः, तैः अनन्त आकारः। पाश आं बीजम् माया ह्रीङ्कारः॥३०॥

पृथ्वी = ल, अग्नि = र, पवन—य, अनन्त = क्ष, वरुण—व, अनिल = य, स = सकार, ईश्वर = इ, अनन्त = आ, पाश = आं, माया = ह्रीं।।३०।।

तथा—

अन्ते यजेल्लोकपालान् मूलपारिषदान्वितान्।
हेतिजात्यधिपोपेतान् दिक्षु पूर्वादितो यजेत् ॥३१॥

वहीं कहा गया है—सर्वान्त में बाहर पूर्वादि दिक् में क्रमशः बीजयुक्त, वाहनयुक्त, जातियुक्त, अधिपतियुक्त, अस्त्र (हेति) युक्त तथा मूल पारिषदयुक्त इन्द्रादि लोकपालादि की पूजा करे।।३१।।

विशेष—इस ग्रन्थ में तथा तन्त्रसार में दिक्पाल की पूजा में पहले ब्रह्मा की पूजा तथा उसके पश्चात् अनन्त की पूजा का वर्णन है। यह तान्त्रिक क्रम न होकर पौराणिक क्रम है। महाकपिलपाञ्चरात्र, हयशीर्ष पाञ्चरात्र, प्रपञ्चसार, शारदातिलक जैसे तन्त्रग्रन्थ में पहले अनन्त की पूजा, तत्पश्चात् ब्रह्मा की पूजा का विधान है।

हेतिरस्त्रम्। सवाहनायेति क्रमदीपिका। तद्बहिः पूर्वादितो वज्राय, शक्तये, दण्डाय, खड्गाय, पाशाय, अङ्कुशाय, गदायै, शूलाय, पद्माय, चक्राय॥३२॥

हेति = अस्त्र। क्रमदीपिका में कहते हैं कि वाहन के साथ, उसके बाहर पूर्वादिक्रमेण ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्तये नमः, ॐ दण्डाय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ अङ्कुशाय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ चक्राय नमः मन्त्र से अस्त्रों का पूजन करना चाहिये।।३२।।

ततो धूपादि विसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्य पुरश्चरणं द्वात्रिंशल्लक्षजपः। यथा—

प्रजपेन्मन्त्रविन्मन्त्रं द्वात्रिंशल्लक्षमानतः।
त्रिस्वादुयुक्तैर्जुहुयादष्टद्रव्यैर्दशांशतः ॥३३॥

इसके अनन्तर धूपदान से लेकर विसर्जन-पर्यन्त का विधान सम्पन्न करना होगा। इसका पुरश्चरण ३२ लाख जप है। जैसे कहा है कि मन्त्र को जानने वाला साधक ३२ लाख जप करे। त्रिमधुर (बराबर मात्रा में चीनी, घृत तथा मधु) युक्त अष्ट द्रव्य से जप के दशमांश का हवन करे।।३३।।

अष्टद्रव्याणि यथा—

अश्वत्थोडुम्बरप्लक्षन्यग्रोधसमिधस्तिलाः।
सिद्धार्थपायसाज्यानि द्रव्याण्यष्टौ विदुर्बुधाः ॥३४॥

आठ द्रव्य हैं—पीपल, यज्ञ उडुम्बर, पाकड़ तथा वट की समिधा, तिल, सफेद राई, पायस तथा घृत।।३४।।

त्रिस्वाद्विति। घृतमधुशर्करात्वमिति। एकाक्षरीयं विद्याऽभिशप्तेति वाग्भवद्वय-पुटितेन शापोद्धार इत्युक्तं प्राक्॥३५॥

त्रिस्वादु—घृत, मधु तथा शर्करा। यह एकाक्षरी भुवनेश्वरी विद्या अभिशप्ता है।

अतएव इसे दो वाग्भवबीजों से पुटित करके शापोद्धार किया जाता है। यह पूर्व में कहा जा चुका है (ऐं ह्रीं ऐं' द्वारा शापोद्धार होता है)।।३५।।

यथा तन्त्रे—

भुवनेशी महाविद्या देवराजेन वै पुरा।
आराधिता महाविद्या वीर्यहीनोऽभवत्तदा।
एकाक्षरी वीर्यहीना वाग्भवेनोज्ज्वलीकृता ॥३६॥

जैसा कि तन्त्र में कहा है कि पूर्वकाल में देवराज इन्द्र ने इस महाविद्या की आराधना की थी। तब से यह फल प्रदान नहीं करती। यह एकाक्षरी महाविद्या वाग्भव बीज से पुटित होकर वीर्यवान् (फल देने वाली) हो जाती है।।३६।।

तथा च—

वाग्बीजपुटिता मायाविद्येयं त्र्यक्षरी मता ॥३७॥

तभी निबन्ध ग्रन्थ में कहा है कि वाक् बीज से पुटित होकर यह तीन अक्षरों वाली विद्या कहलाती हैं।।३७।।

अस्य मन्त्रस्य पूर्ववन्न्यासः। विशेषस्तु ऐं ह्रीं ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ऐं ह्रीं ऐं तर्जनीभ्यां स्वाहा। एवं क्रमेण कराङ्गन्यासौ॥३८॥

इसका न्यास पूर्ववत् है। केवल कराङ्गन्यास विशेष है। जैसे—ॐ ऐं ह्रीं ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ऐं ह्रीं ऐं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि तथा ॐ ऐं ह्रीं ऐं हृदयाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं ऐं शिरसे स्वाहा इत्यादि रूप से षट्दीर्घयुक्त स्वरों से मध्यबीज (ह्रीं) द्वारा करन्यास तथा अंगन्यास करना चाहिये।।३८।।

यथा निबन्धे—

मध्येन दीर्घयुक्तेन वाक्पुटेन प्रकल्पयेत्। इति।

दीर्घयुक्तेन षड्दीर्घयुक्तेनेत्यर्थः ।।३९।।

जैसा निबन्ध में कहते हैं कि वाक् बीज द्वारा पुटित षट् दीर्घयुक्त मध्यबीज द्वारा कराङ्गन्यास करे। दीर्घयुक्त अर्थात् षट्दीर्घ न्यासों के उपरान्त ध्यान करना होगा।।३९।।

श्यामाङ्गीं शशिशेखरां निजकरैर्दानञ्च रक्तोत्पलं,
रत्नाढ्यं चषकं परं भयहरं संविभ्रतीं शाश्वतीम्।
मुक्ताहारलसत् पयोधरनतां नेत्रत्रयोल्लासिनीं,
वन्देऽहं सुरपूजितां हरवधूं रक्तारविन्दस्थिताम् ॥४०॥

श्यामाङ्गी, चन्द्रशेखरा, हाथों में वरमुद्रा, लालकमल, रत्न से भरी चषक एवं

अभय मुद्रा धारण करने वाली, मनोहारिणी, सनातनी, मुक्ताहार से उज्ज्वला, स्तनभार से झुकी हुई, देवों से पूजित, लाल कमल पर बैठी, हरवधू भुवनेश्वरी की मैं वन्दना करता हूँ।।४०।।

अष्टपत्रेषु पूजायां विशेषस्तु—आं ब्राह्म्यै नमः। एवं ईं माहेश्वर्यै नमः, ऊं कौमार्यै नमः, ॠं वैष्णव्यै नमः, लॄं वाराह्यै नमः, ऐं इन्द्राण्यै नमः, औं चामुण्डायै नमः, अः महालक्ष्म्यै नमः॥४१॥

ध्यान करके पञ्चपुष्पाञ्जलि दानपर्यन्त पूर्वोक्त रीति से सम्पन्न करके मध्यादि क्रमेण हृल्लेखादि का षट्कोण में मिथुन वर्ग का केशरसमूहों में अङ्गपूजा करने के अनन्तर अष्टपत्रों में ब्राह्म्यादि मातृवर्ग का तथा अष्टभैरव का पूजन कर्त्तव्य है। इस पूजा में विशेष है—ॐ आं ब्राह्म्यै नमः, ॐ ईं माहेश्वर्यै नमः, ॐ ऊं कौमार्यै नमः, ॐ ॠं वैष्णव्यै नमः, ॐ लॄं वाराह्यै नमः, ॐ ऐं इन्द्राण्यै नमः, ॐ औं चामुण्डाय नमः, ॐ अः महालक्ष्म्यै नमः।।४१।।

पुनरष्टदलेषु अं असिताङ्गाय, इं रुरवे, उं चण्डाय, ऋं क्रोधाय, लृं उन्मत्ताय, एं कपालिने, ओं भीषणाय, अं संहाराय। यद्वा—अं आं असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नमः इत्यादिनाऽर्चयेत्। तथा च निबन्धे—

दीर्घाद्या मातरं प्रोक्ता ह्रस्वाद्या भैरवाः स्मृताः॥४२॥ इति।

अब भैरवगण का पूजन करना होगा। यथा—ॐ अं असिताङ्गाय भैरवाय नमः। ॐ इं रुरवे भैरवाय नमः, ॐ चण्डाय भैरवाय नमः, ॐ ऋं क्रोधाय भैरवाय नमः, ॐ लृं उन्मत्ताय भैरवाय नमः, ॐ एं कपालिने भैरवाय नमः, ॐ ओं भीषणाय भैरवाय नमः, ॐ अं संहाराय भैरवाय नमः। अथवा 'ॐ अं आं असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नमः—इन मन्त्रों से पूजन करे।

निबन्ध में कहते हैं कि ब्राह्मी प्रभृति मातृगण को दीर्घाद्य से अर्थात् षट् दीर्घ स्वर द्वारा (जैसा कि श्लोक ४० में है) तथा भैरवगण को षड् ह्रस्व स्वर द्वारा कहा गया है (जैसा कि श्लोक ४० में है)।।४२।।

सर्वमन्यद् दशाक्षारीवत्। पुरश्चरणन्तु दशलक्षजपः। यथा—

तत्त्वलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात् तद्दशांशतः।
पलाशपुष्पैः स्वाद्वक्तैः पुष्पैर्वा राजवृक्षजैः॥४३॥

जैसाकि शारदातिलक में कहा गया है कि तत्त्वलक्ष अर्थात् १० लाख जप करे। त्रिमधुर द्वारा लिपटे पलाशफूलों से अथवा राजवृक्ष (सोनालू) पुष्प द्वारा जप का दशांश होम करे।।४३।।

अत्र तत्त्वलक्षं दशलक्षं शक्तेर्दशतत्त्वमिति वचनात् इति सम्प्रदायविदः। चतुर्विंशतिलक्षमित्यपि केचित्। राजवृक्षः सोनालूरिति ख्यातः॥४४॥

यहाँ तत्त्वलक्ष है १० लाख; क्योंकि कहा गया है 'शक्तेर्दशतत्त्वम्'। यह सम्प्रदाय वालों का मत है। कोई कहते हैं कि तत्त्व अर्थात् २४, अतएव चौबीस लाख जप करना चाहिये। राजवृक्ष = सोनालू।।४४।।

विशेष—राघवभट्ट ने तत्त्वलक्ष को २४ लाख माना है। उन्होंने दस लाख वाले मत का उल्लेख नहीं किया है।

मन्त्रान्तरम्—

वाग्भवं शम्भुवनिता रमाबीजत्रयात्मकम्।
मन्त्रं समुद्धरेन्मन्त्री त्रिवर्गफलसाधनम्।
न्यासपूजादिकं सर्वं पूर्ववच्च समाचरेत्॥४५॥

अब भुवनेश्वरी का मन्त्रान्तर शारदातिलक के अनुसार कहते हैं। वाग्भव (ऐं) शम्भुवनिता (ह्रीं), रमाबीज (श्रीं) मन्त्रज्ञ साधक त्रिवर्ग फलार्थ इन बीजत्रयरूप 'ऐं ह्रीं श्रीं' मन्त्र का उद्धार करके न्यास-पूजादि अनुष्ठान करते हैं।।४५।।

कराङ्गन्यासौ तु ऐं ह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ऐं ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहेत्यादि क्रमेण। यथा निबन्धे—

षड्दीर्घभाजा मध्येन वाग्भवाद्येन कल्पयेत्।
षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तेन देशिकः॥४६॥

देशिक (उपदेष्टा) वाग्भव बीजादि के नमः स्वाहा जाति युक्त षड्दीर्घ-विशिष्ट मध्य बीज (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) द्वारा इस मन्त्र का षड़ङ्गन्यास करे।

जाति नमः, स्वाहा, वषट्, वौषट् हुं तथा फट्। एकाक्षर मन्त्र के विधानानुसार ध्यान के पूर्व तक का कृत्य सम्पन्न करके तब इस प्रकार ध्यान करे।।४६।।

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम्।
पाणिभ्यां मणिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं विभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थसव्यचरणां ध्यायेत्परामम्बिकाम्॥४७॥

सिन्दूर के समान अरुण वर्ण वाली, त्रिनयना, माणिक्यखचित मुकुट द्वारा उज्ज्वल चन्द्ररूप शिरोभूषण-धारिणी, स्मितमुखी, पीनस्तनी, हस्तद्वय द्वारा मणिपूर्ण चषक तथा रक्तकमल-धारिणी रत्नपूर्ण घट को वाम चरण के पास स्थापित करने वाली रक्तपद्मस्था सौम्या परा अम्बिका का ध्यान करे।।४७।।

अत्र सेव्या वामः। अस्य न्यासादिकं सर्वं पूर्ववत्। पुरश्चरणन्तु द्वादशलक्ष-जपः॥४८॥

यहाँ सेव्य है वाम। इस मन्त्र का न्यासादि पूर्ववत् (एकाक्षरी की तरह) होगा। पुरश्चरण १२ लाख मन्त्र-जप से होगा।।४८।।

यथा—

रविलक्षं जपेन्मन्त्रं पायसैर्मधुरान्वितैः।
दशांशं जुहुयान्मन्त्री पीठे प्रागीरिते यजेत्॥४९॥

१२ लाख मन्त्र-जप से इसका पुरश्चरण होता है। मधुराप्लुत पायस द्वारा जप का दशांश होम करे। मन्त्रज्ञ साधक भुवनेश्वरी प्रकरण में कहे गये पीठ पर इन भुवनेश्वरी की पूजा करे।।४९।।

मन्त्रान्तरम्—

अनन्तो विन्दुसंयुक्तो मायाब्रह्माग्नितारवान्।
पाशादित्र्यक्षरो मन्त्रः सर्ववश्यफलप्रदः॥५०॥

अब मन्त्रान्तर कहते हैं—विन्दु से युक्त अनन्त (आं) माया (ह्रीं) तथा ब्रह्म (क्) अग्नि (र) तथा तार (ॐ) युक्त होने पर (क्रों) सर्ववश्यफलप्रद भुवनेश्वरी का यह 'आं ह्रीं क्रों' त्र्यक्षर मन्त्र है।।५०।।

अनन्तः आकारः। ब्रह्मा ककारः, अग्नी रेफः। तारः सानुस्वार ओकारः। पाशादिरिति स्वरूपकथनम्। तथा च 'आं ह्रीं क्रों' इति मन्त्रः॥५१॥

अनन्त = आ। ब्रह्मा = क। अग्नि = र। तार = ॐ। पाशादि द्वारा मन्त्र का स्वरूप कहते हैं। अतः मन्त्रोद्धार होता है—आं ह्रीं क्रों।।५१।।

अस्य कराङ्गन्यासौ तु केवलमायाबीजेनैव। तेन ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहेत्यादि प्रयोगः। तथा च निबन्धे—

ऋष्याद्याः पूर्वमुक्ताः स्युर्बीजेनाङ्गक्रिया मता॥५२॥ इति।

इस मन्त्र का ऋष्यादि न्यास पूर्ववत् है। बीज तथा शक्ति भी पूर्ववत् है। किन्तु कराङ्गन्यास मायाबीज (ह्रीं) से होगा। षड्दीर्घ नियमानुसार ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि प्रकारेण कराङ्गन्यास करे। शारदातिलक निबन्ध में यही कहा गया है कि 'इस मन्त्र का ऋष्यादि पहले कहा जा चुका है। बीज द्वारा कराङ्गन्यास कहा जाता है'।।५२।।

ध्यानन्तु—

वराङ्कुशौ पाशमभीतिमुद्रां करैर्वहन्तीं कमलासनस्थाम्।
बालार्ककोटिप्रतिमां त्रिनेत्रां भजेऽहमाद्यां भुवनेश्वरीं ताम्॥५३॥

हाथों में वरमुद्रा, अङ्कुश, पाश तथा अभय मुद्रा-धारिणी, लाल कमल पर आसीना, करोड़ों बाल सूर्य के समान दीप्ति वाली, तीन नेत्रों वाली आद्या भुवनेश्वरी की मैं आराधना करता हूँ।।५३।।

दक्षिणेऽधो वरं ऊर्ध्वेऽङ्कुशं वामे ऊर्ध्वे पाशं अधोऽभयं दधतीमित्यर्थः। अस्याः पूजादिकमेकाक्षरीवत्। अष्टदलेषु ब्राह्मयादियुगलं पूर्ववत् पूजयेत्। किन्तु षोडशदले पूजाया अनुक्तत्त्वादत्र षोडशदलाभावः।।५४।।

दाहिने निचले हाथ में वर, ऊपरी दाहिने हाथ में अङ्कुश, बाँयें ऊर्ध्व हस्त में पाश, बाँयें निचले हाथ में वे अभयमुद्रा-धारिणी हैं।

इस मन्त्र की पूजा एकाक्षरी के समान करनी होगी। अष्टदल में ब्राह्मी आदि शक्ति तथा असिताङ्गादि भैरवगण की पूर्ववत् पूजा करे। यहाँ षोडश दल की पूजा करने को नहीं कहा गया है; अतः यहाँ षोडश दल नहीं है। जैसा निबन्ध में कहते हैं कि केशर-समूह में अंगदेवगण की पूजा तथा पत्रस्थिता मातृगण की पूजा करे। यह क्रमानुसार करना चाहिये।।५४।।

अस्यापि पुरश्चरणं दशलक्षजपः। होमश्च अश्वत्थोडुम्बरन्यग्रोधप्लक्षान्य-तमस्य समिद्भिर्दधिमधुघृताक्ताभिः। दशसहस्रसंख्यास्तिलैर्दुग्धाक्तैश्च दश-सहस्रसंख्याः।।५५।।

इस मन्त्र का पुरश्चरण दस लाख जप है। दधि, मधु तथा घृत से लिपटे पीपल, गूलर, न्यग्रोध (वट) तथा पलाश की समिधा द्वारा १००० होम करे। तदनन्तर दुग्ध से लिपटे तिलों द्वारा १०००० होम करना चाहिये।।५५।।

यथा—

हविष्यभुक् जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं जितेन्द्रियः।
तत् सहस्रं जुहूयाच्च जपान्ते मन्त्रवित्तमः।।५६।।
दधिक्षौद्रघृताक्ताभिः समिद्भिः क्षीरभूरुहाम्।
तत्संख्याया तिलैः शुद्धैः पयोऽक्तैर्जुहुयात्ततः।।५७।।

अत्र तत्त्वशब्दो दशवाचकः।

जितेन्द्रिय होकर हविष्यान्न भोजन करके एक लाख मन्त्र जप करे। मन्त्रवित् श्रेष्ठ पूजक जप के अन्त में १०००० होम करे।

दधि, मधु तथा चीनी द्वारा आप्लुत पीपल, उडुम्बर, (पलाश) प्लक्ष, वट की समिधा से १०००० होम करे। तदनन्तर दुग्ध से लिपटे तिल द्वारा १०००० होम करे।।५६-५७।।

इति भुवनेश्वरीप्रकरणम्

अथान्नपूर्णा

मायाहृद्भगवत्यन्ते माहेश्वरिपदं ततः।
अन्नपूर्णे ठयुगलं मनुः सप्तदशाक्षरः ॥१॥

अस्यार्थः—आदौ मायाबीजम्। ततो हृत् नमः पदम्। भगवति स्वरूपम्। माहेश्वरि स्वरूपम्। अन्नपूर्णे स्वरूपम्। ठयुगलं स्वाहा॥२॥

अब अन्नपूर्णा प्रकरण कहा जाता है। प्रथमतः माया (ह्रीं) तदनन्तर हृत् (नमः) तथा भगवति, तदनन्तर माहेश्वरि, अन्नपूर्णे तथा ठद्वय (स्वाहा)। यह अन्नपूर्णा का १७ अक्षरों का मन्त्र होता है। इसका अर्थ है—मायाबीज (ह्रीं) हृत् (नमः)। 'भगवति' स्वरूप में अर्थात् यथावत् रहेगा। तत्पश्चात् अन्नपूर्णे, तदनन्तर ठद्वय (स्वाहा)। मन्त्र है—ह्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा।।१-२।।

कल्पे च—

प्रणवाद्या यदा देवि! तदा सप्तदशाक्षरी।
अन्नदा मोक्षदा चैव सदा विभववर्द्धिनी ॥३॥
मायाद्या च यदा देवि! तदा सा सकलेष्टदा।
श्रीबीजाद्या यदा देवि! तदा सुखविवर्द्धिनी ॥४॥
वाग्बीजाद्या यदा देवि! वागीशत्वप्रदायिनी।
कामाद्या च यदा देवि! सर्वकामप्रदायिनी ॥५॥
तारमायात्मिका विद्या भोगमोक्षैकदायिनी।
मायाश्रीयुग्मबीजाद्या सदा विभववर्द्धिनी।
श्रीमाया युग्मबीजाद्या सदा सम्पत्तिपूरणी ॥६॥

अन्नपूर्णाकल्प में कहा है कि हे देवि! जब यह विद्या प्रारम्भ में प्रणव से युक्त होती है तब सप्तदशाक्षरी है। तब वह अन्न, मोक्षप्रदा तथा विभव बढ़ाने वाली होती है।

हे देवि! जब इसके प्रारम्भ में मायाबीज (ह्रीं) लगता है तब यह वागैश्वर्य प्रदान करती है। जब इसके प्रारम्भ में (श्रीं) बीज लगे तब यह सुखवृद्धि करती है।

हे देवि! जब इसके प्रारम्भ में वाग्बीज (ऐं) लगता है तब वागैश्वर्य तथा जब इसके प्रारम्भ में कामबीज (क्लीं) लगता है तब यह सर्वकाम-प्रदायिनी हो जाती है।

हे देवि! जब इस विद्या में ॐ, मायाबीज (ह्रीं) प्रारम्भ में हो तब भोग अथवा मोक्ष में से एक देती है। जब माया (ह्रीं) तथा श्रीं आदि में लगाये तब सदा वैभव की वृद्धि करती है। जब श्रीं तथा माया ह्रीं यह आदि में लगाये तब सर्वदा सम्पत्ति की पूर्त्ति करती है।।३-६।।

एवञ्चास्या मायारहितैव प्रकृतिः। तथा च तन्त्रान्तरे—

विमाया प्रणवाद्यैषा भवेत् सप्तदशाक्षरी ॥७॥ इति।

मायारहित विद्या ही इस विद्या की प्रकृति होगी। तन्त्रान्तर में यही कहा गया है कि विद्या ही विगत माया अर्थात् मायारहित होकर प्रणवादि से युक्त होकर सप्तदशाक्षरी होती है।।७।।

अतएव मायाप्रकृतिमन्त्रघटिकैव, एतादृश्या एव च विद्याया आदौ प्रणवादियोग इति किं न स्यादिति निरन्तरम् 'प्रणवाद्या यदा देवि। तदा सप्तदशाक्षरी' तस्य विरोधाच्च, मायाघटितमन्त्रस्य तारमायादिबीजद्वयपूर्वकत्वे ऊनविंशत्यक्षरत्वापत्तेः सम्प्रदायविरोधाच्च। तथा च मायाद्यन्यतमयोग आवश्यकः। तेन त्रयं विद्यामायादिरेका, मायां विना प्रणवादिः श्रीबीजादिर्वाग्भवादिः कामादिश्चेति पञ्चधा सप्तदशाक्षरी विद्या, कल्पे कवचे तथा प्रतिपादनात्। तारमायायुग्माद्या मायाश्रीयुग्माद्या, श्रीमायायुग्माद्या चेति त्रिविधाष्टादशाक्षरी वाग्भवमायायुग्माद्या काममायायुग्माद्याष्टादशाक्षरीति कवचोक्ता। अन्नादौ वर्णसन्देहः प्रागेव निराकृतः॥८॥

अतएव माया प्रकृति मन्त्र का घटक ही है। क्योंकि वचन है कि 'प्रणवाद्या यदा देवि तदा सप्तदशाक्षरी' अत: यह सन्देह निरस्त हो जाता है कि मायारहित विद्या ही विद्या की प्रकृति है। क्योंकि आदि में प्रणव लगाने का विधान इस पूर्वकथित वचन में है; परन्तु यहाँ सप्तदशाक्षरी कहने वाले इस कथन से भी विरोध होता है; क्योंकि माया (ह्रीं) घटित मन्त्र जब तार (ॐ) तथा माया (ह्रीं) अथवा 'ह्रीं' तथा 'श्रीं' अथवा 'श्रीं' तथा 'ह्रीं' से युक्त होगा, तब यह १९ अक्षरों वाली हो जाती है। इसलिये सम्प्रदायगत विरोध होगा। ऐसी स्थिति में माया (ह्रीं) आदि में रहने पर एक विद्या होगी। प्रणव आदि में रहने पर दूसरी विद्या, श्रीबीज आदि में रहने पर तीसरी विद्या, वाग्भव बीज आदि में रहने पर चौथी विद्या, कामबीज आदि में रहने पर पाँचवीं विद्या होगी। अत: सप्तदशाक्षरी विद्या पाँच प्रकार की है। ॐ तथा ह्रीं, ह्रीं तथा श्रीं, श्रीं तथा ह्रीं—यह तीन प्रकार की १८ अक्षरों वाली विद्या तथा ऐं तथा ह्रीं, क्लीं तथा ह्रीं—यह दोनों १८ अक्षरों वाली विद्या कवच में कही गयी है।।८।।

मन्त्राणां पूजा च—प्रातःकृत्यादिपीठन्यासान्तं कर्म विधाय हृत्पद्मस्य केशरेषु मध्ये च भुवनेश्वरीपीठमन्वन्ताः पीठशक्तिर्विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। यथा शिरसि—ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे—ॐ पंक्तिछन्दसे नमः। हृदि—अन्नपूर्णायै देवतायै नमः॥९॥

अब पूजापद्धति कहते हैं—प्रात:कृत्य से लेकर पीठन्यास-पर्यन्त समस्त कार्य करके हृत्पद्म पूर्वादि केशरसमूह में मध्य में भुवनेश्वरी पीठशक्ति, पीठमन्त्र का न्यास करना होगा। यथा—ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ अजितायै नमः, ॐ अपराजितायै नमः, ॐ नित्यायै नमः, ॐ विलासिन्यै नमः, दोग्ध्र्यै नमः, ॐ अघोरायै नमः, ॐ मङ्गलायै नमः। कर्णिका में—ॐ ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः। इस प्रकार पीठशक्ति का न्यास करके ऋष्यादि न्यास करे। यथा—श्रीअन्नपूर्णा-मन्त्रस्य ब्रह्मार्त्रृषिः पङ्क्तिश्छन्दः अन्नपूर्णा देवता ह्रीं बीजं स्वाहा शक्तिः अन्नप्रदाने विनियोगः। इस प्रकार विनियोग करके निम्न निर्दिष्ट तत्तत् अंगों में इस प्रकार न्यास करे—मस्तक पर—ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुख में—ॐ पङ्क्तिच्छन्दसे नमः, हृदय में—ॐ अन्नपूर्णायै देवतायै नमः, गुह्य में—ॐ ह्रीं बीजाय नमः, पादद्वय में—ॐ स्वाहा शक्तये नमः।।९।।

कल्पे—

एतेषां मन्त्रराशीनां ऋषिर्ब्रह्माभिधीयते।
पङ्क्तिश्छन्दः समाख्यातं देवता चान्नपूर्णिका ।।१०।।

ततोऽविकृतेनाद्यबीजेनैव कराङ्गन्यासौ कुर्यात्। ह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादिना। यथा निबन्धे—

अङ्गानि मायया कुर्यात् ततो देवीं विचिन्तयेत् ।।११।।

कल्पे च—

यद्बीजाद्या भवेद्विद्या तद्बीजेनाङ्गकल्पना ।।१२।।

कल्प में कहा गया है कि इसके ऋषि ब्रह्मा हैं। छन्द पंक्ति तथा देवता अन्नपूर्णा हैं। अतएव अविकृत आद्यबीज 'ह्रीं' द्वारा कराङ्गन्यास करे। यथा—ॐ ह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि। इस प्रकार ॐ ह्रीं हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा इत्यादि। जैसे निबन्ध में कहा गया है कि मायाबीज से अंगन्यास करना चाहिये। तदनन्तर देवी का ध्यान करे। इस विद्या में जो बीज आदि में (प्रारम्भ में) लगाया जाये उसी से अंगन्यास करे।।१०-१२।।

विशेष—राघवभट्ट ने यहाँ पर ऋष्यादि न्यास में इस मन्त्र को अनुष्टुप् छन्द कहा है, जबकि इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार द्वारा तथा तन्त्रसार में इसे पंक्ति छन्द तथा इसका कराङ्गन्यास अविकृत 'ह्रीं' बीज द्वारा करने के लिये कहा गया है। राघवभट्ट ने षट्दीर्घ स्वर युक्त 'ह्रीं' बीज से अंगन्यास कहा है। अन्नपूर्णादि के मन्त्र में जब जो बीज आदि में हो, तब उसी बीज द्वारा कराङ्गन्यास करना चाहिये। तदनन्तर व्यापक न्यास करके इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

रक्तवर्णा विचित्र परिधान वाली, नवचन्द्र युक्त मुकुटधारिणी, अन्न देने में निरत, स्तनभार से झुकी तथा चन्द्रकलायुक्त शिव को नृत्य करते देखकर प्रसन्ना, जगत् का दु:खापहरण करने वाली भगवती अन्नपूर्णा की आराधना करता हूँ।

एवञ्च वामहस्ते सुवर्णमयमन्नपूर्णपात्रं कृत्वा दक्षिणहस्तेन रत्नमयहस्तया अन्नं क्षिपन्तीत्यर्थः॥१३॥

इस प्रकार ध्यान करके यह भावना करे कि वाम हाथ में सुवर्णमय अन्नपूर्णा पात्र धारण किये हुये भगवती रत्नमय अपने दाहिने हाथ द्वारा अन्न-वितरण कर रही हैं।।१३।।

इति ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य सामान्यपूजापद्धत्युक्तरीत्यार्घ्यस्थापनपीठपूजां विधाय भुवनेश्वरीमन्त्रोक्तजयादिपीठमन्वन्तां पूजां विधाय पुनर्ध्यात्वा-वाह्नादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत्। यथा अग्न्यादि-कोणकेशरेषु मध्ये दिक्षु च ह्रीं हृदयाय नमः इत्यादिना च षड़ङ्गेन सम्पूज्या-ष्टदलेषु पूर्वादिक्रमेण ॐ ब्राह्म्यै नमः एवं माहेश्वर्यै, कौमार्यै, वैष्णव्यै, वाराह्यै, इन्द्राण्यै, चामुण्डायै, महालक्ष्म्यै पूजयेत्। तत्रैव—

दलेषु पूजयेदेताः ब्राह्मयाद्याः क्रमतः सुधीः ॥१४॥ इति।

यह ध्यान, मानस उपचार, विशेषार्घ्य स्थापन (सामान्य पद्धति से), पीठपूजा, पूर्वकथित भुवनेश्वरी मन्त्रोक्त विधि से जयादि देवियों के पीठमन्त्रों से पीठपूजा करके, पुन: ध्यान-आवाहनादि करके, पञ्चपुष्पाञ्जलि निवेदन-पर्यन्त पूजन विधान सम्पन्न करने के अनन्तर आवरण पूजन करे। जैसे अग्न्यादि कोण के केशर के मध्य में तथा दिक्समूह में 'ॐ ह्रीं हृदयाय नम:' आदि से षडङ्ग पूजन निष्पन्न करके अष्टदल में पूर्व दिशाक्रम से ॐ ह्रीं क्षां ब्राह्म्यै नम:, इसी प्रकार से माहेश्वर्यै, कौमार्यै, वैष्णव्यै, वाराह्यै, इन्द्राण्यै, चामुण्डायै, महालक्ष्म्यै नम: मन्त्र से पूजा करना चाहिये। जैसा कि कल्प में कहा है कि सुधी साधक दल के पद्मसमूह में क्रमश: इन ब्राह्मी प्रभृति का पूजन करे।।१४।।

तत इन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादि विसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्य पुरश्चरणं षोडशसहस्रजपः। तथा च—

यथाविधि जपेन्मन्त्रं वसुयुग्मसहस्रकम्।
साज्येनान्नेन जुहुयात् तद्दशांशमनन्तरम्॥१५॥

तत्पश्चात् इन्द्रादि लोकपाल तथा उनके अस्त्रसमूह का पूजन सम्पन्न करके धूपदान से लेकर विसर्जन-पर्यन्त का विधान सम्पन्न करे। मन्त्र का पुरश्चरण १६००० जप है। शारदातिलक में कहा है कि यथाविधि आठ जोड़ा (१६) सहस्र अर्थात् १६००० जप करे, तब पुरश्चरण होता है। तत्पश्चात् घृत में लिपटे अन्न द्वारा १६०० होम करे।।१५।।

अथ मन्त्रान्तरम्; तथा च—

माया पद्मावति स्वाहा सप्ताणोंऽयं मनुः स्मृतः।
न्यासपूजादिकं सर्वं पूर्ववत् समुपाचरेत्॥१६॥

अब अन्नपूर्णा का मन्त्रान्तर कहते हैं। माया (ह्रीं) पद्मावति स्वाहा अर्थात् 'ह्रीं पद्मावति स्वाहा' यह सप्ताक्षर मन्त्र कहा गया है। इसका न्यास पूजनादि सब पूर्वोक्त अन्नपूर्णा मन्त्रवत् (अनुष्ठान में) करना चाहिये।।१६।।

तेन ह्रीं पद्मावत्यै स्वाहेति मन्त्रः॥१७॥

इससे 'ह्रीं पद्मावत्यै स्वाहा' यह मन्त्रोद्धार होता है।।१७।।

विशेष—इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने पद्मावती मन्त्र का विधान अन्नपूर्णा मन्त्रवत् बतलाया है। शारदातिलक में भी ऐसा ही कहा गया है। केवल शारदातिलक में इसका पुरश्चरण ५ लाख जप तथा ५००० होम घृत से करने का विधान कहा है।

इत्यन्नपूर्णाप्रकरणम्

अथ त्रिपुटा

श्रीमायामदनैः प्रोक्तो मन्त्रो बीजत्रयात्मकः।
पदादिर्वा भवेद्देवि! कामादिर्वा भवेदयम्॥१८॥

अब त्रिपुटामन्त्र कहते हैं। श्रीबीज (श्रीं) मायाबीज (ह्रीं) मदनबीज (क्लीं) द्वारा बीजत्रयात्मक त्रिपुटामन्त्र कहा गया है। हे देवि! यह मन्त्र पराबीजादि अर्थात् मन्त्र के पूर्व (ह्रीं) बीज का भी हो सकता है अथवा (क्लीं) कामबीज प्रारम्भ में लगाकर भी हो सकता है।।१८।।

तेन श्रीबीजं मायाबीजं कामबीजमिति त्र्यक्षरः। परा भुवनेशी माया रमा काम इति। कामादिरिति। तेन कामबीजं रमाबीजं मायाबीजमिति त्रिधायं मन्त्रः॥१९॥

इस प्रकार श्रीं, ह्रीं तथा क्लीं रूप यह तीन अक्षर का मन्त्र है। अत: त्रिपुटा का तीन प्रकार का मन्त्र होता है।।१९।।

एतेषां पूजा—प्रातःकृत्यादि पीठन्यासान्तं कर्म कृत्वा भुवनेश्वरीमन्त्रोक्त-जयादिपीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। शिरसि—सम्मोहनाय ऋषये नमः। मुखे—गायत्रीछन्दसे नमः। हृदि—त्रिपुटायै देवतायै नमः॥२०॥

पूजापद्धति कहते हैं। प्रात:कृत्य से पीठन्यास-पर्यन्त कर्म करके भुवनेश्वरी

प्रकरण में कहे गये जयादि शक्तियों के पीठमन्त्र-पर्यन्त पीठशक्ति तथा पीठमन्त्र का न्यास करके ऋष्यादि न्यास करे। यथा—अस्य श्रीत्रिपुटामन्त्रस्य सम्मोहन ऋषि: श्री त्रिपुटा देवता श्रीं बीजं क्लीं शक्ति: ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे विनियोग:। मस्तके—ॐ सम्मोहनाय ऋषये नम:। मुखे—ॐ गायत्रीछन्दसे नम:। हृदये—ॐ त्रिपुटादेवतायै नम:। गुह्ये—ॐ श्रीं बीजाय नम:। पादद्वये—ॐ क्लीं शक्तये नम:।।२०।।

निबन्धे—

ऋषि: सम्मोहनश्छन्दो गायत्री देवता स्मृता।
त्रिपुटाख्या द्विरुक्तैस्तैर्बीजैरङ्गानि षट् क्रमात् ॥२१॥

निबन्ध में कहा है—इस मन्त्र के ऋषि हैं सम्मोहन, गायत्री छन्द है एवं त्रिपुटनाम्नी देवता है। द्विरुक्त इस बीज द्वारा यथाक्रमेण छ: अंग का न्यास करे।।२१।।

अथ कराङ्गन्यासौ। श्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नम:। ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, क्लीं मध्यमाभ्यां वषट्। पुनस्तथैव त्रयम्। एवमङ्गन्यास:। तथाच निबन्धे द्विरुक्तै-स्तैरित्युक्तम्॥२२॥

ऋष्यादि न्यास के अनन्तर कराङ्गन्यास करे—ॐ श्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नम:, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां वषट्। पुन: इसी प्रकार तीन। यथा—ॐ श्रीं अनामिकाभ्यां हुं, ॐ ह्रीं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ क्लीं करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। इसी प्रकार अंगन्यास करना होगा। जैसे—ॐ श्रीं हृदयाय नम:, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्लीं शिखायै वषट्, ॐ श्रीं कवचाय हुं, ॐ ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ क्लीं करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। यही शारदातिलक ग्रन्थ में द्विरुक्त का अभिप्राय है अर्थात् उसे पुन: दोहराये।।२२।।

ततो ध्यानम्—

पारिजातवने रम्ये मण्डपे मणिकुट्टिमे।
रत्नसिंहासने रम्ये पद्मे षट्कोणशोभिते।
अधस्तात् कल्पवृक्षस्य निषण्णां देवतां स्मरेत् ॥२३॥
चापं पाशाम्बुजसरसिजान्यङ्कुशं पुष्पबाणान्
संबिभ्राणां करसरसिजै रत्नमौलिं त्रिनेत्राम्।
हेमाब्जाभ्यां कुचभरनतां रत्नमञ्जीरकाञ्चीं,
ग्रैवेयाद्यैर्विलसिततनुं भावयेच्छक्तिमाद्याम् ॥२४॥
कारुण्यामृतवर्षिण्या पश्यन्तीं साधकं दृशा ॥२५॥

पारिजात वन में स्थित मनोहर मण्डप में कल्पवृक्ष के नीचे मणिजटित रत्नसिंहासन

पर षट्कोण में शोभित सुन्दर कमल पर बैठी त्रिपुरा देवी का ध्यान करे। उन्होंने अपने छः हाथों में ईख से बना धनुष, पाश, दो कमल, अंकुश तथा पञ्च पुष्पबाण धारण किया है। मस्तक पर रत्नजटित मुकुट है। वे त्रिनेत्रा हैं। उनकी वर्णप्रभा स्वर्ण कमल के समान है। स्तनभार से वे किंचित् झुकी हुई हैं। रत्नमय नूपुर, चन्द्रहार तथा कण्ठभूषणों से शोभित शरीर वाली आद्या शक्ति की हम भावना करते हैं।

चामर, दर्पण, ताम्बूल, करण्ड, गन्धादि स्थापना वाला पात्र-वहनकारिणी, स्तनभार से दबी हुई, सौम्यादि चतुर्दलस्था घृणिनी, सूर्या, आदित्या, प्रभावती, दूतियों से घिरी हुई, करुणारूप अमृतवर्षिणी चक्षुओं से साधकों को देखती हुई उन आद्या शक्ति की भावना करता हूँ।।२३-२५।।

अम्बुजं पद्मं न तु शङ्खं, दधती पद्मयुगलमिति दक्षिणामूर्त्तिवचनात्। तेन वामहस्तत्रये ऊर्ध्वतश्चापादित्रयं दक्षिणहस्तत्रये अधस्तः सरसिजम्, अङ्कुशं पुष्पबाणपञ्चकञ्च विभ्राणामित्यर्थः। इयं षड्भुजा। करण्ड साजी इति ख्यातः॥२६॥

'दधती पद्मयुगलम्' अर्थात् पद्मद्वय धारणकारिणी। इस प्रकार के दक्षिणामूर्त्ति संहिता के वचन से ज्ञात होता है कि ध्यान श्लोक में कहा गया अम्बुज शब्द का अर्थ पद्म है, शङ्ख नहीं है। वह है—हस्तों में स्थित इक्षुधनुष, पाश तथा कमल। यह देवी छः भुजाओं से युक्त है।।२६।।

एवं ध्यात्वा मानसपूजार्घ्यस्थापनसामान्यपूजापद्धत्युक्तपीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वावाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलिपर्यन्तं विधायावरणपूजां कुर्यात्। यथा अग्न्यादिषट्कोणेषु ॐ लक्ष्म्यै नमः। एवं हरये, गौर्यै, शिवाय, रत्यै, कामाय॥२७॥

इस प्रकार से ध्यान करके मानस पूजा, विशेषार्घ्य स्थापन, सामान्य पूजा पद्धति के अनुसार पीठपूजा करके, केशरसमूह में भुवनेश्वरी प्रकरणोक्त जयादि पीठशक्ति तथा पीठमन्त्र का पूजन करके पुनः ध्यान आवाहन से लेकर पञ्चपुष्पाञ्जलि दान-पर्यन्त विधान सम्पन्न करके आवरण पूजन करना चाहिये। यथा आग्नेयादि छः कोणों में—ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ हरये नमः, ॐ गौर्यै नमः, ॐ शिवाय नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ कामाय नमः मन्त्र से पूजा करे।।२७।।

अग्न्यादिषट्सु कोणेषु लक्ष्म्याद्याः पूजयेद् ध्रुवम्।
लक्ष्मीं हेमप्रभां तन्वीं सवराजयुगाभयाम्॥२८॥
शङ्खचक्रगदाम्भोजधरं हेमनिभं हरिम्।
पाशाङ्कुशाभयाभीष्टधरां गौरीं जवारुणाम्॥२९॥

मृगटङ्काभयाभीष्टधरं स्वर्णनिभं हरम्।
नीलोत्पलकरां सौम्यां रतिं काञ्चनसन्निभाम्।
धृतपाशङ्कुशेष्वासं पुष्पेषुमरुणं स्मरम्॥३०॥

आग्नेयादि छ: कोणों में वक्ष्यमाण लक्ष्मी प्रभृति की पूजा करे। आग्नेय कोण में हेमवर्णा तन्वी, वरमुद्रा, दो पद्म तथा अभय मुद्राधारिणी लक्ष्मी का पूजन करे। नैर्ऋत्य कोण में शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्मधारी हरि की पूजा करे। पश्चिम कोण में जवापुष्प के समान रक्तवर्ण पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्राधारिणी गौरी का पूजन करे। वायुकोण में मृग, टङ्क, परशु तथा अभय एवं वरमुद्राधारी स्वर्णवर्ण हर का पूजन करना चाहिये। ईशान कोण में नीलकमल-धारिणी, स्वर्णवर्णा सौम्या रति का पूजन करे। पूर्वकोण में पाश, अंकुश, धनु: तथा पुष्पबाणधारी रक्तवर्ण कामदेव की पूजा करे।

षट्कोणस्योभयतः शङ्खनिधये, पद्मनिधये, अग्न्यादिकोणे केशरेषु मध्ये दिक्षु च श्रीं हृदयाय नमः इत्यादिना षडङ्गेन पूजयेत्। ततः पत्रेषु ब्राह्म्याद्या मातरः पूज्याः ब्राह्मी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराहीन्द्राणी चामुण्डा महालक्ष्म्यः। तद्बहिरिन्द्रादीन् पूजयेत्॥३१॥

षट्कोण के पार्श्वद्वय में ॐ शङ्खनिधये नम: तथा ॐ पद्मनिधये नम: मन्त्र से पूर्ववत् पूजन करे। केशर के आग्नेयादि कोण में मध्य में तथा दिक् समूह में यथाक्रम से ॐ श्रीं हृदयाय नम: इत्यादि मन्त्र से छ: अंगदेवता की पूजा करे। तदनन्तर पत्रों में ब्राह्मी आदि मातृगण का पूजन करना चाहिये। जैसे—ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा एवं महालक्ष्मी का पूजन करे। उसके बाहर लोकपालगण की पूजा करे।।३१।।

निबन्धे—

लोकेशान् वनितारूपानर्चयेत् सौम्यविग्रहान्।
ततो धूपादि विसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः॥३२॥

जैसा निबन्ध में कहा है कि पुरश्चरण में १२ लाख जप करे। जप के अन्त में त्रिमधुर में विल्ब तथा आरग्वध (सोनालू) से उत्पन्न उत्तम समिधा द्वारा अथवा मधुराक्त (त्रिमधुराक्त) जवा पुष्पों से १२००० होम करे। धन से गुरु को सन्तुष्ट करे।।३२।।

यथा—

भानुलक्षं जपेदेनं मनुं तावत् सहस्रकम्।
बिल्वारग्वधसम्भूतैर्मधुराक्तैः समिद्वरैः।
जवापुष्पैश्च जुहुयात् तोषयेद् वसुना गुरुम्॥३३॥

आरग्वधः सोनालूरिति ख्यातः।

पुरश्चरण में यह मन्त्र १२ लाख जप करे। जपान्त में त्रिमधुराक्त बिल्व तथा आरग्वध की समिधा द्वारा मधुराक्त जपापुष्पों द्वारा १२००० होम के अनन्तर धन द्वारा गुरु को सन्तुष्ट करे। आरग्वध को सोनालू कहा जाता है।।३३।।

त्रयाणां मन्त्राणां मध्ये यस्यादौ यद्बीजं तदादिबीजत्रिकोणद्विरुक्तेन कराङ्गन्यासौ तत्र कार्यौ।।३४।।

इन तीन मन्त्रों में जिस मन्त्र के आदि में जो बीज है, उस आदिबीज को द्विरुक्त करके द्विरुक्त त्रिकोण अर्थात् षट्कोण में कराङ्गन्यास करे।।३४।।

इति त्रिपुटाप्रकरणम्

●

अथ त्वरिता

अथाभिधास्ये त्वरितां त्वरितं फलदायिनीम्।
तारो माया वर्मबीजं ऋद्धिरीशस्वरान्विता ।।३५।।
कूर्मस्तदन्त्यो भगवान् क्षः स्त्रीदीर्घतनुच्छदम्।
संवर्त्तो भगवान् माया फड़न्तो द्वादशाक्षरः ।।३६।।

अब त्वरितामन्त्र कहा है। अब त्वरित फलदायिनी त्वरिता का मन्त्र कहा जाता है। प्रथमत: तार (ॐ) मायाबीज (ह्रीं) वर्मबीज (हुं) ईशस्वर (एकादशस्वर ए) युक्त ऋद्धि (ख) अर्थात् 'खे' अनन्तर कूर्म (च), भगवान् (एकारयुक्त) तदन्त्य (उस चकार का परवर्त्ती वर्ण छ अर्थात् 'छे' उसके पश्चात् क्षः स्त्री तथा दीर्घतनुच्छद (ह्रं) तदनन्तर भगवान् (एकारयुक्त) संवर्त्त (क्ष) अर्थात् 'क्षे'। इसके अनन्तर फट् अन्त् अर्थात् ह्रीं फट्। यह त्वरिता का १२ अक्षरों वाला मन्त्र है।।३५-३६।।

तारः प्रणवः, माया भुवनेशी, वर्मबीजं पञ्चमस्वरबिन्दुमान् हकारः न तु कूर्चं, सामान्यनिर्देशात्। अतएव परार्द्धे कूर्चबीजप्रतिपत्तये दीर्घतनुच्छद-मित्यत्र प्रयुक्तम्। ऋद्धिः खकारः। ईशस्वर एकारः। कूर्मश्चकारः। तदन्त्य-श्छकारः। भग एकारः तद्वान्।क्षः स्त्री स्वरूपम्। दीर्घतनुच्छदं षष्टस्वर-बिन्दुमान् हकारः। संवर्त्तः क्षकारः। भग एकारस्तद्वान्। तेन ॐ ह्रीं हूं खे च छे क्षः स्त्री हुं क्षे ह्रीं फट् इति मन्त्रः।।३७।।

तार—प्रणव। माया—भुवनेशी (ह्रीं) वर्मबीज पञ्चम स्वर तथा विन्दुयुक्त हकार (हूं) किन्तु कूर्च बीज (हुं) नहीं है। इसलिये इसके परार्द्ध में कूर्चबीज बोधार्थ

दीर्घतनुच्छद प्रयुक्त होता है। ऋद्धि—खकार। ईशस्वर—एकार। कूर्म—चकार। तदन्त्य—हकार। भग—एकार तद्वान् अर्थात् एकारयुक्त। क्षः स्त्री यह दो स्वरूप अर्थात् अविकल यह दो वर्ण। दीर्घतनुच्छद षष्टस्वर दीर्घ ऊकार तथा बिन्दुयुक्त हकार। सम्वर्त—क्षकार। भग—एकार तद्वान्। इससे त्वरिता का ॐ ह्रीं हूं खे च छे क्षः स्त्रीं हुं क्षे ह्रीं फट्—यह द्वादशाक्षर मन्त्र है।।३७।।

अस्य पूजा—प्रातःकृत्यादि पीठन्यासान्तं कर्म कृत्वा केशरेषु भुवनेश्वरी-मन्त्रोक्तजयादिपीठशक्तिर्विन्यस्य मध्ये क्षं हूं हं वज्रदेह पुरु पुरु हिङ्गुलु हिङ्गुलु गर्ज गर्ज हं हूं क्षां पञ्चाननाय नमः इति मन्त्रं न्यसेत्॥३८॥

पूजापद्धति—प्रातःकृत्य से लेकर पीठन्यास-पर्यन्त कर्म करके केशरसमूह में पूर्ववत् भुवनेश्वरी मन्त्रोक्त जयादि पीठशक्ति का न्यास करके मध्य में 'क्षं हूं हं वज्रदेह पुरु पुरु हिङ्गुलु हिङ्गुलु गर्ज गर्ज हं हूं क्षां पञ्चाननाय नमः' इस मन्त्र से पीठ मन्त्र का न्यास करना चाहिये।।३८।।

तत ऋष्यादिन्यासः। अस्य त्वरितामन्त्रस्य अजुनऋषिर्विराट् छन्दस्त्वरिता देवता पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थे विनियोगः। शिरसि अर्जुनऋषये नमः। मुखे विराट्छन्दसे नमः। हृदि त्वरितायै देवतायै नमः॥३९॥

अब ऋष्यादि न्यास कहते हैं। जैसे—अस्य त्वरितामन्त्रस्य अर्जुन ऋषिर्विराट् छन्दः त्वरिता देवता प्रणवो बीजं माया शक्तिः पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थे विनियोगः। विनियोग के अनन्तर इस प्रकार न्यास करे—मस्तक पर—ॐ अर्जुन ऋषये नमः। मुख में—ॐ विराट् छन्दसे नमः। हृदय में—ॐ त्वरितायै देवतायै नमः। गुह्य में—ॐ ॐकारबीजाय नमः। पादद्वय में—ॐ स्वाहा शक्तये नमः।।३९।।

ततो मन्त्रन्यासः। मूर्ध्नि ॐ नमः। भाले हूं नमः। गले खे नमः। हृदि च नमः। नाभौ छे नमः। गुह्ये क्षं नमः। ऊर्वोः स्त्रीं नमः। जानुनोः हुं नमः। जङ्घयोः क्षे नमः। पादयोः फट् नमः। ततो मूलेन व्यापकं कुर्यात्॥४०॥

अब मन्त्रन्यास कहते हैं। जैसे—मस्तक—ॐ नमः। भाल—हूं नमः। गला—खे नमः। हृदय—च नमः। नाभि—छे नमः। गुह्य—क्षः नमः। उरुद्वय—स्त्रीं नमः। जानुद्वय—हुं नमः। जङ्घाद्वय—क्षे नमः। पादद्वय—फट् नमः। तदनन्तर मूल द्वारा व्यापक न्यास करे।।४०।।

मायाविवर्जितान् वर्णान् मूर्ध्नि भाले गले हृदि।

नाभिगुह्योरूयुग्मेषु जानुजङ्घापदेषु च ।
विन्यस्य व्यापकं कुर्यात् समस्तेनैव साधकः ।।४१।।

साधक इस मन्त्र के मायारहित (मायाबीजरहित) मन्त्र वर्णों को एक-एक करके मस्तक, ललाट, गला, हृदय, नाभि, गुह्य, ऊरुद्वय, जानुद्वय, जङ्घाद्वय तथा पादद्वय में न्यास करके समस्त मन्त्रों द्वारा व्यापक न्यास करे।।४१।।

ततः कराङ्गन्यासौ—च छे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। छे क्ष तर्जनीभ्यां स्वाहा। क्षः स्त्री मध्यमाभ्यां वषट्। स्त्री हूं अनामिकाभ्यां हुं। हूं क्षे कनिष्ठाभ्यां वौषट्। क्षे फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु।।४२।।

अब कराङ्ग न्यास करे। जैसे—ॐ च छे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ छे क्षः तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ क्षः स्त्री मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ स्त्री हुं अनामिकाभ्यां हुं। ॐ हुं क्षे कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ क्षे फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

हृदयादि न्यास इन मन्त्रों से करे—ॐ च छे हृदयाय नमः। ॐ छे क्षः शिरसे स्वाहा। ॐ क्षः स्त्री शिखायै वषट्। ॐ स्त्री हुं कवचाय हुं। ॐ हुं क्षे नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ क्षे फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।।४२।।

यथा निबन्धे—

कूर्माद्यैः सप्तभिर्वर्णैः पूर्वपूर्ववियोजितैः ।
द्वाभ्यां द्वाभ्यां षडङ्गानि कुर्यात् साधकसत्तमः ।।४३।।

अत्रापि मायावर्जनम्।

निबन्ध में कहा है—साधकश्रेष्ठ इस मन्त्र को मायारहित (मायाबीज से रहित) तथा कूर्म (च) को पहले रखकर 'खे' प्रभृति सात वर्णों का पूर्व-पूर्व एक-एक वर्ण का परित्याग करके दो-दो वर्ण द्वारा छः अंग का न्यास करे। यहाँ कराङ्गन्यास में मायाबीज ह्रीं का वर्जन करे।।४३।।

ततो ध्यानम्—

श्यामां बर्हिकलापशेखरयुतामाबद्धपर्णांशुकां
गुञ्जाहारलसत् पयोधरभरामष्टाहिपान् बिभ्रतीम् ।
ताटङ्काङ्गदमेखलागुणरणन्मञ्जीरतां प्रापिताम्
कैरातीं वरदाभयोद्यतकरां देवीं त्रिनेत्रां भजे ।।४४।।

श्यामवर्णा, मयूरपुच्छ-रहित मुकुटधारिणी, पर्णरचित वस्त्र पहनने वाली, गुञ्जाहार-मण्डित स्तनद्वय धारिणी, कर्णभूषण, बाजूबन्द, चन्द्रहार तथा झुन-झुन शव्दकारी नूपुर

के समान अष्टसर्पेन्द्रधारी अर्थात् कानों में ताटंकरूप अनन्त तथा कुलिक सर्प को, बाहु में अंगदरूप वासुकी तथा शङ्खपाल नाग को धारण करने वाली, कमर में चन्द्रहाररूप तक्षक तथा महापद्म नाग को धारण करने वाली, पादद्वय में नूपुररूप कर्कोटक तथा पद्मनाग को धारण करने वाली किरातरूपिणी, वरमुद्रा तथा अभयमुद्रा-धारिणी त्रिनयना त्वरिता देवी की आराधना करता हूँ।।४४।।

इति ध्यात्वा मानसपूजार्घ्यस्थापनसामान्यपूजापद्धत्युक्तपीठपूजान्ते पद्मस्य केशरेषु पूर्वादितः जयां, विजयां, अजितां, अपराजितां, नित्यां, विलासिनीं, दोग्ध्रीं, अघोरां, मङ्गलां सम्पूज्य मध्ये क्षं हूं हं वज्रदेह पुरु पुरु हिङ्गुलु हिङ्गुलु गर्ज गर्ज क्षां पञ्चाननाय नमः इति सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वावाहनादि-पञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधाय अग्न्यादिकेशरेषु च छे गायत्र्यै हृदयाय नमः। छे क्षः गायत्र्यै शिरसे स्वाहा। क्षः स्त्री गायत्र्यै शिखायै वषट्। स्त्रीं हूं गायत्र्यै कवचाय हूं। हुं क्षे गायत्र्यै नेत्रत्रयाय वौषट्। दिक्षु क्षे फट् गायत्र्यै अस्त्राय फट्।

अङ्गैः प्रणीतां गायत्रीं केशरेष्वर्चयेत् क्रमात् ।।४५।।

इस प्रकार ध्यान, मानसोपचार पूजन, विशेषार्घ्य स्थापन, सामान्य पूजा पद्धति से पीठपूजा करके पद्म के केशरसमूह में पूर्वादि क्रम से जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा तथा मङ्गला की पूजा करके मध्य में 'ॐ क्षं हूं हं वज्रदेह पुरु पुरु हिङ्गुलु हिङ्गुलु गर्ज गर्ज हं हुं क्षां पञ्चाननाय नमः' मन्त्र से पीठमन्त्र की पूजा करके, पुनः ध्यान, आवाहन से लेकर पञ्चपुष्पाञ्जलिदान-पर्यन्त कर्म करके अग्न्यादि केशर समूह में ॐ च छे गायत्र्यै हृदयाय नमः, ॐ छे क्षः गायत्र्यै शिरसे स्वाहा, ॐ क्षः स्त्री गायत्र्यै शिखायै वषट्, ॐ स्त्री हुं गायत्र्यै कवचाय हुं, ॐ हुं क्षे नेत्रत्रयाय वौषट् एवं दिक् समूह में—ॐ क्षे फट् गायत्र्यैः अस्त्राय फट् मन्त्र से न्यास करे। जैसे—निबन्ध में कहा है कि केशर समूह में क्रम-क्रम से छः अंगों के साथ प्रणीता तथा गायत्री की अर्चना करनी चाहिये।।४५।।

पूर्वादिदलेषु श्रीं हुङ्कार्यै नमः। श्रीं खेचर्यै नमः। एवं चण्डायै, छेदिन्यै, क्षेपिन्यै, स्त्रियै, हुङ्कार्यै, क्षेमकार्यै। बहिरग्रतः फट् कार्ये द्वारस्योभयतः जयायै, क्षेपिन्यै, स्त्रियै, हुङ्कार्यै, क्षेमकार्यै। बहिरग्रतः फट्कार्यो द्वारस्यो-भयतः जयायै, विजयायै। तद्वाह्ये—किङ्कराय रक्ष रक्ष त्वरिताज्ञा स्थिरो भव हुं फट् इति मन्त्रेण किङ्करं पूजयेत्। तथा च निबन्धे—

द्वारस्य पार्श्वयोः पूज्ये हेमवेत्रकराम्बुजे ।
जयाख्या विजयाख्या च किङ्कराय पदस्ततः ।।४६।।

रक्ष रक्ष पदस्यान्ते त्वारिताज्ञा स्थिरो भव।
वर्मास्त्रान्तेन मनुना किङ्करं तद्बहिर्यजेत् ॥४७॥

पूर्वादि दलसमूह में ॐ श्रीं हुङ्कार्यै नमः, ॐ श्रीं खेचर्यै नमः, ॐ श्रीं चण्डायै नमः, ॐ श्रीं छेदिन्यै नमः, ॐ श्रीं क्षेपिन्यै नमः, ॐ श्रीं स्त्रियै नमः, ॐ श्रीं हुङ्कार्यै नमः, ॐ श्रीं क्षेमकार्यै नमः मन्त्र से हुंकारी प्रभृति मन्त्र वर्णों की शक्तियों की पूजा करनी चाहिये। दल के बाहर दोनों पार्श्व में ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः से इनकी पूजा करके द्वार के बाहरी भाग में ॐ किङ्कराय रक्ष रक्ष त्वरिताज्ञा स्थिरो भव हुं फट् मन्त्र से किङ्कर की पूजा करे। इसे ही निबन्ध में कहा गया है—द्वार के बाहरी पार्श्वद्वय के हस्तपद्म में हेममयी वज्रधारिणी जया तथा विजया की पूजा करनी चाहिये। द्वार के बाहरी भाग में ऊपर लिखे 'ॐ किङ्कराय' इत्यादि मन्त्र से देवी के भृत्यों की पूजा करे।

किङ्कर मन्त्र इस प्रकार है—'किङ्कराय' कहकर 'रक्ष रक्ष' के अन्त में 'त्वरिताज्ञा स्थिरो भव' कहे। इसके अन्त में वर्म (हुं) तथा अस्त्र (फट्) कहे। मन्त्रोद्धार है—किङ्कराय रक्ष रक्ष त्वरिताज्ञा स्थिरो भव हुं फट्।।४६-४७।।

लगुड़ं विभ्रतं कृष्णं कृष्णचर्चरमूर्द्धजम्।
आरण्यैररुणैः पुष्पैरतिरम्यैः सुगन्धिभिः।
पूजयेद् धूपदीपाद्यैर्नृत्यगीतमहोत्सवैः ॥४८॥

कृष्णवर्ण कुटिल केश वाले लाठीधारी इस किङ्कर की अतिरमणीय सुगन्ध वन में उत्पन्न रक्त पुष्पों से, धूप, दीप तथा नैवेद्य द्वारा एवं मनोरम नृत्यगीत के साथ पूजा करनी चाहिये।।४८।।

अत्रेन्द्रादिपूजा नास्ति अनुक्तत्वात्। ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः॥४९॥

इस मन्त्र की पूजा में इन्द्रादि लोकपाल तथा वज्रादि अस्त्रों की पूजा का उल्लेख नहीं है। तदनन्तर धूपदान से लेकर विसर्जन-पर्यन्त कर्मसमूह शेष करे। मन्त्र का पुरश्चरण एक लाख जप है।।४९।।

यथा—

लक्षं सञ्जप्य मन्त्रज्ञो मन्त्रमेनं जितेन्द्रियः।
दशांशं जुहुयाद् वैल्वैस्त्रिमध्वक्तैः समिद्वरैः ॥५०॥

जैसे—जितेन्द्रिय मन्त्री इस मन्त्र का एक लाख जप करके त्रिमधुर में बिल्व वृक्ष की समिधा लपेट कर १०००० जप करे।।५०।।

अस्य पूजायन्त्रं दक्षिणामूर्त्तौ—

अष्टपत्रं लिखेत् पद्मं बहिर्भूविम्बमालिखेत् ।
प्रत्येकं वसुपत्रेषु कवचं चाष्टधा लिखेत् ।
मध्ये तु भुवनेशानीं वेष्टयेन्मातृकाक्षरैः ॥५१॥

इस मन्त्र का पूजा यन्त्र दक्षिणामूर्त्ति संहिता में कहा गया है। पहले एक अष्टदल कमल बनाकर उसके बाहरी भाग में भूपुर बनाये। अष्टदल के प्रत्येक पत्र में कवचबीज (हुं) लिखे। मध्य में भुवनेशानी (ह्रीं) वीज लिखकर उसे मातृकावर्णों से घेरना होगा।।५१।।

इति त्वरिताप्रकरणम्

अथ नित्या

वाग्भवं मन्मथं बीजं नित्यक्लिन्ने मदौ पुनः ।
द्रव्ये वह्निवधू मन्त्रो द्वादशार्णोऽयमीरितः ॥५२॥

ऐं क्लीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहेति मन्त्रः।

अब नित्या प्रकरण कहते हैं। वाग्भव (ऐं) मन्मथबीज (क्लीं) नित्यक्लिन्ने और 'मद' तदनन्तर 'द्रवे' तथा वह्निवधू (स्वाहा) यह नित्या का १२ अक्षरों वाला मन्त्र कहा गया है।अतएव मन्त्रोद्धार होता है—ऐं क्लीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा।५२।।

अस्य पूजा—प्रातःकृत्यादि पीठन्यासन्तु कृत्वा केशरेषु मध्ये च पूर्वादितः जयादि ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः इत्यन्तं विन्यस्य ऋष्यादीन् न्यसेत्। सम्मोहनऋषिर्निवृत् छन्दः नित्या देवता। ततः कराङ्गन्यासौ—ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ऐं तजनीभ्यां स्वाहा इत्यादि वाग्बीजाद्येन। एवं हृदयादिषु॥५३॥

पूजा पद्धति—प्रातःकृत्य से पीठन्यास-पर्यन्त समस्त विधान करने के पश्चात् पूर्वादि दिक् क्रम से केशर में तथा मध्य में पूर्वोक्त जयादि पीठशक्तियों का न्यास करके 'ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' मन्त्र से पीठमन्त्र का न्यास करने के उपरान्त ऋष्यादि न्यास करना चाहिये। यथा—'अस्य नित्यामन्त्रस्य सम्मोहनऋषिर्निवृच्छन्दो नित्या देवता क्लीं बीजं स्वाहा शक्तिः ममाभीष्टसिद्धयर्थे पूजने विनियोगः। मस्तके—ॐ सम्मोहनाय ऋषये नमः। मुखे—ॐ निवृच्छन्दसे नमः। हृदये—ॐ नित्यायै देवतायै नमः। गुह्ये—ॐ क्लीं बीजाय नमः। पादद्वये—ॐ स्वाहा शक्तये नमः। अब कराङ्गन्यास कहते हैं—ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ऐ तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि। इसी

प्रकार से—ॐ ऐं हृदयाय नमः, ॐ ऐं शिरसे स्वाहा इत्यादि रूप से वाग्बीज को मन्त्र के प्रारम्भ में लगाकर न्यास करना चाहिये।।५३।।

अर्द्धेन्दुमौलिमरुणाममराभिवन्द्या-
मम्भोजपाशशृणिपूर्णकपालहस्ताम् ।
रक्ताङ्गरागवसनाभरणां त्रिनेत्रां
ध्यायेच्छिवस्य वनितां मदविह्वलाङ्गीम् ।।५४।।

अब ध्यान करना है—मस्तक पर अर्द्धचन्द्र को धारण करने वाली, अरुण वर्णा, देवगण द्वारा वन्दनीया, पद्म, पाश, अंकुश तथा सुरा से भरा नरकपाल धारण करने वाली, रक्त अङ्गराग, रक्तवर्ण वसन तथा आभरणों से आभूषित, त्रिनयना, मद से विह्वला शिवपत्नी नित्या का ध्यान करे।।५४।।

एवं ध्यात्वा मानसपूजार्घ्यस्थापनपीठपूजां विधाय केशरेषु जयादि पीठशक्तिर्मध्ये ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः इत्यन्तं सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वा-वाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायाग्न्यादिकोणचतुष्टये मध्ये दिक्षु च ऐं हृदयाय नमः इत्यादि षडङ्गैरभ्यर्च्याष्टदलेषु नित्यानिरञ्जनाक्लि-न्नाक्लेदिनीमदनातुरामदद्रवाद्राविणीद्रविणी सम्पूज्य तद्बाह्ये इन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कुर्यात्।।५५।।

इस प्रकार ध्यानोपरान्त मानसोपचार पूजन, विशेषार्घ्य स्थापन, पीठपूजा करके केशरसमूह में पूर्वोक्त जयादि पीठशक्ति का तथा मध्य में 'ॐ ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनाय नमः' मन्त्र से पीठमन्त्र का पूजन करके पुनः ध्यान, आवाहन, पञ्चपुष्पाञ्जलि निवेदन पर्यन्त का विधान सम्पन्न करना चाहिये। अब अग्न्यादि कोणचतुष्टय में, मध्य में तथा दिक्समूह में 'ॐ ऐं हृदयाय नमः' इत्यादि मन्त्र से (छः प्रकार के अंगमन्त्र से) षडङ्ग पूजनोपरान्त अष्टदल के प्रत्येक दल में यथाक्रम से (प्रदक्षिणक्रम से) ॐ नित्यायै नमः, ॐ निरञ्जनायै नमः, ॐ क्लिन्नायै नमः, ॐ क्लेदिन्यै नमः, ॐ मदनातुरायै नमः, ॐ मदद्रवायै नमः, ॐ द्राविण्यै नमः, ॐ द्रविण्यै नमः से पूजन करके दल के बाहर आयुध, वाहनादि के साथ इन्द्रादि लोकपालगण तथा वज्रादि अस्त्रों का पूजन करके धूपदान से विसर्जन-पर्यन्त समस्त विधान सम्पन्न करना चाहिये।।५५।।

निबन्धे—

चतुर्लक्षं जपित्वा तु मधुरात्तैर्मधूकजैः ।
कुसुमैरयुतं हुत्वा तोषयेद् गुरुमात्मनः ।।५६।।

निबन्ध में कहते हैं कि इसका पुरश्चरण ४ लाख जप तथा शहद से लिपटे मधूक पुष्प द्वारा १०००० होम करके अपने गुरु को सन्तुष्ट करने से सम्पन्न होता है।।५६।।

विशेष—शारदातिलक के दशम पटल में नित्या का १५ अक्षरों वाला अन्य मन्त्र भी कहा गया हैं।

इति नित्याप्रकरणम्

●

अथ वज्रप्रस्तारिणी

वाग्भवं माया नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्वाहा इति द्वादशाक्षरो मन्त्रः।।५७।।

अब वज्रप्रस्तारिणी प्रकरण कहते हैं। प्रथमतः (ऐं) वाग्भव (ह्रीं), माया तदनन्तर 'मदद्रवे स्वाहा' कहे। यह इनका १२ अक्षरों का मन्त्र है।।५७।।

तथा च—

वाङ्मायानन्तरं नित्यक्लिन्ने भूयो मदद्रवे! ।
द्विठान्तो रविसंख्यार्णो मन्त्रो वश्यप्रदायकः ।।५८।।

अन्यत्र कहा है कि वाग्बीज तथा मायाबीज के अनन्तर नित्यक्लिन्ने पुनः 'मदद्रवे' अब यह स्वाहान्त होगा। यह मन्त्र बारह अक्षरों का है और इसे वशीकरण-कारक कहा गया है।।५८।।

अस्य पूजायन्त्रं षट्कोणं द्वादशदलं चतुर्द्वारं चतुरस्रञ्च ।।५९।।

इस मन्त्र का पूजायन्त्र षट्कोण उसके बाहर द्वादशदल पद्म बनाकर चार द्वारों से युक्त करके चतुरस्र बनाये।।५९।।

पूजा तु प्रातःकृत्यादि पीठन्यासान्तं विधाय केशरेषु जयादिपीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। अङ्गिरा ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो वज्रप्रस्तारिणी देवता।।६०।।

पूजापद्धति—प्रातःकृत्य से लेकर पीठन्यास-पर्यन्त विधान सम्पन्न करके केशरसमूह में पूर्वोक्त जयादि पीठशक्ति तथा पीठमन्त्र का न्यास करके ऋष्यादि न्यास करना चाहिये। ऋष्यादिन्यास—अस्य वज्रप्रस्तारिणी मन्त्रस्य अङ्गिरा ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः वज्रप्रस्तारिणी देवता वाग्बीजं स्वाहा शक्तिः अभीष्टसिद्ध्यर्थे विनियोगः। मस्तके—ॐ अङ्गिरसे ऋषये नमः। मुखे—ॐ त्रिष्टुप् छन्दसे नमः। हृदये—ॐ वज्रप्रस्तारिणीदेवतायै नमः। गुह्ये—ॐ वाग्बीजाय नमः। पादद्वये—ॐ स्वाहा शक्तये नमः।।६०।।

ततः कराङ्गन्यासौ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ऐं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादिना वाग्भवाद्येन। एवं हृदयादिषु॥६१॥

अब कराङ्गन्यास करना होगा। यथा—ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ऐं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि। हृदयादि में—ॐ ऐं हृदयाय नमः, ॐ ऐं शिरसे स्वाहा इत्यादि।।६१।।

ततो ध्यानं—

रक्ताब्धौ रक्तपाते रविदलकमलाभ्यन्तरे षन्निषण्णां,
रक्ताङ्गीं रक्तमौलिस्फुरितशशिकलां स्मेरवक्त्रां त्रिनेत्राम्।
बीजापूरेषुपाशाङ्कुशमदनधनुःसङ्कपालानि हस्तै-
र्विभ्राणामानताङ्गीं स्तनभरनमितामन्विकामाश्रयाम॥६२॥

रक्तसमुद्र में रक्त नौका में द्वादशदल कमल में बैठी, रक्ताङ्गी, रक्तवर्ण मस्तक पर देदीप्यमान शशिकला से युक्त, तनिक हास्यमुखी, त्रिनयना, बाँयीं ओर के तीनों हाथों में पाश, ईख का धनुष, सत्कपाल-धारिणी, दाहिने तीनों हाथों में क्रमशः अंकुश, बाण तथा अनार धारण किये हुये, स्थूल स्तनों के भार से अवनता अम्बिका का आश्रय लेता हूँ।।६२।।

एवं ध्यात्वा मानसपूजार्घ्यस्थापनादि कृत्वा पूर्ववत् पीठपूजां कृत्वा पुनर्ध्यात्वावाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं कृत्वावरणानि पूजयेत्। यथा अग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु च ऐं हृदयाय नमः, इत्यादिनाभ्यर्च्य द्वादशदलेषु पूर्वादितः हृल्लेखां क्लेदिनीं क्लिन्नां क्षोभिणीं मदनातुरां निरञ्जनां रागवतीं मदनावतीं मेखलां द्राविणीं वेगवतीं स्मरां तद्बाह्ये ब्राह्म्याद्या मातरः, तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च पूजयित्वा धूपादिविसर्जनान्तं कुर्यात्। अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः। घृताक्तराजवृक्षसमिद्भिरयुतहोमः। राजवृक्षः सोनालूरिति ख्यातः॥६३॥

इस प्रकार ध्यान करके मानसोपचार द्वारा पूजा करके विशेषार्घ्य-स्थापन करके पूर्ववत् पीठपूजा करके पुनः ध्यान, आवाहन से लेकर पञ्चपुष्पाञ्जलि निवेदन-पर्यन्त कार्योपरान्त आवरण देवों का पूजन करना चाहिये। जैसे आग्नेयादि कोण तथा दिक् समूह में—ॐ ऐं हृदयाय नमः इत्यादि प्रकार से षडङ्ग मन्त्र से पूजा करके द्वादशदल में पूर्वदिशादि क्रम से ॐ हृल्लेखायै नमः, ॐ क्लेदिन्यै नमः, ॐ क्लिन्नायै नमः, ॐ क्षोभिण्यै नमः, ॐ मदनातुरायै नमः, ॐ निरञ्जनायै नमः, ॐ रागवत्यै नमः, ॐ स्मरायै नमः मन्त्र से हृल्लेखादि की पूजा करके उसके बाहर पूर्ववत् ब्राह्मी प्रभृति मातृगण का पूजन करके, दल के बाहर चतुरस्त्र के मध्य में इन्द्रादि लोकपाल तथा

वज्रादि अस्त्र का पूजन करके धूपदान से विसर्जनपर्यन्त समस्त कर्म करे। इस मन्त्र का पुरश्चरण एक लाख मन्त्र जप है। घृताक्त राजवृक्ष की श्रेष्ठ समिधा द्वारा १०००० होम करे। राजवृक्ष = सोनालू।।६३।।

इति वज्रप्रस्तारिणीप्रकरणम्

अथ शूलिनी

ज्वल ज्वल शूलिनि दुष्ट ग्रह हुं फट् स्वाहा ।।६४।।

अब शूलिनी का मन्त्र कहते है। मन्त्र हे—दुष्टग्रह हुं फट् स्वाहा।।६४।।

यथा निबन्धे—

ज्वल ज्वल पदस्यान्ते शूलिनीति पदं ततः ।
दुष्टग्रह! हुमस्त्रान्ते वह्निजायावधिर्मनूः ।।६५।।

जैसे निबन्ध में कहा है कि ज्वल ज्वल के अन्त में शूलिनि लगाये। आगे दुष्ट ग्रह हुं तथा अस्त्र (फट्) के अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) लगाये। यह मन्त्र है।।६५।।

अस्य पूजा—प्रातःकृत्यादि पीठन्यासान्तं दुर्गामन्त्रवत् कृत्वा ऋष्यादीन् न्यसेत्। अस्य दीर्घतपा ऋषि ककुप्छन्दः शूलिनी देवता।।६६।।

प्रातःकृत्य से पीठन्यास-पर्यन्त दुर्गामन्त्र के समान कर्म करके ऋष्यादि न्यास करे। यथा—अस्य शूलिनीमन्त्रस्य दीर्घतपा ऋषिः ककुप् छन्दः शूलिनी देवता हुं बीजं स्वाहा शक्तिः ग्रहादिदोषशान्त्यर्थे न्यासे विनियोगः।

मस्तके—ॐ दीर्घतपसे ऋषये नमः। मुखे—ककुप् छन्दसे नमः। हृदये—ॐ शूलिनी देवतायै नमः। गुह्ये—ॐ बीजाय नमः। पादद्वये—ॐ स्वाहा शक्तये नमः।।६६।।

ततः कराङ्गन्यासौ कुर्यात्। शूलिनि दुर्गे हुं फट् अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, शूलिनि वरदे हुं फट् तर्जनीभ्यां स्वाहा, शूलिनि विन्ध्यवासिनि हुं फट् मध्यमाभ्यां वषट्, शूलिनि असुरमर्दिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय हुं फट् अनामिकाभ्यां हुं, शूलिनि देवसिद्धप्रपूजिते नन्दिनि रक्ष रक्ष महायोगेश्वरि हुं फट् कनिष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु। अस्या न्यासोऽयं पञ्चाङ्गः।।६७।।

अब कराङ्गन्यास कहते हैं। ॐ शूलिनि दुर्गे हुं फट् अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ शूलिनि वरदे हुं फट् तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ शूलिनि विन्ध्यवासिनि हुं फट् मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ शूलिनि असुरमर्दिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय हु फट् अनामिकाभ्यां हुं, ॐ

शूलिनि देवसिद्धप्रपूजिते नन्दिनि रक्ष रक्ष महायोगेश्वरि हुं फट् कनिष्ठाभ्यां फट्। इसी प्रकार हृदयादि में—ॐ शूलिनि दुर्गे हुं फट् हृदयाय नमः, ॐ शूलिनि वरदे हुं फट् शिरसे स्वाहा, ॐ शूलिनि विन्ध्यवासिनि हुं फट् शिखायै वषट्, ॐ शूलिनि असुर-मर्दिनि युद्धप्रिये त्रासय त्रासय हुं फट् कवचाय हुं, ॐ शूलिनि देवसिद्धप्रपूजिते नन्दिनि रक्ष रक्ष महायोगेश्वरि हुं फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। इस प्रकार यह मन्त्र का पञ्चाङ्गन्यास कहा गया।।६७।।

ततो ध्यानम्—

अध्यारूढां मृगेन्द्रं सजलजलधरं श्यामलां हस्तपद्मैः
शूलं बाणं कृपाणं श्रृणिजलजगदा चापपाशान् वहन्तीम्।
चन्द्रोत्तंसां त्रिनेत्रां चतसृभिरसिना खेटकं विभ्रतीभिः
कन्याभिः सेव्यमानां प्रतिभटभयदां शूलिनीं भावयामि ॥६८॥

तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करना चाहिये--सिंह पर आसीन, सजल मेघ के समान श्याम वर्ण वाली, हाथों में शूल, बाण, कृपाण, चक्र, शङ्ख, गदा, चाप तथा पाश धारण करने वाली (इनके आठ हाथ हैं), चन्द्रयुक्त मुकुट धारण करने वाली, त्रिनयना, खेटक-धारिणी, जया, विजया, भद्रा तथा शूलकात्यायनी नामक चार कन्याओं द्वारा दोनों ओर से सेव्यमाना, शत्रुगण को भय प्रदान करने वाली शूलिनी का मैं ध्यान करता हूँ।।६८।।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्यार्घ्यं संस्थाप्य पूर्वोक्तपीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वावाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं कृतावरणानि पूजयेत्। यथा— अग्न्यादिकोणे मध्ये च पञ्चाङ्गानि पूजयेत्। ततः पत्रेषु पूर्वादितः दुर्गां वरदां विन्ध्यवासिनीं असुरमर्दिनीं युद्धप्रियां देवसिद्धप्रपूजितां नन्दिनीं महायोगेश्वरीं सम्पूज्य पत्राग्रेषु शङ्खाय चक्राय खड्गाय गदायै शराय चापाय शूलाय पाशाय इति तदस्त्राणि सम्पूज्य तद्बहिर्दिक्पालान् सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्य पुरश्चरणं पञ्चदशलक्षजपः। तथा च—

मनुमेनं जपेन्मन्त्री वर्णलक्षं विचक्षणः ॥६९॥

इस प्रकार ध्यान के अनन्तर मानसोपचार पूजन, विशेषार्घ्य स्थापन, दुर्गा के अष्टाक्षर मन्त्र में उक्त पीठपूजावत् पीठपूजा, पुनः ध्यान, आवाहन से लेकर पञ्चपुष्पाञ्जलि-दान पर्यन्त विधान करके आवरण देवता का पूजन करे। तदनन्तर केशरसमूह में, अग्न्यादि कोण में तथा मध्य में पाँच अंगदेवता का पूजन करे। तत्पश्चात् पत्र में

पूर्वादिक्रम से ॐ दुर्गायै नमः (इस प्रकार से नमः अन्त में लगाकर) ॐ दुर्गायै नमः, ॐ वरदायै नमः, ॐ विन्ध्यवासिन्यै नमः, ॐ असुरमर्दिन्यै नमः, ॐ युद्धप्रियायै नमः, ॐ देवसिद्ध्यै नमः, ॐ प्रपूजितायै नमः, ॐ नन्दिन्यै नमः, ॐ महायोगेश्वर्यै नमः से पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् पत्र के अग्रभाग में शूलिनी के अस्त्रों का पूजन करना होगा। जैसे—ॐ शङ्खाय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ खड्गाय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ शराय नमः, ॐ चापाय नमः, ॐ शूलाय नमः, ॐ पाशाय नमः से पूजा करके दल के बाहरी भाग में दिक्पाल तथा वज्रादि अस्त्रों की पूजा करके धूपादि दान से लेकर विसर्जनपर्यन्त का कार्य समाप्त करना होगा।।६९।।

सर्पिषान्नेन वा होमस्तद्दशांशमितो भवेत् ।।७०।।

इसका पुरश्चरण १५ लाख मन्त्र का जप है। जप का दशांश होम सरसों द्वारा अथवा अन्न द्वारा करना चाहिये।।७०।।

इति शूलिनीप्रकरणम्

अथ दुर्गा

ब्रह्मविष्णुशिरोरत्ननीराजितपदाम्बुजम् ।
वन्देऽहं जगतामाद्यां दुर्गां दुर्गतिहारिणीम् ।।१।।

ब्रह्मा तथा विष्णु अपने शिरोरत्न से जिनके पादद्वय की आरती करते रहते हैं, उन जगत् की आदि दुर्गतिनाशिनी दुर्गा की मैं आराधना करता हूँ।।१।।

विश्वसारे—

अथ दुर्गामनून् वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदान् ।
येन विज्ञानमात्रेण भवेद् गङ्गाधरः स्वयम् ।।२।।

विश्वसार तन्त्र में कहा है कि जिनके ज्ञानमात्र से साधक गंगाधर के समान हो जाता है, उन दृष्ट तथा अदृष्ट फलप्रद दुर्गा के मन्त्रों को कहता हूँ।।२।।

शारदायाम्—

अथ दुर्गामनुं वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदम् ।
मायाऽद्रिः कर्णविन्द्वाढ्यो भूयोऽसौ सर्गवान् भवेत् ।।३।।
पञ्चान्तकः प्रतिष्ठावान् मारुतो भौतिकासनः ।
तारादिहृदयान्तोऽयं मन्त्रो वस्वक्षरात्मकः ।।४।।

शारदातिलक में कहा है कि अब अदृष्ट तथा दृष्ट फल देने वाले दुर्गा का मन्त्र

कहा जाता है। माया (ह्रीं) कर्ण (उ) विन्दुयुक्त अद्रि (द) होता है 'दुं'। पुन: यह (दुं) सर्गवान (र) युक्त होगा अर्थात् 'दुर्' तत्पश्चात् पञ्चात्मक गकार प्रतिष्ठित (आ) युक्त हो। मरुत् यकार भौतिकासन अर्थात् भौतिक 'ऐ' में स्थित होगा। अतएव अब तक दुर्गायै का मन्त्रोद्धार होता है। उसके पूर्व आदि में ॐ तथा हृदयान्त (अन्त में नम:) लगाने से मन्त्रोद्धार होता है—ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नम:। यह दुर्गा का आठ अक्षरों का मन्त्र है।।३-४।।

अस्यार्थः—अद्रिर्दकारः। कर्णः पञ्चमस्वरः, सामान्यनिर्देशस्वरसात्। असौ कर्णाढ्योऽद्रिः। अत्र विसर्गनिर्देशाद् न विन्दुद्वयः सर्वनाम्नां बुद्धिस्थवाचकत्वात्। सर्गो विसर्गस्तद्वान्। तथाच विसर्गस्य रेफत्वमिति। पञ्चान्तको गकारः प्रतिष्ठा आकारः मारुतो यकारः भौतिक ऐकारः हृदयं नमः तेन ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नमः इति मन्त्रः।।५।।

इसका अर्थ कहते हैं—अद्रि = द। कर्ण पञ्चम स्वर = उ। असौ—यह कर्णयुक्त अद्रि अर्थात् 'दु' सर्वनाम शब्द बुद्धिगत अर्थ का वाचक होने के कारण यहाँ सर्ग (विसर्ग) का निर्देश है। अत: बिन्दु का अन्वय नहीं होगा अर्थात् असौ से यह सर्वनाम शब्द 'दु' को ही जानना होगा। 'दु' ही बुद्धिस्थ होगा। 'दुं' बुद्धि में उपस्थित नहीं होगा; क्योंकि युक्त वर्ण का प्रयोग विरल तथा अनुच्चार्य है।

सर्ग = विसर्ग। अत: विसर्ग रेफ होगा। पञ्चान्तक = 'ग'। प्रतिष्ठा—आ। मारुत् = य। भौतिक = ऐ। हृदय = नम:। अतएव मन्त्रोद्धार होता है—ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै नम:।।५।।

अस्या पूजाप्रयोगः—प्रातःकृत्यादि पीठन्यासान्तं कर्म विधाय केशरेषु मध्ये च पीठशक्तिर्न्यसेत्। यथा—आं प्रभायै नमः, एवं ईं मायायै नमः। उं मायायै नमः। ऐं सूक्ष्मायै नमः ऐं विशुद्धायै नमः, ओं नन्दिन्यै नमः, औं सुप्रभायै नमः, अं विजयायै नमः, अः सर्वसिद्धिदायै नमः, तदुपरि ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः इति न्यसेत्।।६।।

इस मन्त्र की तन्त्रोक्त पूजापद्धति कहते हैं। प्रात:कृत्य से पीठमन्त्र न्यास-पर्यन्त विधान सम्पन्न करके केशर में तथा केशर मध्य में पीठशक्तियों का न्यास करना चाहिये। यथा—ॐ आं प्रभायै नम:, ॐ ईं मायायै नम:, ॐ उं जयायै नम:, ॐ एं सूक्ष्मायै नम:, ॐ ऐं विशुद्धायै नम:, ॐ ओं नन्दिन्यै नम:, ॐ औं सुप्रभायै नम:, ॐ अं विजयायै नम:, ॐ अ: सर्वसिद्धिदायै नम:। उसके ऊपरी विभाग में ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नम:। इस प्रकार से पीठशक्ति न्यास करना होगा।।६।।

ततः ऋष्यादिन्यासः—शिरसि नारदऋषये नमः। मुखे—गायत्री छन्दसे नमः। हृदि—दुर्गायै देवतायै नमः॥७॥

अब ऋष्यादि न्यास बताते हैं; यथा—अस्य श्रीदुर्गामन्त्रस्य नारद ऋषिः गायत्री छन्दः दुर्गा देवता दुं बीजं ह्रीं शक्तिः दुरितापन्निवारणे विनियोगः। मस्तके—ॐ नारादाय ऋषये नमः। मुखे—ॐ गायत्री छन्दसे नमः। हृदये—ॐ दुर्गायै देवतायै नमः। गुह्ये—ॐ दुं बीजाय नमः। पादद्वये—ॐ ह्रीं शक्तये नमः।।७।।

यथा—

ऋषिः स्यान्नारदश्छन्दो गायत्री देवता मनोः।
दुर्गा समीरिता सद्भिर्दुरितापन्निवारिणी ॥८॥

जैसे शारदातिलक में कहा है कि इस मन्त्र के नारद ऋषि, गायत्री छन्द हैं। पण्डितों ने दुरित तथा आपत्ति-निवारिणी दुर्गा को इसका देवता कहा है।।८।।

ततः कराङ्गन्यासौ—ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। एवं मध्यादिषु। तथा—ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रीं शिरसे स्वाहा इत्यादिना हृदयादिषु च॥९॥

तदनन्तर कराङ्गन्यास करना होता है। यथा—ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। इसी प्रकार से ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रूं शिखायै वषट्। ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रैं कवचाय हुं। ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। इस प्रकार से हृदयादिन्यास करे।।९।।

तथा च निबन्धे—

नमस्कारवियुक्तेन मूलमन्त्रेण साधकः।
ह्रामाद्यैः सह कुर्वीत षडङ्गानि यथाविधि ॥१०॥

निवन्ध में कहा है साधक 'ह्रां ह्रीं' इत्यादि के द्वारा नमस्काररहित मन्त्र से (ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै मन्त्र से) यथाविधि शक्ति षडङ्ग मुद्रा से षडङ्गन्यास करे।।१०।।

विशेष—तन्त्रसार में ह्रां ह्रीं प्रभृति षट्दीर्घ को आगे देकर तब कराङ्गन्यास मन्त्र कहा गया है, जो प्रमादकृत है। राघव भट्ट ने 'तारो माया च दुर्गायै ह्रामाद्यन्ताऽङ्गकल्पना' कहा है। जो उचित है। उसी प्रकार इस ग्रन्थ आगमतत्त्वविलास में भी कहा गया है।

राघवभट्ट के अनुसार अंगन्यास है—'ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रीं शिरसे स्वाहा' इत्यादि।

ततो ध्यानम्—

सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्या चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुः शरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आयुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत् काञ्चीरूणन्नूपुरा,
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु ना रत्नोल्लसत् कुण्डला ॥११॥

तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—सिंह के ऊपर आसीना, चन्द्रयुक्त मुकुट-धारिणी, मरकत मणि के समान में शङ्ख, चक्र, धनुष तथा बाण धारण करने वाली, त्रिनेत्रधारिणी, मुक्तामण्डित भुजबन्द, हार, कङ्कण, शब्दायमान काञ्ची तथा शब्दायमान नूपुर-धारिणी, रत्नोज्ज्वल कुण्डल-धारिणी दुर्गा तुम सबकी दुर्गति का नाश करें।।११।।

एवं ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्यार्घ्यं संस्थाप्य पीठपूजां कृत्वा केशरेषु मध्ये च पूर्वादितः आं प्रभायै नमः इत्यादिना पूर्वोक्तेन पूजयेत्। तदुपरि ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट् नमः इति पूजयेत्॥१२॥

इस प्रकार ध्यान करके दुर्गामुद्रा, शङ्खमुद्रा, चक्रमुद्रा, धनुर्मुद्रा तथा बाणमुद्रा दिखाकर मानस उपचार से पूजा करके, विशेषार्घ्य स्थापन, पीठपूजन करके केशरसमूह में पूर्वादि दिशाक्रम से तथा मध्य में ॐ आं प्रभायै नमः, ॐ ईं मायायै नमः, ॐ ऊं जयायै नमः, ॐ एं सूक्ष्मायै नमः, ॐ ऐं विशुद्धायै नमः, ॐ ओं नन्दिन्यै नमः, ॐ औं सुप्रभायै नमः, ॐ अं विजयायै नमः, ॐ अः सर्वसिद्धिदायै नमः। तदनन्तर ऊपर 'ॐ वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय हुं फट्' नमः मन्त्र से नवशक्ति तथा पीठमन्त्र का पूजन करे।।१२।।

निबन्धे—

प्रभा माया जया सूक्ष्मा विशुद्धा नन्दिनी पुनः।
सुप्रभा विजया सर्वसिद्धिदा नवशक्तयः।
अज्भिर्ह्रस्वत्रयक्लीबरहितैः पूजयेदिमाः ॥१३॥

निबन्ध में कहा है कि प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया तथा सर्वसिद्धिदा—ये नौ संख्यक पीठशक्तियाँ हैं। ह्रस्वत्रय—अ, इ, उ तथा क्लीबरहित बिन्दुयुक्त नौ स्वरवर्ण (आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं अः) रूप बीज द्वारा इन शक्तियों की पूजा करनी चाहिये।।१३।।

तथा—

प्रणवानन्तरं वज्रनखदंष्ट्रायुधाय च।
महासिंहाय वर्मास्त्रं नतिः सिंहमनुर्मतः ॥१४॥

इसी प्रकार और भी कहा है। प्रणव के अनन्तर वज्रनखदंष्ट्रायुधाय महासिंहाय, तदनन्तर वर्म (हुं) अस्त्र (फट्) नति (नमः)—यह सिंहमन्त्र है।।१४।।

ततः पुनर्ध्यात्वावाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजां कुर्यात्। यथा अग्न्यादिकेशरेषु मध्ये दिक्षु च पूर्ववत् ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना षड़ङ्गेन सम्पूज्य पत्रेषु पूर्वादितः जं जयायै विं विजयायै, कीं कीर्त्यै, प्रीं प्रीत्यै, प्रं प्रभायै, शं श्रद्धायै, मं मेधायै, शं श्रुत्यै। नमः सर्वत्र। पत्राग्रेषु शङ्खं चक्रं गदां खड्गं पाशमङ्कुशं चापं शरं तद्बाह्ये इन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्य पुरश्चरणमष्टलक्षजपः॥१५॥

तत्पश्चात् पुनः ध्यान, आवाहन से लेकर पञ्चपुष्पाञ्जलिदान-पर्यन्त कार्य सम्पन्न करके आवरण पूजा करे। जैसे अग्न्यादि कोणों में, केशर समूह में, मध्य में तथा दिक् समूह में पूर्ववत् 'ॐ ह्रीं दुं दुर्गायै ह्रां हृदयाय नमः' इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्रों द्वारा (जो इस प्रकरण के श्लोक ९ की व्याख्या में कहे गये हैं, तदनुसार) षडङ्ग पूजा करके पत्रसमूह में पूर्वादिक्रमेण ॐ जं जयायै नमः, ॐ विं विमलायै नमः, ॐ कीं कीर्त्यै नमः, ॐ प्रीं प्रीत्यै नमः, ॐ प्रं प्रभायै नमः, ॐ श्रं श्रद्धायै नमः, ॐ मं मेधायै नमः, ॐ श्रं श्रुत्यै नमः कहकर इनका पूजन करे। पत्र के आगे शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग, पाश, अंकुश, चाप तथा शर का पूजन करके पत्र के बाहर इन्द्रादि लोकपाल तथा वज्रादि अस्त्र का पूजन करके धूपदान से लेकर विसर्जन-पर्यन्त का कार्य सम्पन्न करना चाहिये। इस मन्त्र का पुरश्चरण आठ लाख जप है।।१५।।

तथा च—

वसुलक्षं जपेन्मन्त्रं तिलैर्मधुरलोड़ितैः।
पयोऽन्धसा वा जुहुयात्तत्सहस्त्रं जितेन्द्रियः ॥१६॥

शारदातिलक में कहते हैं—जितेन्द्रिय साधक इस मन्त्र का पुरश्चरण आठ लाख जप से करे। त्रिमधुर से लिपटे तिलों से अथवा पायस (दुग्धयुक्त अन्न) द्वारा आठ हजार होम करना चाहिये।।१६।।

पयोऽन्धसा दुग्धयुक्तानेन। तथा च वाचनिकोऽष्टसहस्त्रहोमः ॥१७॥

पयोन्धसा = दुग्धयुक्त अन्न। अतः आठ सहस्र होम वाचनिक है। क्योंकि तन्त्र वचन ८०००० के स्थान पर ८००० होम के लिये कहा है।।१७।।

अथ मन्त्रान्तरं विश्वसारे—

थान्तबीजं समुद्धृत्य वामकर्णविभूषितम् ।
इन्दुबिन्दुसमायुक्तं बीजं परमदुर्लभम् ॥१८॥
चतुर्वर्गप्रदं साक्षान्महापातकनाशनम् ।
एकाक्षरीसमा नास्ति विद्या त्रिभुवने प्रिये! ॥१९॥
विना गन्धैर्विना पुष्पैर्विना होमपुर:सरै: ।
विनायासैर्महादेवि! जपमात्रेण सिद्धिदा ॥२०॥

अब दुर्गा का अन्य मन्त्र कहते हैं। विश्वसार तन्त्र में कहा गया है कि थान्तवर्ण (द) का उद्धार करके वामकर्ण (उ) द्वारा विभूषित तथा इन्दु (ं) द्वारा युक्त करके परम दुर्लभ 'दुं' एकाक्षर बीज होता है। वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षप्रद बीज है, जो साक्षात् महापातक का नाशक है। हे प्रिये! इस त्रिभुवन में एकाक्षरी के समान कोई विद्या नहीं है।

हे महादेवि! विना गन्ध, पुष्प, होम के एवं विना किसी परिश्रम के केवल जपमात्र से यह विद्या सिद्धिप्रदा हो जाती है।।१८-२०।।

मन्त्रस्यास्य ऋषिर्देवि नारद: परिकीर्त्तित: ।
गायत्री छन्द आख्यातं जगद्धात्री च देवता ॥२१॥

हे देवि! इस मन्त्र के नारद ऋषि कहे गये हैं। गायत्री छन्द है और इसकी देवता जगद्धात्री हैं।।२१।।

चतुर्वर्गप्रदा दुर्गा सर्वसत्वेषु संस्थिता ।
विविधा सा महाविद्या तत् शृणुष्व गणेश्वरि ॥२२॥

चतुर्वर्गप्रदा दुर्गा समस्त सत्व (विद्या) में अवस्थित हैं। हे गणेश्वरि! एकाक्षरी विद्या ही समस्त बीजों में स्थित होकर अनेक प्रकार की हो गई है। उसे सुनो।।२२।।

कूर्चाद्यां वा जपेद् विद्यां तदन्ते वह्निसुन्दरी ।
लज्जाद्यां वा जपेद् विद्यां फड़न्तां वा जपेत् सुधी: ॥२३॥

इस एकाक्षरी विद्या के आदि में कूर्च बीज लगाकर जप करे अथवा आदि के कूर्च (हुं) बीज लगे मन्त्र (दुं) के अन्त में वह्निसुन्दरी (स्वाहा) लगाकर जप करे (अर्थात् हुं दुं स्वाहा) अथवा इस एकाक्षरी विद्या के आदि में लज्जाबीज (ह्रीं) लगाकर (अर्थात् ह्रीं दुं) जप करे अथवा सुधी साधक इसे आदि स्थित लज्जाबीज के पश्चात् 'दुं' का उच्चारण करके फट् लगाकर जप करे (अर्थात् ह्रीं दुं फट्)।।२३।।

वधूबीजयुतां वापि स्वाहान्तां वा जपेत् पुनः।
लक्ष्म्याद्यां वा जपेद् विद्यां चतुर्वर्गफलाप्तये ॥२४॥

अथवा इस एकाक्षरी विद्या (दुं) के आगे वधूबीज (स्त्रीं) का योग करके जप करे (अर्थात् दुं स्त्रीं) अथवा आदि में वधूबीज (स्त्रीं) तदनन्तर मूल बीज (दुं) के अन्त में 'स्वाहा' लगाकर जप करे अर्थात् 'स्त्रीं दुं स्वाहा' इससे चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति होती है अथवा चतुर्वर्गफल-प्राप्ति के लिये पहले (श्रीं) लक्ष्मीबीज लगाकर जप करे (अर्थात् श्रीं दुं)।।२४।।

वाग्भवाद्यां जपेद्वापि प्रणवाद्यां जपेत् पुनः।
कामबीजादिकां वापि फड़न्तां वा जपेत् सुधीः।
त्र्यक्षरी विविधा विद्या ब्रह्मणा कथिता पुरा ॥२५॥

अथवा इसे एकाक्षरी के पूर्व वाग्भवबीज (ऐं) लगाये। अथवा इसके आदि में प्रणव देकर जप करे (अर्थात् ॐ दुं) अथवा आदि में कामबीज लगाकर जपे (अर्थात् क्लीं दुं) अथवा सुधी साधक उसके अन्त में फट् लगाकर जपे (अर्थात् दुं फट्)। पूर्वकाल में ब्रह्मा द्वारा इस त्र्यक्षरी विद्या को कई प्रकार से कहा गया है।।२५।।

अस्यार्थः—कूर्चाद्यामिति। विद्यामेकाक्षरीयुक्तविद्याम्। तेनायं द्व्यक्षरो मन्त्रः। तदन्ते कूर्चादि मूलविद्यान्ते वह्निसुन्दरी। अत्रापि वाकारो अनुषञ्जनीयः, सर्वत्र तथा दर्शनात्॥२६॥

कूर्चाद्या—कूर्चबीजयुक्त एकाक्षरी विद्या। उससे दो अक्षर का मन्त्र होता है। तदन्ते अर्थात् कूर्चबीज तदनन्तर मूलबीज (दुं) अन्त में वह्निसुन्दरी (स्वाहा)। यहाँ भी 'वा' अनुवृत्त होगा। क्योंकि यहाँ सर्वत्र 'वा'कार देखा जाता है।।२६।।

न च तदन्ते एकाक्षरविद्यान्ते तथा चायं त्र्यक्षरो मन्त्र इति वाच्यम्। तथा सति—वसुबीजयुतां वापि स्वाहान्तां वा जपेत् पुनरित्यत्रान्युक्तरीत्या वधूरहितविद्याया एव स्वाहान्तत्त्वप्राप्तौ पौनरुक्त्यापत्तेः फड़न्तां वेत्यस्य द्विर्निवेशेन पौनरुक्त्यापत्तेश्च। तस्मात् यन्मन्त्रानन्तरमन्ते बीजमुक्तं, तद्बीजं तन्मन्त्रस्यान्ते दीयते चेन्मन्त्रान्तरमिति तत्त्वम्। तथायं चतुरक्षरः॥२७॥

तदन्ते = एकाक्षर विद्या के अन्त में वह्निसुन्दरी (स्वाहा) लगाने से तीन अक्षर का मन्त्र होगा, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि ऐसा होने पर 'वधूबीजयुतां वापि स्वाहान्तं वा जपेत् पुनः'। यहाँ उक्त रीति से वधूबीज-रहित केवल एकाक्षरी विद्या ही स्वाहान्त होने पर पुनरुक्ति की आपत्ति होगी और फड़न्तां वा (फट्) इसका भी दो बार निवेश प्रयुक्त होने से उसकी पुनरुक्ति की आपत्ति होगी। अतएव जिस बीज के अनन्तर

जो बीज कहा जायेगा, उस बीज को यदि उस बीज के अन्त में दिया जाय, तब मन्त्रान्तर हो जायेगा। यही तत्त्व है। ऐसी स्थिति में यह चतुरक्षर मन्त्र है।।२७।।

लज्जाद्यामिति द्व्यक्षरोऽयम्। फडन्तामिति सार्द्धत्र्यक्षरः। वधूबीजेति द्व्यक्षरः। स्वाहान्तामिति चतुरक्षरः। लक्ष्म्याद्यामिति द्व्यक्षरः। वाग्भवाद्यामिति द्व्यक्षरः। प्रणवाद्यामिति द्व्यक्षरः। कामेति द्व्यक्षरः। फडन्तामिति सार्द्धत्र्यक्षरः। त्र्यक्षरो दकारोकारानुस्वारात्मकत्र्यक्षरमयी मूलविद्येत्यर्थः। तथा च दुं। हुं दुं। हुं दुं स्वाहा। ह्रीं दुं। ह्रीं दुं फट्। स्त्रीं दुं। स्त्रीं दुं स्वाहा। श्रीं दुं। ऐं दुं। ॐ दुं। क्लीं दुं। क्लीं दुं फट्। इति द्वादशमन्त्राः॥२८॥

लज्जाद्यामिति। यह द्व्यक्षर है। फडन्तामिति। यह सार्द्ध त्र्यक्षर है। वधुबीजेति यह द्व्यक्षर है। स्वाहान्तामिति। यह चार अक्षर का है। लक्ष्म्याद्यामिति। यह द्व्यक्षर है। वाग्भवाद्यामिति। यह दो अक्षर का है। प्रणवाद्यामिति। यह त्र्यक्षर है। कामेति—यह द्व्यक्षर है। फडन्तामिति—यह है त्र्यक्षर। त्र्यक्षरी का अर्थ है—'द' 'उ' तथा अनुस्वार। अतएव यह है त्र्यक्षर रूप मूल विद्या 'दुं'। इससे १२ प्रकार के मन्त्रों का उद्धार होता है—दुं, हुं दुं, हुं दुं स्वाहा, ह्रीं दुं, ह्रीं दुं फट्, स्त्रीं दुं, स्त्रीं दुं स्वाहा, श्रीं दुं, ऐं दुं, ॐ दुं, क्लीं दुं, क्लीं दुं फट्।।२८।।

विश्वसारे—

दीर्घस्वरसमायुक्तनिजबीजजानि पार्वति!।
विन्यसेदात्मनो देहे हृदयादिषु पूर्ववत्॥२९॥

हे पार्वति! अपने देह में हृदयादि स्थान में पूर्ववत् छः दीर्घ स्वरयुक्त निजबीज (दुं) का न्यास करे। यह षडङ्ग न्यास है।।२९।।

पूर्ववन्न्यासवर्णन्तु पूर्ववत् कर्म चाचरेत्।
कालीवदाचरेद् विद्यां जपेद् विद्यामहर्निशम्।
लक्षद्वादशकैर्देवि! पुरश्चरणमीरितम्॥३०॥

पूर्ववत् न्यास करना चाहिये। पूर्ववत् समस्त कर्म करे। काली के विद्यानुसार विद्या का अनुष्ठान करना होगा। दिन-रात इसका जप करना चाहिये। हे देवि! १२ लाख जप से इसका पुरश्चरण होता है।।३०।।

मत्स्यमांसैः सूपपूयैर्मृगैः शशकशल्लकैः।
पूजयेत् परया भक्त्या दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्॥३१॥

मत्स्य, मांस, सूप (दाल), पूय (पिष्टक) द्वारा, मृग द्वारा, शशक तथा शल्लक द्वारा अतिभक्ति के साथ दुर्गतिनाश करने वाली दुर्गा का पूजन करे।।३१।।

स्वयम्भूकुसुमैः शुक्रैः सुगन्धिकुसुमान्वितैः ।
जवायावकसिन्दूरैः रक्तचन्दनसंयुतैः ।
नानामांसैर्नानाद्रव्यैः पूजयेत् परमेश्वरीम् ।।३२।।

स्वयम्भू कुसुम द्वारा (इसका वर्णन प्रथम खण्ड में किया गया है), सुगन्धि कुसुम युक्त शुक्र (वीर्य) के द्वारा, जपा, आलता, सिन्दूर द्वारा, रक्त चन्दन द्वारा, नाना मांस तथा नाना द्रव्यों से परमेश्वरी की पूजा करे।।३२।।

काकैः शुकैश्च महिषैर्मेषैश्छागैर्नरैस्तथा ।
गजैरुष्ट्रैः खगैर्गृध्रैः पूजयेद् विधिनामुना ।
तदा भवेन्महासिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ।।३३।।

इस विधि के अनुसार काक, शुक, महिष, मेष, छाग, नर, गज, ऊँट, खग (पक्षी) तथा गृद्ध द्वारा परमेश्वरी का पूजन करे। तब नि:संदिग्ध रूप से महासिद्धि होगी।।३३।।

ध्यानन्तु—

सिंहस्कन्धसमारूढां नानालङ्कारभूषिताम् ।
चतुर्भुजां महादेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ।।३४।।

सिंह के कंधे पर आरूढ़ नाना अलङ्कार से भूषित चार भुजाओं वाली महादेवी नाग का यज्ञोपवीत धारण करती हैं।।३४।।

शङ्खशार्ङ्गसमायुक्तवामपाणिद्वयान्विताम् ।
चक्रञ्च पञ्चबाणञ्च धारयन्तीञ्च दक्षिणे ।।३५।।
रक्तवस्त्रपरीधानां बालार्कसदृशीं तनूम् ।
नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेवितां भवगेहिनीम् ।।३६।।
त्रिवलीवलयोपेतनाभिनालमृणालिनीम् ।
रत्नद्वीपमहाद्वीपे सिंहासनसमन्विते ।
प्रफुल्लकमलारूढां ध्यायेत्तां भवगेहिनीम् ।।३७।।

वाम हाथों में शङ्ख तथा शार्ङ्गधनुष धारिणी, दाहिने हाथ में चक्र तथा पाँच बाण धारण करने वाली, रक्त वस्त्रयुक्त, बाल सूर्य के समान रक्तवर्ण देहधारिणी, नारदादि मुनियों से सेविता त्रिवलीरूप वलययुक्ता नाभिकमल की नालरूप मृणाल-विशिष्टा, रत्नद्वीपरूप महाद्वीप में सिंहरूप आसन पर स्थित विकसित कमल पर आसीन इन भवसुन्दरी भवगेहनी का ध्यान करता हूँ।।३५-३७।।

अस्या यन्त्रं—

त्रिकोणं विन्यसं पूर्णं नवकोणसमन्वितम् ।
त्रिबिम्बसहितं कार्यमष्टपत्रसमन्वितम् ॥३८॥
त्रिरेखासहितं कार्यं वज्रभूपुरसंयुतम् ।
समीकृत्य यथोक्तेन विलिखेद् विधिनाऽमुना ॥३९॥

अब इनका यन्त्र कहा जाता है—नवकोणयुक्त त्रिकोण अङ्कित करे। इसमें तीन वृत्त बनाये। यह अष्टपत्र से युक्त हो। उसके बाहर तीन रेखायुक्त बृहद् भूपुर बनाये। समान रूप से यथोक्त रूप से विधि के अनुसार यन्त्राङ्कन करे।।३८-३९।।

नामास्त्रसंयुतं लेख्यं चक्रं मन्त्रसमन्वितम् ।
तत्र तां पूजयेद् देवीं मूलप्रकृतिरूपिणीम् ॥४०॥
पद्मस्थां पूजयेद् दुर्गां सिंहपृष्ठनिषेदुषीम् ।
प्रभाद्याः शक्तयः पूज्याः गन्धाद्यैर्नवकोणके ॥४१॥

इस यन्त्र को नाना अस्त्रयुक्त तथा मूलमन्त्र से समन्वित करके लिखना चाहिये। इसमें मूलप्रकृतिरूपिणी इन देवी का पूजन करना चाहिये। पद्मासन सिंह की पीठ पर विराजमान इन दुर्गा का पूजन करे। नवकोण में गन्धादि से प्रभा प्रभृति शक्ति का पूजन करना चाहिये।।४०-४१।।

पूजायान्तु नवकोणे—

प्रभा माया जया सूक्ष्मा विशुद्धानन्दिनी पुनः ।
सुप्रभा विजया सर्वसिद्धिदा नवशक्तयः ।
प्रभाः प्रणवमायाद्या स्वस्वनाम्ना प्रपूजयेत् ॥४२॥

पूजा के नौ कोणों में प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया, सर्वसिद्धिदा के नाम के आगे 'ॐ' तथा 'ह्रीं' तथा अन्त में 'नमः' लगाकर इनकी पूजा करे; जैसे ॐ ह्रीं प्रभायै नमः' इत्यादि।।४२।।

ॐ ह्रीं प्रभायै नमः इत्यादिना। देव्या वामे शङ्खनिधये। दक्षिणे पद्म-निधये।।४३॥

ॐ ह्रीं प्रभायै नमः इत्यादि रूप से पूजन करे। देवी के वाम में 'ॐ शङ्खनिधये नमः' तथा दाहिने 'ॐ पद्मनिधये नमः' कहकर पूजा करनी चाहिये।।४३।।

यथा निबन्धे—

ॐकारं पूर्वमुच्चार्य ह्रींकारं तदनन्तरम् ।
यथा पदं चतुर्थ्यन्तं पूजयेत् क्रमतः प्रिये ॥४४॥

शङ्खपद्मनिधी देव्या वामदक्षिणयोगतः ।
पूजयेत् परया भक्त्या रक्तचन्दनपूर्वकैः ॥४५॥

जैसे निबन्ध में कहा है—हे प्रिये! ॐकार का प्रथम उच्चारण करके उसके पश्चात् 'ह्रीं' तथा चतुर्थी विभक्त्यन्त यथा पद (पूज्य प्रभादि देवता का नाम पद) उच्चारण करके क्रमशः पूजा करे (जैसे ॐ ह्रीं शङ्खनिधये नमः)।

देवी के वाम तथा दक्षिण भाग में रक्त चन्दन द्वारा भक्ति से शङ्खनिधि तथा पद्मनिधि का पूजन किया जाता है।।४४-४५।।

अर्घ्यदानं सदा कार्यं पूजान्ते पर्वतात्मजे! ।
अङ्गावृतैः पुनः पूज्या पत्रकोणेषु मातरः ॥४६॥
वज्राद्यायुधसंयुक्ता भूपुरे लोकनायकः ॥४७॥

एषां पुरश्चरणं द्वादशलक्षजपः ।

हे पर्वतात्मजे! पूजा के अन्त में सर्वदा अर्घ्यदान करे। पुनः अंगावरण-सहित पत्र के कोणों में ब्राह्मी प्रभृति मातृगण की पूजा करे। भूपुर में वज्रादि आयुधों के साथ इन्द्रादि लोकपालगण का पूजन करना चाहिये। इनका पुरश्चरण बारह लाख जप से किया जाता है।।४६-४७।।

●

अथ जयदुर्गा

तारो दुर्गेयुगं रक्तमन्त्यो ढान्तं सलोचनम् ।
द्विठान्ता जयदुर्गेयं विद्या वेद्या दशाक्षरी ॥४८॥

अब जयदुर्गामन्त्र कहते हैं। प्रथमतः तार (ॐ) दो बार दुर्गे तत्पश्चात् रक्त (र), अन्त्य (क्ष) तथा ढान्त (ण) सलोचन (इकार युक्त)। यह द्विठान्त (स्वाहान्त) होगा। इसे द्वादशाक्षरी जयदुर्गा विद्या कहा गया है।।४८।।

रक्तः रेफः अन्त्यः क्षकारः द्विठः स्वाहा। अस्याः पूजाप्रयोगः प्रातः-कृत्यादि दुर्गामन्त्रोक्तऋष्यादिन्यासान्तं कृत्वा कराङ्गन्यासौ कुर्यात्। यथा दुर्गे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। दुर्गे तर्जनीभ्यां स्वाहा, दुर्गायै मध्यमाभ्यां वषट्। भूतरक्षणि अनामिकाभ्यां हुं, ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि कनिष्ठाभ्यां वौषट्। दुर्गे दुर्गे! रक्षणि करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु॥४९॥

रक्त (रेफ) र। अन्त्य—क्ष। द्विठ—स्वाहा। इस मन्त्र की पूजापद्धति—प्रातःकृत्य से लेकर दुर्गामन्त्रोक्त ऋष्यादि न्यास पर्यन्त कराङ्गन्यास करे। यथा—ॐ दुर्गे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॐ दुर्गे तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ दुर्गायै मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ भूत-

रक्षणि अनामिकाभ्यां हुं, दुर्गे दुर्गे रक्षणि कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। अब हृदयादि में न्यास करे।।४९।।

तारादि दुर्गे हृदयं दुर्गे शिर उदीरितम्।
दुर्गायै स्याच्छिखा वर्म भूतरक्षणि कीर्त्तितम्।।५०।।

तारादि दुर्गे अर्थात् प्रणवोपरान्त दुर्गे। यह हृदय मन्त्र है। ॐ दुर्गे—यह शिरोमन्त्र है। ॐ दुर्गायै—शिखामन्त्र एवं ॐ भूतरक्षणि—यह कवचमन्त्र कहा गया है।।५०।।

तारादि दुर्गे द्वितयं रक्षण्यक्ष समीरितम्।
तारादि दुर्गे युगलं रक्षण्यस्त्रमुदीरितम्।।५१।।

'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि।' यह नेत्रमन्त्र कहा गया है। तारादि दुर्गे युगल, रक्षणि तथा फट् अर्थात् 'ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि अस्त्राय फट्' यह अस्त्रमन्त्र है।।५१।।

विशेष—इस मन्त्र के मार्कण्डेय ऋषि, बृहती छन्द, जयदुर्गा देवता, प्रणव बीज तथा स्वाहा शक्ति हैं। सिद्धिकामना से इनका विनियोग होता है। यह राघवभट्टकृत 'पदार्थादर्श' में लिखा है।

ततो ध्यानम्—

कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां,
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं,
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृत्तां सेवितां सिद्धिकामैः।।५२।।

अब इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—कृष्ण मेघ के समान नीलवर्णा, कटाक्षविक्षेप से शत्रुकुल-हेतु भयप्रदा, मस्तक पर इन्दुकला से मण्डिता, हाथों में शङ्ख, चक्र, कृपाण तथा त्रिशूल-धारिणी, त्रिनयना, सिंहस्कन्ध पर आसीना, तेज से अखिल त्रिभुवन को आपूरित करने वाली, देवगण द्वारा घिरी हुई, सिद्धिकामी लोगों से सेविता जयदुर्गा का ध्यान करता हूँ।।५२।।

एवं ध्यात्वा मानसपूजार्घ्यस्थापनादि कृत्वा पूर्वोक्तपीठपूजां विधाय पूर्ववत् पूजयेत्। अस्य पुरश्चरणं पञ्चलक्षजपः।।५३।।

इस प्रकार ध्यान, मानसपूजा, अर्घ्यस्थापनादि करके पूर्वोक्त पीठपूजा करके पूर्वोक्त अष्टाक्षर मन्त्र प्रकरण के समान सभी विधान करना चाहिये। इसका पुरश्चरण पाँच लाख जप है।।५३।।

यथा निबन्धे—

बाणलक्षं जपेन् मन्त्रं घृतेन जुहूयात् ततः।

दशांशं संस्कृते वह्नौ ब्राह्मणानपि भोजयेत्।
अष्टाक्षरोदितं पीठे पूजयेत् पूर्ववत् सुधीः ॥५४॥

जैसे निबन्ध में कहा है कि इस मन्त्र का पुरश्चरण बाणलक्ष अर्थात् पाँच लाख करना चाहिये तथा दशांश होम करके ब्राह्मण भोजन कराये। सुधी साधक अष्टाक्षर मन्त्र प्रकरण में लिखे विधान के अनुसार पीठ पर देवी पूजन करे।।५४।।

अथ महिषमर्दिनी

भान्तं वियत् सनयनं श्वेतो मर्दिनी! ठद्वयम्।
अष्टाक्षरी समाख्याता विद्या महिषमर्दिनी ॥५५॥

अब महिषमर्दिनी प्रकरण कहते हैं। भान्त—म सनयन अर्थात् 'इ'कार सहित वियत् अर्थात् 'ह'। श्वेत—ष के पश्चात् मर्दिनी तथा ठद्वय (स्वाहा), इससे होता है—महिषमर्दिनी स्वाहा। यह अष्टाक्षरी महिषमर्दिनी विद्या है।।५५।।

भान्तं मकारः। वियत् हकारः। नयनं ह्रस्वेकारः, सामान्यनिर्देशस्वरसात्। श्वेतो मूर्द्धन्यषकारः। मर्दिनी स्वरूपम्। ठद्वय स्वाहा। अत्र मन्त्रे तृतीयस्वर-विशिष्टो दकारः॥५६॥

भान्त = मकार। वियत् = ह। नयन = ह्रस्व इ। श्वेत = ष। ठद्वय—स्वाहा। इस मन्त्र में तृतीय स्वर विशिष्ट 'द' है।।५६।।

यथा नारायणी तन्त्रे—

विषं हि मज्जा कालोऽग्निरद्रिरिस्थो नि ठद्वयम्॥५७॥

नारायणी तन्त्र में कहा है कि विष—म। 'हि' यह शब्द यथावत् रहेगा। मज्जा = मूर्द्धन्य ष। काल = म। अग्नि = र। अद्रि = द। इस्थ = अर्थात् ह्रस्व 'इ' युक्त। नि = यथावत् रहेगा। ठद्वय = स्वाहा। इस मन्त्र में एक ही दकार है। अतएव यहाँ द्वित्वत्व की आंशका नहीं है। मन्त्रोद्धार है—महिषमर्दिनि स्वाहा।।५७।।

अयं मन्त्रस्तारादिर्मायादिर्वध्वादिः कवचादिः कामादिर्वाग्भवादिः। प्रणवपुटिता मायापुटिता वधुपुटिता कवचपुटिता कामपुटिता वाग्भव-पुटिता। प्रणवद्वयादिर्मायाद्वयादिर्वधुद्वयादिः कवचद्वयादिः कामद्वया-दिर्वाग्भवद्वयादिः। प्रणवमायोभयादिः कामप्रणवोभयादिश्च भवति॥५८॥

(आदि में = प्रारम्भ में) यह मन्त्र प्रणव आदि (प्रणव आदि में), वधुबीज आदि में, कवचबीज आदि में, कामबीज आदि में तथा वाग्भवबीज आदि में इस प्रकार का

होता है। यही नहीं यह विद्या प्रणवपुटिता, वाग्भवपुटिता, मायाबीजपुटिता, वधुबीजपुटिता, कवचपुटिता, कामबीजपुटिता होती है। इसमें आदि में दो प्रणव, दो मायाबीज, दो वधुबीज, दो कवचबीज, दो कामबीज, दो वाग्भवबीज युक्त हो सकता है। यह मन्त्र प्रणव तथा मायाबीज से प्रारम्भ में युक्त अथवा कामबीज तथा प्रणव से प्रारम्भ में युक्त हो सकता है।।५८।।

यथा विश्वसारे—

प्रणवाद्यां जपेद् विद्यां मायाद्यां वा जपेत् सुधीः।
वधूबीजादिकां वापि कवचाद्यां जपेत्तथा ।।५९।।

सुधी साधक प्रणवाद्य इस विद्या का जप करे अथवा मायाद्य विद्या का जप करे (= प्रणवाद्य ॐ दुं। मायाद्य—ह्रीं दुं) अथवा वधूबीजादि (स्त्रीं दुं) अथवा कवचादि (हुं दुं) विद्या का जप करे।।५९।।

सर्वकामेषु सर्वत्र कामाद्यां प्रजपेत् सुधीः।
वाग्भवाद्यां जपेत् तान्तु देवीं वाक्यविशुद्धये ।।६०।।

सुधी साधक समस्त कामनाओं में सर्वत्र कामबीजादि (क्लीं दुं) इस विद्या का जप करे। वाक्य की शुद्धि के लिये वाग्भवाद्या (ऐं दुं) इस विद्या देवी का जप करना चाहिये।।६०।।

विना बीजैर्महाविद्या निर्वीर्या परिकीर्त्तिता।
पुटिता बीजयुग्मेन मुखे युग्मैकदेशके ।।६१।।

विना बीज लगाये यह महाविद्या निर्वीर्या कही गयी है। इसलिये इसे मुख (आदि में) युग्मैकदेश के (अन्त में) बीज से पुटित करना चाहिये (जैसे मायाबीज से पुटित ह्रीं दुं ह्रीं, ऐसे ही वाग्भव कामबीज आदि से पुटित करे)।।६१।।

दशाक्षरी समा नास्ति विद्या त्रिभुवनेश्वरी।
प्रणवञ्च तथा माया भवेद् विद्या पुनर्दश।
कामं प्रणवमित्युक्तं भवेद् विद्या पुनर्दशा ।।६२।।

हे ईश्वरि! दशाक्षरी के समान कोई दूसरी विद्या त्रिभुवन में नहीं है। प्रणव तथा माया के योग से यह मन्त्र दशाक्षर हो जाता है। कामबीज तथा प्रणव के योग से भी यह दशाक्षर ही होता है।।६२।।

कवचाद्यामित्यत्र कवचं पञ्चमस्वरबिन्दुमद्हकाररूपम्। पुटितेति। बीजयुग्मेन पुटिता उक्तबीजानामेकतमबीजेनाद्यन्तयोर्युक्ता, एकदेशे मुखे युग्मयुग्मघटिता वा यदि, तदा दशाक्षरी समा विद्या नास्तीत्यर्थः। युग्मेत्यत्रार्ष आदित्वादच्।।६३।।

यहाँ कवच पञ्चस्वर तथा बिन्दुयुक्त हकार स्वरूप है। पुटिता—दो बीजों से पुटिता अर्थात् बीज के आदि में एक बीज। बीज के अन्त में पुनः वही बीज। यदि युग्मायुग्म घटिता हो तब दशाक्षरी के समान कोई विद्या नहीं है। युग्म यहाँ आर्ष अच् प्रत्यय हो गया है।।६३।।

अथैतासां विद्यानां पूजाप्रयोगः—प्रातःकृत्यादि पीठन्यासान्तं कर्म विधाय केशरेषु मध्ये दिक्षु च दुर्गामन्त्रोक्तपीठशक्तिः पीठमनूंश्च न्यसेत्। ततः पूर्वोक्तऋष्यादिन्यासं कृत्वा कराङ्गन्यासौ कुर्यात्। यथा—महिषहिंसिके हुं फट् अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। महिषशत्रो शार्ङ्गि हुं फट् तर्जनीभ्यां स्वाहा। महिषं हेषय हेषय हुं फट् मध्यमाभ्यां वषट्। महिषं हन हन देवि! हुं फट् अनामिकाभ्यां हुं। महिषसूदनि हुं फट्। कनिष्ठाभ्यां फट् एवं हृदयदिषु नेत्ररहितं पञ्चाङ्गन्यासं कुर्यात्।।६४।।

मन्त्रों की पूजापद्धति—प्रात:कृत्यादि से पीठन्यास पर्यन्त करके केशरसमूह में मध्य में तथा दिक् समूह में दुर्गामन्त्रोक्त पीठशक्ति तथा पीठमन्त्र का न्यास करके पूर्वोक्त ऋष्यादि न्यास तथा कराङ्गन्यास करे। करन्यास—ॐ महिषहिंसिके हुं फट् अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ महिषशत्रो शार्ङ्गि हुं फट् तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ महिषं भीषय भीषय हुं फट् मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ महिषं हन हन देवि! हुं फट् अनामिकाभ्यां हुं, ॐ महिषसूदनि हुं फट् कनिष्ठाभ्यां फट्, अङ्गन्यास—ॐ महिषहिंसिके! हुं फट् हृदयाय नमः, ॐ महिषशत्रो शार्ङ्गि हुं फट् शिरसे स्वाहा, ॐ महिषं भीषय भीषय हुं फट् शिखायै वषट्, ॐ महिष हन हन देवि हुं फट् कवचाय हुं, ॐ महिषसूदनि हुं फट् कनिष्ठाभ्यां फट्। इसी प्रकार से नेत्रन्यासरहित हृदयादि न्यास में पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिये।।६४।।

यथा निबन्धे—

महिषहिंसिके हुं फट् हृदयं परिकीर्त्तितम्।
महिषशत्रो शार्ङ्गि हुं फट् शिरोऽङ्गमुदाहृतम्।।६५।।
महिषं भीषय द्वन्द्वं हुं फडन्तः शिखामनुः।
महिषं हन युग्मान्ते देवि हुं फट् तनुच्छदम्।
महिषान्ते सूदनि हुं फडन्तमन्त्रमीरितम्।।६६।।

जैसे निबन्ध ग्रन्थ में कहा है कि हुं फट्—यह हृदय मन्त्र कहा गया है। महिषशत्रो शार्ङ्गि हुं फट्—यह शिरोमन्त्र है। महिषं भीषय भीषय हुं फट्—यह शिखामन्त्र है। महिषं हन हन देवि हुं फट्—यह कवचमन्त्र है। महिष शब्द के अन्त में सूदनि अर्थात् महिषसूदनि हुं फट्—यह अस्त्रमन्त्र है।।६५-६६।।

विशेष—इस षडङ्ग न्यास मन्त्र में तथा तन्त्रसारोक्त षडङ्गन्यास मन्त्र में भेद परिलक्षित होता है। साधकगण उसे भी देखकर अपने गुरु के आदेश के अनुसार मन्त्र-प्रयोग करें।

ततो ध्यानम्—

गारुडोपलसन्निभां मणिमौलिकुण्डलमण्डितां
नौमि भालविलोचनां महिषोत्तमाङ्गनिषेदुषीम्।
शङ्खचक्रकृपाणखेटकबाणकार्मुकशूलकान्
तर्जनीमपि विभ्रतीं निजबाहुभिः शशिशेखराम्॥६७॥

अव इस प्रकार ध्यान करे। गारुड़ोपल अर्थात् गरुड के उद्गार मणि मरकतमणि तुल्य मणिमय मुकुट तथा कुण्डलभूषिता, ललाटनेत्रा अर्थात् त्रिनेत्रा, महिष के मस्तक पर आसीन, अपने हाथों में से दाहिने तथा वाम ऊर्ध्वहस्तों में शङ्ख तथा चक्र, उसके नीचे वाले दो हाथों में कृपाण तथा खेटक, उसके नीचे वाले हाथों में बाण तथा कार्मुक एवं उसके नीचे वाले दो हाथों में शूल तथा तर्जनी मुद्रा से शोभित चन्द्रशेखरा महिषमर्दिनी की स्तुति करता हूँ।।६७।।

एवं ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्यार्घ्यस्थापनपीठपूजादि कृत्वा केशरेषु मध्ये च पूर्वोक्तपीठशक्तिः पीठमनूञ्च यजेत्। पुनर्ध्यात्वावाहनादि पञ्च-पुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं कर्म विधायावरणानि पूजयेत्। यथा केशरेष्वग्न्यादि-कोणेषु पूर्ववदङ्गं सम्पूज्य पत्रेषु पूर्वादितः आं दुर्गायै ईं वरवर्णिन्यै ऊं आर्यायै ॠं कनकप्रभायै, लॄं कृत्तिकायै, ऐं अभयप्रदायै, औं कन्यायै, अः सुरूपायै। पत्राग्रेषु यं चक्राय, रं शङ्खाय, लं खड्गाय, वं खेटकाय, शं बाणाय, षं धनुषे, सं शूलाय, हं तर्जन्यै। नमः सर्वत्र। पुनः पत्राग्रेषु ब्राह्याद्याः पूजयेत्। तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादि विसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। जपसमर्पणं पूर्वम् उत्तरस्यां दिशि त्रिकोणमण्डलं विलिख्य बलिं दद्यात्॥६८॥

इस प्रकार ध्यानोपरान्त मानसोपचार पूजन, विशेषार्घ्य स्थापन, पीठपूजा करके केशर के मध्य में, दिक् समूह में पीठशक्ति तथा पीठमन्त्र का पूजन, पुनः ध्यान करके आवाहन से लेकर पञ्चपुष्पाञ्जलि-अर्पणपर्यन्त का विधान सम्पन्न करके आवरण देवताओं का पूजन करना होगा। जैसे केशरसमूह में अग्न्यादि कोणसमूह में पूर्ववत् अङ्गदेवता की पूजा करके पत्रसमूह में पूर्वादिक्रम से—ॐ आं दुर्गायै नमः, ॐ ईं वरवर्णिन्यै नमः, ॐ ऊं आर्यायै नमः, ॐ ॠं कनकप्रभायै नमः, ॐ लॄं कृत्तिकायै नमः, ॐ ओं अभयप्रदायै नमः, ॐ औं कन्यायै नमः, ॐ अः सुरूपायै नमः से पूजन

करना चाहिये। पत्र के अग्र में ॐ यं चक्राय नमः, ॐ रं शङ्खाय नमः, ॐ लं खड्गाय नमः, ॐ वं खेटकाय नमः, ॐ शं बाणाय नमः, ॐ षं धनुषे नमः, ॐ सं शूलाय नमः, ॐ हं तर्जन्यै नमः से पूजन कर पुनः पत्र के अग्रभाग में ब्राह्मी प्रभृति मातृगण का पूजन किया जायेगा। उनका मन्त्र पहले प्रकरणों में कहा जा चुका है। उसके बहिर्भाग में इन्द्रादि लोकपाल तथा वज्रादि अस्त्रसमूह का पूजन करे। तत्पश्चात् धूपदान से लेकर विसर्जन-पर्यन्त समस्त कार्य करे। जप-समर्पण के पूर्व उत्तर दिशा में त्रिकोण मण्डल बनाकर उसमें बलि देनी चाहिये।।६८।।

बलिमन्त्रस्तु—

एहि एहि पदद्वन्द्वं गृह्ण गृह्ण पदद्वयम्।
मदीयञ्च बलिं देवि लूलापकपदद्वयम्।।६९।।
साधयद्वितयं ब्रूयात् खादयद्वितयं पुनः।
सर्वसिद्धिं पदं देहि ततः स्वाहापदं वदेत्।
बलिदानस्य मन्त्रोऽयं मर्द्दिन्याः परिकीर्त्तितः।।७०।।

अब बलिमन्त्र कहते हैं। 'एहि एहि' पद तत्पश्चात् 'गृह्ण गृह्ण' पद 'मदीयं बलिं देवि' तथा लूलापक पदद्वय, पुनः साधय पदद्वय, पुनः खादय पदद्वय तत्पश्चात् सर्वसिद्धिं पद, देहि तथा उसके अनन्तर स्वाहा पद कहे। इससे मन्त्रोद्धार होता है— ॐ एहि एहि गृह्ण गृह्ण मदीयं बलिं लूलापक लूलापक साधय साधय खादय खादय सर्वसिद्धिं देहि स्वाहा। यह महिषमर्दिनी का बलिमन्त्र कहा गया है।।६९-७०।।

अस्य पुरश्चरणमष्टलक्षजपः। यथा—

अष्टलक्षं जपेन्मन्त्रं तत् सहस्रं तिलैर्हुनेत्।।७१।।

इस मन्त्र का पुरश्चरण आठ लाख जप तथा आठ हजार होम तिल द्वारा करना होगा।।७१।।

इति महिषमर्दिनीप्रकरणम्

अथ कालीप्रकरणम्

यस्याः प्रसादमासाद्यः सद्यः सिद्धीश्वरो भवेत्।
वन्देऽहं जगतामाद्यां तां कालीं कालरूपिणीम्॥१॥

जिनकी कृपा पाकर साधक सद्य: सिद्धीश्वर हो जाते हैं, उन जगत् की आदि कालरूपिणी काली की मैं वन्दना करता हूँ।।१।।

भैरवीतन्त्रे—

अथ वक्ष्ये महाविद्याः कालिकायाः सुदुर्लभाः।
यासां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥२॥

भैरवी तन्त्र में कहा है—जिस विद्या के जानने मात्र से मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, उन कालिका की सुदुर्लभ महाविद्या को कहता हूँ।।२।।

नात्र चिन्ता विशुद्धेः स्यान्न चामित्रादिदूषणम्।
न वा प्रयासबाहुल्यं समयासमयादिकम्।
न वित्तव्ययबाहुल्यं कायक्लेशकरं न च॥३॥
य एनां चिन्तयेन्मन्त्री सर्वकामसमृद्धिकाम्।
तस्य हस्ते समैवास्ति सर्वसिद्धिर्न संशयः॥४॥

इसमें विशुद्धि अरिमित्रादि का कोई विचार अथवा दोष नहीं देखा जाता (अरिमित्रादि प्रकरण प्रथमखण्ड में विशद रूपेण विवेचित है)। इसमें प्रयास का बाहुल्य नहीं है, समय तथा असमय का विचार नहीं है। इसमें वित्त व्यय का भी वाहुल्य नहीं है। यह कायक्लेशहर साधना नहीं है। जो मन्त्रज्ञ साधक सर्वसमृद्धि देने वाली इन देवी की भावना करता है, उसके हाथों में समस्त सिद्धियाँ आ जाती हैं। यह निःसंदिग्ध है।।३-४।।

गद्यपद्यमयी वाणी सभायां तस्य जायते।
तस्य दर्शनमात्रेण वादिनो निष्प्रभा मताः।
राजानोऽपि हि दासत्वं भजन्ते किं परे जनाः॥५॥

सभा में वह गद्य-पद्यमयी वाणी बोलने लगता है। उसके दर्शनमात्र से वादीगण निष्प्रभ हो जाते हैं। वह सबके लिये सम्मत है। राजागण भी उसका दासत्व ग्रहण करने लगते हैं। फिर अन्य व्यक्तिगण भी उसका दासत्व करेंगे, इसमें क्या सन्देह?।।५।।

वह्नेः शैत्यं जलस्तम्भं गतिस्तम्भं विवस्वतः।
दिवारात्रिव्यत्ययञ्च वशीकर्त्तुं क्षमो भवेत् ॥६॥
सर्वस्यैव जनस्येह वल्लभः कीर्त्तिवर्द्धनः।
अन्ते च भजते देव्या गणत्वं दुर्लभं नरः ॥७॥

वह अग्नि को शीतल बना सकता है। जल का स्तम्भन कर सकता है। सूर्य की गति का स्तम्भन के साथ-साथ दिवा-रात्रि का व्यत्यय भी कर सकता है तथा जगत् को वशीभूत करने में समर्थ हो जाता है। इस लोक में वह मानव समस्त लोकाधिपति तथा कीर्त्तिवृद्धि की प्राप्ति करता है एवं अन्त में देहावसान के अनन्तर देवी का गण हो जाता है।।६-७।।

चन्द्रसूर्यसमो भूत्वा वसेत् कल्पायुतं दिवि।
न तस्य दुर्लभं किञ्चिद् यः स्मरेत् घोरदर्शनाम् ॥८॥

चन्द्र-सूर्य के समान होकर द्युलोक में १०००० कल्प तक वह वास करता है। जो घोरदर्शना कालिका का स्मरण करता है, उसके लिये इस संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता।।८।।

तत्रादौ दक्षिणकाली। तन्त्रे—

सर्वसिद्धिप्रदा देवी हेलया चिन्तिता यदि।
अतः सा दक्षिणा नाम्नी त्रिषु लोकेषु गीयते ॥९॥

अब दक्षिणकाली का विवेचन करते हैं। तन्त्र में कहा गया है कि यह देवी चिन्तन करने पर सर्वसिद्धि प्रदान करने वाली होने के कारण तीनों लोक में 'काली' के नाम से जानी जाती है।।९।।

स्वतन्त्रतन्त्रे—

क्रोधीशं बिन्दुयुक् कान्ते त्रिमूर्त्याग्निसमायुतम्।
त्रिलिखेत् परतो देवि हुङ्कारद्वयमेव हि ॥१०॥
मायाद्वन्द्वं समालिख्य अद्रिः सम्वर्त्तसूक्ष्मयुक्।
णे कालिके सप्तवर्णान् पूर्ववत् परमेश्वरि ॥११॥
स्वाहान्तेयं महाविद्या द्वाविंशत्यक्षरी मता।
अनया सदृशी विद्या नास्ति ज्ञाने तु मामके ॥१२॥

स्वतन्त्रतन्त्र में कहा है कि क्रोधीश (क) बिन्दुयुक्त हो (कं)। तत्पश्चात् अग्नि (र) तथा त्रिमूर्त्ति (ई) युक्त होकर अब यह 'क्रीं' होगा। हे देवि! इस 'क्रीं' को तीन बार लिखना चाहिये। इससे 'क्रीं क्रीं क्रीं' होगा। तदनन्तर दो बार 'हुं' लिखे। तदनन्तर दो

मायाबीज लिखे—ह्रीं ह्रीं। तत्पश्चात् अद्रि (द) तथा सूक्ष्म (इ) युक्त सम्वर्त्त (क्ष) अर्थात् 'क्षि' लिखे। तत्पश्चात् णे तथा कालिके यथावत् लिखे। यह स्वाहान्त होगा। यह महाविद्या ३२ अक्षरों वाली कही गयी है। मेरी जानकारी में इस विद्या के समान अन्य कोई विद्या नहीं है।।१०-१२।।

क्रोधीशः ककारः। त्रिमूर्त्तिश्चतुर्थस्वरः। अग्नी रेफः। अद्रि दकारः। संवर्त्तः क्षकारः। सूक्ष्मस्तृतीयस्वरः। णे कालिके इति स्वरूपम्। तथा च क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा इति सिद्धम्॥१३॥

क्रोधीश: = क। त्रिमूर्त्ति = ई। अग्नि = रेफ। अद्रि = द। संवर्त्त = क्ष। सूक्ष्म = इ। 'णे' तथा 'कालिके' ये दोनों यथावत् रहेंगे। अत: मन्त्रोद्धार होता है—क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।।१३।।

विशेष—यह विद्यादात्री विद्या है। यही आगे लिखे दोनों श्लोकों में कालीतन्त्र में कहा गया है। इसका अर्थ लिखा जा चुका है। अत: पुनरुक्ति नहीं की जा रही है।

कालीतन्त्रेऽपि—

कामत्रयं वह्निसंस्थं रतिबिन्दुसमन्वितम्।
कूर्चयुग्मं तथा लज्जायुगलं तदनन्तरम्॥१४॥
दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबीजानि चोच्चरेत्।
अन्ते वह्निवधुं दद्याद् विद्या राज्ञी प्रकीर्त्तिता॥१५॥

यही विद्याराज्ञी विद्या है। यहाँ काम (क) है। रति (इ) है।।१४-१५।।

कुमारीतन्त्रेऽपि—

भैरव उवाच

अतिगुह्यतमं ह्येतज्ज्ञानात्मकसनातनम्।
अतीव च सुगोप्यञ्च कथितुं नैव शक्यते।
अतीव मत्प्रियासीति कथयामि तवानघे॥१६॥
रूपाणि बहुसंख्यानि प्रकृते सन्ति भाविनि!।
तेषां मध्ये प्रधानन्तु कालीरूपं मनोहरम्॥१७॥

(भैरव) ईश्वर कहते हैं—इस ज्ञानात्मक सनातनी विद्या का तत्त्व अति गोपनीय तथा सुगोप्य है। इसे कहना सम्भव नहीं है। हे अनघे, तुम मेरी अत्यन्त प्रिय हो, इसलिये तुमसे कहता हूँ। हे भामिनि! प्रकृति में बहुसंख्यक रूप हैं। उनमें प्रधान एवं मनोहारी है—कालीरूप।।१६-१७।।

विशेषतः कलियुगे नराणां भुक्तिमुक्तिदम्।
तस्या उपासकाश्चैव ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥१८॥

विशेषत: कलिकाल में यह कालीरूप मानव के लिये भुक्ति-मुक्ति देने वाला है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव प्रभृति इनकी उपासना करते हैं।।१८।।

चन्द्रः सूर्यश्च वरुणः कुवेरोऽग्निस्तथा यमः।
दुर्वासाश्च वशिष्ठश्च दत्तात्रेयो बृहस्पतिः ॥१९॥
बहुनात्र किमुक्तेन सर्वे देवा उपासकाः।
कालिकायाः प्रसादेन भुक्तिमुक्त्यादिभागिनः ॥२०॥

चन्द्र, सूर्य, वरुण, कुबेर, अग्नि, यम, दुर्वासा, वशिष्ठ, बृहस्पति, दत्तात्रेय भी इन्हीं के उपासक हैं। अधिक क्या कहा जाय, सभी देवता इनकी उपासना करते हैं और काली की कृपा से उन्हें भुक्ति-मुक्ति प्राप्त हो जाती है।।१९-२०।।

तस्या मन्त्रं प्रवक्ष्यामि यतो रक्षेज्जगत्त्रयम्।
ककारं वह्निसंयुक्तं रतिबिन्दुसमन्वितम् ॥२१॥
त्रिगुणञ्च ततः कूर्चमषुं लज्जायुगं ततः।
दक्षिणे कालिके चेति पूर्वबीजानि चोच्चरेत् ॥२२॥
वह्निजायावधिर्मन्त्रः कालिकाया मनुर्मतः।
न च सिद्धाद्यपेक्षास्ति नारिमित्रादिचिन्तनम् ॥२३॥

अव इनका मन्त्र कहा जाता है, जिससे इस त्रिलोकी की रक्षा होती है। वह्नि (र) से संयुक्त 'क' तथा रति (ई) तथा विन्दु द्वारा युक्त तीन बार कहा जायेगा अर्थात् 'क्रीं क्रीं क्रीं'। तत्पश्चात् कूर्चबीजद्वय अर्थात् 'हुं हुं'। तत्पश्चात् लज्जाबीजद्वय अर्थात् 'ह्रीं ह्रीं'। तदनन्तर 'दक्षिण कालिके' तदनन्तर पूर्व में कही गयी बीजों को दोहराये। यह वह्निजायान्त (स्वाहा) से युक्त होगा। यह दक्षिण कालिका का मन्त्र है। यह मन्त्र सिद्धादि विचार-रहित है। इसमें अरिमित्र का भी विचार नहीं किया जाता।।२१-२३।।

श्रुतौ च—अथ हैनां ब्रह्मरन्ध्रे ब्रह्मस्वरूपिणीमाप्नोति सुभगां त्रिगुणाम् कामरेफेन्दिराबिन्दुमेलनरूपाम्। एतत् त्रिगुणीतामादौ। तदनु कूर्चद्वयम्। कूर्चबीजन्तु व्योमषष्टस्वरबिन्दुमेलनरूपम्। तदेतद्द्विरुच्चार्य भुवनाद्वयम्। भुवना तु व्योमज्वलनेन्दिराशून्यमेलनरूपा, तद्द्वयम्। दक्षिणे कालिके चेत्यभिमुखगता। तदनुबीजसप्तकमुच्चार्य बृहद्भानुजायामुच्चरेत्। स तु शिवमयो भवेत्, सर्वसिद्धीश्वरो भवेत्, गतिस्तस्यास्ति सत्यम्। नान्यस्य गतिरस्तीति। स तु नारीश्वरः, स तु वागीश्वरः, स तु देवेश्वरः, स तु सर्वेश्वर इति॥२४॥

कालिकोपनिषद् में भी कहा गया है कि वह साधक निश्चय ही ब्रह्मरन्ध्र में षडैश्वर्य शालिनी (सुभग), त्रिगुणा (सृष्टि-स्थिति-लयकारिणी) ब्रह्मरूपिणी कालिका की प्राप्ति करता है। यह कालिका काम (क्लीं) रेफ इन्दिरा तथा बिन्दु की मिलनरूपा हैं। प्रथमतः ये त्रिगुणिता (क्रीं क्रीं क्रीं) हैं। तत्पश्चात् कूर्चद्वय (हुं हुं) हैं। कूर्चबीज व्योम, षष्ठ स्वर तथा बिन्दु का मिलनरूप है। अतः इस कूर्च का दो बार उच्चारण करके भुवना का दो बार उच्चारण करना है। भुवना तो व्योम, ज्वलन, इन्दिरा तथा शून्य का (बिन्दु का) मिलन रूप है। तत्पश्चात् भुवना का दो बार उच्चारण करके उसकी अभिमुखगता दक्षिणे कालिके कहना होगा। तत्पश्चात् पूर्वबीजों का सात बार उच्चारण करना होगा। अन्त में बृहद्भानु (स्वाहा) कहे। ऐसा (मन्त्रज्ञ) साधक शिवमय होता है। सभी सिद्धियों का ईश्वर बन जाता है। उसी की गति है। यह सत्य हैं; अन्य की गति नहीं है। वह नारीगण का ईश्वर, वाक्य का ईश्वर, देवगण का ईश्वर, सबका ईश्वर है।।२४।।

मन्त्रार्थमाह रुद्रयामले—

ककारो जलरूपत्वात् केवलं मोक्षदायिनी।
ज्वलनार्णसमायोगात् सर्वतेजोमयी शुभा ॥२५॥
मायात्रयेण देवेशि! सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
बिन्दूनां निष्कलत्वाच्च कैवल्यफलदायिनी ॥२६॥

रुद्रयामल ने मन्त्र का अर्थ इस प्रकार कहा है—क्रीं मन्त्र में 'क' को जलरूप कहा गया है। वह मोक्षदायी है। ज्वलन वर्ण (र) के योग से वह शुभा तथा सर्व-तेजोमयी है।

हे देवेशि! मायात्रय द्वारा ये सृष्टि स्थिति तथा लय करती हैं। बिन्दुसमूह निष्कल है। अतः इसके द्वारा ये फलदायिनी (कैवल्य फलदायिनी) हो जाती हैं।।२५-२६।।

बीजत्रयी शाम्भवी सा केवलं ज्ञानचित्कला।
शब्दबीजद्वयेनैव शब्दराशिप्रबोधिनी ॥२७॥
लज्जाबीजद्वयेनैव सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
सम्बोधनपदेनैव सदा सन्निधिकारिणी।
स्वाहया जगतां माता सर्वपापप्रणाशिनी ॥२८॥

ज्वलनार्णो वह्निवर्णः रेफ इत्यर्थः। माया चतुर्थस्वरः। शब्दबीजं कूर्चम्। स्पष्टमन्यत्॥२९॥

वे शाम्भवी बीजस्वरूपा केवल ज्ञानरूप चित्कला हैं। शब्दबीज अर्थात् कूर्चबीजद्वय द्वारा शब्दराशि की प्रबोधकर्त्री हैं। ये लज्जाद्वय द्वारा सृष्टि स्थिति तथा लय करती हैं।

सम्बोधन पद द्वारा ये सर्वदा सबका सान्निध्य करती हैं। ये स्वाहा द्वारा जगत् की माता होकर सर्वपानाशिनी भी हैं। ज्वलनार्ण = वह्निवर्ण रेफ। माया = चतुर्थ स्वर 'ई'। शब्दबीज 'हुं'। अन्य सब स्पष्ट है।।२७-२९।।

अथास्य मन्त्रस्य सपर्याविधिः। गुरुनमस्कारादि सामान्यपद्धतावुक्तम्। अथ स्नानम्। नद्यादौ गत्वा वैदिकस्नानं कृत्वा देवीरूपं सर्वं विभाव्य सुवर्णरजतात्मककुलदर्भान् दर्भान् वा करयोर्न्यस्याचामेत्।।३०।।

अब इस मन्त्र की सपर्या विधि कहते हैं। गुरुनमस्कारादि सामान्य पूजा पद्धति में कही जा चुकी है। नदी प्रभृति में जाकर वैदिक स्नान करके सबका देवीरूपेण चिन्तन करते हुये सुवर्ण अथवा रजतरूप कुलदर्भ अथवा कुशा को दोनों हाथों में लेकर आचमन करे।।३०।।

कुलदर्भो यथा तन्त्रे—

सुवर्णं रजतञ्चैव जपपूजादिकर्मसु।
कुशकार्यकरं प्रोक्तं न तु वन्याः कुशाः कुशाः।
तर्जन्यो रजतं धार्यमनामासु सुवर्णकम्।।३१।। इति।

कुलदर्भ के सम्बन्ध में तन्त्र का मत है कि जप तथा पूजनादि कर्मों में सुवर्ण तथा चाँदी कुश का कार्य करती है। जंगली कुश कुश नहीं है। दोनों तर्जनी में चाँदो धारण करे। अनामिकाद्वय में सुवर्ण धारण करना चाहिये।।३१।।

ततः **ॐ अद्येत्यादि अमुकदेवताप्रीतिकामो मन्त्रस्नानमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य जले त्रिकोणं विलिख्य तत्र ॐ गन्धे चेत्यादिनाङ्कुशमुद्रया सूर्यमण्डलात् तीर्थमावाह्य ॐ ह्रीं स्वाहेत्याचामेत्। ततस्तेन जलेनात्मानं त्रिः संप्रोक्ष्य मूलेन कराभ्यां मृत्तिकामादाय सूर्याय दर्शयित्वा तया मृत्तिकया मूलेनाङ्गलेपनं कृत्वा मूर्द्धहृदयनाभिषु जलाञ्जलित्रयं दत्त्वा पूर्ववदाचम्य तत् त्रिकोणं दक्षिणहस्ततर्जन्या दक्षिणावर्त्तेन विलोड्य चक्षुरादि सप्तछिद्राणि प्रसृतकरद्वयाङ्गुलिभिराच्छाद्य मूलविद्यामुच्चरन् तत्र त्रिर्निमज्य देवतां ध्यायन् उन्मज्य मूलविद्यया त्रिवारमभिमन्त्रितेन पयसा कलसमुद्रया त्रिवारमात्ममूर्द्धानमभिषिच्य ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहेत्याचामेत्।।३२।।**

तदनन्तर 'ॐ अद्येत्यादि अमुकदेवताप्रीतिकामो मन्त्रस्नानमहं करिष्ये' (अमुक के स्थान पर आराधित देवता का नाम देना होगा) इस प्रकार सङ्कल्प करके जल पर उंगली से त्रिकोण खींचे और उसमें तीर्थ का आवाहन इस मन्त्र से करे—'ॐ गङ्गे च यमुने

चैव गोदावरि सरस्वति, नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु'। उससे 'ॐ ह्रीं स्वाहा' मन्त्र द्वारा आचमन करना चाहिये। तदनन्तर इस जल द्वारा अपना तीन बार प्रोक्षण करके मूल मन्त्र द्वारा दोनों हाथों से मृत्तिका लाकर उसे सूर्य को दिखलाकर उस मृत्तिका से (मूलमन्त्रोच्चारण करते हुये) अंगों का लेपन करे। मस्तक, हृदय तथा नाभि में तीन जलाञ्जलि प्रदान करके पूर्ववत् आचमन करके पहले जल में (उंगली से बनाये गये) त्रिकोण को दाहिने हाथ की तर्जनी द्वारा दक्षिणावर्त्त क्रम से आलोड़ित करके चक्षु प्रभृति सात छिद्रों को (उपरोक्त त्रिकोण जल में तो नहीं दिखेगा, किन्तु प्रतीकरूप में जल को हिलाकर पहले बनाया गया था, उसे ही आलोड़ित करना है) हस्तद्वय की उंगलियों से आच्छादित करके (यह क्रमशः एक-एक करके आच्छादित किया जायेगा) मूल विद्या (मूल मन्त्र) का उच्चारण करते हुये उस नदी प्रभृति के जल में तीन बार डुबकी लगाकर देवता का ध्यान करते-करते उन्मज्जन करे और मूल विद्या के द्वार तीन बार अभिमन्त्रित जल से कलश मुद्रा से तीन बार अपने मस्तक का अभिषेक करके ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा मन्त्र द्वारा आचमन करना होगा।।३२।।

यथा नीलतन्त्रे—

मृत्कुशानपि संगृह्य गत्वा जलान्तिकं ततः।
मलापकर्षणं स्नात्वा मन्त्रस्नानं समाचरेत्।।३३।।

जैसा कि नीलतन्त्र में कहा भी है कि मृत्तिका तथा कुशों का संग्रह करके जल में मलापकर्षक स्नान करके तब (प्रोक्षणादि) मन्त्रस्नान करे।।३३।।

कुलचूड़ामणौ—

कृष्णरक्तहरिन्नीला विविधा मम मूर्त्तयः।
तत्र यत्कुलगः शिष्यः स तद्रूपं परामृशन्।।३४।।
दिवं स्वर्गमथोर्वीञ्च पातालतलसम्भवम्।
आचान्तः कुलदर्भेण सन्दर्भः कुलपात्रकः।।३५।।
कुलपात्रं सदूर्वाञ्च सलिलं सजलं ततः।
गृहीत्वा कुलदेवस्य प्रीतये स्नानमाचरेत्।।३६।।

कुलचूड़ामणि में कहा है कि मेरी कृष्ण, रक्त, हरित तथा नीलवर्ण की नाना मूर्त्तियाँ हैं। उनमें शिष्य जिस कुलगत होगा वह द्युलोक, स्वर्ग, पृथ्वी एवं पाताल तल सम्भव उस रूप को आचमन करते-करते स्मरण करे (जिस कुलगत होगा अर्थात् उसकी कुलपरम्परा में जिस रूप की आराधना की जाती है) और कुलदर्भ धारण करके

कुलपात्र को दूर्वायुक्त करके जलयुक्त उस कुलपात्र को (कपालादि को) लेकर कुल-देवता की प्रसन्नता हेतु स्नान करे।।३४-३६।।

कृतसङ्कल्प एवासौ कुलचक्रं जले न्यसेत्।
कुलस्थानात् समानीय कुलमुद्राङ्कुशेन च ॥३७॥
कुलतीर्थानि तत्रैव समावाह्य शिवात्मकम्।
तत्तोयञ्च त्रिधा पीत्वा त्रिधा च प्रोक्षणं तनोः ॥३८॥

शिष्य को चाहिये कि वह सङ्कल्प करके जल में तर्जनी द्वारा कुलचक्र (त्रिकोण) का अङ्कन करे। कुलस्थान (सूर्यमण्डल) से कुलमुद्रा अङ्कुश द्वारा उस कुलचक्र में तीर्थों का आवाहन करके उस शिवस्वरूप जल का तीन बार पान करके अर्थात् आचमन करने के पश्चात् तीन बार देह का प्रोक्षण करे।।३७-३८।।

दिवमाकाशं, तद्रूपं परामृशन्निति सर्वत्र सम्बन्धः। कुलदर्भेण स दर्भो दर्भवान्। कुलपात्रं कपालादि। कुलचक्रं त्रिकोणम्। कुलस्थानात् सूर्यात्। तोयं त्रिधा पीत्वेति आचम्येत्यर्थः॥३९॥

दिवम्—आकाश। तद्रूपं परामृशन्—उस रूप का स्मरण करते-करते वह आकाश प्रभृति सभी स्थल से सम्बद्ध होगी। कुलदर्भेण—कुलदर्भ सुवर्ण तथा रजत द्वारा। कुलपात्रं = कपाल आदि। कुलचक्रम् = त्रिकोण। कुलस्थानात् = सूर्यमण्डल से। तोयं त्रिधा पीत्वा = तीन बार आचमन।।३९।।

कुमारीतन्त्रे—

वेदाद्यञ्च तथा माया स्वाहेत्याचमनं मतम् ॥४०॥

कुमारीतन्त्र में कहा है कि वेदाद्य (ॐ) माया (ह्रीं) तथा स्वाहा मन्त्र से अर्थात् 'ॐ ह्रीं स्वाहा' द्वारा आचमन करना चाहिये।।४०।।

मायातन्त्रे—

मृत्तिकां मूलमन्त्रेण संगृह्य च करद्वये।
सूर्याय दर्शयित्वात्र पश्चाद् विलेपनं स्मृतम् ॥४१॥

मायातन्त्र में कहा है कि मूल मन्त्र से दोनों हाथों में मृत्तिका ग्रहण करके (मूल मन्त्र पढ़ते हुये मृत्तिका उठाये) उसे सूर्य को दिखलाने के पश्चात् उसका देह में लेप करना चाहिये।।४१।।

जलाञ्जलित्रयं कुर्यान्मूर्द्धहृन्नाभिकेषु च।
तत्तथाचमनं कृत्वा त्रिकोणं दक्षिणेन तु ॥४२॥

गृहीत्वा पाणिना देवि! शङ्खावर्त्तक्रमेण तु।
विलोड्य तत्र त्रिर्मज्जेदघमर्षणकं त्रिधा ।।४३।।

त्रिधेति फलातिशयार्थम्।

हे देवि! तदनन्तर मस्तक, हृदय तथा नाभि में तीन बार जलाञ्जलि देने के उपरान्त पूर्ववत् आचमन करके दाहिने हाथ द्वारा त्रिकोण धारण करके अर्थात् दाहिनी ओर त्रिकोण करके शङ्खावर्त्त क्रम से तीन बार उसे हिलाकर आलोडन करके तीन बार निमज्जन करे तथा तीन बार अघमर्षण करे। तीन बार अघमर्षण—यह अतिशय फल-प्राप्ति के लिये कहा गया है।।४२-४३।।

नीलतन्त्रे—

विद्यया त्रिर्निमज्जैवमाचामेत् पाथसा तया।
पाथसा जलेन। तया विद्यया ।।४४।।

नीलतन्त्र में कहा है कि मूल मन्त्र से तीन बार स्नान करना चाहिये। तदनन्तर पुनः इसी विद्या से जल से आचमन करना चाहिये। पाथसा = जल द्वारा। तया—उस विद्या द्वारा।।४४।।

स्वतन्त्रतन्त्रे—

मूलं पठन् मूर्ध्नि तोयं मुद्रया कुम्भसंज्ञया।
क्षिप्त्वा वारत्रयं देवि! आचामेत् साधकाग्रणीः।
आत्मविद्या शिवैस्तत्त्वैस्ततो योगगृहं विशेत् ।।४५।।

इति स्नानम्।

स्वतन्त्रतन्त्र में कहा है कि हे देवि! साधकाग्रणी व्यक्ति कुम्भ मुद्रा द्वारा मूल मन्त्र का उच्चारण करते-करते तीन बार मस्तक पर जल को छिड़के और छिड़कते समय प्रथमतः ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, द्वितीयतः ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, तृतीयतः ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा द्वारा आचमन करके यज्ञगृह में प्रवेश करे।।४५।।

ततस्तत्र गृहादौ वा स्थित्वा सूर्यार्घ्यदानपर्यन्तां वैदिकसन्ध्यां कृत्वा तान्त्रिक-सन्ध्यां कुर्यात्। सा यथा—आत्मतत्त्वाद्यैराचम्य षडङ्गन्यासं कृत्वा वामहस्ते जलं गृहीत्वा दक्षिणेनाच्छाद्य हं यं वं लं रं इति त्रिरभिमन्त्र्य मूलेन गलदम्बुभिस्तत्त्वमुद्रया मूर्द्धानं सप्तधाभ्युक्ष्य शेषजलं दक्षिणहस्ते समादायाघ्राय इड़याकृष्य देहान्तः पापं प्रक्षाल्य कृष्णवर्णं तज्जलं पापरूपं पिङ्गलया विरिच्य पुरतो वज्रपाषाणे फडिति मन्त्रेण ताडयेदि-त्यघमर्षणम्।।४६।।

तदनन्तर नदी तट पर अथवा गृहादि में अवस्थित होकर सूर्यार्घ्यदान-पर्यन्त वैदिक सन्ध्या करके तान्त्रिक सन्ध्या करनी चाहिये। जैसे आत्मतत्त्वादि द्वारा आचमन करके (ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा इत्यादि) षडङ्गन्यास करने के पश्चात् बाँयीं हथेली पर जल लेकर दाहिने हाथ द्वारा (हथेली से) उसे ढककर 'हं यं वं लं रं' मन्त्र से जल को तीन बार अभिमन्त्रित करके मूल मन्त्र द्वारा तत्त्वमुद्रा से क्षरित उस जल द्वारा मस्तक पर सात बार अभ्युक्षण करे ओर बचे जल को दाहिनी हथेली में लेकर नाक (इड़ा नाड़ी) द्वारा उसका आकर्षण (भीतर खींचकर) उससे देह के भीतर स्थित पाप-प्रक्षालन की भावना करनी चाहिये। तदनन्तर पिङ्गला नाड़ी वाली नासिका से उस पापरूप जल की कृष्णवर्ण रूप से भावना करे कि पाप बाहर आ गया है तथा 'वज्रपाषाणे फट्' मन्त्र द्वारा उसे फेंके। यह प्रक्रिया अघमर्षण कहलाती है।।४६।।

ततो हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य गुरूंस्तर्पयेत्। यथा श्री अमुकानन्दनाथभैरवस्तृप्यतामिति क्रमेण दिव्यसिद्धमानवौघगुरून् सन्तर्प्य निजगुरुं तर्पयेत्। ततो देवीं तर्पयेत्। यथा—जले यन्त्रं विलिख्य तत्र देवीमावाह्य मूलान्ते श्रीमहाकालसहितदक्षिणे कालिके मातस्तृप्यतामिति त्रिः सन्तर्प्य एकैकाञ्जलिना परिवारान् तर्पयेत्। अशक्तौ तु सायुधवाहनसपरिवारमहाकालसहितश्रीदक्षिणे कालिके मातस्तृप्यतामिति त्रिस्तर्पयेत्।।४७।।

अब दोनों हाथ धोकर तथा आचमनोपरान्त गुरु का तर्पण करे—जैसे 'श्री अमुकानन्द नाथभैरवम्तृप्यताम्'। इसके द्वारा दिव्यौघ, सिद्धौघ तथा मानवौघ गुरुगण का तर्पण करके अपने गुरु का तर्पण करे। अब देवी का तर्पण करे। जैसे उंगली से जल में यन्त्र बनाकर उस यन्त्र में देवी का आवाहन करके मूल मन्त्र के अन्त में 'श्रीमहाकालसहितदक्षिणे कालिके मातस्तृप्यताम्' द्वारा तीन बार तर्पण करके एक-एक अञ्जलि द्वारा परिवारगण का तर्पण करे। अशक्त होने पर अन्त में वाहन, आयुध, परिवार के साथ महाकाल सहित श्रीमद् दक्षिण कालिका का तीन बार तर्पण करना चाहिये। 'सायुधवाहनसपरिवाराय महाकालसहितश्रीदक्षिणे कालिके मातस्तृप्यताम्' यह मन्त्र है।।४७।।

तन्त्रे—

तर्पणादौ प्रयुञ्जीत तृप्यतां ब्रह्मभैरव!।
आवाहनेष्वपि पितॄन् भैरवानपि कीर्त्तयेत्।।४८।।
तत्र भैरवरूपेण देवीमपि च कालिकाम्।
तृप्यतां कालिके मातः पितर्भैरव तृप्यताम्।
एवमेव विधानेन यथाशक्त्या च तर्पयेत्।।४९।।

इति श्यामारहस्यम्।

श्यामारहस्य में कहते हैं—हे ब्रह्मभैरव! तर्पण में 'तृप्यतां' का प्रयोग करना चाहिये। आवाहन में भी भैरवरूप 'पितॄन् भैरवान्' कहे। देवी कालिका को 'मातस्तृप्यताम् पितर्भैरवस्तृप्यताम्' इस विधानानुसार यथाशक्ति तर्पण करना चाहिये।।४८-४९।।

साम्प्रदायिकमते तु प्रागुक्ताह—कृत्यान्तर्गततर्पणरीत्यैव तर्पणम्। काली-गुरवस्तु वीरतन्त्रोक्ताः पूजावसरे वक्तव्याः। ततो ह्रीं हंसः श्रीमार्तण्ड-भैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहेति सूर्याय त्रिरेकधा वाऽर्घ्यं दत्त्वा सूर्यमण्डले देवीं विभाव्य ॐ सूर्यमण्डलवासिन्यै श्रीदक्षिणकालिकायै इदमर्घ्यं स्वाहेति त्रिरर्घ्यं दत्त्वा गायत्रीं यथाशक्ति जप्त्वा देवीवामहस्ते समर्पयेत्।।५०।।

साम्प्रदायिक मत से अहःकृत्यान्तर्गत तर्पणानुसार ही तर्पण करना होगा। यह सब वीरतन्त्रोक्त काली गुरुसमूह के पूजन वर्णन प्रसङ्ग में कहा जायेगा।

तत्पश्चात् (तर्पण के पश्चात्) 'ॐ ह्रीं हंसः श्रीमार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा' मन्त्र से सूर्य को तीन बार अथवा एक बार अर्घ्य देकर सूर्यमण्डल में देवी की भावना करके 'ॐ सूर्यमण्डलवासिन्यै श्रीदक्षिणकालिकायै इदमर्घ्यं स्वाहा' द्वारा तीन बार अर्घ्य देकर यथाशक्ति गायत्री (दक्षिणकालिका गायत्री) का जप करके देवी के वाम हस्त में जप का समर्पण करना चाहिये।।५०।।

नन्दिकेश्वरसंहितायां—

यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय निवेदनम्।
तावन्न पूजयेद् विष्णुं शङ्करं वा सुरेश्वरीम्।।५१।।

नन्दिकेश्वर संहिता में कहा है कि जब तक सूर्य को अर्घ्य न दे दिया जाय तब तक विष्णु, शंकर अथवा सुरेश्वरी का पूजन नहीं करना चाहिये।।५१।।

तन्त्रान्तरे—

दिनेशायोत्क्षिपेत्तिष्ठन् वारिणा चाञ्जलित्रयम्।
अष्टोत्तरशतावृत्त्या गायत्रीं प्रजपेत् सुधीः।।५२।।

तन्त्रान्तर में कहते हैं कि सुधी पूजक खड़ा होकर सूर्य को अञ्जलित्रय जल प्रदान करे तथा १०८ बार गायत्री का जप करे।।५२।।

गायत्री यथा कुमारीतन्त्रे—

कालिकायै पदं प्रोक्त्वा विद्महे तदनन्तरम्।
श्मशानवासिनीं ङेऽन्तां धीमहीति ततो वदेत्।
तन्नो घोरे पदं प्रोच्य प्रचोदयाद् वदेदिति।।५३।।

कुमारी तन्त्र में गायत्री कहते हैं—'कालिकायै' कहकर 'विद्महे' कहे। तदनन्तर चतुर्थी विभक्त्यन्त श्मशानवासिनी अर्थात् 'श्मशानवासिन्यै' तथा 'धीमहि' कहे तदनन्तर 'तन्नो घोरे' कहकर 'प्रचोदयात्' कहना चाहिये। अतएव मन्त्रोद्धार होता है—
ॐ कालिकायै विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो घोरे प्रचोदयात्।।५३।।

अस्या प्रसादमात्रेण महापातककोटय: ।
सद्य: प्रलयमायान्ति साधकस्य न चान्यथा ॥५४॥

यह गायत्री केवल अनुग्रह द्वारा ही साधक के करोड़ों पापों की नाशिका है। यह कभी भी अन्यथा नहीं होती।।५४।।

रावणस्य वधाच्चैव रामचन्द्रो विमोचित: ।
गुरुदाराकर्षणाच्च देवेन्द्रोऽपि विमोचित: ॥५५॥

इस गायत्री के अनुग्रह से ही रावणवध-जनित (ब्रह्महत्या के) पाप से राम विमुक्त हुये थे। गुरुपत्नी के आकर्षण-जनित पाप से इन्द्र ने भी इसी गायत्री की कृपा से त्राण पाया था।।५५।।

निजकन्याकर्षणाच्च ब्रह्मा चापि विमोचित: ।
मातृवधात् पर्शुरामो मुक्तश्चास्या प्रसादत: ॥५६॥

अपनी कन्या के प्रति मोहित होने के पाप से ब्रह्मा तथा मातृवध के पाप से परशुराम का छुटकारा भी इसी गायत्री की कृपा से हो सका था।।५६।।

सुरापानाच्च श्रीकृष्णो दत्तात्रेयस्तथैव च ।
एवमेषा महाविद्या गोप्तव्या देवी सुन्दरि! ॥५७॥

इसी प्रकार श्रीकृष्ण तथा श्री दत्तात्रेय की मुक्ति भी इसी से हो सकी थी। हे देवि! यह महाविद्या गोपनीया है।।५७।।

महापातकयुक्तोऽपि प्रजपेद् दशधा यदि ।
सत्यं सत्यं महादेवि! मुक्तो भवति तत्क्षणात् ॥५८॥

हे महादेवि! महापातक से युक्त व्यक्ति भी इस गायत्री का १० बार जप करे तो वह महापातक से तत्क्षण ही मुक्त हो जाता है।।५८।।

तत: स्वस्वमन्त्रमष्टोत्तरशतं जप्त्वा जपं समर्प्य संहारमुद्रया सूर्यमण्डलाद् देवीं स्वहृदयमानयेत् ॥५९॥

तदनन्तर अपने-अपने इष्ट मन्त्र का १०८ बार जप करके समर्पण करके संहार मुद्रा में सूर्यमण्डल से अपने हृदय में देवी का आनयन करे।।५९।।

यथा च—

ततो विद्यां हृदि ध्यात्वा अष्टोत्तरशतं जपेत्।
अबहिर्मानसो योगी यागभूमिमथाविशेत् ॥६०॥

तदनन्तर देवी का हृदय में ध्यान करके इस विद्या का १०८ बार जप करके योगी अन्तर्मुख होकर यज्ञभूमि में प्रवेश करे।।६०।।

एतत् पर्यन्तं जलेऽपि कर्त्तुं शक्यते। ततो धौतवाससी परिधाय पादौ हस्तौ च प्रक्षाल्य तिलकं कुर्यात् ॥६१॥

यहाँ तक का कार्य जल में भी कर सकते हैं। तदनन्तर धुला वस्त्र तथा उत्तरीय पहन कर पैरों तथा हाथों को धोकर तिलक लगाये।।६१।।

कुलचूड़ामणौ—

उत्थाय कुलवस्त्रे द्वे परिधाय कुलेन च।
तिलकं कुलरूपन्तु कृत्वाचम्य कुलेश्वरः ॥६२॥

कुलचूड़ामणि में कहा है कि कुलसाधक अब जल से बाहर आकर दो कुलवस्त्र धारण करके कुल के द्वारा कुलरूप तिलक लगाकर आचमन करके (यज्ञशाला में प्रवेश करे)।।६२।।

कुलवस्त्रं रक्तादिवस्त्रं प्रागुक्तम्। कुलेन रक्तचन्दनादिना। कुलरूपं त्रिपुण्ड्राद्यात्मकम्। कुलेश्वरः साधकः॥६३॥

कुलवस्त्रम् = लाल वस्त्र। कुलेन = रक्तचन्दनादि से। कुलरूपम् = त्रिपुण्ड्रादि लगाकर। कुलेश्वर = साधक।।६३।।

मायातन्त्रे—

तिलकं रक्तगन्धेन गोपीनां चन्दनेन च ॥६४॥

मायातन्त्र में कहा है कि रक्तगन्ध द्वारा अथवा गोपीचन्दन से तिलक करना चाहिये।।६४।।

स्वतन्त्रतन्त्रे—

मोक्षार्थी रक्तवस्त्रे च भोगार्थी श्वेतवाससी।
मारणे कृष्णवासस्तु वश्ये रक्तं सदा गृही ॥६५॥

स्वतन्त्रतन्त्र में कहा है कि गृही यदि मोक्षार्थी हो तब लाल वस्त्र, भोगार्थी हो तब श्वेत वस्त्र, मारण में कृष्ण वस्त्र तथा वशीकरण प्रयोग में रक्त वस्त्र धारण करे।।६५।।

उच्चाटने व्याघ्रचर्म वृक्षत्वक् स्तम्भकर्मणि।
परिधाय ततो मन्त्री यागभूमिमथाविशेत् ॥६६॥

उच्चाटनार्थ व्याघ्रचर्म, स्तम्भनार्थ वल्कल पहनना चाहिये। तब साधक यागभूमि में प्रवेश करे।।६६।।

•

अथ मन्त्राचमनम्

यथा—

कालिकाभिस्त्रिभिः पीत्वा काल्यादिभिरुपस्पृशेत्।
द्वाभ्यामोष्ठौ द्विरुन्मृज्य चैकेन क्षालयेत् करम्॥१॥
मुखघ्राणेक्षणश्रोत्रनाभ्यूरस्कं भुजौ क्रमात्।
आचम्यैवं भवेत् काली वत्सरात्तां प्रपश्यति॥२॥

अब मन्त्राचमन कहा जाता है। तन्त्र के अनुसार कालिका के तीन बीज द्वारा आचमन करके काली के मन्त्रों द्वारा इन्द्रिय स्थानों का स्पर्श करना चाहिये। दो मन्त्रों द्वारा दोनों ओठ का दो बार मार्जन करके एक मन्त्र से हाथ धोये। तदनन्तर मुख, दोनों नाक, दोनों नेत्र, दोनों कान, नाभि, वक्ष, मस्तक तथा बाहुद्वय का स्पर्श करना चाहिये। इस प्रकार से आचमन करके कालीरूपता प्राप्त होती है और एक वर्ष में उनको देखने का सौभाग्य मिलता है॥१-२॥

कं शिरः। कालिकाभिः कालिकाबीजैः। तथा च क्रीमिति त्रिराचामेत्। ॐ काल्यै नमः, ॐ कपालिन्यै नमः इत्योष्ठौ द्विरुन्मृजेत्। ॐ कुल्लायै नमः इति करं क्षालयेत्। ॐ कुरुकुल्लायै नमः इति मुखे, ॐ विरोधिन्यै नमः, ॐ विप्रचित्तायै नमः इति दक्षिणवामनासयोः। ॐ उग्रायै नमः, ॐ उग्रप्रभायै नमः इति दक्षिणवामनेत्रयोः। ॐ दीप्तायै नमः, ॐ नीलायै नमः इति दक्षिणवामश्रोत्रयोः। धनायै नमः इति नाभौ। बलाकायै नमः इति वक्षसि। ॐ मात्रायै नमः इति शिरसि। ॐ मुद्रायै नमः, ॐ नित्यायै नमः इति दक्षवामांसयोः इदं मन्त्राचमनं पापक्षयाय अन्यदापि कर्त्तुं युज्यते॥३॥

कं—मस्तक। कालिकाभि: = ३ कालिका बीज द्वारा अर्थात् क्रीं क्रीं क्रीं प्रत्येक क्रीं से एक आचमन।

अब ॐ काल्यै नम: तथा ॐ कपालिन्यै नम: से ओष्ठ का प्रक्षालन (ॐ काल्यै नम: से एक बार ऊपरी ओठ, ॐ कपालिन्यै नम: द्वारा निचला ओठ), ॐ कुल्लायै नम: द्वारा हस्त प्रक्षालन, ॐ कुरुकुल्लायै नम: से मुख का, ॐ विरोधिन्यै

नम: से दाहिनी नासिका का, ॐ विप्रचित्तायै नम: द्वारा वाम नासिका का प्रक्षालन किया जाय। ॐ उग्रायै नम: से दक्षिण नेत्र, ॐ उग्रप्रभायै नम: द्वारा वाम नेत्र, ॐ दीप्तायै नम: से दक्षिण कर्ण, ॐ नीलायै नम: से वाम कर्ण, ॐ धनायै नम: मन्त्र से नाभि, ॐ बलाकायै नम: से वक्ष, ॐ मात्रायै नम: से मस्तक, ॐ मुद्रायै नम: से दक्षिण स्कन्ध, ॐ नित्यायै नम: से वाम स्कन्ध का स्पर्श करे। यह मन्त्राचमन पापक्षय के लिये अन्य समय भी कर सकते हैं।।३।।

अथ पूजाविधि:

यागस्थानं गत्वा ॐ ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहेति जलमभिमन्त्र्य सव्ये समानीयासनमभ्युक्ष्य तत्रोपविश्य ॐ ह्रीं विशुद्धसर्वपापानि शमयाशेष-विकल्पमपनय हुं फट् स्वाहेति चरणौ प्रक्षाल्य, ॐ मणिधरणि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहेति शिखाबन्धनं कृत्वा कुलदर्भान् दर्भान् वा करयोर्दत्वा ॐ ह्रीं स्वाहेत्याचामेत्।।४।।

अब पूजाविधि कहते हैं। याग (पूजा) स्थान में जाकर 'ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करके वाम हस्त में रखकर उसके द्वारा आसन का अभ्युक्षण करके उस आसन पर बैठकर 'ॐ ह्रीं विशुद्धसर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा' मन्त्र द्वारा दोनों पैर धोकर 'ॐ मणिधरणि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से शिखाबन्धन करके कुलदर्भ (सुवर्ण अथवा चाँदी अथवा दर्भसमूह दोनों हाथ में देकर 'ॐ ह्रीं स्वाहा' मन्त्र से आचमन करना चाहिये।।४।।

तदुक्तं कुमारीकल्पे—

ॐ ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहामन्त्रेण मन्त्रवित्।
जलमानीय सव्ये तु आसनं शोधयेत्ततः ।।५।।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य लज्जाबीजं तथैव च।
ततो विशुद्धान्ते सर्वपापानि शमयादथ ।।६।।
अशेषान्ते विकल्पं स्यादपनयेति तत्परम्।
कूर्चबीजं तथाऽस्त्रञ्च वह्निजाया ततः परम्।
अनेन साधकः कुर्यात् पादप्रक्षालनं प्रिये ।।७।।

मन्त्र को जानने वाला साधक 'ॐ ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा' द्वारा वाम ओर जल रखकर उससे आसन शोधन करके प्रथमत: प्रणव (ॐ) तदनन्तर लज्जाबीज (ह्रीं) का उच्चारण करके विशुद्ध पद के अन्त में सर्वपापानि शमय पद के पश्चात्

अशेष पद के अनन्तर विकल्पगपनय कहकर तत्पश्चात् कूर्चबीज (हुं) अस्त्र (फट्) तदनन्तर वह्निजाया (स्वाहा) कहे। हे प्रिये! इस मन्त्र से साधक को पादप्रक्षालन करना चाहिये।।५-७।।

तथा—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य मण्यन्ते धरणीति च।
वज्रणीति पदं प्रोक्त्वा महाप्रतिसरे तथा ॥८॥
रक्षद्वयं ततो हुं फट् स्वाहा च तदनन्तरम्।
अनेनैव विधानेन रक्षां कुर्याद् विचक्षणः ॥९॥

इसी प्रकार और भी कहा है कि प्रथमतः प्रणव (ॐ) का उच्चारण करके मणि शब्द के अन्त में धरणि पद कहकर वज्रिणि पद कहे और महाप्रतिसरे कहने के उपरान्त रक्ष रक्ष तत्पश्चात् हुं फट् स्वाहा कहे। विद्वान् साधक इस मन्त्र से रक्षा करे (अपनी रक्षार्थ प्रयोग करे)। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ मणिधरणि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा।।८-९।।

तन्त्रे—

वेदाद्यश्च तथा माया स्वाहेत्याचमने मनुः ॥१०॥ इति।

तन्त्र में कहा है कि वेदाद्य (ॐ) माया (ह्रीं) तथा स्वाहा मन्त्र से आचमन करना चाहिये। मन्त्र है—ॐ ह्रीं स्वाहा।।१०।।

कुमारीकल्पे—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य सर्वविघ्नान् ततः परम्।
उत्सारय ततो हुं फट् स्वाहा च तदनन्तरम्।
अनेनैव च मन्त्रेण विघ्नमुत्सारयेत् सुधीः ॥११॥

कुमारीकल्पानुसार पहले प्रणव (ॐ) का उद्धार करके सर्वविघ्नान् तदनन्तर उत्सारय तदनन्तर हुं फट् स्वाहा कहे। इस मन्त्र से साधक विघ्नों का उत्सारण करे। मन्त्रोद्धार है—ॐ सर्वविघ्नान् उत्सारय हुं फट् स्वाहा।।११।।

तेन ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहेति सिद्धार्थतिलैर्नाराचमुद्रया भूतापसरणं कृत्वा ॐ रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहेति मुष्टिनिःसृतजलेन भूमिशोधनं कृत्वा ॐ पवित्र वज्र हुं हुं फट् स्वाहेति भूमिमभिमन्त्रयेत् ॥१२॥

अत एव सर्व विघ्नों को हटाने के लिये 'ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा'

मन्त्र से नाराच मुद्रा से श्वेत सरसों तथा तिलों से भूतापसारण करके (मन्त्र पढ़कर सभी दिशाओं में यह छिड़के) 'ॐ पवित्र वज्र हुं हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से भूमि को अभिमन्त्रित करना चाहिये।।१२।।

तदुक्तं कुमारीकल्पे—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य रक्षद्वयमतः परम्।
हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेण भूमिञ्च परिशोधयेत्॥१३॥
ततः पवित्रवज्रादौ प्रणवं पूर्वमुद्धरेत्।
वर्मद्वयं ततश्चैव फट् स्वाहा तदनन्तरम्।
अनेनैव च मन्त्रेण कुर्याद् भूम्यभिमन्त्रणम्॥१४॥

कुमारीकल्प में कहते हैं कि प्रथमतः प्रणव का उच्चारण करके तत्पश्चात् 'रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से भूमिशोधन करना चाहिये। तत्पश्चात् पवित्र वज्र शब्द के पूर्व में प्रथमतः प्रणव का उच्चारण करे अर्थात् 'ॐ पवित्र वज्र' कहकर तत्पश्चात् वर्मद्वय अर्थात् हुं हुं तथा उसके पश्चात् फट् स्वाहा द्वारा भूमि का शोधन करे। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ पवित्र वज्र हुं हुं फट् स्वाहा।।१३-१४।।

अत्र वर्म दीर्घं, हूं फड़ेकादशस्यापि वाचकत्वात्। ततो भूमौ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहेति त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत ॐ आधार-शक्त्यादिभ्यो नमः इति सम्पूज्य तत्र कोमलाद्यासनं तदभावे कम्बलाद्यासनं संस्थाप्य कुशविष्टरे शवप्राणप्रतिष्ठां कृत्वा तत्र तं संस्थाप्य कृताञ्जलिः मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मोऽत्र देवता आसनपरिग्रहे विनियोगः।

ॐ पृथ्वि! त्वया धृता लोके देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां नित्यं पवित्रं कुरु चासनम्॥

इति पठित्वा ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः इत्यासनं पूजयेत्॥१५॥

यहाँ पर वर्म दीर्घ हूं है। वर्म शब्द हुं फट् तथा एकादश स्वर का भी बोधक है। इसके पश्चात् 'ॐ आधारशक्त्यादिभ्यो नमः' मन्त्र से उस त्रिकोण में पूजन करके उसके ऊपर कोमलादि आसन (बालक के शव का आसन) अथवा उसके अभाव में कम्बलादि आसन बिछाकर कुश में शव की प्राणप्रतिष्ठा करके (जहाँ शव का उपयोग न करे, वहाँ कुश बिछाकर उसमें शव की प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये, यह विवरण प्रथम खण्ड में हैं) उसे आसन स्थान पर रखकर (कुश को प्राणप्रतिष्ठोपरान्त आसन पर रखकर) कृताञ्जलि होकर 'ॐ आसनमन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनपरिग्रहे विनियोगः' तथा ऊपर लिखा ॐ पृथ्वी इत्यादि श्लोक पढ़कर 'ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' मन्त्र से आसन-पूजन करना चाहिये।।१५।।

यथा तन्त्रान्तरे—

भूमौ त्रिकोणमालिख्याधारशक्त्यादि पूजयेत् ॥१६॥

जैसे तन्त्रान्तर में कहा गया है कि भूमि पर त्रिकोण बनाकर वहाँ आधारशक्ति आदि का पूजन करना चाहिये।।१६।।

तथा—

मायाबीजं समुद्धृत्याधारशक्तिं समुच्चरन्।
तेन्तं कमलासनमास्तीर्य नमोऽन्तञ्च प्रपूजयेत् ॥१७॥

इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि मायाबीज (ह्रीं) का उद्धार करके आधारशक्ति कहे, तदनन्तर चतुर्थी विभक्तियुक्त कमलासन कहे अर्थात् कमलासनाय। तदनन्तर नमः का उच्चारण करे। अतः मन्त्रोद्धार होता है—ॐ ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः। इस मन्त्र से पूजन करना चाहिये।।१७।।

कुमारीकल्पे—

आःकारान्तं सुरेखे च वज्ररेखे ततः परम्।
हुं फट् स्वाहेति कुर्यात्तु मण्डलञ्च शवासने।
वीरासनेनोपविशेत् सम्पूज्यासनमेव च ॥१८॥

कुमारीकल्प में कहा है कि 'आ' के अन्त में 'सुरेखे' तथा 'वज्ररेखे' तदनन्तर 'हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से मण्डल बनाकर आसन का पूजा करके शवासन पर (जहाँ शव नहीं हो, वहाँ कुश में शव की प्राणप्रतिष्ठा करके) वीरासन से बैठना चाहिये।।१८।।

शवासन इत्यस्योपविशेदित्यत्रान्वयः। एवंविधिनासनं संस्थाप्य पद्म-स्वस्तिकवीरासनान्यतमासनेनोत्तरमुखे उपविशेत्॥१९॥

शवासन = शव पर बैठे। इस प्रकार नियमानुसार आसन बिछाकर पद्मासन, स्वस्तिकासन, वीरासन इनमें से किसी पर उत्तर की ओर मुख करके बैठे।।१९।।

यथा मत्स्यसूक्ते—

मृदुं चूड़कमासीनश्चान्येषु कोमलेषु वा।
विष्टरेषु समासीनः साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम् ॥२०॥

मत्स्यसूक्त में आसनों के सम्बन्ध में कहते हैं कि मृदु आसन अथवा चूड़क आसन (ये दोनों शव के प्रकार हैं। ग्रन्थ के प्रथम खण्ड को देखें) पर बैठकर अथवा अन्य कोमल आसन अथवा विष्टर (कुशा से बने) पर बैठकर साधक को उत्तम सिद्धि-हेतु साधना करनी चाहिये।।२०।।

मृद्वादिलक्षणमाह नीलतन्त्रे—

अर्वाक् षण्मासतो गर्भच्युतमाहुर्मृदुं बुधाः।
चूड़ोपनयनैर्हीनं मृतमचूडकं विदुः ॥२१॥
निवृत्तचूड़को बालो हीनोपनयनः पुमान्।
यो मृतः पञ्चमे वर्षे तमेव कोमलं विदुः ॥२२॥

नीलतन्त्र में मृदु आदि आसन बताते हुये कहते हैं कि छः माह से पहले के गर्भपात से गर्भच्युत शव को 'मृदु' कहते हैं। चूड़ाकरण तथा उपनयन के पूर्व ही मरे बालक के शव को 'अचूड़' कहा जाता है। जिसका चूड़ाकरण हो चुका है, परन्तु उपनयन नहीं हुआ है उस बालक के शव को (यदि वह पाँच वर्ष की उम्र के पहले मरा हो) 'कोमल' कहा गया है।।२१-२२।।

स्वतन्त्रे—

कम्बले लोहितं वापि कृष्णे वा व्याघ्रचर्मणि।
संन्यासी ब्रह्मचारी तु विशेत् कृष्णस्य चर्मणि ॥२३॥

स्वतन्त्रतन्त्र के अनुसार रक्तकम्बल अथवा कृष्ण वर्ण कम्बल का अथवा व्याघ्रचर्म का आसन बनाना चाहिये। संन्यासी तथा ब्रह्मचारी को ही कृष्ण मृग के चर्म के आसन-प्रयोग का अधिकार है।।२३।।

मत्स्यसूक्ते—

कृष्णसारं द्वीपिचर्म अचूडं कम्बलं तथा।
पीतं वस्त्रञ्च शुक्लञ्च आसनाय प्रकल्पयेत् ॥२४॥

मत्स्यसूक्त में कहा है कि कृष्णसार का चर्म, द्वीपी चर्म, अचूड़, पीला कम्बल तथा श्वेत वस्त्र को आसन कहा गया है।।२४।।

कालीतन्त्रे—

मृतासनं विना देवि यो जपेत् कालिकां नरः।
तावत् कालं नारकी स्यात् यावदाहूतसम्प्लवम् ॥२५॥

कालीतन्त्र में कहते है कि हे देवि! मृतासन पर आसीन हुये विना जो काली के मन्त्र का जप करता है, वह जब तक संसार में प्रलय नहीं हो जाता तव तक नरक में वास करता है।।२५।।

अत्रावसरे विजयां स्वीकुर्वन्ति। पठन्ति च भावचूड़ामणौ—

विना हेतुकमासाद्य क्षोभयुक्तो महेश्वरः।

न जापं मम संकुर्यान्न ध्यानं न च पूजनम्।
तस्माद् भुक्त्वा च पीत्वा च पूजयेत् परमेश्वरीम्॥२६॥

इस अवसर पर विजया ग्रहण करना चाहिये। भावचूड़ामणि में कहते हैं कि विना विजया ग्रहण किये जप-पूजादि करने से महेश्वर क्रुद्ध हो जाते हैं। वे कहते है कि हेतुक (विजया) के विना मेरा जप-ध्यान-पूजन नहीं करना चाहिये। अतएव भोजन तथा पान करके परमेश्वरी का पूजन करना चाहिये।।२६।।

विजयाकल्पे—

संविदासवयोर्मध्ये संविदेव गरीयसी।
संवित् प्रयोगस्तेनेह पूजादौ साधकोत्तमः।
कर्त्तव्यश्च महापूजा करणीयाभिनन्दितैः॥२७॥

विजयाकल्प में कहा है कि संविदा (विजया) तथा आसव (मदिरा) के बीच संविदा ही गरीयसी है। इसलिये श्रेष्ठ साधक पूजादि में संविदा का ही प्रयोग करते हैं। अभिनन्दित साधक द्वारा ही पूजा करणीय है।।२७।।

तत् शोधनस्वीकारादिप्रकारस्तु श्यामारहस्यादौ द्रष्टव्यः। विजयादिस्वीकारस्त्ववधूतपर इत्यवधेयम्॥२८॥

श्यामारहस्यादि में विजयाशोधन तथा स्वीकार का प्रकाश किया गया है। उसे देखना चाहिये। किन्तु विजया-ग्रहण अवधूत के लिये है, यह ज्ञात रखना होगा।।२८।।

ततो वामकर्णोद्‌र्ध्वे ॐ गुरुभ्यो नमः। दक्षकर्णोद्‌र्ध्वे गं गणेशाय नमः मध्ये श्रीकालिकायै देवतायै नमः इति नमस्कुर्यात्। ततः स्ववामे सामान्यार्घ्यं विधाय तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य स्वदक्षिणे गन्धपुष्पादिकं वामे सुगन्धि जलं देवतायाः पश्चिमे कुलद्रव्याणि अन्यत् पानादिकं देवतावामे स्थापयेत्॥२९॥

तदनन्तर वाम कर्ण के ऊर्ध्व में, ॐ गुरुभ्यो नमः, दक्षिण कर्ण के ऊर्ध्व में ॐ गं गणेशाय नमः, मध्य में ॐ श्री कालिकायै देवतायै नमः मन्त्र से नमस्कार करना चाहिये। तत्पश्चात् अपने वाम भाग में सामान्यार्घ्य स्थापित करके उसके जल द्वारा अपने तथा पूजा के उपकरणों का अभ्युक्षण करके अपने दाहिने गन्धपुष्पादि, बाँयें सुगन्धि जल, देवता के पश्चिम में कुलद्रव्य तथा वाम भाग में अन्य पानादि द्रव्य का स्थापन करे।।२९।।

कुलचूड़ामणौ—

सर्वञ्च दक्षिणे स्थाप्यं वामे चार्घ्यं निवेशयेत्।
देवतापश्चिमे भागे कुलद्रव्याणि धारयेत्॥३०॥

कुलचूड़ामणि में कहा है कि समस्त द्रव्य दाहिने रखकर वाम में अर्घ्य स्थापन करे। देवता के पश्चिम में कुलद्रव्यों को रखना चाहिये।।३०।।

पश्चिमे पृष्ठे इत्यर्थः। 'सुराञ्च पृष्ठतो दद्यादन्यत् पानञ्च वामतः' इति कालिकापुराणैकवाक्यत्वात्।।३१।।

पश्चिम अर्थात् पीछे। सुरा का स्थान पीठ पीछे (देवता के) है। अन्यान्य पानीय पदार्थ वाम भाग में रखना चाहिये। इसी से कालिकापुराण के साथ एकवाक्यता सिद्ध होती है।।३१।।

ततः ॐ शताभिषेक हुं फट् स्वाहा, ॐ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् सम्बन्धाय पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते। पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहेत्याभ्यां पुष्पाधिष्ठानं कुर्यात्।।३२।।

तदनन्तर 'ॐ शताभिषेक हुं फट् स्वाहा, ॐ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् सम्बन्धाय, ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते' पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा, द्वारा पुष्प में देवी का अधिष्ठान करे।।३२।।

यथा कुमारीकल्पे—

अधिष्ठाने च पुष्पस्य प्रणवं पूर्वमुच्चरेत्।
शताभिषेकेति पदं हुं फट् स्वाहा ततः परम्।
अनेन मनुना देव्याः पुष्पाधिष्ठानमेव च।।३३।।

कुमारीकल्प में कहा गया है कि पुष्पाधिष्ठान में पहले प्रणव (ॐ) का उच्चारण करना चाहिये; तत्पश्चात् 'शताभिषेक' तदनन्तर 'हुं फट् स्वाहा' कहना चाहिये। इस प्रकार मन्त्रोद्धार होता है—ॐ शताभिषेक हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र द्वारा देवी का पुष्प में अधिष्ठान होता है।।३३।।

प्रणवं पुष्पकेतुञ्च तथा राजार्हतेऽपि च।
शताय सम्यगित्युक्त्वा सम्बन्धाय ततः परम्।।३४।।
पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते।
पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहेति ततः परम्।
विशुद्धं पुष्पमेतेन जलं पूर्ववदाचरेत्।।३५।।

प्रणव (ॐ) पुष्पकेतु राजार्हते शताय सम्यक् कहकर पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा यह मन्त्र है। इससे पुष्प की शुद्धि होती है। मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—ॐ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् पुष्पे पुष्पे महापुष्पे

सुपुष्पे पुष्पभूषिते पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा। जल की शुद्धि पहले कही गई विधि से करना चाहिये।।३४-३५।।

अथ गन्धपुष्पाभ्यां करौ संशोध्य वामपार्ष्णिघातत्रयं भूमौ दत्त्वा तर्जनी-मध्यमाभ्यामूद्ध्वोर्द्ध्वतालत्रयं तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धनं कृत्वा दिव्यदृष्ट्या दिव्यान् विघ्नान् निरस्य चतुर्दिक्षु वह्निप्राकारं विचिन्त्य प्राणायामत्रयं कुर्यात्।।३६।।

अब गन्धपुष्पादि से दोनों हथेलियों का संशोधन करके बाँयें पैर की एँड़ी से तीन बार भूमि पर आघात करके तर्जनी तथा मध्यमा द्वारा ऊर्ध्व ऊर्ध्व में तीन ताली देकर तर्जनी तथा अंगुष्ठ के द्वारा चुटकी बजाते हुये दशो दिशाओं का बन्धन करके दिव्य दृष्टि से अर्थात् एकटक देखते हुये दिव्य विघ्नसमूह को भी दूर करके चारो ओर अग्नि के दीवार की भावना करके तीन बार प्राणायाम करना चाहिये।।३६।।

तदुक्तं स्वतन्त्रे—

पार्ष्णिघातकरास्फोटसमुदञ्चितवक्त्रकः ।
तालत्रयमथो दत्त्वा सशब्दं सम्प्रदायतः ।।३७।।
ऋतुचन्द्रैर्नेत्ररामै रसैर्वेदाधिकैः प्रिये: ।
मात्राभिः प्रणवं जप्त्वा पूरकुम्भकरेचकै ।
प्राणायामं ततः कृत्वा भूतशुद्धिं ततश्चरेत् ।।३८।।

स्वतन्त्रतन्त्र में कहते हैं कि हे प्रिये! वाम पैर की एड़ी के आघात से, हथेलियों के आस्फोट से (ताली से) ऊर्ध्वमुख होकर तीन बार ताली देने से सम्प्रदायानुसार ऋतु (६) तथा चन्द्र (१) अर्थात् १६ नेत्र (२) तथा राम (३) अर्थात् ३२, वेदाधिक (४) तथा रस (६) अर्थात् ६४ मात्रा में प्रणव जप करके पूरक, कुम्भक तथा रेचकरूप प्राणायाम तीन बार करके भूतशुद्धि करनी चाहिये।।३७-३८।।

अन्यत्रापि—

मनो जीवात्मनोः शुद्धिः प्राणायामेन जायते ।।३९।।

अन्यत्र भी कहा है कि प्राणायाम द्वारा मन तथा जीवात्मा की शुद्धि होती है।।३९।।

कालीहृदयेऽपि—

प्राणायामत्रयं कुर्यान् मूलेन प्रणवेन वा ।
अथवा मन्त्रबीजेन यथोक्तविधिना सुधीः ।।४०।।

कालीहृदय में भी कहा है कि सुधी साधक मूल मन्त्र द्वारा अथवा प्राणायाम से अथवा मन्त्रबीज द्वारा यथोक्त विधान से तीन प्राणायाम करे।।४०।।

बीजमत्र मायाबीजम्। तत्रायं क्रमः—मूलाधारे मनः संयोज्य दक्षाङ्गुष्ठेन दक्षनासापुटं धृत्वा मूलमन्त्रं षोडशवारं जपन् वामेन वायुमापूर्य कनिष्ठा-नामिकाभ्यामङ्गुष्ठेन च नासापुटद्वयं धृत्वा तमेव चतुःषष्टिवारं जपन् वायुं कुम्भयित्वा पुनस्तं द्वात्रिंशद्वारं जपन् दक्षिणेन वायुं रेचयेत्। एवं क्रमोत्क्रमेण वारत्रये कृते प्राणायामत्रयं भवति॥४१॥

यहाँ बीज है—माया (ह्रीं) बीज। उसका क्रम है—मूलाधार से मनः को संयुक्त करके दाहिने हाथ के अंगूठे से दाहिना नासापुट दबाकर १६ बार मूल मन्त्र का जप करते करते वाम नासापुट से वायु को अन्दर खींचे (पूरण करे)। अब दाहिनी नासिका को दाहिने अंगूठे से तथा बाँयीं नासिका को दाहिनी अनामिका तथा कनिष्ठा से दवाना चाहिये। इस अवस्था में ६४ बार मूल मन्त्र का (अथवा ह्रीं का) जप करते-करते कुम्भक करे। पुनः दक्षिण नासिका से दाहिना अंगूठा हटाकर ३२ बार जप करते-करते धीरे-धीरे रोकी गयी वायु को बाहर छोड़ना चाहिये (रेचन करे)। ऐसी ही प्रक्रिया तीन बार करने से तीन प्राणायाम निष्पन्न होता है।।४१।।

अथ भूतशुद्धिः

अङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा सामान्यपद्धत्युक्तभूतशुद्धिप्रक्रियया जीवात्म-कुलकुण्डलिनीतत्त्वानि परमशिवे संयोज्य पूरककुम्भकरेचकादिक्रमेण देहं संशोध्य आं सोहऽमिति मन्त्रेण विपरीतगत्या षट्चक्रभेदेन जीवात्मानं शिवसंयोगजनितसुधाधारालोलीभूतां कुलकुण्डलिनीं पृथिव्यादिपञ्च-भूतात्मकपञ्चतत्त्वानि गन्धाद्येकोनविंशतितत्त्वानि च यथायथं स्वस्वस्थाने नियोजयेत्। ततो देवीरूपमात्मानं विभाव्य स्वहृदि हस्तं दत्त्वा आं ह्रीं क्रों स्वाहेति मन्त्रं जपन्नात्मनि देवताजीवन्यासं कुर्यात्॥४२॥

अब भूतशुद्धि कहते हैं—अपनी गोद में दोनों हथेली को उत्तान स्थिति में रखकर सामान्य विधि से कथित भूतशुद्धि प्रक्रिया द्वारा जीवात्मा कुलकुण्डलिनी तथा तत्त्व-समूह को परमशिव से युक्त करके पूरक, कुम्भक तथा रेचक क्रम से देहशोधनोपरान्त 'आं सोऽहम्' मन्त्र से विपरीत गति से षट्चक्र भेद क्रम से जीवात्मा के साथ मिलन-जनित सुधाधारा में लोलीभूत कुण्डलिनी को तथा पृथिव्यादि पञ्चभूत समूह को तथा गन्धादि तत्त्वों को (२१ तत्त्वों को) यथायथ रूप से उनके-उनके स्थान पर भावना द्वारा स्थापित करना चाहिये। तत्पश्चात् स्वयं का देवीरूप से चिन्तन करके अपने हृदय पर हाथ रखकर 'आं ह्रीं क्रों स्वाहा' जप करते-करते स्वयं में देवता का जीवन्यास करना चाहिये।।४२।।

तन्त्रान्तरे—

देवीरूपं ततो ध्यायेत् स्वात्मानं कमलेक्षणे।
ततो जीवं प्रविन्यस्य पाशादित्र्यक्षरेण तु ।।४३।।

पाशादित्र्यक्षरेण आं सोऽहमिति स्वरूपेणेत्यर्थः।

तन्त्रान्तर में कहा है कि हे कमलेक्षणे! इसके पश्चात् स्वयं का देवी रूप में ध्यान करना चाहिये। तत्पश्चात् पाशादि त्र्यक्षर (आ सोऽहं) द्वारा जीव का न्यास करे (अर्थात् आत्मरक्षा करे)।।४३।।

कुमारीकल्पे भूतशुद्धिं विधाय स्वं देवीरूपेण चिन्तयेत्। ततः ॐ आं हुं फट् स्वाहेति व्यापकेन कायवाक्चित्तशोधनं कृत्वा हृदि हस्तं दत्त्वा ॐ रक्ष हुं फट् स्वाहेति आत्मरक्षां कुर्यात्। यथा—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य शेषसङ्गिनमेव च।
हुं फट् स्वाहा मनुः प्रोक्तः कायवाक्चित्तशोधने।
ॐ रक्षं हुं फट् स्वाहा च मन्त्रः स्यादात्मरक्षणे ।।४४।।

जीवन्यास मन्त्र कहते हैं (ऋष्यादि न्यास के पूर्व) पाशादि त्र्यक्षरेण (सोऽहं) स्वरूप द्वारा इसका यह अर्थ है। अर्थात् 'आं सोऽहं' त्र्यक्षर मन्त्र है। कुमारीकल्प में कहा है कि भूतशुद्धि करके स्वयं की देवीरूप से चिन्तना करे। तदनन्तर 'ॐ आं हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से व्यापक न्यास द्वारा देह, वाक् तथा चित्त का शोधन करके हृदय पर हाथ रखकर 'ॐ रक्ष हुं फट् स्वाहा' से आत्मरक्षा करे। कहा भी है कि प्रणव का उद्धार करके शेष सङ्गी आं तथा हुं फट् मन्त्र से काय, वाक् तथा चित्तशोधनोपरान्त 'ॐ रक्ष हुं फट् स्वाहा' से आत्मरक्षा करे।।४४।।

तदुक्तं कालीतन्त्रे—

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक्छन्द उदाहृतम्।
देवता कालिका प्रोक्ता लज्जाबीजन्तु बीजकम् ।।४५।।
कीलकं चाद्य बीजं स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदः।
कवित्वार्थे नियोगः स्यादेवमृष्यादिकल्पना ।।४६।।

कालीतन्त्रानुसार इस मन्त्र के भैरव ऋषि, उष्णिक् छन्द, कालिका देवता तथा लज्जा बीज (ह्रीं) है। आद्य बीज कीलक है। यह मन्त्र चतुर्वर्ग-फलप्रद है। कवित्व लाभार्थ इसका विनियोग किया जाता है। इस प्रकार से इस मन्त्र में ऋष्यादि कल्पित किये गये हैं।।४५-४६।।

ततः ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। कृताञ्जलिः अस्य श्रीदक्षिणकालिकामन्त्रस्य

भैरव ऋषिरुष्णिक्छन्दः श्रीदक्षिणकालिका देवता ह्रीं बीजं हुं शक्तिः क्रीं कीलकं पुरुषार्थचतुष्ठयसिद्ध्यर्थे विनियोगः इत्युच्चार्य शिरसि—भैरवाय ऋषये नमः। मुखे—उष्णिक्छन्दसे नमः। हृदि—श्री दक्षिण-कालिके देवतायै नमः। गुह्ये—ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः—हुं शक्तये नमः। सर्वाङ्गे—क्रीं कीलकाय नमः॥४७॥

अब ऋष्यादि न्यास कहते हैं। अस्य श्री दक्षिणकालिकामन्त्रस्य भैरवऋषिरुष्णिक् छन्दः श्री दक्षिणकालिका देवता ह्रीं बीजं हुं शक्तिः क्रीं कीलकं पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थे विनियोगः यह कहकर मस्तक पर—ॐ भैरवाय नमः, मुख में—ॐ उष्णिक् छन्दसे नमः, हृदय में—ॐ दक्षिणकालिकायै देवतायै नमः, गुह्य में—ॐ ह्रीं बीजाय नमः, पादद्वय में—ॐ हुं शक्तये नमः, सर्वाङ्ग में—ॐ क्लीं कीलकाय नमः से न्यास करना चाहिये।।४७।।

यथा कुलचूड़ामणौ—

भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्त उष्णिक् छन्द उदाहृतम्।
दक्षिणाकालिका देवी चतुर्वर्गफलप्रदा ॥४८॥

कुलचूड़ामणि में भी कहा गया है कि इस मन्त्र के भैरव ऋषि, उष्णिक् छन्द तथा चतुर्वगफल देने वाली दक्षिण कालिका देवता हैं।।४८।।

ततः कराङ्गन्यासौ। यथा तन्त्रे 'षड्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत्। तेन प्रणवाद्यमायाबीजेन षड्दीर्घभाजा न्यासः, लज्जाबीजन्तु बीजक-मित्युक्तत्वात्। अथवा षड्दीर्घभाजा प्रणवाद्येन निजबीजेन। यथा वीरतन्त्रे—

दीर्घषट्कयुताद्येन प्रणवाद्येन कल्पयेत् ॥४९॥

अब कराङ्गन्यास करना होगा। जैसा कि तन्त्र ने कहा है कि प्रणवाद्य (पूर्व में प्रणव लगाकर) छः दीर्घ बीजों से यह न्यास करे। अतः प्रणवादि षड्दीर्घस्वरयुत मायाबीज से यह करना होगा। क्योंकि कहा है कि लज्जाबीज से यह करे अथवा गुरुप्रदत्त निजबीज में आदि में प्रणव लगाकर उसके षड्दीर्घ स्वर से भी कराङ्गन्यास किया जाता है। ऐसा ही वीरतन्त्र का भी मत है।।४९।।

तथा च—ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादिना। अथवा ॐ क्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहेत्यादिना न्यसेत्। एवं हृदयादिषु। अङ्गन्यासस्तु त्रिः सकृद्वा कार्यः। यथा भैरवतन्त्रे—

षड़ङ्गानि न्यसेत् मन्त्री त्रिःसकृद्वा यथाक्रमम् ॥५०॥

अतएव ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां हुं। ॐ ह्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट् अथवा ॐ ॐ क्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ क्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ क्रूं मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ क्रैं अनामिकाभ्यां हुं, ॐ क्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ क्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। तत्पश्चात् ॐ ह्रां हृदयाय नमः अथवा ॐ क्रां हृदयाय नमः आदि प्रकार से तीन बार अथवा एक बार अंगन्यास करना चाहिये। जैसा कि भैरवतन्त्र का वचन है कि मन्त्रज्ञ साधक को एक बार अथवा तीन बार अंगन्यास करना चाहिये।।५०।।

ततो वर्णन्यासः। यथा कुमारीतन्त्रे—

लृकारान्तान् मातृकार्णान् हृदये संप्रविन्यसेत्।
घकारान्तान् ततः पश्चात् दक्षिणे च प्रविन्यसेत्।।५१।।

अब वर्णन्यास कहते हैं। कुमारीतन्त्रानुसार हृदय में 'अ' से लृ पर्यन्त मातृकावर्णों का न्यास करे। दक्षिण वाहु में ए से घ पर्यन्त वर्ण का न्यास करे।।५१।।

चकारान्तान् महामन्त्रान् ततो वामभुजे न्यसेत्।
भकारान्तान् ततः पश्चात् ततो दक्षिणपादके।।५२।।
क्षकारान्तान् ततः पश्चाद् विन्यसेद् वामपादके।
व्यापकानि ततः पश्चान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।।५३।।

वाम बाहु में ङं से लेकर क-पर्यन्त मातृका का न्यास करना चाहिये। दक्षिण पैर में णं से भं पर्यन्त का न्यास करे।

वाम पैर में मं से लेकर क्षं पर्यन्त न्यास करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्रज्ञ साधक मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करे।।५२-५३।।

तथा च हृदये—अं आं इं ईं उं ऊं ॠं ॠं लृं लॄं नमः। दक्षिणे बाहौ—एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः। वामबाहौ—ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः। दक्षिणपादे—णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः। वामपादे—मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं नमः।।५४।।

वर्णन्यास हृदय में—ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ॠं ॠं लृं लॄं नमः।
दक्षिण बाहु में—ॐ एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः।
वाम बाहु में—ॐ ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः।
दक्षिण पाद में—ॐ णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः।
वाम पाद में—ॐ मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं नमः।।५४।।

विरूपाक्षमते सबिन्दुरयं न्यासः। यथा वीरतन्त्रे—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं वै हृदये न्यसेत् इत्यादि। कालीतन्त्रे निर्विन्दुः। यथा—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ वै हृदयं स्पृशेत् इत्यादि; किन्तु सबिन्दून् वा न्यसेदेतान् निर्विन्दून् वाथ वर्णकानिति भैरवीतन्त्रवचनादुभयमप्यविरुद्धम्। अथ वर्णन्यास एव मातृकान्यास इति सम्प्रदायः। पूर्णानन्दस्तु वर्णन्यासानन्तरं सर्वसाधारणमातृकान्यासमप्याह तच्चिन्त्यम्। 'यथा काली तथा नीला तत्क्रमान् मातृकान् न्यसेदि'ति नीलमातृकायाः कालीमातृकायाः सामान्यमातृकावैलक्षण्यस्य सिद्धत्वात्॥५५॥

विरूपाक्ष कहते हैं कि यह वर्णन्यास बिन्दुयुक्त हो, जैसाकि वीरतन्त्र ने भी कहा है। जैसे—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं नमः हृदये। जबकि कालीतन्त्र में बिन्दुरहित न्यास कहा है। जैसे—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ नमः हृदयाय। किन्तु बिन्दुयुक्त करके मातृकावर्ण का न्यास करे अथवा निर्बिन्दु (विना बिन्दु) के न्यास करे—यह भैरवीतन्त्र का वचन है; अतः दोनों प्रक्रिया की जा सकती है। सम्प्रदायवादी कहते हैं कि वर्णन्यास ही मातृकान्यास है। किन्तु पूर्णानन्द ने वर्णन्यास के अनन्तर सर्वसाधारण मातृकान्यास कहा है। यह विचारणीय है। जैसे काली हैं वैसी ही भगवती नीला हैं। अतएव नीला के क्रम से मातृका वर्णों का न्यास करे। इस वचन से नीला मातृका के साथ काली मातृका की समानता होने के कारण कालीमातृका की विलक्षणता सामान्य मातृका से अलग सिद्ध होती है।।५५।।

अथ षोढान्यासः

यथा वीरतन्त्रे—

केवलां मातृकां कृत्वा मातृकां तारसम्पुटम्।
मातृकापुटितं तारं न्यसेत् साधकसत्तमः ॥५६॥
श्रीबीजपुटितां तान्तु मातृकापुटितञ्च तत्।
कामेन पुटितां देवीं तत्पुटं काममेव च ॥५७॥
शक्त्या च पुटितां देवीं शक्तिञ्च तत्पुटां न्यसेत्।
ह्रीं द्वन्द्वञ्च पुनर्न्यस्त्वा ऋं ॠं लृं ॡञ्च पूर्ववत् ॥५८॥
मूलेन पुटितां देवीं तत्पुटं मन्त्रमेव च।
अनुलोमविलोमेन न्यस्त्वा मन्त्रं यथाविधि।
मूलेनाष्टशतं कुर्याद् व्यापकं तदनन्तरम् ॥५९॥

तां मातृकाम्। तत् श्रीबीजम्। शक्तिर्मायाबीजम्। देवीं मातृकाम्। तथा च आदौ केवलमातृकां मातृकास्थानेषु न्यसेत्।

अब षोढ़ान्यास कहते हैं। साधकश्रेष्ठ मातृका न्यास के स्थान पर केवल मातृका का न्यास करके प्रणवपुटित मातृका का मातृका के स्थान पर न्यास करे। तदनन्तर मातृका में प्रणव को पुटित करके न्यास करे। तत्पश्चात् श्रीं बीज पुटित मातृका से तदनन्तर मातृकापुटित श्रीबीज से न्यास करना होगा। तत्पश्चात् कामबीज (क्लीं) द्वारा पुटित मातृका से तदनन्तर मातृकापुटित कामबीज से न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् शक्तिबीज-पुटित मातृका से तदनन्तर मातृकाबीज-पुटित शक्तिबीज (ह्रीं) द्वारा न्यास करे। पुन: ह्रीं ह्रीं द्वारा पुटित कर नपुंसक स्वर (ऋ ॠ ऌ ॡ) से तथा नपुंसक स्वर पुटित ह्रीं ह्रीं द्वारा न्यास करे।

तां = मातृका को। तत् = श्रीबीज को। देवीं = मातृका को। शक्तिः = मायाबीज को। इस प्रकार प्रथमतः केवल मातृका वर्ण का एक-एक मातृका स्थान में न्यास करना चाहिये। जैसे ललाटे—अं नमः, मुखे—आं नमः इत्यादि।।५६-५९।।

ततस्तत्स्थानेषु प्रणवपुटितां मातृकां मातृकापुटितञ्च प्रणवं न्यसेत्। तद्यथा ॐ अं ॐ। सर्वत्र शेषे नमः पदम्। एवं श्रीबीजपुटितां मातृकापुटितञ्च श्रीबीजम्। एवं कामेन पुटितां मातृकां मातृकापुटितञ्च कामम्। एवं शक्त्या पुटितां मातृकां मातृकापुटिताञ्च शक्तिं न्यसेत् ॥६०॥

तदनन्तर उन मातृका स्थान में प्रणव-पुटित मातृका वर्णों में से एक-एक को प्रणव से पुटित करके न्यास करे; यथा ललाटे—ॐ अं ॐ नमः, मुखवृत्ते—ॐ आं ॐ नमः। इस प्रकार क्षकार-पर्यन्त मातृका वर्णों से प्रणव को पुटित करके न्यास करे। जैसे— ललाटे—अं ॐ अं नमः, मुखे—आं ॐ नमः इत्यादि। इसी प्रकार क्षकार-पर्यन्त न्यास करे। इसी प्रकार श्रीबीज-पुटित मातृका तथा मातृका-पुटित श्रीबीज का भी न्यास करे। यथा—ललाटे—श्रीं अं श्रीं नमः, मुखे—श्रीं आं श्रीं नमः, ऐसे ही 'क्ष' पर्यन्त करे। तथा अब विपरीत क्रमण—ललाटे—अं श्रीं अं नमः, मुखे—आं श्रीं आं नमः, ऐसे ही क्षकार पर्यन्त करना होगा। इसी प्रकार 'क्लीं' बीज तथा 'ह्रीं' बीज का भी न्यास करना होगा।।६०।।

ह्रीं द्वन्द्वमिति माताद्वयपुटितां मातृकां मातृकापुटितं मायाद्वयमित्यर्थः। एकमायाघटितमायाद्वयघटितप्रकाययोर्मायाघटितत्वेनैकत्वम्। ऋ ॠ ऌ ॡञ्च पूर्ववदिति। सानुस्वार ऋकारादिचतुष्कपुटितां मातृकां मातृकापुटितं तच्चतुष्कमित्यर्थः॥६१॥

'ह्रीं द्वन्द्वम्' का अर्थ है—मायाद्वय-पुटित मातृकावर्णों को एवं मातृका वर्ण-पुटित मायाद्वय का न्यास करे। जैसे ललाट में—ह्रीं ह्रीं अं ह्रीं ह्रीं नमः, मुख में—

ह्रीं ह्रीं आं ह्रीं ह्रीं नमः। इसी प्रकार 'क्ष' पर्यन्त करे। अब दूसरे प्रकार से बताते हैं। जैसे—अं ह्रीं ह्रीं अं नमः—ललाटे, ॐ आं ह्रीं ह्रीं आं नमः—मुखे। इसी प्रकार 'क्ष'-पर्यन्त करना चाहिये। अब ऋ ॠ ऌ ॡ का पूर्ववत् न्यास करना चाहिये अर्थात् इन चार वर्णों से पुटित मातृका जैसे हृदये—ॐ ऋं ॠं ऌं ॡं अं ऋं ॠं ऌं ॡं नमः, मुखे—ॐ ऋं ॠं ऌं ॡं आं ऋं ॠं ऌं ॡं नमः इत्यादि प्रकार से अन्तिम वर्ण 'क्ष' तक करे। इसी प्रकार ललाटे—ॐ अं ऋं ॠं ऌं ॡं अं नमः, मुखे—आं ऋं ॠं ऌं ॡं आं नमः। इसी प्रकार से 'क्ष' पर्यन्त न्यास करना चाहिये।।६१।।

अत्र ह्रीं द्वन्द्वमित्यत्र क्रीं द्वन्द्वमिति केचिद्वदन्ति, निजबीजद्वयञ्चैव ऋॠऌॡञ्च विन्यसेदिति तन्त्रराजदर्शनात्। तन्न लज्जाबीजन्तु बीजकमिति कालीतन्त्र-वचनैकवाक्यतया निजबीजपदस्य मायापरत्वात्। अतएव मायाघटितत्वेन प्रकारद्वयस्यैक्यान्न षोढ़ात्वव्याघातः। एवञ्च दुर्गादिविषयकत्वमस्य न्यासस्य युज्यते च। एवं मन्त्रपुटितां मातृकां तत्पुटितञ्च मन्त्रम्। अनुलोमविलोमेन मूलेनाष्टोत्तरशतं व्यापकं कुर्यात्। अस्य न्यासस्ताराया अपि कार्यः॥६२॥

यहाँ ह्रीं द्वन्द्वं के स्थान पर कोई-कोई क्रीं द्वन्द्वं भी कहते हैं। कहा है कि निज बीजद्वय तथा ऋ ॠ ऌ ॡ का न्यास करे। ऐसा तन्त्रराज का वचन है। लेकिन यह यथार्थ नहीं है क्योंकि 'लज्जाबीजं तु बीजकं' अर्थात् इस मन्त्र का बीज है लज्जाबीज (ह्रीं)। इसलिये कालीतन्त्र के साथ एकवाक्यता होने के कारण यहाँ 'निजबीज' पद का अर्थ है—मायापर अर्थात् मार्यार्थक (ह्रीं)। अतः मायाद्वय-घटित दो प्रकार के न्यास के एकत्व हेतु षोढ़ात्व (छः प्रकार) न्यास में बाधा उत्पन्न नहीं होती। इसीलिये दुर्गा प्रकरण में भी यही षोढ़ान्यास कहा गया है। इस प्रकार से मन्त्रपुटित मातृका तथा मातृकापुटित मन्त्र का पूर्वकथित रूप से न्यास करना चाहिये। अब मूल मन्त्र द्वारा १०८ बार न्यास करना चाहिये (व्यापक न्यास करे)। यही न्यास तारा की पूजा में भी करना चाहिये।।६२।।

यथा—

इति गुप्तेन दुर्गाया अङ्गषोढा प्रकीर्त्तिता।
ताराया: कालिकायाश्च उन्मुख्याश्च तथा परा॥६३॥

तन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार से गुप्त दुर्गा का अङ्गषोढा कहा गया। तारा, कालिका तथा उन्मुखी (भुवनेश्वरी अथवा बगलामुखी) देवता की पूजा में यही श्रेष्ठ षोढ़ान्यास कर्त्तव्य है।।६३।।

कृतेऽस्मिन् न्यासवर्यो तु सर्वं पापं प्रणश्यति।
विषापमृत्युहवनं ग्रहरोगादिनाशनम्॥६४॥

यह श्रेष्ठ षोढान्यास करने पर समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। यह विष, अकालमृत्यु, ग्रहदोष तथा रोगादि का नाशक है।।६४।।

दुष्टसत्वानि नश्यन्ति शत्रवो यान्ति मित्रताम्।
कवितालहरी तस्य द्राक्षारसपरस्परा।
अणिमाद्यष्टसिद्धिस्तु तस्य हस्ते व्यवस्थिता ।।६५।।

इस न्यास से दुष्ट प्राणी नष्ट हो जाते हैं, शत्रुगण मित्रता कर लेते हैं। साधक में द्राक्षारस के समान मधुर कवितालहरी का उदय होता है। अणिमादि आठों सिद्धियाँ उसे मिल जाती हैं।।६५।।

षोढ़ासिद्धिस्तु लक्षवारकरणाद् भवति। षट्प्रकारेण न्यस्तव्यत्वात् षोढ़ान्यास इत्युच्यते। अङ्गषोढ़ा प्रकीर्त्तितेत्यादौ षोढ़ा षट् प्रकारा विद्यन्तेऽत्रेति अर्शआदित्वादच् प्रत्ययेन सिद्धम्, लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्येति स्त्रीत्वम् ।।६६।।

लक्ष बार षोढा करने से यह सिद्ध होता है। छ: प्रकार के न्यास के कारण इसे षोढ़ा न्यास कहा गया है। 'अङ्गषोढ़ा प्रकीर्त्तिता' इस वचन से षोढा छ: प्रकार का होता है, इस प्रकार का बहुव्रीहि समास निष्पन्न होता है। 'अर्शआदित्वात्' के कारण उसके उत्तर में स्त्रीलिंग अच् प्रत्यय करके षोढा पद सिद्ध होता है। लोक व्यवहार का अनुवर्त्ती होने से स्त्रीलिंग हो गया है।।६६।।

अथ तत्त्वन्यास:

यथा—मूलं त्रिखण्डं विधाय प्रथमखण्डान्ते ॐ आत्मतत्त्वाय नम: इति पादादिनाभिपर्यन्तम्, द्वितीयखण्डान्ते ॐ विद्यातत्त्वाय नम: इति नाभ्यादिहृदयपर्यन्तं, तृतीयखण्डान्ते ॐ शिवतत्त्वाय नम: इति हृदयादि शिर:पर्यन्तं न्यसेत्।।६७।।

अब तत्त्वन्यास कहते हैं। जैसे मूल को त्रिखण्ड करके प्रथम खण्ड में क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा से पाद से नाभि तक, द्वितीय खण्ड में 'दक्षिणकालिके' के अन्त में ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा' लगाकर नाभि से लेकर हृदय-पर्यन्त, तृतीय खण्ड में 'क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा' के अन्त में 'शिवतत्त्वाय स्वाहा' लगाकर हृदय से मस्तक-पर्यन्त न्यास करे।।६७।।

यथा स्वतन्त्रे—

मूलविद्या त्रिखण्डान्ते प्रणवाद्यैर्यथाविधि।
आत्मविद्या शिवस्तत्त्वैस्तत्त्वन्यासं सभाचरेत् ।।६८।।

स्वतन्त्रतन्त्र में कहा है कि मूल विद्या के त्रिखण्डों के आदि में प्रणव लगाये तथा नमः के अन्त में क्रमशः प्रथम खण्ड में आत्मतत्त्वाय स्वाहा, द्वितीय खण्ड में विद्यातत्त्वाय स्वाहा, तृतीय खण्ड में शिवतत्त्वाय स्वाहा द्वारा तत्त्वन्यास करे।।६८।।

अथ बीजन्यासः

कुमारीकल्पे—

ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये ललाटे नाभिदेशके ।
गुह्ये वक्त्रे च सर्वाङ्गे सप्तबीजं क्रमान्न्यसेत् ।।६९।।

अब बीजन्यास कहते हैं—कुमारीकल्प में कहा है कि ब्रह्मरन्ध्र में, भ्रूद्वय के मध्य में, ललाट में, नाभिदेश में, गुह्य में, वक्त्र में तथा सर्वाङ्ग में यथाक्रम से सात बीजों का न्यास करना चाहिये।।६९।।

यथा आद्यं बीजं ब्रह्मरन्ध्रे, द्वितीयबीजं भ्रूमध्ये, तृतीयबीजं ललाटे, चतुर्थबीजं नाभौ, पञ्चमबीजं गुह्ये, षष्ठबीजं वक्त्रे, सप्तमबीजं सर्वाङ्गे।।७०।।

इस प्रकार यथाक्रम से बीजन्यास करना चाहिये। जैसे ब्रह्मरन्ध्र में आद्य बीज (क्रीं), भ्रूमध्य में—द्वितीय बीज क्रीं, ललाट में—तृतीय बीज क्रीं, नाभि में—चतुर्थ बीज हुं, गुह्य में—पञ्चम बीज हुं, वक्त्र में—षष्ठ बीज ह्रीं एवं सर्वाङ्ग में—सप्तम बीज ह्रीं का न्यास करना चाहिये।।७०।।

षोढ़ान्यासतत्त्वन्यासबीजन्यासाः काम्याः। एकाक्षरमन्त्रादौ तत्त्वन्यासबीज न्यासयोः सुतरामभावः। ततो मूलेन नवधा सप्तधा पञ्चधा त्रिधा व व्यापकन्यासं कुर्यात्। यथा भैरवतन्त्रे—नवधा सप्तधा वापि मूलेन पञ्चधा त्रिधेति।।७१।।

षोढ़ान्यास, तत्त्वन्यास तथा बीजन्यास काम्य होता है। एकाक्षर मन्त्रादि में तत्त्वन्यास तथा बीजन्यास नहीं कहा गया है। तदनन्तर मूल द्वारा नव बार, सात बार, पाँच बार अथवा तीन बार व्यापक न्यास करना चाहिये। भैरवतन्त्र में कहते हैं कि मूल मन्त्र द्वारा नौ, सात अथवा पाँच या तीन बार न्यास करे।।७१।।

ततः पीठन्यासः। हृत्पद्मस्य मध्ये ॐ आधारशक्तये नमः। एवं प्रकृतये, कूर्माय, शेषाय, पृथिव्यै, सुधाम्बुधये, मणिद्वीपाय, चिन्तामणिगृहाय, श्मशानाय, पारिजाताय, तन्मूले रत्नवेदिकायै, तदुपरि मणिपीठाय, चतुर्दिक्षु मुनिभ्यः, देवेभ्यः, परितः बहुमांसास्थिमोदमानशिवाभ्यः, शवमुण्डेभ्यः। अग्न्यादिकोणेषु धर्माय, ज्ञानाय, वैराग्याय, ऐश्वर्याय।

पूर्वादिदिक्षु अधर्माय, अज्ञानाय, अवैराग्याय, अनैश्वर्याय। मध्ये आनन्दकन्दाय, संविन्नालाय, प्रकृतिमयपत्रेभ्यः, विकारमयकेशरेभ्यः, तत्त्वरूपकर्णिकायै, पद्माय, अं अर्कमण्डलाय, ऊं सोममण्डलाय, मं वह्निमण्डलाय, सं सत्त्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने। पूर्वादितः पत्रमूलेषु इच्छायै, ज्ञानायै, क्रियायै, कामिन्यै, कामदायिन्यै, रत्यै, रतिप्रियायै, आनन्दायै। कर्णिकायां मनोन्मन्यै। मध्ये ऐं परायै, ऐं अपरायै, ऐं विरूपायै, ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः।।७२।।

तत्पश्चात् पीठन्यास करना चाहिये। जैसे हृदयपद्म में—ॐ आधारशक्तये नमः। इसी प्रकार ॐ प्रकृतये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ शेषाय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ सुधाम्बुधये नमः, ॐ मणिद्वीपाय नमः, ॐ चिन्तामणिगृहाय नमः, ॐ श्मशानाय नमः, ॐ पारिजाताय नमः, हत्पद्म के मूल में—ॐ रत्नवेदिकायै नमः, उसके ऊपर ॐ मणिपीठाय नमः, चारो ओर ॐ मुनिभ्यो नमः, ॐ देवेभ्यो नमः, चारो ओर—ॐ बहुमांसास्थिमोदमान शिवाभ्यो नमः, ॐ शवमुण्डेभ्यो नमः, अग्नि आदि कोणों में—ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः, पूर्वादि दिशाओं में—ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अवैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः। मध्य में—ॐ आनन्दकन्दाय नमः, ॐ संविन्नालाय नमः, ॐ प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः, ॐ विकारमयकेशरेभ्यो नमः, ॐ तत्त्वरूपकर्णिकायै नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, ॐ ऊं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः, ॐ मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः, ॐ आं आत्मने नमः, ॐ अं अन्तरात्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः। पत्रमूल में पूर्वादि क्रमेण—ॐ इच्छायै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ कामिन्यै नमः, ॐ कामदायिन्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ रतिप्रियायै नमः, ॐ आनन्दायै नमः। कर्णिका में—ॐ मनोन्मन्यै नमः, मध्य में—ॐ ऐं परायै नमः, ॐ ऐं अपरायै नमः, ॐ ऐं विरूपायै नमः, ॐ ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः मन्त्र से न्यास करना चाहिये।।७२।।

तथा तन्त्रे—

इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कामिनी कामदायिनी।
रती रतिप्रियानन्दा कर्णिकायां मनोन्मनी।।७३।।

तन्त्र में भी कहा है कि इच्छा, ज्ञाना, क्रिया, कामिनी. कामदायिनी, रति, रतिप्रिया, आनन्दा तथा कर्णिका में मनोन्मनी पूज्या हैं।।७३।।

वाग्भवं प्रथमञ्चोक्त्वा परायै तदनन्तरम्।
अपरायै विरूपायै ह्सौः वाचामतः परम्।।७४।।
सदाशिवमहाप्रेतं ङेऽन्तं पद्मासनं ततः।
नमः इत्येव मन्त्रोऽयं पीठन्यासे उदाहृतः।
एवं देहमये पीठे चिन्तयेदिष्टदेवताम्।।७५।।

प्रथमत: वाग्भव (ऐं) कहकर परायै, अपरायै, विरूपायै कहे। तदनन्तर ह्सौः सदाशिवमहाप्रेत तथा चतुर्थी विभक्त्यन्त पद्मासन अर्थात् पद्मासनाय कहकर नम: कहे। इस प्रकार पीठमन्त्र पीठस्थान में कहा गया। ऐसे मन्त्रदेहमय पीठ पर इष्ट देवता का ध्यान करना चाहिये।।७४-७५।।

ततः प्रागुक्तकामकलारूपात्मानं विभाव्य मूलाधारात् परमशिवपर्यन्तं कुण्डलिनीं ध्यात्वा तत्रामृतेन सम्प्लाव्य करकच्छपिकया पुष्पं गृहीत्वा सुषुम्नाबहिस्थहृदयाष्टदलरक्तपद्ममध्ये देवीं ध्यायेत्।।७६।।

तदनन्तर स्वयं की भावना कामकलारूप करके मूलाधार से परमशिवपर्यन्त कुण्डलिनी का ध्यान करके वहाँ अमृत द्वारा कुलकुण्डलिनी को प्लावित करके करकच्छपिका (कूर्ममुद्रा) में पुष्प लेकर सुषुम्ना नाड़ी के बाहर स्थित हृदयगत अष्टदल रक्तकमल के मध्य देवी का ध्यान करना चाहिये।।७६।।

तदुक्तं स्वतन्त्रे—

ततः कामकलाध्यानादावाह्य कालिकां पराम्।
कूर्माख्यमुद्रया पुष्पैश्चक्रमध्ये निधापयेत्।।७७।।

इसी को बताते हुये स्वतन्त्र तन्त्र में कहा गया है कि तत्पश्चात् कामकला के ध्यानोपरान्त कालिका देवी का आवाहन करके कूर्ममुद्रा में पुष्प लेकर चक्रमध्य में देवी की स्थापना करनी चाहिये।।७७।।

ध्यानं यथा कालीतन्त्रे भैरवतन्त्रे च—

करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषिताम्।।७८।।
सद्यश्छिन्नशिर:खड्गवामाधोर्द्ध्वकराम्बुजाम्।
दक्षोर्द्ध्वोर्ध्वकराम्भोजे विभ्रतीञ्चाभयं वरम्।।७९।।

महामेघप्रभां श्यामां तथैव च दिगम्बरीम्।
कण्ठावसक्तमुण्डालीगलद् रुधिरचर्चिताम् ॥८०॥
कर्णावतंसतानीतशवयुग्मभयानकाम्।
घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम् ॥८१॥
शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्।
सृक्कद्वयगलदरक्तधाराविस्फुरिताननाम् ॥८२॥
घोररावां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रितयान्विताम् ॥८३॥
दन्तुरां दक्षिणव्यापिलम्बमानकचोच्चयाम्।
शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम् ॥८४॥
शिवभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षु समन्विताम्।
महाकालेन सार्द्धं तामुपरिष्टां रतातुराम् ॥८५॥
सुखप्रसन्नवदनां स्मेराननसरोरुहाम्।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं सर्वकामार्थसिद्धिदाम् ॥८६॥

कालीतन्त्र तथा भैरवतन्त्र में काली के स्वरूप का ध्यान इस प्रकार कहा गया है। ध्यान करालवदना, भीषणा, मुक्तकेशी, चतुर्भुजा, दिव्या तथा मुण्डमाला विभूषिता, बाँयीं ओर के अधोहस्तों में ताजा कटे नरमुण्ड को धारण करने वाली, बाँयें के ऊपरी हाथों में खड्गधारिणी, दक्षिण के ऊर्ध्व हाथों में अभय तथा अधोहस्त में वरमुद्रा-धारिणी, महामेघ के समान प्रभायुक्ता, श्यामवर्णा, दिगम्बरी, कण्ठलग्न मुण्डमाला से क्षरित रुधिर से चर्चिता, भयानक शव के दोनों कानों का कर्णाभूषण-धारिणी, घोर दाँतों वाली, करालमुखी, पीन तथा उन्नत स्तनधारिणी, शव के हस्तसमूहकृता काञ्ची-धारिणी, हास्यमुखी, ओष्ठों से विगलित रक्तधारा से विस्फुरित मुख वाली, भीषण शब्दकारिणी, महारुद्रमूर्त्ति, श्मशानवासिनी, नवोदित अर्कमण्डल के समान वृत्ताकार, रक्तवर्ण लोचनत्रय से युक्ता, उन्नत दाँतों वाली, दक्षिणभागव्यापी आलुलायित कुण्डला, शवरूप महादेव के ऊपर स्थिता, चतुर्दिक घोर गर्जना करने वाली, शृगालों से घिरी हुई, महाकाल के साथ ऊपर स्थित (उनके ऊपर स्थित) रतातुरा, सुख प्रसन्न मुख वाली, ईषत् हास्यमयी मुखकमल वाली, सर्वसिद्धि देने वाली दक्षिणाकाली की मूर्त्ति का ध्यान करना चाहिये।।७८-८६।।

वामाधोद्ध्र्वकराम्बुजामित्यत्रादन्तेनाधशब्देन विसर्गलोपसन्धेश्छान्दसत्वेन वा समाधानम्। अभयं वरदञ्चैव दक्षिणाधोद्ध्र्वपाणिकामिति पाठो दुर्घट एव। श्यामामित्यत्र क्षामामिति पाठस्तत्र क्षीणामित्यर्थः। दिगम्बरी-

मित्यत्र बहुव्रीहिसमासेऽपि त्र्यक्षरी विद्या इतिवत् गौरादित्वान्ङी। कर्णावतं-सतानीतेत्यसमस्तपदम् समस्तपदान्वयीत्यपि केचिद्। शवयुग्मेत्यत्र प्रेतयुग्मेत्यर्थः। प्रेतकर्णावतंसेति वचनात् विगतासुकिशोराभ्यां कृतकर्णा-वतंसिनीमिति श्रवणाच्च। अत्र रेफमध्यमपि पठन्ति, घोरबाणावतंसेति वचनात्, शकुन्तपक्षसंयुक्तवामकर्णविभूषितामिति श्रवणाच्च। वस्तुतस्तु पाठोऽन्यतर एव पाठ्यः, ध्याने तु कर्णाधः प्रेतयुग्मं कर्णोद्र्ध्वे बाणयुग्मं ध्येयम्। करालास्यामिति। पूर्वं वदनपदेन मुखवृत्तमत्रास्यपदेन मुखमुक्त-मित्यपौनरुक्त्यम्। सृक्कशब्दो वकारयुक्तककार मध्ये नास्तः, ककार-द्वयमध्यत्वेऽकारलोपापत्त्या स्मितस्य सम्भासय सृक्वणाकणानिति नैषधीय-विरोधात्। दक्षिणव्यापीत्यत्र दक्षिणव्यापिमुक्तालब्धिकचोच्चयामित्यपि पाठः। हृदयोपरि संस्थितामिति। वामपादस्य शवहृदयस्थतया दक्षिण-पादस्य च शवचरणद्वयस्थतया आलीढरूपस्थित्या संस्थितामित्यर्थः। महाकालेन सार्द्धं तामुपरिष्टामित्यत्र कदाचिदित्यध्याहृत्यान्वयः। न हि सर्वदैव उपविश्य तिष्ठतीति। यद्वा रतातुरां चेन्महाकालेन सार्द्धमुपरिष्टा-मित्यर्थः। केचित् तु उपरिष्टामिति पाठं वर्णयन्ति। तत्र च महाकालेन सार्द्धं तां चिन्तयेदित्यर्थः। उपरि तिष्ठतीति उपरिष्टा महाकालस्येत्यर्थः। सुयामादित्वात् यलम्। तथा च विपरीतसुरतोपयोगात् शयने शिवस्योद्र्ध्वा-वस्थितलिङ्गं स्वयोनौ संघट्य स्थितामिति रहस्यार्थः। महाकालेन च समं विपरीतरतातुरामित्यपि पाठः क्वाचित्कः॥८७॥

वामाधोर्ध्वकराम्बुजाम्—इस अदन्त (अकारान्त) अध शब्द के ऊर्ध्व शब्द के साथ सन्धि होने पर अथवा अधस् शब्द का विसर्गलोप करके सन्धि करने पर अथवा छान्दस कहने पर सन्धि का समाधान करना होगा। 'अभयं वरदञ्चैव दक्षिणादोर्ध्वपाणिकाम्' यहाँ अभयं तथा वरदं इन दोनों पदों का पाणि के साथ अन्वय दुर्घट है। श्यामाम्—यहाँ 'क्षामां' पाठ है। उसका अर्थ है—क्षीणा। दिगम्बरीं—यहाँ बहुव्रीहि समास होने पर भी त्र्यक्षरी विद्या के समान गौरादित्व निबन्धन 'ई' प्रत्यय है। 'कर्णावतसतां नीत्वा' यह असमस्त पद समस्त पद के साथ अन्वययुक्त है, ऐसा कोई-कोई कहते हैं। शब्दयुग्म पद का अर्थ है— प्रेतयुक्त। इसीलिये वचन है कि 'प्रेतकर्णावतंसां' अर्थात् प्रेतकर्णभूषण। साथ ही यह भी वचन सुना गया है कि विगत प्राण किशोरद्वय द्वारा कर्णभूषण करने वाली। तथा 'शकुन्तपक्षसंयुक्तवामकर्णविभूषिताम्' अर्थात् शकुन पक्षसंयुक्त वामकर्ण द्वारा शोभित। 'घोरबाणावतंसां' अर्थात् घोरबाणरूप कर्णभूषण। वास्तव में अन्यतर पाठ ही पाठ्य है। किन्तु ध्यान में कर्ण के अधोभाग में प्रेतयुग्म

का तथा उसके ऊर्ध्व भाग में बाणयुग्म का ध्यान करना चाहिये। 'करालास्याम्' यहाँ पहले वदन पद द्वारा मुखवृत्त, 'आस्य' शब्द द्वारा मुख कहा गया है। सृक्व शब्द वकारयुक्त ककार के मध्य तथा नान्त है। ककारद्वय के मध्य होने पर नकारलोप की आपत्ति हेतु 'स्मितस्य सम्भासय सृक्वणा कणान्' इस नैषध वाक्य से विरोध होता। 'दक्षिणव्यापि' इस स्थान में 'दक्षिणव्यापी मुक्तालम्बि कचोच्चयाम्' ऐसा भी पाठ है। हृदयोपरि संस्थिताम् अर्थात् कालिका का बाँयाँ पैर शव के हृदय के ऊपर स्थित है और दाहिना पैर शव के चरणद्वय पर स्थित है। इसलिये वे आलीढ रूप से विराजित हैं। 'महाकालेन सार्द्धं तामुपरिष्टाम्' यहाँ कदाचित् इस पद का अध्याहार करके अन्वय होगा। क्योंकि वे सर्वदा हृदय के ऊपर नहीं बैठी रहेंगी। यदि 'रतातुरा' पाठ ठीक है तब महाकाल के 'सार्द्धमुपरिष्टाम्' अर्थात् महाकाल के साथ ऊपर स्थित उनका चिन्तन करे—यह तात्पर्य है। यहाँ यह कहा गया है महाकाल के साथ उनके ऊपर (महाकाल के ऊपर) स्थित जो हैं, उनका चिन्तन करे। महाकाल के ऊपर 'तिष्ठति' जो महाकाल के ऊपर स्थित खड़ी हैं। अव आगे का अर्थ यह है कि विपरीत रति के लिये शयन में (अर्थात् विपरीत रति के लिये उपयोगी मानकर) शिव के ऊर्ध्वोत्थित लिंग को अपनी योनी में मिलित करके स्थिता हैं। यही रहस्यार्थ है।।८७।।

ध्यानान्तरं स्वतन्त्रतन्त्रे—

अञ्जनाद्रिनिभां देवीं करालवदनां शिवाम्।
मुण्डमालावलिकीर्णां मुक्तकेशीं स्मिताननाम्॥१॥
महाकालहृदम्भोजस्थितां पीनपयोधराम्।
विपरीतरतासक्तां घोरदंष्ट्रां शिवैः सह॥२॥
नागयज्ञोपवीताढ्यां चन्द्रार्धधृतशेखराम्।
सर्वालङ्कारयुक्ताञ्च मुण्डमालाविभूषिताम्॥३॥
मृतहस्तसहस्रैस्तु बद्धकाञ्चीं दिगम्बरीम्।
शिवकोटिसहस्रैस्तु योगिनीभिर्विराजिताम्॥४॥
रक्तपूर्णमुखाम्भोजां मद्यपानप्रमत्तिकाम्।
वह्न्यर्कशशिनेत्राञ्च रक्तविस्फुरिताननाम्॥५॥
विगतासुकिशोराभां कृतकर्णावतंसिनीम्।
कण्ठावतंसमुण्डालीगलद्रुधिरचर्चिताम्॥६॥
श्मशानवह्निमध्यस्थां ब्रह्मकेशरवन्दिताम्।
सद्यः कृतशिरःखड्गवराभीतिकराम्बुजाम्॥७॥

स्वतन्त्रतन्त्र में अन्य प्रकार से ध्यान कहा गया है। यथा—अञ्जन पर्वत के समान

कृष्णवर्णा, कराल वदना, कल्याणकारी, मुण्डमालाओं से व्याप्ता, मुक्तकेशी, तनिक हास्य वाली, महाकाल के हृदयपद्म पर (सीने पर) खड़ी, पीनस्तनी, शिव के साथ विपरीत रति में आसक्ता, घोर दाँतों वाली, सर्परूप यज्ञोपवीत से भूषिता, अर्धचन्द्रयुक्त मुकुट वाली, सर्वालङ्कारभूषिता, मुण्डमाला से शोभित, शव के हाथ में सहस्र द्वारा रचित काञ्चि-धारिणी, दिशाओं का वस्त्र धारण करने वाली (नग्ना), कोटि सहस्र शृगाल तथा योगिनीगण से घिरी, रक्त से परिपूर्ण मुखकमल वाली, विगत प्राण किशोर-रचित कर्णभूषण-धारिणी, कण्ठ में लटक रही मुण्डमाला से क्षरित रक्त द्वारा चर्चिता, श्मशान वह्नि मध्यवर्त्तिनी, ब्रह्मा तथा केशव द्वारा वन्दिता, सद्यः काटे गये शिर, खड्ग, वर तथा अभय मुद्रा युक्त हाथों वाली देवी कालिका का ध्यान करे।।१-७।।

अथवा विरूपाक्षकृतध्यानेन ध्यायेत्; यथा—

भिन्नाञ्जनचयप्रख्यां प्रधानशवसंस्थिताम् ।
गलच्छोणितधाराभिः स्मेराननसरोरुहाम् ।।८।।
पीनोन्नतकुचद्वन्द्वां पीनवक्षोनितम्बिनीम् ।
दक्षिणामुक्तकेशाङ्गीं दिगम्बरविनोदिनीम् ।।९।।
महाकालरताविष्टां स्मरानन्दोपरि स्थिताम् ।
अथ सान्द्रस्मितामोदमोदिनीं मदविह्वलाम् ।।१०।।
आरक्तमुखसंशोभिदन्तपंक्तिविराजिताम् ।
शवद्वयकृतोत्तंसां सिन्दूरतिलकोज्वलाम् ।।११।।
पञ्चाशन्मुण्डघटितमालां लोहितशोणिताम् ।
नानामणिविशोभाढ्यां नानालङ्कारभूषिताम् ।।१२।।
शवास्थिकृतकेयूरशङ्खकङ्कणमण्डिताम् ।
शववक्षसमारूढां लेलिहानां शवं क्वचित् ।।१३।।
शवमांसं कृतग्रासां साट्टहासां मुहुर्मुहुः ।
खड्गमुण्डधरां वामे सव्येऽभयवरप्रदाम् ।।१४।।
दन्तुराञ्च महारौद्रीं चण्डनादादिभीषणाम् ।
शिवाभिर्घोररूपाभिर्वेष्टितां भीमनादिनीम् ।।१५।।
माभैर्माभैः स्वभक्तेषु जल्पन्तीं घोरनिःस्वनैः ।
यूयं किमिच्छथ ब्रूथ ददामीति प्रभाषिणीम् ।।१६।।

अथवा विरूपाक्षकृत ध्यान द्वारा ध्यान करे। वह इस प्रकार है—विभिन्न अञ्जनसमूह के समान कृष्णवर्ण वाली, प्रधान शव (महाकाल) पर खड़ी, क्षरित शोणितसमूह द्वारा ईषत् हास्ययुक्त मुखकमल वाली, पीन तथा उन्नत स्तनद्वय से युक्ता, पीनवक्ष तथा

नितम्ब से मण्डिता, मुक्त केशों वाली जो दाहिनी ओर है, दिगम्बर विनोदकारिणी, महाकाल के रस से आविष्टा, कामानन्द के ऊपर स्थिता, घन अस्मितारूप हर्ष से हर्षिता, मद से विह्वला, आरक्त मुख की शोभा वर्द्धन करने वाली दन्त पंक्ति से शोभिता, शवद्वय द्वारा रचित कर्णभूषण-धारिणी, सिन्दूर तिलकोज्ज्वला, रक्तरञ्जिता, पचास मुण्डों की माला धारण करने वाली, नाना मणियों की शोभा से शोभिता, नाना अलंकार से भूषिता, शवास्थि द्वारा बने केयूर, शङ्ख तथा कङ्कणों से शोभिता, शव के वक्ष पर आरूढ़ा, कभी-कभी शव को चाटने वाली, शवमांस से बनाये अन्नपिण्ड का भक्षण करने वाली, बीच-बीच में अट्टहास करने वाली, बाँयें हाथों में मुण्ड तथा खड्गधारिणी तथा दाहिने हाथों में अभय एवं वरमुद्राधारिणी, दन्तुरा, महारौद्री, चण्डनाद करने से अतिभीषण लगने वाली, घोररूप वाले शृङ्गालों से घिरी, भीषण गर्जन करने वाली, अपने भक्तों में घोर शब्द से मा भैः मा भैः वचन कहने वाली, यह पूछने वाली कि तुम क्या चाहते हो, मैं वह दूँगी, ऐसा बोलने वाली कालिका का ध्यान करता हूँ।।८-१६।।

एषामेकतमेन देवीं ध्यात्वा मानसोपचारैः पूजयेत्। यथा कुमारीकल्पे—

एनान्तु मानसैर्भोगैरर्चयित्वा यथाविधि।
ततो वै मानसं जापं कुर्याद् होमादिकं तथा।
नमस्कृत्य ततस्तुत्वा बहिर्यागमथाचरेत् ॥१७॥

इन ध्यानों में से किसी एक से ध्यान करके मानसोपचार द्वारा देवी का पूजन करना चाहिये, जैसा कि कुमारीकल्प में कहा गया है—मानस उपचार से इनकी यथाविधि अर्चना करके मानसिक जप तथा होम करना चाहिये। तत्पश्चात् नमस्कार और स्तुति करके बाहरी होम (बाहरी पूजा) करे।।१७।।

ततोऽर्घ्यस्थापनं कुर्यात्। यथा स्ववामे भूमौ हुं गर्भं त्रिकोणं विलिख्य तत्र साधारमर्घ्यपात्रं अस्त्राय फडिति प्रक्षालितं संस्थाप्य, मूलेन शुद्धजलेनापूर्य बिल्वपत्राक्षतादीनि तत्र निक्षिप्य, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः इत्याधारं, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः इति पात्रं, ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः इति जलञ्च सम्पूज्य ॐ गङ्गे चेत्यादिनाङ्कुशमुद्रया सूर्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना चतुष्कोणाग्नीशासुरवायुषु ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् इत्यग्रे ॐ ह्रः अस्त्राय फड़िति चतुर्दिक्षु च सम्पूज्य तदुपरि मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य मूलं जप्त्वा वमिति धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्यास्त्रेण संरक्ष्य हुमित्यवगुण्ठ्य

भूतिनीयोनिमुद्रे प्रदर्श्य तद्दक्षिणे पाद्याचमनीयपात्रञ्च संस्थाप्यार्घ्यजलं किञ्चित् प्रोक्षणीपात्रे निक्षिप्य मूलेन तनोदकेनात्मानं पूजोपरकणाञ्चाभ्युक्ष्य पीठं पूजयेत्॥१८॥

तत्पश्चात् विशेषार्घ्य स्थापन करना होगा। अपने बाँयें भूमि पर हुं गर्भ त्रिकोण मण्डल बनाकर उसमें 'फट्' मन्त्र से प्रक्षालित आधारयुक्त शङ्ख स्थापन करके उसे मूल मन्त्र उच्चारण करते हुये जल द्वारा पूरित करे। उस पात्र में बिल्वपत्र, अक्षत, पुष्प, चन्दन, दूर्वादि स्थापित करके 'ॐ मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' मन्त्र द्वारा आधार की, 'ॐ अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' से पात्र की, 'ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' से जल का पूजन करके (पात्रस्थ जल का) 'ॐ गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्र द्वारा अङ्कुश मुद्रा में सूर्यमण्डल से तीर्थ का आवाहन करके चतुष्कोण में अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य तथा वायुकोणों में क्रमशः ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुं मन्त्र से तथा आगे 'ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्' से तथा चारो दिशाओं में 'ॐ ह्रः अस्त्राय फट्' से पूजा करके उसके ऊपर मत्स्य मुद्रा द्वारा आच्छादन करके मूल मन्त्र का १० बार जप कर 'हुं' द्वारा अवगुण्ठन करके भूतिनी तथा योनिमुद्रा दिखाकर उसके दाहिने पाद्यपात्र तथा आचमन पात्र स्थापित करके कुछ अर्घ्य जल प्रोक्षणी पात्र में निक्षेप करके मूल मन्त्र से उस जल से आत्मा का तथा पूजा के उपकरणों का अभ्युक्षण करके पीठपूजा करनी चाहिये।।१८।।

अस्या पूजायन्त्रम्। आदौ बिन्दुं स्वबीजं भुवनेशीञ्च विलिख्य ततस्त्रिकोणमधोवक्त्रं चतुर्द्वारात्मकं भूगृह लिखेत् ॥१९॥

यथा कालीतन्त्रे—

आदौ त्रिकोणमालिख्य त्रिकोणं तद्बहिर्लिखेत् ।
ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् ॥२०॥
ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः ।
वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेद् भूपुरमेककम् ॥२१॥

अब काली का पूजायन्त्र कहते हैं। प्रथमतः भूमि पर बिन्दु, स्वबीज तथा भुवनेशी बीज बनाकर उस पर अधोमुख त्रिकोण, उसके बाहर अधोमुखी चार त्रिकोण, उसके पश्चात् वृत्त तथा अष्टदल कमल, पुनः वृत्त उस पर चतुर्द्वार युक्त भूगृह बनायें। कालीतन्त्र में लिखा है कि पहले त्रिकोण बनाकर उसके बाहर एक त्रिकोण अंकित करे। तदनन्तर मन्त्रज्ञ साधक उसके बाहर एक त्रिकोण बनाकर तब तीन उत्तम त्रिकोण

बनाये। तत्पश्चात् त्रिकोण के बाहर एक वृत्त बनाकर उसके पश्चात् अष्टदल कमल बनाये। तत्पश्चात् एक वृत्त बनाकर उसके बाहर चार द्वारयुक्त भूपुर अंकित करे।।१९-२१।।

कुमारीकल्पे—

मध्ये तु वैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितम् ॥२२॥ इति।

कुमारीकल्प में लिखा है कि मध्य में बीज तथा माया (ह्रीं) से विभूषित वैन्दव चक्र बनाकर अङ्कित करे।।२२।।

अथ यन्त्रान्तरम्; यथा तन्त्रे—

शक्त्याग्निभ्याञ्च षट्कोण शक्तिभिश्च नवात्मकम्।
पद्मे वसुदले भूमिपुश्चतुर्द्वारसंयुता ॥२३॥ इति।

शक्ति = अधोमुख त्रिकोण। अग्नि = ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण सहित मध्य में षट्-कोण, बाहर शक्तिसमूह द्वारा अर्थात् अधोमुखी त्रिकोणत्रय द्वारा नवकोण, अष्टदल कमल तथा चतुर्द्वारयुक्त भूपुर बनाये।।२३।।

अस्यार्थः—शक्तिरधोमुखस्त्रिकोणं अग्निरुद्ध्र्वमुखत्रिकोणं ताभ्यां मध्ये षट्कोणं तद्बहिः शक्तिभिरधोमुखत्रिकोणत्रयेण नवकोणं ततोऽष्टदलपद्मं चतुरस्त्रं चतुर्द्वारञ्चेति॥२४॥

शक्ति = अधोमुखी त्रिकोण। अग्नि = ऊर्ध्वमुख त्रिकोण। ताभ्यां—उसके साथ मध्य में षट्कोण। तद्बहिः—उसके बाहर। शक्तिभिः—अधोमुखी तीनों त्रिकोण के साथ। नवकोणं—नौ कोण। तत्पश्चात् अष्टदल कमल तथा चतुर्द्वार से युक्त भूपुर (चतुरस्त्र)।।२४।।

पीठपूजां यथा—ॐ आधारशक्तये नमः, एवं प्रकृतये, कूर्माय, शेषाय, पृथिव्यै, सुधाम्बुधये, मणिद्वीपाय, चिन्तामणिगृहाय, श्मशानाय, पारिजाताय, तन्मूले रत्नवेदिकायै, तदुपरि मणिपीठायै, चतुर्दिक्षु मुनिभ्यः, देवेभ्यः, परितो बहुमांसास्थिमोदमानशिवाभ्यः शवमुण्डेभ्यः। अग्न्यादि-कोणेषु—धर्माय, ज्ञानाय, वैराग्याय, ऐश्वर्याय। पूर्वादिदिक्षु अधर्माय, अज्ञानाय, अवैराग्याय, अनैश्वर्याय। मध्ये आनन्दकन्दाय, संविन्नालाय, प्रकृतिमयपत्रेभ्यः, विकारमयकेशरेभ्यः तत्त्वरूपकर्णिकायै, पद्माय, ॐ अं सूर्यमण्डलाय, ॐ उं सोमण्डलाय, सं सत्त्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने। पूर्वादितः पत्रमूलेषु इच्छायै, ज्ञानायै, क्रियायै, कामिन्यै, कामदायिन्यै, रत्यै, रतिप्रियायै, आनन्दायै। कर्णिकायां मनोन्मन्यै मध्ये ऐं परायै, अपरायै,

विरूपायै, ह्सौ सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। ततः पुनर्ध्यात्वा पुष्पाञ्जलावानीय यन्त्रमध्ये आवाहयेत्—

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते।
यावत् त्वां पूजायिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव॥२५॥

अब पीठपूजा करे। जैसे—ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ प्रकृतये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ शेषाय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ सुधाम्बुधये नमः, ॐ मणिद्वीपाय नमः, ॐ चिन्तामणिगृहाय नमः, ॐ श्मशानाय नमः, ॐ पारिजाताय नमः, पारिजात के मूल में—ॐ रत्नवेदिकायै नमः, रत्नवेदी के ऊपर—ॐ मणिपीठाय नमः, चारो दिशाओं में—ॐ मुनिभ्यो नमः, ॐ देवेभ्यो नमः, चतुर्दिक्—ॐ बहुमांसास्थिमोदमानशिवाभ्यो नमः, ॐ शवमुण्डेभ्यो नमः। अग्नि आदि चार कोणों में—ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्याय नमः। पूर्वादि दिशा में—ॐ अधर्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अवैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्याय नमः। मध्य में—ॐ आनन्दकन्दाय नमः, ॐ संविन्नालाय नमः, ॐ प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः, ॐ विकारमयकेशरेभ्यो नमः, ॐ तत्त्वात्मकर्णिकायै नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ अं सूर्यमण्डलाय नमः, ॐ उं सोममण्डलाय नमः, ॐ मं वह्निमण्डलाय नमः, ॐ सं सत्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः, ॐ आं आत्मने नमः, ॐ अन्तरात्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः, पूर्वादि क्रम से पत्र के मूल में—ॐ इच्छायै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ कामिन्यै नमः, ॐ कामदायिन्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ रतिप्रियायै नमः, ॐ आनन्दायै नमः, कर्णिका में—ॐ मनोन्मन्यै नमः। मध्य में—ॐ ऐं परायै नमः, ॐ अपरायै नमः, ॐ विरूपायै नमः, ॐ ह्सौ सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। तदनन्तर पुनः ध्यान करके पुष्पाञ्जलि में उन्हें लाकर यन्त्र के मध्य में उसका आवाहन करे और बोले—

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते।
यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव॥२५॥

ततो मूलमुच्चार्य श्रीदक्षिणकालिके! देवि इहावह इहावह इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व इह सन्निरुध्यस्व इत्यावाहनस्थापनसन्निरोधनमुद्राभिरावाहनादि कृत्वा अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाणेति सम्मुखीकरणमुद्रया सम्मुखीकृत्य देवीं षडङ्गन्यासेन सकलीकृत्य हुमित्यवगुण्ठनमुद्रयावगुण्ठ्य वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य महामुद्राख्य-

परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य भूतिन्याकर्षणीयोनिमुद्राः प्रदर्श्य प्राणप्रतिष्ठां विधाय पूजयेत्॥२६॥

इसके अनन्तर मूल मन्त्र पढ़कर कहे 'श्रीदक्षिणकालिके देवि इहावह इहावह इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व इह सन्निध्यस्व' मन्त्र से आवाहन, स्थापन, सन्निधापन, सन्निरोधन मुद्राओं द्वारा आवाहनादि करके देवी के षड़ङ्गन्यास द्वारा सकलीकरण करके 'हुं' मन्त्र से अवगुण्ठन मुद्रा द्वारा अवगुण्ठन करके 'वं' मन्त्र से धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करके महामुद्रा नामक परमीकरण मुद्रा से परमीकरण करके भूतिनी, आकर्षणी तथा योनिमुद्रा दिखलाकर प्राणप्रतिष्ठा करके पूजन करना चाहिये।।२६।।

सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी ।
अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रामिता मता ॥२७॥
अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुलिः ।
महामुद्रेयमुदिता परमीकरणे बुधैः ॥२८॥
परमीकरणमायुधाभरणादिभिः पूर्णीकरणम् ।

दोनों हथेलियों की मुट्ठी बनाकर दीर्घ तथा अधोमुख तर्जनी को दोनों ओर भ्रामित करने से अवगुण्ठन मुद्रा कही जाती है। दोनों हथेली के अंगूठों को परस्पर ग्रथित करके अन्य उंगलियों को प्रसारित करने पर पण्डितगण द्वारा कही गई परमीकरण महामुद्रा बन जाती है। परमीकरण है—आयुध तथा आभरणादि से पूर्णीकरण।।२७-२८।।

बद्ध्वा तु योनिमुद्रां वै मध्यमे कुटिले कुरु ।
अङ्गुष्ठेन तदग्रन्तु मुद्रैषा भूतिनी मता ॥२९॥

योनिमुद्रा बन्धन करके मध्यमाङ्गुलि से दोनों को कुटिल करे। अंगुष्ठ से उनके अग्र को युक्त कराये। यह भूतिनी मुद्रा कही गई है।।२९।।

मध्यमातर्जनीभ्याञ्च कनिष्ठानामिके समे ।
अङ्कुशाकाररूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि ॥३०॥
अङ्गुष्ठञ्च वियुञ्जीत कनिष्ठानामिकोपरि ।
इयमाकर्षणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षणी परा ॥३१॥

हे परमेश्वरि! अङ्कुशाकार बनाई गई मध्यमा तथा तर्जनी के साथ कनिष्ठा तथा अनामिका को समान करना चाहिये; साथ ही अनामिका के ऊपरी भाग के साथ अंगुष्ठ को जोड़ने से श्रेष्ठ आकर्षिणी मुद्रा सम्पन्न होती है, जो त्रैलोक्य का आकर्षण करने में समर्थ है।।३०-३१।।

ततो मूलमुच्चार्य एतत्पाद्यं दक्षिणकालिकायै नमः, एवमिदमर्घ्यं स्वाहा इदमाचमनीयं स्वधा स्नानीयं निवदेयामि। पुनराचमनीयं स्वधा। एष गन्धो नमः, एतानि पुष्पाणि वौषट्। ततो मूलेन पुष्पाञ्जलिपञ्चकं दत्त्वा धूपदीपौ दद्यात्। यथा—मूलमुच्चार्य एष धूपः ॐ दक्षिणे काल्यै नमः इत्युत्सृज्य ॐ जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहेति घण्टामभ्यर्च्य वामपाणिना वादयन्—

ॐ वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यं सुमनोहरः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।

इति पठित्वा नीचैर्धूपं प्रचालयेत्। ततो मूलमुच्चार्य एष दीपः ॐ दक्षिण-काल्यै नमः इत्युत्सृज्य वामेन घण्टां वादयन् ।।३२।।

तत्पश्चात् मूल मन्त्र का उच्चारण करके 'एतत् पाद्यं दक्षिणकालिकायै नमः' मन्त्र से पाद्य समर्पित करे। इसी प्रकार 'इदमर्घ्यं स्वाहा' से अर्घ्य, 'इदमाचमनीयं स्वधा' मन्त्र से आचमन, 'इदं स्नानीयं निवेदयामि' मन्त्र से स्नान, पुनः उसी आचमन मन्त्र से आचमन, 'एष गन्धो नमः' से गन्ध, 'एतानि पुष्पाणि वौषट्' से पुष्प प्रदान करे। इसके अनन्तर मूल मन्त्र से पाँच बार पुष्पाञ्जलि देकर धूप-दीप निवेदन करना चाहिये। यथा—मूल मन्त्र कहकर 'एष धूपः ॐ दक्षिणकाल्यै नमः' मन्त्र से धूप दे। तत्पश्चात् 'जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा' कहकर इससे घण्टा की अर्चना करके बाँयें हाथ से घण्टा को बजाते-बजाते यह पढ़े—

ॐ वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।

यह पढ़कर देवी के नीचे स्थल पर धूप को चालित करे। तदनन्तर मूल मन्त्र पढ़ते हुये 'एष दीपः ॐ दक्षिणकाल्यै नमः' मन्त्र से दीपोत्सर्ग करके बाँयें हाथ से घण्टा-ध्वनि करे। नीचे मन्त्र लिखा है, उसे पढ़ते हुये घण्टा बजाये।।३२।।

ॐ सुप्रकाशो महादीपः सर्वतस्तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।।३३।।

इति पठित्वा दृष्टिपर्यन्तं दीपं चालयेत्। ततो मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा नैवेद्यमाचमनीयं ताम्बूलञ्च दत्त्वा श्रीदक्षिणकालिके देवि! आवरणं ते पूजयामीत्यनुज्ञां गृहीत्वावरणानि पूजयेत्। यथा अग्न्यादिकोणकेशरेषु—

तुषारस्फटिकश्यामनीलकृष्णारुणार्चिषः ।
वरदाभयधारिण्यः पुरातननवस्त्रियः ।।३४।।

श्लोक ३३ पढ़कर जहाँ तक दृष्टि जाय, दीप का चालन करना चाहिये। इसके पश्चात् मूल मन्त्र पढ़ते हुये तीन बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करके नैवेद्य, आचमन तथा ताम्बूल प्रदान करके 'श्रीदक्षिणकालिके देवि आवरणं ते पूजयामि' कहकर उनकी आज्ञा लेने के उपरान्त आवरण पूजा करे। जैसे अग्न्यादि कोणसमूह में यह ध्यान करे जो श्लोक ३४ में कहा है।।३३-३४।।

इति ध्यात्वा ॐ क्रां हृदयाय नमः इत्यादिना मध्ये ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, चतुर्दिक्षु ॐ क्रः अस्त्राय फट्। ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना वा। ततो वायव्यादीशपर्यन्तं गुरुपंक्तिं समर्चयेत्। यथा—ॐ महादेव्यम्बायै नमः। ॐ महादेवानन्दनाथाय नमः एवं क्रमेण दिव्यौघसिद्धौघमानवौघान् गुरूनर्चयेत्। ततः ॐ गुरुभ्यो नमः। ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परा-परगुरुभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः इति पूजयेत्।।३५।।

इस प्रकार से ध्यान करके ॐ क्रां हृदयाय नमः, ॐ क्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ क्रूं शिखायै वषट्, ॐ क्रैं कवचाय हुं मन्त्रों से अग्नि आदि चारो कोणों का पूजन करके मध्य में—ॐ क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् से षडङ्ग पूजन करे अथवा ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि से षड़ङ्ग पूजन करे। तदनन्तर वायुकोण से आरम्भ करके ईशान कोण-पर्यन्त गुरुपंक्ति का पूजन करना होगा। जैसे—ॐ महादेव्यम्बायै नमः, ॐ महादेवानन्दनाथाय नमः। इस क्रम से दिव्यौघ, सिद्धौघ तथा मानवौघ गुरुसमूह की अर्चना करके ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परापरगुरुभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः से गुरुपंक्ति का पूजन करना होगा।।३५।।

यथा वीरतन्त्रे—

श्रीदेव्युवाच

आदौ सर्वत्र देवेश मन्त्रदः परमो गुरुः।
परापरगुरुस्त्वं हि परमेष्ठिरहं स्वतः।।३६।।

जैसे वीरतन्त्र में कहा है—देवी कहती हैं—हे देवेश! प्रथमतः मन्त्रदाता ही परमगुरु होते हैं। अन्य परापरगुरु हैं। मैं स्वतः परमेष्ठी गुरु हूँ।।३६।।

ईश्वर उवाच

सर्वमन्त्रेषु विद्यासु स्वयं प्रकृतिरूपिणी।
ततः पुरुषरूपस्तु ततः स्वगुरुसन्ततिः।।३७।।
तेन चाहं मदंशाश्च मद्भक्ताश्चाविशेषतः।
मानवौघाः समासेन कथयामि तवाग्रतः।।३८।।

ईश्वर कहते हैं कि समस्त मन्त्र में तथा समस्त विद्याओं में तुम ही प्रकृतिरूपिणी हो, तदनन्तर पुरुष स्वगुरुसन्तति है। इसीलिये हे देवि! मैं, मेरा अंश तथा मेरे भक्त-समूह अविशेष दिव्यौघ गुरु हैं। इसी प्रकार सिद्धौघ गुरु हैं। मानवौघ गुरु भी हैं। मैं तुमसे संक्षेप में सब कहूँगा।।३७-३८।।

तत्रादौ कालिकादेवी तस्याः शृणु गुरुक्रमम्।
महादेवी महादेवस्त्रिपुरश्चैव भैरवः।
दिव्यौघा गुरवः प्रोक्ता सिद्धौघान् कथयामि ते।।३९।।

उनमें प्रथम कालिका देवी हैं। उनके अनन्तर गुरुक्रम सुनो—महादेवी, महादेव तथा त्रिपुरभैरव दिव्यौघ गुरु हैं। अब सिद्धौघ गुरु कहता हूँ।।३९।।

ब्रह्मानन्दं पूर्णदेवश्चलचित्तश्चलाचलः।
कुमारः क्रोधनश्चैव वरदः स्मरदीपनः।
माया मायावती चैव मानवौघान् शृणु प्रिये।।४०।।

हे प्रिये! ब्रह्मानन्द, पूर्णदेव, चलचित्त, चलाचल, कुमार, क्रोधन, वरद, स्मरदीपन, माया, मायावती—ये सिद्धौघ हैं। अब मानवौघ को सुनो।।४०।।

विमलः क्रकरश्चैव भीमसेनः सुधाकरः।
नीलो गोरक्षकश्चैव भोजदेवः प्रजापतिः।।४१।।
मूलदेवो रन्तिदेवो विघ्नेश्वरहुताशनौ।
समयानन्दसन्तोषौ कालिकागुरवः स्मृता।
आनन्दनाथशब्दान्ताः गुरवः परिकीर्त्तिताः।।४२।।

विमल, क्रकर, भीमसेन, सुधाकर, नील, गोरक्ष, भोजदेव, प्रजापति, मूलदेव, रन्तिदेव, विघ्नेश्वर, हुताशन, समयानन्द तथा सन्तोष को कालिका (प्रकरण) का गुरु कहा गया है, जो मानवौघ गुरु हैं। गुरुवर्ग के नाम के अन्त में 'आनन्दनाथ' शब्द का प्रयोग रहता है।।४१-४२।।

तथा—

अज्ञानाद् गुरुनाम्नां वै गुरुत्रितयमर्चयेत्।
चतुष्टयं वा सङ्कोचो न च कार्यस्ततः परम्।।४३।।

और भी कहा है कि गुरु का नाम अज्ञात रहने पर गुरुत्रितय (गुरु-परमगुरु तथा परापर गुरु) की अर्चना करनी चाहिये अथवा गुरुचतुष्टय (उपरोक्त तीनों गुरु तथा परमेष्ठि—इन चार की) अर्चना करनी चाहिये।।४३।।

गुरुः परमगुरुश्चैव परापरगुरुस्ततः ।
परमेष्ठिगुरुश्चैव कथिता गुरवस्ततः ।।४४।।

गुरु, परमगुरु, परापरगुरु तथा परमेष्ठी गुरु को गुरुपंक्ति कहा गया है।।४४।।

भैरवतन्त्रे—

ऋष्यन्ता गुरवो विष्णोर्नाथान्ता गुरवः शिवे ।
आनन्दान्ताश्च नाथान्ताः शक्तौ च गुरवः स्मृतः ।।४५।।

भैरवतन्त्र में कहते हैं कि विष्णु के गुरु (वैष्णव गुरु) ऋष्यन्त होंगे। शिव के गुरु वर्ग (शैव गुरुवर्ग) नाथान्त, शक्तिमार्ग के गुरु आनन्दनाथान्त होंगे।।४५।।

ततः बहिः षट्कोणे—ॐ काल्यै नमः, एवं कपालिन्यै, कुल्लायै, कुरुकुल्लायै, विरोधिन्यै, विप्रचित्तायै। अन्तस्त्र्यस्त्रे—उग्रायै, उग्रप्रभायै, दीप्तायै। द्वितीयत्र्यस्त्रे—ॐ नीलायै, घनायै, बलाकायै, तृतीयत्र्यस्त्रे—मात्रायै, मुद्रायै, मितायै।।४६।।

उसके बाहरी छः कोणों में—ॐ काल्यै नमः, ॐ कपालिन्यै नमः, ॐ कुल्लायै नमः, ॐ कुरुकुल्लायै नमः, ॐ विरोधिन्यै नमः, ॐ विप्रचित्तायै नमः से पूजा करे। मध्य त्रिकोण में—ॐ उग्रायै नमः, ॐ उग्रप्रभायै नमः, ॐ दीप्तायै नमः से; द्वितीय त्रिकोण में—ॐ नीलायै नमः, ॐ घनायै नमः, ॐ बलाकायै नमः से तथा तृतीय त्रिकोण में—ॐ मात्रायै नमः, ॐ मुद्रायै नमः, ॐ मितायै नमः द्वारा पूजन करना चाहिये।।४६।।

सर्वा श्यामा असिकरा मुण्डमालाविभूषिताः ।
तर्जनीं वामहस्तेन धारयन्त्यशुचिस्मृताः ।
दिगम्बरा हसन्मुख्यः स्वस्ववाहनभूषिताः ।।४७।।

इति ध्यात्वाऽर्चयेत्।

ये सभी श्यामवर्णा, असिहस्ता, मुण्डमाला-विभूषिता हैं। वाम हस्त में तर्जनी में मुद्रा धारण किये हुये, शुचिस्मिता, हसन्मुखी, दिगम्बरा तथा अपने-अपने वाहन से भूषिता हैं। इस प्रकार ध्यानोपरान्त अर्चन करते हैं।।४७।।

ततोऽष्टपत्रेषु पूर्वादितः ॐ आं ब्राह्मयै नमः। ॐ ईं नारायण्यै। ॐ ऊं माहेश्वर्यै। ॐ ॠं चामुण्डायै। ॐ ॡं कौमार्यै। ॐ ऐं अपराजितायै। ॐ औं वाराह्यै। ॐ अं नारसिंह्यै इति सम्पूज्य मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात्। ततः पाद्यादिना महाकालमर्चयेत्।।४८।।

अष्टदल में पूर्वादि दिशाक्रमेण ॐ आं ब्राह्म्यै नमः, ॐ ईं नारायण्यै नमः, ॐ ऊं माहेश्वर्यै नमः, ॐ ॠं चामुण्डायै नमः, ॐ लृं कौमार्यै नमः, ॐ ऐं अपराजितायै नमः, ॐ औं वाराह्यै नमः, ॐ अः नारसिंह्यै नमः से पूजन करके मूल मन्त्र से तीन पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये। तदनन्तर पाद्यादि उपचार से महाकाल का पूजन करे।।४८।।

यथा कुमारीकल्पे—

देवास्तु दक्षिणेभागे महाकाले प्रपूजयेत्।

तत्र मन्त्रः—हुं क्ष्रौं यां रां लां वां क्रौं महाकालभैरव! सर्वविघ्नान् नाशय नाशय ह्रीं श्रीं फट् स्वाहा॥४९॥

जैसा कि कुमारीकल्प में कहा है कि देवी के दाहिने महाकाल की पूजा करे। उनका मन्त्र ऊपर लिखा है। उससे पूजन करना चाहिये।।४९।।

यथा कालीकल्पे—

कवचं क्ष्रौं समुद्धृत्य यां रां लां वां च क्रौं ततः।
महाकाल भैरवेति सर्वविघ्नान् नाशयेति च॥५०॥
नाशयेति पुनः प्रोच्य मायां लक्ष्मीं समुद्धरेत्।
फट् स्वाहया समायुक्तो मन्त्रः सर्वार्थसाधकः॥५१॥

जैसा कि कालीतन्त्र में कहा है कि कवच (हुं) क्ष्रौं का उद्धार करके यां रां लां वां क्रौं कहे। तत्पश्चात् महाकालभैरव सर्वविघ्नान् नाशय कहकर पुनः नाशय कहे। तदनन्तर माया (ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं) का उद्धार करे। यह मन्त्र फट् तथा स्वाहा से युक्त होकर सर्वार्थसाधक हो जाता है।।५०-५१।।

कवचं पञ्चमस्वरवद् रूपम्। ततो महाकालं त्रिस्तर्पयित्वा पत्राग्रेषु पूर्वादितः ऐं ह्रीं असिताङ्गाय भैरवाय नमः। एवं रुरवे, चण्डाय, क्रोधाय, उन्मत्ताय, कपालिने, भीषणाय, संहाराय इत्यभ्यर्च्य तद्बहिरिन्द्रादिलोक-पालान् तद्बहिर्वज्राद्यस्त्राणि च पूजयेत्॥५२॥

कवच पञ्चम स्वर-विशिष्ट होगा। तत्पश्चात् महाकाल का तीन बार तर्पण करके पत्र के आगे पूर्वादि क्रमेण ॐ ऐं ह्रीं असिताङ्गाय भैरवाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं रुरवे भैरवाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं चण्डाय भैरवाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं क्रोधाय भैरवाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं उन्मत्ताय भैरवाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं कपालिने भैरवाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं भीषणाय भैरवाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं संहाराय भैरवाय नमः—इन मन्त्रों से इनका पूजन करे।।५२।।

यथा कुमारीतन्त्रे—

ब्राह्म्याद्याः पूजयेत् पत्रे पत्राग्रे भैरवान् यजेत्।
लोकपालांस्ततो बाह्ये तदस्त्राणि च तद्बहिः॥५३॥

जैसा कुमारीतन्त्र में कहा है कि पत्र में ब्राह्मी आदि अष्ट मातृगण का तथा पत्र के अग्र में भैरवगण का पूजन करे। उसके बाहर चतुरस्र में लोकपालों का पूजन तथा उसके बाहर उनके अस्त्रसमूह का पूजन करना चाहिये।।५३।।

ततो देव्या वामोदर्ध्वहस्ते ॐ खं खड्गाय, एवं अधो नृमुण्डाय। दक्षो-दर्ध्वहस्ते—ॐ अं अभयाय। एवमधः—वराय। ततो षडङ्गन्यासं विधाय मूलेन पञ्चोपचारैर्देवीं पूजयेत्।।५४।।

तत्पश्चात् देवी के बाँयें ऊपरी हाथ में—ॐ खं खड्गाय नमः, बाँयें नीचे के हाथ में—ॐ नृं नृमुण्डाय नमः, दाहिने ऊपरी हाथों में—ॐ अं अभयाय नमः तथा दाहिने नीचे वाले हाथ में—ॐ वं वराय नमः से पूजा करे। तत्पश्चात् षडङ्गन्यास करके मूल मन्त्र से पञ्चोपचार द्वारा देवी की पूजा करे।।५४।।

यथा कालीतन्त्रे—

महाकालं यजेद्यत्नात् पश्चाद्देवीं प्रपूजयेत् ।।५५।।

जैसे कालीतन्त्र में कहा है कि महाकाल की यत्नपूर्वक पूजा करके तब देवी की पूजा उत्तम रूप से करनी चाहिये।।५५।।

कुमारीकल्पे—

ततो नीराजनं कुर्याद् दशवारं प्रदीपकैः ।।५६।।

कुमारीकल्प में कहते हैं कि तत्पश्चात् प्रदीपों द्वारा देवी का नीराजन दस बार करना चाहिये।।५६।।

ततः प्राणायामं विधाय कामकलां ध्यात्वा शिरसि गुरुं हृदि देवीं भावयन् यथाशक्ति जपेत्। ततः प्राणायामं कृत्वा अर्घ्याज्जलपुष्पादिकं गृहीत्वा गुह्येत्यादिना देव्या वामहस्ते जपं समर्प्य स्तुत्वा प्रदक्षिणी-कृत्याष्टाङ्गपातं प्रणमेत्, जगन्मङ्गलं नाम कवचञ्च पठेत्। तत ॐ इतः पूर्वमित्यादिनात्मसमर्पणं कृत्वा योनिमुद्रां प्रदर्श्यावरणानि देव्यङ्गे विलाप्य संहारमुद्रया हे देवि! पूजितासि क्षमस्वेति विसृज्य तत्तेजः पुष्पेण सहानीय वामनासा विवरवर्त्मना स्वहृदयमारोपयेत्।।५७।।

तदनन्तर प्राणायाम करके कामकला का ध्यान करके मस्तक में गुरु तथा हृदय में देवी की भावना करते-करते यथाशक्ति जप करना चाहिये। तत्पश्चात् प्राणायाम करके अर्घ्य से जल तथा पुष्पादि लेकर 'ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं' इत्यादि मन्त्र द्वारा देवी के बाँयें हाथ में जप-समर्पण करके स्तुति, प्रदक्षिणा तथा साष्टाङ्ग प्रणाम करे तथा

जगन्मङ्गल नामक कवच का पाठ करे। तदनन्तर 'ॐ इतः पूर्वम्' इत्यादि मन्त्र से आत्मसमर्पण करके योनिमुद्रा दिखलाकर आवरण समूह को देवी के अंग में विलापित करके संहार मुद्रा द्वारा 'हे देवि पूजितासि क्षमस्व' मन्त्र से विसर्जन करके उस (देवी) तेज को पुष्प में आया है—यह भावना करके पुष्प को वाम नासा से सूँघे तथा इस श्लोकमन्त्र से अपने हृदय में (भावना द्वारा) वह तेज आरोपित करे।।५७।।

ॐ उत्तरे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतवासिनि।
ब्रह्मयोनिसमुत्पन्ने गच्छ देवि! ममान्तरम् ।।५८।।

इति मन्त्रेण। तत ऐशान्यां मण्डलिकां कृत्वा तत्र ॐ उच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः इति त्रिः सम्पूज्य यन्त्रलेपं वामहस्ते कृत्वा दक्षिणहस्ते कनिष्ठया तत्र मायाबीजं विलिख्य तया तिलकं कुर्यात्।।५९।।

इस मन्त्र को पढ़कर अपने हृदय में तेज आरोपण के पश्चात् ईशान कोण में मण्डल करके उसमें 'ॐ उच्छिष्टचाण्डालिन्यै नमः' मन्त्र द्वारा तीन बार पूजन करके वाम हथेली पर यन्त्रलेप धारण करके दाहिने हाथ की कनिष्ठा द्वारा वहाँ (ह्रीं) मायाबीज लिखकर इस यन्त्र लेप से तिलक करे।।५८-५९।।

यथा—

वामे कृत्वा यन्त्रलेपं मायां सव्या कनिष्ठया।
विलिख्य तिलकं कुर्यान्मन्त्रेणानेन साधकः ।।६०।।
यं यं स्पृशामि हस्तेन यं यं पश्यामि चक्षुषा।
स स मे वश्यतां यातु यदि शत्रुसमो भवेत् ।।६१।।

तन्त्र में लिखा है कि साधक बाँयें हाथ में यन्त्र का लेप करके दक्षिण हाथ की कनिष्ठा से वहाँ (ह्रीं) माया लिखकर इस मन्त्र द्वारा तिलक करे (अर्थात् श्लोक ६० को पढ़कर तिलक लगाये)।।६०-६१।।

जपकाले जिह्वा कर्पूराढ्या कार्या। 'कर्पूराढ्या सदा जिह्वा कर्त्तव्या जपकर्मणि' इति विश्वसारवचनात्। इदं काम्यजपविषयकमिति तत्त्वम्। तन्नैवेद्यं शिष्टेभ्यो दत्त्वा किञ्चित् स्वीकृत्य यन्त्रोदकं पीत्वा निर्माल्यं शिरसा विधृत्य त्रैलोक्यं वशीकुर्यात् ।।६२।।

जपकाल में जिह्वा में कर्पूर लगाना चाहिये। जपकर्म में जिह्वा को सदा कर्पूर से युक्त रखना चाहिये, यह विश्वसार तन्त्र का वचन है। यह वचन काम्य जप-विषयक है। कालिका का नैवेद्य उनके भक्तगण को देकर कुछ स्वयं ग्रहण करके यन्त्रजल को

पीकर निर्माल्य को मस्तक पर धारण करके यथेच्छ विचरण करे। तदनन्तर वह साधक मूल मन्त्र का १०८ जप करके अभिमन्त्रित पुष्प चन्दन धारण करके त्रैलोक्य को वश में कर सकता है।।६२।।

अस्य पुरश्चरणं लक्षद्वयजपः। यथा कालीतन्त्रे—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः।
रात्रौ ताम्बूलपूर्णास्यः शय्यायां लक्षमानतः।।६३।।

इस मन्त्र का पुरश्चरण दो लाख जप है। जैसा कि कालीतन्त्र में कहा है कि साधक पवित्र होकर हविष्यान्न भोजन पर निर्भर रहकर दिन में एक लाख जप करे। रात में मुख में ताम्बूल रखकर एक लाख जप करे।।६३।।

व्यवस्थामाह स्वतन्त्रतन्त्रे—

दिवा लक्षं शुचिर्भूत्वा हविष्याशी जपेन्नरः।
ततस्तु तद्दशांशेन होमयेद् हविषा प्रिये।।६४।।

व्यवस्थार्थ स्वतन्त्र तन्त्र में कहा है कि मानव हविष्याशी तथा पवित्र होकर दिन में एक लाख जप करे तथा घृत से दशांश होम करे।।६४।।

तेन यावता कालेन सिध्यति, तावता दिवा लक्षं जप्त्वा दिवैव तद्दशांशं जुहुयात्। ततः परं यावता सिध्यति, तावता रात्रौ शय्यायां ताम्बूलपूर्णास्यो लक्षं जप्त्वा रात्रावेव तद्दशांशं जुहुयादित्यर्थः।।६५।।

तत्पश्चात् जब तक सिद्धि हो तब तक दिन में एक लाख मन्त्र जप करके दिन में ही दशांश होम करना चाहिये। तत्पश्चात् जिस परिमाणकाल में सिद्धि मिले, उस परिमाणकाल-पर्यन्त शय्या पर मुख में ताम्बूल रखे हुये एक लाख मन्त्र का जप करके उसका दशमांश होम करे।।६५।।

अत्राङ्गस्य कालान्तरमाह नीलसारस्वते। यथा—

लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हविष्याशी दिवा शुचिः।
अशुचिश्च तथा रात्रौ लक्षमेकं तथैव च।
दशांशं होमयेन्मन्त्री तर्पयेदभिषेचयेत्।।६६।।

यहाँ नीलसारस्वत तन्त्र में तर्पणादि अंग हेतु अन्य काल भी कहा है। शुचि तथा हविष्याशी साधक दिन में एक लाख जप करे तथा अशुचि होकर रात्रि में एक लाख जप करे। मन्त्रज्ञ साधक को इस प्रकार दशांश होम (होम का दशांश) तर्पण तथा अभिषेक करना चाहिये।।६६।।

कुमारीकल्पेऽपि—

लक्षमेकं जपेद्विद्यां हविष्याशी दिवा शुचिः।
रात्रौ ताम्बूलपूरास्यः शय्यायां लक्षमानतः ॥६७॥
एवं लक्षद्वयं जप्त्वा तद्दशांशेन मन्त्रवित्।
अयुतं होमयेद् देवि दिवरात्रि विशेषतः ॥६८॥

कुमारी कल्प में भी कहा है कि हविष्याशी तथा पवित्र होकर दिन में एक लाख जप करे। रात्रि में मुख में ताम्बूल रखकर एक लाख जप करना चाहिये। हे देवि! मन्त्रज्ञ साधक दिन-रात्रि भेदानुसार दो लाख जप करके उसका दशांश परिमाण १०००० होकर करे।।६७-६८।।

तेन दिवारात्रौ लक्षद्वयं जप्त्वा पश्चाद् दिवारात्रौ दशांशं जुहुयादिति विषयविभागः। दक्षिणां तु कल्पद्वये लक्षद्वयजपायुतद्वयं होमतर्पणाद्यनन्तर-मेव। एतेन यावत्सु दिनेषु शुचिना लक्षं दिवा जप्तव्यम्, तावत्स्वेवाऽशुचिना रात्रौ लक्षं जप्तव्यमित्येकाहोरात्रे ताम्बूलभक्षणेन हविष्यान्नभक्षणस्य विरोधोऽपि निरस्त इति। एवञ्च तर्पणाद्यङ्गमपि दिवारात्रौ कर्त्तव्यमेकत्र दृष्टत्वादिति वा कल्पः। अत्रेदं बोध्यं विप्राणां दिवा लक्षजपमात्रेणैव पुरश्चरणं सिध्यति॥६९॥

इस प्रकार दिन-रात्रि में दो लाख जप करके दिवा में १०००० तथा रात्रि में १०००० होम करना चाहिये। इसी प्रकार से तर्पणादि तथा दो बार दक्षिण भी देनी चाहिये। शुचि होकर इसमें जितने दिन दिवाकाल में एक लाख जप पूर्ण करना चाहिये और उतने ही दिनों में रात्रि में भी एक लाख अशुचि होकर (ताम्बूल मुँह में रखकर) जप करना चाहिये। इस प्रकार एक अहोरात्र में हविष्यान्न भक्षण तथा ताम्बूल भक्षण का विरोध निरस्त हो जाता है। इसी प्रकार तर्पणादि अंग भी दिवा में (दिवा जपानुसार) तथा रात्रि में रात्रि जप के अनुसार करना चाहिये। यह इसी प्रकार का कल्प है।

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि ब्राह्मणों को दिवा में एक लाख जप द्वारा ही पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है।।६९।।

यथा फेत्कारीये—

द्विजातीनाञ्च सर्वेषां दिवा विधिरिहोच्यते।
शूद्राणाञ्च तथा प्रोक्तं रात्राविष्टं महाफलम् ॥७०॥

जैसा कि फेत्कारीतन्त्र में कहा है कि यहाँ समस्त द्विजों के लिये दिवाविधि कही

गई है। शूद्रगण के लिये रात्रिविधि कही गई है। ऐसा करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।।७०।।

कालीरहस्येऽपि—

दिवैव प्रजपेन्मन्त्रं लक्षमेकं शुचिर्द्विजः ।।७१।।

कालीरहस्य में भी कहा गया है कि पवित्र ब्राह्मण को दिन में ही एक लाख जप करना चाहिये।।७१।।

रात्रिजपे कालनियमस्तु मुण्डमालातन्त्रे—

गते तु प्रथमे यामे तृतीयप्रहरावधि ।
निशायान्तु प्रजप्तव्यं रात्रिशेषे जपेन्न तु ।।७२।।

मुण्डमाला तन्त्र में रात में जप का कालनियम कहते हैं कि रात्रि का प्रथम प्रहर गत होने पर तृतीय प्रहर-पर्यन्त जप करे। किन्तु रात्रिशेष पर जप न करे।।७२।।

अथ मन्त्रभेदाः

वर्गाद्यं वह्निसंयुक्तं रतिबिन्दुविभूषितम्।
एकाक्षरो महामन्त्रं सर्वकामफलप्रदः।
त्रिगुणा तु विशेषेण सर्वशास्त्रप्रबोधिनी ।।१।।

अब काली का विभिन्न मन्त्र कहा जाता है। वर्ग का आदिवर्ण 'क' वह्नि 'र' में स्थित होकर रति (ई) तथा बिन्दु (ं) द्वारा भूषित होकर सर्व कामफलप्रद हो जाता है। यह विशेष रूप से त्रिगुणित होकर सर्वशास्त्र-प्रबोधिनी विद्या हो जाती है। मन्त्रोद्धार होता है—क्रीं। त्रिगुणित अर्थात् क्रीं क्रीं क्रीं।।१।।

कालिकाश्रुतौ—अथाह सर्वां विद्यां प्रथममेकं द्वयं त्रयं वा नामुपटितं कृत्वा यो जपेत् गतिस्तस्यास्तीति नान्यस्येह ॐ सत्यं तत् सत्। अथ गुरुं परितोष्य गृह्णीयान्मन्त्रराजकम्। गुरुस्तमपि शिष्याय सत्कुलीनाय विद्यायुक्ताय शुश्रुषवे स्त्रियं स्पृष्ट्वा स्वयं परिपूज्य निशायां निह्नवे एकाकी शिवगृहे लक्षं तदर्धं वा जप्त्वा दद्यात्। ॐ सत्यं तत् सत्। नान्यप्रकारेण सिद्धिर्भवतीह वै कालिकामनोर्वा तारायास्त्रिपुरामनोर्वा सर्वस्य दुर्गामनोर्वा इत्याम् शिव ॐ ॐ तत्सदिति।।२।।

कालिकोपनिषद् में कहते हैं कि समस्त पूर्वोक्त विद्या को एक, दो अथवा तीन नामों से पुटित करके जो जपता है उसका फल है, उसी की गति है। अन्य की गति नहीं है। यह सत्य है। यही वह सत् ब्रह्म है। तदनन्तर गुरु को संतुष्ट करके मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। गुरु उस सत्कुलीन विद्वान् सेवा करने वाले शिष्य को स्त्री का स्पर्श करके स्वयं उत्तम रूप से पूजा करके एकाकी शिवगृह में एक लाख अथवा ५०००० मन्त्र जप करके प्रदान कर देते हैं। यह सत्य है। यही सत् ब्रह्म है। इस लोक में कालिका मन्त्र, तारामन्त्र अथवा समस्त दुर्गामन्त्र की अन्य प्रकार से सिद्धि नहीं हो सकती। यह शिव है। यह वही सत् ब्रह्म है।।२।।

सर्वां विद्यामिति पूर्वोक्तविद्यामित्यर्थः। तस्याः प्रथमबीजं वा बीजद्वयं वा बीजत्रयं वा एकेन बीजेन द्वाभ्यां त्रिभिर्वा पुटितं नाम वा जपेदित्यर्थः। तथा च महास्तवे—प्रत्येकं वा द्वयं वा त्रयमपि च परं बीजमत्यन्तगुह्यम्। तन्नाना योजयित्वा इत्युक्तम्।।३।।

सर्वविद्यां = पूर्वोक्त विद्या। उसका प्रथम बीज, बीजद्वय अथवा बीजत्रय। एक, दो अथवा तीन बीज से पुटित काली नाम जप करे, यह तात्पर्य है। महास्तवे = प्रत्येक बीज, दो अथवा तीन अत्यन्त गोपनीय है। इसका जो तुम्हारे नाम के साथ योग करके जप करे—यह तात्पर्य है।।३।।

कालीतन्त्रे च—

कामाक्षरं वह्निसंस्थं इन्दिरानादबिन्दुभिः।
मन्त्रराजमिदं ख्यातं दुर्लभं पापचेतसाम्।।४।।
सुलभा शुभदा भक्त्या साधकानां महात्मनाम्।
त्रिगुणा तु विशेषेण सर्वशास्त्रप्रबोधिका।
अनया सदृशी विद्या न हि सारस्वतप्रदा।।५।।
आकर्षणवशीकार मारणोच्चाटनं तथा।
शान्तिपुष्ट्यादिकर्माणि साधयेदनयाऽचिरात्।।६।।
किं कर्त्तव्यमनेनापि वर्णितुं नैव शक्यते।
जिह्वाकोटिसहस्त्रैस्तु वक्त्रकोटिशतैरपि।।७।।
अनया सदृशी विद्या अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति।।८।।

इन्दिरा चतुर्थस्वरः। अनयोः—एकाक्षरद्व्यक्षरयोः। कराङ्गन्यासौ दीर्घषट्कयुतेनाद्यबीजेनैव न तु मायाबीजेनापि।।९।।

'क्रीं' यह प्रसिद्ध मन्त्र पापात्माओं के लिये सर्वथा दुर्लभ है। सन्मार्गगामी साधकों के लिये यह कल्याणकारी मन्त्रराज भक्तिमात्र से ही सुलभ रहता है। इसका त्रिगुण जप समस्त शास्त्रों के रहस्यों को स्पष्ट करने वाला होता है। इसके समान विद्या प्रदान करने वाला अन्य कोई मन्त्र नहीं है।

इसके द्वारा शीघ्र ही आकर्षण, वशीकरण, मारण, उच्चाटन, शान्ति, पुष्टि आदिकर्मों का साधन किया जा सकता है। ऐसा कुछ भी नहीं है, जो इससे नहीं किया जा सकता। हजारो करोड़ जिह्वा एवं सैकड़ों करोड़ मुख से भी इसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। इसके समान अन्य कोई विद्या,जप अथवा ज्ञान न तो भूतकाल में हुआ है, न ही भविष्य में होगा।

इन्दिरा = ई। यह एकाक्षर तथा द्व्यक्षर मन्त्र दीर्घषट्क (आ ई ऊ ऐ औ अ:) से युक्त आद्य बीज द्वारा ही कराङ्गन्यास तथा अंगन्यास होगा। मायाबीज से नहीं होगा।।४-९।।

यथा वीरतन्त्रे—

दीर्घषट्कयुताद्येन प्रणवाद्येन कल्पयेत्।
षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तेन देशिकः ॥१०॥

जैसे वीरतन्त्र में कहा है कि देशिक (साधक) इस मन्त्र के दीर्घषट्क युक्त (आ ई ऊ ऐ औ अः) तथा जातियुक्त (नमः—स्वाहा) आद्य 'क्रीं' बीज से मन्त्र का षडङ्गन्यास करे।।१०।।

जातिश्च हृदयादिकमिति। तेन क्रों हृदयाय नमः इत्यादि प्रयोज्यमिति।
ध्यानन्तु कुलचूड़ामण्युक्तं पूर्णानन्दधृतम्॥११॥

जाति = नमः तथा स्वाहा। इससे 'क्रों हृदयाय नमः' इत्यादि मन्त्र प्रयोज्य है। अब पूर्णानन्द-कृत कुलचूड़ामणि में वर्णित ध्यान करे।।११।।

यथा—

ध्यायेत् करालास्यदंष्ट्रां नीलरक्तविलोचनाम्।
स्फुरच्छवकरश्रेणीकृतकाञ्चीं दिगम्बरीम् ॥१२॥
वीरासनसमासीनां महाकालोपरि स्थिताम्।
श्रुतिमूलसमाकीर्णसृक्वणीं चण्डनादिनीम् ॥१३॥
मुण्डमालागलदरक्तचर्चितां पीवरस्तनीम्।
मदिरामोदितास्फालकम्पिताखिलमेदिनीम् ॥१४॥
वामे करे खड्गमुण्डधारिणीं दक्षिणे करे।
वराभययुतां घोरवदनां लोलजिह्विकाम् ॥१५॥
शकुन्तपक्षसंयुक्तां वाणकर्णविभूषिताम्।
शिवाभिर्घोररावाभिः सेवितां प्रलयोदिताम् ॥१६॥
चण्डहासचण्डनादचण्डास्फालैश्च भैरवीम्।
गृहीत्वा नरकङ्कालं जयशब्दपरायणैः ॥१७॥
शिरसाखिलसिद्धौघमुनिभिः सेवितां पराम्।
एवं तां कालिकां ध्यात्वा पूजयेत् कुलनायकः ॥१८॥

करालवदना, करालदंष्ट्रा, नीलवर्णा, रक्तलोचना, उज्ज्वल शवहस्त-समूह से बनी काञ्ची पहनने वाली, दिगम्वरी, वीरासन पर समासीना, महाभाल के ऊपर स्थिता, कर्णमूल-पर्यन्त विस्तृत सृक्व-धारिणी, चण्डनादिनी, मुण्डमाला से झरते रक्त से चर्चिता, पीवरस्तनी, मदिरा द्वारा आमोदजनित स्फालन से अखिल पृथ्वी को कम्पित करने वाली, वाम करों में खड्ग तथा मुण्ड-धारिणी, दाहिने करों में वर तथा अभय

मुद्रा धारण करने वाली, घोरवदना, लोल जिह्वा वाली, शकुन्त पंखों से युक्त बाणों द्वारा वामकर्ण-भूषिता, घोर रावकारी, शिवाओं से सेविता, प्रलय के समान उदिता, मस्तक पर नरकंकाल रखकर प्रचण्ड हास्य करने वाली, चण्डनाद तथा प्रचण्ड आस्फाल द्वारा भैरवी, जय-जय शब्द करने वाले सिद्धौघ तथा मुनिगण द्वारा सेविता उन परा कालिका का कुलनायक इस प्रकार ध्यान द्वारा पूजन करे।।१२-१८।।

विशेष—सिद्धेश्वर तन्त्र में अलग प्रकार का ध्यान देखा जाता है—

शवारूढां महाभीमां घोरदंष्ट्रां वरप्रदाम् ।
हास्ययुक्तां त्रिनेत्राञ्च कपालकर्त्रिकां कराम् ।।
मुक्तकेशीं ललज्जिह्वां पिबन्तीं रुधिरं मुहुः ।
चतुर्बाहुयुतां देवीं वराभयकरां स्मरेत् ।।

कालीपूजा-पद्धति में भी यही ध्यान अङ्कित है।

अन्यत्सर्वं पूर्ववत्। अनयोः पुरश्चरणं लक्षजपः ।।१९।।

अन्य सब विधान पूर्ववत् करना है। इस एकाक्षर तथा द्व्यक्षर मन्त्र का पुरश्चरण एक लाख जप है।।१९।।

यथा सिद्धेश्वरतन्त्रे—

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं लक्षमेकं विधानतः ।
तद्दशांशं विधानेन होमयेत् साधकोत्तमः ।।२०।। इति ।

सिद्धेश्वर तन्त्र में कहा है कि इस प्रकार ध्यान करके एक लाख जप करे। साधक श्रेष्ठ यथाविधान जप के दशमांश संख्या में होम करे।।२०।।

अथ मन्त्रान्तरम्

कालीतन्त्रे—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं कल्पद्रुमं परम् ।
येन जप्तेन विधिवत् सिद्धयोऽष्ट भवन्ति हि ।।२१।।

अब कालिका का अन्य मन्त्र कहा जाता है। कालीतन्त्र में कहा है कि जिस मन्त्र का विधिपूर्वक जप करने से अष्टसिद्धि मिलती है, उस सिद्धि-प्राप्ति के लिये श्रेष्ट कल्पद्रुम मन्त्र को कहते हैं।।२१।।

यस्य स्मरणमात्रेण पलायन्ते महापदः ।
बृहस्पतिसमो वाग्मी धनैर्धनपतिर्भवेत् ।।२२।।
कामतुल्यश्च नारीणां रिपूणां च यमोपमः ।

तस्य पादाम्बुजद्वन्द्वं राज्ञां किरीटभूषणम्।
तस्य भूतिं विलोक्यैव कुबेरोऽपि तिरस्कृतः ॥२३॥

जिस विद्या के स्मरणमात्र से आपदायें भाग जाती हैं, साधक बृहस्पति के समान वाग्मी (वक्ता) हो जाता है, धन द्वारा धनपति हो जाता है और नारीगण के लिये कामदेव के समान हो जाता है, जिसका चरणकमल राजाओं के मुकुट से शोभित होता है और जिसके वैभव से कुबेर भी तिरस्कृत हो जाते हैं।।२२-२३।।

तस्यैव जननी धन्या पिता तस्य सुरोत्तमः।
सम्प्रदायविदां वक्त्राद् यन्त्राणां वेत्ति तत्त्वतः ॥२४॥
मायाद्वन्द्वं कूर्चयुग्ममैन्द्रान्तं मादनत्रयम्।
मायाविन्दीश्वरयुतं दक्षिणे कालिके पदम् ॥२५॥
संहारक्रमयोगेन बीजसप्तकमुद्धरेत्।
एकविंशत्यक्षराढ्यस्ताराद्यः कालिकामनुः ॥२६॥

जो व्यक्ति इस सम्प्रदाय परम्परा वाले व्यक्ति (देशिक) के मुख से यह विद्या तत्त्वत: जान लेता है, उसकी माता धन्य हैं। उसके पिता देवताओं में भी उत्तम हैं।

दो माया (ह्रीं ह्रीं), दो कूर्च (हुं हुं), माया (ई) बिन्दु (-) तथा ईश्वर (नाद) अर्थात् नाद-बिन्दुयुक्त ऐन्द्रान्त (लकार समीपस्थ) मादनत्रय (अर्थात् क्रीं क्रीं क्रीं) दक्षिणे कालिके शब्द उसके अनन्तर संहार क्रम से ७ बीजों का उद्धार करना चाहिये। इसके आदि में तार (ॐ) होगा। यह २१ अक्षरों वाला कालिका मन्त्र है।।२४-२६।।

तेन ॐ ह्रीं ह्रीं हुं हुं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं इति सिद्धम् ॥२७॥

अत: मन्त्रोद्धार होता है—ॐ ह्रीं ह्रीं हुं हुं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं।।२७।।

पूर्वोक्तमन्त्रवत् कुर्यात् सर्वां पूजां विचक्षणः।
स्वाहान्तश्च त्रयोविंशत्यक्षरो मन्त्रराजकः ॥२८॥
विना प्रणव देवेशि द्वाविंशत्यक्षरी भवेत्।
विंशत्यर्णा महाविद्या स्वाहाप्रणववर्जिता।
ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावदुपाचरेत् ॥२९॥

पहले कहे गये विधान से पूजन करे। इस मन्त्र के अन्त में स्वाहा लगाने से २३ अक्षरों का मन्त्र होता है। हे देवेशि! स्वाहा लगाये, परन्तु प्रणव को हटा देने से यह २३ अक्षरों की विद्या होती है। स्वाहा तथा प्रणव से रहित हो जाने से यह २० अक्षर

की विद्या होती है। इन सबका ध्यान-पूजन दक्षिणकालिका वाले विधानानुसार किया जाता है।।२८-२९।।

इन्द्रस्य लकारस्य समीपमैन्द्रं रेफ एवान्ते यस्य तादृशं मादनत्रयं ककारत्रयम्। माया चतुर्थस्वरः। ईश्वरो नादः॥३०॥

इन्द्र के लकार के समीप जो वर्ण है, उसे इन्द्रवर्ण अर्थात् 'र' कहा गया है। उसके अन्त में मादनत्रय अर्थात् ककारत्रय। माया चतुर्थस्वर—ई। ईश्वर = नाद।।३०।।

तन्त्रान्तरे च—

मायाक्रोधौ त्रयं कामा वह्न्यन्ते रतिसंयुताः।
बिन्दुयुक्ता महेशानि सम्बोधनपदद्वयम्।
सप्त बीजानि संहारैः स्वाहान्तः प्रणवादिकः॥३१॥

तन्त्रान्तर में कहा है—हे महेशानि! मायाद्वय (ह्रीं ह्रीं) तथा क्रोध बीजद्वय (हुं हुं) ककारत्रय वह्न्यन्ता 'र'कारामारति (ई) संयुक्त तथा बिन्दु से युक्त होकर अर्थात् क्रीं क्रीं क्रीं, दो सम्बोधन पद अर्थात् 'दक्षिणे कालिके' तथा संहार क्रम से सप्तबीज—इससे पूर्वोक्त २१ अक्षर का मन्त्रोद्धार होता है (इसे श्लोक २७ में कह दिया गया है)। यह प्रणवादि तथा स्वाहान्त होता है।।३१।।

रतिश्चतुर्थस्वरः। तथा च प्रणवं मायाद्वयं कूर्चद्वयं निजबीजत्रयं दक्षिणे कालिके निजबीजत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयमित्येकविंशत्यक्षरी। अस्याः पूर्वादिकं सर्वं दक्षिणावत्। पुरश्चरणन्तु लक्षजपः। अयं मन्त्रः स्वाहान्तश्चेत् त्रयोविंशत्यक्षरः। अयन्तु प्रणवरहितश्चेद् द्वाविंशत्यक्षरः। स्वाहाप्रणवरहितश्चेद् विंशत्यक्षरः। एषां एकविंशत्यक्षरादीनां ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावत्॥३२॥

रति = ई। प्रणव, मायाद्वय (ह्रीं ह्रीं), कूर्चद्वय (हूं हूं) निजबीजत्रय (क्रीं क्रीं क्रीं) दक्षिणे कालिके पुनः निजबीजत्रय (क्रीं क्रीं क्रीं) कूर्चद्वय (हुं हुं) तथा मायाद्वय (ह्रीं ह्रीं) यह २१ अक्षरों का मन्त्र है।

मन्त्रोद्धार होता है—ॐ ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं हूं ह्रीं। पुरश्चरण १ लाख जप से होगा। यदि इसके अन्त में स्वाहा लगाया जाय, तब २३ अक्षरों का मन्त्र होगा। यदि पहले प्रणव (ॐ) न लगाये तब २२ अक्षरों का होगा। यदि प्रणव (ॐ) तथा स्वाहा हटा दिया जाय तब यह २० अक्षरों वाला मन्त्र होगा। इन सभी मन्त्रों का ध्यान-पूजनादि विधान दक्षिण कालिका विधान जैसा ही होता है।।३२।।

भैरवतन्त्रे—

कालीबीजद्वयं देवि दीर्घहुंकारमेव च।
त्र्यक्षरी सा महाविद्या चामुण्डा कालिका स्मृता ॥३३॥

अस्याः सर्वं दक्षिणावत्।

भैरवतन्त्र में अन्य मन्त्र कहा गया है। हे देवि! काली का बीजद्वय (क्रीं क्रीं) तथा दीर्घ हूंकार (क्रीं क्रीं हूं) यह त्र्यक्षरी महाविद्या चामुण्डा कालिका की कही गयी है। इसका ध्यान पूजनादि सब दक्षिणकालिका विधान के अनुसार ही होता है।।३३।।

तन्त्रे—

अक्ष वक्ष्ये महाविद्यां सिद्धविद्यां महोदयाम्।
भैरवेण पुरा प्रोक्ता कालीहृदयसंज्ञिता।
अस्या ज्ञानप्रभावेण कलयामि जगत्त्रयम् ॥३४॥

तन्त्र में कहते हैं कि अब महा अभ्युदय प्रदान करने वाली सिद्धविद्या कहते हैं। यह कालीहृदय विद्या पूर्व में भैरव ने कही थी। इसी विद्या के प्रभाव से मैं त्रिलोक का परिचालन करता हूँ।।३४।।

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखाबीजमुद्धरेत्।
रतिबीजं समुद्धृत्य पपञ्चमभगान्वितम्।
ठद्वयेन समायुक्ता विद्या राज्ञी प्रकीर्त्तिता ॥३५॥

प्रथमत: प्रणव (ॐ) का उद्धार करके हृल्लेखा बीज (ह्रीं) का उद्धार करे। तत्पश्चात् रति बीज का उद्धार करके भग (ए) युक्त पवर्ग के पञ्चम मकार का उद्धार करे। यह ठद्वय (स्वाहा) से युक्त होने पर विद्याराज्ञी विद्या कही जाती है।।३५।।

रतिबीजं निजबीजम्। ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा पातु जानुनी कालिका सदेति भैरवतन्त्रकवचे तथा दर्शनात्। कालीकुलार्णवेऽपि रत्याद्यत्वेन द्वाविंशत्यक्षर्या विवरणात् रतिबीजं बीजमस्या हृल्लेखा शक्तिरुच्यते इति दर्शनात्। रत्याद्या कालिका पातु द्वाविंशत्यक्षररूपिणीति चामुण्डा-तन्त्रैकवाक्यत्वाच्च। पपञ्चमो मकारः। भग एकारः। ठद्वयं स्वाहा। तेन प्रणवः मायाबीजं निजबीजं मे स्वाहा। ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा इति सिद्धम् ॥३६॥

रतिबीज = निजबीज क्रीं। 'ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा पातु जानुनी कालिका सदा' यह भैरव तन्त्र के कवच में देखा जाता है।

कालीकुलार्णव ग्रन्थ में रतिबीजादि रूप से ३२ अक्षरों के मन्त्र का विवरण करते

समय 'रतिबीजं बीजमस्या ह्ल्लेखा शक्तिरुच्यते' देखा गया है और 'रत्याद्या कालिका पातु द्वाविंशत्यक्षररूपिणी' अर्थात् आदि में रतिविद्या (क्रों) युता ३२ अक्षरों वाली विद्या मेरी रक्षा करे—इस चामुण्डा-वचन से एकवाक्यता भी है। पपञ्चम = म। भग = ए। ठद्वय = स्वाहा। इससे प्रणव, मायाबीज, निजबीज, मे स्वाहा। अत: मन्त्रोद्धार होता है—ॐ ह्रीं क्रीं मे स्वाहा।।३६।।

अत्र केचित्—रति: दीर्घोकार:। तस्य बीजं कारणं ह्रस्वोकारस्तेन ॐ ह्रीं। द्वितीयस्वरं नादबिन्दुयुक्तं ककारद्वयं मे स्वाहेति मन्त्र इत्यूचुस्तन्न सम्प्रदायविरोधात्। कवचविरोधाच्च॥३७॥

यहाँ कोई-कोई कहते हैं कि रति अर्थात् दीर्घ ऊकार, उसका बीज = कारण ह्रस्व उकार। उससे ॐ ह्रीं। द्वितीय स्वर-नाद-बिन्दुयुक्त ककारद्वय तथा मे स्वाहा अर्थात् ॐ ह्रीं क्रीं क्रीं मे स्वाहा। जो ठीक प्रतीत नहीं होता; क्योंकि इससे सम्प्रदायविरोध तथा भैरवकवच से विरोध हो जाता है।।३७।।

अस्या पूजाप्रयोग:। प्रात:कृत्यादि प्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। यथा अस्य मन्त्रस्य भैरव ऋषिर्विराट् छन्द: सिद्धकाली ब्रह्मरूपा भुवनेशी देवता क्रीं बीजं ह्रीं शक्ति: ॥३८॥

पूजा प्रयोग—प्रात:कृत्यादि से लेकर प्राणायाम-पर्यन्त विधान सम्पन्न करके ऋष्यादि न्यास करे। यथा—अस्य श्री सिद्धकालीमन्त्रस्य भैरव ऋषिर्विराट् छन्द: सिद्धकाली ब्रह्मरूपा भुवनेशी देवता क्रीं बीजं ह्रीं शक्ति: ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे विनियोग:।।३८।।

ध्यानन्तु—

खड्गोद्भिन्नेन्दुखण्डस्रवदमृतरसं प्लाविताङ्गीं त्रिनेत्रां
सव्ये पाणौ कपालाद् गलदसृजमथो मुक्तकेशी पिवन्ती ।
दिग्वस्त्रा बद्धकाञ्ची मणिमयमुकुटाद्यैर्युता दीप्तजिह्वा
पायान्नीलोत्पलाभा रविशशिविलसत् कुन्तलालीढपादा ॥३९॥

खड्ग से विदारित इन्दुमण्डल से क्षरित अमृतरस से सराबोर अङ्गों वाली, त्रिनेत्रा, वाम हाथ में पकड़े कपाल से झर रहे रक्त को पीने वाली, मुक्तकेशी, नग्ना, कटि में आबद्ध काञ्ची से युक्त, मणिमय मुकुटधारिणी, मुख से बाहर जिह्वा फैलाने वाली, नीलकमल के समान वर्ण वाली, सूर्य तथा चन्द्र के समान शोभित कुण्डल-धारिणी, आलीढपदा देवी हमारी रक्षा करें।।३९।।

एवं ध्यात्वा दक्षिणावत् सर्वं कार्यम् । पुरश्चरणमेकविंशतिसहस्रजप:॥४०॥

इस प्रकार ध्यान करके दक्षिणाकाली प्रकरण के विधानानुसार सभी कृत्य सम्पन्न करे। इस मन्त्र का पुरश्चरण है—२१ हजार जप।।४०।।

यथा कालीतन्त्रे—

जपेद् विंशतिसाहस्रं सहस्रैकेन संयुतम्।
होमयेत् तद्दशांशेन मृदुपुष्पेण मन्त्रवित्।।४१।।

मृदुपुष्पं शिरीषादि। प्रथमार्त्तवरज इति केचित्।

कालीतन्त्र में कहा है कि मन्त्रज्ञ साधक इस मन्त्र का २१००० जप करके मृदु पुष्प से २१०० होम करे। मृदुपुष्प—शिरीषादि, कोई कहते हैं कि कन्या का प्रथम रजोदर्शन का रज।।४१।।

(क) निजबीजत्रयं स्वाहा। (ख) निजबीजं त्रयं फट् स्वाहा। (ग) निज-बीजं (क्रीं) कूर्चबीजं (हूं) लज्जाबीजं (ह्रीं) पुनर्निजं (क्रीं) कूर्चं (हूं) लज्जा (ह्रीं) स्वाहा। एषां त्रयाणां ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावत्। पुरश्च-रणन्तु मन्त्रवर्णसंख्यलक्षजपः।।४२।।

निजबीजत्रयं स्वाहा = क्रीं क्रीं क्रीं स्वाहा। निजबीजत्रयं फट् स्वाहा = क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा। निजबीज, कूर्चबीज, लज्जाबीज, पुनः निजबीज, कूर्चबीज, लज्जाबीज तथा स्वाहा अर्थात् क्रीं हूं ह्रीं क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा। इन तीनों मन्त्र का ध्यान, पूजनादि सभी दक्षिण कालिका के समान करना चाहिये। पुरश्चरण में उतना जितनी मन्त्रवर्ण की संख्या है अर्थात् एक लाख जप करे।।४२।।

वाग्भवं नमः निजबीजद्वयं कालिकायै स्वाहा। यथा भैरवतन्त्रे—

वाग्भवोऽस्यादिर्हृदयं वह्न्यारूढं प्रजापतिः।
द्वितीयस्वरसंयुक्तो बिन्दुखण्डेन्दुसंयुतः।।४३।।

वाग्भव, नमः, निजबीजद्वय तथा कालिकायै स्वाहा। जैसे—भैरवतन्त्र में कहा है कि मन्त्र के प्रारम्भ में वाग्भव बीज (ऐं), तदनन्तर हृदय (नमः), उसके पश्चात् बिन्दु-खण्ड तथा चन्द्रयुक्त (ँ) द्वितीय स्वरविशिष्ट वह्न्यारूढ (रकार पर आरूढ) प्रजापति अर्थात् क्रीं क्रीं बीजद्वय के पश्चात् कालिकायै स्वाहा। मन्त्रोद्धार होता है—ऐं नमः क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा।।४३।।

अस्याः पूजायां विशेषस्तु दक्षिणमूर्त्तिर्ऋषिः पङ्क्तिछन्दः कालिका देवता।।४४।।

इसकी पूजा की विशेषता यह है कि इसके दक्षिणामूर्त्ति ऋषि, पंक्ति छन्द एवं कालिका देवता हैं। शेष सब विधान दक्षिणकालिका के अनुसार ही करना चाहिये।।४४।।

ध्यानन्तु—

चतुर्भुजां कृष्णवर्णां मुण्डमालाविभूषिताम्।
खड्गञ्च दक्षिणे पाणौ विभ्रतीन्दीवरद्वयम्।।४५।।

चतुर्भुजा, कृष्णवर्णा, मुण्डमाला-विभूषिता, दोनों दाहिने हाथों में खड्ग तथा नीलकमल-धारिणी देवी का ध्यान करना चाहिये।।४५।।

कर्त्रीञ्च खर्परञ्चैव क्रमाद् वामेन विभ्रती।
द्यां लिखन्तीं जटामेकां विभ्रतीं शिरसा द्वयीम्।।४६।।
मुण्डमालां परां शीर्षे ग्रीवायामथ चापराम्।
वक्षसा नागहारञ्च विभ्रती रक्तलोचना।।४७।।
कृष्णवस्त्रधरा कट्यां व्याघ्राजिनसमन्विता।
वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम्।।४८।।
विलाप्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहाना शवं स्वयम्।
साट्टहासा महाघोरशवयुक्ता सुभीषणा।।४९।।

वाम हस्तद्वय में कैंची तथा खप्पर धारण करने वाली, मस्तक पर एक गगन-स्पर्शिनी जटा तथा अगल-बगल दो जटाधारिणी, मुण्डमाला-धारिणी, वक्ष पर नाग का हार धारण करने वाली, रक्तलोचना, काले वस्त्र पहनने वाली, कमर में व्याघ्रचर्म-युक्ता, शव के हृदय पर वाम पाद स्थापित करके दाहिना पैर सिंह पर स्थापन कर स्वयं शव को चाटने वाली, अट्टहास-कारिणी, महाघोर शब्दकारिणी सुभीषणा देवी का ध्यान करना चाहिये।।४६-४९।।

शीर्षेऽपरां ग्रीवायामपरामिति मुण्डमालाद्वयीं विभ्रतीमित्यर्थः। इयमेव 'कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रये'ति मार्कण्डेयपुराणोक्ता कालिका। पुराणे तु इयमेवोग्रतारेत्युच्येते एकजटेति च इति नक्षत्रविद्या-प्रकाशे वक्ष्यते। अस्याः सर्वमन्यद् दक्षिणावत्। पुरश्चरणन्तु लक्षद्वय-जपः।।५०।।

शीर्षे परां ग्रीवायामपराम् = शीर्ष पर एक मुण्डमाला, ग्रीवा में एक अन्य मुण्डमाला। इनको ही मार्कण्डेय पुराणोक्त कालिका कहा गया है। पुराणों में ये उग्रतारा तथा एकजटा भी कही गयी हैं। यह सब नक्षत्रविद्या प्रकरण में कहा जायेगा। इसका समस्त विधान दक्षिण कालिका प्रकरणानुरूप करना चाहिये। इसका पुरश्चरण दो लाख जप से होता है।।५०।।

निजबीजं मायाद्वयं दक्षिणे कालिके स्वाहा। अस्य सर्वं दक्षिणावत्।।५१।।

काली का मन्त्रान्तर कहते हैं। क्रीं (निजबीज) ह्रीं ह्रीं (मायाद्वय) दक्षिणे कालिके स्वाहा। एक-एक मन्त्र है। इसका भी ध्यान-पूजनादि दक्षिणा कालीवत् है।।५१।।

निजबीजं मायायुग्मञ्च। निजबीजं कूर्चं लज्जा दक्षिणे कालिके फट्। एतयोरपि सर्वं दक्षिणावदविशेषात् ।।५२।।

काली का मन्त्रान्तर—क्रीं ह्रीं ह्रीं। अन्य मन्त्र—क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणकालिके फट्। विशेष वक्तव्य न होने के कारण इन दोनों का समस्त विधान दक्षिण कालिकावत् करना चाहिये।।५२।।

निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं दक्षिणे कालिके निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं स्वाहा। अस्या दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिः पङ्क्तिच्छन्दः दक्षिणकालिका देवता। सर्वमन्यद् दक्षिणावत्।।५३।।

अन्य मन्त्र—क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। इसके दक्षिणामूर्त्ति ऋषि, पंक्ति छन्द तथा दक्षिणकालिका देवता हैं। अन्य विधान दक्षिणाकालीवत् होता है।।५३।।

क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा। अस्या दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः दक्षिणकालिके देवता। ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावत्।।५४।।

अन्य मन्त्र—क्रीं हूं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा। इसके भी दक्षिणामूर्त्ति ऋषि, अनुष्टप् छन्द तथा दक्षिणकालिका देवता हैं। सभी विधान दक्षिणाकाली प्रकरणानुसार करना चाहिये।।५४।।

निजबीजं स्वाहा। अस्य भैरवर्ऋषिरुष्णिक्छन्दो दक्षिणकालिका देवता। सर्वमन्यद् दक्षिणावत्।।५५।।

अन्य मन्त्र—क्रीं स्वाहा। इसके भैरव ऋषि उष्णिक् छन्द तथा दक्षिण कालिका देवता हैं। अन्य विधान दक्षिणा कालीवत् कहा गया है।।५५।।

निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं स्वाहा। अस्य सर्वं दक्षिणावत्।।५६।।

अन्य मन्त्र—क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। इसका सभी विधान दक्षिणाकाली के समान होता है।।५६।।

निजबीजं कूर्चं लज्जा स्वाहा। अस्य पञ्चवक्त्र ऋषिः। सर्वमन्यद् दक्षिणा-वत्।।५७।।

काली का अन्य मन्त्र—क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा। इसके पञ्चवक्त्र ऋषि हैं। सभी विधान दक्षिणा कालीवत् है।।५७।।

निजबीजत्रयं कूर्चद्वयं वह्निजाया। मूलबीजं दक्षिणे कालिके वह्निजाया। निजबीजं कूर्चं माया पुनस्तानि स्वाहा। मूलबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं पुनस्तान्येव वह्निजाया। निजबीजत्रयं लज्जाद्वयं कूर्चद्वयं पुनस्तान्येव स्वाहा। नमः वाग्भवं निजबीजद्वयं कालिकायै स्वाहा। नमः आं आं क्रों क्रों फट् स्वाहा कालिके कालिके कूर्चम्। एतेषां सर्वं दक्षिणावत्। पुरश्चरणन्तु लक्षजपः॥५८॥

अब काली के सात मन्त्रान्तर कहते हैं। इन सबका पुरश्चरण (प्रत्येक का) एक लाख जप है। इसका सभी विधान दक्षिणाकालीवत् करना चाहिये। मन्त्र है—

१. क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वहा।

२. क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा।

३. क्रीं हूं ह्रीं क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा।

४. क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।

५. क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं स्वाहा।

६. नम: ऐं क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा।

७. नम: आं आं क्रों क्रों फट् स्वाहा कालिकालिके हूं।।५८।।

माया कूर्चं फट्। अस्यापि सर्वं दक्षिणावत्। एतासां प्रमाणन्तु विश्वसारादौ॥५९॥

काली का महामन्त्र है—ह्रीं हुं फट्। इस मन्त्र का भी ध्यान-पूजनादि दक्षिणकालिका के समान करे। इसका प्रमाण विश्वसार आदि तन्त्रग्रन्थों में भी मिलता है।।५९।।

यथा विश्वसारे—

अथ पञ्चाक्षरीं विद्यां शृणुष्व कमलानने! ।
प्रजापतिं समुद्धृत्य वह्न्यारूढं ततः प्रिये ॥६०॥
चतुर्थस्वरसंयुक्तं नादबिन्दुसमन्वितम् ।
बीजत्रयं क्रमेणैव तदन्ते वह्निसुन्दरी ।
पञ्चाक्षरी महाविद्या कथिता पद्मयोनिना ॥६१॥

विश्वसारतन्त्र में कहा गया है कि हे प्रिये! हे कमलानने! अब काली की पञ्चाक्षरी विद्या सुनो। प्रजापति (क) का उद्धार करके वह्न्यारूढ़, चतुर्थस्वर संयुक्त करो। क्रमश: तीन बीज तथा उसके अन्त में वह्निसुन्दरी स्वाहा लगाने से पञ्चाक्षरी विद्या होती है। पद्मयोनि ब्रह्मा ने इस विद्या को कहा है।।६०-६१।।

षडक्षरीं महाकालीं कक्ष्यामि शृणु पार्वति ।

बीजत्रयं समुद्धृत्य अस्त्रमन्त्रं समुद्धरेत् ।
वह्निजायावधिः प्रोक्ता विद्या त्रैलोक्यमोहिनी ॥६२॥

हे पार्वति! षड़क्षरी महाकाली का वर्णन करता हूँ, सुनो। बीजत्रय का उद्धार करके 'फट्' का उद्धार करे। वह वह्निजायान्त हो। यह त्रैलोक्य का मोहन करने वाली विद्या है। मन्त्रोद्धार होता है—क्रीं क्रीं क्रीं फट् स्वाहा (फट् को एक वर्ण गिनते हैं)।।६२।।

अष्टाक्षरी महाविद्या कथ्यते परमेश्वरि ।
बीजत्रयं क्रमेणैव पुनर्बीजत्रयं सुधीः ।
स्वाहान्ता कथिता विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ॥६३॥

हे परमेश्वरि! अष्टाक्षरी महाविद्या कहते हैं। सुधी साधक क्रमशः निजबीज (क्रीं) कूर्चबीज (हूं) मायाबीज रूप बीज (ह्रीं) का उद्धार करके पुनः बीजत्रय क्रीं हूं ह्रीं का उद्धार करे। यह स्वाहान्त होगा। यह विद्या चतुर्वर्ग फल देती है। मन्त्रोद्धार करते हैं—क्रीं हूं ह्रीं क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा।।६३।।

बीजत्रयमत्र सर्वप्रथमोक्तद्वाविंशत्यक्षरमन्त्रबीजत्रयम्। निजबीजं कूर्चबीजं मायाबीजात्मकं बोध्यम्। तन्त्रसारकारोऽप्येवं विवृतवान्॥६४॥

यहाँ बीजत्रय है—सर्वप्रथमोक्त २२ अक्षर वाले मन्त्र का बीजत्रय अर्थात् निजबीज (क्रीं) कूर्चबीज (हूं) तथा मायाबीज (ह्रीं)। तन्त्रसार में भी यही विवरण है।।६४।।

एकादशाक्षरी विद्या कथ्यते शृणु पार्वति! ।
वाग्भवं हृदयं पश्चाद् वह्न्यारूढं प्रजापतिम् ॥६५॥

हे पार्वति! ११ अक्षरों वाली विद्या सुनो। वाग्भव (ऐं) हृदय (नमः) तत्पश्चात् वह्न्यारूढ प्रजापति (क्रीं) लगाये।।६५।।

चतुर्थस्वरसंयुक्तं बिन्दुनादविभूषितम् ।
द्विगुणञ्च ततः कृत्वा मेन्तञ्च कालिकापदम् ।
स्वाहान्ता कथिता विद्या प्रिये एकादशाक्षरी ॥६६॥

तत्पश्चात् उसे द्विगुण करके कालिका पद को चतुर्थ विभक्ति से युक्त अर्थात् कालिकायै लगाये। यह स्वाहान्त होगा। हे प्रिये! यह ११ अक्षरों वाली विद्या कही गयी। मन्त्रोद्धार होता है—नमः ऐं क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा।।६६।।

ऋषिः स्याद् दक्षिणामूर्त्तिश्छन्दः पङ्क्तिरुदाहृतम् ।
परात् परतरा शक्तिः कालिका देवता स्मृता ।
एकादशाक्षरी विद्या कालिकायाः सुदुर्लभा ॥६७॥

इस मन्त्र के दक्षिणामूर्त्ति ऋषि एवं पंक्ति छन्द है। श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ कालिका इसकी देवता कही गई है। कालिका की ११ अक्षरों वाली विद्या सुदुर्लभा है।।६७।।

लक्षद्वयं जपेद्विद्यां पुरश्चरणकर्मणि।
अन्यासां वर्णलक्षं स्यात् कथितं पद्मयोनिना ॥६८॥

दो लाख जप से इस विद्या का पुरश्चरण होता है। अन्यान्य पञ्चाक्षरी प्रभृति विद्याओं का पुरश्चरण मन्त्रसंख्यक लक्ष जप से सम्पन्न होता है। ऐसा पद्मयोनि ब्रह्मा ने कहा है।।६८।।

अन्यासामुक्तपञ्चाक्षरीप्रभृतीनाम्। वर्णलक्षमिति। मन्त्राक्षरसमसंख्यलक्षमित्यर्थः। अस्या ध्यानम्—चतुर्भुजा कृष्णवर्णा मुण्डमालाविभूषिता इत्यादि पूर्वोक्तम्॥६९॥

वर्णलक्षं = अर्थात् मन्त्रवर्ण के समसंख्यक लक्ष। इसका ध्यान श्लोक ४५ से ४९ तक में पहले लिखा गया है।।६९।।

विश्वसारे—

मूलबीजं ततो माया लज्जाबीजं ततः परम्।
दक्षिणे कालिके चेति तदन्ते वह्निसुन्दरी ॥७०॥
एकादशाक्षरी काली चतुर्वर्गफलप्रदा।
ध्यानपूजादिकं सर्वं दक्षिणावदुपाचरेत् ॥७१॥

विश्वसार तन्त्र में कहते हैं कि मूलबीज, तदनन्तर माया, लज्जाबीज, तत्पश्चात् दक्षिणे कालिके और अन्त में वह्निसुन्दरी (स्वाहा)। यह ११ अक्षरों का कालीमन्त्र चतुर्वर्गफलदायक है।

इस मन्त्र का ध्यान-पूजा समस्त दक्षिण कालिका के अनुसार करना चाहिये। मन्त्रोद्धार होता है—क्रीं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा।।७०-७१।।

मूलबीजं ततो माया लज्जाबीजं ततः परम्।
महाविद्या महाकाल्या महाकालेन भाषिता ॥७२॥

मूलबीज (क्रीं), माया (ह्रीं) तथा लज्जाबीज (ह्रीं) अर्थात् 'क्रीं ह्रीं ह्रीं' महाकाली की इस महाविद्या को महाकाल ने कहा है।।७२।।

कवचं मूलबीजञ्च तदन्ते भुवनेश्वरि।
दक्षिणे कालिके चेति अस्त्रान्ता समुदीरिता ॥७३॥

अत्र कवचं दीर्घकवचं, कालीमायोभयसाहचर्यात्।

कवच (हूं) मूलबीज (क्रीं) तथा अन्त में भुवनेश्वरि दक्षिणे कालिके। यह अस्त्रान्ता (फट् अन्त में) विद्या कही गयी है। यहाँ काली तथा माया दोनों के साहचर्य से कवच (हूं) में दीर्घ मात्रा लगी है। मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—हूं क्रीं भुवनेश्वरि दक्षिणे कालिके फट्।।७३।।

अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां विंशतिवर्णिकाम्।
यस्याः प्रसादमात्रेण भवेद् भूमिपुरन्दरः ।।७४।।
मूलबीजद्वयं ब्रूयात् ततः कूर्चद्वयं वदेत्।
लज्जायुग्मं समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्तपदद्वयम्।
पूर्ववत् षट् तथा बीजान्यन्ते च वह्निसुन्दरी ।।७५।।

जिस विद्या के प्रभावमात्र से मानव भूमि का अधिपति हो जाता है, उस काली की अन्य २० अक्षरों वाली विद्या को कहते हैं।

मूलबीजद्वय (क्रीं क्रीं) तदनन्तर कूर्चद्वय (हूं हूं) तदनन्तर लज्जाबीजद्वय (ह्रीं ह्रीं) सम्बोधनान्त में 'दक्षिणे कालिके' पद का उद्धार करे। पुनः छः बीज लगाये। अन्त में वह्निसुन्दरी (स्वाहा) लगाये। मन्त्रोद्धार होता है—क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।।७४-७५।।

ऋषिः स्याद् दक्षिणामूर्त्तिः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतः।
देवता कथिता सद्भिः काली दक्षिणपूर्विका ।।७६।।

इस मन्त्र के ऋषि दक्षिणामूर्त्ति हैं, पङ्क्ति छन्द कहा गया है। सज्जन विद्वान् दक्षिण कालिका को इसका देवता कहते हैं।।७६।।

एकादशाक्षरी विद्या कथ्यते शृणु पार्वति!।
मूलं कवचमायाञ्च सम्बुद्ध्यन्तपदद्वयम्।
स्वाहान्ता कथिता विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ।।७७।।

हे पार्वति! अब ११ अक्षरों की विद्या कही जाती है, सुनो। मूल (क्रीं) कवच (हुं) माया (ह्रीं) सम्बोधनान्त दक्षिणे कालिके यह पदद्वय तथा अन्त में स्वाहा। यह विद्या चतुर्वर्ग फल देती है। मन्त्रोद्धार कहते हैं—क्रीं ह्रीं हूं दक्षिणे कालिके स्वाहा।।७७।।

ऋषिः स्याद् दक्षिणामूर्त्तिश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।।७८।।

अत्र कवचं दीर्घकवचम् कालीमायोभयसाहचर्यात्।

इसके दक्षिणामूर्त्ति ऋषि एवं अनुष्टुप् छन्द है। माया तथा काली दोनों के साहचर्य के कारण इसमें कवच में दीर्घ मात्रा (हूं) है।।७८।।

अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम्।
निजबीजं समुद्धृत्य तदन्ते वह्निसुन्दरी।
भैरवोऽस्य ऋषिः प्रोक्तः सर्वतन्त्रसमन्वितः ॥७९॥

अब त्रिभुवनेश्वरी विद्या कहते है। निजबीज दो (क्रीं क्रीं) उसके अन्त में वह्निसुन्दरी (स्वाहा)। इस मन्त्र के भैरव ऋषि हैं। यह सर्वतन्त्र-सम्मत है। मन्त्रोद्धार कहते हैं—क्रीं क्रीं स्वाहा।।७९।।

निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं लज्जाद्वयं ततः।
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वकामफलप्रदा ॥८०॥

सर्वतन्त्रों में गोपिता अष्टाक्षरी विद्या कहते हैं। निजबीजद्वय (क्रीं क्रीं) कूर्चद्वय (हूं हूं) लज्जाबीजद्वय (ह्रीं ह्रीं) अन्त में स्वाहा। यह सर्वकामफलप्रदा विद्या है। मन्त्रोद्धार करते हैं—क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।।८०।।

निजं कूर्चं तथा लज्जा तदन्ते वह्निसुन्दरी।
पञ्चाक्षरी महाविद्या पञ्चवक्त्रऋषिः स्मृतः ॥८१॥

निजवीज (क्रीं) कूर्च (हूं) लज्जा (ह्रीं) अन्त में स्वाहा। यह पाँच अक्षरों वाली विद्या है। इसके ऋषि पञ्चवक्त्र हैं। मन्त्रोद्धार है—क्रीं हूं ह्रीं स्वाहा।।८१।।

नवाक्षरीं महाविद्यां शृणुष्व कमलानने!।
निजबीजत्रयं कूर्चयुग्मं लज्जायुगं ततः।
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वसम्पत्करी मता ॥८२॥

हे कमलानने! नवाक्षरी महाविद्या सुनो। निजबीजत्रय (क्रीं क्रीं क्रीं) कूर्चबीजद्वय (हूं हूं) अन्त में लज्जाबीज दो (ह्रीं ह्रीं) स्वाहा। यह सम्पत्करी विद्या है। मन्त्रोद्धार होता है—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।।८२।।

अथापरां प्रवक्ष्यामि विद्यां ताञ्च नवाक्षरीम्।
मूलबीजं समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्तपदद्वयम्।
स्वाहान्त कथिता विद्या सर्वशत्रुक्षयङ्करी ॥८३॥

अब नवाक्षरी विद्या कहते हैं। मूलबीज (क्रीं) का उद्धार करके दक्षिणे कालिके लगाये, जो स्वाहान्त होगा। यह शत्रुक्षयकारिणी विद्या है। मन्त्रोद्धार होता है—क्रीं दक्षिणे कालिके स्वाहा।।८३।।

अथवाऽष्टाक्षरीं विद्यां शृणुष्व कमलानने!।
निजबीजं ततः कूर्चं ततो मायां समुद्धरेत्।
पुनस्तानि समुद्धृत्य स्वाहान्ता मोक्षदायिनी ॥८४॥

हे कमलानने! अब अष्टाक्षरी विद्या सुनो। निजबीज (क्रीं) कूर्च (हूं) तथा माया (ह्रीं) पुनः इनका उद्धार करके स्वाहा लगाये। यह विद्या मोक्ष देने वाली है।।८४।।

अथाऽपरां प्रवक्ष्यामि दशतत्त्वसमन्विताम्।
मूलद्वयं कूर्चयुग्मं तथा लज्जाद्वयं ततः ॥८५॥
पुनस्तान्येव बीजानि तदन्ते वह्निसुन्दरी।
चतुर्दशाक्षरी विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ॥८६॥

अब दश तत्त्व-समन्विता विद्या कहते हैं। मूलद्वय (क्रीं क्रीं) कूर्चबीजद्वय (हूं हूं) तथा लज्जाद्वय (ह्रीं ह्रीं) तदनन्तर पुनः इन बीजों को लगाये और अन्त में स्वाहा लगाये। यह १४ अक्षरों वाली विद्या चतुर्वर्ग फल देने वाली है।।८५-८६।।

ब्रह्मत्रयं समुद्धृत्य रतिवह्निसमन्वितम्।
नादबिन्दुसमायुक्तं लज्जाकूर्चद्वयं ततः ॥८७॥
पुनः क्रमेण चोद्धृत्य वह्निजायावधिर्मनुः।
षोडशीयं समाख्याता विद्याकल्पद्रुमोपमा ॥८८॥

रति तथा बिन्दुयुक्त ब्रह्मत्रय का उद्धार करके (क्रीं क्रीं क्रीं) लज्जाद्वय (ह्रीं ह्रीं) तथा कूर्चद्वय (हूं हूं) का उद्धार करके पुनः इनका उद्धार करे और अन्त में स्वाहा लगाये। यह १६ वर्णों वाली विद्या कल्पतरु के समान कही गयी है।।८७-८८।।

लज्जेति। लज्जायुगं कूर्चयुगञ्चेत्यर्थः। तेन निजबीजत्रयं मायाद्वयं कूर्चद्वयं पुनर्निजबीजत्रयं मायाद्वयं कूर्चद्वयं स्वाहेति क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं स्वाहा। इति सिद्धम्॥८९॥

लज्जा इत्यादि का अर्थ है—लज्जाद्वय एवं कूर्चद्वय। उसमें निजबीजत्रय, मायाद्वय, कूर्चद्वय, पुनः निजबीजत्रय, मायाद्वय, कूर्चद्वय तथा स्वाहा। इससे क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं स्वाहा—यह मन्त्र सिद्ध होता है।।८९।।

मायातन्त्रे—

हृदयं वाग्भवं देवि निजबीजयुगं ततः।
कालिकायै पदञ्चोक्त्वा तदन्ते वह्निसुन्दरी ॥९०॥

मायातन्त्र में कहते हैं कि हे देवि! हृदय (नमः) वाग्भव (ऐं) निजबीजद्वय (क्रीं क्रीं) तदनन्तर कालिकायै कहकर अन्त में वह्निसुन्दरी (स्वाहा) कहे।।९०।।

अत्र विसर्गो लोप्य इत्युक्तं प्राक्। तेन क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। देवीति सम्बोधनम्। न तु तस्य मन्त्रेऽन्तर्भावः। अतएव हृदयं वाग्भवं मूलद्वयं कालिकायै ठद्वयमिति तन्त्रसारकृतापि विवृतम्॥९१॥

यहाँ विसर्ग लोप्य है। यह पहले कहा गया है। अतएव 'क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं हुं हुं ह्रीं ह्रीं स्वाहा'।

श्लोक में 'देवी' सम्बोधन पद है, किन्तु मन्त्र में उसका अन्तर्भाव नहीं है। अतएव हृदय, वाग्भव, मूलद्वय, कालिकायै तथा ठद्वय (स्वाहा) यह तन्त्रसार में मान्य है। मन्त्र है—नमः ऐं क्रीं क्रीं कालिकायै स्वाहा।।९१।।

तन्त्रान्तरे—

नमः पाशाङ्कुशौ द्वेधा फट् स्वाहा कालिकालिके।
दीर्घतनुच्छदं कालीमनुः पञ्चदशाक्षरः ॥९२॥

अन्य तन्त्र में कहा है कि नमः, पाशद्वय, अङ्कुशद्वय फट् स्वाहा कालिकालिके दीर्घतनुच्छद यह पञ्चदशाक्षर काली मन्त्र है।।९२।।

अत्रापि विसर्गो लोप्य इत्युक्तं प्राक् । पाशद्वयमङ्कुशद्वयञ्चेति तन्त्रसारकृता विवृतम् ॥९३॥

यहाँ भी विसर्ग लोप्य है, यह पहले कहा जा चुका है। द्वेधा = अर्थात् पाशद्वय तथा अंकुशद्वय। यह तन्त्रसार में भी कहा गया है।।९३।।

एतासां पूजनं देवि दक्षिणावत् सुरेश्वरि! ।
लक्षसंख्यं जपं कुर्यात् पुरश्चरणसिद्धये ॥९४॥

हे देवि! इन सबका पूजनादि दक्षिणकाली के ही विधान से होगा। पुरश्चरणार्थ एक लाख जप करना चाहिये।।९४।।

मत्स्यसूक्ते—

लज्जाबीजं ततः क्रोधं फडन्ता त्र्यक्षरी भवेत् ॥९५॥

मत्स्यसूक्तानुसार लज्जाबीज (ह्रीं) तदनन्तर क्रोधबीज (हुं) अन्त में फट् लगाये। यह त्र्यक्षरी विद्या है—ह्रीं हुं फट्।।९५।।

एतासां पूजायन्त्रं कालीतन्त्रे—

आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत्।
ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् ॥९६॥
ततो वृत्तं समालिख्य लिखेदष्टदलं ततः।
वृत्तं विलिख्य विधिवल्लिखेद् भूपुरमेककम् ॥९७॥

इन सभी के लिये कालीतन्त्र में पूजायन्त्र कहा गया है। प्रथमतः एक त्रिकोण बनाकर उसके बाहर एक त्रिकोण बनाये।

तदनन्तर मन्त्रज्ञ साधक को तीन उत्तम त्रिकोण अङ्कित करना चाहिये। इसके पश्चात् वृत्त बनाकर उसमें आठ दल बनाना चाहिये। विधिवत् वृत्त बनाकर भूपुर का अङ्कन करना चाहिये।।९६-९७।।

कुमारीकल्पे—

मध्ये तु वैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितम् ।।९८।।

बीजं—निजबीजम् ।

कुमारीकल्प में कहा है कि मध्य में वैन्दव चक्र माया (ह्रीं) तथा निजबीज (क्रीं) से विभूषित होगा।।९८।।

•

अथ गुह्यकाली

विश्वसारे—

अथ वक्ष्ये महेशानि! विद्यां सर्वफलप्रदाम् ।
चतुर्वर्गप्रदा साक्षान्महापातकनाशिनीम् ।
गुह्यकालीं महाविद्यां त्रैलोक्ये चातिदुर्लभाम् ।।१।।

अब गुह्यकाली प्रकरण कहते हैं। विश्वसार तन्त्रानुसार—हे महेशानि! अब सर्वफलप्रदा चतुर्वर्गप्रदा साक्षात् महापातकनाशिनी त्रिलोकी में अतिदुर्लभ महाविद्या गुह्यकाली को बताते हैं।।१।।

मन्त्रो यथा—१. निजबीजत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं गुह्यकालिके निजबीजत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं वह्निजाया। २. कामबीजत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं दक्षिणे कालिके कामत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं वह्निजाया। ३. निजबीजं कूर्चमाया गुह्यकालिके निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं वह्निजायेति षोडशी। ४. शेषे 'कामबीजद्वयत्यागादियं विद्या चतुर्दशी'। ५. निजबीजत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं गुह्यकालिके स्वाहा। एषापि चतुर्दशाक्षरी। ६. निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं दक्षिणे कालिके स्वाहा। एषा पञ्चदशी। ७. कूर्च माया गुह्ये कालिके निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं स्वाहा। इयमपि पञ्चदशी। ८. निजबीजं गुह्ये कालिके निजबीजं स्वाहा। ९. निजबीजं दक्षिणे कालिके निजबीजं स्वाहा।।२।।

मन्त्र कहते हैं—१. क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं गुह्यकालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। २. क्लीं क्लीं क्लीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं दक्षिणे कालिके क्लीं क्लीं क्लीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। ३. क्रीं हूं ह्रीं गुह्यकालिके क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। यह षोड़शी है।

४. क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं गुह्यकालिके स्वाहा। यह १४ अक्षरों वाली है। ५. क्रीं हूं ह्रीं गुह्यकालिके हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। यह भी १४ अक्षरों वाली है। ६. क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं गुह्यकालिके स्वाहा। यह पञ्चदशाक्षरी है। ७. हुं ह्रीं गुह्यकालिके क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। यह भी पञ्चदशाक्षरी है। ८. क्रीं गुह्यकालिके क्रीं स्वाहा। ९. क्रीं दक्षिणे कालिके क्रीं स्वाहा।।२।।

एतासां प्रमाणानि यथा विश्वसारे—

इन्द्रादिरूढं वर्गाद्यं रतिबिन्दुसमन्वितम्।
त्रिगुणञ्च ततः कृत्वा ईशानञ्च समुद्धरेत्॥३॥
षष्टस्वरसमायुक्तं नादबिन्दुकलान्वितम्।
द्विगुणञ्च ततः कृत्वा ईशद्वयं समुद्धरेत्॥४॥
वामाक्षिवह्निसंयुक्तं नादबिन्दुविभूषितम्।
तद्गुह्ये कालिके प्रोक्त्वा अथवा दक्षिणे वदेत्॥५॥
सप्तबीजं पुनः पूर्वक्रमेण योजयेत्ततः।
वह्निजायावधिः प्रोक्ता विद्या त्रैलोक्यमोहिनी॥६॥

इस विद्यासमूह का प्रमाण विश्वसार में कहा है। वर्गाद्य (क) को रति (ई) तथा बिन्दु समन्वित इन्द्र (ल) के आदि रकार को आरूढ़ करे। तदनन्तर उसे त्रिगुण करके (क्रीं क्रीं क्रीं) षष्ठस्वर (ऊ) युक्त नाद तथा बिन्दु कला-समन्वित ईशान का उद्धार करे। तत्पश्चात् उसे द्विगुण करके (हूं हूं) नाद-बिन्दु-समन्वित वामाक्षि (ई) तथा वह्नियुक्त ईश (ह) द्वय का उद्धार करे। तत्पश्चात् गुह्ये कालिके अथवा दक्षिणे कालिके कहे। पुनः पूर्वोक्त क्रम से सात बीज का योग करे। यह त्रैलोक्यमोहिनी विद्या वह्निजायान्ता (स्वाहा) कही गयी है। मन्त्रोद्धार इस प्रकार होगा—क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं गुह्ये कालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।।३-६।।

अथवेति। गुह्ये इति दक्षिणे इति वा वदेत्। तथा च मन्त्रद्वयमुक्तम्॥७॥

अथवेति का अर्थ है कि 'गुह्ये कालिके' अथवा 'दक्षिणे कालिके' दोनों में से कोई भी इस मन्त्र में लगाया जा सकता है। इस प्रकार से यह दो मन्त्र कहा गया अर्थात् इसी मन्त्र से गुह्यकालिका तथा दक्षिणकालिका दोनों का विधान हो सकता है।।७।।

कामबीजं ततः कूर्चं तदन्ते भुवनेश्वरी।
गुह्ये च कालिके चेति तथा बीजद्वयं भवेत्॥८॥
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता।
एषा तु षोडशी विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा॥९॥

कामबीज (क्लीं) तदनन्तर कूर्च (हूं) अन्त में भुवनेश्वरी (ह्रीं) तथा गुह्यकालिके, तदनन्तर निजबीजद्वय (क्लीं क्लीं) कूर्चद्वय (हूं हूं) तथा मायाद्वय (ह्रीं ह्रीं) लगाये। यह सर्वतन्त्रगोपिता स्वाहान्ता (अन्त में स्वाहा) विद्या कही गयी है।

चतुर्वर्ग फलप्रदा यह विद्या १६ अक्षरों वाली है। मन्त्रोद्धार इस प्रकार से होगा— क्लीं हूं ह्रीं गुह्यकालिके क्लीं क्लीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।।८-९।।

तथा बीजद्वयं भवेदिति। निजबीजद्वयं कूर्चद्वयं मायाद्वयमिति तात्पर्यार्थः। अत्र कामबीजमित्यत्र निजबीजमित्यपि पाठः। तत्र च गुह्यकाल्या निज-बीजं कामबीजमित्यर्थः॥१०॥

तथा 'बीजद्वयं भवेत्' यहाँ इसका तात्पर्य है निजबीजद्वय (क्लीं क्लीं) कूर्चद्वय (हूं हूं) तथा मायाद्वय (ह्रीं ह्रीं)। यहाँ 'काम बीज' के स्थान पर 'निजबीजं' भी पाठ है। यहाँ गुह्यकाली के निजबीज का अर्थ है—कामबीज (क्लीं)।।१०।।

तथा—

कामबीजद्वयं हित्वा भवेद् विद्या चतुर्दशी।

अस्य मन्त्रस्येति शेषः। कामबीजद्वयमिति। सम्बुद्ध्यन्तपदद्वयानन्तर-कामबीजद्वयमित्यर्थः॥११॥

ऊपर श्लोक ८-९ में जो मन्त्र दिया गया, वह १६ अक्षरों वाला है। उसमें से कामबीजद्वय को निकाल देने पर (गुह्यकालिके के बाद वाला कामवीजद्वय) यह मन्त्र १४ अक्षरों वाला होगा।

कामवीजद्वयम् का तात्पर्य है—सम्बोधन के अन्त में (अर्थात् 'गुह्यकालिके' के बाद के कामबीजद्वय) स्थित क्लीं क्लीं।।११।।

सप्तबीजं पुरा प्रोक्तं गुह्ये च कालिके पुनः।
स्वाहान्ता कथिता विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥१२॥

पूर्व कथित सात बीज (जो इस चतुर्दश अक्षर वाले मन्त्र में हैं) पुनः 'गुह्यकालिके' तथा अन्त में 'स्वाहा' यह सर्वतन्त्रों में गुप्त विद्या है।।१२।।

सप्तेति कामत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयमित्यर्थः। एषापि चतुर्दशाक्षरी। अस्या गुह्येति नामपदं त्यक्त्वा दक्षिणे इति पदञ्चेद् दीयते तदा पञ्चदशाक्षरी॥१३॥

सप्त अर्थात् कामत्रय (क्लीं क्लीं क्लीं) कूर्चद्वय (हुं हुं) तथा मायाद्वय (ह्रीं ह्रीं)। यह विद्या १४ अक्षरों वाली है। यदि इसमें 'गुह्यकालिके' के स्थान पर 'दक्षिणकालिके' कहा जाय तब यह विद्या १५ अक्षरों वाली हो जायेगी।।१३।।

तथा च—

दक्षिणे पदमाभाष्य भवेत् पञ्चदशाक्षरी ॥१४॥

तन्त्र ने कहा है कि 'गुह्य' के स्थान पर 'दक्षिणे' लगाने से यह १५ अक्षरों की विद्या हो जाती है।।१४।।

तथा—

कामबीजं परित्यज्य अथवा षोडशाक्षरी ।

अस्यार्थः—षोडशाक्षरविद्याया आदौ कामबीजाभावे पञ्चदशी भवतीति॥१५॥

और भी कहते हैं कि कामबीज का परित्याग करने से यह षोडशाक्षरी हो जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि षोडशाक्षरी में पहले कामबीज न रहने से वह १५ अक्षरों वाली विद्या होती है।।१५।।

तथा—

कामबीजं समुद्धृत्य सम्बुद्ध्यन्तपदद्वयम् ।
पुनः कामं तदन्ते च दद्याद् वह्नेश्च सुन्दरीम् ॥१६॥
एषा नवाक्षरी विद्या गुह्यकाल्याः समीरिता ।
दक्षिणे पदमाभाष्य भवेद् विद्या दशाक्षरी ॥१७॥

और भी कहते हैं कि कामबीज का उद्धार करके सम्बोधनान्त गुह्यकालिके इस दो पद का उद्धार करे (क्लीं गुह्यकालिके)। तदनन्तर पुनः कामबीज (क्लीं) तथा वह्निसुन्दरी (स्वाहा) लगाये। यह नवाक्षरी विद्या है। इसमें 'गुह्यकालिके' के स्थान पर 'दक्षिणे कालिके' लगाने से यह दशाक्षरी विद्या होगी। मन्त्रोद्धार करते हैं—क्लीं गुह्यकालिके क्लीं स्वाहा (नवाक्षरी)। क्लीं दक्षिणे कालिके क्लीं स्वाहा (दशाक्षरी)।।१६-१७।।

आसां न्यासपूजादि सर्वं पूर्ववदेव ॥१८॥

इसका सभी न्यास-पूजादि विधान दक्षिणकालिका के समान ही होता है।।१८।।

यथा तत्रैव—

पूर्ववन्न्यासवर्गस्तु पूर्ववत् पूजयेच्छिवाम् ।
पूर्ववच्च जपेद्विद्यां सर्वं पूर्ववदेव हि ॥१९॥

जैसा कि कहा भी गया है कि पूर्ववत् न्यास एवं पूर्ववत् शिवा का पूजन करे। पूर्ववत् विद्या का जप करे। सब पूर्ववत् करे।।१९।।

बलिमन्त्रस्तु—एह्येहि जगन्मातर्जगतां जननि! गृह्ण गृह्ण मम बलिं सिद्धिं देहि देहि शत्रुक्षयं कुरु कुरु हुं हुं ह्रीं ह्रीं फट् फट् ॐ कालिकायै नमः

फट् स्वाहा इति। अथवा एह्येहि गुह्यकालि मम बलिं गृह्ण गृह्ण मम शत्रून् नाशय नाशय खादय खादय स्फुर स्फुर छिन्दि छिन्दि सिद्धिं देहि देहि हुं फट् स्वाहा। आसनमन्त्रस्तु—ॐ सदाशिवमहाप्रेताय गुह्यकाल्या-सनाय नमः॥२०॥

दो प्रकार के बलिमन्त्र कहते हैं—

१. एह्येहि जगन्मातर्जगतां जननि गृह्ण गृह्ण मम बलिं सिद्धिं देहि देहि शत्रुक्षयं कुरु कुरु हुं हुं ह्रीं फट् फट् ॐ कालिकायै नमः फट् स्वाहा।

२. एह्येहि गुह्यकालि मम बलिं गृह्ण गृह्ण मम शत्रून् नाशय नाशय खादय खादय स्फुर स्फुर छिन्दि छिन्दि सिद्धिं देहि देहि हुं फट् स्वाहा।

अब आसन मन्त्र कहते हैं—ॐ सदाशिवमहाप्रेताय गुह्यकाल्यासनाय नमः।।२०।।

●

अथ भद्रकाली

निजबीजत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं भद्रकाल्यै निजबीजत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं स्वाहा॥१॥

अब भद्रकाली का वर्णन करते हैं। निजबीजत्रय, कूर्चद्वय, मायाद्वय, भद्रकाल्यै, निजबीजत्रय, कूर्चद्वय, मायाद्वय और स्वाहा। इनसे भद्रकाली का मन्त्र निष्पन्न होता है। मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—क्लीं क्लीं क्लीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं भद्रकाल्यै क्लीं क्लीं क्लीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।।१।।

यथा—

कामबीजादिकं बीजं सर्वं पूर्वापरे यजेत्।
भद्रकालीं तथा ङेन्तां बीजमध्ये नियोजयेत्॥२॥
स्वाहान्ता कथिता विद्या विंशत्यर्णात्मिका परा।
चतुर्वर्गप्रदा विद्या भद्रकाली शुभावहा॥३॥

तन्त्र में कहा है कि कामबीजादि समस्त बीज पूर्व में तथा पश्चात् में लगाये। इस पूर्वापर बीज के मध्य में चतुर्थी विभक्तियुक्त भद्रकाली अर्थात् 'भद्रकाल्यै' लगाये। अन्त में स्वाहा लगाये। इस प्रकार २० अक्षरों वाली विद्या कही गयी है।।२-३।।

अथ निग्रहे मन्त्रान्तरं यथा—

प्रसादबीजमुद्धृत्य कालीति पदमुद्धरेत्।
महाकालीं पदञ्चोक्त्वा किलियुग्ममतः परम्॥४॥

अस्त्रवह्निप्रियान्तोऽयं भद्रकालीमहामनुः ।
आराध्य प्रजपेन्नित्यमष्टोत्तरशतं मनूम् ।।५।।
जपमाला विधातव्या ह्यष्टोत्तरशतेन तु ।
ध्यातव्येयं महःदेवी भद्रकाली भयापहा ।।६।।

अब निग्रह में मन्त्राक्षर कहते हैं—प्रासादबीज (हौं) का उद्धार करके 'काली' कहे। तदनन्तर 'महाकाली' और 'किलि किलि' कहे। तदनन्तर अस्त्र (फट्) तथा वह्निप्रियां कहे। मन्त्र होता है—हौं कालि महाकालि किलि किलि फट् स्वाहा। यह भद्रकाली का महा मन्त्र है। पूजनोपरान्त नित्य इसका १०८ जप करना चाहिये। १०८ गुटिका की जपमाला होना चाहिये। यह भयनाशिनी भद्रकाली सबके लिये ध्यानयोग्य हैं।।४-६।।

आराध्येति। भूतशुद्धिप्राणायामौ कृत्वा पञ्चोपचारैः शिवलिङ्गे सम्पूज्येत्यर्थः। ध्यानन्तु—

क्षुत्क्षामा कोटराक्षी मसिमलिनमुखी मुक्तकेशी रुदन्ती
नाहं तृप्ता वदन्ती जगदखिलमिदं ग्रासमेकं करोमि ।
हस्ताभ्यां धारयन्ती ज्वलदनलशिखासन्निभं दाशयुग्मं
दन्तैर्जम्बूकलाभैः परिहरतु भयं पातु मां भद्रकाली ।।७।।

आराध्य का अर्थ है भूतशुद्धि तथा प्राणायाम करके पाँच उपचारों द्वारा शिवलिंग का पूजन करे। तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—क्षुधा से क्षीण, कोटराक्षी, स्याही के समान मलिनमुखी, मुक्तकेशी, यह कहकर रोदन करने वाली कि 'मैं तृप्त नहीं हूँ, समस्त जगत का एक ग्रास करूँगी' यह कहने वाली, जलती आग की शिखा के तुल्य दाशयुग्म को दोनों हाथ में धारण करने वाली, जामुन के फल के वर्ण के दातों वाली भद्रकाली भय का निवारण करें, मेरी रक्षा करें।।७।।

प्रयोगमात्रं कर्त्तव्यं वैरिनिग्रहकारकम् ।
इयं देवी महादेवी शत्रुनिग्रहकारिणी ।।
यथेष्टचिन्तया चिन्त्या धर्मकामार्थसिद्धिदा ।।८।।

वैरीनिग्रह-कारक प्रयोगमात्र कर्त्तव्य है। यह देवी महादेवी शत्रुनिग्रह करने वाली तथा धर्म, अर्थ एवं काम को देने वाली हैं। यथेष्ट ध्यान द्वारा इनका ध्यान करे।।८।।

अत्र पुरश्चरणादिकं दक्षिणकालीतन्त्रवदिति केचित्। वस्तुतस्तु पुरश्चरणमष्टोत्तरसहस्रजपः विशेषानुक्तत्वात्।।९।।

इस विद्या का पुरश्चरणादि दक्षिणकालिका के समान है। वास्तव में विशेष नहीं कहा गया है; अत: पुरश्चरण में १००८ जप करना चाहिये।।९।।

●

अथ महाकाली

सप्तबीजानि महाकाली सप्तबीजानि स्वाहा। यथा—

बीजानि चोच्चरेत् पूर्वं महाकालिपदं ततः ।
तदन्ते सप्तबीजानि स्वाहान्ता सर्वसिद्धिदा ।
विंशत्यर्णा महाविद्या महाकाल्याः प्रकीर्त्तिता ।।१।।

मन्त्रोद्धार-हेतु पहले सात बीज, तदनन्तर महाकालि, सप्तबीज तथा स्वाहा कहे। तत्पश्चात् मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—क्लीं क्लीं क्लीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं महाकालि क्लीं क्लीं क्लीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा। तन्त्र में कहा भी है कि प्रथमत: इन सात बीजों का उच्चारण करे। तत्पश्चात् महाकालि, पुन: सातों बीज और अन्त में स्वाहा। महाकाली का यह २० अक्षरों का मन्त्र महासिद्धि देता है।।१।।

एतासां पूजाजपादि दक्षिणावत्। विशेषस्तु भूपुरे इन्द्रादिदिक्पालान्। तद्बहिर्वज्रादीन् भूगृहस्य पूर्वादि चतुर्द्वारि विष्णुं शिवं सूर्यं गणेशं पूजयेत्।।२।।

इनकी पूजा-जपादि सब दक्षिणकालिका विधान से होती है। विशेष यह है भूपुर में इन्द्रादि लोकपालों का तथा उसके बाहर उनके वज्रादि अस्त्रों का, भूपुर के पूर्वादि चारो द्वारों में विष्णु, शिव, सूर्य तथा गणेश की पूजा करे।।२।।

गुह्यकाल्यादीनां यन्त्रन्तु—

त्रिकोणञ्चैव षट्कोणं नवकोणं मनोहरम् ।
त्रिवृत्तं साष्टपत्रञ्च सुकिञ्जल्कसमन्वितम् ।।३।।
भूपुरस्त्रितयारूढं योनिमण्डलमण्डितम् ।
त्रिपञ्चारमिदं चक्रं सर्वतन्त्रप्रकीर्त्तितम् ।।४।।

त्रिकोण, षट्कोण अर्थात् अधोमुख त्रिकोणाकार षट्कोणद्वय तथा मनोहर नवकोण अर्थात् अधोमुख तीन त्रिकोण, तीन वृत्त, मनोहर किंजल्कयुक्त अष्टदल। वह तीन भूपुर द्वारा आरूढ़ तथा योनिमण्डल (अधोमुखी त्रिकोण) द्वारा मण्डित होगा। यह त्रिपञ्च (१५) आर (कोण) युक्त चक्र समस्त तन्त्रों में कीर्त्तित है।।३-४।।

त्रिकोणं त्रिकोणाकारमित्यर्थः। तथा च षट्कोणपदेनात्राधोमुखत्रिकोणद्वयमभिहितम्, न तूर्द्ध्वाधोभावेन षट्कोणामित्यर्थलाभाय। षट्कोणस्य विशेषणं त्रिकोणमन्यथाष्टादशकोणत्वापत्तेस्त्रिपञ्चारत्वानुपपत्तेश्च।।५।।

त्रिकोणम् = त्रिकोणाकार। यहाँ षट्कोण पद द्वारा अधोमुख त्रिकोणद्वय अभिहित

होता है। किन्तु ऊर्ध्व तथा अधोभाव से षट्कोण के लिये वह नहीं कहा गया है। षट्कोण का विशेषण है—त्रिकोण। अन्यथा अष्टादश कोण की आपत्ति होगी एवं पञ्चदश (त्रिपञ्च) कोण की अनुपत्ति होगी।।५।।

केचित् तु त्रिकोणञ्चैव षट्कोणं त्रिकोणद्वितयं पुनरिति पाठस्तत्र त्रिकोणपदं न विशेषणम्, षट्कोणपदञ्च उपदर्शितत्रिकोणद्वयपरम्। भूपुरं चतुरस्रम्। योनिमण्डलमधोमुखत्रिकोणम्। तेन मण्डितमर्थाद् वेष्टितम्॥६॥

किसी का मत है कि 'त्रिकोणं चैव षट्कोणं त्रिकोणद्वितयं पुनः' यह पाठ है। इस पाठ में त्रिकोण पद विशेषण नहीं है। षट्कोण पद तो प्रदर्शित किये गये त्रिकोणद्वय का तात्पर्यार्थ है। भूपुर = चतुरस्र। योनिमण्डल = अधोमुख त्रिकोण। तेन मण्डितं—उसके द्वारा भूषित।।६।।

ध्यानन्तु—

महामेघप्रभां देवीं कृष्णवस्त्रपिधायिनीम्।
ललज्जिह्वां घोरदंष्ट्रां कोटराक्षीं हसन्मुखीम्॥७॥
नागहारलतोपेतां चन्द्रार्ककृतशेखराम्।
द्यां लिखन्तीं जटामेकां लेलिहानां शवं स्वयम्॥८॥
नागयज्ञोपवीताङ्गीं नागशय्यानिषेदुषीम्।
नागेन रसनाहारकल्पितां रत्ननूपुराम्॥९॥
वामे शिवस्वरूपं तं कल्पितं वत्सरूपकम्।
द्विभुजां चिन्तयेद् देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम्॥१०॥
नरदेहसमारब्धकुण्डलश्रुतिमण्डितम्।
प्रसन्नवदनां सौम्यां नवरत्नविभूषिताम्॥११॥
नारदाद्यैर्मुनिगणैः सेवितां शिवमोहिनीम्।
साट्टहासां महाभीमां साधकाभीष्टदायिनीम्॥१२॥

तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करे—महामेघवत् प्रभायुक्ता, ज्योतिर्मयी, कृष्ण वस्त्र धारण करने वाली, ललज्जिह्वा वाली, घोर दाँतों वाली, कोटराक्षी, हास्यमुखी, नागहाररूप लतायुता, चन्द्रार्ध-मण्डित मुकुट-धारिणी, आकाश को छू रही जटाधारिणी, स्वयं शव को चाटने वाली, नाग से बने यज्ञोपवीत को धारण करने वाली, नागशय्या पर शयन करने वाली, ५०० मुण्डों से खचित नरमाला-धारिणी, विशाल उदर वाली, मस्तक पर सहस्र फण वाले अनन्त नाग को धारण करने वाली, चारो ओर नागगण के फनों से वेष्टिता, बाँयें हाथ में सर्पराज तक्षकरूप कङ्कण से तथा दाहिने हाथ में

नागराज अनन्त के कङ्कण से मण्डिता, कटि में नागरूप काञ्ची द्वारा एवं गले में नागरूप हार द्वारा शोभिता, रत्नमयी नूपुर धारण करने वाली, बाँयें हाथ में शिवस्वरूप बालक-धारिणी, द्विभुजा नागयज्ञोपवीतयुता, कानों में नरदेहरूप कुण्डलों को धारण करने वाली, प्रसन्न मुख वाली, सौम्या, नवरत्न-विभूषिता, नारदादि मुनिगणों से सेविता, शिव को मोहने वाली, अट्टहास-युता, महाभीमा, साधक को अभीष्ट फल देने वाली महाकाली का ध्यान करे।।७-१२।।

जटामेकामिति धारयन्तीमिति शेषः।
आजानुलम्बिनी माला वनमाला प्रकीर्त्तिता ॥१३॥

जटामेकाम् में धारयन्ती पद ऊह्य करना होगा। आजानुलम्बिनी माला को ही वनमाला कहते हैं।।१३।।

अनन्तं शिरसोपरीति। दधतीमिति शेषः। वामे वामपार्श्वे वत्सरूपं बालकरूपं शिवं धारयन्तीमिति शेषः। गुह्यकालिकामित्यत्र गुह्यत्वमुपलक्षणम्। पूजादि सर्वं दक्षिणावत्॥१४॥

अनन्तं शिरसोपरि में दधतीं पद ऊह्य करना होगा। वामे = वामपार्श्व में। वत्सरूपं = बालकरूप शिव को। 'धारयन्ती' को ऊह्य करना होगा। गुह्यकालिकाम्—यहाँ गुह्य पद उपलक्षण है। पूजादि सब कुछ दक्षिणकालिका के समान करना होगा।।१४।।

उच्चाटने महाकाल्या मन्त्रान्तरम्। यथा—ॐ फ्रें फ्रें क्रें क्रें पशून् गृहाण हुं फट् स्वाहा। अत्र द्वितीयतृतीयबीजे पवर्गद्वितीयरेफैकादशस्वरबिन्दुभिः। चतुर्थपञ्चमे ककाररेफैकादशस्वर बिन्दुभिः॥१५॥

उच्चाटन में काली का मन्त्रान्तर इस प्रकार है—ॐ फ्रें फ्रें क्रें क्रें पशून् गृहाण हुं फट् स्वाहा। यहाँ द्वितीय तथा तृतीय बीज पवर्ग के द्वितीय वर्ण (फ), रकार एकादश स्वर (ए) तथा बिन्दु द्वारा उद्धृत हुआ है। चतुर्थ तथा पञ्चम बीज (क्रें) ककार, रकार तथा एकादश स्वर 'ए' तथा बिन्दु द्वारा उद्धृत हुआ है।।१५।।

अथास्य प्रयोगः। अत्राङ्गन्यासादिकं न कर्त्तव्यम्। तथा च—

न्यासशुद्ध्यादिकानाञ्च नात्र कार्या विचारणा।
कृष्णतोयैश्च सम्पूर्णे कृष्णकुम्भे च कालिकाम्।
पञ्चवक्त्रां महारौद्रीं प्रतिवक्त्रं त्रिलोचनाम् ॥१६॥
शक्तिशूलधनुर्बाणखड्गखेटवराभयान्।
दक्षादक्षभुजैर्देवीं बिभ्राणां भुवि भूषणाम् ॥१७॥

अब इसका प्रयाग कहते हैं। इसमें अंगन्यासादि नहीं करना है। तन्त्र में कहा गया है कि इसके प्रयोग में न्यास, शुद्धि आदि का विचार नहीं किया जाता। कृष्ण वर्ण जल द्वारा भरे कृष्ण वर्ण कुम्भ में महारौद्री, पञ्चवक्त्रा, प्रत्येक मुख में तीन नेत्रों से युक्त, दाहिने तथा बाँयें बाहुसमूह में शक्ति, शूल, धनुष, बाण, खड्ग, खेटक, वर तथा अभय मुद्रा धारण करने वाली पृथ्वी पर शोभायमान देवी कालिका का ध्यान करे।।१६-१७।।

एवं ध्यात्वा यथाविध्युपचारैरभ्यर्च्य कुम्भे पूर्वादीशानपर्यन्तं ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराहैन्द्री चामुण्डा चण्डिका अष्टशक्तिः पूजयेत्। तथा—

नामोच्चारणसम्बन्धं वह्नौ प्रज्वलितेऽम्बरे ।
जुहुयाद् वैरिणां शुद्धौ देवीमन्त्रं जपस्तथा ॥१८॥

इस प्रकार ध्यान करके यथाविधि उपचार से पूजा करके कुम्भ के पूर्व से ईशान-पर्यन्त स्थान में ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐन्द्री, चामुण्डा तथा चाण्डिका का पूजन करे। तथा शत्रु का नाम लेते हुये देवी का मन्त्र जप करते-करते आकाश में प्रज्वलित शुद्ध अग्नि में होम करे।।१८।।

समिधः पिचुमर्दस्य तथा विभीतकाष्ठिकाः ।
गृहधूमः श्मशानास्तुर्विभीताङ्गारहोमतः ।
सप्ताहाद्वैरिणं हन्ति कालिकामन्त्रयोगतः ॥१९॥

श्मशान के मध्य विभीतक के अङ्गार में कालिका के मन्त्र से नीम की लकड़ी, बहेड़ा की समिधा तथा गृहधूम के होम से एक सप्ताह में शत्रुवध होता है।।१९।।

उच्चाटनञ्चापराह्ने सन्ध्यायां मारणं तथा ।
दक्षिणस्यां दिशि स्थित्वा ग्रामादेर्दक्षिणामुखः ॥२०॥

ग्राम के दक्षिण में दक्षिण दिशा की ओर मुख करके अपराह्न में उच्चाटन तथा सायं-काल मारण कर्म करे।।२०।।

●

अथ श्मशानकाली

निजबीजत्रयं कूर्चद्वयं मायाद्वयं श्मशानकालि पुनस्तानि स्वाहा ॥१॥

अब श्मशानकाली प्रकरण कहा जाता है। निजबीजत्रय, कूर्चद्वय, मायाद्वय, श्मशानकालि पुनः यही पूर्व बीज तथा स्वाहा। मन्त्रोद्धार करते हैं—क्रीं क्री क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं श्मशानकालिके क्रीं क्रीं क्रीं हूं हूं ह्रीं ह्रीं स्वाहा।।१।।

यथा—

सप्तबीजं समुद्धृत्य श्मशानकालि चेत्तथा।
पुनर्बीजक्रमेणैव स्वाहान्ता सर्वसिद्धिदा।
विंशत्यधिका विद्या सा श्मशानकालिका मता॥२॥

अस्याः सर्वं भद्रकालीवत्॥३॥

सात बीज का उद्धार करके श्मशानकालि कहकर पुनः सातो बीज कहकर 'स्वाहा' कहे। यह बीस अक्षरों वाली सर्वसिद्धिप्रदा विद्या श्मशानकालिका कही गयी है। इसका समस्त विधान भद्रकाली प्रकरण रूप करे।।२-३।।

अथास्या मन्त्रान्तरम्। कालीतन्त्रे—

बाणीं मायां ततो लक्ष्मीं कामबीजमतः परम्।
कालिके सम्पुटत्वेन चतुष्कं बीजमालिखेत्।
एकादशार्णा देवेशि चतुर्वर्गप्रदायिनी॥४॥

अब मन्त्रान्तर कहते हैं। कालीतन्त्र में कहा गया है कि वाणी (ऐं) माया (ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं) कामबीज (क्लीं) तत्पश्चात् कालिके पुनः चारो बीज लिखे। हे देवेशि! यह ग्यारह अक्षरों वाली विद्या चतुर्वर्ग प्रदान करने वाली होती है। मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं कालिके ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं।।४।।

तेन वाग्भवं माया रमा कामबीजं कालिके वाग्भवं माया रमा निज-बीजञ्चेति॥५॥

इस प्रकार वाग्भव (ऐं) माया (ह्रीं) रमा (श्रीं) कामबीज (क्लीं) वाग्भव (ऐं) माया (ह्रीं) रमा (श्रीं) निजबीज (क्लीं) इनसे मन्त्र निष्पन्न होता है।।५।।

अस्याः पूजायन्त्रम्—

पद्ममष्टदलं वृत्तं तद्वाह्ये धरणीतलम्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं मध्ये मूलं समालिखेत्॥६॥
दलेष्वष्टासु विलिखेत् कवर्गाद्यष्टवर्गकम्।
धरण्यां विलिखेदाद्यं चतुष्कञ्च चतुष्कके।
पूर्वादि उत्तरान्तञ्च मध्ये देवीं प्रपूजयेत्॥७॥

अब पूजायन्त्र कहते हैं—एक अष्टदल कमल, उसके बाहर एक वृत्त तथा चतुर्द्वारयुक्त चतुरस्र (भूपुर) बनाकर मध्य में मूल बीज (क्लीं) लिखे। आठ दलों में कवर्गादि आठ वर्ग लिखे। भूपुर के चारो द्वार में पूर्व से प्रारम्भ करके उत्तर दिशा तक चार बीज लिखना चाहिये। मध्य में देवी की पूजा की जाती है।।६-७।।

धरणीतलं चतुरस्त्रम्। अष्टवर्गकं कचटतपयशहवर्गात्मकम्। हवर्गो हक्षौ। आद्यं बीज चतुष्कं धरण्यां चतुष्कके चतुर्द्वारि इत्यर्थः।।८।।

धरणीतल = चतुरस्त्र। अष्टवर्ग = क च ट त प य श तथा ह। हवर्ग = ह तथा क्ष। आद्यबीज चतुष्कञ्च चतुष्कके = चारो द्वारों में।।८।।

प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं कर्म कृत्वा ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। शिरसि—भृगुऋषये नमः। मुखे—निवृच्छन्दसे नमः। हृदि—श्मशानकालिकायै देवतायै नमः। गुह्ये—ऐं बीजाय नमः। पादयोः—ह्रीं शक्तये नमः। सर्वाङ्गे—क्रीं कालिकायै नमः।।९।।

प्रात:कृत्य से प्राणायाम तक का विधान सम्पन्न करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करना चाहिये। शिर पर ॐ भृगुऋषये नमः। मुख में—ॐ निवृच्छन्दसे नमः। हृदय में—ॐ श्मशानकालिकायै देवतायै नमः। गुह्य में—ॐ ऐं बीजाय नमः। दोनों पैरों में—ॐ ह्रीं शक्तये नमः। सर्वाङ्ग में—ॐ क्रीं कीलकाय नमः।।९।।

ततः कराङ्गन्यासौ—यथा ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हृदयाय नमः। ऐं ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा इत्यङ्गकल्पना प्रकारः। यथा तन्त्रे—

चतुस्त्रिश्च चतुर्वर्णैर्द्विरावृत्त्या षड़ङ्गकम् ।।१०।। इति।

तदनन्तर कराङ्गन्यास करना होगा। यथा—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं हृदयाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं शिखायै वषट्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं कवचाय हुं, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रीं करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। यह अङ्गकल्पन का प्रकार है। जैसे तन्त्र में कहा है कि चार बीज, तीन बीज तथा चार बीज इनकी दो आवृत्ति देकर षडङ्गन्यास करना चाहिये।।१०।।

ततो ध्यानम्—

अञ्जनाद्रिनिभां देवीं श्मशानालयवासिनीम्।
रक्तनेत्रां मुक्तकेशीं शुष्कमांसातिभैरवाम् ।।११।।
पिङ्गाक्षीं वामहस्तेन मद्यपूर्णं समांसकम्।
सद्यः कृत्तशिरो दक्षहस्तेन दधतीं शिवाम् ।।१२।।
स्मितवक्त्रां सदा चर्ममांसचर्वणतत्पराम्।
नानालङ्कारभूषाङ्गीं नग्नां मत्ता सदासवैः ।।१३।।
एवं ध्यात्वा यजेद् देवीं श्मशाने तु विशेषतः।
गृहे वापि गृहस्थोऽपि मत्स्यमांसैः सुशोभनैः।
नग्नो भूत्वा महापूजा कुर्याद्रात्रौ विशेषतः ।।१४।।

अब ध्यान करना चाहिये। अञ्जन पर्वत के समान कृष्णवर्णा, दिव्या, श्मशान में रहने वाली, लाल नेत्रों वाली, खुले बालों वाली, शुष्क मांस वाली, अत्यन्त भयानक, पिङ्गाक्षी, बाँयें हाथ में मांस-मद्ययुक्त पूर्ण पात्र-धारिणी, दाहिने हाथ में तत्क्षण कटा मुण्ड धारण करने वाली, शिवा, स्मितमुखी, सर्वदा मांस-चर्म चबाने में तत्परा, नाना अलंकारों से आभूषिता, नग्ना एवं सर्वदा आसवसमूह का पान कर मत्ता हो रही देवी का ध्यान करना चाहिये।

इस प्रकार से ध्यान करके श्मशान में विशेष रूप से देवी का पूजन करना चाहिये। गृहस्थ अपने गृह में सुन्दर मत्स्य-मांस से इनका पूजन करे। नग्न होकर रात्रि में विशेषतः पूजन करना चाहिये।।११-१४।।

पूजायां तु प्रातःकृत्यादि ध्यानमानसपूजार्घ्यं संस्थाप्य पुनर्ध्यात्वा यथोक्तोपचारैरभ्यर्च्य पत्रेषु ब्राह्म्याद्यास्तद्बहिरसिताङ्गादीन् सम्पूज्य धूपादि विसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। पुरश्चरणमेकादशलक्षजपः।।१५।।

पूजा के लिये प्रातःकृत्यादि से लेकर ध्यान, मानस पूजा, विशेष अर्घ्य स्थापना करके पुनः ध्यान करके यथोक्त उपचारों से अर्चना करके पत्रसमूह में अष्ट मातृवर्ग (ब्राह्मी आदि) का एवं उसके बाहर अष्ट भैरवों का पूजन करके धूपदान से लेकर विसर्जन-पर्यन्त विधान सम्पन्न करना चाहिये। इस विद्या का पुरश्चरण एक लाख जप से निष्पन्न होता है।।१५।।

•

अथ सर्वाङ्गकालिका

यथा स्वतन्त्रे—

कामबीजं समालिख्य कालिकायै पदं लिखेत्।
नमोऽन्त एष देवेशि सप्तार्णो मनुरुत्तमः।
सर्वाङ्गकालिका देवी अन्यत् सर्वन्तु पूर्ववत्।।१६।।

अन्यद्ध्यानादिकं पूजनञ्च सर्वं पूर्ववत् श्मशानकालिकावदित्यर्थः।।१७।।

अब सर्वाङ्गकालिका प्रकरण कहते हैं। स्वतन्त्रतन्त्र में कहा गया है कि कामबीज (क्लीं) लिखकर 'कालिकायै' तथा अन्त में 'नमः' लिखे। हे देवेशि! यह सप्ताक्षर उत्तम मन्त्र है। इसकी देवता हैं—सर्वाङ्गकालिका। अन्य सब विधान पूर्ववत् (श्मशान कालिका विधानानुसार) होता है। मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—क्लीं कालिकायै नमः।।१६-१७।।

•

अथ तारिणीप्रकरणम्

यस्याः प्रसादमात्रेण करस्था ह्यष्टसिद्धयः ।
तामुग्ररूपिणीं वन्दे तारिणीं दुर्गतारिणीम् ॥१॥

अब तारिणी प्रकरण कहते हैं। जिनकी कृपामात्र से आठों सिद्धियाँ करस्थ हो जाती हैं उन दुर्गतारिणी उग्ररूपिणी तारिणी की वन्दना करता हूँ।।१।।

मत्स्यसूक्ते—

अथ भेदान् प्रवक्ष्यामि तारिण्या सर्वसिद्धिदान् ।
येषां विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तस्तु साधकः ॥२॥

मत्स्यसूक्त में कहा है कि अब तारिणी के सर्वसिद्धिप्रद भेदों को कहता हूँ, जिनके जानने मात्र से साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।।२।।

कवितां लभते दिव्यामनर्गलविजृम्भिणीम् ।
पाण्डित्यं सर्वशास्त्रेषु धनैर्धनपतिर्भवेत् ॥३॥
राजद्वारे सभायाञ्च विवादे व्यवहारके ।
सर्वत्र जयमाप्नोति बृहस्पतिरिवापरः ॥४॥

वह साधक मनोहर कवित्व, सर्वशास्त्र पाण्डित्य तथा धनपतित्व प्राप्त करता है। राजद्वार, सभा, विवाद, व्यवहार में वह सदा विजयी होता है। साथ ही वह द्वितीय बृहस्पति के समान हो जाता है।।३-४।।

अन्यत्र ताराविलासधृतवचनानि यथा—

कैलाशशिखरासीनं चन्द्रखण्डविभूषितम् ।
वक्षःस्थले समासीना पृच्छतिस्म नगात्मजा ॥५॥
कथमीशान सर्वज्ञ भक्तस्ते तपोधनाः ।
कां विद्यां प्राप्य मुनयो भारतादि प्रचक्रिरे ॥६॥

अब ताराविलास से संदर्भित वचन कहा जाता है। पर्वतकन्या पार्वती श्रीहर के वक्ष:स्थल से लिपटकर कैलाशशिखर पर स्थित हो चन्द्रखण्ड (अर्धचन्द्र) से विभूषित महेश्वर श्रीहर से जिज्ञासा करती हैं कि हे ईशान! हे सर्वज्ञ! उन तपोधन व्यासादि मुनिगण ने कौन सी विद्या पाकर महाभारतादि महान् इतिहास ग्रन्थों का निर्माण किया है।।५-६।।

श्रुत्वा नगात्मजावाक्यं प्रहस्य परमेश्वरः ।
प्राह प्रियां परिष्वज्य साधु साध्विति पूजयन् ।।७।।
शृणु साध्वि महाविद्यामज्ञानेन्धनदाहिनीम् ।
यामवाप्य महात्मानो धर्मकर्मार्थमुक्तिषु ।।८।।
नासाध्यं मेनिरे किञ्चित् कवयः शुद्धबुद्धयः ।
वादे च सदसि वाक्यस्तम्भिनी प्रतिवादिनाम् ।।९।।
विद्या हानिकरी वैरिविद्विषां बलिदानतः ।
वादिनं वाथ राजानं तत्पत्नींश्च वशं नयेत् ।।१०।।

परमेश्वर ने पर्वतनन्दिनी का वाक्य सुनकर हंसते हुये उनका आलिङ्गन करके साधु-साधु कहकर प्रशंसा करते हुये कहा—हे साध्वि! अज्ञानरूपी ईन्धन को दग्ध करने वाली विद्या को सुनो। वादविवाद प्रतियोगिता में, सभा में एवं वाक्य स्तम्भन करने वाली जिस विद्या को सम्यक् रूप से पाकर शुद्ध बुद्धि वाले महात्माओं ने धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष तक को कुछ भी असाध्य नहीं पाया, वह यह विद्या वैरी विद्वेषी व्यक्तियों की विद्या को नाश करने वाली है। यह विद्या बलिदान के प्रभाव से वादी को अथवा राजा एवं राजपत्नीगण को भी वश में ले आती है।।७-१०।।

सुविमलनखदन्तपाणिपादो मुदितमनाः पददूषणे च मौनी ।
हर हर कमलोद्भवाङ्घ्रिभक्तो भवति चिराय सरस्वतीनिवासः ।।११।।

सुविमल (साफ किये) नख, दाँत, हाथ-पैर वाले, प्रसन्न मन, दूसरे की बुराई न करने वाले, हरि-हर-ब्रह्मा के चरणभक्त व्यक्ति चिरकाल-पर्यन्त सरस्वती के वासगृह में स्थान पाते हैं।।११।।

मत्स्यसूक्ते—

कृतसुकृतसहस्रानेकजन्मप्रभावै-
र्भवति यदि मनुष्यो गुर्वधीनश्चिरायुः ।
कथमपि मनुमेनं प्राप्य शिष्याय तस्मै
निजकुलतिलकाय ज्येष्ठपुत्राय दद्यात् ।।१२।।

मत्स्यसूक्त के अनुसार अर्जित हजारो सुकृति के प्रभाव से यदि मनुष्य गुरुकृपा से उनके अधीन होकर दीर्घायु होता है, तब वह किसी भी प्रकार से इस विद्या को प्राप्त करके अपने ज्येष्ठ पुत्र को प्रदान किया है।।१२।।

अन्यत्रापि—

मनुर्विमृष्य दातव्यो ज्येष्ठाय हितकारिणे ।
पुत्राय किमुतान्यस्मै विगोत्राय सुपौरुषः ।।१३।।

मधुना त्रिदिनादर्वाक् यज्जिह्वायां न्यसेदभूम्।
विना पाठेन मूर्खोऽपि पण्डितः सोऽभिजायते ॥१४॥

अन्यत्र भी कहा है कि विशेष विचार करके पौरुष से समन्वित व्यक्ति (जिसने इस विद्या को प्राप्त किया है) अपने हितकारी ज्येष्ठ पुत्र को मन्त्र प्रदान करे। अन्य गोत्र वाले को विशेष विचार करके ही यह विद्या प्रदान करे। इस सम्बन्ध में और अधिक क्या कहें। यदि तीन दिन पूर्व मधु से यह मन्त्र जिह्वा पर लिखे तो मूर्ख भी अध्ययन के बिना ही पण्डित हो जाता है।।१३-१४।।

सर्वदा गोपयेदेनं मनुं सद्गुरुमेव च।
तेन वीर्यवती विद्या निर्वीर्या स्यात्प्रकाशतः ॥१५॥

सर्वदा सद्गुरु से प्राप्त इस मन्त्र को गुप्त रखे। इससे विद्या वीर्यवती होती है। गोपनीय न रखने से विद्या वीर्यरहित हो जाती है।।१५।।

न पापरताय दद्यान्नाभक्ताय कदाचन।
गुरुभक्ताय दान्ताय दद्यादेवाम्बुपूर्वकम् ॥१६॥

अभक्त तथा पापासक्त व्यक्ति को कदापि यह विद्या नहीं देनी चाहिये। गुरुभक्त तथा इन्द्रियसंयत (दान्त) को जलदान-पूर्वक मन्त्र प्रदान करना चाहिये।।१६।।

विद्या ब्राह्मणमित्याह सेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम्।
नासूयकाय मां ब्रूयास्तदा स्यां वीर्यवत्तमा ॥१७॥

विद्या ब्राह्मण के पास जाकर कहती है—मैं तुम्हारी सेवधि (पूँजी) हूँ। मेरी रक्षा करो। असूयाकारी व्यक्ति को मुझे प्रदान नहीं करना। (यदि ऐसा नहीं करोगे) तब मैं वीर्यवती रहूँगी।।१७।।

यमेव तु शुचिं विद्यानियतं ब्रह्मवादिनम्।
तस्मै मां ब्रूहि विप्राय नाविप्राय प्रमादिने ॥१८॥

पवित्र ब्रह्मवादी विप्र को ही मुझे प्रदान करना। प्रमाद से युक्त विप्र को कदापि प्रदान नहीं करना चाहिये।।१८।।

तथा—

नीलसारस्वते तन्त्रे कविता चित्तहारिणी।
विशेषतः कलियुगे मत्प्रसादात् भविष्यति ॥१९॥

नीलसारस्वत तन्त्र में कहा गया है कि विशेषत: कलिकाल में मेरी कृपा से मनोहर कवित्व जन्म लेता है।।१९।।

अल्पज्ञमपि विद्वांसं मानयिष्यन्ति वाग्मिनः।
बृहस्पतिवदाश्चर्यं दृश्यं मन्त्रज्ञमद्भुतम्॥२०॥

(मन्त्र प्राप्त) अल्पज्ञ विद्वान् को भी वाग्मीगण बृहस्पति के समान सम्मानित करते हैं। वे मन्त्रज्ञ को आश्चर्य एवं अद्भुत समझकर देखते हैं।।२०।।

मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण अनुभावद्वयं भवेत्।
तात्कालिकी च कविता परैरनभिभाव्यता॥२१॥

इस मन्त्र के ज्ञानमात्र से दो अनुभव होता है—तात्कालिक कवित्व तथा अन्य द्वारा अनभिभूतत्व।।२१।।

सिद्धमन्त्रो यदा मन्त्री बालिशस्यापि मूर्द्धनि।
हस्तं दत्त्वा दिशत्याशु सोऽपि श्लोकानकरोत्युत॥२२॥

जब साधक सिद्ध मन्त्र हो जाता है, तब उसके द्वारा मूर्ख के शिर पर हाथ रख देने मात्र से (उपदेश मात्र से) वह मूर्ख भी शीघ्र ही श्लोकों की रचना करने लगता है।।२२।।

वीरतन्त्रे—

भगवानुवाच

प्रोक्ता देवि महाविद्या तारा त्रिभुवनेश्वरी।
कतिधा सा महादेवि मन्त्रभेदेन कथ्यताम्॥२३॥

वीरतन्त्र में भगवान कहते हैं—हे देवि! यह तारा त्रिभुवनेश्वरी की महाविद्या आपने कही है। उसके मन्त्रभेदों को कहो।।२३।।

देव्युवाच

प्राणैः पणैर्महादेव न प्रकाश्यं महाकुलम्।
तथापि तव भक्त्या तु तुभ्यं वक्ष्यामि शङ्कर॥२४॥
त्रपयाऽत्र वधूवाक्यं यथा न क्षरते प्रिय!।
तथैवेयं महाविद्या न कदा भुवि गोचरा॥२५॥

देवी कहती हैं—हे महादेव! यह प्राणपण महाकुल प्रकाशित करने योग्य नहीं है। तब भी हे शंकर! आपके प्रति भक्तिवशात् कहती हूँ। हे प्रिये! श्वसुर के सम्मुख लज्जावशात् जैसे वधू नहीं बोलती, उसी प्रकार इस पृथ्वी पर यह विद्या भी श्रुतिगोचर नहीं होती।२४-२५।।

तन्त्रान्तरे—

ये जपन्ति परां विद्यां नियमेन वशस्थिताः।
देवाः सर्वे नमस्यन्ति किं पुनर्मानवादयः ॥२६॥

अन्य तन्त्र में भी कहा है कि जो नियमपूर्वक इस विद्या का जप करते हैं, उसे समस्त देवता नमस्कार करते हैं। मानव-प्रभृति की तो बात ही क्या है।।२६।।

बृहस्पतिसमो वाग्मी धनैर्धनपतिर्भवेत्।
कामतुल्यश्च नारीणां रिपूणां शमनोपमः ॥२७॥
तस्य पादाम्बुजद्वन्द्वं राज्ञां मूर्ध्नि विभूषणम्।
तस्य भूतिं विलोक्यैव कुबेरोऽपि तिरस्कृतः ॥२८॥

वह व्यक्ति बृहस्पति के समान वाग्मी होता है। धन में वह धनपति के समान हो जाता है। नारीगण उसे कामदेव के समान मानती हैं। शत्रुगण के सम्मुख वह शमनरूप (शमनकारी रूप) से प्रतीत होता है।।२७-२८।।

य एवं पूजयेद् देवीं नियमे पितृकानने।
तस्यैवाज्ञाकरास्तावत् सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि ॥२९॥

जो श्मशान में इस प्रकार से देवी का पूजन करता है, उसकी आज्ञाकारी आठो सिद्धियाँ हो जाती हैं।।२९।।

तस्यैव जननी धन्या पिता तस्य सुरोत्तमः।
सम्प्रदायविदां वक्त्राद् य एनां वेत्ति तत्त्वतः ॥३०॥
तस्या विज्ञानमात्रेण कुलकोटिं समुद्धरेत्।
नन्दन्ति पितरः सर्वे गाथां गायन्ति ते मुदा ॥३१॥

जो सम्प्रदाय वालों से तत्त्वतः इस विद्या को जान लेते हैं, उनकी माता धन्य है। उसके पिता देवश्रेष्ठरूप हो जाते हैं। साधक इस महाविद्या को जानने-मात्र से अपने कोटि कुलों का उद्धार कर लेता है। उसके समस्त पितृगण आनन्द से नृत्य करते हैं तथा गाथा का गान करते हैं।।३०-३१।।

अपि नः स्वकुले कश्चित् कुलज्ञानी भविष्यति।
स धन्यः स च विज्ञानी स कविः स च पण्डितः ॥३२॥
स कुलीनः स च सुधी स वशी स च साधकः।
स ब्राह्मणः स वेदज्ञः सोऽग्निहोत्री स दीक्षितः ॥३३॥

यदि हमारे अपने कुल में कोई व्यक्ति कुलज्ञानी हो जाता है तो वह धन्य है,

विज्ञानी, कवि, पण्डित, कुलीन, सुखी, वशी, साधक, ब्राह्मण, वेदज्ञ तथा अग्निहोत्री है और वही दीक्षित भी है।।३२-३३।।

स तीर्थसेवी पीठानां स निवासी स सर्वदः।
स सोमयाजी रा व्रती स संन्यासी स पूजितः॥३४॥
स धर्मात्मा स योगी च स मुक्तो ब्रह्मवित्स च।
स वैष्णवः स शैवश्च स सौरः स च गाणपः॥३५॥

वही तीर्थों में वास करने वाला, पीठों का निवासी, सर्वप्रद, सोमयाजी, व्रती, संन्यासी तथा सर्वपूज्य है। वह धर्मात्मा, योगी, मुक्त, ब्रह्मविद्, वैष्णव, शैव, सौर तथा गाणपत्य है।।३४-३५।।

स च विज्ञानवेत्ता च य एनां वेत्ति तत्त्वतः।
अपि चेत्तत् समा नारी मत्समः पुरुषो यदि।
अनिरुद्धसरस्वत्याः समो मन्त्रोऽस्ति वै तदा॥३६॥

जो (इस विद्या को) इसे यथार्थतः जानता है, वही विज्ञानवेत्ता है। यदि तुम्हारे समान कोई नारी तथा मेरे समान कोई अन्य पुरुष (इस सृष्टि में) है तभी इस विद्या की अनिरुद्ध सरस्वती के समान कोई मन्त्र की सम्भावना होगी अर्थात् इस मन्त्र की समतुल्यता असम्भव है।।३६।।

महापदि महापापे महाग्रहनिवारणे।
महोत्पाते महाशोके महामोहे महागदे।
महादाहे महाशौर्ये महादारिद्र्यसंकटे॥३७॥
महारणे महाशून्ये महाऽज्ञाने महाह्रदे।
समस्तक्लेशसङ्घाते स्मरणादेव नाशयेत्॥३८॥

महा आपत्ति, महापाप, महाग्रहदोष-निवारण में, महा उत्पात, महाशोक, महामोह, महारोग, महामोह, महाशौर्य, महान् दरिद्रता में, महान् समर में, महाशून्य में, महा अज्ञान में, महाह्रद में, समस्त क्लेशों के सङ्घात में इसके स्मरण करने मात्र से ही सब सङ्कटों का नाश हो जाता है।।३७-३८।।

अस्याः ज्ञानं ज्ञानमेव ध्यानमेवात्मदर्शनम्।
अनया सदृशी विद्या नास्ति तन्त्रे न संशयः॥३९॥

इसका ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है। इसका ध्यान ही आत्मदर्शन है। इसके समान कोई अन्य विद्या नहीं है। इसमें संदेह नहीं करना चाहिये।।३९।।

अस्याः स्मरणमात्रेण वचश्चित्रायते नृणाम्।
यज्ज्ञानादमरत्वञ्च लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम्॥४०॥

इस विद्या के स्मरणमात्र से मनुष्यों की वाणी चित्रवत् (स्तम्भित) हो जाती है। इसके जप से चतुर्विध मुक्ति की प्राप्ति भी होती है।।४०।।

फेत्कारीये—

जिह्वायां न्यासनादेव मूकोऽपि सुकविर्भवेत्।
ज्ञानमात्रेण मन्त्रस्य जपात् सर्वज्ञता भवेत्॥४१॥
अव्याहता मतिः शास्त्रे विजयो वाक्पतेरिव।
भावनावशसम्पन्नो भवेद् योगी महाकविः॥४२॥
जड़ोऽपि यदि मूकः स्याद् भावनावशतत्परः।
लभते श्रीमतां वाणीं मन्त्रस्य लक्षजापतः॥४३॥

श्रीमतां व्यासादीनाम्। 'कां विद्यां प्राप्य मुनयो भारतादि प्रचक्रिरे' इत्युक्तत्वात्।

फेत्कारीय तन्त्रशास्त्र में कहा है कि जिह्वा पर इस मन्त्र का न्यास करने से मूक भी सुकवि हो जाता है। इस मन्त्र के ज्ञानमात्र से तथा जप से सर्वज्ञत्व की प्राप्ति होती है। उसकी शास्त्रों में अव्याहत बुद्धि हो जाती है। वाक्पति की तरह वह विजयी होता है। भावनावश सम्पन्न होने पर योगी महाकवि हो जाता है। मूक तथा जड़ भी भावना-वश यदि इसमें (मानसिक जप में) तत्पर होता है तब वह एक लाख जप करके व्यास आदि मुनिगण के समान वाणी-लाभ करता है। श्रीमतां = व्यासादि। इसीलिये कहा गया है कि 'किस विद्या को पाकर मुनियों ने भारतादि ग्रन्थों को लिखा?'।।४१-४३।।

तन्त्रान्तरे—

न कदापि भवति मूर्खो मनुमेनं वेत्ति यो मनुजः।
त्रिजगति भवति ख्यातो विधाय पूजाममुष्य मनोः॥४४॥

तन्त्रान्तर में कहते हैं—जो मानव इस मन्त्र को जानता है, वह कदापि मूर्ख नहीं होता। मनुष्य इस मन्त्र की पूजा करके त्रिलोक में प्रसिद्ध हो जाता है।।४४।।

तथा—

सर्वत्र जयमाप्नोति कीर्त्तिमायुः सुतान् बहून्।
स वासः श्रीसरस्वत्योर्यत्र सारस्वतो म नूः॥४५॥

यह भी कहा गया है कि जो मानव सरस्वती के मन्त्रों से युक्त है, वहाँ सरस्वती का वास होता है। वह सर्वत्र जय, कीर्त्ति, आयु एवं पुत्र प्रचुरता से पाता है।।४५।।

ताराविद्याया आविर्भावः

अथेयं विद्या कदाविर्भुत् कथं वा वाङ्मयाधिकारिणी सरस्वतीत्युच्यते,

आद्या प्रकृतिभूता या शक्तिर्देवी सनातनी।
चतुर्वेदमयी भूत्वा सैव वागधिकारिणी ॥१॥
शब्दब्रह्ममयी सैव सर्वाभ्यन्तरवर्त्तिनी।
प्रवर्त्तयति सर्वासु क्रियासु निखिलं जगत् ॥२॥
सेयं जगति भूयोभिर्नामभिः प्रणिगद्यते।
तारेत्येकजटेत्येवं नीलवाणीति चिन्मयी ॥३॥

इस विद्या का कब आविर्भाव हुआ? किसलिये वाङ्मय की स्वामिनी सरस्वती का नाम कहा गया? इसके उत्तर में कहते हैं कि आद्य प्रकृतिभूता देवी सनातनी जो शक्ति हैं, वे चतुर्वेदमयी होकर वाक्य की (वाणी की) अधिकारिणी हो गयी हैं। वे शब्दब्रह्ममयी होकर सबके अभ्यन्तर में विराजमान हैं। वे ही समस्त जगत् की सभी क्रियाओं को प्रवर्त्तित करती हैं। वे शब्दब्रह्ममयी आद्या शक्ति ही जगत् में तारा नाम से ख्यात हैं। उनके जगत् में एकजटा, नीलवाणी अथवा सरस्वती आदि अनेक नाम हैं।।१-३।।

तन्त्रे—

लीलया वाक्प्रदा चेति तेन लीलसरस्वती।
विदिता नीलवर्णत्वात् तथा नीलसरस्वती ॥४॥
प्रधानैकजटा यस्मात् तस्मादेकजटा शिवा।
तारकत्वात् सदा तारा सुखमोक्षप्रदायिनी ॥५॥
उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्त्तिता।
एवं निगदिता विद्या तारिणी सर्वसिद्धिदा ॥६॥

वे लीला से वाक् प्रदान करती हैं; अतएव लीलसरस्वती हैं। वे नील वर्ण कही जाने के कारण नीलसरस्वती हैं। एक जटा-प्रधान होने से वे एकजटा हैं। सुख और मोक्ष देने वाली होने के कारण त्राण करने वाली होने से वे ही तारा हैं। आपत्ति से उग्र आपत्ति से भी त्राण प्रदान करने वाली होने के कारण वे उग्रतारा हैं। सर्वसिद्धि देने वाली यह तारिणी विद्या सर्वसिद्धिदा है।।४-६।।

शब्दब्रह्ममयीति शब्दात्मकब्रह्मस्वरूपेत्यर्थः। तथा चोक्तं—शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथरम्यपदपाठवताञ्च साम्नाम्। देवी त्रयी भगवतीति देव्या स्तुतौ। त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कार स्वरात्मिकेत्यादौ च॥७॥

शब्दब्रह्ममयी—शब्दब्रह्मस्वरूपा। यह उपरोक्त संदर्भित श्लोकों से प्रकट है।।७।।

उच्यते सिद्धसारस्वते—

श्रीदेव्युवाच

भगवन् सर्वविद्यानां पारग त्वं महेश्वर।
वद चिन्मय विश्वान्तर्व्याप्तरश्मिकदम्बक ।।८।।
तन्नास्ति जगति चक्रे यत्तु वा गोचरं परम्।
अथ सर्वज्ञनामासि देवेषु सकलेष्वपि ।।९।।

यह सरस्वती नीलवर्णा कैसे हो गयी इसका उत्तर सिद्धसारस्वत में इस प्रकार दिया गया है। देवी कहती हैं—हे शंकर, हे भगवन्! आप सभी विद्या में पारङ्गत हैं। हे चिन्मय! हे विश्वान्तर्व्याप्त रश्मिकदम्बक! बोलिये। आपसे अगोचर वस्तु इस जगत् में नहीं है। सभी देवताओं में आप सर्वज्ञ कहे जाते हैं।।८-९।।

ख्यातो सर्वत्र लोकेऽस्मिन् धवला भारती शुभा।
न पीता न च वाऽश्वेता कथं नीला सरस्वती ।।१०।।
एतद् वक्तुं विस्तरेण देव देव त्वमर्हसि।
गायत्री चैव सावित्री सरस्वत्यापि शङ्कर! ।।११।।
प्रातर्मध्याह्नसमये रक्ता श्वेता च श्यामला।
सावित्रीहृदये प्रोक्ता सैवान्या वद् किं प्रभो ।।१२।।

इस लोक में शुभप्रदा भारती धवल कही गयी हैं। नीला नहीं है अथवा श्वेत से अतिरिक्त वर्ण की नहीं है। तब वे कैसे नीला सरस्वती हो गई? हे देवाधिदेव! यह आप ही कह सकते हैं। हे शङ्कर! गायत्री तथा सावित्री एवं सरस्वती प्रातःकाल रक्ता, मध्याह्न में श्वेता एवं श्यामला सावित्री के हृदय में कही गयी है। क्या वे कोई और हैं?।।१०-१२।।

महेश्वर उवाच

साधु त्वया पृष्टमिदं सम्यगेतद्विविच्यते।
पूर्वं देवासुरे युद्धे दानवा दितिजैः सह।
चक्रेण चक्रिणा छिन्नाः कान्दिशिकाः प्रदुद्रुवुः ।।१३।।

महेश्वर कहते हैं—साधु! तुमने अच्छा प्रश्न किया है। मैं इसे सम्यक् रूप से कहता हूँ। पूर्व में देवासुर युद्ध में दानवगण दितिपुत्रों के साथ को चक्रधारी विष्णु के चक्र से छिन्न होकर भय से यत्र-तत्र भाग गये।।१३।।

सम्भूय दुष्टदैत्याश्च समुद्रकुहरोदरे।
मन्त्रणां चक्रिरे पूर्वं देवानां परिभूतये ॥१४॥

दुष्ट दैत्य मिलकर समुद्र के अन्दर देवताओं को हराने के लिये उस समय मन्त्रणा करने लगे।।१४।।

वेदरूपा भगवती सर्वमन्त्रमयी हि सा।
तयैव सर्वविप्राणां यज्ञकाण्डः प्रवर्त्तते ॥१५॥
तेषु यज्ञेषु सम्भूतैर्हविर्भिः सबलाः सुराः।
अतो ह्यस्मान् प्रबाध्यन्ते वयञ्चाबलिनस्ततः ॥१६॥

दैत्य कहते हैं—वेदरूपी भगवती सर्वमन्त्रमयी हैं। उनके द्वारा ही विप्रगण का यज्ञकाण्ड प्रवर्त्तित होता है। उन यज्ञसम्भूत हविः से ही देवगण बलवान होते हैं। इसी हेतु हम देवताओं से पीड़ित हैं। अतः हम दुर्बल हैं।।१५-१६।।

इति तेषां वचः श्रुत्वा दीनानां दितिजन्मनाम्।
हयग्रीवः सोमकश्च निर्वेदं भृशमापतुः ॥१७॥

दीन दैत्यों के यह वचन सुनकर हयग्रीव तथा सोमक ने अत्यन्त निर्वेद अर्थात् विषण्णता प्राप्त की।।१७।।

तावुभौ भ्रातरौ दीप्तौ तुरङ्गग्रीवसोमकौ।
शब्दाकर्षणिकां देवीं समुद्दिश्य तपस्यताम् ॥१८॥

वे हयग्रीव तथा सोमक दोनों भ्राता दीप्त होकर शब्दाकर्षणी देवी को उद्देश्य करके तपस्या करने लगे।।१८।।

तयोर्घोरतपः प्रीता प्राहाकर्षणदेवता।
को वाऽतिवीर्यवानत्र वरः को वाऽभिवाञ्छितः ॥१९॥

उनकी घोर तपस्या से प्रसन्न होकर आकर्षण देवता ने कहा—यहाँ कौन अतिशक्तिवान है? तुम लोग क्या वर चाहते हो?।।१९।।

ताभ्यामुक्ता भगवती वरप्रार्थनहेतवे।
सर्वशब्दाकर्षणास्त्रभावाभ्यां दीयतामिति ॥२०॥

वरप्रार्थनार्थ भगवती ने उनसे इस प्रकार से कहा। उत्तर में दोनों भाईयों ने कहा 'हमें शब्दाकर्षण अस्त्र प्रदान करो'।।२०।।

तथाऽस्त्विति तया प्रोक्तौ दानवावतिगर्वितौ।
अस्यास्त्रस्य प्रभावेण भूलोकं समुपस्थितौ ॥२१॥

भगवती के तथास्तु कहने पर दोनों भ्राता इस अस्त्र के प्रभाव से गर्वित होकर भूलोक पर आये।।२१।।

सर्वांश्च कर्षतः शब्दान् मन्त्ररूपान् द्विजन्मनाम्।
सा शब्दरूपिणी देवी शुक्लरूपा सरस्वती ॥२२॥
मुखानि सर्वं विप्राणां त्यक्त्वासितवपुर्धरा।
आयत्ता दैत्यवरयोर्हस्तग्राहमुपागता ॥२३॥

उन्होंने द्विजों के मन्त्ररूप सभी शब्दों का आकर्षण कर लिया। वह शब्दरूपिणी शुक्ला सरस्वती सभी विप्रों के मुख को त्यागकर असित वर्ण की देह धारण करके दोनों दैत्यों के अधीन होकर उनके पास आ गईं।।२२-२३।।

क्रन्दन्तीं ताञ्च विवशां नीत्वा पातालगोलके।
हालाहलविषैः कुण्डं शुभ्रनीलाञ्जनप्रभैः ॥२४॥
तत्र तां विनिमाज्यैव बद्धां पन्नगरज्जुभिः।
पर्वतैर्निचितां कृत्वा पुनर्देवजिगीषया।
स्वर्गमासाद्य सेनाभिः प्रतुष्टुवतुराहवम् ॥२५॥

उन रोदनकारी विवशा सरस्वती को वे पाताललोक ले गये, जहाँ पातालगोलक हलाहल विष से भरा नीले काजल के जैसा एक कुण्ड है। वहाँ उनको साँप की डोरी से बाँधकर उस कुण्ड में नहलाकर पर्वत पर उनको रखकर पुनः स्वर्ग-जय की इच्छा से स्वर्ग में जाकर वहाँ के सेनापतियों से युद्ध आरम्भ कर दिया।।२४-२५।।

शब्दाकर्षणबाणेन दैत्यानां पृथिवीतले।
निःशब्दाश्चैव निर्मन्त्रा वेदविस्तारिणो द्विजाः ॥२६॥

धरती के द्विज इनके शब्दाकर्षण बाणों से निःशब्द तथा निर्मन्त्र हो गये, जो वेदों का विस्तार करते थे।।२६।।

मन्त्रविस्मरणेनैव यज्ञविद्या निरासिता।
तन्नाशतो हविर्भागवर्जिता बलहानितः।
निर्वीर्यास्त्रा निरुद्योगास्ताभ्यां देवा निराकृताः ॥२७॥

मन्त्र को भूल जाने के कारण यज्ञविद्या बन्द हो गयी। इससे देवता हवि से रहित होकर निर्बल होकर उद्योगहीन तथा दैत्यों से हार गये।।२७।।

इत्थं विद्राव्य विबुधान् तौ हयग्रीवसोमकौ।
विष्णुचक्राच्छङ्कितौ च समुद्रान्तर्गृहे स्थितौ ॥२८॥

इस प्रकार से दोनों दैत्यों ने देवताओं को पराजित करके विष्णु के चक्र के भय से समुद्र के मध्य चले गये।।२८।।

इत्थं सदा वेदमयी विकृष्टा वचःप्रसूः सर्वमनुस्वरूपा।
यज्ञप्रणाशाद् व्यथिता सुरेन्द्रास्तदा हरिं तुष्टुवुरादिदेवम्।।२९।।

इस प्रकार सर्वमन्त्ररूपा वाक्यप्रसविनी वेदमयी सरस्वती जब दोनों दैत्यों से आकृष्ट होकर (बद्ध होकर) बन्दी हो गईं, तब यज्ञ के नाश से व्यथित देवगण आदिदेव हरि का स्तवन करने लगे।।२९।।

श्रुत्वा वचः सोऽथ वरोरुमायो मायाविनौ तौ दितिजन्मवर्यौ।
वदेस्य चौरो मनसा विदित्वा चकार तस्य हरणाय यत्नम्।।३०।।

देवगण की स्तुति सुन मायाविनाशी हरि ने दोनों दैत्यों को वेदों के चोर मानकर वेदों के उद्धारार्थ यत्न किया।।३०।।

सहस्रदंष्ट्रस्य वृषस्य रूपं पाठीननाम्नः परमोऽथ विष्णुः।
रूपं गृहीत्वा भगवाननन्तो विवेश वेदोद्धरणाय सिन्धूम्।।३१।।

अनन्तर भगवान् अनन्त परमविष्णु ने पाठीन नामक सहस्रों दाँत वाले वृष का रूप धर कर वेदों के उद्धारार्थ समुद्र में प्रवेश किया।।३१।।

वदाहरूपेण यथा निमग्नां युगे युगे प्रोद्धृतवान् धरित्रीम्।
तथैव मत्स्याकृतिरम्बुजाक्षो विलोडयामास समुद्रपूरम्।।३२।।

कमलनयन श्रीहरि युग-युग में जैसे वाराहरूप धारण कर जलमग्न पृथ्वी का उद्धार करते हैं, वैसे ही उन्होंने मछली का रूप धारण करके समुद्र का आलोड़न करना प्रारम्भ किया।।३२।।

मत्स्यस्वरूपस्य हरेः शरीरादाविर्बभूवुश्च भुजाश्चतस्रः।
चक्रं तथा नन्दकशार्ङ्गचापौ कौमोदकीं हस्तचतुष्टयेन।।३३।।

उन मत्स्यरूपी हरि के शरीर से चार बाहु आविर्भूत हुये। उनमें चक्र, नन्दक, खड्ग, शार्ङ्ग धनुष तथा कौमोदकी गदा विराजमान थे।।३३।।

मत्स्यस्वरूपस्य जनार्दनस्य बभूव युद्धं शरदां सहस्रम्।
ततस्तु शब्दार्थविकर्षणास्त्रं निश्वासवातेन बलादगृह्णात्।।३४।।

उन सोमक तथा हयग्रीव से जनार्दन मत्स्यरूपी भगवान् ने एक हजार वर्ष तक युद्ध किया। तत्पश्चात् निश्वास वायु द्वारा बलपूर्वक शब्दार्थ विकर्षण अस्त्र को उन्होंने अपने पास खींच लिया।।३४।।

अपाकृतास्त्रौ हरिचक्रकृत्तौ कौमोदकीताड़नमूर्च्छितौ च ।
खड्गप्रहारात्पतितौ च नाशमुभौ हयग्रीवकसोमकाख्यौ ॥३५॥

दोनों इस प्रकार से अस्त्रहीन होकर हरि के चक्र द्वारा छिन्न एवं कौमोदकी गदा से ताड़ित तथा मूर्च्छित होकर तथा खड्ग के प्रहर से पतित होकर विनष्ट हो गये।।३५।।

अथाम्बुधेर्गर्भपुरान्तराले निवेशितां तां विषकुण्डमध्ये ।
मत्स्यस्वरूपी भगवाननन्तः प्रोद्धृत्य निश्वासनिरस्तपङ्कः ॥३६॥

अब मत्स्यरूपी भगवान् ने समुद्र के गर्भ में विषकुण्ड में स्थापिता उन सरस्वती का उद्धार करके अपने निश्वास से उनके शरीर पर लगे कीचड़ को दूर करके उन्हें पङ्कहीन बनाया।।३६।।

गरुत्मतालोकनशुद्ध्यमाने विषस्य कुण्डे विवशां शयानाम् ।
निरस्तचेष्टां निभृताङ्गयष्टिं निश्वासमात्रैकशवैकशेषाम् ॥३७॥
आश्वासयामास सुशीतवाक्यैर्हरिः स्मितं प्राह सरस्वतीं सः ।
त्रितारविद्यां प्रथमं जगाद समस्तमन्त्रप्रकरस्य मूलम् ॥३८॥

गरुड़ की दृष्टिमात्र से शुद्ध हुई विषकुण्ड में पड़ी विवशा चेष्टाशून्य अंगयष्टिधारिणी जिनके शरीर में केवल निश्वासमात्र बचा थी ऐसी शवरूपा सरस्वती को हरि ने मीठे वाक्यों से आश्वासन दिया तथा हंस कर इस प्रकार बोले। पहले कहा कि सभी मन्त्रों के मूल में त्रितारा को जानो।।३७-३८।।

तेनापि नो संविदमाप देवी प्रासाद मन्त्रं पुनरुज्जगाद ।
तेनापि नो संविदमाप देवी बीजत्रयीमभ्यदधन् मुकुन्दः ॥३९॥

इससे भी देवी को चैतन्य-लाभ नहीं हुआ। तब मुकुन्द ने प्रासादबीज का उच्चारण किया। इससे भी देवी को चैतन्यता प्राप्त नहीं हुई। तब मुकुन्द ने बीजत्रय का उच्चारण किया।।३९।।

तेनापि नो संविदमाप देवी वाचां त्रयीमभ्यदधन् महात्मा ।
तेनापि नो संविदमाप देवीं कामेश्वरी सोऽथ जगाद विष्णुः ॥४०॥

इससे भी सरस्वती को चेतना नहीं आई। तब मुकुन्द ने बीजत्रय का उच्चारण किया। इससे भी उनको चेतना न आने पर मुकुन्द ने वाक्यत्रय कहा।।४०।।

एवं षड़ाकारमनूप्रणीत्या संज्ञामवाप वचसां सवित्री ॥४१॥

इससे भी देवी की चेतना नहीं लौटी तब मुकुनद ने कामेश्वरी को कहा। इन छः प्रकार के मन्त्र से जननी सरस्वती को संज्ञालाभ हुआ।।४१।।

उत्थाप्य तां सस्मितमावभासे नीलासिजाता विषकुण्डमग्ना।
सर्वाङ्गपूर्णासितशोभिताङ्गी मया हतौ तेऽपि च शत्रुमुख्यौ ॥४२॥

विष्णु उन्हें विषकुण्ड से उठाकर हंसते हुये कहते हैं—तुम विषकुण्ड में मग्न होकर नीलवर्ण हो गयी हो। तुम्हारे सर्वाङ्गपूर्ण असित (जो श्वेत नहीं हैं) शोभा से तुम्हारे अंग शोभित हैं। वे शत्रुओं में मुख्य हयग्रीव तथा सोमक मेरे द्वारा मार दिये गये हैं।।४२।।

यथा पुरा सर्वमहीसुराणां मुखान्तरे जाग्रति बीजशङ्का।
यत्नं समुल्लासय देवताभ्य इत्यादिवाणीं हरिराह देवीम् ॥४३॥

पूर्व काल में जैसे ब्राह्मणों के मुख से निशंक (शब्द) जाग्रत हुआ था, देवताओं द्वारा किये गये उस यत्न को उल्लासित करो, इत्यादि बातें हरि ने देवी से कही।।४३।।

मत्स्यावतारेण सुरक्षिताऽहं त्वया भजस्वेह फलं समस्तम्।
किंस्त्विन्दुशोभाकृतिरप्यधीश नीलत्वमाप्तासि नितान्तनिन्द्यम् ॥४४॥

मत्स्यावतार में मैं आप द्वारा सुरक्षित हुई हूँ। इस लोक के समस्त फल प्राप्त हो। हे अधीश! चन्द्रमा के समान आकार (श्वेत) होकर भी मैं विषकुण्ड में पड़कर नितान्त निन्दनीय नीलवर्ण को प्राप्त हो गई हूँ।।४४।।

निवेशिताहं विषकुण्डमध्ये तद्येन दूरीभवति क्षणेन।
तथा कुरुस्व प्रथितैरुपायैरित्युक्त ईशोऽपि जगाद भूयः ॥४५॥

वह निन्दित वर्ण जैसे दूर हो, आप अपने उपाय द्वारा वह करिये। इस प्रकार कहने पर ईश्वर ने उनसे पुनः कहा।।४५।।

मा त्वं शुचो याहि वचः सवित्रि प्रागप्यपूर्वं शशिशुद्धवर्णा।
उग्रेण हालाहलदुर्विषेण नीलत्वमाप्तासि कुतोऽत्र दोषः ॥४६॥

तुम शोक न करो। हे वाक्यजननी, तुम पहले से भी अपूर्व चन्द्र के समान शुद्ध वर्ण प्राप्त हो जाओ। उग्र हलाहल के कारण तुम नील वर्णा हो गई हो। उसमें दोष कहाँ है?।।४६।।

नानाविधान्याभरणानि शोभां पुष्णन्ति नीले खलु देह एव।
नीला मृडानी जगतां सवित्री नीलश्च कण्ठो विषशासनस्य ॥४७॥

नाना प्रकार के आभरण देह के नीलवर्ण पर सम्यक् शोभित हैं। देह नील होने पर भी नील मृडानी जगत् उत्पन्न करने वाली है। विष से नीलकण्ठ भगवान् का भी कण्ठ नील है।।४७।।

नीलो महेन्द्रः सुरचक्रवर्त्ती नीला जगज्जीवनदाश्च मेघाः ।
नीलं नभः सर्वजनावकाशो नीलः कलङ्कः शशिदीप्तिहेतुः ॥४८॥

देवराज इन्द्र भी नील है, जगत् के जीवनदाता मेघ भी नील हैं। आकाश नील है। चन्द्र का गौरवरूप उसमें स्थित कलङ्क भी नील है, जो कि उसकी दीप्ति का कारण है।।४८।।

नीलोऽप्यहं सत्वगुणाश्रयश्च नीलस्य वर्णस्य कुतोऽस्ति दोषः ।
अशेषभूषामणिवेष्टिताढ्या विनाञ्जनेनाक्षि निवेशितेन ।
न रूपवत्यो न च वा युवत्यो विलासवत्यो नवयौवनाश्च ॥४९॥
अतश्च ते नीलसरस्वतीति ख्यातिर्भवित्री भुवनत्रयेऽपि ।
त्वमर्थमेव प्रहिता महार्हा षाट्कौशिकी बालमृगाक्षिविद्या ॥५०॥

मैं सत्वगुणाश्रय होकर भी नील हूँ। अत: नीलवर्ण में दोष कहाँ है? तुम नवयौवना नाना भूषण तथा मणिओं से आवेष्टित अंगों वाली हो। अञ्जन के विना कोई आँखों के निक्षेपमात्र से रूपवती नहीं हो जाती, युवती तथा विलासवती नवयौवना भी नहीं हो पाती। (अञ्जन के अभाव में शोभित नहीं होती, जबकि अञ्जन कृष्णवर्ण होता है)। इसलिये इस त्रिभुवन में तुम्हारी ख्याति नीलसरस्वती के रूप में होगी। मैंने तुम्हारे लिये ही महार्ह षाट्कौशिकी बालमृगाक्षि विद्या का प्रयोग किया है।।४९-५०।।

षट्कास्त्रयोगेन हि जीवितासि विनष्टचेष्टा विषकुण्डमध्ये ।
षाट्कौषिकस्तेन मनुर्भवत्याः प्रवर्त्तते सप्तदशद्वयार्णः ॥५१॥

तुम विषकुण्ड में निश्चेष्ट होकर छ: अस्त्रयोग से जीवित हुई हो। इसलिये तुम्हारा सप्तदशद्वय (३४ अक्षरों का) अक्षर मन्त्र षाट्कौषिक हो गया है।।५१।।

इत्यागमो नीलसरस्वती यो महेश्वरेण प्रतिपादनीयः ।
एतत्प्रभावाद् वचसां सवित्रि भविष्यसि त्वं द्रुतवाक्प्रदात्री ॥५२॥

नीलसरस्वती का यह आगम महेश्वर ने प्रतिपादित किया है। हे वाक्यजननी! इसके प्रभाव से तुम त्वरित रूप से वाक् देने वाली हो जाओगी।।५२।।

इत्थं समाश्वास्य वचोभिराद्यः पुमान् समादाय सरस्वतीं ताम् ।
प्रवर्त्तयामास मुखे द्विजानां पुनः सुरास्ते मख इत्यनाद्याः ॥५३॥

इस प्रकार वाक्यों से सरस्वती को आश्वस्त करके प्रथम पुरुष (हरि) ने सरस्वती को द्विजगण के मुख से प्रवर्त्तित किया। वे अनादि देवगण पुन: यज्ञ में प्रवृत्त हुये (अर्थात् उन्हें यज्ञभाग मिला)।।५३।।

ततः प्रभृत्येव जगत्प्रतीता श्रियःप्रदा नीलसरस्वतीति ।
नीलत्वहेतुः पुनरेवमुक्तः पुनस्तु शुश्रूषितमस्तु किं ते ।।५४।।

इस प्रकार सरस्वती कल्याण देने वाली नीलसरस्वती के नाम से जगत् में परिचित हो सकी हैं। महेश्वर द्वारा कथित नीलत्व का कारण इस प्रकार से कहा गया है। अब तुम क्या सुनना चाहती हो?।।५४।।

इति सारस्वताख्यानं ये पठन्ति स्मरन्ति वा ।
तेषां विषभयं शत्रुभयं नैव प्रवर्त्तते ।।५५।।

इति सिद्धसारस्वतवचनानि ।

इस प्रकार समाप्त होता है सरस्वती आख्यान। जो इसे पढ़ते अथवा स्मरण करते हैं उनको विषभय अथवा शत्रुभय नहीं होता। सिद्धसारस्वत का यह वचन है।।५५।।

ननु सरस्वत्या नीलत्वे तरुणशकलमिन्दोर्विभ्रति शुभ्रकान्तिरित्यादि ध्यानप्रमाणा शुक्लसरस्वतीदानीं दुर्लभेति चेत्। उच्यते, भगवती यया सरस्वतीमूर्त्या महाविष्णुमुपतस्थे सैव सरस्वतीमूर्त्तिरिदानीमपि शुक्लेति न विवादस्पर्शः। एवं सावित्रीरूपेण सरस्वती भूत्वा भगवती ब्रह्माणमुपास्ते, तदपि सरस्वत्याः प्रातर्मध्याह्ने सायाह्नेषु रूपभेदमादधद् रूपान्तरमेव। अतएव देव्याः स्तुतावुक्तम्—त्वं हि शीघ्रं हि सावित्रीत्यादि। अतएव तस्याः सर्वरूपाया मूलप्रकृतेर्लक्ष्मीरूपेण विष्णुपत्नीत्वमविरुद्धम्, उक्तञ्च लक्ष्मीरूपेण संस्थितेत्यादि। वस्तुतस्तु विष्णुप्रभृतीनामपि शिवांशतया पूर्वपक्षावकाशो नास्त्येव। तथा चोक्तं—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
ततः परशिवो देवि षट्शिवाः परिकीर्त्तिताः ।।५६।।

इस प्रकार से भगवती सावित्री की आकार (मूर्त्ति) में सरस्वती की उपासना ब्रह्मा ने किया था, वह भी शुक्ल रूप है। वही प्रत्येक मध्याह्न तथा सायाह्न में आकारभेद धारण करके रूपान्तर कर लेती हैं। इसी से भगवती की स्तुति में कहा जाता है कि तुम ही लक्ष्मी हो, तुम ही सावित्री हो इत्यादि। अतएव उन सर्वरूप का मूलप्रकृति का लक्ष्मी रूप से विष्णुपत्नित्व विरुद्ध बात नहीं है। इसी कारण कहते हैं कि वही देवी लक्ष्मीरूप से स्थित है। वास्तव में विष्णु आदि भी शिव के अंश हैं; अतः विरुद्ध पूर्वपक्ष के लिये यहाँ स्थान नहीं है। कहा भी गया है कि—हे देवि! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव तथा परशिव इन छः को शिव ही कहा जाता है।।५६।।

तत्र च विष्णुर्महाविष्णुर्नीलरूपः, रुद्रः शिवः, ईश्वरश्चतुर्भुजशुक्ल-नारायणमूर्त्तिः सदाशिवः पञ्चमुखोऽर्द्धनारीश्वरमूर्त्तिस्तत्र च प्रधानमध्य-मुखस्योद्र्ध्वं गौरमिति प्रसङ्गादुक्तम्॥५७॥

यहाँ विष्णु हैं महाविष्णु नीलरूप, रुद्र, शिव तथा ईश्वर चतुर्भुज शुक्ल नारायण मूर्त्ति हैं। सदाशिव पञ्च अर्द्धनारीश्वर मूर्त्ति हैं। उनके प्रधान मुख का अर्धभाग गौर है। यह प्रसङ्ग क्रम में कहा गया।।५७।।

ननु विष्णोरपि शिवत्वे हरेर्नाम न गृह्णीयादित्यादिवचनविरोध इति चेदुच्यते, यतो विष्णुरपि शिवांश एव, अतो विष्णुवैराग्यादिकं वामाचार-तयोच्यते। ततश्च वामाचारस्य वाचनिकतया न दोषः॥५८॥

विष्णु के शिव होने पर 'हरेर्नाम न गृह्णीयात्' इस वाक्य से विरोध होगा, यदि यह प्रश्न उठे तब इसका उत्तर है कि जिस कारण से विष्णु शिव के अंश हैं, इसलिये विष्णु के प्रति वैराग्य (अर्थात् उन्हें न वरण करना) वामाचार रूप से कहा गया (वामाचार में विष्णुपूजनादि नहीं है)। इसलिये यहाँ वामाचार को वाचनिक कहना होगा।।५८।।

यथा कालिकापुराणे—

श्मशानभैरवीं देवीमुग्रतारां तथैव च।
उच्छिष्टभैरवीं चण्डीं तारां त्रिपुरभैरवीम्।
एतास्तु वामभावेन पूज्या दक्षिणतां विना॥५९॥

कालिकापुराण में कहा भी है—श्मशानभैरवी देवी, उग्रतारा, उच्छिष्टभैरवी, चण्डी, तारा, त्रिपुरभैरवी इनका पूजन वामाचार से ही (विना दक्षिणाचार के) करना चाहिये।।५९।।

आद्यायाः शक्तेः प्रकृतिरूपायाः शिवेन सहैव पतिपत्नीभावः। शिवो जडः शक्तिः क्रियावती। तत् खलु जडः शिवः क्रियावत्या प्रकृत्या शक्तिरूपया सङ्गतः सर्वसंसारं तनुते। कोऽत्र संशयः?॥६०॥

प्रकृतिरूपा आद्या शक्ति के साथ शिव का पत्नी-पतिरूप सम्बन्ध है। शिव जड़ हैं, शक्ति क्रियावान है। इसलिये जड़ शिव शक्तिरूपी प्रकृति से मिलित होकर संसार का विस्तार करते हैं। इसमें संशय कहाँ है।।६०।।

अत एवोक्तम्—

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपाऽन्ते जगतोऽस्य जगन्मये॥६१॥

तभी तो कहा है—हे जगन्मये, इस विचित्र सृष्टि में तुम सृष्टि का कारण हो, पालन में स्थिति का कारण हो। इस जगत् के अन्त में तुम ही संहार का कारण हो।।६१।।

सृष्टिरूपेत्यादिषु कार्ये करणोपचारः। सृष्टिं रूपयति करोतीत्यादिको वाऽर्थः। उक्तञ्च श्रीमताचार्येण—

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।।६२।।

सृष्टिरूपा इत्यादि में कार्य में कारण का उपचार है। वे सृष्टि को रूपित करती हैं। श्रीमत् शंकराचार्य कहते हैं कि यदि शिव शक्ति से युक्त हैं, तभी वे प्रभु, जगत् कर्त्ता तथा नियन्ता हैं। यदि वे देव शक्ति से युक्त नहीं हैं, तब वे कुछ भी करने योग्य नहीं हैं।।६२।।

प्रकृतेः संसारकर्त्तृत्वे विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।।
इत्यादि ब्रह्मवाक्यादिरेव सुतरां प्रमाणमस्ति ।।६३।।

एतेन प्रकृतिद्वेषिणः षाषण्डाः परास्ताः। वेदमयमूर्त्ते प्रकृतेरस्या देव्या भैरवरूपिणा शिवेन सह पतिपत्नीभाव एव। विषकुण्डे नागाच्छादित-तयाऽस्या नागभूषा सम्मतैव।।६४।।

प्रकृति के संसारकर्त्तृत्व में 'विष्णुशरीरग्रहण' अर्थात् मैं ईशान ही विष्णु को शरीर ग्रहण कराता हूँ। अतः क्या मैं तुम्हारी स्तुति में समर्थ हूँ? अर्थात् भगवती की स्तुति में भी कोई समर्थ नहीं है। यह ब्रह्मा का वाक्य इसमें प्रमाण है। वेदमय मूर्त्ति यह प्रकृति ही भैरवरूपी शिव के साथ पति-पत्नीभाव में है। विषकुण्ड में नागों से आच्छादिता होने के कारण ही ये नागभूषा हैं। यही कथन समीचीन है।।६३-६४।।

यत्तु कालिकापुराणे पूर्वं शुम्भनिशुम्भोपद्रुता देवा हिमालये गत्वा गङ्गा-वतरणस्थले देवीं तुष्टुवुः। ततः स्तुता सा मातङ्गवनिता भूत्वा देवानपृच्छत् भवद्भिः का स्तूयते इति। ततस्तस्याः कायकोषतः समुद्भूताऽब्रवीत् मां स्तौतीति। या निःसृता सा गौराङ्गी, या प्राक्स्थिता सा कृष्णवर्णा कालिकाख्या भूत्वा हिमाचले स्थिता। तामुग्रतारां वदन्ति एकजटा-धारित्वादेकजटेति च।।६५।।

कालिकापुराण में कहते हैं कि पूर्वकाल में देवगण ने शुम्भ-निशुम्भ से पीड़ित

होकर हिमालय में गंगा के अवतरण स्थल में देवी की स्तुति किया था। तदनन्तर वे देवी मातङ्ग की पुत्री होकर देवगण से जिज्ञासा करती हैं कि आप लोग किसकी स्तुति कर रहे हैं। तदनन्तर उनके देहकोष से एक नारीमूर्त्ति आविर्भूत होकर कहती हैं— ये मेरी स्तुति कर रहे हैं। जो निकली थीं वे गौरवर्णा थीं। जो पूर्व में थीं, वे इस निष्क्रमण से कृष्णवर्णा कालिका होकर हिमालय में स्थित हैं। वे ही उग्रतारा हैं, शिर पर एक जटा वाली होकर एकजटा हैं।।६५।।

एवं प्रस्तावानन्तरं ध्यानमुक्तं यथा—

चतुर्भुजा कृष्णवर्णा मुण्डमालाविभूषिता।
खड्गं दक्षिणपाणिभ्यां विभ्रतीन्दीवरद्वयम् ॥६६॥
कर्त्रीञ्च खर्परञ्चैव क्रमाद् वामेना विभ्रती।
द्यां लिखन्तीं जटामेकां विभ्रती शिरसा द्वयीम् ॥६७॥
मुण्डमालां परां शीर्षे ग्रीवायामपि सर्वदा।
वक्षसा नागहारन्तु विभ्रती रक्तलोचना ॥६८॥
कृष्णवस्त्रधरा कट्यां व्याघ्राजिनसमन्विता।
वामपादं शवहृदि संस्थाप्य दक्षिणं पदम् ॥६९॥
विन्यस्य सिंहपृष्ठे तु लेलिहाना शवं स्वयम्।
साट्टहासा महाघोररावयुक्तातिभीषणा।
चिन्त्योग्रतारा सततं भक्तिमद्भिः सुखेप्सुभिः ॥७०॥

चतुर्भुजा, कृष्णवर्णा, मुण्डमाला-विभूषिता, दक्षिण हस्तद्वय में खड्ग, दो कमलधारिणी, वाम हस्तद्वय में कैंची तथा खर्पर-धारिणी, आकाश में उठी एकजटा, मस्तक पर एकजटा के अगल-बगल दो जटाधारिणी, रक्तलोचना, रक्त वस्त्रधारिणी, कमर में व्याघ्र चर्ममण्डिता, शव पर दाहिना पैर रखकर सिंह की पीठ पर अन्य पैर का विन्यास करके स्वयं आसव चाटने वाली, अट्टहास्युता, महानाद करने वाली, अतिभीषण उग्रतारा भक्तियुक्त सुखकामी के लिये चिन्तनीया हैं।।६६-७०।।

अस्याः सख्यस्तु तत्रैवोक्ताः। यथा—

महाकाल्यथ रुद्राणी उग्रा भीमा तथैव च।
घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिश्च भैरवी ॥७१॥ इति।

इनकी सखियाँ भी वहीं कही गयी हैं। ये हैं—महाकाली, रुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्रि तथा भैरवी।।७१।।

तत्तु तदानीमपि तस्या रूपान्तरेणाविर्भावान्तरस्वीकारादविरुद्धम्। अन्यथा

वर्णवैजातस्य परिधानवैजातस्य चरणविन्यासवैजातस्य वाहनवैजातस्य च सत्वाद् विभिन्नयोः पौराणिकागमिकध्यानयोर्ध्येयरूपस्याविर्भावैक-विषयत्वे विरोधस्य दुरुद्धरतापत्तेः॥७२॥

किन्तु तब भी उनके रूपान्तर के आविर्भावान्तर को स्वीकार करना विरुद्ध नहीं होगा। अन्यथा वर्णवैजात्य, परिधान का वैजात्य, चरणविन्यास का वैजात्य रहने से पौराणिक तथा आगमिक ध्यानों का ध्येय रूप एक ही आविर्भाव-विषयक (अर्थात् उनके अन्य आविर्भाव को न मानने से) होने के कारण विरोध दुर्धर हो जायेगा।।७२।।

यच्चोक्तं श्रीमता शङ्कराचार्येण—शवं वामपादेन कण्ठे निपीड्य स्थितां दक्षिणेनाङ्घ्रिणाङ्घ्रीं निपीड्येति चरणविन्यासवैजात्यं, तत् किल कालिकापुराणध्यानानुसारेणेति सर्वमनाकुलम् । सर्वासां देवीनां महाभैरव-रूपी शिव एव साधकः॥७३॥

जैसा श्रीमान् शंकराचार्य का कथन है कि शव के कण्ठ को अपने वाम पैर से दबाकर इत्यादि वाक्य से चरणविन्यास का वैजात्य प्रदर्शित होता है वह कालिकापुराणोक्त ध्यानानुसार कहा जाने के कारण समस्त ही अविरुद्ध है। सभी देवीगण का महाभैरवरूपी शिव ही साधक है।।७३।।

यथा कालिकापुराणे—

एषा च त्रिपुरा देवी यश्चान्याः पूर्वभाषिताः ।
सर्वास्तु माया भैरव्या योगनिद्रा जगत्प्रसूः ।
तस्याः प्रपञ्चरूपैस्तु बहुभिः क्रीड़ति प्रभुः ॥७४॥

जैसे कि कालिकापुराण में कहा भी है—यह त्रिपुरादेवी तथा पहले कही गयी समस्त देवीगण सभी भैरवी माया हैं। जगत् प्रसविनी माया जगत् की शासिका योगनिद्रा अपने विभिन्न प्रपञ्च रूपों द्वारा क्रीडा करती हैं।।७४।।

तत्रैव—

शिव उवाच

महामाया मूलभूता ततस्तु शारदा परा ।
उमा ततः शैलपुत्री मत्प्रियास्तु तास्त्विमाः ॥७५॥
उग्रचण्डा प्रचण्डाद्यास्त्रिपुराद्यास्तथैव च ।
तासाञ्चापि मदेवाहं महाभैरवरूपधृक् ।
नायकः सुतरां ताभिर्नित्यनित्यं रमे बुधः ॥७६॥

वहाँ शिव कहते हैं—महामाया मूलभूता हैं। उनके अपर रूप हैं—शारदा, उमा तथा शैलपुत्री। मेरी प्रिया के उग्रचण्डा, प्रचण्डा, त्रिपुरादि अनेक अपर रूप हैं। अत: मैं महाभैरव रूपधारी उन सभी रूपों का सर्वदा नायक हूँ। पण्डित साधक इन रूपसमूहों द्वारा आनन्दित होते हैं।।७५-७६।।

यथेष्टमांसमत्स्यादिभोजनाय मया धृतः ।
महाभैरवरूपोऽयं तथा स्त्रीरतिसङ्गमे ।।७७।।

इति प्रसङ्गादुक्तम्।

यथेष्ट मांस-मत्स्यादि के भोजनार्थ मैंने यह महाभैरव-मूर्त्ति धारण किया है। इसी प्रकार रतिसंगम में स्त्रीरूप धारण करता हूँ।।७७।।

एतस्या: खलु सर्वाराध्याया: प्रधानं नामत्रयम्। एकजटोग्रतारा नील-सरस्वतीति मन्त्रभेदात्। तत्र प्रकृतिरूपैकजटैव। लीलया वाक्प्रदा चेति तेन लीलसरस्वतीति वचनात् लीलसरस्वतीति यवर्गतृतीयादिना। सापि मन्त्रभेदे। तदर्थश्च सरस्वतीपदेन वाक्दात्री उच्यते। तथा च नीलया सरस्वतीति तत्पदसिद्धिः। तन्नाम्नो यवर्गतृतीयादित्वे प्रमाणन्तु दशाक्षरी विद्या।।७८।।

इन महाभैरवी के प्रधान तीन नाम हैं—एकजटा, उग्रतारा तथा नीलसरस्वती। इनमें एकजटा ही प्रकृतिरूपा हैं। लीला से वाक् प्रदान करने के कारण इनका एक नाम है—लीलसरस्वती। इस वचन के अनुसार यवर्ग के तृतीय अक्षर 'ल' वर्ण द्वारा ये हैं—लीलसरस्वती। इसमें भी मन्त्रभेद है। सरस्वती पद द्वारा यह वाक्प्रदात्री कही जाती है। लीला से सरस्वती वाक् देती है, अतएव लीलसरस्वती पद सिद्ध होता है। इनके नाम का आदि वर्ण यवर्ग का तृतीय वर्ण 'ल' है, इसीलिये इनका प्रमाण है दशाक्षरी विद्या।।७८।।

यथा तदीयकवचे—

इन्द्रो वामाक्षियुक् पृथ्वी सरस्वत्यनलप्रिया ।
कूर्चाद्यन्ता पातु चोदर्ध्वं मूलविद्या दशाक्षरी ।।७९।। इति ।

वामाक्षि (ई) से युक्त इन्द्र (ल), पृथ्वी (ल), सरस्वती, अनलप्रिया (स्वाहा) तथा कूर्चबीज आदि तथा अन्त दोनों में (हुं)। इस प्रकार से यह दशाक्षरी मूलविद्या तुम्हारी ऊर्ध्वदेश में रक्षा करे। मन्त्र है—हुं लीलसरस्वती स्वाहा हुं।।७९।।

तत्र इन्द्रो यवर्गतृतीयवर्ण:। वामाक्षि चतुर्थस्वर:। पृथ्वी यवर्गतृतीय:। सरस्वति इति सम्बुध्यन्तपदरूपम्। अनलप्रिया स्वाहा। आदावन्ते च

कूर्चम्। एवं महानीलसरस्वतीति चापरनाम। तथा तारादि नामभेदेन भेदाष्टक-मपरमपि मन्त्रभेदाद् वक्ष्यत इति तत्त्वम्॥८०॥

श्लोक में इन्द्र = ल। वामाक्षि = ई। पृथ्वी = ल। सरस्वति यह सम्वोधन यथावत् रहेगा। अनलप्रिया = स्वाहा। पहले तथा अन्त में कूर्चबीज (हुं)। इस प्रकार नील-सरस्वती एक अन्य नाम है।

इसी प्रकार से मन्त्रभेद के कारण तारादि नामभेद से अन्य आठ भेद हैं, जिन्हें आगे बताया जायेगा। यही तत्त्व है।।८०।।

अथ प्रभेदान् वक्ष्यामि तारिण्याः सर्वसिद्धिदान्।
यान् विज्ञाय महात्मानं सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥८१॥

महात्मागण जिस मन्त्रसमूह को जानकर समस्त ऐश्वर्यलाभ करते हैं, मैं तारिणी के उन सर्वसिद्धिप्रद मन्त्रों को कहता हूँ।।८१।।

इयं त्रयोदशभेदवती एकजटोग्रतारानीलसरस्वतीलीलसरस्वतीमहानील-सरस्वतीतारोग्रामहोग्रावज्रानीलासरस्वतीकामेश्वरीभद्रकालीभेदात्। तत्र प्रकृतिरूपतया प्रथममेकजटामन्त्रो निरूप्यते॥१॥

यह तारिणी एकजटा, उग्रतारा, नीलसरस्वती, लीलसरस्वती, महानीलसरस्वती, तारा, उग्रा, महोग्रा, वज्रा, नीला, सरस्वती, कामेश्वरी, भद्रकाली के भेद से १३ प्रकार की हैं। उसमें एकजटा प्रकृति हैं, अतएव उनका मन्त्र पहले कहा जा रहा है।।१।।

यथा मत्स्यसूक्ते—

मायाबीजं समुद्धृत्य तकारं वह्निसंयुतम्।
मायाविन्द्वीश्वरयुतं द्वितीयं बीजमुद्धरेत् ॥२॥

जैसे मत्स्यसूक्त में कहा है—मायाबीज (ह्रीं) का उद्धार करके वह्नि (र) संयुक्त तकार को माया (ई) तथा नाद-बिन्दु से युक्त करके द्वितीय बीज (त्रीं) का उद्धार करना चाहिये।।२।।

कूर्चबीजं तृतीयञ्च फट्कारस्तदनन्तरम्।
सम्पूर्णः सिद्धमन्त्रस्तु रश्मिपञ्चकसंयुतः ॥३॥

कूर्चवीज (हुं) तृतीय बीज है, तदनन्तर फट्। अब मन्त्रोद्धार होता है—ह्रीं त्रीं हुं फट्। रश्मिपञ्चक (वर्णपञ्चक) युक्त सभी मन्त्र सिद्ध मन्त्र हैं।।३।।

मायाबीजं लज्जाबीजम्। माया चतुर्थस्वरः। ईश्वरो नादः। कूर्चबीजं षष्ठस्वरनादबिन्दुमान् हकारः। एतस्य नामान्तरं उगदर्पः दीर्घतनुच्छद-

मित्यादि। एतेन सामान्यतः कवचपदेन पञ्चमस्वरनादबिन्दुमान् हकार उच्यते। अतएव कवचाय हुमित्येव न्यासे ह्रस्वान्तनिर्देशः क्रियते। 'कवचं मूलबीजाद्यं तदन्ते भुवनेश्वरी'त्यत्र दीर्घपदं कवचमायाञ्च सम्बुध्यन्त-पदद्वयमित्यत्र च श्यामामन्त्रोद्धारे कवचपदं दीर्घकवचपदं कालीमायो-भयसाहचर्यादित्युक्तम्।।४।।

मायाबीज = लज्जाबीज = ह्रीं। माया = चतुर्थस्वर ई। ईश्वर = नाद। कूर्चबीज = हुं। इसका नामान्तर है—उग्रदर्प, दीर्घकवच, दीर्घतनुच्छद इत्यादि।

सामान्यतः कवच पद से पञ्चम स्वर तथा नाद-बिन्दुयुक्त हकार (हुं) कहा जाता है। इसीलिये न्यास में 'कवचाय हुं' इस प्रकार ह्रस्व स्वर का निर्देश किया जाता है। 'कवचं मूलबीजाद्यं तदन्ते भुवनेश्वरी' यहाँ भी श्यामा के मन्त्रोद्धार में कवच पद में काली तथा माया दोनों के साहचर्यवशात् दीर्घ कवच तात्पर्य है अर्थात् (हूं)। (जहाँ क्लीं तथा ह्रीं एक साथ हो वहाँ 'हुं' नहीं लगता; अपितु 'हूं' लगेगा) यह पहले कहा जा चुका है।।४।।

यत्तु 'कालीबीजद्वयं देवि दीर्घहुङ्कारमेव चे'त्यत्र दीर्घपदं, तत् स्वरूपा-ख्यानपरमेवेति ध्येयम्। सुव्यक्तं तन्त्रान्तरे—शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमिरितमित्यत्र कवचस्य ह्रस्वमध्यत्वम्। सिद्धसारस्वतेऽपिविष्णुवाग्रूपिणीं प्रोच्य कवचाय हुमुच्चरेदित्युक्तम्।

न च तारिण्यष्टकमन्त्रोद्धारे मध्यादिमायाकवचमित्यादौ ह्रस्ववद्रूपग्रहण-मस्त्विति वाच्यम्। तत्र सार्द्धचतुरक्षरमन्त्रस्य प्रकृतित्वेन तत्र च ह्रस्वा-प्रसक्त्या कवचपदस्य दीर्घकवचपरत्वादिति।।५।।

'कालीबीजद्वयं' यहाँ पर जो दीर्घ पद कहा गया है, उसके स्वरूपकथन का तात्पर्य समझना होगा। तन्त्रान्तर में स्पष्टतः कहा है कि 'शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम्' यहाँ कवच है—ह्रस्वमध्य।

सिद्धसारस्वत में भी यही कहा गया है। तारिणी के आठ मन्त्रों के उद्धार में 'मध्यादि माया कवचं' इत्यादि स्थल पर ह्रस्व-विशिष्ट (हुं) रूप को ग्रहण करना होगा, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि सार्ध चतुरक्षर (४.५ अक्षर) मन्त्र प्रकृति कहकर वहाँ ह्रस्व की प्रसक्ति न रहने के कारण कवच पद से दीर्घ कवच का तात्पर्य गृहीत होगा।।५।।

फट्कारष्टकारान्तः। रश्मिपञ्चकपदेनात्र वर्णपञ्चकमुच्यते। केचित तु रश्मिपञ्चकपदेनात्र प्रणव उच्यते। तस्याकारोकारमकारनादबिन्दुरूप-

वर्णपञ्चकमयत्वात्। तेन प्रणवादिमन्त्रोद्धारोऽयमित्याहुः। तत्तु न युज्यते 'एषैव हि महाविद्या मायाद्या सकलेष्टदे'त्यादि वचनविरोधात्। अत्र मध्यमबीजे गुप्तामृतबीजमस्ति॥६॥

फट्कार टकारान्त है। यहाँ रश्मिपञ्चक शब्द से वर्णपञ्चक को कहा जाता है। किसी का मत है कि यहाँ रश्मिपञ्चक पद से प्रणव का तात्पर्य है। क्योंकि वह अ, ऊ, म तथा नाद एवं बिन्दुरूप होने से वर्णपञ्चकमय है। किन्तु यह उचित नहीं है। क्योंकि यह 'मायाद्य विद्या सर्व अभिलषित देने वाली है' इस वचन से उसका विरोध होगा, क्योंकि यहाँ कहा गया है कि मन्त्र के प्रारम्भ में माया (ह्रीं) हो। प्रणव का उल्लेख नहीं है। इस महाविद्या के मध्यम बीज में गुप्त अमृतबीज (स) है।।६।।

तत्र कारणमाह तारार्णवे—

वशिष्ठाराधिता विद्या न तु शीघ्रफला यतः।
अतस्तेनापि मुनिना शापो दत्तः सुदारुणः।
ततः प्रभृति विद्येयं फलदात्री न कस्यचित्॥७॥

उसका कारण तारार्णव ग्रन्थ में मिलता है। कहा है कि यह विद्या वशिष्ठ से आराधिता होकर शीघ्र फलप्रदा नहीं हो सकी, इसीलिये उन मुनि ने इस विद्या को दारुण शाप दे दिया। अतः यह विद्या किसी को भी फल नहीं देती।।७।।

शापोद्धारमाह तत्रैव—

चन्द्रबीजं त्रयान्तस्थबीजोपरि नियोजितम्।
ततः प्रभृति विद्येयं वधूरिव यशस्विनी।
फलिनी सर्वविद्यानां जयिनि जयकाङ्क्षिणाम्॥८॥

तारार्णव में ही शापोद्धार भी कहा है। भुवनेशी बीज के अन्तः में स्थित त्रीं बीज के ऊपर चन्द्रबीज लगावे (स्त्रीं)। इससे यह विद्या वधू के समान यशस्विनी, सर्वफलदात्री होती है एवं जय चाहने वालों को जय प्रदान करती है।।८।।

विषक्षयकरी विद्या अमृतत्त्वप्रदायिनी।
मन्त्रस्य ज्ञानमात्रेण विजयी भुवि जायते॥९॥

यह विद्या विष का नाश करने वाली तथा अमृतत्त्व देने वाली है। इस मन्त्र के जानने मात्र से व्यक्ति भूमण्डल में विजयी हो जाता है।।९।।

तेन पञ्चाक्षरविद्याया अभिशप्ताया उद्धृतशापत्वात् तद्घटितयावन्मन्त्रेष्वेव शापोद्धारः स्फुटः॥१०॥

इसलिये इस पञ्चाक्षर विद्या का जो शापोद्धार है, वह सभी मन्त्रों का शापोद्धार होता है।।१०।।

तथा चैकवीराकल्पे—

लज्जाबीजं वधूबीजं कूर्चबीजं तथा हि फट्।
एवं पञ्चाक्षरी विद्या पञ्चभूतप्रकाशिनी ॥११॥

एकवीराकल्प में कहा है कि लज्जाबीज (ह्रीं) वधूबीज (स्त्रीं) कूर्चबीज (हुं) तथा फट्, यह पञ्चाक्षरी विद्या पञ्चभूत-प्रकाशिनी है। विद्या है—ह्रीं स्त्रीं हुं फट्।।११।।

तथा च विश्वसारे—

सतरीञ्च महेशानि वधूबीजं प्रकीर्त्तितम् ॥१२॥

वधूबीज 'स्त्रीकार' है। विश्वसारतन्त्र में कहा है कि स त् रीं अर्थात् स्त्रीं वधूबीज कहा गया है।।१२।।

एकवीराकल्पे—

षोडशव्यञ्जनं वह्निवामाक्षिबिन्दुसंयुतम्।
चन्द्रबीजसमारूढं वधूबीजं प्रकीर्त्तितम् ॥१३॥

एकवीराकल्प में भी कहते हैं कि षोडश व्यञ्जन (त) वह्नि (र) वामाक्षि (ई) तथा बिन्दु चन्द्रबीज (स) पर समारूढ़ होकर वधूबीज कहा गया है।।१३।।

चन्द्रबीजं दन्त्यसकारस्तेनारूढ़मित्यर्थः। अतएव पञ्चाक्षरीघटित यावन्मन्त्राणामुद्धृतशापत्वान्नीलतन्त्रवचनमप्युपपद्यते। यथा—

ताराद्या पञ्चवर्णेयं श्रीमल्लीलसरस्वती।
सर्वभाषामयी शुद्धा सर्वाम्नायैर्नमस्कृता ॥१४॥

चन्द्रबीज = दन्त्य सकार अर्थात् 'स'। उस पर आरूढ़ यह अर्थ है। अतः पञ्चाक्षरी घटित समस्त मन्त्रों का (अर्थात् सभी पञ्चाक्षरी का) शापोद्धार हो गया—यह नीलतन्त्र का वचन है। जैसे—तारादि पञ्चाक्षरी हैं श्रीमन् नीलसरस्वती। ये सर्वभाषामयी, शुद्धा तथा सभी आम्नाय वालों द्वारा नमस्कृता हैं।।१४।।

लीलसरस्वतीत्यत्र यवर्गतृतीयादिनामनिर्देशः। प्रणवादिमन्त्रस्य उग्रतारात्मकत्वात् नीलसरस्वत्यनात्मकत्वाच्च। यथा वीरतन्त्रे—

अस्त्रान्तेयं महाविद्या जटापुङ्गवधारिणी।
वेदादिमुखयुक्ता चेत् ताराभुवनतारिणी ॥१५॥

जटापुङ्गवः जटाश्रेष्ठः वेदादिप्रणवः।

लीलसरस्वती, यहाँ यवर्ग के तृतीय 'ल' से नामनिर्देश हुआ है। प्रणवादि मन्त्र उग्रतारास्वरूप हैं, (जिनमें ॐ पहले लगा है) वे नील सरस्वती स्वरूप नहीं हैं। जैसा कि वीरतन्त्र में कहा है कि 'फट्' से अन्त होने वाली यह महाविद्या जटापुंगव-धारिणी है। यदि मन्त्र के आगे 'ॐ' लगा हो, तब वे भुवनतारिणी तारा हो जाती हैं।।१५।।

तन्त्रे—

तारास्त्ररहिता त्र्यर्णा महानीलसरस्वती।
कुल्लुकेयं समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।।१६।।

तन्त्र में कहते हैं कि तार (ॐ) तथा अस्त्र (फट्) से रहित तीन अक्षरों वाला मन्त्र महानील सरस्वती हैं। ये कुल्लुका नाम से जानी जाती हैं तथा समस्त तन्त्रों में गुप्त हैं।।१६।।

तथा च कुल्लुकैव नीलसरस्वतीत्युच्यते। एतत् सुव्यक्तं कालीकवचान्तरे—

जिह्वां मे सर्वदा पातु तारा संसारतारिणी।
वेदादिबीजलज्जा ह्रीं कवचास्त्रस्वरूपिणी ।।१७।।

यह कुल्लुका ही नीलसरस्वती कही जाती हैं। कालीकवच में इसे सुस्पष्ट रूप से कहा है कि वेद का आदिबीज (ॐ) लज्जा (ह्रीं) स्त्रीं, कवच (हुं) तथा अस्त्र (फट्) स्वरूपिणी संसारतारिणी तारा हमारी जिह्वा की सदा रक्षा करें।।१७।।

नीलसरस्वती पातु मध्यं मे सर्वदेव हि।
माया स्त्रीं कवचरूपा वागीशत्वप्रदायिनी।
नाभिं पायादेकजटा भुवनेशी त्रीं वर्मास्त्रा ।।१८।। इति।

अत्र शापोद्धाररहितनिर्देशः।

माया तथा त्रीं कवचरूपा वागीशत्व देने वाली नीलसरस्वती हमारे मध्यदेह की सदा रक्षा करें। भुवनेशी, त्रीं, वर्म (हुं) फट् रूपा एकजटा हमारे नाभि की रक्षा करें। यहाँ पर शापोद्धार से रहित बीज का निर्देश है।।१८।।

प्रचण्डचण्डिकाकवचेऽपि—

तारो माया वधूः कूर्चः फट्कारोऽयं महामनुः।
खड्गकर्त्रीधरा तारा चोर्द्ध्वदेशं सदावतु ।।१९।।
ह्रीं स्त्रीं हुं फट् पाताले मां पातु चैकजटा सती।
तारास्त्ररहिता सा तु खेऽव्यान्नीलसरस्वती ।।२०।। इति।

प्रचण्डचण्डिका कवच में भी कहा गया है कि तार, माया, वधू, कूर्च तथा फट् यह महामन्त्र खड्ग तथा कैंची-धारिणी तारा का है। यह सदा ऊर्ध्व देश में रक्षा करें। (ॐ ह्रीं स्त्रीं हु फट् यह मन्त्रोद्धार है)। 'ह्रीं स्त्रीं हु फट्' इस मन्त्र से एकजटा पाताल में मेरी रक्षा करें। तार (ॐ) तथा फट् से रहित (जिनके मन्त्र में ॐ तथा फट् नहीं लगा है) ऐसी नीलसरस्वती मेरी रक्षा करें। (इससे प्रमाणित होता है कि नीलसरस्वती मन्त्र ॐ तथा फट् से रहित है)।।१९-२०।।

एतेन मायावधूकवचैर्नीलसरस्वती। अस्त्रास्तैस्तैरेकजटा प्रणवाद्यैर-स्त्रास्तैस्तैरुग्रतारेति विषयविभागः। ननु प्रागुक्तनीलतन्त्रोक्त'ताराद्या पञ्च-वर्णेय'मित्यादि वचनोक्तप्रणवादिमन्त्रस्य वधूबीजघटितत्त्वे किं मानमिति चेदुच्यते॥२१॥

इससे यह विषय-विभाग होता है कि माया (ह्रीं) वधू (स्त्रीं) तथा कवच (हुं) द्वारा नीलसरस्वती हैं (ह्रीं स्त्रीं हुं)। एकजटा 'ह्रीं स्त्रीं हुं फट्' से हैं तथा तारा 'ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं फट्' से हैं।

प्रश्न होता है कि इसका प्रमाण क्या है कि नीलतन्त्रोक्त 'ताराद्या पञ्चवर्णेयम्' के अनुसार प्रणवादि मन्त्र वधूबीज-घटित हैं? इसका उत्तर दिया जाता है।।२१।।

यथा मन्त्रचूड़ामणौ—

अनुत्तरं समुद्धृत्य मायोत्तरमतः परम्।
पपञ्चमसमारूढं पञ्चरश्मि प्रकीर्त्तितः॥२२॥
जीवनीमध्यगा पश्चादेकाक्षी तदनन्तरम्।
उग्रदर्पं ततो दद्यादस्त्रं देवि प्रकाशितम्॥२३॥

मन्त्रचूड़ामणि ग्रन्थ में लिखा है कि अनुत्तर (अ) का उद्धार करके तदनन्तर माया (ई) उत्तर वर्ण उकार 'प'वर्ग के पञ्चम वर्ण म पर आरूढ़ होकर पञ्चरश्मि के नाम से प्रसिद्ध है।

हे देवि! ॐ के पश्चात् जीवनी मध्यगा (ह्रीं) तथा एकाक्षी (स्त्रीं) तदनन्तर हुं लगाये। आन्त में 'फट्' रहे। इससे मन्त्र का आविर्भाव होता है।।२२-२३।।

अस्यार्थः—अनुत्तरं सर्वपूर्वमकारमित्यर्थः। माया चतुर्थस्वरस्तदुत्तर-मुकारः, पपञ्चमो मकारः। जीवनीमध्यगापदेन मायाबीजमुच्यते॥२४॥

इस श्लोक का अर्थ है—अनुत्तर = सर्ववर्ण के पूर्व का अ। माया = चतुर्थ स्वर ई। उसके उत्तर में वर्ण उ। पपञ्चम = म। इससे पञ्चरश्मि पद से प्रणव कहा गया। जीवनीमध्यगा = मायाबीज ह्रीं।।२४।।

यत्तु सङ्केतचन्द्रोदये—

हृल्लेखा भुवनेश्वरी च भुवना देवीश्वरी ह्रीर्महा।
माया जीवनमध्यगा त्रिजगतां धात्री परेशी परा॥२५॥

सङ्केतचन्द्रोदय ग्रन्थ में कहा है कि मायाबीज (ह्रीं) के अन्य वाचक हैं— हृल्लेखा, भुवनेश्वरी, भुवना, देवी, ईश्वरी, ह्रीं, महामाया, जीवनमध्यगा, त्रिजगत् धात्री, परेशी, परा।।२५।।

महामायेति मायेत्यप्युच्यते। जीवनमध्यगेति जीवनस्य जीवन्यासमन्त्रस्य पाशादित्र्यक्षरस्य मध्यगेत्यर्थः। जीवनीत्यत्र विद्या विशेष्या। एवं परापदेन क्वचित् सौरिति बीजमप्युच्यते, बालायाः पराबीजत्वात् सङ्केतान्तरसत्वाच्चेति ध्येयम्। एकाक्षी वधूबीजम्। यथा सङ्केतचन्द्रोदये—एकाक्षी कुसुमेषु पञ्चमवधूर्वामेक्षणा स्त्री तथेति। उग्रदर्पः कूर्चम्। एतेन प्रणवादिमन्त्रस्य वधूघटितत्वं सिद्धिमिति सर्वत्र शापोद्धारः॥२६॥

महामाया इस माया नाम से कही गयी है। जीवनमध्यगा = जीवन्यास मन्त्र के तीन अक्षरों में मध्य वाली (आं ह्रीं क्रों)। (यहाँ मध्य में ह्रीं है)। यहाँ जीवनी पद से विद्याविशेष का तात्पर्य है। इसी प्रकार 'परा' पद से कहीं-कहीं 'सौः' बीज कहा गया है। क्योंकि बाला पराबीज है तथा उसके अन्य संकेत भी हैं।

एकाक्षी = वधूबीज स्त्रीं। जैसाकि सङ्केत चन्द्रोदय में कहा है कि एकाक्षी कुसुमेषु पञ्चमवधूवामेक्षणा = यह 'स्त्रीं' मन्त्र का वाचक है। उग्रदर्पः अर्थात् हुं। इसके द्वारा प्रणव से प्रारम्भ होने वाले मन्त्रों का वधूघटितत्त्व सिद्ध हो जाने से सर्वत्र शापोद्धार हो जाता है।।२६।।

यत्तु फेत्कारीये—

त्र्यक्षरोऽसौ महामन्त्रः फट्कारोऽन्ते यदि स्थितः।
पञ्चरश्मिसमायुक्तोऽप्यज्ञानेन्धनदाहकः ॥२७॥

फेत्कारीय तन्त्र में कहा है कि यदि त्र्यक्षर महामन्त्र के अन्त में 'फट्' अवस्थित हो तब वह पञ्चरश्मि (ॐ) के साथ संयुक्त होकर अज्ञानरूप इन्धन का दहन करने वाला होता है।।२७।।

तस्योद्धारमहं वक्ष्ये मम सार्वज्ञकारणम्।
प्रणवं सपरं दद्याच्चतुर्थस्वरभूषितम्॥२८॥
वह्न्यारूढं स्फुरद्दीप्तमिन्दुबिन्दुविभूषितम्।
त्रङ्कारञ्च ततो दद्याच्चतुर्थस्वरभूषितम्॥२९॥

दीर्घोकारसमायुक्तं हङ्कारं योजयेत्ततः।
फट्कारञ्च ततो दद्यात् सम्पूर्णं सिद्धमन्त्रकम्॥३०॥

अब मैं अपने सर्वज्ञ होने के कारणस्वरूप मन्त्र का उद्धार करूँगा। प्रणव (ॐ- तत्पश्चात् 'स' के पश्चात् चतुर्थ स्वरभूषित (ई) बिन्दु समन्वित वह्नि (र) पर आरूढ़ स्फुरद्दीप्त इन्दु सकार = स्त्रीं लगाये। तदनन्तर चतुर्थ स्वरभूषित तथा नादबिन्दुयुक्त दीर्घ 'ऊ' संयुक्त हकार अर्थात् 'हुं' का योग करे। तदनन्तर फट् लगाये। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ स्त्रीं ह्रीं हूं फट्।।२८-३०।।

लीलया वाक्प्रदा चेति तेन लीलसरस्वती।
तारकत्वात् सदा तारा सुखमुक्तिप्रदायिनी॥३१॥

जो लीला से वाणी प्रदान करती हैं, वे लीलसरस्वती हैं। सर्वदा आपत्ति से त्राण करने के कारण तारा हैं। वे सुख एवं मुक्ति प्रदान करती हैं।।३१।।

उग्रापत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्त्तिता।
वितारैकजटा चैषा महामुक्तिकरी मता॥३२॥

उग्र आपत्ति से त्राण करने के कारण वे उग्रतारा हैं। यह विद्या (वितारा) प्रणवरहित होकर एकजटा है। यह ह्रीं से प्रारम्भ होकर फट् से अन्त होने वाली विद्या महान् मुक्तिकरी कही गयी है।।३२।।

तारास्त्ररहिता त्र्यर्णा महालीलसरस्वती।
कुल्लुकेयं समाख्याता सर्वतन्त्रेषु गोपिता॥३३॥

प्रणव तथा अस्त्र (फट्) से रहित तीन अक्षरों वाली विद्या महालीलसरस्वती कही जाती है। यह कुल्लुका नाम से प्रसिद्ध तथा सभी तन्त्रों में गोपनीय है।।३३।।

एतेन प्रणवादिविद्यैव लीलसरस्वती तारा उग्रतारेति च कथ्यते। अत्र लीलसरस्वतीपदं यवर्गतृतीयादि। तारास्त्ररहितेति तारास्त्राभ्यां रहितेत्यर्थः। इति सकाररहिततकारघटितप्रकृतिमन्त्रकथनम्॥३४॥

प्रणव के आदि में रहने से यह विद्या ही लीलसरस्वती, तारा तथा उग्रतारा नाम से जानी जाती है। यहाँ लीलसरस्वती पद यवर्ग के तृतीय 'ल' से लिया गया है। तारास्त्ररहिता = तार (ॐ) तथा अस्त्र (फट्) से रहित होने के कारण 'स' रहित तकारघटित मन्त्र कहा गया है।।३४।।

यच्च शङ्कराचार्येणोक्तम्—

सपरचतुर्थस्वररजनीशं शून्यं परुषं तदधोदेशम्।
मध्ये षोडशहनि ते शुद्धं अन्ते हूं फट्कारनिबन्धम्॥

शुद्धस्तकारो मन्त्रघटक इति तदुभयमतिगुप्तचन्द्रबीजरहितप्रकृतिमन्त्र-परतयैव बोध्यम्।।३५।।

आचार्य शंकर ने उक्त श्लोक में केवल 'त' को ही मन्त्र का घटक कहा है। इन उभय को अतिगुप्त चन्द्रबीज 'स' रहित प्रकृति मन्त्र पर रूप से ही जानना होगा।।३५।।

ननु पञ्चाक्षरैकजटामन्त्रस्याभिशप्ततया तस्यैव शापोद्धारः कृतः। तत् कथमन्यमन्त्रेषु शापोद्धारसम्भावना। न च मूलमन्त्रस्याभिशप्ततया तद्-घटितमन्त्रा अभिशप्ता इति वाच्यम्। अभिशप्तभुवनेश्वर्यैकाक्षरघटित-यावन्मन्त्राणामभिशप्तत्वापत्तेः। अथ तदीयाभिशप्तमन्त्रघटिततदीयमन्त्रोऽ-भिशप्त इति यद्युच्यते, तदा पाशाङ्कुशपुटितशक्तिबीजात्मकभुवनेश्वरीमन्त्रस्य दुष्टत्वापत्तिः। यदि तु पाशाङ्कुशाभ्यां शाप उद्धृत इत्युच्यते, तदा एकाक्षरी वीर्यहीना वाग्भवेनोज्ज्वलीकृतेति वचनविरोधः।।३६।।

एकजटा के पञ्चाक्षर मन्त्र को अभिशप्त कहकर उसका शापोद्धार किया गया है। तब अन्य मन्त्रों के शापोद्धार की सम्भावना कहाँ है? मूल मन्त्र अभिशप्त है, अतएव उससे घटित मन्त्रसमूह भी अभिशप्त हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। ऐसा कहने पर तो भुवनेश्वरी के एकाक्षर 'ह्रीं' से घटित सभी मन्त्रों के सम्बन्ध में अभिशप्त होने की आपत्ति होने लगेगी। यदि इस आपत्ति के परिहार के लिये कहा जाय कि उस अभिशप्त मन्त्र से घटित मन्त्र ही अभिशप्त है, अन्य मन्त्र अभिशप्त नहीं हैं।

इस प्रकार अभिशप्त मन्त्र जिस देवता का है, वही मन्त्र अभिशप्त है। उस मन्त्र से घटित अन्य देवता का मन्त्र अभिशप्त नहीं है, तब तो पाश तथा अंकुश बीज से घटित शक्ति-बीजरूप से भुवनेश्वरी मन्त्र में भी दुष्टत्व का प्रसङ्ग उपस्थित होगा।

यदि यह कहें कि वहाँ पाश तथा अंकुश बीज द्वारा अभिशाप उद्धृत हुआ है तब तो 'एकाक्षरी वीर्यहीना वाग्भवेनोज्ज्वलीकृता' अर्थात् शाप से एकाक्षरी वीर्यहीना हो गई और वाग्भव (ऐं) बीज से वह निर्मल हो जाती है, इस वचन से ही विरोध हो जायेगा।।३६।।

उच्यते, वाग्भवस्योपलक्षणपरतया नापत्तिः। वस्तुतस्तु पञ्चाक्षरीविद्यैव प्रकृतिरूपा। तत्र बीजान्तरप्रक्षेपेऽपि शापसम्भावना। पाशाङ्कुशपुटित-शक्तेस्तु मन्त्रान्तरतया माया न तस्य प्रकृतिरिति सर्वं चतुरस्त्रम्।

पञ्चाक्षरमन्त्रस्य द्वितीयबीजे शापो दत्तः, सर्वमन्त्राणां प्रायशस्तद्घटितत्वाद् यावद् विद्यैवाभिशप्ता ततस्तदुद्धारे सर्वविद्यैवानवद्येति। अतएव

वधूबीजात्मकैकाक्षरमन्त्रेऽपि शापतदुद्धारौ युक्तौ। अन्यथा एकाक्षर्य्याभिशप्तपञ्चाक्षरकूटघटितत्वाभावात्तत्र सकारयोगस्यालग्नतापत्तेरिति तु परमार्थः। पञ्चाक्षर्याः प्रकृतित्वन्तु उक्तफेत्कारीयवचनात् वक्ष्यमाणनीलतन्त्रवचनाच्च॥३७॥

प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि वाग्भव पद अन्य का भी उपलक्षण है अर्थात् तात्पर्यक कहने में कोई आपत्ति नहीं है। वास्तव में पञ्चाक्षरी विद्या ही प्रकृतिरूपा है। इसमें बीजान्तर का प्रवेश होने पर शाप की सम्भावना है। पाशबीज तथा अंकुश बीज-पुटित शक्तिबीज को मन्त्रान्तर कहने से माया उनका प्रकृतिरूप नहीं है। इसलिये सब सुसंगत है। पञ्चाक्षरी मन्त्र में द्वितीय बीज को शाप दिया गया है।

समस्त मन्त्र प्रायः उससे ही घटित होने के कारण सभी विद्या (मन्त्र) अभिशप्त हैं। इसलिये इस द्वितीय बीज का शापोद्धार करने से समस्त विद्यायें अनवद्य (निर्दोष) हो जायेंगी। इसी कारण वधूबीजरूप एकाक्षर मन्त्र (स्त्रीं) भी शापित है; अतः उसका शापोद्धार करना उचित है। अन्यथा एकाक्षरी विद्या पञ्चाक्षर कूट घटित न होने से वहाँ सकारयोग असंलग्न हो जायेगा। किन्तु यह तो परमार्थ है। उक्त फेत्कारीय तन्त्र के वचन से तथा वक्ष्यमाण नीलतन्त्र के वचन से पञ्चाक्षरी का प्रकृतित्व सिद्ध हो जाता है॥३७॥

तच्च यथा पञ्चाक्षरीमधिकृत्य—

ताराद्या पञ्चवर्णेयं श्रीमल्लीलसरस्वती।
सर्वभाषामयी शुद्धा सर्वाम्नायैर्नमस्कृता॥३८॥
श्रीबीजाद्या यदा विद्या तदा श्रीः सर्वतोमुखी।
एषैव हि महाविद्या मायाद्या सकलेष्टदा॥३९॥
वाग्भवाद्या यदा विद्या वागीशत्वप्रदायिनी।
एषा क्रमागता प्राप्ता मतभेदादनेकधा॥४०॥

एषा पञ्चाक्षरी।

पञ्चाक्षरी के विषय में कहा गया है कि यह तारादि पञ्चवर्णा श्रीमल्लीलसरस्वती हैं। ये सर्वभाषामयी, शुद्धा तथा समस्त आम्नाय (तन्त्र द्वारा) नमस्कृता हैं। जब इस विद्या के आदि में 'श्री' लगता है, तब ये सर्वतोमुखी सर्वजनवर्त्तिनी श्री हैं। जब इन पञ्चाक्षरी के प्रारम्भ में माया (ह्रीं) लग जाता है, तब यह सबके अभीष्ट को देने वाली हो जाती हैं। जब इन पञ्चाक्षरी के प्रारम्भ में वाग्भव (ऐं) लगाया जाता है, तब ये वाक् शक्ति देने वाली होती हैं। इनका सम्प्रदायक्रम से प्राप्त होने के कारण तथा मतभेद के कारण अनेक प्रकार है॥३८-४०॥

तदेवाह—

पञ्चाक्षरी एकजटा ताराभावे महेश्वरि ।
ताराद्या तु भवेद्देवि श्रीमन्नीलसरस्वती ॥४१॥

तन्त्र में कहते हैं कि हे महेश्वरि! जब यह पञ्चाक्षरी (तार) ॐ से रहित है तब एकजटा है। जब यह प्रारम्भ में प्रणव (ॐ) से युक्त है तब यही नीलसरस्वती हो जाती है।।४१।।

एकवीराकल्पेऽपि—

लज्जाबीजं वधूबीजं कूर्चबीजं तदा हि फट् ।
एवं पञ्चाक्षरी विद्या पञ्चभूतप्रकाशिनी ॥ इति ।

अन्यासां विद्यानामेकजटैव देवताप्रकृतित्वात् ॥४२॥ इति ॥

एकवीराकल्प में कहते हैं कि लज्जा बीज (ह्रीं) वधूबीज (स्त्रीं) कूर्चबीज (हुं) इसी प्रकार से फट्। यह पञ्चाक्षरी विद्या पञ्चभूत की प्रकाशिका है। तारा, नीलसरस्वती प्रभृति अन्य विद्यासमूह की एकजटा देवता ही प्रकृति हैं।।४२।।

•

अथासां सपर्याविधिः

अत्र प्रातर्गुरुचिन्तनादिसामान्यपूजापद्धतावुक्तम्। अथ स्नानम्। नद्यादौ गत्वा वैदिकस्नानं कृत्वा देवीरूपं सर्वं विभाव्य सुवर्णरजतात्मककुलदर्भान् वा करयोर्दत्त्वाचामेत्॥१॥

अब इन विद्यासमूह की पूजाविधि कही जा रही है। उस सपर्यास्थल में प्रातःकाल में गुरुचिन्तनादि सामान्य पूजा (जो सामान्य पूजा पद्धति में कही गयी है) करे; तदनन्तर स्नान कर्त्तव्य है। नदी प्रभृति में जाकर वैदिक स्नान करे। समस्त वस्तु का देवीरूप से चिन्तन करके दोनों हाथ की उंगलियों में सुवर्ण तथा रजत (कुलदर्भ) धारण करे अथवा कुशा धारण करके आचमन करे।।१।।

कुलदर्भा यथा तन्त्रे—

सुवर्णरजतञ्चैव जपपूजादिकर्मसु ।
कुशकार्यकरं प्रोक्तं न तु वन्याः कुशाः कुशाः ।
तर्जन्यो रजतं धार्यमनामासु सुवर्णकम् ॥२॥

कुलदर्भ के लिये तन्त्र में कहते हैं कि जप तथा पूजादि कर्म में सुवर्ण तथा रजत को कुशरूप कहा गया है। वन का कुश कुश नहीं है। दोनों हाथ की तर्जनी में चाँदी तथा अनामिका में सोना धारण करना चाहिये।।२।।

ततः ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकदेवताप्रीतिकामो मन्त्रस्नानमहं करिष्ये इति संकल्प्य जले त्रिकोणं विलिख्य तत्र ॐ गङ्गे चेत्यादिनाङ्कुशमुद्रया सूर्यमण्डलात् तीर्थमावाह्य ॐ ह्रीं स्वाहेत्या-चामेत्। ततस्तेन जलेनात्मानं त्रिः सम्प्रोक्ष्य मूलेन कराभ्यां मृत्तिकामादाय सूर्याय दर्शयित्वा तया मृत्तिकया मूलेनाङ्गलेपनं कृत्वा मूर्द्धहृदयनाभिषु जलाञ्जलित्रयं दद्यात्। ततः पूर्ववदाचम्य तत्त्रिकोणं दक्षिणहस्ततर्जन्या दक्षिणावर्त्तेन विलोड्य चक्षुरादिसप्तछिद्राणि प्रसृतकरद्वयाङ्गुलीभिराच्छाद्य मूलविद्यामुच्चरन् तत्र त्रिर्निमज्ज्य देवतां ध्यायन् उन्मज्ज्य मूलविद्यया त्रिवारमभिमन्त्रितेन पयसा कलसमुद्रया त्रिवारमात्ममूर्द्धानमभिषिच्य ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्त्वाय स्वा-हेत्याचामेत्॥३॥

अब मूलोक्त सङ्कल्पवाक्य से संकल्प कर—(ॐ अद्येत्यादि अमुकगोत्र: श्री अमुकदेवशर्मा अमुकदेवताप्रीतिकामो मन्त्रस्नानमहं करिष्ये) जल पर त्रिकोण बनाये। इस त्रिकोण में 'ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हुये अंकुश मुद्रा द्वारा सूर्यमण्डल से तीर्थजल का आवाहन करके, ॐ ह्रीं स्वाहा मन्त्र से आचमन करना चाहिये। तदनन्तर उस त्रिकोणस्थ जल से अपना तीन बार प्रोक्षण करके मूल मन्त्र जपते-जपते दोनों हाथ से मृत्तिका लाकर सूर्यदेव को दिखलाकर मूल मन्त्र द्वारा अपने अंग पर लेपन करे और मस्तक, हृदय तथा नाभि पर तीन अञ्जलि जल प्रदान करे। अब पूर्ववत् आचमन करके दाहिने हाथ की तर्जनी से दक्षिणावर्त्त आलोड़ित करके चक्षु आदि सातों छिद्रों को प्रसारित करके दोनों हाथ की उंगलियों से उन्हें आच्छादित करके मूल विद्या का उच्चारण करते-करते उस त्रिकोण में तीन बार निमज्जन करके देवता का ध्यान करते-करते उन्मज्जन करके मूल विद्या द्वारा तीन बार अभिमन्त्रित जल से कलशमुद्रा द्वारा अपने मस्तक का अभिषेचन करके ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा तथा ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा मन्त्र से (क्रमशः) तीन आचमन करना चाहिये।।३।।

यथा नीलतन्त्रे—

मृत्कुशानपि संगृह्य गत्वा जलान्तिकं ततः।
मलापकर्षणं कृत्वा मन्त्रस्नानं समाचरेत्॥४॥

नीलतन्त्र में कहा भी है कि मिट्टी तथा कुश लेकर जल के समीप जाकर मलापकर्षण स्नान करने के पश्चात् (साधारण स्नानोपरान्त) मन्त्रस्नान करे।।४।।

कुलचूड़ामणौ—

कृष्णरक्तहरिन्नीला विविधा मम मूर्त्तयः।
तत्र यत्कुलगः शिष्यः स तद्रूपं परामृशन् ।।५।।
दिवं स्वर्गमथोर्वीञ्च पातालजलसम्भवम्।
आचान्तः कुलदर्भेण सदर्भः कुलपुत्रकः।।६।।
कुलपात्रं सदूर्वञ्च सलिलं सजलं ततः।
गृहीत्वा कुलदेवस्य प्रीतये स्नानमाचरेत् ।।७।।
कृतसङ्कल्प एवासौ कुलचक्रं जले न्यसेत्।
कुलस्थानां समानीय कुलमुद्राङ्कुशेन च।।८।।
कुलतीर्थानि तत्रैव समावाह्य शिवात्मकम्।
तत्तोयञ्च त्रिधा पीत्वा त्रिधा च प्रोक्षणं तनोः।।९।।

कुलचूड़ामणि में कहा है कि कृष्ण, हरित, रक्त तथा नील इत्यादि अनेक प्रकार की मेरी मूर्त्ति है। जो शिष्य जिस कुल का है अर्थात् जिस मन्त्र से दीक्षित है, वह उसी वर्ण के रूप वाली द्युलोक, स्वर्ग अथवा पातालगत (मूर्त्ति का) चिन्तन करते-करते कुलदर्भ द्वारा दर्भयुक्त होकर दर्भयुक्त आचमन करके दूर्वा, जल, सलिलयुक्त जल कुलपात्र (कपालादि) में ग्रहण करे। सङ्कल्प करके कुलदेवता की प्रीति के लिये जलस्नान करे।

कृतसङ्कल्प शिष्य जल में कुलचक्र (त्रिकोण) का अङ्कन करे। कुलमुद्रा अङ्कुश के द्वारा कुलस्थान (सूर्य) से कुलतीर्थों का आवाहन इस त्रिकोण में करके शिवस्वरूप इस जल का तीन बार पान करके तीन बार देह का प्रोक्षण करे।।५-९।।

दिवमाकाशम्। तद्रूपं परामृशन्निति सर्वत्र सम्बन्धः। कुलदर्भेण सदर्भः दर्भवान्। कुलपात्रं कपालादि। कुलचक्रं त्रिकोणम्। कुलस्थानात् सूर्यात्। तोयं त्रिधा पीत्वेति आचम्येत्यर्थः।।१०।।

दिवम्—आकाश। तद्रूपं परामृशन्—यह समस्त क्रिया के साथ अन्वित हो। कुलदर्भेण सदर्भः = कुलदर्भ सुवर्ण-रजत। कुलपात्रं = कपाल आदि। कुलचक्रं = त्रिकोण। कुलस्थानात् = सूर्य से। तोयं त्रिधा पीत्वा = तीन आचमन करके।।१०।।

कुमारीतन्त्रे—

वेदाद्यञ्च तथा माया स्वाहेत्याचमनं मतम् ।।११।।

कुमारीतन्त्र में कहा है कि वेदाद्य (ॐ) माया (ह्रीं) तथा स्वाहा = ॐ ह्रीं स्वाहा से आचमन करना चाहिये।।११।।

मायातन्त्रे—

मृत्तिकां मूलमन्त्रेण संगृह्य च करद्वये।
सूर्याय दर्शयेत्तत्र पश्चाद्विलेपनं स्मृतम्॥१२॥

मायातन्त्र में कहते हैं कि दोनों हथेलियों द्वारा मूल मन्त्र जपते हुये मृत्तिका ग्रहण करे। उसे सूर्य को दिखाकर अपने अंगों में लेपन करे।।१२।।

जलाञ्जलित्रयं दद्यान्मूर्द्धहृन्नाभिकेषु च।
तत आचमनं कृत्वा त्रिकोणं दक्षिणेन तु॥१३॥
गृहीत्वा पाणिना देवि! शङ्खावर्त्तक्रमेण तु।
विलोड्य तत्र त्रिर्मज्जेदघमर्षणकं त्रिधा॥१४॥

त्रिधेति फलातिशयार्थम्।

तदनन्तर मस्तक, हृदय तथा नाभि में तीन जलाञ्जलि देनी चाहिये। हे देवि! तत्पश्चात् आचमन तथा जल पर त्रिकोण बनाकर (उंगली से जल में भावना द्वारा बनाकर) दाहिने हाथ से शङ्खावर्त्त क्रम से जल को हिलाकर उस जल में तीन बार डुबकी लगाकर तीन बार अघमर्षण करे।।१३-१४।।

नीलतन्त्रे—

विद्यया त्रिर्निमज्यैवमाचामेत् पाथसा तया॥१५॥

पाथसा जलेन। तया विद्यया।

नीलतन्त्र के अनुसार इस प्रकार तीन बार निमज्जन करके मन्त्र (विद्या) का जप करते हुये तीन बार आचमन करना चाहिये।।१५।।

स्वतन्त्रतन्त्रे—

मूलं पठन् मूर्ध्नि तोयं मुद्रया कुम्भसंज्ञया।
क्षिप्त्वा वारत्रयं देवि आचामेत् साधकाग्रणीः।
आत्मविद्या शिवैस्तत्त्वैस्ततो यागगृहं विशेत्॥१६॥

इति स्नानम्।

स्वतन्त्र तन्त्र में कहा है कि हे देवि! साधक-श्रेष्ठ मूल मन्त्र जपते-जपते कुम्भ मुद्रा से मस्तक पर तीन बार जल छिड़क कर आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्व द्वारा आचमन करे। तदनन्तर साधना कक्ष में प्रवेश करे।।१६।।

ततो वैदिकसन्ध्यां कृत्वा तान्त्रिकसन्ध्यां कुर्यात्। सा यथा ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा इत्यादिना आचम्य षडङ्गन्यासं कृत्वा वामहस्ते जलं निधाय तत्र

दक्षिणहस्ततर्जन्या कूर्चबीजेन त्रिकोणं विलिख्य दक्षिणहस्तेनाच्छाद्य तत्र कूर्चबीजं त्रिर्जप्त्वा मूलेन गलदम्बुभिस्तत्त्वमुद्रया सप्त कृत्वा मूर्द्धानमभ्युक्ष्य शेषजलं दक्षिणहस्ते समादाय तज्जलं शुक्लवर्णमिड़याकृष्य देहान्तः पापं प्रक्षाल्य कज्जलाभं तज्जलं दक्षिणनासापुटेन पिङ्गलया निःसार्य दक्षिणभागे वज्रशिलोपरि प्रक्षिपेदेवं त्रिधा एकधा वाघमर्षणं कृत्वा आत्मतत्त्वादिभिः पुनराचम्य ॐ हंसः शुचिसद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषद-तिथिदुरोणसन्नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहदिति हंसऋचं त्रिरूद्ध्वबाहुरभिर्जपन् सूर्यमुपतिष्ठेत्। ततो मूलमुच्चार्य श्री अमुकदेवीं तर्पयामि स्वाहेति त्रिस्तर्पयेत्॥१७॥

इस प्रकार स्नान करके वैदिक सन्ध्या के अनन्तर तान्त्रिक सन्ध्या करनी चाहिये। जैसे—ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा। ऐं विद्यातत्त्वाय स्वाहा। ऐं शिवतत्त्वाय स्वाहा से आचमन तत्पश्चात् षडङ्गन्यास करके बाँयें हाथ में जल लेकर उसमें दाहिने हाथ की तर्जनी से 'हूं' तथा त्रिकोण लिखकर उसे दाहिनी हथेली से आच्छादित करके तीन बार 'हूं' का जप करके इस मूल मन्त्रगलित जल से तत्त्वमुद्रा द्वारा सात बार मस्तक का अभ्युक्षण करके बाकी बचे जल को दाहिनी हथेली पर लेकर उस शुक्लवर्ण जल को इड़ा नाड़ी (वाम नासा (नासिकारन्ध्र) से आकर्षण करे अर्थात् भीतर खींचे। इससे (भावना द्वारा) देह के मध्य में स्थित पाप का प्रक्षालन करके, कज्जलसदृश इस जल को दाहिने नासा (पिङ्गला नाड़ी) से बाहर निकाल कर दाहिनी और वज्रशिला के ऊपर फेंके। ऐसे तीन बार अथवा एक बार अघमर्षण करके पुनः ऐं आत्मतत्त्वाय स्वाहा इत्यादि से तीन बार आचमन करके ऊर्ध्वबाहु होकर 'ॐ हंसः शुचिसद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दूरोणसत् नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्' इस हंस ऋक का तीन पाठ करते-करते सूर्य का उपस्थान (उपासना) करे।

तदनन्तर मूल मन्त्र का उच्चारण करके 'श्री अमुकदेवीं तर्पयामि स्वाहा' मन्त्र से तीन तर्पण करे। (अमुक के स्थान पर देवी का नाम लिखना होगा)।।१७।।

यथा मालिनीतन्त्रे—

आचामेदात्मतत्त्वाद्यैः प्रणवाद्यैर्द्विठान्तकैः ।
आत्मविद्याशिवास्तत्त्वाः प्रणवं वाग्भवं मतम् ॥१८॥
अघमर्षणकं तत्र कूर्चबीजजपो मतः ।
उपस्थाय पुनर्हंसमूर्ध्वबाहुस्त्रिधा जपेत् ॥१९॥
उत्तराशामुखो भूत्वा देवीमात्रं प्रतर्पयेत् ।
मूलान्ते तारिणीञ्चोक्त्वा तर्पयाम्यग्निवल्लभा ॥२०॥

मालिनीतन्त्र में कहा है कि आदि में प्रणव तथा अन्त में द्विठ (स्वाहा) लगाकर आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व तथा शिवतत्त्व से आचमन करे। यहाँ प्रणव है—वाग्भव बीज (ऐं)। कूर्चबीज (हूं) द्वारा जल से अघमर्षण विधान कहा गया है। पुनः ऊर्ध्वबाहु होकर श्लोक १७ में लिखे हंस ऋक् का तीन जप करना चाहिये। सूर्य का उपस्थान करके उत्तराभिमुखी होकर मूल विद्या के अन्त में 'तारिणीं तर्पयामि स्वाहा' मन्त्र से देवीमात्र का तर्पण तीन बार करे।।१८-२०।।

ततो हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य 'ह्रीं हंसः श्रीमार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहे'ति वारत्रयमेकवारं वा सूर्यायार्घ्यं दत्त्वा, सूर्यमण्डले देवीं विचिन्त्य ताम्रादिपात्रे रक्तचन्दनश्वेतार्ककुसुमापराजितापुष्पाक्षतादीनि निक्षिप्य मूलमुच्चार्य 'ॐ उद्यदादित्यमण्डलमध्यवर्त्तिन्यै नित्यचैतन्योदितायै श्रीमदेकजटायै इदमर्घ्यं स्वाहे'ति अर्घ्यत्रयं दत्त्वा गायत्रीं ध्यात्वा शतधा दशधा वा सञ्जप्य देवीवामहस्ते जपं समर्पयेत्।।२१।।

तदनन्तर दोनों हाथ धोकर आचमन करे तथा 'ॐ ह्रीं हंसः श्रीमार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं स्वाहा' मन्त्र से तीन अथवा एक बार सूर्य को अर्घ्य देकर सूर्यमण्डल में देवी की भावना करके ताम्रपात्र में लाल चन्दन, श्वेत मदारपुष्प, अपराजिता पुष्प तथा अक्षत रखकर मूलमन्त्र के उच्चारण के पश्चात् 'ॐ उद्यदादित्यमण्डलमध्यवर्त्तिन्यै नित्यचैतन्योदितायै श्रीमदेकजटायै इदमर्घ्यं स्वाहा' मन्त्र से तीन अर्घ्य देकर गायत्री का ध्यान करते हुये १०० बार अथवा १० बार गायत्री-जप करके (भावना द्वारा) देवी के वाम हाथ में जप का समर्पण करे।।२१।।

वीरतन्त्रे तु—ॐ उद्यदादित्यमण्डलमध्यवर्त्तिन्यै शिवचैतन्यमय्यै श्रीमदेकजटायै इदमर्घ्यं स्वाहेत्यर्घ्यमन्त्र उक्तस्तथा चान्यतरप्रकारकरणेनैव सिद्धिः। प्रमाणन्तु सामान्यपूजापद्धतावुक्तम्।

सर्वत्रैकजटापदस्थाने अन्यनामापि यथायथमूह्यमिति। गायत्री तद्ध्यानञ्च पूर्वमुक्तम्। ततः स्वस्वमन्त्रमष्टोत्तरशतं जप्त्वा जपं समर्प्य संहारमुद्रया देवतां सूर्यमण्डलात् स्वहृदयमानयेत्।।२२।।

वीरतन्त्र में अन्य अर्घ्यमन्त्र इस प्रकार है—ॐ उद्यदादित्यमण्डलमध्यवर्त्तिन्यै शिवचैतन्यमय्यै श्रीमदेकजटायै इदमर्घ्यं स्वाहा। इसको अन्यतर प्रकार से करने पर इसी से अर्घ्यदान की सिद्धि होती है। इसका प्रमाण सामान्य पूजा पद्धति में भी कहा गया है।

सर्वत्र एकजटा के स्थान पर अन्य देवी का भी नाम दिया जा सकता है। गायत्री तथा उसका ध्यान इस ग्रन्थ में पहले कहा जा चुका है। तत्पश्चात् अपना इष्टमन्त्र १०८

बार जप कर जपसमर्पण के उपरान्त संहार मुद्रा द्वारा देवता को सूर्यमण्डल से लाकर अपने हृदय में (भावना से) स्थापित करना चाहिये।।२२।।

यथा—

ततो विद्यां हृदि ध्यात्वा अष्टोत्तरशतं जपेत्।
अबहिर्मानसो योगी यागभूमिमथाविशेत्।।२३।।

जैसे तन्त्र में कहा है कि तत्पश्चात् योगी बहिर्मन वाला न होकर (अन्तःस्थित मन से) विद्या का हृदय में ध्यान करके १०८ बार जप करे। उसके पश्चात् पूजाभूमि में प्रवेश करे।।२३।।

एतत् पर्यन्तं जलेऽपि कर्त्तुं शक्यते। ततो धौतवाससी परिधाय पादौ हस्तौ च प्रक्षाल्य तिलकं कुर्यात्।।२४।।

यहाँ तक का विधान जल में खड़े होकर भी कर सकते हैं। तदनन्तर धौत वस्त्रद्वय (परिधेय तथा उत्तरीय) धारण करके हाथ-पैर धोकर तिलक लगाये।।२४।।

यथा कुलचूडामणौ—

उत्थाय कुलवस्त्रे द्वे परिधाय कुलेन च।
तिलकं कुलरूपन्तु कृत्त्वाचम्य कुलेश्वरः ।।२५।।

कुलवस्त्रं रक्तादिवस्त्रं प्रागुक्तम्। कुलेन रक्तचन्दनादिना। कुलरूपं त्रिपुण्ड्राद्यात्मकम्। कुलेश्वरः साधकः।

कुलचूड़ामणि में कहा है कि नदी प्रभृति से बाहर आकर कुलवस्त्रद्वय (दो रक्तवर्ण वस्त्र) पहनकर कुल द्वारा (रक्तचन्दन से) कुलरूप (ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र) तिलक लगाकर आचमनोपरान्त साधना भूमि में प्रवेश करे। कुलवस्त्र = रक्तवर्ण वस्त्र। कुलेन = रक्तचन्दन, गोपीचन्दनादि से। कुलरूप = त्रिपुण्ड्रादि स्वरूप। कुलेश्वर = साधक।।२५।।

मायातन्त्रे—

तिलकं रक्तगन्धेन गोपीनां चन्दनेन च।
देवास्त्रं विलिखेद् भाले ताराबीजं ततो हृदि ।।२६।।

मायातन्त्र में कहा है कि तिलक रक्तचन्दन अथवा गोपीचन्दन का लगाये। ललाट पर देवी का अस्त्र अंकित करे। हृदय पर ताराबीज लिखे।।२६।।

शक्तिं मध्ये तथालिख्य प्राणायामं समाचरेत्।
आचम्य प्राङ्मुखो भूत्वा उपविश्य च मन्त्रवित्।।२७।।

इसी प्रकार से मध्य में शक्तिबीज लिखकर मन्त्रज्ञ साधक पूर्वमुख बैठकर आचमन करे।।२७।।

ततो मन्त्राचमनं कुर्यात्। यथा—ॐ उग्रतारायै नमः। ॐ एकजटायै नमः। ॐ नीलसरस्वत्यै नमः। इति जलं त्रिः पीत्वा ह्रीमिति करौ क्षालयेत्। ततो वधूकूर्चबीजाभ्यां ओष्ठौ द्विरुन्मृज्य फड़िति करं क्षालयेत्। ततः ॐ वैरोचनाय नमः इत्योष्ठं स्पृशेत्। ततः ॐ शङ्खपाण्डुराय नमः, ॐ पद्मनाभाय नमः इति नसोः। ॐ नामकाय नमः, ॐ सोमकाय नमः—इति दृशोः। ॐ तावकाय नमः, ॐ पाण्डुराय नमः—इति नाभौ। ॐ पद्मान्तकाय नमः—इति वक्षसि। ॐ यमान्तकाय नमः—इति शिरसि। ॐ विघ्नान्तकाय नमः, ॐ नरान्तकाय नमः—इत्यंसयो स्पृशेत्॥२८॥

अब मन्त्राचमन कहते हैं। ॐ उग्रतारायै नमः, ॐ एकजटायै नमः, ॐ नील-सरस्वत्यै नमः—इन मन्त्रों से तीन बार जलपान करके 'ह्रीं' मन्त्र से दोनों हथेली धोये। वधूबीज (स्त्रीं) तथा कूर्च बीज (हुं) द्वारा दोनों ओठों का मार्जन करके 'फट्' मन्त्र से हाथ धोना चाहिये। तदनन्तर ॐ वैरोचनाय नमः मन्त्र से ओठों का स्पर्श करे। तद-नन्तर ॐ शङ्खपाण्डुराय नमः तथा ॐ पद्मनाभाय नमः मन्त्रों से नासिकाद्वय का स्पर्श करे। तत्पश्चात् ॐ नामकाय नमः, ॐ सोमकाय मन्त्र से दोनों नेत्रों का स्पर्श करे। ॐ तावकाय नमः तथा ॐ पाण्डुराय नमः मन्त्र से दोनों कानों को छूये। ॐ असि-ताभाय नमः से नाभि, ॐ पद्मान्तकाय नमः मन्त्र से हृदय एवं ॐ यमान्तकाय नमः से मस्तक का स्पर्श करे। ॐ विघ्नान्तकाय नमः तथा ॐ नरकान्तकाय नमः द्वारा स्कन्धद्वय का स्पर्श करे।।२८।।

यथा भैरवतन्त्रे—

ताराभेदैस्त्रिभिः पीत्वा मायया क्षालयेत् करम्।
स्त्रीं हुं ओष्ठौ द्विरुन्मृज्य फट्कारैः क्षालयेत् करम्॥२९॥
आस्यनासे दृशौ श्रोत्रे नाभिवक्षःशिरोभुजान्।
वैरोचनादिभिः स्पृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।
आचम्य भैरवो भूत्वा वत्सरात् तां प्रपश्यति॥३०॥

तीन ताराभेद से अर्थात् मूल श्लोक में कहे उग्रतारा प्रभृति से तीन बार जलपान करके माया (ह्रीं) द्वारा करक्षालन करे। स्त्रीं हुं मन्त्र से ओष्ठ का दो बार मार्जन करके 'फट्' से हाथों को धोना चाहिये। मुख, नासिकाद्वय, नेत्रद्वय, श्रोत्रद्वय, नाभि, हृदय, मस्तक तथा बाहुद्वय का वैरोचनादि मन्त्र द्वारा स्पर्श करके समस्त पाप से विमुक्ति प्राप्त करे। तत्पश्चात् आचमन करके भैरवरूप होकर एक वर्ष के अन्दर उनका दर्शन प्राप्त करे।।२९-३०।।

ताराभेदैरिति उग्रतारैकजटानीलसरस्वतीभेदैः। वैरोचनादयस्तु सचतुर्थीकाः प्रणवाद्या नमोऽन्ताश्च। इदं मन्त्राचमनं पापक्षयाय अन्यदापि कर्तुं युज्यते॥३१॥

श्लोक २८ में 'ताराभेदैः' कहा गया है, उसका अर्थ है = उग्रतारा, एकजटा तथा नीलसरस्वती। वैरोचन-प्रभृति चतुर्थी विभक्तियुक्त होगा; जैसे—वैरोचनाय। आदि में प्रणव तथा अन्त में नमः लगाये। यह मन्त्राचमन है। पापक्षय के लिये इसे अन्य समय में भी कर सकते हैं।।३१।।

अथ पूजाविधिः

यागस्थानं गत्वा ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेण जलमभिमन्त्र्य तज्जलं पूजार्थं स्ववामे निधाय ततः किञ्चिदन्यजले प्रक्षिप्य तेन वारिणा ॐ ह्रीं विशुद्धसर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहेति पादौ हस्तौ च प्रक्षाल्य कुलकुशान् रजतसुवर्णरूपान् तर्जन्यनामानुदत्त्वा ॐ ह्रीं स्वाहेत्याचामेत्॥३२॥

अब पूजाविधि कहते हैं। पूजास्थान पर जाकर 'ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करके उस जल को पूजार्थ वाम भाग में रखकर उसमें से कुछ अन्य जल में छोड़े। इस अन्य जल द्वारा 'ॐ ह्रीं विशुद्धसर्वपापानि शमयाशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से हाथ-पैर धोकर रजत तथा सुवर्ण की कुलकुश दोनों तर्जनी (चाँदी भी) तथा दोनों अनामिका में (स्वर्ण की) धारण करके 'ॐ ह्रीं स्वाहा' द्वारा आचमन करे।।३२।।

मत्स्यसूक्ते—

तारं वज्रोदके हुं फट् स्वाहा जलमधिष्ठितम्॥३३॥

मत्स्यसूक्त के अनुसार तार (ॐ) वज्रोदके हुं फट् स्वाहा' (मन्त्रोद्धार है—ॐ वज्रोदके हुं फट् स्वाहा) मन्त्र से जल को अभिमन्त्रित करे।।३३।।

तथा—

तारं लज्जा विशुद्धान्तु सर्वपापानि चैव हि।
शमयान्ते त्वशेषान्ते विकल्पं पदमुच्चरेत्॥३४॥
अपनयान्ते वर्म फट् स्वाहा पादविशुद्धये।
ॐ माया वह्निजाया च तथा चाचमने मनुः॥३५॥

और भी कहा है कि तार (ॐ) लज्जा (ह्रीं) तथा विशुद्ध के अन्त में विकल्प का उच्चारण करना चाहिये। तत्पश्चात् अपनय पद के अन्त में वर्म (हूं) तथा फट्

स्वाहा लगाना चाहिये। इस मन्त्र से पैरों की विशुद्धि की जाती है। आचमन का मन्त्र है—ॐ ह्रीं स्वाहा। अब मन्त्रोद्धार करते हैं—ॐ ह्रीं विशुद्धविकल्पमपनय हूं फट् स्वाहा।।३४-३५।।

अत्र वर्म दीर्घकवचं वक्ष्यमाणकुमारीकल्पैकवाक्यत्वात्। कुमारी-कल्पेऽपि—

ॐ वज्रोदके हूं फट् स्वाहामन्त्रेण मन्त्रवित्।
जलमानीय सव्ये तु आसनं शोधयेत्ततः ॥३६॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य लज्जाबीजं तथैव च।
ततो विशुद्धान्ते सर्वपापानि शमयादथ ॥३७॥
अशेषान्ते विकल्पं स्यादपनयेति तत्परम्।
अनेन साधकः कुर्यात् पादप्रक्षालनं प्रिये ॥३८॥

वक्ष्यमाण कुमारी कल्प के वचन के साथ एकवाक्यता हेतु यहाँ पर वर्म है—दीर्घ कवच। कुमारीकल्पानुसार मन्त्रज्ञ साधक ॐ वज्रोदके हुं फट् मन्त्र द्वारा जल लाकर वाम भाग में रखे तथा उससे आसन-शोधन करे।

प्रथमत: प्रणव का उच्चारण करके तदनन्तर लज्जाबीज का उच्चारण करके विशुद्ध पद के अन्त में सर्वपापानि शमय अनन्तर अशेष पद के अन्त में विकल्प पद लगाये। तदनन्तर अपनय, कूर्चबीज तथा अस्त्र लगाये और अन्त में वह्निजाया लगाये। हे प्रिये! साधक इस मन्त्र से पाद-प्रक्षालन करे। मन्त्रोद्धार कहते हैं—ॐ ह्रीं विशुद्ध-सर्वपापानि शमय अशेषविकल्पमपनय हुं फट् स्वाहा।।३६-३८।।

अधिकन्तु—

वेदाद्यञ्च तथा माया स्वाहेत्याचमने मनुः ॥३९॥

यह भी कहा गया है कि वेदाद्य (ॐ) माया (ह्रीं) तथा स्वाहा—यह आचमनमन्त्र कहा गया है। मन्त्रोद्धार है—ॐ ह्रीं स्वाहा।।३९।।

वीरतन्त्रे तु—ॐ श्रीं स्वाहेति पादप्रक्षालनं, ॐ ह्रीं सुविशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमयाशेषविकल्पान्यपनय हुं फट् स्वाहेत्याचमनमुक्तम्॥४०॥

वीरतन्त्र के अनुसार 'ॐ श्रीं स्वाहा' मन्त्र से पाद-प्रक्षालन करके 'ॐ ह्रीं सुविशुद्ध-धर्मगात्रि सर्वपापानि शमयाशेषविकल्पान्यपनय हुं फट् स्वाहा' से आचमन करे।।४०।।

तद्यथा—

ॐ ह्रीं स्वाहेति मन्त्रेण तेनैव पादधावनम्।
ॐ ह्रीं सुविशुद्धस्यान्ते धर्मगात्रि ततः परम् ॥४१॥

सर्वपापानि शमय ततोऽशेषपदं वदेत्।
विकल्पान्यपनय हुं फट् स्वाहेत्याचमनं प्रिये ॥४२॥ इति।

कहा भी है कि हे प्रिये! 'ॐ ह्रीं स्वाहा' से पैर धोये। 'ॐ ह्रीं सुविशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि शमय अशेषविकल्पान्यपनय हुं फट् स्वाहा' से आचमन करना चाहिये।

तस्मादेकतरकरणेन सिद्धिरेव। पूर्वकल्पस्तु बहुसम्मतः। ततः पीठं चिन्तयेत्॥४३॥

अत: कोई एक मन्त्र से करने पर भी कार्य सिद्ध होगा, परन्तु पूर्वकल्प (पहले कहा गया तन्त्र) बहुजन-सम्मत है। अब पीठचिन्तन करना चाहिये।।४३।।

तद्यथा—

श्मशानं तत्र सञ्चिन्त्य तत्र कल्पद्रुमं स्मरेत्।
तन्मूले मणिपीठञ्च नानामणिविभूषितम् ॥४४॥
नानालङ्कारभूषाढ्यं मुनिदेवैश्च भूषितम्।
शिवाभिर्बहुमांसास्थिमोदमानाभिरन्ततः ॥४५॥
चतुर्दिक्षु शवमुण्डचिताङ्गारास्थिभूषितम्।
तन्मध्ये भावयेद् देवीं यथोक्तध्यानयोगतः ॥४६॥

पीठ में श्मशान की चिन्ता (भावना) करके उस श्मशान में कल्पवृक्ष का चिन्तन करके उसकी छाया में नाना मणिभूषित, मुनि तथा देवगण से शोभित, बहुमांस तथा अस्थि द्वारा प्रसन्न शिवागण (शृगाली) से घिरी, चारो ओर शवमुण्ड, चिता के अङ्गार तथा अस्थियों के मध्य में (आसीन) देवी की भावना करनी चाहिये।।४४-४६।।

ततः ॐ मणिधरि वज्रिणि सर्ववशङ्करि हुं फट् स्वाहेति शिखां बध्नीयात्। यथा वीरतन्त्रे—

ॐ मणिधरि वज्रिणि ततः सर्वपदं वदेत्।
वशङ्करि हुं फड़न्ते स्वाहा रक्षा प्रकीर्त्तिता ॥४७॥ इति।

तदनन्तर 'ॐ मणिधरि वज्रिणि सर्ववशङ्करि हुं फट् स्वाहा' मन्त्र को पढ़कर शिखाबन्धन करे। जैसे वीरतन्त्र में कहा है कि 'मणिधरि वज्रिणि, तदनन्तर 'सर्व' तत्पश्चात् अन्त में 'वशंकरि' तथा 'हुं फट्' और अन्त में 'स्वाहा' कहे। यह रक्षामन्त्र कहा गया है।।४७।।

ततः रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहेति मुष्टिनिःसृतजलसेकात् भूमिं शोधयित्वा ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहेति नाराचमुद्रया अक्षतप्रक्षेपेण दिव्यान्तरीक्षभौमान् त्रिविधान् विघ्नानुत्सार्य ॐ पवित्रवज्रभूमे हुं फट्

स्वाहेति भूमिमभिमन्त्र्य ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहेति तत्र त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्र कोमलकम्बलाद्यासनमास्तीर्य कुशपत्रशतविरचितविष्टरैः शवप्राणप्रतिष्ठां कृत्वा तत्र तं संस्थाप्य ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहेति पुष्पादिना तानि सम्पूज्य स्वस्तिकाद्यन्यतमक्रमेण तत्रोपविशेत्॥४८॥

इसके अनन्तर 'रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से मुष्टि से जल गिराकर भूमिशोधन करके 'ॐ सर्वविघ्नानुत्सारय हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से नाराचमुद्रा द्वारा चावल फेंकते हुये दिव्य, अन्तरिक्ष तथा भूमि के विघ्नों को दूर करके 'ॐ पवित्रवज्रभूमे हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से भूमि को अभिमन्त्रित करने के उपरान्त 'ॐ आ: सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' मन्त्र द्वारा भूमि में त्रिकोणमण्डल बनाकर उस त्रिकोण में कोमलासन अथवा कम्बलासन (कोमलासन का वर्णन प्रथमखण्ड में किया गया है) प्रभृति बिछाकर सौ कुशों के विष्टर पर शव की प्राणप्रतिष्ठा करके उसे आसन पर रखकर 'ॐ आ: सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' से पुष्पादि द्वारा पूजन करे और स्वस्तिकादि अन्यतम आसनक्रम से (यह भी प्रथम खण्ड में कहा गया है) उस पर बैठे।।४८।।

यथा कुमारीकल्पे—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य रक्षद्वयमतः परम्।
हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेण भूमिञ्च परिशोधयेत्॥४९॥

जैसे कुमारीकल्प में कहा है कि प्रथमत: प्रणव तदनन्तर रक्ष रक्ष तथा हुं फट् से पृथ्वी का शोधन करे। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ रक्ष रक्ष हुं फट्।।४९।।

तथा—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य सर्व पदं ततः परम्।
उत्सारय ततो हुं फट् स्वाहा च तदनन्तरम्।
अनेनैव च मन्त्रेण विघ्नानुत्सारयेत् सुधीः॥५०॥

इसी प्रकार और भी कहा है कि प्रणव का उच्चारण करके सर्वविघ्नान्, तत्पश्चात् उत्सारय के अनन्तर हुं फट् और अन्त में स्वाहा कहकर सुधी साधक इस मन्त्र से विघ्नों का उत्सारण करे। मन्त्रोद्धार है—ॐ सर्वविघ्नान् उत्सारय हुं फट् स्वाहा।।५०।।

कुमारीकल्पे—

ॐकारं आः सुरेखे च वज्ररेखे ततः परम्।
हुं फट् स्वाहेति कुर्यात्तु मण्डलञ्च शवासने।
वीरासनेनोपविशेत् सम्पूज्यासनमेव च॥५१॥

शवासन इत्यस्य उपविशेदित्यत्रान्वयः।

कुमारीकल्प में कहते हैं कि 'ॐ आः सुरेखे वज्रेरखे' तदनन्तर 'हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से त्रिकोण मण्डल का अङ्कन करके आसन-पूजन के उपरान्त शवासन पर वीरासन से बैठना चाहिये।।५१।।

मत्स्यसूक्ते—

मृदुचूड़कमासीनश्चान्येषु कोमलेषु वा।
विष्टरेषु समासीनः साधयेत् सिद्धिमुत्तमाम्।।५२।।

मत्ससूक्त के अनुसार मृदु आसन अथवा कोमल आसन पर उपविष्ट होकर अथवा अन्य कोमल आसन अथवा विष्टर पर बैठकर उत्तम सिद्धि हेतु साधना करे।।५२।।

कालीतन्त्रे—

मृतासनं विना देवि! यो जपेत् कालिकां नरः।
तावत् कालं नारकी स्याद्यावदाभूतसम्प्लवम्।
मृताभावे विष्टरञ्च शवरूपं प्रकल्पयेत्।।५३।।

कालीतन्त्र में कहा है—हे देवि! जो मृतक के आसन के विना कालिका मन्त्र का जप करते हैं, वे महाप्रलय-पर्यन्त नारकी होकर रहते हैं। मृतासन के अभाव में कुश के विष्टर पर शव की भावना (प्राणप्रतिष्ठा) करके उस पर बैठकर जप करे।।५३।।

अत्र कालिकापदं शवारूढदेवीमात्रोपलक्षणम्। मृद्वादिलक्षणमासनविवेचनञ्च प्राक् प्रपञ्चितमासनप्रस्तावे। ततो विशेषानुक्तत्वेऽपि सामान्यतो दृष्टतया वामपार्ष्णिघातत्रयेण भौमान् तालत्रयेणान्तरीक्षगान् दिव्यदृष्ट्या दिव्यान् विघ्नानुत्सार्य ॐ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहेति वस्त्राञ्चले रक्षाग्रन्थिं बध्नीयात्।।५४।।

यहाँ कालिका पद उन सभी देवियों के लिये है, जो शव पर आरूढ़ कही गयी हैं। मृदु प्रभृति आसन का लक्षण तथा उनकी विवेचना (पुस्तक के प्रथम खण्ड में) आसन प्रकरण में की जा चुकी है। सामान्य रूप से मन्त्र से तीन ताली से भौम विघ्नसमूह को, ऊर्ध्व की ओर तालत्रय (तीन ताली) से अन्तरिक्षगत विघ्नों को एवं निर्निमेष दृष्टि द्वारा दिव्य विघ्नों को हटाकर 'ॐ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से अपने आञ्चल में रक्षा ग्रन्थि बाँधे।।५४।।

यथा कुमारीकल्पे—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य शेषं सर्गिणमेव च।
हुं फट् स्वाहा मनुः प्रोक्तः कायवाक्चित्तशोधने।।५५।।

रक्षद्वयं ततो हुं फट् स्वाहा च तदनन्तरम्।
अनेनैव विधानेन रक्षां कुर्याद् विचक्षणः ।।५६।।

जैसे कुमारीतन्त्र में कहा है कि प्रथमतः प्रणव का उच्चारण करके मणिधरि कहकर वज्रिणि कहे। तत्पश्चात् महाप्रतिसरे तथा रक्ष रक्ष कहकर हुं फट् तथा अन्त में स्वाहा कहे।

विचक्षण साधक इस मन्त्र से रक्षा-विधान करे। (मन्त्रोद्धार—ॐ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे रक्ष रक्ष हुं फट् स्वाहा)।।५५-५६।।

अत्र धरिणीत्यस्य वज्रिणीत्यनेन समासात् पुंवद्भावेन मणिधरि वज्रिणीति मन्त्रभागः न पुनर्धरिणीति मन्त्रभागः। मणिधरि वज्रिणि देवि! महाप्रतिसरे तथेति कवचे हुं मणिधरि वज्रिणि वज्रितसारे इति विरूपाक्षकृतस्तवे च तथाप्रतिपादनात्। ततः ॐ आः हुं फट् स्वाहेति व्यापकेन काय-वाक्चित्तानि संशोध्य, ॐ शताभिषेके हुं फट् स्वाहा। ॐ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् सम्बन्धाय पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते। पुष्पच-यावकीर्णे हुं फट् स्वाहेति मन्त्राभ्यां पुष्पमभिमन्त्रयेत्।।५७।।

यहाँ धरिणी पद का वज्रिणि पद के साथ समास होने से पूर्व पद का पुंवद् भाव होगा। इससे मणिधरि वज्रिणि यह मन्त्रांश होगा। किन्तु 'धरिणि' इस रूप से मन्त्रांश नहीं होगा। अतएव 'मणिधरि वज्रिणि देवि महाप्रतिसरे तथा' एवं 'हुं मणिधरि वज्रिणि वज्रितसारे' इस विरूपाक्षकृत स्तव में प्रतिभासित हो रहा है।

तदनन्तर 'ॐ आः हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से व्यापक न्यास द्वारा देह, वाक् तथा चित्त का शोधन करके 'ॐ शताभिषेके हुं फट् स्वाहा। ॐ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् सम्बन्धाय, पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा' इन दो मन्त्रों से पुष्पों को अभिमन्त्रित करना चाहिये।।५७।।

यथा कुमारीतन्त्रे—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य शेषं सर्गिणमेव च।
हुं फट् स्वाहा मनुः प्रोक्तः कायवाक्चित्तशोधने ।।५८।।

शेष आकारः सर्गी विसर्गवान्।

कुमारीतन्त्र में कहा है कि प्रथमतः प्रणव का उच्चारण करके विसर्ग-विशिष्ट शेष (आकार) का तथा हुं फट् स्वाहा का उच्चारण करे। देह, वाक् तथा चित्त-शोधन का यह मन्त्र है। मन्त्रोद्धार है—ॐ आः हुं फट् स्वाहा।।५८।।

कुमारीकल्पे—

अधिष्ठाने च पुष्पस्य प्रणवं पूर्वमुच्चरेत् ।
शताभिषेकेति पदं हुं फट् स्वाहा ततः परम् ।
अनेन मनुना देव्या पुष्पाधिष्ठानमेव च ।।५९।।

कुमारीकल्प में कहा है कि पुष्प में देवी के अधिष्ठान हेतु प्रणव का उच्चारण करना चाहिये। तदनन्तर 'शताभिषेके' पद तथा 'हुं फट् स्वाहा' कहकर देवी का पुष्प में अधिष्ठान करना चाहिये (मन्त्रोद्धार होता है—ॐ शतभिषेके हुं फट् स्वाहा)।।५९।।

प्रणवं पुष्पकेतुश्च तथा राजार्हतेऽपि च ।
शताय सम्यगित्युक्त्वा सम्बन्धाय ततः परम् ।।६०।।
पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते ।
पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहेति ततः परम् ।
विशुद्धं पुष्पमेतेन जलं पूर्ववदाहरेत् ।।६१।।

'प्रणव पुष्पकेतु तथा राजाहर्ते' तथा 'शताय सम्यक् सम्बन्धाय' कहे। तदनन्तर 'पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते' के पश्चात् 'पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा' कहकर पुष्पशुद्धि करके पूर्ववत् जल लाना चाहिये। (मन्त्रोद्धार करते हैं—ॐ पुष्पकेतुराजार्हते शताय सम्यक् सम्बन्धाय पुष्पे पुष्पे महापुष्पे सुपुष्पे पुष्पभूषिते पुष्पचयावकीर्णे हुं फट् स्वाहा)।।६०-६१।।

ततः सुवर्णादिपीठे गोदोचनाकुङ्कुमादिलिप्ते ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेणाधोमुखत्रिकोणगर्भाष्टदलपद्मचतुरस्रचतुर्द्वारयुतं यन्त्रं लिखेत्। पद्मस्य पूर्वादिदलेषु मन्त्राक्षराणि लिखेत्।।६२।।

तदनन्तर गोरोचन कुङ्कुमादि से लिप्त सुवर्ण आदि के पीठ पर 'ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' से अधोमुख त्रिकोण गर्भ में अष्टदल कमल, चतुरस्र तथा चतुर्द्वारयुक्त यन्त्र लिखे। पद्म के पूर्वादि दल में मन्त्राक्षरों को लिखना चाहिये।।६२।।

ततः कुलरसेनैव पीठं निर्माय यत्नतः ।
ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहासमन्वितः ।।६३।।
मन्त्रेणानेन संलिख्य वसुपत्रं मनोहरम् ।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ।।६४।।

कुलरसेन स्वयम्भुकुसुमेन तदनुकल्परक्तचन्दनेन वा, 'स्वयम्भुकुसुमं देवि! रक्तचन्दनसंज्ञकमि'त्युक्त्वात् ।

तन्त्रचूड़ामणि में यही कह रहे हैं—तत्पश्चात् कुलरस (स्वयम्भुकुसुम) अथवा

रक्तचन्दन से पीठ-निर्माण करके 'ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहा' मन्त्र द्वारा मनोहर आठ पत्र, चतुरस्र तथा चतुर्द्वार का लेखन करके एक मण्डल (वृत्त) का लेखन करे।

कुलरसेन = कन्या के प्रथम रजोदर्शन का रक्त अथवा उसके स्थान पर रक्तचन्दन से। क्योंकि वचन है कि स्वयम्भुकुसुम का अनुकल्प है—रक्तचन्दन।।६३-६४।।

वर्णलेखनप्रकारः फेत्कारीये—

सयोनिं चन्दनेनाष्टदलं वृत्तं लिखेत्ततः।
मृद्वासनं समासाद्य मायां पूर्वदले लिखेत्॥६५॥
मध्यबीजं द्वितीये फमुत्तरे पश्चिमे तु ढम्।
मध्ये बीजं लिखेत्तारं भूतशुद्धिमथाचरेत्॥६६॥

वर्णलेखन-प्रकार फेत्कारीय तन्त्रानुसार कहा जा रहा है। साधक चन्दन से योनि (त्रिकोण) बनाये और वृत्त तथा अष्टदल (तत्पश्चात्) बनाये। मृदु आसन पर बैठकर पूर्वदल में (ह्रीं) माया अङ्कित करे। दक्षिण दल में मध्यबीज (स्त्रीं) का, उत्तर दल में 'फ' का तथा पश्चिम दल में 'ट' का अङ्कन करे। मध्य में हुं बीज लिखकर भूतशुद्धि करे।।६५-६६।।

मध्यबीजं वधूबीजम्। द्वितीये = दक्षिणे। तारं हुंकारम्। तारा प्रणवत्वात्। टं पश्चिमे। भगे कूर्चं। पत्रान्ते भूपुरद्वयमिति वक्ष्यमाणषट्कोणतद्यन्त्रान्तर-प्रतिपादकभैरवतन्त्रवचनैकवाक्यत्वाच्च॥६७॥

मध्यबीजम् = स्त्रीं। द्वितीये—दक्षिणदल में। तारं = 'हूं' क्योंकि यह तारा प्रणव है। पश्चिम दल में—ट। त्रिकोण में = हुं। पत्र के अन्त में दो भूपुर में = यह तारा के वक्ष्यमाण षट्कोण के अन्य यन्त्रान्तर के प्रतिपादक भैरवतन्त्र के वचन से एक-वाक्यता में प्रयुक्त हुआ है।।६७।।

यन्त्रान्तरं यथा—

षट्कोणान्तर्गतं पद्मं भूबिम्बद्वितयं पुनः।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं वा यन्त्रमालिखेत्॥६८॥

षट्कोणान्तर्गत (षट्कोण में) पद्म, दो भूबिम्ब, पुनः चतुरस्र तथा चतुर्द्वार बनाये। यही यन्त्र-लेखन की विधि है।।६८।।।

बीजलिखनन्तु पूर्ववत्। मध्ये मम द्रुतकवित्वपाण्डित्यं कुरु कुरु इत्यादि साध्यञ्च लिखेत्॥६९॥

बीजों को पहले कहे क्रम से लिखना होगा। मध्य में साध्य भी लिखे; यथा—मम द्रुतकवित्वं पाण्डित्यं कुरु कुरु इत्यादि।।६९।।

सारस्वतार्थिनां विशेषयन्त्रमाह नीलतन्त्रे वीरतन्त्रे च—

व्योमेन्दौ रसनार्णकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केशरं
वर्गोल्लासिवसुच्छदं वसुमतीगेहेन संवेष्टितम् ।
ताराधीश्वरवारिवर्णविलसद्दिक्कोणसंशोभितं
यन्त्रं नीलतनोः परं निगदितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ।।७०।।

सारस्वत-प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति के लिये वीरतन्त्र तथा नीलतन्त्र में विशेष यन्त्र इस प्रकार कहा गया है—इस यन्त्र की कर्णिका व्योम (ह) इन्दु (स) औं एवं रसनार्ण (:) युक्त अर्थात् ह्सौः युक्त। प्रदक्षिण क्रम से अकारादि स्वर द्वारा केशरसमूह शोभित हो। अष्टपत्र अष्टवर्ग द्वारा शोभित उल्लसित हो।

भूपुर द्वारा वेष्टित, ताराधीश्वर चन्द्र के वर्ण तथा जलवर्ण 'ठ' तथा 'व' द्वारा विकसित दिक् एवं कोण द्वारा शोभित सर्वार्थ-सिद्धिप्रद नीलसरस्वती का यन्त्र कहा गया।।७०।।

व्याख्यातप्रायमिदं दीक्षायां मातृकायन्त्रप्रस्तावे। विशेषस्तु ताराधीश्वरश्चन्द्रः वारि जलं तयोर्वर्णौ ठकारवकारौ ताभ्यां दिक्कोणविलासः। मातृकायन्त्रे तु दिक्कोणयोर्वकारठकारौ यथाक्रममिति भेदः। ततस्तद् यन्त्रं पुरतः पुष्पाच्छादितं संस्थाप्य सामान्यार्घ्यं संस्थाप्य यन्त्रे पीठपूजां कुर्यात्।।७१।।

दीक्षा में मातृकायन्त्र-प्रस्ताव में यह यन्त्र कहा जा चुका है (दीक्षा प्रसंग देखें)। विशेष यह है कि ताराधीश्वर = चन्द्र। 'ठ' बीज। वारि = जल। व बीज।

इसके द्वारा दिक् तथा आग्नेय आदि कोणों का विकास होता है। किन्तु मातृकायन्त्र में दिक् = व। कोण = ठ। यह भेद है। तदनन्तर पुष्पाच्छादित इस यन्त्र की स्थापना करके यन्त्र में पीठपूजा करनी चाहिये।।७१।।

यथा पीठस्य पूर्वद्वारे—ॐ ह्रीं गां गणपतये नमः। पीठस्य दक्षिणे—ॐ ह्रीं वां वटुकाय नमः। पीठस्य पश्चिमे—ॐ ह्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः। पीठस्योत्तरे—ॐ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः। ततो मध्य उपर्युपरि—ॐ श्मशानाय नमः। ॐ कल्पवृक्षाय नमः। तन्मूले—ॐ मणिपीठाय नमः। ॐ नानामणिभ्यो नमः। ॐ मुनिभ्यो नमः। ॐ देवेभ्यो नमः। ॐ बहुमांसास्थिमोदमानशिवाभ्यो नमः। चतुर्दिक्षु—शवमुण्डचिताङ्गारास्थिभ्यो नमः। ततः पूर्वाद्यष्टदले देव्यग्रादिक्रमेण ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै, रत्यै, प्रीत्यै, कीर्त्त्यै, शान्त्यै, तुष्ट्यै, पुष्ट्यै इति सम्पूज्य कर्णिकायां ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः इत्यर्चयेत्।।७२।।

अब पीठपूजा कही जाती है—पूर्वद्वार पर = ॐ ह्रीं गां गणपतये नमः, पीठ के दक्षिण में—ॐ ह्रीं वां वटुकाय नमः, पीठ के पश्चिम में—ॐ ह्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः, पीठ के उत्तर में—ॐ ह्रीं यां योगिनीभ्यो नमः, मध्य में ऊपर-ऊपर—ॐ श्मशानाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः, उसके मूल में—ॐ मणिपीठाय नमः, ॐ नानामणिभ्यो नमः, ॐ नानालङ्कारेभ्यो नमः, ॐ मुनिभ्यो नमः, ॐ देवेभ्यो नमः, ॐ बहुमांसास्थिमोदमानशिवाभ्यो नमः, चारो दिशाओं में—ॐ शवमुण्डचिताङ्गारास्थिभ्यो नमः। उसके पूर्वादि अष्टदल में देवी के अग्रादिक्रम से—ॐ लक्ष्म्यै नमः, ॐ सरस्वत्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ प्रीत्यै नमः, ॐ कीर्त्यै नमः, ॐ शान्त्यै नमः, ॐ तुष्ट्यै नमः, ॐ पुष्ट्यै नमः इसी प्रकार से पूजा करके कर्णिका में 'ॐ ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः' मन्त्र से शववाहन की अर्चना करे।।७२।।

कुमारीकल्पे—

ततोऽर्घ्यपात्रं विन्यस्य द्वारपालान् समर्चयेत्।
गां बीजाद्यं गणेशञ्च वामाद्यं बटुकस्तथा ।।७३।।
क्षामाद्यं क्षेत्रपालञ्च यामाद्यां योगिनीं ततः।
पूर्वे याम्ये पश्चिमे च उत्तरे च प्रपूजयेत् ।।७४।।

कुमारीकल्प में कहा गया है कि तदनन्तर अर्घ्यपात्र स्थापित करके द्वारपालगण का पूजन करे। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर में क्रमशः मन्त्र के आदि में 'गां' लगाकर गणेश की, 'वां' बीज को मन्त्र के आदि में लगाकर वटुक की, 'क्षां' बीज को मन्त्र के आदि में लगाकर क्षेत्रपाल की तथा 'यां' बीज आदि में लगाकर योगिनी की पूजा करे।।७३-७४।।

तन्त्रान्तरे—

ते सर्वे ध्रुवदीर्घाद्याः शक्तिबीजपुरःसराः ।।७५।।
ध्रुवः प्रणवः। दीर्घ आकारः। शक्तिबीजं माया।

तन्त्रान्तर में कहा है—गणेशादि सबमें आदि में प्रणव लगेगा। दीर्घ ईकार आदि युक्त शक्तिबीज तथा आद्यबीज पूर्व में रहे। ध्रुवः = प्रणव। दीर्घ = आकार। शक्तिबीजं—माया (ह्रीं)।।७५।।

सिद्धसारस्वते—

लक्ष्मीः सरस्वती चैव रतिः प्रीतिस्तथैव च।
कीर्त्तिः शान्तिश्च पुष्टिश्च तुष्टिरित्यष्टशक्तयः।
देव्या नीलसरस्वत्याः पीठशक्तय ईरिताः ।।७६।।

सिद्धसारस्वत का वचन है कि लक्ष्मी, सरस्वती, रति, प्रीति, कीर्त्ति, शान्ति, पुष्टि तथा तुष्टि—ये आठ शक्तियाँ हैं।।७६।।

वीरतन्त्रे—

तन्मध्ये पूजयेद् देव्या वाहनं शवमेव च ।।७७।।

वीरतन्त्र में कहते हैं कि कर्णिका के मध्य में देवी के वाहन शव का पूजन करना चाहिये।।७७।।

ततो यन्त्रोपरि मूलेन मूर्त्तिं संकल्प्य बद्धाञ्जलिर्वामकर्णोद्ध्वें ॐ गुरुभ्यो नमः। दक्षिणकर्णोद्ध्वें—ॐ गणेशाय नमः। मध्ये—श्रीमदेकजटायै देवतायै नमः इत्यादिना नमस्कृत्य फडिति गन्धपुष्पाभ्यां करौ संशोध्य वामतले दक्षिणतर्जनीमध्यमाभ्यामूर्ध्वोद्ध्वं तालत्रयं तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन छोटिकाभिर्दशदिग्बन्धञ्च कृत्वा रमिति जलधारया वह्निप्राकारं विचिन्त्य भूतशुद्धिं कुर्यात्।।७८।।

तदनन्तर यन्त्र के ऊपर मूल मन्त्र द्वारा मूर्त्ति की कल्पना करके अञ्जलिवद्ध होकर वाम कर्ण के ऊर्ध्व में—ॐ गुरुभ्यो नमः, दाहिने कान के ऊर्ध्व में—ॐ गणेशाय नमः, मध्य में—ॐ श्रीमदेकजटायै देवतायै नमः इत्यादि मन्त्र से नमस्कार करके 'फट्' मन्त्र से गन्ध तथा पुष्प द्वारा करशोधन करके बाँयें हाथ के तल में दक्षिण हाथ की तर्जनी तथा मध्यमा उंगली से तीन ताल देकर तर्जनी तथा अंगूठे से चुटकी बजाते हुये दशो दिशा का बन्धन करके 'रं' मन्त्र से जलधारा द्वारा वह्निप्राचीर की भावना करके भूतशुद्धि करनी चाहिये।।७८।।

यथा—अङ्के उत्तानौ करौ कृत्वा हंस इति मन्त्रेण हृदयस्थं दीपकलिकाकारं जीवात्मानं सुषुम्नाविवरवर्त्मना परमशिवे संयोज्य मूलाधारपद्मस्थां कुण्डलिनीं निद्राणां षट्चक्रभेदप्रक्रियया वक्ष्यमाणस्वरूपां हुमिति त्रिकोणमण्डलस्थाग्निशिखया सजागरां विधाय हंसः इति मन्त्रेणोत्तोल्य वक्ष्यमाणषट्चक्रभेदप्रक्रियया षट्चक्रभेदेन परमशिवे संयोज्य पृथिव्यादीनि गन्धादीनि च तत्त्वानि सामान्यभूतशुद्धिदर्शितरीत्या परमशिवे संयोजयेत्। ततः कनिष्ठानामिकाभ्यामङ्गुष्ठेन च नासापुटद्वयं धृत्वा कुम्भकेन नाभौ रक्तवर्णं ह्रींकारं ध्यात्वा तदुद्भूतेनाग्निना वामकुक्षिस्थेन सामान्य-भूतशुद्धिप्रक्रिया लिखितस्वरूपेण पापपुरुषेण सह लिङ्गशरीरं संदह्य पीतवर्णं स्त्री ङ्कारं हृदि विचिन्त्य तदुद्भूतेन वायुना रेचकेन तद्भस्म प्रोत्सार्य पुनरङ्कगतकरद्वयः श्वेतवर्णं हुङ्कारं शिरसि विचिन्त्य तदुद्भूतेनामृ-

**ताम्बुना तदस्थि प्लावितं कृत्वा समस्तमपगतव्यथं विश्वं शरीरमाप्लावयेत्।
तत आत्मानपगतव्यथं निर्मलं देव्यभेदेन चिन्तयेत्।**

तस्मिन् विश्वव्यापकेऽमृतवारिणि आःकाराद् रक्तपद्मं तदुपरि टाङ्कारात् श्वेतपद्मं तदुपरि नीलं हुङ्कारं तदुपरि हुङ्कारबीजभूषितां कर्त्रिकां ध्यायेत्। तदुपरि देवतां स्वहृदये हस्तं दत्त्वा आं ह्रीं क्रों स्वाहेत्येकादशवारं जपन्नात्मनि प्राणैः प्रतिष्ठाप्यात्माभेदेन ध्यायेत्।।७९।।

भूतशुद्धि कहते हैं—अपने क्रोड़ में दोनों हथेलियों को उत्तान करके हंसः मन्त्र द्वारा दीपकलिका के समान जीवात्मा को सुषुम्ना नाड़ी के छिद्रपथ से परमशिव में मिलित करके मूलाधार पद्मस्थ निद्रित कुलकुण्डलिनी को षट्चक्रभेद प्रक्रिया से 'हुं' मन्त्र से त्रिकोण मण्डलस्थ अग्निशिखा द्वारा जागरित करके हंसः मन्त्र द्वारा उसे ऊपर उठाते हुये षट्चक्र भेद प्रक्रिया द्वारा षट्चक्र भेदन करते हुये परमशिव में मिलित करे। तदनन्तर कनिष्ठा, अनामिका तथा अंगुष्ठ से दोनों नासापुट बन्द करके कुम्भकावस्था में नाभि-स्थित रक्तवर्ण 'ह्रीं' का ध्यान करना चाहिये।

अब उस ह्रींकार से उद्भूत अग्निशिखा द्वारा वाम कुक्षि-स्थित सामान्य भूतशुद्धि प्रक्रिया में (इस ग्रन्थ के प्रथम-द्वितीय खण्डों में) लिखित प्रक्रिया से पापपुरुष तथा लिङ्गशरीर को (भावना द्वारा) दग्ध करके, पीतवर्ण 'स्त्रीं' बीज का चिन्तन हृदय में करना होगा। उस चिन्तन-जनित स्त्रींकार से उद्भूत वायु द्वारा रेचक की अवस्था में उस पापपुरुष के देह को भस्म उत्सारित करके (बाहर करके) पुनः अपने क्रोड़ में दोनों हथेली स्थापित करके मस्तक में श्वेत वर्ण 'हुं' का चिन्तन करे। इस 'हुं' से उद्भूत अमृत जल से शिर की अस्थि को प्लावित करके व्यथारहित समस्त विश्वशरीर को प्लावित करे।

तदनन्तर व्यथाहीन निर्मल आत्मा का देवी के साथ अभिन्न रूप से चिन्तन करके ऐक्य स्थापित करे। उस विश्वव्यापक अमृत वारि में 'आः' से रक्तपद्म, उसके ऊपर 'टां' से श्वेत पद्म, उसके ऊपर नील पद्म से 'हुं', उसके ऊपर 'टां' बीजभूषित कैंची (कर्त्तरी) का ध्यान करे। उसके ऊपर देवता को अपने हृदय पर हाथ रखकर 'आं ह्रीं क्रों स्वाहा' मन्त्र का ग्यारह बार जप करते-करते आत्मा में प्राणसमूह द्वारा प्रतिष्ठित करके आत्मा के साथ अभिन्न अभेद रूप से (मिलित) देवता का ध्यान करना चाहिये।।७९।।

यथा—खर्वां अभिनवजलदनीलवर्णां लम्बोदरीं व्याघ्रचर्मावृतपीनोन्नतपयोधरां रक्तवर्त्तुलत्रिनेत्रां ललज्जिह्वां दंष्ट्राकरालवदनां पिङ्गैकजटाजूटां

पदद्वयलम्बमाननीलोत्पलमालां अतिनीलनागबद्धजटाजूटां ललाटे श्वेतास्थिपट्टिकासंयुक्तकपालपञ्चकान्वितां जवाकुसुमसङ्काशतक्षकनागकृतकुण्डलाम् अतिशुभ्रशेषनागकृतहारां दूर्वादलश्यामनागकृतयज्ञोपवीतां चतुर्भुजां उपरि दक्षिणे सरक्तमांसखण्डमण्डितमुष्टिनिविष्टजटाजूटसंलग्नाग्रखड्गभूषितकरां, उपरि वामे रक्तनीलकिञ्चिद्विकस्वरनीलोत्पलकराम् अधस्ताद् दक्षिणे बीजभूषितवृन्तककर्त्रिकालङ्कृतकराम् अधस्ताद्वामे त्रिजगज्जाड्यसमेतशुभ्रकपालमण्डितकरां भुजचतुष्टये धूम्राभनागकृतकेयूरां कनकाभनागकृतकङ्कणां शवारूढां शवहृदयस्थितदक्षिणचरणां शवपादद्वयस्थितप्रसारितवामचरणां कुन्दाभनागकृतकटिसूत्रां ईषद्रक्तनागकृतनूपुरां सद्यःकृतगलद्रुधिरान्योन्यकेशग्रथितपादपद्मप्रलम्बितपञ्चाशन्नरमुण्डमालां ज्वलदनलचितामध्यस्थितां द्वीपिचर्मकृतोपरि वस्त्रां योषिदखिलालङ्कारभूषितां सावेशस्मेरवदनाम्॥८०॥

ध्यानार्थ कहते हैं—खवर्ग, वर्षण के लिये उद्यत नये मेघ के समान नीलवर्ण वाली, लम्बोदरी, जिनकी कमर व्याघ्रचर्म से ढ़की है, पीन तथा उन्नत स्तनों वाली, रक्तवर्ण वर्त्तुल तीन नेत्रों वाली, जिह्वा लपलपाने वाली, दाँतों के कारण कराल चेहरे वाली, पिङ्गलवर्णी, एकजटा, दोनों पैरों तक लटकती नीलकमल-सदृश माला धारण करने वाली, अतिनील जटाजूटों वाली, ललाट में श्वेत अस्थिपट्टिका में जड़े पाँच कपाल धारण-कारिणी, जवापुष्प के समान तक्षक नागकृत कुण्डल धारण करने वाली, अत्यन्त श्वेत नाग का हार धारण करने वाली, दूर्वादल के समान श्यामवर्ण नाग से बने यज्ञोपवीत-धारिणी, चतुर्भुजा, दाहिने (ऊपरी दाहिने हाथ) की मुट्ठी में सरक्त मांस का टुकड़ा दबा हुआ है, उसके जटाजूट में फँसा खड्ग का अग्रभाग, वाम के ऊपरी हाथ में रक्तनील वर्णा किञ्चित् विकासशील नीलकमल धारण करने वाली, दक्षिण के नीचे हाथ में बीजभूषित वृन्त (मुष्टिका) में विशिष्ट कैंची से अलंकृत हाथ वाली, बाँयें नीचे वाले हाथ में त्रिजगत् की जड़ता से पूर्ण शुभ्र कपाल से युक्त, चारो भुजाओं में धूमाभ्र नाग द्वारा बना केयूर, कनकाभ नाग का कङ्कण धारण करने वाली, शवारूढ़ा, शवहृदयस्थित दाहिना चरण विशिष्ट, शव के दोनों पैरों के ऊपर प्रसारित वाम चरणयुक्ता, कुन्दाभ नाग से बने कटिसूत्र को धारण करने वाली, ईषत् रक्त नागकृत नूपुर धारण करने वाली, तत्काल कटे पचास शिरों के केश एक-दूसरे में बाँध कर पैरों तक लम्बायमान नरमुण्ड माला-धारिणी, प्रज्वलित चिता में स्थिता, व्याघ्रचर्म से बने बाहरी परिधान को धारण करने वाली, स्त्रीगण के अखिल अलंकार से भूषिता, आवेशयुक्त ईषत हास्यवदना एकजटा का ध्यान करे।।८०।।

यथा वीरतन्त्रे—

ततो बद्धासनो वीर आत्मानं शोधयेत्ततः ।
रक्तवर्णं त्रपाबीजं नाभौ ध्यायेत् समाहितः ॥१॥
तज्जातवह्निना सर्वं दग्धं खं चिन्तयेत्ततः ।
पीतवर्णं वधूबीजं हृदि सञ्चिन्त्य साधकः ।
तद्भस्मोत्सारयेन्मन्त्री तदुद्भूतेन वायुना ॥२॥

वीरतन्त्र में कहा है कि उसके अनन्तर वीरसाधक आसनस्थ होकर आत्मा का शोधन करे। तत्पश्चात् समाहित होकर रक्तवर्ण त्रपाबीज (ह्रीं) का नाभि में ध्यान करे। उस (ह्रीं) बीज से उत्पन्न अग्नि से समस्त अवकाश तथा स्वयं को दग्ध होने की भावना करे। तत्पश्चात् मन्त्रज्ञ साधक हृदय में पीतवर्ण वधूबीज (स्त्रीं) का चिन्तन करके उस बीज से जात वायु द्वारा उस भस्म को उड़ा देने की भावना करे।।१-२।।

शब्दबीजं शुक्लवर्णं ललाटे चन्द्रमण्डले ।
ध्यात्वा तदमृतैनैव शरीरं परिकल्पयेत् ॥३॥
ततोऽपगतपापात्मा जगत्सर्वं चराचरम् ।
मग्नं व्यापकतोयाद्वा वाःकारं चिन्तयेत्ततः ॥४॥

ललाट के चन्द्रमण्डल में श्वेतवर्ण शब्दबीज 'हुं' का ध्यान करके उससे आ रहे अमृत द्वारा शरीर की परिकल्पना करनी चाहिये। इतना करके पापरहित हो गया साधक समस्त जगत् उस व्यापक जल में मग्न हो रहा है—ऐसी भावना करे। तदनन्तर 'आः' का चिन्तन करे।।३-४।।

तच्छब्दगुणयोगेन रक्तपद्मं विचिन्तयेत् ।
तस्योपरि ततो ध्यायेत् टाङ्कारात् श्वेतपङ्कजम् ॥५॥

उस शब्दगुण 'हुं' के योग से रक्तपद्म का चिन्तन करना चाहिये। तत्पश्चात् उसके ऊपर 'टां'कार से श्वेत पद्म का ध्यान करे।।५।।

तस्योपरि ततो ध्यायेद् हुङ्कारं नीलसन्निभम् ।
तस्योपरि ततो ध्यायेत्कर्त्रिकां बीजभूषिताम् ॥६॥
कर्त्र्युपरि महादेवीं खर्वां नीलघनप्रभाम् ।
लम्बोदरीं व्याघ्रचर्मसमावृतनितम्बिनीम् ॥७॥
पीनोन्नतपरोभारां रक्तवर्त्तुललोचनाम् ।
ललज्जिह्वां महाभागां दंष्ट्राकोटिसमुज्ज्वलाम् ॥८॥
पिङ्गोग्रैकजटाजूटां नीलनागसमुज्ज्वलाम् ।
नीलोत्पलसन्मालाबद्धजूटां भयङ्करीम् ॥९॥

श्वेतास्थिपट्टिकायुक्तकपालपञ्चशोभिताम् ।
ललाटे रक्तनागेन कृतकर्णावतंसिकाम् ॥१०॥
अतिशुभ्रमहानागकृतहारमहोज्ज्वलाम् ।
दूर्वादलश्यामनागकृतयज्ञोपवीतिनीम् ॥११॥
चतुर्भुजां रक्तमांसं खण्डमण्डितमुष्टिना ।
जटाजूटेऽग्रलग्नेन शोभिना तीक्ष्णधारया ॥१२॥
खड्गेन दक्षिणस्योर्द्ध्वे शोभितां वीरनादिनीम् ।
तदधस्ताद् बीजवृन्तकर्त्रिकालङ्कृतां पराम् ॥१३॥
वामोर्ध्वे रक्तनीलेषद्विकस्वरमनोहराम्।
दधतीं नीलपद्मञ्च तदधस्तात् कपालकाम् ॥१४॥
जगतां जाड्यसंहारि दधतीं कुन्दसन्निभाम् ।
धूम्राभनागसन्दोहकृतकेयूरसुन्दरीम् ॥१५॥
सुवर्णवर्णनागेन कङ्कणोज्ज्वलपाणिकाम् ।
शुभ्रवर्णमहादेवशवहृद् विमलासनाम् ॥१६॥
निर्यन्त्रणभिया तद्वत् सङ्गच्छत् प्रपदाञ्चनाम् ।
शवपादद्वयारूढ़वामपादां हसन्मुखीम् ॥१७॥
कुन्दाभनागसंशोभिकटिसूत्रां त्रिलोचनाम् ।
ईषद्रक्तेन नागेन कृतनूपुरपल्लवाम् ॥१८॥
सद्यः च्छिन्नगलद्रक्तनृमुण्डै रक्तभूषणैः ।
अन्योन्यकेशग्रथितैः पादपद्मप्रलम्बितैः ॥१९॥
पञ्चाशद्भिर्महामालां दधतीं परमेश्वरीम् ।
जलच्चितामध्यसंस्थां दीप्तिचर्मोत्तरांशुकाम् ॥२०॥
अक्षोभ्यनागसन्नद्धजटाजूटां वरप्रदाम् ।
एवंभूतां महादेवीमात्मानं योगवर्त्मनि ।
विज्ञापयेन्महादेव पण्डितोऽहं महाकविः ॥२१॥

तदनन्तर उसके ऊपर नील के समान हुङ्कार का ध्यान करे। तत्पश्चात् उसके बीजभूषिता कर्त्तरी का ध्यान करे। कर्त्रिका के ऊपर महादेवी का खर्वा, नीलमेघवत् कृष्णवर्णा, लम्बोदरी, व्याघ्रचर्म से आवृत नितम्ब वाली, पीन उन्नत स्तनधारिणी, रक्तवर्ण गोलाकृति नेत्रों वाली, लपलपाती जिह्वा वाली, महाभागा, करोड़ों दाँतों के कारण उज्ज्वला, पिङ्गल वर्ण की एक जटा वाली, नीलनाग धारण से उज्ज्वला, विकसित नीलकमल की माला से बद्ध जूड़ा वाली, भयङ्करी, ललाट पर श्वेत

अस्थिपट्ट की पट्टिका में पाँच कपालों से शोभिता, लाल नाग के कुण्डल से आभूषिता, अत्यन्त शुभ्र नागहार से महोज्ज्वला, दूर्वादलवत श्याम नाग का जनेऊ धारण करने वाली, चतुर्भुजा, रक्त मांसखण्ड-मण्डित मुट्ठी में (राक्षसों के) जटाजूट में तीक्ष्ण खड्ग का अग्रभाग पिरोये हुये ऐसे ऊर्ध्व दाहिने हाथ से शोभिता, वीरनाद करने वाली, उसके अधोहस्त में बीजमण्डित वृन्त (मुट्ठी) युक्त कैंची से शोभित, परा, वाम ऊर्ध्व हाथों में रक्त नील किञ्चित् विकसित मनोहर नीलकमल-धारिणी, उसके नीचे वाले हाथ में जगत् का जाड्य संहार करने वाली, कुन्द के सन्निभ कपाल धारण करने वाली, धूम्राभ नागसमूह से बने केयूर से सुन्दरता को प्राप्त, सोने के रंग के नाग के कङ्कण से उज्ज्वल हाथों वाली, शुभ्र वर्ण महादेवस्वरूप शव के हृदय पर स्थापित पैरों वाली, महादेवरूप शव के पीड़न भय से वाम पाद के अग्रांश भागमात्र को शव के पैरों पर रखे हुये, हंसते मुख वाली, कुन्दाभ नाग से बने कटिसूत्र (करधनी) धारण करने वाली, त्रिलोचना, तनिक लाल नागकृत नूपुर-धारिणी, सद्यः कटे रक्त बहते परस्पर एक-दूसरे मुण्ड के केश परस्पर बँधे हुये ऐसे पचास मुण्डों की पादपर्यन्त लम्बायमान माला-धारिणी, परमेश्वरी, जलती चिता में स्थिता, व्याघ्रचर्मयुक्त बाहरी परिधान से शोभिता, अक्षोभ्य नाग से बंधे जटाजूट वाली, वरप्रदा, इस प्रकार की अद्भुत महादेवी का योगपथ में ध्यान करे। हे महादेव! आत्मा को विज्ञापित करे कि मैं पण्डित तथा महाकवि हूँ।।६-२१।।

फेत्कारीये—

मायां नाभौ रक्तवर्णां ध्यात्वा तज्जातवह्निना।
शुष्कं कर्मात्मकं देहं दग्धं सञ्चिन्तयेत्ततः ॥२२॥

फेत्कारीयतन्त्र में कहते हैं कि माया (ह्रीं) का रक्तवर्णा ध्यान नाभि में करना चाहिये। तत्पश्चात् इस (ह्रीं) मन्त्र से उत्पन्न अग्नि से शुष्क कर्मात्मक देह के दग्ध होने की भावना करनी चाहिये।।२२।।

स्त्रीङ्कारं हृदि पीताभं तदुद्भूतेन वायुना।
भस्म प्रोत्सारितं कृत्वा ललाटे चिन्तयेत्ततः ॥२३॥
कूर्चं तुषारवर्णाभां तदुद्भूतामृतेन च।
तदस्थिप्लावितं कृत्वा तदात्मानं विचिन्तयेत् ॥२४॥
सर्वव्यथाविनिर्मुक्तं निर्मलं देवतामयम्।
भूतशुद्धिं विधायेत्थं शून्यं विश्वं विचिन्तयेत् ॥२५॥

हृदय में पीताभ (वधूबीज) स्त्रीं का चिन्तन करे। इस मन्त्र से उद्भूत वायु द्वारा उस भस्म को उड़ा कर ललाट में तुषार के वर्ण वाले हुं बीज (कूर्चबीज) का चिन्तन

करना चाहिये। इस कूर्चबीज से क्षरित अमृत द्वारा उस अस्थि को प्लावित करके (ललाटास्थि को प्लावित करके) समस्त व्यथाहीन निर्मल देवतामय आत्मा का चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार भूतशुद्धि करके विश्व का चिन्तन शून्यरूप से करना चाहिये।।२३-२५।।

निर्लेपं निर्गुणं शुद्धमात्मानं देवतामयम् ।
अन्तरीक्षे ततो ध्यायेदाःकाराद् रक्तपङ्कजम् ।।२६।।

आत्मा को निर्लेप, निर्गुण, शुद्ध तथा देवतामय जाने। तत्पश्चात् अन्तरिक्ष में 'आः' से रक्तकमल का ध्यान करे।।२६।।

भूयस्तस्योपरि ध्यायेट्टाङ्कारात् श्वेतपङ्कजम् ।
तस्योपरि पुनर्ध्यायेत् हुङ्कारं नीलसन्निभम् ।।२७।।

पुनः उसके ऊपर 'टां'कार से श्वेत कमल का ध्यान किया जाय। पुनः उसके ऊपर नीलसन्निभ 'हुं' का ध्यान करे।।२७।।

ततो हुङ्कारजां पश्येत् कर्त्रिकां बीजभूषिताम् ।
कर्त्र्युपरिगतां ध्यायेदात्मानं तारिणीमयम् ।।२८।।

तदनन्तर हुंकार मन्त्र से उत्पन्न बीजभूषिता कर्त्रिका का दर्शन करे। कर्त्रिका के ऊपर आत्मा का ध्यान तारिणीमय करना चाहिये।।२८।।

प्रत्यालीढपदां घोरां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
खर्वां लम्बोदरीं भीमां व्याघ्रचर्मावृतां कटौ ।।२९।।
नवयौवनसम्पन्नां पञ्चमुद्राविभूषिताम् ।
चतुर्भुजां ललज्जिह्वां महाभीमां वरप्रदाम् ।।३०।।
खड्गकर्त्रीसमायुक्तसव्येतरभुजद्वयाम् ।
कपालोत्पलसंयुक्तसव्यपाणियुगान्विताम् ।।३१।।
पिङ्गोग्रैकजटां ध्यायेन्मौलावक्षोभ्यभूषिताम् ।
बालार्कमण्डलाकारलोचनत्रयभूषिताम् ।।३२।।
ज्वलच्चितामध्यगतां घोरदंष्ट्राकरालिनीम् ।
सावेशस्मेरवदनां स्त्र्यलङ्कारविभूषिताम् ।।३३।।
विश्वव्यापकतोयान्तः श्वेतपद्मोपरि स्थिताम् ।
अक्षोभ्यो देवि मूर्द्धन्यस्त्रिमूर्त्तिर्नागरूपधृक् ।।३४।। इति।

वह तारिणी है प्रत्यालीढ़पदा, खड़ी हुई, घोरा, मुण्डमाला-भूषिता, खर्वा, लम्बोदरी,

भीमा, भयजनिका, व्याघ्रचर्मावृत कटि वाली, नवयौवना, पञ्चमुद्राविभूषिता, चतुर्भुजा, लपलपाती जीभ वाली, महाभयङ्कर मूर्त्ति वाली, वरप्रदा, खड्ग तथा कैंची को दक्षिण बाहुद्वय में धारण करने वाली, वाम बाहुद्वय में कपाल तथा कमलधारिणी, पिङ्गलवर्ण केशों की एक जटा से शोभिता, जलते चितामध्य में रहने वाली, घोर दाँतों वाली, करालिनी, आवेशभावयुक्त, तनिक हास्यमग्ना, स्त्रीगण के गहनों से आभूषिता, विश्वव्यापी जल के मध्यगत श्वेतकमल पर आसीना देवी का ध्यान करे। नागरूपधारी त्रिमूर्त्ति है—अक्षोभ्य। यह देवी के मस्तक पर स्थित है।।२९-३४।।

पञ्चमुद्राविभूषितामिति ललाटे श्वेतास्थिपट्टिकाचतुष्टयान्वितमुकुटायितकपालपञ्चकान्वितामित्यर्थः। श्वेतास्थिपट्टिकायुक्तकपालपञ्चशोभितामिति वीरतन्त्रतन्त्रचूडामणिवचनात्। श्रीमता शङ्कराचार्येणाप्युक्तम्—विचित्रास्थिमालां ललाटे करालां कपालञ्च पञ्चान्वितां धारयन्तीमिति पञ्चान्वितां कपालपञ्चकान्वितां विचित्रास्थिमालां अस्थिपट्टिकाचतुष्टयीं करालां कपालं अर्थात् पट्टिकालग्नं तदेव कपालपञ्चकञ्च ललाटे धारयन्तीमिति तदर्थः। अथवा पञ्चमुद्राविभूषितामित्यस्य योनिभूतिनीबीजदानवधूमकेतुलेलिहानाख्यपञ्चमुद्रासन्तुष्टामित्यर्थः।।३५।।

पञ्चमुद्राविभूषिताम् = ललाट में श्वेतवर्ण अस्थि की पट्टिका-चतुष्टय में संयुक्त मुकुटाकृति कपाल पञ्चक (पाँच कपालों) से युक्त। यही वीरतन्त्र तथा तन्त्रचूड़ामणि का भी वचन है। श्रीमत् शंकराचार्य ने कहा है कि अस्थिपट्टि चतुष्टयी। करालं कपालं = भीषण नरमुण्ड अर्थात् पट्टिका से लगे उन पाँच कपालों को मुकुट के समान धारण करने वाली अथवा पञ्चकपाल अर्थात् पञ्चमुद्रा-विभूषित भी कहा जा सकता है। पाँचों मुद्रायें हैं—योनिमुद्रा, भूतिनीमुद्रा, बीजदानवमुद्रा, धूमकेतुमुद्रा तथा लेलिहाना मुद्रा।।३५।।

नागनामध्याने तन्त्रान्तरोक्तं यथा—

जटास्वनन्तः श्रवसोश्च तक्षको महादिपद्मो हृदि हारभूषणः।
अवाप कर्कोट इहोपवीततां सुमेखलायामथ देवि वासुकीः।।३६।।
सशङ्खपालः किल कङ्कणं गतः करेषु पद्मः पदनूपुरश्रियम्।
भुजेषु नागः कुलिकोऽङ्गदो मतो भुजोर्ध्वमाला च महास्थिभिः स्थिता।।३७।।
सितश्च रक्तो धवलश्च मेचकस्तथैव पीतोऽप्यसितश्च पाण्डुरः।
भुजङ्गमालामिह वर्णजातयो भवन्ति सर्वैर्मणिभिर्ज्वलन्ति ताम्।।३८।।

नागों का नाम तथा ध्यान बताते हुये अन्य तन्त्र में कहा गया है कि जटाओं में अनन्त, कर्णद्वय में तक्षक तथा महापद्म हृदय का हार है। कर्कोटक को देवी का यज्ञोपवीतत्त्व प्राप्त हुआ है। हे देवि! वासुकी सुन्दर मेखलारूप है। बाहु में कुलिक

नाग अंगदनामक आभूषण बना है। बाहु के ऊपर महा अस्थि-निर्मित माला है। शङ्खपाल नाग बाहुओं का कङ्कण रूप है। पद्म नामक नाग नूपुर बनने का सौभाग्य प्राप्त कर रहा है। सित (श्वेत) = अनन्त नाग। तक्षक = रक्तवर्ण नाग, धवल = महापद्म नाग, मेचक (श्याम) = कर्कोटक नाग, पीत = वासुकी नाग, असित = शङ्खपाल नाग, पाण्डुर = कुलिक नाग। ये सब रंग नागों की जाति के लिये कहे गये हैं। देवी ने यह नागमाला धारण किया है। नागों की मणियों से वे उज्ज्वल प्रतीत हो रही हैं।।३६-३८।।

ततः आः सोऽहमिति मन्त्रेण जीवं कुण्डलिनीं तत्त्वानि च यथा-स्थानमानयेत्॥३९॥

तदनन्तर आः सोऽहं इस मन्त्र से जीव को, कुण्डलिनी को तथा तत्त्वसमूह को यथा-स्थान ले आये (इस प्रसंग को इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में कुण्डलिनी प्रकरण में देखना चाहिये)।।३९।।

ततः प्राणायामः। वामनासापुटेन मूलं चतुर्वारं जप्त्वा वायुं पूरयेत्। तदनु नासापुटौ धृत्वा षोडशवारेन कुम्भयेत्। तदनु दक्षिणनासापुटेन वाराष्टकावर्त्तेन रेचयेत्। पुनर्दक्षिणेनापूर्य कुम्भयित्वा वामेन रेचयेत्। पुनर्वामेनापूर्य कुम्भयित्वा दक्षिणेन रचयेदेवं कृते प्राणायामत्रयं भवति॥४०॥

अब प्राणायाम कहते हैं। चार बार मूल मन्त्र जपते-जपते वाम नासा में वायु का पूरण करे। तदनन्तर दोनों नासापुटों को दबाकर १६ बार जप करते हुये कुम्भक करे। पुनः दाहिने नासापुट से आठ बार मूल मन्त्र की भावना करते हुये (जप करते हुये) वायु का रेचन करे। पुनः अब दाहिने नासापुट द्वारा पूर्ववत् पूरक-कुम्भक तथा रेचक करना चाहिये। यह एक आवृत्ति है। इस प्रकार तीन आवृत्ति करनी चाहिये।।४०।।

ततः ऋष्यादिन्यासः। शिरसि—अक्षोभ्य ऋषये नमः। मुखे—बृहतीछन्दसे नमः। हृदि—श्रीमदेकजटायै देवतायै नमः। एवं तत्तन्नाम प्रयोज्यम्। मूलाधारे—हुं बीजाय नमः। पादयोः—फट् शक्तये नमः। सर्वाङ्गे—कूर्चास्त्रेतरमन्त्राक्षराण्युच्चार्य कीलकाय नमः इति न्यस्य मम द्रुतकवित्वं पाण्डित्यसिध्यर्थे विनियोगः चतुर्वर्गफलसिध्यर्थे इति वा सर्वाङ्गे पुनर्न्य-सेत्॥४१॥

अब ऋष्यादि न्यास कहते हैं। अस्य श्रीमदेकजटामन्त्रस्य अक्षोभ्य ऋषिः, बृहती च्छन्दः श्रीमदेकजटा देवता हुं बीजं फट् शक्तिः ह्रीं स्त्रीं कीलकं मम द्रुतकवित्वपाण्डित्य-सिध्यर्थे पूजने विनियोगः—इस प्रकार विनियोग करे मस्तक पर—ॐ अक्षोभ्य ऋषये

नमः, मुख में—ॐ बृहतीच्छन्दसे नमः, हृदय में—श्रीमदेकजटायै देवतायै नमः से न्यास करे। इस प्रकार तारापूजा में तारा का तथा उग्रतारा पूजा में उग्रतारा के नाम का प्रयोग करना चाहिये। मूलाधार में—हुं बीजाय नमः, पादद्वय में—ॐ फट् शक्तये नमः, कूर्च (हुं) तथा अस्त्र (फट्) भिन्न मन्त्राक्षरसमूह 'ह्रीं स्त्रीं' का उच्चारण करके सर्वाङ्ग में 'ॐ ह्रीं स्त्रीं कीलकाय नमः' इस प्रकार से न्यास करके मम द्रुतकवित्वसिध्यर्थे विनियोगः। चतुर्वर्गफलसिध्यर्थे विनियोगः कहकर भी इसी प्रकार से सर्वाङ्ग न्यास करना चाहिये।।४१।।

यथा वीरतन्त्रे—

अक्षोभ्य ऋषिरेतस्या बृहतीछन्द ईरितम्।
नीलसरस्वती देवी त्रिषु लोकेषु गोपिता।
हुं बीजमन्त्रं शक्तिः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदा ।।४२।।

वीरतन्त्र में कहा है कि इसके अक्षोभ्य ऋषि तथा बृहती छन्द कहा गया है। हूँ बीज तथा चतुर्वर्गफलप्रदा अस्त्र शक्ति है।।४२।।

नीलसरस्वतीत्युपललक्षणम्। तत्र कीलकं वीरतन्त्राद्यनुक्तमपि रहस्य-कारादिसकलसम्प्रदायनिखिलानुसारादवगन्तव्यं न्यस्तव्यञ्च। चतुर्वर्ग-फलेति विनियोगकीर्त्तनम्। तच्च फलान्तरस्याप्युपलक्षणम्।।४३।।

यहाँ नीलसरस्वती पद एकजटा प्रभृति का उपलक्षण है। इसमें वीरतन्त्र प्रभृति में कुछ नहीं कहा होने के कारण रहस्यकारादि सभी सम्प्रदायों के लिखे अनुसार यहाँ कीलक है, यह जानना होगा तथा न्यास करना होगा। चतुर्वर्गफलप्रदा = इसके द्वारा विनियोग कहा गया। यह भी फलान्तर का उपलक्षण है।।४३।।

ततो मातृकान्यासः। तथा चोक्तम्—

यथा काली तथा नीला तत्क्रमान् मातृकां न्यसेत् ।।४४।।

इसके पश्चात् मातृका न्यास है। जैसे तन्त्र में कहा है—जैसे काली वैसे ही तारा। इसी क्रम से मातृका न्यास करे।।४४।।

तथा च कुमारीतन्त्रे—

लृकारान्तान् मातृवर्णान् हृदये संप्रविन्यसेत्।
घकारान्तांस्ततः पश्चाद् दक्षिणे च प्रविन्यसेत् ।।४५।।
ढकारान्तान् महामन्त्रांस्ततो वामभुजे न्यसेत्।
भकारान्तांस्तथा पश्चात्ततो दक्षिणपादके।
क्षकारान्तांस्ततः पश्चाद् विन्यसेत् वामपादके ।।४६।।

कुमारीतन्त्र में कहा है—हृदय में लृकारान्त मातृका के वर्णों का न्यास करना चाहिये। तदनन्तर दक्षिण बाहु में घकारान्त मातृका वर्णों का न्यास करे। तत्पश्चात् वाम बाहु में ढकारान्त मातृकाओं का न्यास करे। तदनन्तर दक्षिण पाद में इसी प्रकार भकारान्त मातृका वर्णों का न्यास करे। तत्पश्चात् वामपाद में क्षकारान्त मातृका वर्णों का न्यास करे।।४५-४६।।

तथा च हृदि—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं नमः। दक्षिणभुजे—एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं नमः। वामभुजे—ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं नमः। दक्षिणपादे—णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं नमः। वामपादे—मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं नमः।।४७।।

वर्ण न्यास ऊपर स्पष्ट लिखा है; अत: अनुवाद की आवश्यकता नहीं है।।४७।।

यद्यप्ययं न्यासः कालीतन्त्रे निर्विन्दुस्तथापि वीरतन्त्रानुसारात् सबिन्दुरेव कर्त्तव्यः। भैरवीतन्त्रे तु 'सविन्दून् वा न्यसेदेतान्निर्विन्दून् वाथ वर्णकान्' इति।।४८।।

यद्यपि कालीतन्त्र में यह न्यास विना बिन्दु (-) के कहा गया है तथापि वीरतन्त्रानुसार इसे बिन्दुयुक्त करना ही उचित है। भैरवीतन्त्र के अनुसार यह न्यास बिन्दुयुक्त अथवा बिन्दुरहित—दोनों प्रकार से किया जा सकता है।।४८।।

ततः कराङ्गन्यासौ। ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ह्रीं अखण्ड-वाग्रूपिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा। ह्रूं ब्रह्मवाग्रूपिण्यै मध्यमाभ्यां वषट्। ह्रैं विष्णुवाग्रूपिण्यै अनामिकाभ्यां हुं। ह्रौं रुद्रवाग्रूपिण्यै कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ह्रः सर्ववाग्रूपिण्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु। अङ्गुलीनिय-मस्तु पूर्वमेवोक्तः। अयन्तु नीलसरस्वतीपक्षे।।४९।।

अब कराङ्गन्यास होगा। जैसे—

ॐ ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै अंगुष्ठाभ्यां नम:।

ॐ ह्रीं अखण्डवाग्रूपिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा।

ॐ ह्रूं अखण्डब्रह्मवाग्रूपिण्यै मध्यमाभ्यां वषट्।

ॐ ह्रैं अखण्डविष्णुवाग्रूपिण्यै अनामिकाभ्यां हुं।

ॐ ह्रौं अखण्डरुद्रवाग्रूपिण्यै कनिष्ठाभ्यां वौषट्।

ॐ ह्रः सर्ववाग्रूपिण्यै करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

इसी प्रकार से हृदयादि में भी न्यास करे। अंगुलिनियम पहले प्रकरणों में कहा जा चुका है। यह न्यास नीलसरस्वती हेतु है।।४९।।

तथा च तामधिकृत्य सिद्धसारस्वते—

अखिलवाग्रूपिणीं प्रोच्य हृदयाय नमो वदेत्।
अखण्डवाग्रूपिणीति शिरसे वह्निवल्लभा ॥५०॥
ब्रह्मवाग्रूपिणीमुक्त्वा शिखायै वषड़ित्यपि।
विष्णुवाग्रूपिणीं प्रोच्य कवचाय हुमुच्चरेत् ॥५१॥
रुद्रवाग्रूपिणीं नेत्रत्रयाय वौषड़ित्यपि।
सर्ववाग्रूपिणीमुक्त्वा अस्त्राय फड़िति स्मरेत्।
षड्दीर्घमायाबीजान्ते ङेऽन्तं नामाभियोजयेत् ॥५२॥

नीलसरस्वती प्रकरण में सिद्ध सारस्वत ग्रन्थ में यही कहा गया है—अखिलवाग्रूपिण्यै कहकर हृदयाय नमः एवं अखण्डवाग्रूपिण्यै कहकर शिरसे स्वाहा कहे। ब्रह्मवाग्रूपिण्यै कहकर शिखायै वषट् कहे। विष्णुवाग्रूपिण्यै कहकर कवचाय हुं का उच्चारण करना चाहिये। रुद्रवाग्रूपिण्यै कहकर नेत्रत्रयाय वौषट् कहे। सर्ववाग्रूपिण्यै के पश्चात् अस्त्राय फट् कहना होगा—यह स्मरण रखना चाहिये।

छः दीर्घ स्वरों से युक्त मायावीज के अन्त में चतुर्थी विभक्ति से समन्वित नाम का इसके साथ योग भी करना चाहिये।।५०-५२।।

अन्यत्र तु सर्वत्र ह्रां एकजटायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ह्रीं तारिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा। ह्रूं वज्रोदके मध्यमाभ्यां वषट्। ह्रैं उग्रजटे अनामिकाभ्यां हुं। ह्रौं महाप्रतिसरे कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु॥५३॥

अन्यत्र सभी स्थल पर ॐ ह्रां एकजटायै अंगुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तारिण्यै तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ह्रूं वज्रोदके मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ ह्रैं उग्रजटे अनामिकाभ्यां हुं, ॐ ह्रौं महाप्रतिसरे कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्—इस प्रकार न्यास करना चाहिये। हृदयादि स्थान में भी इसी प्रकार अंगन्यास करना चाहिये।।५३।।

तथा चैकजटादिमधिकृत्य नीलतन्त्रे—

बीजान्ते एकजटायै हृदयं परिकीर्त्तितम्।
तारिण्यै शिरसे तद्वद् वज्रोदके शिखा तथा ॥५४॥
उग्रजटे च कवचं महाप्रतिसरे तथा।
पिङ्गोग्रैकजटे तद्वन्नेत्रास्त्रे परिकीर्त्तिते ॥५५॥

छः दीर्घयुक्त (ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः) मायाबीजान्त में 'एकजटायै नमः' लगाये—यह हृदयमन्त्र कहा गया है। इसी प्रकार मायाबीजान्त में तारिण्यै शिरसे स्वाहा। इसी प्रकार मायाबीजान्त में वज्रोदके शिखायै वषट्।

इसी प्रकार मायाबीज के अन्त में उग्रजटे कवचाय हुं। इसी प्रकार मायाबीज के अन्त में महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्। इसी प्रकार मायाबीजान्त में पिङ्गोग्रैकजटे करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्—यह अस्त्र मन्त्र कहा गया है।।५४-५५।।

बीजान्ते षड्दीर्घयुक्तमायाबीजान्ते 'षड्दीर्घमायाबीजान्ते ङेऽन्तं नामाभियोजयेदि'ति पूर्वकल्पे तथा दर्शनात्। कराङ्गन्यासयोः प्रतिसरे च तथैव दर्शनादिति ध्येयम्। अनुक्तत्वादत्र वर्णन्यासपीठन्यासौ न लिखितौ। तथा च फेत्कारीये—अत्रोक्तमाचरेत् सम्यक् नान्यत् सञ्चारयेद् बुधः। ततः फलार्थिना ताराषोढान्यासः कर्त्तव्यः॥५६॥

बीजान्ते = छः दीर्घ स्वरयुक्त मायाबीज के अन्त में। यही नियम नीलसरस्वती कल्प में भी देखा जाता है। कराङ्गन्यास में 'प्रतिसरे' के स्थान पर 'परिसरे' यह पाठ त्रुटिपूर्ण है। रक्षाग्रन्थि बन्धन में, अर्घ्यदान में तथा कवचान्तर में इसी प्रकार 'प्रतिसरे' ही देखा जाता है।

शास्त्र में उल्लेख न होने के कारण वर्णन्यास तथा पीठन्यास नहीं लिखा गया। इसीलिये फेत्कारीयतन्त्र में लिखा है कि इस शास्त्र में जो कहा गया है, विद्वान् साधक उसका ही सम्यक् प्रकार से अनुष्ठान करे, अन्य आचरण नहीं करे। फल चाहने वाले साधक के लिये ताराषोढान्यास कर्त्तव्य है।।५६।।

ताराषोढां प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपिताम्।
सर्वविघ्नोपशमनीं सर्वपापप्रणाशिनीम्॥५७॥
महादारिद्र्यशमनीं सर्वसम्पत्प्रदायिनीम्।
सर्वकामप्रदां नित्यां सर्वसाम्राज्यदायिनीम्॥५८॥

समस्त तन्त्रशास्त्र में सुरक्षिता, महाविघ्ननिवारिणी, सर्वपाप का प्रशमन करने वाली, महान् दारिद्र्य का शमन करने वाली, सभी सम्पत्ति देने वाली, सर्वकामप्रदा, नित्या, सर्वसाम्राज्य देने वाली तारा षोढा को कहा जाता है।।५७-५८।।

शिष्याय भक्तियुक्ताय विनीताय महात्मने।
वदान्याय कुलीनाय शुद्धाचाररताय च॥५९॥
एवंविधाय देवेशि साधकाय प्रकाशयेत्।
अन्यथा सिद्धिहानिः स्यादित्याज्ञा शङ्करैः कृता॥६०॥

हे देवेशि! भक्तिमान, विनीत, सबका हितचिन्तक, वदान्य, कुलीन, शुद्धाचार में रत साधक के समक्ष ही ताराषोढा का प्रकाश करे। इसके विरुद्ध करने से सिद्धि की हानि होगी। यह शंकर का आदेश है।।५९-६०।।

रुद्रैस्तु प्रथमो न्यासो द्वितीयन्तु ग्रहैर्युतः।
लोकपालैस्तृतीयः स्याच्छिवशक्त्या चतुर्थकः।
तारादिभिः पञ्चमः स्यात् षष्टः पीठैर्निगद्यते ।।६१।।

रुद्रवर्ग द्वारा प्रथम न्यास अर्थात् प्रथम रुद्रन्यास। द्वितीय है—ग्रहवर्गयुक्त ग्रहन्यास। तृतीय है—लोकपालसमूहयुक्त लोकपालन्यास। चतुर्थ है—शिव-शक्तियुक्त शिवशक्ति न्यास। पञ्चम तारादियुक्त तारादिन्यास। षष्ठ पीठसमूह द्वारा पीठन्यास—इस छः को ताराषोढा न्यास कहते हैं।।६१।।

एकेन सहिता रुद्राः पञ्चाशत् परिकीर्त्तिताः।
बिन्दुयुक्तैर्मातृकार्णैस्त्र्यक्षरी बीजपूर्वकैः ।।६२।।
ङेऽन्तैर्नमोऽन्तैर्देवेशि! विन्यसेत्तान् क्रमात् सुधीः।
तारिणी त्र्यक्षरी प्रोक्ता भवबन्धविनाशिनी ।।६३।।

एक के साथ पचास = ५१ रुद्र कहे गये हैं। हे देवेशि! सुधी साधक तारा के त्र्यक्षर बीज के साथ बिन्दुयुक्त मातृकावर्णसमूह चतुर्थी विभक्त्यन्त रुद्र नाम तथा अन्त में नमः देकर मातृका स्थान में इन मातृकावर्णों का क्रमशः न्यास करे। अब बन्धननाशिनी तारिणी तीन अक्षर वाली कही गयी है (ह्रीं स्त्रीं हुं)।।६२-६३।।

नीलवर्णां त्रिनयनां शवासनसमायुताम्।
विभ्रतीं विविधां भूषां मौलावक्षोभ्यभूषिताम्।
एवं ध्यात्वा तारिणीन्तु समाहितमनाश्चिरम् ।।६४।।

नीलवर्णा, त्रिनेत्रा, शवासन पर आरूढ़, विविध आभूषणों वाली, मस्तक पर अक्षोभ्य भूषिता तारिणी की इस मूर्त्ति का ध्यान करके दीर्घकाल तक समाहित होकर षोढ़ान्यास करना चाहिये।।६४।।

अथ रुद्रन्यासः। ह्रीं स्त्रीं हुं अं श्रीकण्ठेशाय नमः। इत्यादिना मातृकावन्न्यसेत्। ह्रीं स्त्रीं हुं आं अनन्तेशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हुं इं सूक्ष्मेशाय नमः, ह्रीं स्त्रीं हुं ईं त्रिमूर्त्तीशाय, ह्रीं स्त्रीं हुं ऋं भावभूतीशेशाय, स्त्री हुं ॠं तिथीशेषायः, ह्रीं स्त्रीं हुं लं स्थाण्वीशाय, ह्रीं स्त्रीं हुं लॄं हरेशाय, ह्रीं स्त्रीं हुं एं झिन्टीशेशाय, ह्रीं स्त्रीं हुं ऐं भौतिकेशाय, ह्रीं स्त्रीं हुं ओं सद्योजातेशाय, ह्रीं स्त्रीं हुं औं अनुग्रहेश्वरेशाय, ह्रीं स्त्रीं हुं अं अक्रूरेशाय,

ह्लीं स्त्रीं हुं अः महासेनेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं कं क्रोधेशेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं खं चण्डेशेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं गं पञ्चान्तकेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं घं शिवोत्तमेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं ङं एकरुदेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं चं कूर्मेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं छं एकनेत्रेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं जं चतुराननेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं झं अजेशेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं ञं शर्वेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं टं सोमेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं ठं लाङ्गलीशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं डं दारुकेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं ढं अर्द्धनारीश्वरेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं णं उमाकान्तेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं तं आषाढ़ीशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं थं दण्डीशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं दं अद्रीशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं धं मीनेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं नं मेषेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं पं लोहितेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं फं शिखीशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं बं छगलण्डेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं भं द्विरण्डेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं मं महाकालेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं यं वालीशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं रं भुजङ्गेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं लं पिनाकीशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं वं खड्गीशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं शं बकेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं षं श्वेतेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं सं भृगीशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं हं नकुलीशाय, ह्लीं स्त्रीं हु लं शिवेशाय, ह्लीं स्त्रीं हुं क्षं संवर्त्तकेशाय— इति रुद्रन्यासः॥६५॥

अब उक्त प्रकार से रुद्रन्यास करे। सभी मन्त्रों के अन्त में 'नमः' लगेगा।।६५।।

स्वरैर्हृदि न्यसेत् सूर्यं रक्तं त्र्यक्षरपूर्वकैः।
भ्रुवोर्मध्ये यवर्गेण सोमं शुक्लन्तु विन्यसेत्॥६६॥
नेत्रत्रये कवर्गेण लोहितं मङ्गलं न्यसेत्।
हृन्मण्डले तथा श्यामं चवर्गेण बुधं न्यसेत्॥६७॥
कण्ठकूपे पीतवर्णं टवर्गेण बृहस्पतिम्।
पाण्डुराभं तवर्गेण शुक्रञ्च गलदेशके॥६८॥

बीजयुक्त सभी स्वर वर्ण के साथ रक्तवर्ण सूर्य का ध्यान करे। भ्रूमध्य में इस त्र्यक्षर बीज (ह्लीं स्त्रीं हुं) के साथ यवर्ग के स्वर लगाने पर शुक्ल वर्ण वाले सोम का न्यास (इस यवर्ग के साथ) करना चाहिये। नेत्रत्रय में बीजत्रय के साथ लोहित वर्ण वाले मंगल का न्यास कवर्ग के सहित करना चाहिये। हृदय मण्डल में इन बीजत्रय के साथ चवर्ग के स्वरों सहित श्याम वर्ण वाले बुध का न्यास करना चाहिये। कण्ठकूप में टवर्ग के साथ इन बीजत्रय के साथ पीत वर्ण वाले बृहस्पति का न्यास किया जाता है। गलदेश में इन बीजत्रय के साथ तवर्ग के स्वरों को लेकर पाण्डुर वर्ण वाले शुक्र का न्यास किया जाता है।।६६-६८।।

नाभिदेशे नीलवर्णं पवर्गेण शनैश्चरम्।
शवर्गेण धूम्रवर्णं राहुं वक्त्रे न्यसेत्ततः।
ळक्षाभ्यां गुददेशे च केतुं धूम्रं वरानने ॥६९॥

नाभिदेश में बीजत्रयपूर्वक पवर्ग के साथ नीलवर्ण शनि का न्यास करना चाहिये न बीजत्रय के साथ शवर्ग के साथ धूम्रवर्ण राहु का मुख में न्यास करे। तदनन्तर गुह्यदेश में इन बीजत्रय के साथ ळ, क्ष वर्ण से धूम्रवर्ण केतु का न्यास करे।।६९।।

अथ प्रयोगः—

(१) हृदि रक्तवर्णं सूर्यं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः सूर्याय नमः।

(२) भ्रूमध्ये शुक्लवर्णं चन्द्रं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं यं रं लं वं सोमाय नमः।

(३) नेत्रत्रये लोहितं मङ्गलं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं कं खं गं घं ङं मङ्गलाय नमः।

(४) हृदयमण्डले श्यामं बुधं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं चं छं जं झं ञं बुधाय नमः।

(५) कण्ठकूपे पीतं बृहस्पतिं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं टं ठं डं ढं णं बृहस्पतये नमः।

(६) गलदेशे पाण्डुरं शुक्रं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं तं थं दं धं नं शुक्राय नमः।

(७) नाभिदेशे नीलवर्णं शनिं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं पं फं बं भं मं शनैश्चराय नमः।

(८) मुखे धूम्रवर्णं राहुं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं शं षं सं हं राहवे नमः।

(९) गुदे धूम्रवर्णं केतुं ध्यात्वा—ह्रीं स्त्रीं हुं ळं क्षं केतवे नमः॥७०॥

इति ग्रहन्यासः।

हृदय में रक्तवर्ण सूर्य का ध्यान करके क्रमांक एक का मन्त्र पढ़कर न्यास करे। भ्रूमध्य में शुक्ल वर्ण चन्द्र का ध्यान करके क्रमांक दो पर लिखा न्यास करे। नेत्रत्रय में लोहित वर्ण चन्द्र का ध्यान करके क्रमांक ३ में लिखा न्यास करे। हृदयमण्डल में श्यामवर्ण बुध का ध्यान करके क्रमांक ४ में लिखा न्यास करे। कण्ठकूप में पीत बृहस्पति का ध्यान करके क्रमांक ५ में लिखा न्यास करे। गलदेश में पाण्डुरवर्ण शुक्र का ध्यान करके क्रमांक ६ में लिखा न्यास करे।

नाभिदेश में नीलवर्ण शनि का ध्यान करके क्रमांक ७ में लिखा न्यास करे।
मुख में धूम्रवर्ण राहु का ध्यान करके क्रमांक ८ में लिखा न्यास करे।
गुदा में धूम्रवर्ण केतु का ध्यान करके क्रमांक ९ में लिखा न्यास करे।।७०।।

इन्द्रमग्निं यमं रक्षो वरुणं पवनं विभुम्।
ईशानमात्मनो मूर्ध्नि दिक्षु चाष्टस्वनुक्रमात्।।७१।।
अधोऽनन्तमूर्ध्वदेशे ब्रह्माणञ्च ततो न्यसेत्।
ह्रस्वदीर्घस्वरैश्चाष्टवर्गैस्त्र्यक्षरपूर्वकैः ।।७२।।

आत्मनो मूर्ध्निदेशेऽष्टदिक्षु अध ऊर्ध्वञ्च विन्यसेदित्यर्थः।

अपने मस्तक की आठों दिशाओं में यथाक्रम से बीजत्रय के साथ ह्रस्व-दीर्घ स्वर के साथ आठ वर्ग द्वारा इन्द्र, अग्नि, यम, रक्षः, वरुण, वायु, कुबेर तथा ईशान का न्यास करे। मस्तक के ऊर्ध्व में ब्रह्मा का एवं मस्तक के अधोदेश में अनन्त का न्यास करना चाहिये।।७१-७२।।

अथ प्रयोगः—

ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं कं खं गं घं ङं इन्द्राय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं इं ईं चं छं जं झं ञं अग्नये नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं उं ऊं टं ठं डं ढं णं यमाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ऋं तं थं दं धं नं निर्ऋतये नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं लृं लॄं पं फं बं भं मं वरुणाय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं एं ऐं यं वं रं लं वं वायवे नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं ओं औं शं षं सं हं कुबेराय नमः।
ह्रीं स्त्रीं हुं अं अः ळं क्षं ईशानाय नमः।
अधः—ह्रीं स्त्रीं हुं अनन्ताय नमः।
ऊर्ध्वे—ह्रीं स्त्रीं हुं ब्रह्मणे नमः।

नमः सर्वत्रः।।७३।।

अपने मस्तक से आठों दिशाओं की ओर तथा ऊर्ध्व एवं अधोदेश में ऊपर लिखे विधान के अनुसार न्यास करना चाहिये। इस प्रकार यह लोकपाल न्यास प्रकरण समाप्त होता है।।७३।।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
ततः परशिवो देवि षट्शिवाः परिकीर्त्तिताः।।७४।।

हे देवि! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव तथा परशिव—ये छः शिव कहे गये हैं।।७४।।

मूलाधारे तु ब्रह्माणं डाकिनीसहितं न्यसेत्।
सर्वत्र त्र्यक्षरीमुक्त्वा वादिसान्तं सबिन्दुकम्।।७५।।

इस शिव-शक्ति न्यास में सर्वत्र त्र्यक्षरी बीज ह्रीं स्त्रीं हुं बोलकर मूलाधार, स्वाधिष्ठान में सबिन्दु वकार से लेकर सकार-पर्यन्त वर्ण बोलकर डाकिनी-सहित ब्रह्मा का न्यास करना चाहिये।।७५।।

स्वाधिष्ठानाख्यचक्रे तु सविष्णुराकिणीं तथा।
वादि लान्तं प्रविन्यस्य नाभौ तु मणिपूरके।।७६।।
डादिफान्तार्णसहितं रुद्रञ्च लाकिनीं तथा।
अनाहते कादिठान्तमीश्वरं काकिनीं तथा।।७७।।
विशुद्धाख्यमहाचक्रे षोडशस्वरसंयुतम्।
सदाशिवं शाकिनीन्तु विन्यसेत् पूर्ववत्ततः।।७८।।

स्वाधिष्ठान चक्र में सबिन्दु वकार से लकार-पर्यन्त वर्ण को बोलते हुये विष्णु के साथ राकिनी का न्यास करे। नाभि के मणिपूर में सविन्दु डकार से लेकर वकार-पर्यन्त वर्ण को बोलते हुये रुद्र तथा लाकिनी का न्यास करे। अनाहत में विन्दुसहित क से ठ-पर्यन्त वर्ण का उच्चारण करके ईश्वर तथा काकिनी का न्यास करे।।७६-७८।।

विशुद्धाख्यमहाचक्रे षोडशस्वरसंयुतम्।
सदाशिवं शाकिनीन्तु विन्यसेत् पूर्ववत्ततः।।७९।।

विशुद्ध चक्र में १६ संख्यक स्वर जो बिन्दुयुक्त हैं, उनसे सदाशिव तथा शाकिनी का पूर्ववत् न्यास करना चाहिये।।७९।।

आज्ञाचक्रे तु देवेशि ळक्षवर्णसमन्वितम्।
ब्रह्मरूपं परशिवं हाकिनीसहितं न्यसेत्।।८०।।

हे देवेशि! आज्ञाचक्र में 'ळ' 'क्ष' वर्ण से परशिव का हाकिनी शक्ति के साथ न्यास करे।।८०।।

अथ प्रयोगः—

मूलाधारे—ह्रीं स्त्रीं हुं वं शं षं सं डाकिनीसहितब्रह्मणे नमः।
स्वाधिष्ठाने—ह्रीं स्त्रीं हुं वं भं मं यं रं लं काकिनीसहितविष्णवे नमः।
मणिपूरे—ह्रीं स्त्रीं हुं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं लाकिनीसहितरुद्राय नमः।

अनाहते—ह्रीं स्त्रीं हुं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं काकिनीसहितेश्वराय नमः।

विशुद्धाख्ये—ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः शाकिनीसहितसदाशिवाय नमः।

आज्ञाचक्रे—ह्रीं स्त्रीं हुं ळं क्षं हाकिनीसहितपरशिवाय नमः।

इति शिवशक्तिन्यास॥८१॥

इस प्रकार से प्रयोगानुसार शिव-शक्ति न्यास करना चाहिये। इसके अनुवाद की आवश्यकता नहीं है।।८१।।

तारा चोग्रा महोग्रा च वज्रा नीला सरस्वती।
कामेश्वरी भद्रकाली इत्यष्टौ तारिणी मता॥८२॥

अब तारादि न्यास करना होगा। तारा, उग्रा, महोग्रा, वज्रा, नीला, सरस्वती, कामेश्वरी तथा भद्रकाली—इस प्रकार से आठ तारिणी कही गयी हैं।।८२।।

सर्वादौ तारिणीबीजं समुच्चार्य क्रमेण तु।
स्वरादिवसुवर्गेण भूषितेन च बिन्दुना।
ङेऽन्ता नमोऽन्ता न्यस्तव्यास्ताराद्या ध्यानपूर्विकाः॥८३॥

सर्वप्रथम तारिणी बीज 'ह्रीं स्त्रीं हुं' का उच्चारण करके बिन्दु से भूषित स्वरादि अष्टवर्ग के साथ चतुर्थी विभक्त्यन्त तथा नमः से अन्त होने वाले मन्त्र से इन आठ तारिणियों का क्रमशः ध्यान करते हुये उनका न्यास करे।।८३।।

ब्रह्मरन्ध्रे ललाटे च भ्रूमध्ये कण्ठगह्वरे।
हृदये नाभिदेशे च लिङ्गे चाधारके न्यसेत्॥८४॥

ब्रह्मरन्ध्र, ललाट, भ्रूमध्य, कण्ठकूप, हृदय, नाभि, लिङ्ग तथा मूलाधार में न्यास करे।।८४।।

प्रयोगस्तु—

ब्रह्मरन्ध्रे—ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः तारायै नमः।

ललाटे—ह्रीं स्त्रीं हुं कं खं गं घं ङं उग्रायै नमः।

कण्ठगह्वरे—ह्रीं स्त्रीं हुं टं ठं डं ढं णं वज्रायै नमः।

भ्रूमध्ये—ह्रीं स्त्रीं हुं चं छं जं झं ञं महोग्रायै नमः।

हृदये—ह्रीं स्त्रीं हुं तं थं दं धं नं नीलायै नमः।

नाभौ—ह्रीं स्त्रीं हुं पं फं बं भं मं सरस्वत्यै नमः।
लिङ्गे—ह्रीं स्त्रीं हुं यं रं लं वं कामेश्वर्यै नमः।
मूलाधारे—ह्रीं स्त्रीं हुं शं षं सं हं ळं क्षं भद्रकाल्यै नमः।

इति तारादिन्यासः॥८५॥

यह तारादि न्यास कहा गया है। इसे मूलोक्त मन्त्रों से उन-उन स्थानों में करना चाहिये।।८५।।

मूलाधारे कामरूपं हृदि जालन्धरं तथा।
ललाटे पूर्णगिर्याख्यमुड्डीयानं तदूर्ध्वकम्॥८६॥
वाराणसीं भ्रूवोर्मध्ये ज्वलन्तीं लोचनत्रये।
मायावतीं मुखवृत्ते कण्ठे अष्टपुरी ततः।
अयोध्यां नाभिदेशे च कट्यां काञ्चीं विनिर्दिशेत्॥८७॥
दशैतानि प्रधानानि पीठानि क्रमतो विदुः।
ह्रस्वदीर्घस्वरैर्वर्गैर्नमोऽन्तैः क्रमतो न्यसेत्॥८८॥

अब कामरूपादि पीठ का न्यास करे। मूलाधार में कामरूप, हृदय में जलन्धर, ललाट में पूर्णगिरि, ब्रह्मरन्ध्र में उड्डीयान, भ्रूद्वय के मध्य वाराणसी, लोचनत्रय में ज्वलन्ती, मुखवृत्त में मायावती, कण्ठ में अष्टपुरी, नाभि देश में अयोध्या तथा कटि में काञ्ची का न्यास करे। इस दस प्रधान पीठों का क्रमशः न्यास करना चाहिये। अन्त में नमः लगाकर ह्रस्व तथा दीर्घ स्वर के साथ एवं वर्ग के साथ क्रमशः इनका न्यास करना चाहिये।।८६-८८।।

अथ प्रयोगः—

मूलाधारे—ह्रीं स्त्रीं हुं अं आं कं खं गं घं ङं कामरूपपीठाय नमः।
हृदये—ह्रीं स्त्रीं हुं इं ईं चं छं जं झं ञं जालन्धरपीठाय नमः।
ललाटे—ह्रीं स्त्रीं हुं उं ऊं टं ठं डं ढं णं पूर्णगिरिपीठाय नमः।
ललाटोद्र्ध्वे—ह्री स्त्रीं हुं ऋं ॠं तं थं दं धं नं उड्डीयानपीठाय नमः।
भ्रुवोः—ह्रीं स्त्रीं हुं ऌं ॡं पं फं बं भं मं वाराणसीपीठाय नमः।
लोचनत्रये—ह्रीं स्त्रीं हुं एं ऐं यं रं लं वं ज्वलन्तीपीठाय नमः।
मुखवृत्ते—ह्रीं स्त्रीं हुं ओं औं शं षं सं हं मायावतीपीठाय नमः।
कण्ठे—ह्रीं स्त्रीं हुं अं अः ळं क्षं अष्टपुरीपीठाय नमः।
नाभिदेशे—ह्रीं स्त्रीं हुं अयोध्यापीठाय नमः।
कट्यां—ह्रीं स्त्रीं हुं काञ्चीपीठाय नमः।

इति पीठन्यासः॥८९॥

पीठन्यास मूलोक्त मन्त्रों से तत्तत् स्थानों में करना चाहिये।।८९।।

इति षोढा च कथिता तारायाः सर्वसिद्धिदा।
अक्षोभ्यः सर्वजन्तूनां न्यासस्यास्य प्रसादतः ।।९०।।

अक्षोभ्यः अघृष्यः स्यादित्यर्थः। इति रुद्रयामलोक्तः षोढान्यासः।

इस प्रकार तारा का सर्वसद्धिप्रद षोढान्यास कहा गया। सभी जीव इस न्यास के प्रभाव से अक्षोभ्य हो जाते हैं।।९०।।

प्रकारान्तरं यथा कालीतन्त्रे—

मन्त्रेणान्तरितान् कृत्वा षड्धा च मातृकां न्यसेत्।
क्रमोत्क्रमाद् वरारोहे! ताराषोढा प्रकीर्त्तिता ।।९१।।

अब प्रकारान्तर से (अन्य) षोढा न्यास कहते हैं। ईश्वर कहते हैं—हे वरारोहे! प्रत्येक मातृकावर्ण को उपासित तारामन्त्र से पुटित करके क्रम (अनुलोम) तथा उत्क्रम (विलोम) रूप से न्यास करना चाहिये। इसे ताराषोढा कहते हैं।।९१।।

कृतेऽस्मिन् न्यासवर्ये तु सर्वं पापं प्रणश्यति।
योगिनीनां भवेत् पूज्यः स देवो न तु मानुषः ।।९२।।

इस न्यासों में श्रेष्ठ षोढान्यास को करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। वह साधक योगिनियों का पूज्य हो जाता है। वह साक्षात् देवता हो जाता है, मनुष्य नहीं रह जाता।।९२।।

यं नमन्ति महेशानि षोढापुटितविग्रहाः।
अल्पायुः स भवेत् सद्यो देवता कम्पते भिया।
नास्त्यस्य लोके पूज्योऽपि पितृमातृमुखो जनः ।।९३।।

पितृमात्रादिरपि न पूज्य इत्यर्थः।

हे महेशानि! षोढापुटित देह वाला साधक जिसे नमस्कार कर देता है, वह सद्यः अल्पायु हो जाता है। उसे देखकर देवता भी काँपने लगते हैं। इस लोक में उसके समान पूज्य कोई नहीं है। उसके लिये पिता-माता भी पूज्य नहीं हैं (अर्थात् इसके द्वारा इनका पूजन करने से माता-पिता के आयु की हानि हो जाती है)।।९३।।

तदुक्तं तन्त्रान्तरे—

न्यसेत् सर्गान्वितां सृष्ट्या हृत्या विन्द्वन्तिकां न्यसेत्।
बिन्दुसर्गान्वितान् न्यस्येद् ङ्यादर्णान् स्थितिवर्त्मना ।।९४।।

तन्त्रान्तर में कहते हैं कि सृष्टिक्रम में (वर्णों को) विसर्ग (:) युक्त करके न्यास

करना चाहिये। संहारक्रम में अनुस्वार (-ं) युक्त वर्णों से न्यास करे। संस्थिति क्रम में डादि वर्णों को अनुस्वार तथा विसर्गयुक्त करके न्यास करने का नियम है।।९४।।

संहृतेर्द्दोषसंहारः सृष्टेस्तु सुतपुष्टयः।
स्थितेस्तु शान्तिविन्यासस्तस्मात् कार्या त्रिधा मतः ॥९५॥

संहार न्यास अर्थात् दोषों का नाश। सृष्टिन्यास अर्थात् पुत्र तथा पुष्टि की प्राप्ति। संस्थिति न्यास से शान्ति स्थापित होती है। अतः इन तीन प्रकार के न्यास को कहा गया है, जो कर्त्तव्य रूप है।।९५।।

न्यासः संहारान्तो मस्करिवैखानसेषु विहितोऽयम्।
स्थित्यन्तो गृहमेधिषु सृष्ट्यन्तो वर्णिनामिति प्राहुः ॥९६॥

यह सृष्टि, स्थिति तथा संहार न्यास (मस्करि) भिक्षुओं के लिये और वानप्रस्थी (वैखानस) के लिये है। गृहस्थ के लिये सृष्टि तथा स्थितिन्यास विहित है। ब्रह्मचारीगण को केवल सृष्टिन्यास करना चाहिये (अर्थात् वानप्रस्थी तथा भिक्षु तीनों न्यास कर सकते हैं। गृहस्थ केवल सृष्टि तथा स्थिति न्यास करे तथा ब्रह्मचारी के लिये मात्र सृष्टिन्यास कहा गया है)।।९६।।

वैराग्ययुजि गृहस्थे संहारान्तं केचिदाहुराचार्याः।
सहजानौ वनवासिनि स्थितिञ्च विद्यार्थिनां सृष्टिं च ॥९७॥

सहजानौ = सस्त्रीके।

जो वैराग्ययुक्त गृहस्थ हैं, वे संहार न्यास कर सकते हैं। स्त्री के साथ जो वानप्रस्थी हैं, वह स्थिति न्यास कर सकते हैं तथा विद्यार्थी लोग सृष्टि न्यास कर सकते हैं—यह कोई-कोई आचार्य कहते हैं।।९७।।

एतेन सृष्टिस्थितिसंहारक्रमेण कर्त्तव्यम्। षडधा चेति। सृष्टिस्थितिसंहार-स्थित्याद्युत्क्रमेणेत्यर्थः। सृष्टिरकारादिक्षकारान्तः। स्थितिर्डादिठान्तः। संहृतिः क्षकाराछकारान्तः॥९८॥

सृष्टि-स्थिति-संहार—इस क्रम से न्यास करना चाहिये। षड्धा च = सृष्टि, स्थिति, संहार-प्रभृति उत्क्रम। सृष्टि = अकारादि (अ से प्रारम्भ) से लेकर क्षकारान्त (क्ष तक)। स्थिति—डादि ठान्त। संहार = क्षकारादि (क्ष से प्रारम्भ करके) अकारान्त (अ तक)।।९८।।

गुह्यषोढान्यासः यथा रुद्रयामले—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्यषोढा त्वियं प्रिये।
न प्रकाश्यमिदं क्वापि मन्त्रिणः कायशोधने ॥९९॥

प्रणवं मातृकावर्णैः पुटितं मातृकास्थले।
तेनैव पुटितं वर्णं न्यसेत् तत्रैव पार्वति॥१००॥

रुद्रयामल में कहा है कि हे देवि! और एक षोढान्यास कहता हूँ, सुनो। यह गुह्य है और कहीं भी प्रकाशित नहीं है। हे पार्वति! साधक देहशुद्धि के लिये मातृका वर्ण द्वारा प्रणव को तथा प्रणव के द्वारा मातृकावर्ण को पुटित करके उसका मातृका स्थान में न्यास करे (जैसे ललाट में अं ॐ अं—यह मातृकावर्ण से पुटित प्रणव है। दूसरा प्रकार है—ॐ अं ॐ; यह प्रणवपुटित मातृका वर्ण है)।।९९-१००।।

मायाबीजं तथा देवि विन्यस्तव्यं प्रयत्नतः।
वधूबीजं तथा चैव विन्यसेत् सुसमाहितः॥१०१॥

हे देवि! मायाबीज (ह्रीं) को अकारादि वर्ण द्वारा तथा मायाबीज से अकारादि वर्णों को पुटित करके यत्न से न्यास करना चाहिये। सुसमाहित होकर वधूबीज (स्त्रीं) को मातृका वर्णों से तथा वधूबीज द्वारा मातृका वर्णों को पुटित करके न्यास करे।।१०१।।

कूर्चबीजं तथा देवि न्यासनीयमशेषतः।
अस्त्रञ्चैव तथा न्यस्त्वा सकलं तदनन्तरम्॥१०२॥

हे देवि! कूर्चबीज से मातृका वर्णों को तथा मातृका वर्णों द्वारा कूर्चबीज को पुटित करके अशेष रूप से न्यास करे। इसी प्रकार अस्त्रबीज को मातृका वर्णों से तथा अस्त्रबीज से मातृका वर्णों को पुटित करके न्यास करे।।१०२।।

गुह्यषोढा त्वियं देवि न प्रकाश्या कदाचन।
अवश्यं प्रत्यहं कार्या न पूजा न जपस्तथा॥१०३॥

हे देवि! इस गुह्य षोढ़ा को कभी भी प्रकाशित नहीं करना चाहिये। कोई पूजा या जप करे अथवा न करे, इसे प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये।।१०३।।

एतत्करणे पूजाजपाकरणेऽपि न प्रत्यवाय इति भावार्थः। एतेनावश्यकता दर्शिता। अथवा पूर्वोक्ता कालीषोढा कर्त्तव्या॥१०४॥

यह करने से पूजा-जपादि न करने पर भी प्रत्यवाय नहीं होता—यह तात्पर्य है। इसके द्वारा इस गुप्त षोढ़ा की आवश्यकता दर्शित की गई है। अथवा पूर्वोक्त काली-षोढ़ा न्यास ही कर्त्तव्य है।।१०४।।

यथा यामले—

गुह्यषोढा सदा कार्या तारिण्या मन्त्रसिद्धये।
कालीषोढाऽथवा देवि! न पूजा न जपस्ततः॥१०५॥

जैसे यामल में कहा है कि मन्त्रसिद्धि के लिये तारिणी का यह गुप्त षोढ़ा न्यास करना सदा उचित है अथवा हे देवि! कालीषोढ़ा करे। जप-पूजा न करे।।१०५।।

इति षोढाप्रकरणम्

ततो मूलमुच्चार्य शिर आदि पादपर्यन्तं पाादादिशिरोऽन्तं हृदादिमुखपर्यन्तं व्यापकत्रयं न्यसेत्। अथवा प्रणवपुटितमूलेन व्यापकन्यासं कुर्यात्। तदुक्तं फेत्कारीये—

ॐकारपुटितं कृत्वा मनुना व्यापकं न्यसेत् ।।१।।

अब व्यापक न्यास कहते हैं। षोढ़ा न्यास के उपरान्त मूल मन्त्र का उच्चारण करके मस्तक से पैर-पर्यन्त, पैरों से मस्तक-पर्यन्त, हृदय से मुख तक तीन बार व्यापक न्यास करे अथवा प्रणवपुटित मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करे। फेत्कारीय तन्त्र में कहा भी है कि ॐ से पुटित करके मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करे।।१।।

ततः पुष्पं गृहीत्वा वक्ष्यमाणध्यानश्लोकं पठन् देवतां हृदि चिन्तयन् स्वशिरसि तत् पुष्पं विन्यस्य मानसैरुपचारैः सुधासमुद्रमांसपर्वताद्यैर्नैवेद्य-रहितैरुक्तमानसपूजारीत्या सम्पूज्य विशेषार्घ्यस्थापनं कुर्यात्।।२।।

तत्पश्चात् कूर्म मुद्रा में पुष्प लेकर वक्ष्यमाण ध्यान श्लोक पढ़ते-पढ़ते देवता का चिन्तन हृदय में करते-करते अपने मस्तक पर उस पुष्प को रखकर मानसोपचार से नैवेद्यरहित (मानसोपचार में नैवेद्य की भावना नहीं करनी चाहिये) सुधासमुद्र, मांसपर्वतादि द्वारा कही गयी (प्रथम खण्ड में) विधि से पूजा करके विशेष अर्घ्य स्थापित करे।।२।।

तद्यथा—स्ववामे आधारमुखत्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं कृत्वा साधारपात्रं मूलेन प्रक्षाल्य तत्र संस्थाप्य मूलेन शुद्धजलेनापूर्य रक्तचन्दनबिल्व-पत्राक्षतादीनि तत्र निक्षिप्य मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः, उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः इति त्रिपदिकायां पात्रे जले च सम्पूज्य ॐ गङ्गे चेत्यादिनाङ्कुशमुद्रया सूर्यमण्डलात्तीर्थमावाह्यार्घ्यस्याग्नीशासुरवायुकोणेषु मध्ये दिक्षु च ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः इत्यादिना ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः इत्यादिना वा यथायोगं षडङ्गानि विन्यस्यार्घ्यपात्रं मत्स्यमुद्रयाच्छाद्य तदुपरि मूलं दशधा जपेत्।।३।।

अब विशेषार्घ्य-स्थापन कहते हैं। अपने वाम भाग में मूलाधार, मुख, त्रिकोण, वृत्त तथा चतुरस्र मण्डल करके आधारयुक्त पात्र को मूल मन्त्र से प्रक्षालित करके उस मण्डल में रखकर मूल मन्त्र द्वारा शुद्ध जल से उस पात्र को भरकर रक्तचन्दन, बेलपत्र,

गन्ध पुष्प अक्षत-प्रभृति उसमें छोड़कर 'ॐ मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' मन्त्र द्वारा अर्घ्यपात्र की तिपाई का, 'ॐ अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' मन्त्र द्वारा पात्र का एवं 'ॐ उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' मन्त्र से जल का पूजन करे। तदनन्तर 'ॐ गङ्गे च यमुने चैव' इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुये अङ्कुशमुद्रा द्वारा सूर्यमण्डल से तीर्थ का आवाहन करके अर्घ्य के अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य तथा वायुकोण में, मध्य में तथा दिक्-समूह में 'ॐ ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै नमः' इत्यादि मन्त्र से यथायोग्य षडङ्ग न्यास करके अर्घ्यपात्र को मत्स्यमुद्रा द्वारा आच्छादित करके उस अर्घ्यपात्र पर दस बार मूल मन्त्र का जप करे।।३।।

तदर्घ्यं फडित्यस्त्रमुद्रया संरक्ष्य हुमित्यवगुण्ठनमुद्रयावगुण्ठ्य वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य भूतिनीयोनिमुद्रे प्रदर्श्य तेजोमयं तज्जलं विभाव्य तद्दक्षिणे पाद्यमाचमनीयञ्च संस्थाप्यार्घ्यजलं किञ्चित् प्रोक्षणीपात्रस्थजले निक्षिप्य तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्षेत्। वस्तुतस्त्वेतद्विषये भूत-शुद्ध्यनन्तरमेवार्घ्यं कार्यम्।

भूतशुद्धिं विधायाथ अर्घ्यादिस्थापनञ्चरेत्।
प्राणायामं ततः कृत्वा ऋष्यादिन्यासमाचरेत्।।४।।

इति फेत्कारीये विशेष्याभिधानादिति।

उस अर्घ्य की 'फट्' मन्त्र पढ़ते हुये अस्त्रमुद्रा से रक्षा करके, 'हुं' मन्त्र द्वारा अवगुण्ठनी मुद्रा से अवगुण्ठन करे। तदनन्तर वं मन्त्र से धेनुमुद्रा द्वारा (घट का) अमृतीकरण करके भूतिनी मुद्रा तथा योनिमुद्रा दिखाकर यह भावना करनी चाहिये कि उसका जल तेजोमय है।

उस अर्घ्य के दक्षिण में पाद्य तथा आचमनीय स्थापित करके उस अर्घ्य के कुछ जल को प्रोक्षणीपात्र में रखे जल में निक्षेप करके उस प्रोक्षणी पात्रस्थ जल से पूजा के उपकरणों का तथा अपना अभ्युक्षण करना चाहिये।

वास्तव में इस पूजाविशेष में भूतशुद्धि के अनन्तर विशेषार्घ्य स्थापन कर्त्तव्य है। इसीलिये फेत्कारीय तन्त्र में कहा है कि भूतशुद्धि के उपरान्त विशेषार्घ्य स्थापन करे। तदनन्तर प्राणायामोपरान्त ऋष्यादि न्यास करना चाहिये।।४।।

ततः पुष्पाञ्जलिं रक्तचन्दनविल्वपत्रजवाकरवीरापराजितापुष्पसमन्वितं विरचय्यात्माभेदेन देवीं ध्यायेत्। यथा—

प्रत्यालीढपदार्पिताङ्घ्रिशवहृद्घोराट्टहासा परा
खड्गेन्दीवरकर्त्रिखर्परभुजा हुङ्कारबीजोद्भवा।

खर्वा नीलविशालपिङ्गलजटाजूटाग्रनागैर्युता
जाड्यं न्यस्य कपालके त्रिजगतां हन्त्युग्रतारा स्वयम् ॥५॥

तदनन्तर कूर्ममुद्रा से रक्तचन्दनयुक्त विल्वपत्र, जवा, अपराजिता पुष्पयुक्त पुष्पाञ्जलि बनाकर आत्मा से अभिन्न रूप से देवी का ध्यान करे। जैसे—शव के हृदय पर चरण-स्थापन करने वाली, घोर अट्टहास करने वाली, बाहुओं में खड्ग, कमल, कैंची तथा खप्पर धारण करने वाली, हुङ्कार बीजोद्भवा, खर्वा, नील पिङ्गल जटाओं से मण्डिता, उग्र नागों द्वारा आभूषिता, त्रिजगत् की जड़ता को कपाल में रखने वाली (हाथ में जो खप्पर कपाल है, उसमें) स्वयं उग्रतारा उसका (जड़ता का) नाश करती हैं।।५।।

अस्यार्थः—पदं संस्थानं, तथा च प्रत्यालीढपदेन वामपादाकुञ्चनसहकृत-दक्षिणपदप्रसरणरूपसंस्थानेनार्पितो अङ्घ्रिः शवहृदि यया तादृशी शवहृदि दक्षिणपादं प्रसारणेन निर्भरं विन्यस्य शवपादद्वयोपरि वामपादमाकुञ्चनेन विन्यस्य तिष्ठतीत्यर्थः। एवमेव प्रयालीढशब्दार्थः। यत्तु शङ्कराचार्य-कृतस्तवे शवं वामपादेन कण्ठे निपीड्य स्थितां दक्षिणेनाङ्घ्रिनाङ्घ्री निपीड्येति दृश्यते, तत्तु रूपान्तरपरतया व्यत्यासान्वयेन वा समर्थ-नीयम्॥६॥

प्रत्यालीढ = वाम पाद के आङ्कुचन से दक्षिण पाद का प्रसारण करके शव के हृदय पर रखा है। अर्थात् शव के दोनों पैरों के ऊपर अपने वाम पाद का आकुञ्चन करके स्थापन किये हुये खड़ी है। शंकराचार्य भी कहते हैं कि देवी अपने वाम पैर से शव के कण्ठ को दबा कर अपने दक्षिण पाद को शव के दोनों चरणों पर रखकर दबाई हुई है।।६।।

नन्वेवं संस्थानविशेषो यदि सर्वदैव, तदा कदाचिदप्युपवेशनादि न स्यात् सर्वदैव खड्गादियोगश्च स्यादिति चेन्न अपरापरवेशादेः सत्त्वेऽपि एतादृशरूपस्य ध्येयत्वेन निर्देशात्। एवमेवापरदेवताध्यानेऽपि बोध्यम् ॥७॥

यह संस्थानविशेष यदि सर्वदा रहे तब कभी भी उस पर उपवेशनादि नहीं होगा एवं सर्वदा खड्गादि का संयोग रहेगा, यदि कोई यह कहता है तब उत्तर है कि उनके अनेक रूप होने पर भी यह रूप ही ध्येय है—ऐसा शास्त्र का निर्णय है; इसलिये इसी रूप का ध्यान किया जाता है। ऐसा ही सभी देवताओं के सम्बन्ध में है।।७।।

यद्वा प्रत्यालीढं पदं यस्याः, सा प्रत्यालीढ़पदा, अर्पितोऽङ्घ्रिः शवहृदि यया, सा अर्पिताङ्घ्रिशवहृदिति पदद्वयमेकपदं वा। खड्गादिसंस्थानन्तु दक्षिणोर्द्ध्ववामाधःक्रमेण। हुङ्कारेति। हुङ्कारबीजोपरिष्टादाविर्भूतामित्यर्थः।

एतदुक्तमस्या भूतशुद्धौ नीलेति नीलो नीलवर्णः विशालपिङ्गलजटाजूटैश्च उग्रनागाश्च तैर्युता। यद्वा विशालः पिङ्गलो जटाजूटो यस्याः सा तादृशी। ततश्च नीलया कर्मधारयः। तथा च नीलविशालपिङ्गलजटाजूटेत्येकपदं वा। शेषं सुगमम्॥८॥

अथवा प्रत्यालीढ पद जिनका है, वे प्रत्यालीढपदा हैं। 'अर्पितशवहृदि' शव के हृदय पर अङ्घ्रि (चरण) जिनके हैं, वे हैं अर्पिताङ्घ्रिशवहृत्। अत: यह दो पद अथवा एक पद भी कहा जा सकता है। खड्गादि आयुध के अवस्थान में दाहिने ऊर्ध्व हाथ तथा बाँयें ऊर्ध्व हाथ तथा दाहिने नीचे के हाथ तथा बाँयें नीचे के हाथ का क्रम होगा। हुंकारबीज = हुंकार बीज के ऊपरी भाग से आविर्भूता हैं। भूतशुद्धि के लिये यह कहा गया है। नील = नीलवर्ण, जो विशाल पिङ्गल जटाजूट तथा उग्र नाग (कर्मधारय) है, उनसे युक्ता। अथवा विशाल पिङ्गल जटाजूट जिनका है, वे हैं—विशाल पिङ्गल जटाजूट-युता। उसका नील पद से कर्मधारय है अथवा नील विशाल पिङ्गल जटाजूट एक पद है।।८।।

एतादृशरूपस्य ध्येयत्वेन तदर्थोपस्थापकतया ध्यानपदस्यापि पाठ्यता। वस्तुतस्तु ध्यानपद्यस्यावश्यपाठ्यत्वं प्रचण्डचण्डिकाप्रकरणे प्रोक्तम्। तस्य च उपलक्षणपदतया सार्वत्रिकत्वमिति॥९॥

इस प्रकार का रूप ध्येय है, इस रूप का उपस्थापक ध्यान श्लोक पढ़ना होगा। वास्तव में ध्यान श्लोक अवश्य पढ़ना चाहिये। यह प्रचण्डचण्डिका प्रकरण में कहा गया है। इसीलिये सभी ध्यान श्लोक का उपलक्षण में तात्पर्य होने के कारण वह सभी स्थल में पाठ करने योग्य है।।९।।

एवं विभाव्य करकलितदूर्वाक्षतरक्तचन्दनमिलितदिनकरकिरणारुण-कुसुमाञ्जलौ मातृकायन्त्रं ध्यात्वा हृदयाद् मूलमन्त्रतेजोमयीं शुद्धज्ञानचैतन्यमयीं षट्चक्रभेदेन शिरःस्थितसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतपरमशिवं प्रापय्य क्रियासमभिव्याहारेण तदमृताम्बुधौ विश्राम्य तदमृतलोलीभूतां चैतन्यानन्दमयीं तां प्रवहन् नासापुटादानीय मूलेन कल्पितमूर्त्तावावाहयेत्॥१०॥

इस प्रकार का रूप ध्यान करते हुये अञ्जलि में लिया हुआ दूर्वा अक्षत लाल चन्दन-युक्त सूर्यकिरण के समान अरुण वर्ण कुसुमाञ्जलि में मातृका यन्त्र का ध्यान करके हृदय से मूल मन्त्ररूप तेजोमयी शुद्धज्ञान चैतन्यमयी देवी को षट्चक्र भेदन द्वारा शिर:स्थित सहस्रदल कमल की कर्णिका के अन्तर्गत परमशिव के साथ मिलित

कराकर क्रिया समभिहार द्वारा उस अमृत सिन्धु में विश्राम कराकर उस अमृत द्वारा लोलीभूता चैतन्यानन्दमयी उन देवी को प्रवहमान नासापुटों द्वारा लाकर मूल मन्त्र द्वारा कल्पित मूर्त्ति में स्थापन करके आवाहन करना चाहिये।।१०।।

तन्त्रान्तरे—

देवीं सुषुम्नामार्गेण चानीय ब्रह्मरन्ध्रकम्।
वहन्नासापुटे ध्यात्वा निर्यान्तीं स्वाञ्जलिस्थिताम्।
पुष्पे आरोप्य तत् पुष्पं प्रतिमादौ निधापयेत्।।११।।

तन्त्रान्तर में कहा है कि सुषुम्ना पथ से देवी को ब्रह्मरन्ध्र में लाकर प्रवहमान नासापुट से निर्गमनकारिणी निज अञ्जलि-स्थित पुष्प में देवी का ध्यान करके उसे पुष्प में स्थापित करके उस पुष्प को प्रतिमा आदि में स्थापित करना चाहिये।।११।।

ततः—

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव।

इति पठित्वा तत्तन्नाम्नावाहनादिकं कुर्यात्। यथा—ॐ श्रीमदेकजटे इहावहावह इत्यनामिकामूलपर्वगताङ्गुष्ठाङ्गुलिरूपावाहनमुद्रां दर्शयन्नावाहनम्। इह तिष्ठ तिष्ठ इति तमेवाधोमुखं स्थापनमुद्राख्यं दर्शयन् स्थापनम्। इह सन्निधेहि सन्निधेहि इत्यूर्ध्वाङ्गुष्ठमुष्टियुगं सन्निधापनमुद्राख्यं दर्शयन् सन्निधापनम्। इह सन्निरुध्यस्व सन्निरुध्यस्व इति गर्भिताङ्गुष्ठमुष्टियुगं सन्निरोधनमुद्राख्यं दर्शयन् सन्निरोधनम्। अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाणेति उत्तानमुष्टियुगलात्मकसमुखीकरणमुद्रां दर्शयन् सम्मुखीकरणम्। देवाङ्गे षड‌ङ्गन्यासात्मकसकलीकरणम्। हुमित्यवङ्गुण्ठनमुद्रां दर्शयन्नवगुण्ठनम्। वमिति धेनुमुद्रां दर्शयन्नमृतीकरणम्। अन्योऽन्यग्रथिताङ्गुष्ठप्रसारितकरद्वयाङ्गुल्यात्मकमहामुद्रां दर्शन्नायुधाभरणादिभिः पूर्वीकरणरूपं परमीकरणं कुर्यात्। ततो योनिभूतिनीबीजदानवधूमकेतुलेलिहाख्याः पञ्चमुद्राः सविन्द्वेकादशस्वरमायावाग्भववधूकूर्चानां यथाक्रममेकैकबीजमुक्त्वा दर्शयेत्। 'आवाहनादिमुद्राभिः पञ्चमुद्राः प्रदर्शये'दिति भैरवीयात्। तास्तु मुद्राप्रकरणेऽनुसन्धेयः।

ततः लेलिहानमुद्रया स्पृष्ट्वा तत्तनाम्ना आं ह्रीं क्रों स्वाहा श्रीमदेकजटायाः प्राणा इह प्राणा इत्यादिक्रमेण प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्। अत्रैतादृशमन्त्रोऽप्रसिद्धप्रमाणवचनकोऽपि पूर्वपूर्वपद्धतिकारलिखनानुसारादनुमितप्रमा-

णकः। तत आदौ मूलमुच्चार्य तदनन्तरं श्रीमदेकजटायै नमः इत्यादिक्रमेण चतुर्थ्यन्ततत्तन्नाम्ना षोडशोपचारैरष्टोपचारैः पञ्चोपचारैर्वा यथाशक्ति पूजयेत्। अर्घ्यं स्वाहापदेन। आचमनीयमधुपर्कौ स्वधापदेन। पुष्पं वौषट्पदेन। सर्वमन्यन्नमःपदेन देयम्। तथा च फेत्कारिण्यां—

श्रीमदेकजटे उक्त्वा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ च ।
तारादि वह्निजायान्तमुदीर्य यजनञ्चरेत् ।।१२।। इति ।

तत्पश्चात् 'ॐ देवेशि भक्तिसुलभे' इत्यादि ऊपर अङ्कित श्लोकमन्त्र पढ़कर उस-उस नाम से आवाहन करना चाहिये। जैसे—ॐ श्रीमदेकजटे इहावह इहावह' इस मन्त्र अनामिका मूलपर्वगत अंगूठे से आवाहन मुद्रा प्रदर्शित करके आवाहन करे। 'इह तिष्ठ इह तिष्ठ' इस मन्त्र से उस अञ्जलि को अधोमुख स्थापित करके स्थापनी मुद्रा द्वारा स्थापन करे। 'इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि' कहकर मुष्टिगत अंगुष्ठ मुष्टिद्वय द्वारा सन्निरोधन मुद्रा दिखलाकर सन्निरोधन करे।

'अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण' कहकर सम्मुखीकरण मुद्रा द्वारा सम्मुखीकरण करे। देवी के अंग में अंगन्यास आदि को सकलीकरण कहते हैं। 'हुं' कहकर अवगुंठन मुद्रा से अवगुंठन करना चाहिये। 'वं' कह कर धेनुमुद्रा से अमृतीकरण, महामुद्रा (अंगूठों को परस्पर ग्रथित करके अंगुलियों को प्रसारित करना) दिखलाकर आभरणादि द्वारा पूर्णीकरण रूप परमीकरण करे।

तत्पश्चात् सबिन्दु 'ऐं' से योनिमुद्रा, माया (ह्रीं) से भूतिनीमुद्रा, वाग्भव (ऐं) से बीज-दानव मुद्रा, 'स्त्रीं' से धूमकेतु मुद्रा, 'हुं' से लेलिहान मुद्रा प्रदर्शित करे। पञ्चमुद्रा प्रकरण में कहा भी है—'आवाहनादि मुद्राओं के साथ इन मुद्राओं को भी दिखाना चाहिये'। अब लेलिहान मुद्रा से स्पर्श करके प्राणप्रतिष्ठा करे, जैसे 'आं ह्रीं क्रों स्वाहा श्रीमदेकजटायाः प्राणा इह प्राणा' इत्यादि क्रम से प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये।

यहाँ प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र अप्रसिद्ध प्रमाणों पर आधारित होने पर भी पूर्व-पूर्व पद्धतिकारों द्वारा लिखा होने के कारण इसी को प्रामाणिक वचन (लिखा होने से) मानने का अनुमान किया जाता है। अब प्रथमतः मूल मन्त्र का उच्चारण करके तत्पश्चात् 'श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' से उच्चारण करके 'एतत् पाद्यं श्रीमदे-कजटायै नमः' इत्यादि क्रम से क्रमशः चतुर्थी विभक्ति अन्त वाले उन-उन नामों की शक्तियों का षोडश उपाचार से, अष्टोपचार से अथवा पञ्चोपचार से पूजन करना चाहिये। 'स्वाहा' पद द्वारा अर्घ्य, स्वधा पद द्वारा आचमन तथा मधुपर्क, वौषट् पद द्वारा पुष्प, नमः पद से अन्य सब प्रदान करे।

फेत्कारीतन्त्र में कहा है कि 'श्रीमदेकजटे' तथा वज्रपुष्पं प्रतीच्छ' तदनन्तर

'श्रीमदेकजटे वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' कहकर यजन (देवपूजन) करना चाहिये।।१२।।

तारः कूर्चं तदादि हुं फड़ित्यर्थः। स च वह्निजायान्त इति। अत्र मन्त्रे नामोहो न कार्यः, सर्वसाधारण्योक्तत्वात्। कस्याञ्चित् प्राचीनपद्धतौ तु विशेषः ॐ भगवत्येकजटे ह्रीं विशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि तारय सर्वविकल्पानपनय हुं फट् स्वाहा पाद्यं नमः। ॐ मणिधारि वज्रिणि महाप्रतिसरे इदमर्घ्यं स्वाहा। ॐ तारिणि ह्रीं इदमाचमनीयं स्वधा। ह्रीं कपालिके मधुपर्कः स्वधा। श्रीमदेकजटे इदमाचमनीयं सुगन्धिजलं नमः। गन्धपुष्पयोः विशेषस्त्वयम्—

परमानन्दसौरभ्यः परिपूर्णदिगन्तरम्।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वरि!।
श्रीमदेकजटे एष गन्धं नमः।
तुरीयवनसम्भूतं नानागुणमहोत्सवम्।
आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतां परमेश्वरि ॥१३॥

एतादृशी वाक्यरचना विद्याधराचार्यसम्मता।

यहाँ तार है—कूर्च (हुं) तदादि अर्थात् हुं फट् यह अर्थ है। इसके अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) लगेगा। इसमें एक ही नाम की प्रतिबद्धता नहीं है अर्थात् केवल एकजटा के लिये नहीं है, तारिणी आदि सबके लिये है; क्योंकि यह वचन सर्व-साधारण के लिये कहा गया है।

किसी प्राचीन पद्धति से यह रूप विशिष्टता वाला है। ॐ भगवत्येकजटे ह्रीं विशुद्धसर्वगात्रि सर्वपापानि तारय सर्वविकल्पानपनय हुं फट् स्वाहा पाद्यं नमः। ॐ मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे इदमर्घ्यं स्वाहा। ॐ तारिणि! ह्रीं इदमाचमनीयं स्वधा। ह्रीं कपालिके मधुपर्क स्वधा। श्रीमदेकजटे इदमाचमनीयं सुगन्धिजलं नमः। गन्ध तथा पुष्प में यही विशेष है। अब मूल संस्कृत में लिखे गन्ध-पुष्प निवेदन को पढ़े—

परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम्।
गृहाण परमङ्गन्धं कृपया परमेश्वरि।।

हे परमानन्द के जनक सौरभ से दिगन्त में परिपूर्ण परमेश्वरि! कृपापूर्वक श्रेष्ठ गन्ध ग्रहण करें। तदनन्तर कहे—'श्रीमदेकजटे एष गन्धं नमः।

तदनन्तर पुष्पार्थ कहे—आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतां परमेश्वरि। हे परमेश्वरि! आनन्दरूप सौरभयुक्त पुष्प ग्रहण करे। श्रीमदेकजटे एतानि पुष्पाणि वौषट्—मन्त्र से पुष्प प्रदान करे। यह वाक्यरचना विद्याधराचार्य-सम्मत है।।१३।।

महातन्त्रे तारिणीनिर्णये—

प्रणवाद्भगवत्येकजटे माया ततः परम्।
विशुद्धधर्मगात्रितः सर्वपापानि तत्परम्॥१४॥
तारय सर्वविकल्पानपनय हुं फट् शिवः।
अयं पाद्यमनुर्देवी आचमनीयमनुं शृणु॥१५॥
तारं तारिणि मायेति तारो माया ततः परम्।
मणिधरि वज्रिणीति महाप्रतिसरे मनुः।
माया कपालिके मन्त्रे मधुपर्कं सुरेश्वरि॥१६॥

महातन्त्र में कहते हैं—प्रणव के पश्चात् भगवत्येकजटे! माया (ह्रीं) तत्पश्चात् विशुद्धगात्रि के पश्चात् सर्वपापानि तत्पश्चात् तारय सर्वविकल्पानपनय हुं फट् तथा शिरः (स्वाहा) अर्थात् हे देवि! 'ॐ भगवत्येकजटे ह्रीं विशुद्धधर्मगात्रि सर्वपापानि तारय सर्वविकल्पानपनय हुं फट् स्वाहा' यह पाद्यमन्त्र है।

हे सुरश्वरि! तार (ॐ) तारिणी। माया (ह्रीं) अर्थात् ॐ तारिणी—ह्रीं। यह आचमन है। तार (ॐ) माया (ह्रीं) तदनन्तर मणिधरि वज्रिणि महाप्रतिसरे' यह अर्घ्यमन्त्र है। माया तथा कपालिके यह मधुपर्क मन्त्र है।।१४-१६।।

तारो मायेत्यादि मन्त्रस्तु परिशेषादर्घ्यस्य। विशेषन्तु ॐ जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहेति घण्टां सम्पूज्य वामपाणिना वादयन् नीचैर्धूपमुच्चैर्दीपं निवेद्य नैवेद्यं फड़िति प्रोक्ष्य चक्रमुद्रयाभिरक्ष्य तदुपरि मूलमष्टधा जप्त्वा धेनु-मुद्रयामृतीकृतोक्तमन्त्रेण दद्यात्। ततः पानार्थजलमाचमनीयादि च दत्त्वा शिरोहृदयमूलाधारपादसर्वाङ्गेषु पुष्पाञ्जलिपञ्चकं दद्यात्। ततो योनिमुद्रां प्रदर्श्य देवि! आज्ञापय भवत्या परिवारान् पूजयामीति सम्प्रार्थ्या-वरणानि पूजयेत्॥१७॥

तारो माया इत्यादि मन्त्र से अर्घ्य होता है। विशेष यह है कि ॐ जयध्वनिमन्त्रमातः स्वाहा मन्त्र से घण्टा का पूजन करके वाम हाथ से उस घण्टा को बजाते-बजाते देवी के निम्न देश में धूप लगाये तथा उनके उच्च देश में दीप जलाये। नैवेद्य को फट् मन्त्र से प्रोक्षण करके चक्रमुद्रा द्वारा चतुर्दिक् रक्षा करके उस नैवेद्य पर मूल मन्त्र का आठ जप करके धेनुमुद्रा प्रदर्शन करके अमृतीकरण के उपरान्त उक्त मन्त्र द्वारा देवी को निवेदन करना चाहिये। तदनन्तर देवी के पीने का जल तथा आचमनीय निवेदन करे। तत्पश्चात् मस्तक, हृदय, मूलाधार, पैर तथा सर्वाङ्ग में पाँच पुष्पाञ्जलि देकर योनिमुद्रा प्रदर्शित करके प्रार्थना मुद्रा में कहे—देवि आज्ञापय भवत्या परिवारान् पूजयामि। यह कहकर आवरण देवतासमूह का पूजन करे।।१७।।

तद्यथा—केशरेष्वग्नीशासुरवायुषु मध्ये दिक्षु षड़ङ्गानि पूजयेत्। ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः इत्यग्नौ। ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा इतीशाने। ह्रूं वज्रोदके शिखायै वषट् इति नैर्ऋत्ये। ह्रैं उग्रजटे कवचाय हुमिति वायौ। मध्ये ह्रौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु—ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे अस्त्राय फट्। नीलसरस्वतीविषये तु ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः इत्यादिना षड़ङ्गानि पूजयेत्। अग्न्यादिव्यवस्था तु पूज्यपूजकयोर्मध्यदेशस्य पूर्वत्वमादृत्य। ततो देव्या मौलौ ॐ अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेणाक्षोभ्यं पूजयेत्। ततः पीठस्योत्तरे वायव्यादीशपर्यन्तं गुरुपङ्क्तिं पूजयेत्। यथा—ऊर्ध्वकेशानन्दनाथ बहुपुष्प प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहेति॥१८॥

आवरण पूजा कहते हैं—केशरसमूह के अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य तथा वायुकोण में षड़ङ्ग पूजा करनी चाहिये। अग्निकोण में—ॐ ह्रां एकजटायै हृदयाय नमः। ईशान में—ॐ ह्रीं तारिण्यै शिरसे स्वाहा। नैर्ऋत्य में—ॐ ह्रूं वज्रोदके शिखायै वषट्। वायुकोण में—ॐ ह्रैं उग्रजटे कवचाय हुं। मध्य में—ॐ ह्रौं महाप्रतिसरे नेत्रत्रयाय वौषट्। चारो ओर—ॐ ह्रः पिङ्गोग्रैकजटे अस्त्राय फट्। यह षड़ङ्ग पूजा के मन्त्र हैं। नीलसरस्वती के सम्बन्ध में कुछ विशेष है—ॐ ह्रां अखिलवाग्रूपिण्यै हृदयाय नमः इत्यादि पूर्वोक्त मन्त्र से षड़ङ्ग का पूजन करे। पूज्य तथा पूजक के मध्य के देश को पूर्व दिक् माना जाता है। वहीं से आग्नेयादि कोण की व्यवस्था करनी चाहिये (अर्थात् पूज्य तथ पूजक के मध्य का ही स्थान पूर्व मानकर वहीं से कोणों का अङ्कन करना चाहिये)। तदनन्तर देवी के मस्तक पर इस मन्त्र द्वारा अक्षोभ्य का पूजन करे—ॐ अक्षोभ्य वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा। तदनन्तर पीठ के उत्तर में वायुकोण से ईशान कोण-पर्यन्त गुरुपंक्ति का पूजन करना चाहिये; यथा—ॐ ऊर्ध्वकेशानन्दनाथ बहुपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा।।१८।।

तथा च फेत्कारीये—

वज्रपुष्पं प्रतीच्छेति हुं फट् स्वाहेति मन्त्रतः।
एतन्मन्त्रे नाममात्रं भिन्नश्चैव न संशयः।
अमुना मनुना सर्वान् परिवारान् समर्चयेत्॥१९॥

फेत्कारीयतन्त्र में कहा है कि वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा के पूर्व में गुरुपंक्ति के एक-एक नाम देना चाहिये। इस मन्त्र में नाममात्र ही भिन्न होगा। यह संदेहरहित बात है। इस मन्त्र द्वारा समस्त परिवार की वन्दना अर्चना करे (परिवार = देवी परिवार)।।१९।।

एवं वामकेशानन्दनाथ, नीलकण्ठानन्दनाथ, वृषध्वजानन्दनाथान्। एते दिव्यौघाः। एवं वशिष्ठानन्दनाथ, कूर्मनाथानन्दनाथ, मीननाथानन्दनाथ, महेश्वरानन्दनाथ, हरिनाथानन्दनाथान्। एते सिद्धौघाः। एवं तारवत्यम्ब, भानुमत्यम्ब, जयाम्ब, विद्याम्ब, महोदर्यम्ब, सुखानन्दनाथ, परानन्दनाथ, पारिजातानन्दनाथ, कुलेश्वरानन्दनाथ, विरूपाक्षानन्दनाथ, फेरव्यम्बाः। एते मानवौघाः॥२०॥

इसी प्रकार व्योमकेशानन्दनाथ, नीलकण्ठानन्दनाथ, वृषध्वजानन्दनाथ की पूजा करे। ये दिव्यौघ हैं। वशिष्ठानन्दनाथ, कूर्मनाथानन्दनाथ, मीननाथानन्दनाथ, महेश्वरानन्दनाथ, हरिनाथानन्दनाथ—ये सिद्धौघ हैं। इसी प्रकार तारवत्यम्ब, भानुमत्यम्ब, जयाम्ब, विद्याम्व, महोदर्यम्ब, सुखानन्दनाथ विरूपाक्षानन्दनाथ, कुलेश्वरानन्दनाथ, सुखानन्दनाथ, पारिजातानन्दनाथ, परानन्दनाथ तथा फेरव्यम्वा मानवौघ हैं।।२०।।

तथा च वीरतन्त्रे—

अथ तारागुरून् वक्ष्ये दृष्टादृष्टफलप्रदान्।
ऊर्ध्वकेशो व्योमकेशो नीलकण्ठो बृषध्वजः।
दिव्यौघाः सिद्धिदावंशा सिद्धौघान् शृणु यत्नतः॥२१॥

वीरतन्त्र में कहा है कि अब दृष्ट तथा अदृष्ट फलदाता गुरुसमूह का वर्णन किया जाता है। ऊर्ध्वकेश, व्योमकेश, नीलकण्ठ, वृषध्वज—ये सिद्धिप्रद दिव्यौघ कहे गये हैं। अब सिद्धौघ साधकों के गुरुओं को सुनो।।२१।।

वशिष्ठः कूर्मनाथश्च मीननाथो महेश्वरः।
हरिनाथो मानवौघान् शृणु वक्ष्यामि तद्गुरून्॥२२॥
तारावती भानुमती जया विद्या महोदरी।
सुखानन्दः परानन्दः परिजातः कुलेश्वरः।
विरूपाक्षः फेरवी च कथितं तारिणीकुलम्॥२३॥

वशिष्ठ, कूर्मनाथ, मीननाथ, हरिनाथ—ये सिद्धौघ गुरु हैं। अब तारा के मानवौघ गुरुओं के नाम सुनो। तारावती, भानुमती, जया, विद्या, महेश्वरी, सुखानन्द, परानन्द, पारिजात, कुलेश्वर, विरूपाक्ष, फेरवी। इस प्रकार तारिणीकुल कहा गया।।२२-२३।।

आनन्दनाथशब्दान्ता गुरवः सर्वसिद्धिदाः।
स्त्रियोऽपि गुरुरूपाश्च अम्बान्ताः परिकीर्त्तिताः॥२४॥

वे गुरुगण सर्वसिद्धिप्रद हैं, जिनके नाम के अन्त में आनन्दनाथ लगा है। जो शक्ति (स्त्री) गुरु हैं, उनके नाम के अन्त में अम्बा लगता है।।२४।।

भैरवतन्त्रे—

ऋष्यन्ता गुरवो विष्णोर्नाथान्ता गुरवः शिवे ।
आनन्दान्ताश्च नाथान्ताः शक्तौ च गुरवः स्मृताः ॥२५॥

भैरवतन्त्र में कहते हैं कि विष्णु (वैष्णव) के गुरुवर्ग के नाम के अन्त में ऋषि, शिव के (शैव) के गुरुवर्ग के अन्त में नाथ तथा शक्ति (शाक्त) गुरुओं के नाम के अन्त में आनन्दनाथ लगा रहता है।।२५।।

एषु सर्वत्र वज्रेति मन्त्रो योज्यः। अशक्तश्चेदक्षोभ्यमात्रं पूजयेत्। 'मम मौलिस्थितमवश्यं परिपूजयेदि'ति फेत्कारीये देवीवाक्यम्। ततः पूर्वादि-दलमूलेषु वामावर्त्तेन प्रणवादि नमोऽन्तचतुर्थ्यन्तनाममन्त्रेण महाकालाद्याः पूजयेत्॥२६॥

इस गुरुवर्ग में 'वज्रपुष्पं' इत्यादि मन्त्र का योग करना होगा (यह मन्त्र इसी प्रकरण में कहा जा चुका है); क्योंकि देवी वचन है कि मेरी मौलि (मस्तकस्थ) स्थित अक्षोभ्य की पूजा अवश्य हो। यह फेत्कारी तन्त्र में देवी का वचन है। तदनन्तर पूर्वादि दल के मूल में वामावर्त्त रूप से (बाँयें से प्रारम्भ करके) आदि में प्रणव लगाकर चतुर्थी विभक्त्यन्त नाम से महाकाली आदि की पूजा करनी चाहिये।।२६।।

महाकालाथ रुद्राणी उग्रा भीमा तथैव च ।
घोरा च भ्रामरी चैव महारात्रिश्च सप्तमी ।
अष्टमी भैरवी प्रोक्ता योगिनीभ्यः प्रपूजयेत् ॥२७॥

महाकाली, रुद्राणी, उग्रा, भीमा, घोरा, भ्रामरी, महारात्रि तथा भैरवी—इनकी (योगिनियों की) पूजा करे।।२७।।

ततः पूर्वादिचतुर्दले वामावर्त्तेन वैं वैरोचनं शं शङ्खपाण्डुरं पं पद्मनाभं अं असिताभं। अग्न्यादिकोणदलेषु वामावर्त्तेन नां नामकं सां सामकं पां पाण्डुरं तां तारकं। पूर्वादिद्वारचतुष्टये वामावर्त्तेन पं पद्मान्तकं यं यमान्तकं विं विघ्नान्तकं नं नरकान्तकम्। सर्वत्र वज्रेत्यादि मन्त्रयोगः॥२८॥

तत्पश्चात् पूर्वादि चार पत्रों में वामावर्त्त क्रम से—'वैं वैरोचनं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' मन्त्र से वैरोचन की पूजा करे। इसी प्रकार 'शं शङ्खपाण्डुरं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' से शङ्खपाण्डुर की पूजा करे। पद्मनाभ की पूजा हेतु 'पं पद्मनाभं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' मन्त्र कहे। 'अं असिताभं वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' से असिताभ की पूजा करनी चाहिये।

अग्न्यादि कोणदल में 'नां नामकं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' से नामक की पूजा करे।

'सां सामकं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' से सामक की पूजा करे। 'पां पाण्डुरं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' से पाण्डुर की पूजा करे। 'तां तारकं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' से तारक की पूजा करे।

पूर्वादि द्वारचतुष्टय में 'पं पद्मान्तकं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' से पद्मान्तक की पूजा करे। 'यं यमान्तकं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' से यमान्तक की पूजा करे। 'विं विघ्नान्तकं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' से विघ्नान्तक की पूजा करे। 'नं नरकान्तकं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' से नरकान्तक की पूजा करे। इनकी पूजा वामवर्त्त से करे।।२८।।

तथा च सिद्धसारस्वते—

वैरोचनं तथा शङ्खं पाण्डुरं पद्मनाभकम्।
असिताभं यजेन्मन्त्री दिक्ष्विन्द्रादिचतुर्द्दले ॥२९॥
नामकं सामकञ्चैव पाण्डुरं तारकं तथा।
वह्न्यादिकं चतुष्कोणे मन्त्रैः स्वैः स्वैः क्रमाद्यजेत् ॥३०॥

सिद्धसारस्वत में कहा गया है कि मन्त्र का ज्ञाता साधक वैरोचन, शङ्ख, पद्मनाभ तथा असिताभ की चतुर्दल में पूजा करे (यह पूर्वादि चार पत्रों में वामावर्त्त क्रम से किया जाय)। अग्नि आदि चतुष्कोण (आग्नेयकोण आदि) में नामक, सामक, पाण्डुर तथा तारक की उनके-उनके मन्त्र से क्रम-क्रम से पूजा करे।।२९-३०।।

मन्त्रैः स्वैः स्वैरिति सानुस्वारसस्वरनामाद्यवर्णैरित्यर्थः। वज्रेत्यादिमन्त्रस्तु शेषे योज्य एव। तेन वैं वैरोचने वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहेत्यादि क्रमेणार्च्चयेदित्यर्थः॥३१॥

मन्त्रैः स्वैः स्वैः—इसका अर्थ है कि अनुस्वारयुक्त नाम के आदि वर्ण द्वारा जैसे तारक इसको 'तां तारकं' प्रयोग किया जायेगा। जैसे 'वैं वैरोचने वज्रपुष्पं प्रतीच्छ हुं फट् स्वाहा' ऐसे ही प्रत्येक नाम के साथ किया जायेगा और क्रमशः अर्चना की जायेगी।।३१।।

नीलतन्त्रे वैरोचनादिमधिकृत्य—

वामावर्त्तक्रमेणैव पूजयेदङ्गदेवताः।
द्वारे पूर्वादितस्तद्वत् पद्मान्तकयमान्तकम्।
विघ्नान्तकमथाभ्यर्च्य पूजयेन्नरकान्तकम् ॥३२॥

तद्वदिति। नामाद्यक्षरबीजमुच्चार्य वामवर्त्तेनेत्यर्थः।

नीलतन्त्रानुसार वामावर्त्त क्रम से अंगदेवता का पूजन करे। पूर्वदिदिक् चतुर्द्वार

से पूर्ववत् मन्त्रों से पद्मान्तक, यमान्तक तथा विघ्नान्तक को पूजन करके नरकान्तक की पूजा करे।।३२।।

ततो देवीं पुनर्गन्धादिभिरभ्यर्च्य मूलेन पुष्पाञ्जलित्रयं दद्यात् ।।३३।।

तत्पश्चात् पुनः देवी की गन्धादि उपचारों से पूजा करके मूल मन्त्र से तीन बार पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये।।३३।।

ततो बलिदानम्। तदुक्तं फेत्कारीये—

पूजान्ते भोजनादौ च बलिं मन्त्रेण दापयेत् ।।३४।।

इसके अनन्तर बलिदान का विधान है। फेत्कारीय तन्त्र के अनुसार पूजा के अन्त में तथा भोजन के पूर्व मन्त्र द्वारा बलि प्रदान करना चाहिये।।३४।।

तत्रः क्रमः स्ववामे अधोमुखत्रिकोणवृत्तचतुरस्रमण्डलं कृत्वा पुष्पैस्तदभ्यर्च्य तत्र विहितबलिद्रव्यभरितं साधनपात्रं निधाय तद्वामाङ्गुष्ठानामिकाभ्यां स्पृष्ट्वा ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु परविद्यामाकृष्याकृष्य क्रट क्रट छिन्दि छिन्दि सर्वजगद्वशमानय ह्रीं स्वाहेति त्रिः पठित्वा बलिं दद्यात्।।३५।।

बलिदान क्रम—अपने वाम भाग में अधोमुख त्रिकोण, वृत्त, चतुरस्र मण्डल बनाकर पुष्पसमूह द्वारा अर्चना करके वहाँ विहित बलिद्रव्यपूर्ण आधारसहित पात्र स्थापन करके उसका वाम अंगूठा तथा वाम अनामिका से स्पर्श करके 'ॐ' ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीतं बलिं गृह्ण गृह्ण गृह्णापय गृह्णापय मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु परविद्यामाकृष्याकृष्य क्रट क्रट छिन्दि छिन्दि सर्वजगद् वशमानय ह्रीं स्वाहा' इस मन्त्र का तीन बार उच्चारण करके बलि प्रदान करे।।३५।।

तदुक्तं मत्स्यसूक्ते—

**इति सम्पूज्य वामे च व्यापकं मण्डलं लिखेत् ।
कुसुमैरर्चयेत् तत्तु तत्र पात्रं निधाय च ।।३६।।
पात्रे विनिहितं द्रव्यं निधाय साधकोत्तमः ।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु बलिं दद्यात् प्रयत्नतः ।।३७।।**

मत्स्यसूक्त में बताया गया है कि वाम भाग में व्यापक मण्डल बनाकर उसका पुष्प से पूजन करे। उसमें पात्र की स्थापना करके उसमें विहित बलिद्रव्य रखकर साधक वाम अंगूठा तथा अनामिका से स्पर्श करके यत्नपूर्वक बलि निवेदित करे।।३६-३७।।

तथा सिद्धसारस्वते—

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखा च ततः परम्।
एकजटे पदान्ते च महाशब्दमुदीरयेत् ॥३८॥
यक्षाधिपदमाभास्य पतये पदतो मया।
उपनीतं पदञ्चोक्त्वां बलिं गृह्लेति च द्विधा ॥३९॥
गृह्लापय द्विधा प्रोक्त्वा मम सर्वपदं तथा।
शान्तिं कुरुपदद्वन्द्वं परविद्यामनन्तरम् ॥४०॥
द्विधाकृष्येति च ब्रूयात्त्रुट छिन्धीति च द्विधा।
सर्वादि च ततो जगद्वशमानयशब्दतः।
माया स्वाहेति मन्त्रोऽयं बल्यादौ वृद्धिदः स्मृतः ॥४१॥

सिद्धसारस्वत में कहा है कि प्रणव का उच्चारण करके हृल्लेखा (ह्रीं) 'एकजटे' तथा 'महा' का उच्चारण करके 'यक्षाधि' पद बोलकर 'पतये' के पश्चात् 'मया उपनीतं बलिं गृह्ल गृह्ल' कहकर 'गृह्लापय गृह्लापय' कहकर 'मम' तथा 'सर्व' कहकर 'शान्तिं कुरु कुरु' कहने के पश्चात् 'परविद्यां आकृष्य आकृष्य' कहे। तत्पश्चात् 'क्रट क्रट छिन्दि छिन्दि' कहकर उसे 'सर्व' पद के आदि में रखकर 'जगत् वशमानय' तदनन्तर माया (ह्रीं) तथा स्वाहा कहे। बलिप्रभृति में यह मन्त्र वृद्धिप्रद होता है। मन्त्रोद्धार होता है— ॐ ह्रीं एकजटे महायक्षाधिपतये मयोपनीतं बलिं गृह्ल गृह्ल गृह्लापय गृह्लापय मम सर्वशान्तिं कुरु कुरु परविद्यामाकृष्याकृष्य क्रट क्रट छिन्दि छिन्दि सर्वजगद्वशमानय ह्रीं स्वाहा।।३८-४१।।

ततो मूलेन पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा रहस्यमालया निगदेनोपांशुना मानसेन वा अष्टोत्तरं सहस्रं शतं वा जपेत्॥४२॥

तत्पश्चात् मूल मन्त्र से आठ बार पुष्पाञ्जलि देकर रहस्यमाला से निगद अर्थात् उच्च स्वर में, उपांशु अथवा मानस जप १००८ अथवा १०८ बार करना चाहिये।।४२।।

तथा च—

अष्टोत्तरशतं जाप्यं यावज्जीवितसंख्यया।
सहस्रं वा जपेद्देवि नित्यपूजाविधौ पुनः ॥४३॥

कहा भी गया है कि हे देवि! नित्य पूजाविधि से पुनः १०८ बार अथवा १००८ बार जप करना चाहिये।।४३।।

अशक्तश्चेत् विंशत्या न्यूनं न जपेत्। तथा च—

सहस्रं शतं विंशतिं वा जपेद् रहस्यमालया ॥४४॥

यदि साधक अशक्त हो उस परिस्थिति में भी २० जप से कम जप न करे। कहा भी है—रहस्यमाला से १०००, १०० अथवा २० जप करना चाहिये।।४४।।

जपक्रमस्तु मन्त्रस्मरणोक्तप्रक्रियां कृत्वा मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकेषु यथाक्रमं बीजत्रयं व्याप्तिं तडित्कोटिभास्वरां परस्परानुस्यूतां विभाव्य सर्वतेजोमयं फट्कारं विभ्रान्तिमयं हृदि ध्यात्वा जपेदिति।।४५।।

जपक्रम में मन्त्रस्मरणोक्त प्रक्रिया करके मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर में यथाक्रम से बीजत्रय (ह्रीं स्त्रीं हुं) में व्याप्त कोटि विद्युत् के समान भास्कर की परस्पर अनुस्यूत रूप से भावना करके जप करे।।४५।।

यथा नीलतन्त्रे—

मन्त्रध्यानं प्रवक्ष्यामि जपात् सार्वज्ञदायकम्।
मन्त्रध्यानान् महेशानि शुद्ध्यते ब्रह्महा यतः।।४६।।
मूलचक्रे तु हल्लेखां सूर्यकोटिसमप्रभाम्।
स्वाधिष्ठाने पीतवर्णं द्वितीयञ्च विभावयेत्।।४७।।

नीलतन्त्रोक्त मन्त्रध्यान कहते हैं—हे महेशानि, मन्त्रध्यान से जिस प्रकार ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है, उस जपजन्य सार्वज्ञदायक मन्त्रध्यान को कहा जा है।

मूलाधार में करोड़ों सूर्य के समान प्रभायुक्त हल्लेखा (ह्रीं) की एवं स्वाधिष्ठान चक्र में पीतवर्ण 'स्त्रीं' की भावना करे।।४६-४७।।

नाभौ जीमूतसङ्काशं कूर्चबीजं महाप्रभम्।
अस्त्रबीजं हृदि ध्यायेत्कालाग्निसदृशप्रभम्।।४८।।
मूलादि ब्रह्मरन्ध्रे तु सर्वां विद्यां विभावयेत्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां योगिभिर्दृष्टपूर्विकाम्।।४९।।

नाभि में जीमूत (मेघ) के समान महाप्रभायुक्त कूर्चबीज (हुं) की भावना करनी चाहिये। हृदय में अस्त्र बीज 'फट्' की भावना कालाग्नि के समान करे। मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक चक्रों में सूर्य के समान उज्ज्वला योगिगण द्वारा पूर्वदृष्ट समस्त विद्या की भावना करनी चाहिये।।४८-४९।।

एवं यथाशक्ति जप्त्वा जपसमर्पणादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्।।५०।।

इस प्रकार यथाशक्ति जप करके जप-समर्पण से लगाकर विसर्जन तक का विधान सम्पन्न करके कर्म शेष करे।।५०।।

जपसमर्पणन्तु फेत्कारीये—

ततश्चार्घ्योदकेनैव देव्याश्च वामहस्तके।
जपं समर्पयेद् धीमान् गुह्यातिगुह्यमन्त्रकैः।।५१।।

फेत्कारीय तन्त्र के अनुसार जप-समर्पण कहते हैं—तदनन्तर श्रीमान् साधक 'गुह्यातिगुह्यगोप्त्री' इत्यादि श्लोकों से अर्घ्यजल से देवी के बाँयें हाथ में जप का समर्पण करना चाहिये।।५१।।

एषां मन्त्राणां पुरश्चरणं लक्षजपः। यथा—

एवं कृत्वा हविष्याशी जपेल्लक्षमनन्यधीः ।।५२।।

इस मन्त्र का पुरश्चरण एक लाख जप से होता है। कहा भी है कि इस प्रकार पूजा आदि करने के उपरान्त हविष्यान्न भोजन से निर्वाह करते हुये अनन्य चित्त से एक लक्ष जप करे।।५२।।

तन्त्रचूडामणौ—

सिद्धविद्या तया नात्र युगसेवापरिश्रमः ।
नक्तं भोज्यं हविष्यान्नं जपेन्मन्त्रं दिवा शुचिः ।।५३।।
जपकाले च सततं भार्यां यत्नेन वर्जयेत् ।
वर्जयेद्विष्णुकल्पञ्च वर्जयेत्तुलसीदलम् ।
वर्जयेन्मालतीपुष्पं वर्जयेदन्यपूजनम् ।।५४।।

जपकाल में भार्या का यत्नपूर्वक वर्जन करे (मैथुन वर्जन से तात्पर्य है)। उस काल में विष्णु की साधना तथा तुलसी पत्र, मालती पुष्प एवं अन्य देवपूजन भी वर्जित है। तन्त्रचूड़ामणि में कहा है कि यह सिद्ध विद्या है; इसमें युगसेवा का परिश्रम नहीं है। रात्रि में हविष्यान्न भक्षण करे (अर्थात् दिन में न करे)। दिन में पवित्र होकर जप करे (अर्थात् इसका रात्रिजप वर्जित है)।।५३-५४।।

तथा—

रहस्यमालामादाय लक्षमेकं सदा जपेत् ।।५५।।

यह भी कहा है कि रहस्यमाला लेकर सदा एक लाख जप करना चाहिये।।५५।।

रहस्यमाला यथा—

अकस्माद्विहिता सिद्धिर्महाशङ्खाख्यमालया ।
पञ्चाशन्मणिभिर्माला निर्मिता सर्वसिद्धिदा ।।५६।।

महाशङ्ख की माला से अनायास सिद्धि मिलती है एवं ५० मणियों की माला सभी सिद्धि देने वाली होती है।।५६।।

तथा—

कान्तेन रचिता सिद्धिर्महाशङ्खाख्यमालया ।
पञ्चाशन्मणिभिर्माला निर्मिता सर्वसिद्धिदा ।।५७।।

कान्तेन—मस्तकावयवेन।

और भी कहा है कि कान्त (मस्तक का एक अवयव) से रचित महाशङ्ख नामक माला से सिद्धि मिलती है। ५० मणि से निर्मित माला समस्त सिद्धियों को देने वाली होती है।।५७।।

महाशङ्खाभावे स्फाटिकी माला कर्त्तव्या। तथा च—

महाशङ्खेऽप्यशक्तश्चेत् स्फाटिक्या मालया जपेत्।।५८।।

महाशङ्खमाला के अभाव में स्फटिक की माला से कार्य करना चाहिये। कहा भी है कि महाशङ्ख की माला में अशक्त होने पर स्फटिक की माला से जप करे।।५८।।

तारामन्त्रेषु कुल्लूकाज्ञानमावश्यकम्। तथा च मत्स्यसूक्ते—

कुल्लूकां यो न जानाति महामन्त्रं जपेन्नरः।
पञ्चत्वं जायते तस्य अथवा वातुलो भवेत्।।५९।।

तारामन्त्रों में कुल्लूका का ज्ञान आवश्यक है। मस्त्यसूक्त के वचनानुसार जो व्यक्ति बिना कुल्लूका को जाने महामन्त्र का जप करता है, उसकी मृत्यु होती है अथवा वह पागल हो जाता है।।५९।।

मायातन्त्रे—

कुल्लूकां स्थापयेच्छीर्षे लिखित्वा भूर्जपत्रके।
राजद्वारे सभायाञ्च विजयी भवति ध्रुवम्।।६०।। इति।

मायातन्त्र का वचन है कि भूर्जपत्र पर लिखकर (कुल्लूका लिखकर) मस्तक पर स्थापित करे। इससे राजद्वार तथा सभा में विजय होती है।।६०।।

एवमुक्तेन जप्त्वा तु तद्दशांशेन होमयेत्।
तद्दशांशं तर्पणञ्च दशांशं विप्रभोजनम्।
तर्पयेच्च परां देवीं तत्प्रकार इहोच्यते।।६१।।

इस प्रकार जप करके उसका दशमांश होम, होम के दशमांश का तर्पण, उसके दशमांश गिनती के ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर परा देवी को तर्पण करे। अब उसका विधान कहते हैं।।६१।।

तथा सिद्धसारस्वते—

एवं जपं पुरा कृत्वा दशांशमसितोत्पलैः।
आज्याक्तैर्जुहुयान्मन्त्री तद्दशांशेन तर्पणम्।।६२।।

सिद्धसारस्वत में कहा है कि मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार जप करके घृत में लपेटे असित (जो श्वेत न हो) कमलों से दशांश होम करे।।६२।।

तत्रैव—

एवं जपं पुरा कृत्वा दशांशमसितोत्पलैः ।
आज्याक्तैर्जुहुयान्मन्त्री बिल्वैर्वा जुहुयात्ततः ।।६३।।

वहीं यह भी कहा है कि इस प्रकार जप करके मन्त्रज्ञ साधक असित कमलों को घृत से लपेटकर अथवा बेल फल से जप का दशांश होम करे।।६३।।

कालागुरुद्रवोपेतैर्विमलैर्गन्धवारिभिः ।
तर्पयेच्च परां देवीं तत्प्रकार इहोच्यते ।।६४।।

कृष्ण अगुरु को घिसकर उसके निर्मल सुगन्धित जल से देवी का तर्पण करना चाहिये। उसका वर्णन यहाँ किया गया है।।६४।।

जले चावाह्य विधिवत् पाद्याद्यैरुदकात्मकैः ।
सन्तर्प्य विधिवद्देवीं परिवारात्सकृत् सकृत् ।।६५।।

जल से देवी का विधिवत् आवाहन कर उदकरूप पाद्यादि (जल रूप) द्वारा देवी का विधानानुसार तर्पण करके उनके परिजनों का भी एक-एक बार तर्पण करना चाहिये।।६५।।

अभिषेको यथा—

देवीबुद्ध्या स्वमात्मानं सम्पूज्य साधकोत्तमः ।
तारिणीं सिञ्चयामीति जलं मूर्ध्नि विनिक्षिपेत् ।।६६।।

अभिषेक अर्थात् स्वयं को देवी मानकर (भावना करके) पूजा करके साधकश्रेष्ठ 'तारिणीं सिञ्चयामि' कहकर मस्तक पर जल छोड़े।।६६।।

तन्त्रान्तरे—

संख्यापूर्त्तौ निजद्रव्यैर्जपसंख्यादशांशतः ।
यथोक्तकुण्डे जुहुयाद् यथाविधि समाहितः ।।६७।।
अत्र होमदशांशस्तु तर्पणं परिकीर्त्तितम् ।।६८।।

अन्य तन्त्र में कहा है कि यथाविधि समाहित होकर जपसंख्या की गणना करने वाले द्रव्य द्वारा (मालादि, गुटिकादि) जपसंख्या पूर्ण हो जाने पर यथोक्त कुण्ड में यथोक्त द्रव्य से जप का दशांश होम करना चाहिये अथवा प्रतिदिन जप करके (उस दिन किये जप का) दशमांश होम एवं होम का दशांश तर्पण करना चाहिये।।६७-६८।।

एतद्विद्यायाः साधनस्थानं नीलतन्त्रे महाफेत्कारीये च—

एकलिङ्गे श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे।
तत्रस्थः साधयेन्मन्त्री विद्यां त्रिभुवनेश्वरीम् ॥६९॥

इस विद्या के साधन-स्थानविषयक नीलतन्त्र तथा महाफेत्कारीय तन्त्र में वचन है कि एकलिंग (जहाँ कोशपर्यन्त कोई शिवलिंग उस लिंग के अतिरिक्त न हो) अथवा श्मशान में, शून्य गृह में, चतुष्पथ में से मन्त्रज्ञ साधक किसी एक स्थान का चयन करके वहाँ स्थित होकर त्रिभुवनेश्वरी विद्या की साधना करे।।६९।।

तत्रैव—

पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्षते।
तदेकलिङ्गमाख्यातं तत्र सिद्धिरनुत्तमा ॥७०॥

वहीं यह भी कहा है कि जहाँ पाँच क्रोश के व्यवधान में कोई अन्य शिवलिंग न हो, उस लिंग को एकलिंग कहते हैं। यह सर्वोत्तम सिद्धिदाता होता है।।७०।।

अन्यत्रापि—

उज्जटे पर्वते वापि निर्जने वा चतुष्पथे।
देवागारे च शून्ये च निर्जनैकान्तवेश्मनि ॥७१॥

अन्यत्र भी कहा है कि उज्जट, पर्वत अथवा निर्जन किंवा चतुष्पथ में, जहाँ विग्रह न हो, ऐसे मन्दिर में (जहाँ से मूर्त्ति हट गयी हो) अथवा निर्जन एकान्त गृह में साधना करना चाहिये।।७१।।

वीरतन्त्रे—

शून्यागारे श्मशाने यदि जपति जड़त्वे कलिङ्गे तड़ागे
गङ्गागर्भे गिरौ वा शुचिविमलमतिः सर्वदा भक्तियुक्तः।
विद्यां श्रीनीलवाण्या भुवनजनपतिः सर्वशास्त्रार्थवेत्ता
देहान्ते योगिमुख्यः परमसुखपदं ब्रह्मनिर्वाणमेति ॥७२॥

इति पूजापद्धतिः। अष्टम्यादिषु विशेषपूजाविधानं नैमित्तिकविधौ पूर्वमुक्तम्।

वीरतन्त्र में कहा है कि यदि शुचि तथा निर्मल बुद्धि वाला पवित्र व्यक्ति सदा भक्ति से युक्त होकर शून्य गृह में, श्मशान में, एकलिंग के पास, तालाब के पास, गंगा में अथवा पर्वत पर सरस्वती विद्या की साधना करे तो वह मूर्ख भी सकल शास्त्र का ज्ञाता होकर भुवन के जनगण का अधिपति तथा योगिराज होकर देहान्त के अनन्तर परम सुखकारी स्थान ब्रह्मनिवास का लाभ प्राप्त करता है। अष्टमी-प्रभृति में विशेष पूजा का विधान नैमित्तिक विधि में पहले ही कहा जा चुका है।।७२।।

अथ मन्त्रभेदाः

एकवीराकल्पे—

लिखेत् खं कूर्चसंयुक्तं रौद्रं त्रैगुण्यमेव च।
विधिविष्णुमहेशानां स्वशक्त्या क्रमयोगतः ॥१॥
एषा मता महाविद्या सर्वसिद्धिफलप्रदा।
सर्वमन्त्रमयी विद्या सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥२॥
सिद्धिदा भजतामाशु सम्प्रदायविधानतः।
ध्यानार्चनप्रकारश्च तारिण्याः पूर्ववद्भवेत् ॥३॥

अब मन्त्रभेद कहते हैं। एकवीराकल्प का वचन है कि विधिशक्ति (ऐं) विष्णुशक्ति (श्रीं) तथा महेश्वरशक्ति (ह्रीं) को ब्रह्मा, विष्णु, महेश की अपनी-अपनी शक्ति से साथ यथाक्रमेण लिखे। कूर्च (हूं) संयुक्त 'खं' को रौद्र (प्रसादबीज हौं), त्रैगुण्य (ॐ)। इसका मन्त्रोद्धार इस प्रकार होगा—खं हूं हौं ॐ ऐं ह्रीं श्रीं। यह सप्ताक्षरी महाविद्या समस्त तन्त्रों में गुप्त है, जो सर्वसिद्धिप्रदा है। इस विद्या को सम्प्रदाय-सम्मत विधानानुसार जपने से शीघ्र सिद्धि प्राप्ति होती है। इनका ध्यान तथा अर्चना-विधान पूर्ववत् (तारिणी के अनुसार) है।।१-३।।

अस्यार्थः खं नादबिन्दुविशिष्टकवर्गद्वितीयवर्णस्वरूपम्। न त्वाकाश-बीजम्। यथा तन्त्रे—

ऋद्धिसञ्ज्ञं समुद्धृत्य बिन्दुनादविभूषितम् ॥४॥ इति।

इस श्लोक का अर्थ है कि खं—नादबिन्दुयुक्त कवर्ग का द्वितीय वर्ण 'ख'। यह आकाशबीज नहीं है। तन्त्र में कहा भी है कि बिन्दु-नादविभूषित ऋद्धि नामक वर्ण का उद्धार करे (अर्थात् खवर्ण)।।४।।

कूर्चं कूर्चबीजम्। रौद्रं प्रासादबीजम्। त्रैगुण्यं प्रणवम्। विधिशक्ति-र्वाग्भवम्। विष्णुशक्ति रमाबीजम्। महेशशक्तिर्भुवनेशीबीजम्। इयं सप्ताक्षरी॥५॥

कूर्चं = हुं। नादबिन्दुयक्त। रौद्रं = हौं। त्रैगुण्यम् = ॐ। विधिशक्ति = ऐं। विष्णुशक्ति = श्रीं। महेशशक्ति भुवनेशीबीजम् = ह्रीं। यह सप्ताक्षरी विद्या है।।५।।

नीलतन्त्रे—

अथ विद्यां प्रवक्ष्यामि तारां भुवनतारिणीम्।
यस्याः स्मरणमात्रेण भयमाशु शमं व्रजेत्॥६॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य हृल्लेखाबीजमुद्धरेत्।
गगनं शेषसंयुक्तं बिन्दुनादविभूषितम्॥७॥
कूर्च बीजञ्च हृदयं तारायै च समुद्धरेत्।
सकलदुस्तरं तारय तारयेति तथा पुनः॥८॥
तारायुग्मं वह्निजाया मन्त्रोऽयं सुरपादपः।
गद्यपद्यमयी वाणी कथायामभिधानतः॥९॥
चतुर्लक्षजपेनास्याः सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति हि।
ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववत् समुपाचरेत्॥१०॥

नीलतन्त्रानुसार अब भुवनतारिणी ताराविद्या कहते हैं। प्रथमतः प्रणव का उद्धार करके हृल्लेखा बीज का उद्धार करे। बिन्दु-नादविभूषित शेष (आ) संयुक्त गगन (ह) कूर्चबीज (हुं) हृदय नमः तथा तारायै पद का उद्धार करे। तदनन्तर सकलदुस्तरं तारय तारय कहे। पुनः तारद्वय (ॐ ॐ) तथा वह्निजाया (स्वाहा) कहे। मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—ॐ ह्रीं हां हुं नमस्तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय ॐ ॐ स्वाहा। यह मन्त्र कल्पतरुरूप है। इस विद्या के प्रभाव से कथनोपकथन में गद्य-पद्यमयी वाणी मुख से निकलने लगती है। इसका चार लाख जप करने से अष्टसिद्धि मिलती है। ध्यान-पूजादि पूर्ववत् किया जाता है।।६-१०।।

अस्यार्थः—हृल्लेखा माया, गगनं हकारः, शेष आकारः। तेन हां इति। हृदयं नमः पदम्। तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय स्वरूपम्। तारयुग्मं प्रणवद्वयम्। इयं पञ्चविंशाक्षरी॥११॥

श्लोकार्थ—हृल्लेखा = ह्रीं। गगनं = ह। शेष =आ। इससे ह्रीं हां हुआ। हृदयं—नमः। तारायै सकलदुस्तरं तारय तारय यह यथावत् रहेगा। तारयुग्मं = ॐ ॐ। यह २५ अक्षरों की विद्या है।।११।।

मायातन्त्रे—

तारा चोग्रा महोग्रा च वज्रनीला सरस्वती।
कामेश्वरी भद्रकाली इत्यष्टौ तारिणी मता॥१२॥
ऊष्मवर्णगतो जीवो निगमस्वरसंयुतः।
नादबिन्दुसमाक्रान्तस्तत्त्वरश्मिसमन्वितः ॥१३॥

कपिलो वामकर्णस्थो नादाढ्यो बिन्दुशेखरः।
पार्श्वन्तञ्च तथा ञान्तं शरान्तं परिकीर्त्तितम् ॥१४॥
मध्यादिमायाकवचं द्वितीयं मन्त्रमुद्धृतम्।
विपरीतं त्रिधा ज्ञेयं कूर्चाद्यञ्च तुरीयकम् ॥१५॥
मायादि कवचानाञ्च पञ्चमं परिकीर्त्तितम्।
मायामध्यगतं षष्ठं द्वितीयान्तञ्च सप्तमम्।
अष्टमं कवचमध्यं स्यादेवं भेदाष्टकं भवेत् ॥१६॥

उष्म वर्ण (रं) गत जीव (ह) निगम स्वर (ई) संयुक्त तथा नादविभूषित तथा बिन्दुयुक्त हो। इससे 'ह्रीं' का उद्धार होता है। वह उपरश्मि (स्त्रीं) समन्वित हो। इससे 'ह्रीं स्त्रीं' का उद्धार होता है। कपिल (ह) वामकर्ण (ऊ) युक्त नादयुक्त तथा विन्दु मस्तक पर हो तो इससे 'हूं' का उद्धार होता है। वह पार्श्वन्त (फ) तथा ञकारान्त (ट) से युक्त हो। अब पूर्ण मन्त्रोद्धार होता है—ह्रीं स्त्रीं हुं फट्'। यह शरान्त अर्थात् फट्कारान्त कहा गया है। इससे पूर्ण मन्त्र होता है—ह्रीं स्त्रीं हूं फट् फट् यहाँ दो बार फट् का प्रयोग होता है। यह तारामन्त्र है। इस उक्त विद्या का मध्य बीज स्त्रीं आदि में होने पर यह उग्रा का मन्त्र हो जाता है। मन्त्रोद्धार है—स्त्रीं ह्रीं हूं फट् फट्। यह विपरीत होने पर अर्थात् आदि बीज अन्त में तथा अन्तबीज आदि में होने पर महोग्रा का मन्त्र हो जाता है। मन्त्रोद्धार है—हूं स्त्रीं ह्रीं फट् फट्। वज्रा का मन्त्र है—हूं ह्रीं स्त्रीं फट् फट्।

माया (ह्रीं) आदि में तथा कवच अन्त में होने पर अर्थात् 'ह्रीं स्त्रीं फट् हुं' मन्त्र नीला का कहा गया है। मायाबीज मध्यगत होने पर अर्थात् 'स्त्रीं ह्रीं फट् हूं' यह सरस्वती का मन्त्र है। द्वितीय बीज 'स्त्रीं' अन्त में लगने पर अर्थात् 'ह्रीं हूं स्त्रीं फट्' यह सप्तम कामेश्वरी का मन्त्र है। कवच मध्य में होने पर अर्थात् 'ह्रीं हूं स्त्रीं फट्' को भद्रकाली का मन्त्र कहते हैं। इस प्रकार से मन्त्र के आठ भेद कहे गये हैं।।१२-१६।।

ऋषि स्यादष्टकश्छन्दो ह्यनुष्टुब् देवता तथा।
शम्भुपत्नि महेशानि चतुर्वर्गेषु योजयेत् ॥१७॥
काललक्षं जपेन्मन्त्रमेवमुक्तेन वर्त्मना।
ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववत् समुपाचरेत् ॥१८॥

इस मन्त्रों के अष्टक ऋषि, अनुष्टुप् छन्द एवं शम्भुपत्नी देवता हैं। चतुर्वर्गलाभार्थ इन मन्त्रों का विनियोग किया जाता है। इसका पुरश्चरण पूर्ववत् विधि से छः लाख (काल = छः) जप से होता है।।१७-१८।।

त्र्यक्षरस्यैव भेदोऽयं फटौ यत्र न तत्र वै।
जपे तु त्र्यक्षरं ज्ञेयं न्यासे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥१९॥

ह्रीं स्त्रीं हुं इन बीजत्रय के मध्य में 'फ' तथा 'ट' नहीं है। यहाँ त्र्यक्षर का यही भेद है। जप में त्र्यक्षर मन्त्र को ही जानना चाहिये। न्यास में सब प्रतिष्ठित है।।१९।।

एषामर्थः—उष्मवर्णो रेफः। जीवो हकारः। निगमस्वर ईकारः। नादबिन्दू स्पष्टौ। तेन मायाबीजमुद्धृतम्। तत्त्वरश्मिर्वधूबीजम्। कपिलो हकारः। वामकर्ण ऊकारः। नादबिन्दू स्पष्टौ। तेन कूर्चबीजमुद्धृतम्। पार्श्वः पकारस्तस्यान्त्यं फकारः। आन्तं टकार इति सार्द्धचतुरक्षरमन्त्रस्वरूपं प्रकृतिभूतम्। तच्च शरान्तमन्त्रबीजान्तं षडन्तमित्यर्थः। तेन मायावधूकूर्चं फट्कारद्वयञ्चेति प्रथमो मन्त्रः। तन्त्रसारकारोऽपि एतेन पञ्चाक्षरः फड़न्तश्चेदेका विद्या एतेन पञ्चाक्षरः प्रकृतिरित्याह। (१) मध्यादिति। मध्यं वधूबीजमादौ यस्यास्तादृशयुक्तं कवचं यत्र तादृशं प्रकृतिभूतं सार्द्धचतुरक्षरमित्यर्थः। एतदादिस्थलेषु कवचं दीर्घकवचमुपस्थिततत्वात्, तेन वधूमायाकूर्चमन्त्रम्।

(२) विपरीतमिति, अव्यवहितपूर्वोक्तमन्त्रो यदि विपरीतश्चरणम-बीजादिरित्यर्थः। त्रिधेति। तृतीयमित्यर्थः। तेन कूर्चं वधूर्माया फट्। (३) कूर्चेति अर्थात् प्रकृतं, तेन कूर्चं माया वधूरस्त्रं कूचवध्वोर्मायापरत्वे उक्ताभेदः। (४) मायादीति। प्रकृतिमन्त्रस्य मायादिकवचास्तत्वे कवचात् प्रागस्त्रमभिप्रेतम्, तेन माया वधूवस्त्रं कूर्चम्। सप्तममन्त्रवदन्तपदस्य त्र्यक्षरपरत्वे मूलभूतैकजटामन्त्राभेदः। (५) मायामध्येति। एतदेवेत्यर्थः। तेन वधूर्माया फट् कूर्चम्। (६) द्वितीयेति। तेन माया कूर्चं वधूरस्त्रम्। न चात्रानपदस्य पञ्चममन्त्रवत् सर्वास्तपरत्वं त्र्यक्षरान्त्यावयवपरत्वाबोधे सर्वान्तपरत्वस्याकल्पनात् पञ्चममन्त्रे तथा व्युत्पत्तेर्दशितदोषत्वात्। (७) अष्टममिति। तेन वधूः कूर्चं माया फट्। मायाकूर्च वध्वस्त्रपरत्वे पूर्वाभेदः। (८) त्र्यक्षरस्येति। यत्र बीजत्रयमध्ये फकारटकारौ न स्तस्तत्र त्र्यक्षरस्यापि अयं भेद इत्यर्थः॥२०॥

इसका अर्थ है—उष्मवर्ण = रेफ। जीवः = ह। निगमस्वरः = ई। नाद-बिन्दु = इनका अर्थ स्पष्ट है। इन तीनों को मिलाकर मायाबीज ह्रीं है। तत्त्वरश्मि = स्त्रीं। कपिलः = ह। वामकर्णः = ऊ। नाद-बिन्दु = इनका अर्थ स्पष्ट है। इससे कूर्चबीज हूं का उद्धार होता है। पार्श्वः = प। तस्यान्त्यं = उसके अन्त का अर्थात् 'प' के पश्चात्

'फ'। ञान्तं = ञ के पश्चात् का वर्ण अर्थात् 'ट'। इसका मन्त्रोद्धार है—फट्। शरान्त अस्त्रबीजान्त = फट् से अन्त होने वाला मन्त्र। (१) अतएव प्रथम मन्त्र है—माया, वधूबीज, कूर्चबीज तथा फट्कारद्वय अर्थात् ह्रीं स्त्रीं हुं फट् फट्। तन्त्रसार का भी मत है कि यदि पञ्चाक्षर फडन्त हो तब वह एक विद्या है। इसके द्वारा यह कहा गया है कि पञ्चाक्षर प्रकृति है। मध्यादि का अर्थ है = मध्य में रहने वाला वधूबीज जिस विद्या के आदि में है, इस प्रकार का वधूबीजयुक्त कवच जिस प्रकृति में है, वे प्रकृतिभूत साढ़े चार अक्षर हैं। इन सबमें कवच है—दीर्घ कवच। (२) द्वितीय मन्त्र है—स्त्रीं ह्रीं हूं फट्।

विपरीतम् = अव्यवहित पूर्वोक्त मन्त्र यदि विपरीत अन्त बीजादि हो। त्रिधा अर्थात् तृतीय। इस प्रकार से कूर्चबीज, वधूबीज, मायाबीज तथा फट् अर्थात् (३) हूं स्त्रीं ह्रीं फट्।

कूर्च = प्रकृत कूर्चबीज। इस प्रकार से कूर्चबीज, मायाबीज, वधूबीज तथा अस्त्र अर्थात् (४) हुं ह्रीं स्त्रीं फट्। कूर्च तथा वधू के पश्चात् माया लगाने से पूर्वोक्त मन्त्र के साथ अभेद हो जायेगा। मायादि इस वचन से माया आदि में तथा कवच अन्त में होने पर कवच के पूर्व में अस्त्र अभिप्रेत है। इसका तात्पर्य है—माया, वधू, अस्त्र, कवच अर्थात् (५) ह्रीं स्त्रीं फट् हुं। सप्तम मन्त्र के समान अन्त वाला पद त्र्यक्षर तात्पर्यक होने पर मूलभूत एकजटा मन्त्र के साथ अभेद हो जाता है (अर्थात् उसके जैसा ही मन्त्रोद्धार हो जाता है)। इसका अर्थ है कि माया मध्य में। अतएव वधू, माया, फट्, कूर्च अर्थात् (६) स्त्रीं ह्रीं फट् हूं। अब सप्तम मन्त्र है—माया, कूर्च, वधू तथा अस्त्र अर्थात् ह्रीं हूं स्त्रीं फट्। यहाँ अन्त वाला पद पञ्चम मन्त्र के समान सर्वान्त-तात्पर्यक नहीं है। त्र्यक्षर में अन्त्य अवयव तात्पर्य की बाधा न होने से सर्वाङ्ग-तात्पर्यक की कल्पना सङ्गत नहीं है। पञ्चम मन्त्र की ऐसी व्युत्पत्ति करने से दोष दर्शित होता है। अब वधू, कूर्च माया फट् अर्थात् (८) स्त्रीं हुं ह्रीं फट्। माया, कूर्च, वधू तथा अस्त्र के परत्व से पूर्व के साथ अभेद हो जाता है। जहाँ बीजत्रय 'ह्रीं स्त्रीं हुं' में फकार तथा टकार नहीं है (फट् नहीं है)।।२०।।

तथा च मायावधूकूर्चैर्वधूमायाभिः, कूर्चमायावधूभिर्मायाकूर्चवधूभि-र्वधूकूर्चमायाभिश्च षाड्विध्यं प्रकारान्तरस्याभावात्। अयन्तु विरोधः ॥२१॥

ऐसा होने पर माया, वधू तथा कूर्च से, वधूमाया तथा कूर्च से, कूर्च, वधू तथा माया द्वारा, कूर्च माया तथा वधू द्वारा, माया कूर्च तथा वधू द्वारा, वधू कूर्च तथा माया द्वारा, यह छः प्रकार का मन्त्र है। अन्य की सम्भावना नहीं है। किन्तु यह विरुद्ध है।।२१।।

जपस्त्र्यक्षरस्यैव न्यासे तु सर्वं प्रतिष्ठितं फट्कारोऽपि न्यस्तव्य इत्यर्थः। यथा पादयोः—फट् शक्तये नमः इत्यादि। एवं न्यास इत्यादि सामान्यतः प्राप्तयोर्भावनायन्त्रबीजलिखनयोरप्युपलक्षणम्। तेन पूजाप्रस्तावे पूर्वमुक्तम्। षोढान्यासोऽपि प्रणवास्त्रघटितः सर्वमन्त्रसाधारणतया कर्त्तव्य एव॥२२॥

त्र्यक्षर विद्या का ही जप होगा, किन्तु न्यास में समस्त विद्यायें आवश्यक हैं अर्थात् फट् का न्यास कर्त्तव्य है। जैसे पादद्वय में फट् शक्तये नमः इत्यादि। इस प्रकार न्यास होगा। यह भी सामान्यत: सामान्य भाव से प्राप्त दो भावना है तथा मन्त्र बीज लिखने का उपलक्षण है। इसीलिये इसे पूजा प्रकरण में पहले लिख दिया है। षोढान्यास में भी प्रणव तथा 'फट्' घटित 'सर्वमन्त्र सा धारण' कहना ही उचित है।।२२।।

यथा रुद्रयामले—

प्रणवं मातृकावर्णैः पुटितं मातृकास्थले।
तेनैव पुटितं वर्णं न्यसेत्तत्रैव पार्वति ॥२३॥
मायाबीजं तथा देवि विन्यस्तव्यं प्रयत्नतः।
वधूबीजं तथा चैव विन्यसेत् सुसमाहितः ॥२४॥
कूर्चबीजं तथा देवि न्यसनीयमशेषतः।
अस्त्रञ्चैव तथा न्यस्त्वा सकलं तदनन्तरम् ॥२५॥ इति।

रुद्रयामल का वचन है कि मातृका वर्ण के एक-एक वर्ण से पुटित प्रणव का मातृका स्थान में न्यास करे। हे पार्वति! उसी मातृका स्थान में प्रणव द्वारा पुटित एक-एक वर्ण का भी न्यास करे। हे देवि! यत्नपूर्वक इसी प्रकार मायाबीज का न्यास करना चाहिये अर्थात् एक-एक मातृकावर्ण से मायाबीज को पुटित करे तथा उसी मातृका स्थान में मायाबीज-पुटित मातृका वर्ण का एक-एक करके न्यास करे।

हे देवि! इसी प्रकार से कूर्चबीज से एक-एक करके वर्णों को पुटित करके न्यास करे और ऐसे ही एक-एक मातृका वर्णों को कूर्चबीज से पुटित कर न्यास करे।

ऐसे ही फट् को एक-एक वर्णों से पुटित करके न्यास करे; तत्पश्चात् प्रत्येक वर्ण को फट् द्वारा पुटित करके न्यास करे।।२३-२५।।

स्वतन्त्रतन्त्रे, गन्धर्वे च—

जलापच्छमनीं तारां वक्ष्येऽन्यां शृणु तत्त्वतः।
यस्याः स्मरणमात्रेण भयमाशु विनाशयेत् ॥२६॥
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य तारे तु तारे तथा।
तुत्ता स्वाहेति मन्त्रोऽयं दशाक्षर उदाहृतः ॥२७॥

स्वतन्त्रतन्त्र तथा गन्धर्वतन्त्र में तारा का मन्त्रान्तर कहते हैं। जलीय आपत्ति-नाशिनी तारा की अन्य विद्या कहता हूँ; श्रवण करो। जिनके स्मरणमात्र से शीघ्र ही भयनाश हो जाता है। प्रथमत: प्रणव (ॐ) का उद्धार करके पुन: तारे तुतारे तुत्ता स्वाहा कहे। मन्त्रोद्धार है—ॐ तारे तु तारे तुत्ता स्वाहा। यह तारा का दशाक्षर मन्त्र कहा गया है।।२६-२७।।

अस्य ध्यानं स्वतन्त्रे—

श्यामवर्णां त्रिनयनां द्विभुजां वरपङ्कजे।
दधानां बहुवर्णाभिर्बहुरूपाभिरावृत्ताम्।।२८।।
शक्तिभि: स्मेरवदनां स्मेरमौक्तिकभूषणाम्।
रत्नपादुकयोर्न्यस्य पादाम्बुजयुगां स्मरेत्।
अस्य पूजादिकं सर्वं पूर्ववत् समुपारेत्।।२९।।

स्वतन्त्र तन्त्र में इसका ध्यान इस प्रकार कहा है—श्यामवर्णा, त्रिनेत्रा, द्विभुजा, वरमुद्रा तथा कमलधारिणी, बहुरूपा शक्तियों से घिरी, श्वेतवदना, उज्वल मोती-जटित आभूषण भूषिता, रत्न पादुका पर अपने दोनों चरण रखने वाली तारा का ध्यान करे। इनकी पूजा आदि पूर्ववत् विधानानुसार करना चाहिये।२८-२९।।

पुरश्चरणन्तु दशलक्षजप:। तदुक्तं तत्रैव—

दशलक्षं जपेद् धीमान्नियमेन यथाविधि।
दशांशं जुहुयान्मन्त्री घृताक्तै: रक्तपुष्पकै:।।३०।।

पुरश्चरण १० लाख जप का करे। स्वतन्त्र तन्त्र में कहा भी है कि धीमान् साधक यथाविधान से १० लाख मन्त्रजप करने के उपरान्त घृताक्त रक्त पुष्प से एक लाख होम करना चाहिये।।३०।।

मातृकार्णवे—

विद्यान्तरं प्रवक्ष्यामि शृणु सावहिता प्रिये।
वाग्भवं कुलदेवीञ्च तारकं वाग्भवं तथा।।३१।।
हृल्लेखा चास्त्रमन्त्रान्ते वह्निजायावधिर्मनु:।
अष्टाक्षरो मनु: प्रोक्तो वेदमातुरनुत्तम:।।३२।।

मातृकार्णव में कहते हैं कि हे प्रिये! तारा की अन्य विद्या को कहता हूँ। अवहित होकर सुनो। वाग्भव (ऐं) कुलदेवी (ह्रीं) तार (ॐ) वाग्भव (ऐं) हृल्लेखा (ह्रीं) अस्त्रमन्त्र (फट्) वह्निजाया (स्वाहा)। मन्त्र है—ऐं ह्रीं ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा। वेदमाता नीलसरस्वती का यह सर्वश्रेष्ठ अष्टाक्षर मन्त्र है।।३१-३२।।

पञ्चाङ्गं न्यस्य मन्त्रस्य पञ्चबीजैः प्रकल्पयेत्।
अस्त्रं शेषाक्षरैर्न्यस्य कृतकृत्या भवेन्नरः।
ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववच्च समाचरेत्।।३३।।

इस मन्त्र के पाँच बीजों द्वारा पाँच अंगों का न्यास करे। शेष अक्षरों द्वारा अस्त्रन्यास करके मानव कृतकृत्य हो जाता है। इस मन्त्र का ध्यान-पूजनादि पूर्ववत् होगा।।३३।।

तेनादौ वाग्भवस्ततः कुलदेवीं मायाबीजं ततस्तारः प्रणवः पूर्ववाग्भवः पुनर्माया ततः फट् स्वाहा। अष्टाक्षर इति। टकारस्यार्धाक्षरतया गणनाभावादिति।।३४।।

इस प्रकार प्रथम वाग्भवबीज ऐं तदनन्तर कुलदेवी (ह्रीं) तदनन्तर तार (ॐ) पुनः वाग्भवबीज (ऐं) पुनः माया (ह्रीं) तत्पश्चात् फट् स्वाहा। अष्टाक्षर का तात्पर्य है—'ट'कार को अर्ध अक्षर कहकर इसकी गणना नहीं की जाती; इसीलिये यह अष्टाक्षर मन्त्र कहा जाता है।।३४।।

मत्स्यसूक्ते—

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य पद्मे युग्मं तथैव च।
महापद्मे पदं ब्रूयात् पद्मावति पदं ततः।।३५।।
माये स्वाहेति मन्त्रोऽयं प्रोक्तः सप्तदशाक्षरः।
पूजा पूर्ववदुद्दिष्टा अर्धरात्रे चतुष्पथे।
जपमस्याश्चरेद्यस्तु स स्याद् द्रुतकविर्ध्रुवम्।।३६।।

मत्स्यसूक्त में १७ अक्षरों के मन्त्र का उल्लेख है। प्रणव का उच्चारण करके 'पद्मे पद्मे महापद्मे' कहकर 'पद्मावति' तत्पश्चात् 'माये स्वाहा' कहे। आधी रात में चौराहे पर इस मन्त्र का पूजन पूर्ववत् किया जाता है। जो इस मन्त्र का जप करते हैं, वे निश्चय ही द्रुतकवि हो जाते हैं। मन्त्रोद्धार है—ॐ पद्मे पद्मे महापद्मे पद्मावति माये स्वाहा।।३५-३६।।

माये इति सम्बुद्ध्यन्तपदस्वरूपम्। न तु मायाबीजद्वयं, सम्बुद्ध्यन्तपदसमभिव्याहारस्य तथा तात्पर्यग्राहकत्वात्।।३७।।

'माये' यह माया पद का सम्बोधन पद है। द्वितीय मायाबीज से इसका तात्पर्य नहीं है। सम्बोधन पद के समभिव्याहार से माया पद का यही तात्पर्य गृहीत होता है।।३७।।

स्वच्छन्दसंग्रहे—

शिवबीजं महेशानि! शक्तिबीजं ततः परम्।
बिन्दुसर्गसमायुक्तं वेदाद्यं तदधः क्रमात्।।३८।।

मायास्त्रीवर्मबीजान्ते हंसबीजमुदाहृतम्।
एषा अष्टाक्षरी विद्या कथिता भुवि दुर्लभा ॥३९॥

स्वच्छन्दसंग्रह में अष्टाक्षरी विद्या कहते हैं। हे महेशानि! यथाक्रम से बिन्दुविसर्गयुक्त, शिवबीज तत्पश्चात् शक्तिबीज (स) अनन्तर यथाक्रमेण वेदार्थ, मायाबीज, स्त्रीबीज, वर्मबीज अन्त में हंसबीज लगाये। इससे मन्त्रोद्धार होता है—हंस: ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं हंस:। पृथ्वी पर यह विद्या दुर्लभा है।।३८-३९।।

आज्ञासिद्धिमवाप्नोति त्रैलोक्यं वशमानयेत्।
वशमायास्ति सततं तस्य विद्याश्चतुर्दश ॥४०॥

इस विद्या से आज्ञासिद्धि होती है। त्रिलोक वशीभूत हो जाता है। चौदहों विद्यायें उसके वश में हो जाती हैं।।४०।।

हंसतारा महाविद्या तव स्नेहात् प्रकाशिता।
कविता सा वशेत् पुंसां धनार्थी धनमाप्नुयात्।
मोक्षार्थी लभते मोक्षं नात्र कार्या विचारणा ॥४१॥

तुम्हारे स्नेह के कारण हंसतारा विद्या को तुमसे कहा। इससे मनुष्यों को कवित्व मिलता है। धनार्थी को धन तथा मोक्षार्थी को मोक्ष मिलता है। इसमें संदेह न करे।।४१।।

शिवबीजं हकार:, स च बिन्दुयुक्त:। शक्तिबीजं दन्त्यसकार:। स च विसर्गवान्, तेन हंस इति सिद्धम्। तथा च हंस: प्रणव: माया वधू: कूर्चं हंस: इत्यष्टाक्षरी॥४२॥

शिवबीज= ह। यह बिन्दुयुक्त हो। शक्तिबीज (स), यह विसर्गयुक्त हो। इससे हंस: पद सिद्ध होता है। अव 'हंस: ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं हंस:' यह आठ अक्षरों वाली विद्या कही गई है।।४२।।

तत्रैव—

पञ्चाक्षरी च या विद्या हंसाद्यन्ता महोदया।
केवलं त्वत्प्रयत्नेन तव स्नेहात् प्रकाशिता ॥४३॥

स्वच्छन्दसंग्रह में कहते हैं कि पञ्चाक्षर जो विद्या है, उसके आदि तथा अन्त में हंस: लगाने से वह महा अभ्युदयकारिणी हो जाती है। केवल तुम्हारे यत्न (जिज्ञासा) के कारण तथा तुम्हारे प्रति स्नेह के कारण इसे प्रकाशित किया है।।४३।।

तथा चेयं फट्कारमध्या चेन्नवाक्षरी।
अनयोर्जपपूजादीन् पञ्चाक्षरीवदाचरेत् ॥४४॥

यह अष्टाक्षरी विद्या फट्कार मध्य में होने से नौ अक्षरों वाली हो जाती है। इन दोनों (अष्टाक्षरी-नवाक्षरी) का पूजनादि पूर्ववत् है।।४४।।

तन्त्रान्तरे—

लज्जायुगं वधूबीजं ततो दीर्घतनुच्छदम्।
सारस्वतो परो मन्त्रः सम्प्रोक्तश्चतुरक्षरः।
तदन्ते यदि फट्कारीमनुः पञ्चाक्षरो भवेत्।।४५।।

अन्य तन्त्र के अनुसार दो लज्जाबीज (ह्रीं ह्रीं) वधूबीज (स्त्रीं) तथा दीर्घ तनुच्छद (हुं) यह नीलसरस्वती का चार अक्षर का मन्त्र है। मन्त्रोद्धार है—ह्रीं ह्रीं स्त्रीं हूं। यदि अन्त में 'फट्' लगाया जाये तब यह पञ्चाक्षर होगा (ट को आधा वर्ण मानते हैं)। मन्त्रोद्धार है—ह्रीं ह्रीं स्त्रीं हूं फट्।।४५।।

तथा—

तारशक्तिवधूबीजान्यन्ते दीर्घतनुच्छदम्।
अस्त्रमग्निवधूरन्ते मनुः सप्ताक्षरो भवेत्।।४६।।

इसी प्रकार और भी कहते हैं। तार (ॐ) शक्ति (ह्रीं) वधूबीज (स्त्रीं) इसके अन्त में दीर्घ तनुच्छद (हुं) अस्त्र (फट्) अन्त में वह्निवधू (स्वाहा)। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं फट् स्वाहा। यह सप्ताक्षर मन्त्र है।।४६।।

मन्त्रमात्रेष्वयं प्रोक्तस्तथा दीर्घेन वर्त्मना।
पुटितञ्च वधूबीजमपरोऽसौ गुणाक्षरः।।४७।।
तथा च कूर्चं वधूः कूर्चमिति त्र्यक्षरो मन्त्रः।

मन्त्रमात्र में यही विधि कही गई है। इसी प्रकार दीर्घ कवच (हूं) द्वारा वधूबीज स्त्रीं- पुटित तीन अक्षरों वाला यह अपर मन्त्र है। मन्त्रोद्धार है—हुं स्त्रीं हूं।।४७।।

एकवीराकल्पेऽपि—

शिवः शक्तिस्तारमायाफट्कारान्त उदाहृतः।
सार्द्धपञ्चाक्षरो मन्त्रो ज्ञानदीपप्रदो मतः।।४८।।

शिव (हं) शक्ति (ह्रीं) तार (ॐ) माया (ह्रीं) तथा अन्त में फट्। यह साढ़े पाँच अक्षर का मन्त्र ज्ञानप्रद है। मन्त्रोद्धार होता है—हं ह्रीं ॐ ह्रीं फट्। यह एकवीरा कल्प में कहा गया है।।४८।।

तारो माया शिवः शक्तिः फट्कारान्ता परा स्मृता।
एतयोः कल्पमुदितं महोग्राकल्पमुत्तमम्।।४९।।

तार, माया, शिव, शक्ति तथा अन्त फट्कार अर्थात् 'ॐ ह्रीं हं सः फट्' एक और मन्त्र है। इन दोनों की विधि कही जा चुकी है। महोग्राविधि उत्तम है।।४९।।

एतयोरनयोः। शिवः सानुस्वारहकारः। शक्तिः सविसर्गदन्त्यसकारः॥५०॥

एतयोः = यह दोनों मन्त्र श्लोक ४८ तथा ४९ वाले। शिवः = अनुस्वार सहित हकार। शक्ति = सः।।५०।।

अथ नीलसरस्वती

यथा सिद्धसारस्वते—

वाङ्माया कमलाबीजमीशो भृगुनिषेवितः।
चतुर्दशेन्दुसंयुक्तः पश्चाद्भृगुमहेश्वरौ ॥१॥
चतुर्दशविसर्गाढ्यौ वदद्वन्द्वञ्च वाक्पदम्।
वादिनीति पदं पश्चात् नींपदत्रितयं ततः ॥२॥
नीलसरस्वतीपदं त्रिरावृत्तिश्च वाङ्मनोः।
का हि शब्दद्वयं पश्चात् कलरीमग्निवल्लभा ॥३॥
चतुस्त्रिंशद्वर्णयुक्तो नीलसारस्वतो मनुः।
षाट्कौषिकोऽयं विज्ञेयः षड्भिवर्णैर्युतः कृतः ॥४॥

अब नीलसरस्वती विद्या कहते हैं। सिद्धसारस्वत में कहा गया है कि वाक् (ऐं) माया (ह्रीं) कमला (श्रीं) चतुर्दश स्वर तथा इन्दुसंयुक्त भृगु से (स) संयुक्त ईश अर्थात् 'हेसों' अनन्तर वद वद, वाक् पद वादिनि, नीं पद त्रितय (नीं नीं नीं) तदनन्तर नीलसरस्वती, त्रिरावृत्त वाङ्मनु अर्थात् ऐं ऐं ऐं काहि काहि कलरीं तथा अग्निवल्लभा (स्वाहा)—यह ३४ अक्षरों का नीलसरस्वती का मन्त्र है। यह छः वर्णों द्वारा उद्धृत होने के कारण षाट्कौशिक कहा जाता है। मन्त्रोद्धार है—ऐं ह्रीं श्रीं हेसों सेहोंः वद वद वाग्वादिनि नीलसरस्वति ऐं ऐं ऐं काहि काहि कलरीं स्वाहा।।१-४।।

ऋषिच्छन्दोदेवतानां विभागं शृणु पार्वति।
गङ्गाप्रवाहो नामर्षि मत्स्यरूपी जनार्दनः ॥५॥
अतिशयवाक्कविता छन्दो देवी सरस्वती।
सर्ववागैश्वर्यमयी समस्ताभीष्टदायिनी ॥६॥
ऐं बीजं कीलकं ज्ञेयं कलाः शक्तिः समीरिता।
नीलो वर्णस्तु विज्ञेयस्त्वरितं कविताफलम् ॥७॥

हे देवि! अब इस मन्त्र के ऋषि, छन्द तथा देवता-विभाग को सुनो। इस मन्त्र के गंगाप्रवाह नामक ऋषि हैं। ये मत्स्यरूपी जनार्दन हैं। अतिशय वाक् कविता छन्द

है एवं समस्त वागैश्वर्यमयी, समस्त अभीष्ट देने वाली सरस्वती देवी इस मन्त्र की देवता हैं। ऐं बीज कीलक है। काल इसकी शक्ति है। नीलवर्णा को शीघ्र कवित्व प्रदायक जानना चाहिये।।५-७।।

मुद्रा तु प्रतिवादीन्द्रमुखमुद्रा समीरिता।
हृल्लेखेयं षडङ्गानि कुर्यात् षड्दीर्घयुक्तता ॥८॥

प्रतिवादीन्द्र की मुखमुद्रा ही मुद्रा है। छः दीर्घस्वर-युक्त हृल्लेखा द्वारा षडङ्ग न्यास करना चाहिये।।८।।

नीलां शुद्धां मानमयीञ्च करेषु वीणां
मुद्राञ्च पात्रमथ पूर्णसुधौ दधानाम्।
उद्यच्चतुर्मुखवहत्कविताप्रवाहां नीलां
भजामि हृदयेषु सरस्वतीं ताम् ॥९॥

नील वर्ण वस्त्र पहनकर मानमयी, हस्तसमूह में वीणा, मुद्रा, पात्र तथा सुधा धारण करने वाली, उत्थित चार मुखों से कविता-प्रवाह की सृष्टि करने वाली नीला सरस्वती का हृदय से भजन करता हूँ।।९।।

अथ मातृकार्णवोक्तध्यानम्—

नीलाम्भोधरसन्निभा त्रिनयना बाहुस्फुरद्वल्लकी
मुद्रापात्रकरा चतुर्मुखवहद्वाक्पुरकल्लोलिनी।
नीलच्छायमरालपंक्तिघटना रम्ये विमाने स्थिता।
प्रोत्तुङ्गस्तनभारभङ्गुरतनुर्नीला शिवा पातु वः ॥१०॥

इति नक्षत्रविद्याप्रकरणं सम्पूर्णम्

मातृकार्ण ध्यान का अर्थ है—नील जलधर के समान नीलवर्णा, त्रिनेत्रा, बाहुओं में उज्ज्वल वीणा-धारिणी मुद्रा तथा पात्र-धारिणी ब्रह्मा के समान वाक्पूरक तरंग-धारिणी, नीलवर्ण मरालपंक्ति-रञ्जित मनोहर विमान पर स्थिता, प्रोन्नत (अत्युच्च) स्तनभार से अवनत शरीर वाली नीला शिवा तुम सबकी रक्षा करे।।१०।।

●

प्रचण्डचण्डिकाप्रकरणम्

प्रचण्डचण्डिकां देवीमथ वक्ष्यामि विस्तरात्।
यस्याः प्रसादमासाद्य सद्यः सिद्धो भवेन्नरः ॥१॥
कवित्वञ्च सुपाण्डित्यं धनं पुत्रं प्रगल्भताम्।
बहुना किमिहोक्तेन स हि साक्षात् सदाशिवः ॥२॥

तदनन्तर मैं उन प्रचण्ड चण्डिका देवी का अति विस्तार से वर्णन करता हूँ, जिनकी कृपा से मानव तत्काल सिद्ध हो जाता है। कवित्व, पाण्डित्य, धन, पुत्र, प्रगल्भता प्राप्त होती है। यहाँ अधिक उक्ति का क्या प्रयोजन। वह साक्षात् सदाशिव हो जाता है।।१-२।।

अथ मन्त्राः

तथा विश्वसारतन्त्रे—

लक्ष्मीं लज्जां तथा मायां मात्रां द्वादशिकामपि।
वज्रवैरोचनीये द्वे माये फट् स्वहया युतः ॥३॥

लक्ष्मीबीज (श्रीं), लज्जाबीज (क्लीं), मायाबीज (ह्रीं), बारहवीं मात्रा (ऐं) वज्र-वैरोचनीये, दो माया तथा स्वाहायुक्त फट् अर्थात् 'श्रीं क्लीं ह्रीं ऐं वज्रवैरोचनीये ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा'।।३।।

मात्रां द्वादशिकामपीति। मात्रा स्वरस्तथा च द्वादशस्वरात्मकं वाग्भवबीज-मित्यर्थः। सर्वत्र उद्धरेदित्यध्याहृतेन सम्बन्धः। अत्र लज्जापदं कामबीज-परम्॥४॥

मात्रां द्वादशिकमपि = बारहवाँ स्वर। अर्थात् 'ऐं' वाग्भवबीज, 'सर्वत्र उद्धरेत्' इस अध्याहृत क्रिया के साथ सम्बन्ध है। यहाँ लज्जाबीज का तात्पर्य है—कामबीज क्लीं।।४।।

तथा च—

अत्र लज्जापदे देवि कामबीजं वितन्यते।
महाकालमतं ज्ञेयं मन्त्रोद्धारं शुभावहम् ॥५॥

हे देवि! यहाँ लज्जाबीज (लज्जा) से कामबीज का तात्पर्य है। इसे महाकालमत रूप से जानना चाहिये।।५।।

पूर्वमायापदे देवीति पाठे मायापदस्य पूर्वं पूर्वमायापदम् राजदन्तादित्वात् परनिपातः। तथा च पूर्वमायापदं यल्लजापदं तस्मिन्नित्यर्थः। तथा च पूर्वमायापदपदेन कामबीजमुच्यते; अन्यथा तापिनीविश्वसारादिग्रन्थविरोधः स्यात् ॥६॥

'अत्र लज्जापदे देवि' यहाँ 'पूर्वमाया पदे देवि' पाठ होने पर माया पद से पूर्व ऐसा समास राजदन्तादित्व के कारण माया पद का परनिपात होगा। पूर्वमायापद अर्थात् 'मायापद के पूर्व जो लज्जापद है उससे' इस स्थिति में पूर्व माया पद से अर्थात् माया पद के पहले—इससे कामबीज से तात्पर्य है। अन्यथा तापिनी, विश्वसारादि तन्त्र के साथ विरोध होगा।।६।।

तथा च विश्वसारतन्त्रे—

कामाद्यां वाग्भवाद्यां वा मायाद्यां वा जपेत् सुधीः ।
लक्ष्म्याद्यां वा जपेद्विद्यां चतुर्वर्गफलप्रदाम् ॥७॥

विश्वसार तन्त्र में कहा गया है कि सुधी साधक इस विद्या को अनेक प्रकार से कहते हैं। कोई प्रथमतः वाग्भव (ऐं) को रखते हैं तो कोई माया को (ह्रीं) आगे रखकर जप करते हैं; परन्तु चतुर्वर्ग-फलदायिनी इस विद्या का जप लक्ष्मी (श्रीं) को आगे रखकर करना चाहिये।।७।।

एवञ्चात्र कल्पे सर्वत्र मायापदं भुवनेशी वाचकमेव। यथा भैरवमतम्—

लक्ष्मीं प्रथमबीजेऽस्ति लज्जाबीजमनोभवः ।
तृतीयेऽस्मिन् सदा देवी महापातकनाशिनी ॥८॥

कल्प में कहते हैं कि इस कल्प (विधान) में सर्वत्र माया पद भुवनेश्वरी का वाचक है। भैरवमत में कहा है कि लक्ष्मी प्रथमबीज में है। लज्जाबीज में मनोभव (काम) है। तृतीय बीज में महापातक का नाश करने वाली देवी सर्वदा विद्यमान है।।८।।

चतुर्थे तु गुणातीता मुक्तिविद्याप्रदायिका ।
वकारे वरुणः साक्षाज्जकारे तु सुराधिपः ॥९॥

चतुर्थ बीज में गुणातीता मुक्ति तथा विद्या देने वाली देवी हैं। 'व' में साक्षात् वरुण तथा 'ज' में साक्षात् सदाशिव विद्यमान हैं (यहाँ सुराधिप से इन्द्र का तात्पर्य नहीं है)।।९।।

रेफे हुताशनो देवो वकारे वसुधाधिपः ।
ऐकारे त्रिपुरा देवी रेफे त्रिपुरसुन्दरी ॥१०॥

त्रैलोक्यविजया देवी सदैवोकारसंस्थिता।
चकारे चन्द्रमा देवो नकारे हि विनायकः ॥११॥

रेफ (र) में अग्नि, 'व' में वसुधापति, 'ऐ' में त्रिपुरादेवी, रेफ में त्रिपुरसुन्दरी विराजित हैं। त्रैलोक्यविजया देवी सदा 'औ' में विद्यमान रहती हैं। 'च' में चन्द्रदेव तथा 'न' में विनायक अवस्थान करते हैं।।१०-११।।

ईकारे कमला साक्षाद् यकारे च सरस्वती।
मायायुग्मे सदा देवी प्रकृत्या सहसङ्गता ॥१२॥
वैखरी चैव फट्कारे स्वाकारे कुसुमायुधः।
हाकारे च रतिस्तिष्ठेदेवं मन्त्रसमुच्चयः ॥१३॥

ईकार में कमला, यकार में साक्षात् सरस्वती, मायाद्वय में प्रकृति के साथ देवी सदा सङ्गता हैं। 'फट्' में वैखरी देवी, 'स्वा' में कामदेव, 'हा' में रति हैं। इस प्रकार मन्त्र में देवगण का समुच्चय है।।१२-१३।।

एवञ्च वज्रशब्दस्य वकारो यरलवीय इति सिद्धम्। वो 'बालो वारुणीसूक्ष्मा वरुणो वेदसंज्ञकः' इति वर्णाभिधानेनान्त्यवकारपर्यायदर्शनात्। तथा वैरोचनीयशब्दस्य पवर्गीयवकारादित्वमपि 'सुरभिर्मुखविष्णु च संहारो वसुधाधिप' इति तेनैव वर्ग्यवकारानुशासनात्॥१४॥

यहाँ वज्र शब्द का वकार 'व' है। वह यरलवीय वर्ग का सिद्ध है; क्योंकि वचन है कि वर्णाभिधान में वकार का बाल, वारुणी, सूक्ष्मा, वरुण-प्रभृति पर्यायवाची शब्द दृष्टिगत होता है। इसी प्रकार वैरोचनीय शब्द पवर्ग के अन्तर्गत वाला 'ब' भी हो सकता है; क्योंकि 'सुरभिमुख विष्णु च संहारो वसुधाधिप' इस प्रकार वर्गाभिधान में वर्गीय वकार का अनुशासन परिलक्षित होता है।।१४।।

इत्थञ्च एतत्कल्पे आदौ रमा ततः कामस्ततो माया ततो वाग्भवस्ततो वज्रवैरोचनीये इति पदम्, ततः पुनर्मायायुग्मं, ततः फट्कारः, ततः स्वाहा इति षोडशाक्षरी विद्योद्धृतेति केचित्। तच्चिन्त्यम्। तथा च श्रीं क्लीं ह्रीं ह्रीं वज्रवैरोचनीये ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा इति सिद्धम्। एतादृशषोड़श्या इत एवोद्धारे वक्ष्यमाणषोडश्यन्तरबोधकविश्वसारवचनस्य पौनरुक्त्यापत्तेः॥१५॥

इस प्रकार होने से इस कल्प में प्रथमतः रमा (श्रीं) द्वितीयतः काम (क्लीं) तदनन्तर माया (ह्रीं) तदनन्तर वाग्भव (ऐं) तदनन्तर वज्रवैरोचनीये पुनः मायाद्वय (ह्रीं ह्रीं) तत्पश्चात् फट् और अन्त में स्वाहा—यह षोडशाक्षर मन्त्र है। यह कोई-कोई

कहता है, जो चिन्तनीय है। इस प्रकार से षोडशाक्षरी का उद्धार होने से विश्वसार तन्त्रान्तर्गत षोडशाक्षरी के वचनों से पुनरुक्ति की आपत्ति होगी।।१५।।

रमा कामस्तथा लज्जा वाग्भवं वज्रवैपदम् ।
रोचनीये लज्जद्वन्द्वं मात्रं स्वाहा समन्वितम् ॥१६॥ इति ।

रमा, काम, लज्जा, वाग्भव 'वज्रवै' पद, वैरोचनीये तथा स्वाहा-समन्वित लज्जाद्वय को मन्त्र जानना चाहिये।।१६।।

वस्तुतस्तु अत्र लज्जापदं भुवनेशीपरमेव। मायापदन्तु सर्वत्र कूर्चपरम्। तत्रैव—

वान्तं वह्निसमारूढं रतिबिन्दुविभूषितम् ।
लक्ष्मीबीजमिदं प्रोक्तं सर्वकामार्थसिद्धिदम् ॥१७॥

वास्तव में यहाँ लज्जा पद भुवनेश्वरी का बोधक है। माया पद सर्वत्र कूर्चबीज-तात्पर्यक है; क्योंकि वहाँ वान्त 'व' के पश्चात् जो है 'श' वह्नि (र) पर आरूढ़ होकर रति (ई) तथा बिन्दुभूषित होकर सर्वकाम तथा सर्व अर्थप्रद लक्ष्मीबीज (श + र + ई + ं = श्रीं) के नाम से कहा जाता है।।१७।।

वामाक्षिवह्निसंयुक्तं बिन्दुनादविभूषितम् ।
शिवबीजं महेशानि लज्जाबीजमुदाहृतम् ॥१८॥

हे महेशानि! शिवबीज (ह) वह्नि (र) तथा वामाक्षि (ई) द्वारा संयुक्त हो नाद-बिन्दु-विभूषित होकर लज्जाबीज होता है (ह + र + ई + ं = ह्रीं)।।१८।।

ईशानमुद्धृत्य पुरारिबीजं सबिन्दुकं नादविभूषितञ्च ।
सवामकर्णं परितः प्रकल्प्य मायां वदन्तीह मनीषिणं त्वाम् ॥१९॥

पुरारिबीज ईशान को (ह) वामकर्ण (ऊ)-युक्त बिन्दुयुक्त नाद-विभूषित करके सर्वतोभावेन उद्धार करने पर उसे मनीषीगण माया कहते हैं (ह + ऊ + ँ = हूं)।।१९।।

द्वादशस्वरवर्णं स्यान्नादबिन्दुविभूषितम् ।
वाग्भवबीजमित्युक्तं सर्ववाक्यविशुद्धये ॥२०॥

इति मन्त्रचतुर्बीजविवरणात्।

द्वादश स्वरवर्ण (ऐ) नादबिन्दु विभूषित होकर सर्व वाक्य विशुद्ध करने वाला वाग्भव बीज (ऐं) कहा जाता है। इस प्रकार मन्त्र का चार विवरण परिलक्षित होता है।।२०।।

श्री मायाकूर्चवाग्बीजैर्वज्रवैरोचनीये हूं। हूं फट् स्वाहा महाविद्या षोडशी ब्रह्मरूपिणी। इति कवचे तथैव प्रतिपादनाच्च। एवञ्चादौ श्रीस्ततो माया ततः कूर्चं ततो वाग्भवं ततो वज्रवैरोचनीये इति पदं ततः पुनः कूर्चद्वयं ततः फट्कारस्ततः स्वाहेति षोडशीविद्या उद्धृतेति। तन्त्रसारकृताप्येष कल्पः समादृतः। तथा च श्रीं ह्रीं हूं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा इति सिद्धम्। अतएवादिचतुर्बीजानां पौर्वापर्यभेदादेतद्विद्यायाश्चतुर्विधत्वमुक्तं यथाश्रुतमेव साधु सङ्गच्छते॥२१॥

श्री माया कूर्च वाग्बीजैर्वज्रवैरोचनीये हूं। हूं फट् स्वाहा महाविद्या ब्रह्मरूपिणी है अर्थात् श्री, माया, कूर्च तथा वाग्भवबीज के साथ वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा— यह षोडशाक्षरी महाविद्या ब्रह्मरूपिणी है। इस कवच में इस प्रकार से माया को कूर्च कहकर प्रतिपादित किया गया है। इसमें प्रथमतः श्री, माया, कूर्च, वाग्भव, वज्रवैरोचनीये, पुनः दो कूर्च, तदनन्तर फट् तथा स्वाहा—यह षोडशी विद्या कही गयी है। यह षोड़शीविद्या उद्धृत हुई है यह कहकर तन्त्रसार ने भी इस कल्प का आदर किय है।

मन्त्रोद्धार होता है—श्रीं ह्रीं हूं ऐं वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा। इसीलिये प्रथम चार बीजों के पौर्वापौर्यभेद के कारण इस विद्या का चतुर्विधत्व कहा गया है। यह यथाश्रुत सुन्दर भाव से सङ्गत है।।२१।।

यथा—

लक्ष्मीबीजं यदाद्यं स्यात्तदा श्रीः सर्वतोमुखी।
लज्जाबीजेन चाद्येन वश्यतां यान्ति योषितः॥२२॥
मायाबीजेन चाद्येन महापातकनाशनम्।
मात्रा द्वादशिका बीजमाद्यं स्यान्मुक्तिदायकम्॥२३॥

तन्त्र में कहा है कि जब लक्ष्मीबीज प्रथम होगा तब सर्वतोमुखी श्री होगी। लज्जाबीज पहले होने पर स्त्रियाँ वश में होती हैं। मायाबीज आदि में होने पर महापाप नष्ट होता है। द्वादशस्वर (ऐं) पहले होने से मुक्ति प्राप्त होती है।।२२-२३।।

न चैवं प्रागुक्तानां विश्वसारवचनानां भैरवमतोक्तवचनानाञ्च विरोध इति वाच्यम्, तत्तद्वचनानां वक्ष्यमाणषोडशीविद्यान्तरपरत्वात्। बीजचतुष्टय-माचमने सुव्यक्तीभविष्यतीति च ध्येयम्॥२४॥

पूर्वोक्त विश्वसारतन्त्र के वचन तथा भैरवमतोक्त वचन में विरोध है, यह नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वे-वे वचन अन्य षोडशी विद्या के लिये कहे गये हैं। बीजचतुष्टय आचमन में सुस्पष्ट होगा, यह जानना चाहिये।।२४।।

अथास्याः पूजाप्रयोगः। प्रातःकृत्यादिकं सामान्यपद्धत्युक्तक्रमेण कृत्वा मन्त्राचमनं कुर्यात्। यथा—

लक्ष्मीमायाकूर्चबीजैस्त्रिभिः पीत्वाम्बु साधकः।
वाग्भवेनोष्ठौ संमृज्य मायां ताञ्च द्विरुन्मृजेत्।
कूर्चेन क्षालयेत् पाणौ एभिर्मन्त्रैश्च विन्यसेत्॥२५॥

अब प्रचण्डचण्डिका का पूजा प्रयोग कहते हैं। सामान्य पद्धति क्रम से प्रातःकृत्यादि करके मन्त्राचमन करे। जैसे लक्ष्मी, माया तथा कूर्च द्वारा जलपान करके वाग्भव द्वारा ओठों का मार्जन करना चाहिये तथा दो माया द्वारा उसे शुद्ध करे। दो कूर्चबीज द्वारा क्षालन करके इन सभी बीजों के द्वारा स्पर्श करे।।२५।।

श्रीमायाकूर्चवाक्कामत्रिपुटाभगवर्त्तुलैः।
कामकलाङ्कुशाभ्याञ्च वक्त्रनासाक्षिकर्णयोः॥२६॥
नाभिहृन्मस्तकञ्चांसौ स्पृष्ट्वा शम्भुर्भवं क्षणात्।
आचम्यैवं छिन्नमस्तां वत्सरात्तां प्रपश्यति॥२७॥

श्रीवीज, मायाबीज, कूर्चबीज, वाक्, वाग्भव बीज, कामबीज, त्रिपुटा (लक्ष्मीबीज मायाबीज कामबीज), भग (ऐं), वर्त्तुल (ॐ), कामकला (ईं) अङ्कुश (क्रों) द्वारा मुख, नासा, अक्षि, दोनों कान, नाभि, हृदय, मस्तक तथा अंसद्वय का स्पर्श करके तत्काल ही साधक शम्भु हो जाता है। इस प्रकार आचमन करके हुये एक वर्ष में साधक शम्भु की प्रत्यक्ष कर लेता है।।२६-२७।।

लक्ष्मी—रमाबीजम्। माया—भुवनेशी। मायाभ्याञ्चेति मायाद्वयमुच्चार्य वारद्वयमुन्मृजेदित्यर्थः। अन्यथा मायया च द्विरुन्मृजेदित्येव ब्रूयात्। श्रीमायेति। वाक्—वाग्भवम्। त्रिपुटावर्णाः—लक्ष्मी, माया, कामबीजानि। भगमैकारः। क्षमान्तको जगद् योनिः परः परनिरोधकृदिति वर्णमालायां योनिपदेन द्वादशस्वरकथनात् तत्र जगदित्येकं नाम। एवञ्च द्वादशस्वरोऽत्र वाग्भवरूपः समभिव्याहारवशात् बीजबोधत्वाच्च। वर्त्तुलं प्रणवः। कामकला ईकारः। अङ्कुशः क्रोङ्कारः॥२८॥

लक्ष्मी = श्रीं। माया = ह्रीं। मायाभ्याञ्च = दो माया (ह्रीं) का उच्चारण करके दो बार मार्जन करे। अन्यथा 'मायाभ्यां' न कहकर मायया च द्विरन्मृजेत् यह कहते अर्थात् माया द्वारा दो बार मार्जना करे। वाक् = ऐं। त्रिपुटा = लक्ष्मी, माया = कामबीज। भग = ऐ। वचन के अनुसार योनि शब्द द्वादश स्वर को कहते हैं। अतः वह 'ऐ' ही योनि (भग) है। जगत् भी एक 'ऐ' का वाचक है। बीज के साहचर्य

(समभिव्याहार) के कारण तथा बीज का बोधक होने के कारण यहाँ द्वादशस्वर वाग्भवरूप है। वर्त्तुलं = ॐ। कामकला = ईं। अंकुश = क्रों।।२८।।

तथा च लक्ष्मीमायाकूर्चैस्त्रिरम्बु पीत्वा वाग्भवेनोष्ठौ सम्मृज्य मायाद्वयेन द्विरुन्मृज्य कूर्चेन पाणौ प्रक्षाल्य। मुखे—श्रीः। नासोः—ह्रीं हूं। दृशोः—ऐं क्लीं। कर्णयोः—श्रीं ह्रीं। नाभौ—क्लीं। हृदि—ऐं। मस्तके—ॐ। अंसयोः—ईं क्रों न्यसेत्। ततः प्राणायामान्तं कृत्वा षोढान्यास कुर्यात्।।२९।।

यह होने पर लक्ष्मी माया तथा कूर्च अर्थात् श्रीं ह्रीं हुं मन्त्र से तीन बार जल का पान करके, वाग्बीज ऐं से ओष्ठद्वय का मार्जन कर ह्रीं ह्रीं द्वारा दो बार मार्जन करके, हुं मन्त्र से हाथ धोना चाहिये। श्रीं मन्त्र से मुख, ह्रीं से दाहिनी नाक, हूं मन्त्र से वाम नाक, ऐं मन्त्र से दाहिने नेत्र, क्लीं से बाँयाँ चक्षु, श्रीं से दाहिना कान, ह्रीं से बाँयाँ कान, क्लीं से नाभि, ऐं से हृदय, ॐ से मस्तक, ईं से दाहिना कन्धा, क्रों मन्त्र से वाम कंधा का स्पर्श करे।।२९।।

यथा—

मन्त्रषोढां ततः कुर्यात् त्रैलोक्यवशकारिणीम्।
श्रीबालात्रिपुटायोनिप्रासादप्रणवैस्तथा ।।३०।।
कालीवध्वङ्कुशैः कामकलाकूर्चास्त्रकैः क्रमात्।
षोडशी मनुवर्णैश्च पृथगष्टादशाक्षरैः।
एभिर्बीजैर्मातृकार्णान् स्वेषु स्थानेषु विन्यसेत्।।३१।।
एषा ब्रह्मस्वरूपा हि बीजषोढा प्रकीर्त्तिता।
अस्याः सन्न्यासनात् सर्वे वज्रदेहा भवन्ति हि।
सर्वैश्वर्ययुतास्ते हि जीवन्मुक्ता दशाब्दतः।।३२।।

तन्त्र में कहा है कि तदनन्तर त्रैलोक्य को वश में करने वाली मन्त्रषोढा का न्यास करे। श्रीबीज (श्रीं) बालाबीज (ऐं क्लीं सौः) त्रिपुटा बीज (श्रीं ह्रीं क्लीं) योनिबीज (ऐं) प्रासादबीज (हौं)। प्रणव (ॐ) सहित इसी प्रकार कालीबीज (क्रीं) वधूबीज (स्त्रीं) अङ्कुशबीज (क्रों) सहित, कामकला (ईं) कूर्चबीज (हूं) तथा अस्त्र (फट्) सहित षोडश मन्त्र वर्ण। मन्त्रोद्धार होता है—श्रीं ऐं क्लीं सौः श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं हौं ॐ क्रीं स्त्रीं क्रों ईं हुं फट् इस षोडश मन्त्रवर्ण के साथ तथा अष्टादश अक्षर के साथ मातृकावर्णों का पृथक्-पृथक् मातृका स्थान में न्यास करे। यह ब्रह्मस्वरूपा बीज षोढा कहा गया है इसके न्यास के द्वारा सभी वज्रदेह हो जाते हैं। वह समस्त ऐश्वर्ययुक्त तथा १० वर्ष में जीवन्मुक्त होते हैं।।३०-३२।।

श्रीर्लक्ष्मीबीजम्। बाला—वाग्भवकामसौरिति बीजत्रयम्। त्रिपुटा-लक्ष्मीमायाकामात्मकं बीजत्रयम्। येनिरैकारः प्रागुक्तवर्णमालावचनात् प्रकृते तु तदघटितत्वाद् वाग्भवबीजम्। प्रासादः शिवबीजम्। प्रणवः ॐ। काली कालीबीजम्। वधूर्वधूबीजम्। अङ्कुशः क्रों। कामकला ईं। कूर्चम् स्पष्टम्। अस्त्रम् फट्कारः। षोडशी मनुवर्णैरिति। अस्या उक्त-षोड़शीमन्त्रवर्णैरित्यर्थः। पृथक्-प्रत्येकवर्णम्। अष्टादशाक्षरैरिति एतदीय-कमलाभुवनेशीत्यादिवक्ष्यमाणाष्टादशाक्षरीवर्णैरित्यर्थः। एभिरिति इत्यु-क्तैरेकपञ्चाशद्वर्णैरित्यर्थः॥३३॥

श्रीः—लक्ष्मीबीज, बाला—वाग्भव कामबीज तथा सौः, यह बीजत्रय। योनिः—ऐं। पूर्वोक्त वर्णमाला वचन से यह ज्ञात होता है कि यहाँ ऐकारघटित कहने का तात्पर्य है वाग्भव बीज। प्रासादः = शिवबीज। प्रणवः = ॐ। काली = क्रीं। वधूः = स्त्रीं। अङ्कुश = क्रों। कामकला = ईं। कूर्च = हूं। अस्त्रं = फट्। षोडशी मनुवर्णै = इस प्रचण्ड चण्डिका के १६ अक्षर मन्त्र वर्ण द्वारा प्रत्येक वर्ण (मातृका) का न्यास पृथक्-पृथक् करना चाहिये अष्टादशाक्षर—इस प्रचण्डचण्डिका के कमला भुवनेशानी इत्यादि वाक्य से वक्ष्यमाण १८ अक्षर के मन्त्र वर्ण द्वारा। एभिः—इस प्रकार से उक्त ५१ वर्ण से।।३३।।

यथा—श्रीं अं नमः। ऐं आं नमः। क्लीं इं नमः। सौः ईं नमः। श्रीं उं नमः। ह्रीं ऊं नमः। क्लीं ऋं नमः। ऐं ॠं नमः। हौं लृं नमः। ओं लॄं नमः। क्रीं एं नमः। स्त्रीं ऐं नमः। क्रों ओं नमः। ईं औं नमः। हूं अं नमः। फ अः नमः। ट कं नमः। श्रीं खं नमः। ह्रीं गं नमः। हूं घं नमः। ऐं ङं नमः। व चं नमः। ज्र छं नमः। वै जं नमः। रो झं नमः। च ञं नमः। नी टं नमः। ये ठं नमः। हूं डं नमः। हूं ढं नमः। फट् णं नमः। स्वा तं नमः। हा थं नमः। श्रीं दं नमः। ह्रीं धं नमः। हूं नं नमः। ऐं पं नमः। व फं नमः। ज्र वं नमः। वै भं नमः। रो मं नमः। च यं नमः। नी रं नमः। ये लं नमः। हा क्षं नमः॥३४॥

बीज षोढा इस प्रकार है—ललाट—श्री अं नमः। मुखवृत्त—ऐं आं नमः। दक्षिण नेत्र—क्लीं इं नमः। वाम नेत्र—सौः ईं नमः। दक्षिण कर्ण—श्रीं उं नमः। वाम कर्ण—ह्रीं ऊं नमः। दक्षिण नासिका—क्लीं ऋं नमः। वाम नासिका—ऐं ॠं नमः। दक्षिण गण्ड—हौं लृं नमः। वाम गण्ड—ओं लॄं नमः। ओष्ठ—क्रीं ऐं नमः। अधर—स्त्रीं ऐं नमः। ऊर्ध्व दाँत—क्रों ओं नमः। निचले दाँत—ईं औं नमः। ब्रह्मरन्ध्र = हूं अं

नमः। मुख—फ अः नमः। दक्षिण बाहुमूल—ट कं नमः। कोहनी—श्रीं खं नमः। मणिबन्ध—ह्रीं गं नमः। अंगुलियों के मूल में—हूं घं नमः। दाहिनी अंगुलियों का अग्रभाग—ऐं ङं नमः। वाम बाहुमूल—व चं नमः। कोहनी में—ज्र छं नमः। मणिबन्ध—वै जं नमः। अंगुलिमूल में—रो झं नमः। अंगुलियों का अग्रभाग (वाम हाथ की)—च ञं नमः। दक्षिण पादमूल—नी ढं नमः। घुटने पर—ये ठं नमः। एँड़ी पर—हूं डं नमः। पैर की दक्षिण अंगुलियों के मूल में—हूं ढं नमः। पैर की अंगुलियों के अग्रभाग में—फट् णं नमः। वाम पादमूल में—स्वा तं नमः। घुटने पर—हा थं नमः। एँड़ी पर—श्रीं दं नमः। अंगुलिमूल में (वाम पैर)—ह्रीं धं नमः। अंगुलियों के अग्रभाग (वाम पैर)—हूं नं नमः। दाहिना पार्श्व—ऐं पं नमः। वाम पार्श्व—व फं नमः। पृष्ठ—ज्र बं नमः। नाभि—वै भं नमः। उदर—रो मं नमः। हृदय—च यं नमः। दाहिना कंधा—नी रं नमः। ककुद—ये लं नमः। वाम स्कन्ध—श्रीं वं नमः। हृदयादि दक्षिण कर-पर्यन्त—ह्रीं शं नमः। हृदयादि वाम कर-पर्यन्त—हूं षं नमः। हृदयादि दक्षिणपाद-पर्यन्त—ऐं सं नमः। हृदयादि वामपाद-पर्यन्त—फट् हं नमः। हृदयादि उदर-पर्यन्त—स्वा लं नमः। हृदयादि मुख-पर्यन्त—हा क्षं नमः।।३४।।

ततः ऋष्यादिकं न्यसेत्। यथा अस्य मन्त्रस्य भैरव ऋषिः सम्राट्छन्द-श्छिन्नमस्ता देवता हूङ्कारद्वयं बीजं स्वाहा शक्तिरभीष्टसिद्धये विनियोगः। शिरसि = भैरवाय ऋषये नमः। मुखे—सम्राट्च्छन्दसे नमः। हृदि छिन्न-मस्तायै देवतायै नमः। गुह्ये—हूं हूं बीजाय नमः। पादयोः—स्वाहा शक्तये नमः॥३५॥

अब ऋष्यादि न्यास करना चाहिये। यथा—अस्य प्रचण्डचण्डिकामन्त्रस्य भैरव ऋषिः सम्राट् छन्दः छिन्नमस्ता देवता हूङ्कारद्वय बीजं स्वाहा शक्तिः ममाभीष्टसिद्धये विनियोगः। मस्तक—ॐ भैरवाय ऋषये नमः। मुख—ॐ सम्राट् छन्दसे नमः। हृदय—ॐ छिन्नमस्तायै देवतायै नमः। गुह्य—हूं हूं बीजाय नमः। पादद्वय—स्वाहा शक्तये नमः।।३५।।

यथा—

भैरवोऽस्य ऋषिर्देवि सम्राट्छन्द उदाहृतः।
छिन्नमस्ता स्मृता देवी बीजं कूर्चद्वयं पुनः।
स्वाहा शक्तिरभीष्टार्थे विनियोग उदाहृतः॥३६॥

तन्त्र में कहा है कि हे देवि! इसके भैरव ऋषि एवं सम्राट्छन्द कहे गये हैं। छिन्नमस्ता देवता, कूर्चद्वय बीज तथा स्वाहा शक्ति है। अभीष्ट-सिद्धिलाभ हेतु इसका विनियोग (प्रयोग) कहा गया है।।३६।।

ततः कराङ्गन्यासौ कुर्यात्। ॐ आं खड्गाय हृदयाय स्वाहा इति कनिष्ठयोः। ॐ ईं सुखड्गाय शिरसे स्वाहा इति पवित्राङ्गुल्योः। ॐ ऊं सुवज्राय शिखायै स्वाहेति मध्यमयोः। ॐ ऐं पाशाय कवचाय स्वाहेति तर्जन्योः। ॐ औं अङ्कुशाय नेत्रत्रयाय स्वाहेत्यङ्गुष्ठयोः। ॐ अः सुरक्षासुरक्षायात्राय फडिति करतलकरपृष्ठयोः। एवं हृदयादिषु॥३७॥

तत्पश्चात् कराङ्गन्यास करे। कनिष्ठाद्वय में—ॐ आं खड्गाय हृदयाय स्वाहा। अनामिकाद्वय में—ॐ ईं सुखड्गाय शिरसे स्वाहा। मध्यमाद्वय में—ॐ ऊं सुवज्राय शिखायै स्वाहा। तर्जनीद्वय में—ॐ ऐं पाशाय कवचाय स्वाहा। अङ्गुष्ठद्वय में—ॐ औं अङ्कुशाय नेत्रत्रयाय स्वाहा। करतलकरपृष्ठों में—ॐ अः सुरक्षासुरक्षायास्त्राय फट्। इसी प्रकार हृदयादि में भी अंगन्यास करे।।३७।।

तदुक्तं भैरवतन्त्रे—

उच्चरेत् पूर्वमाकारं बिन्दुलाञ्छितमस्तकम्।
खड्गाय हृदयायेति स्वाहायुक्तं कनीयसि॥३८॥
ईंकारञ्च ततो देवि चन्द्रकोटिसमप्रभम्।
सुखड्गाय ततो वाच्यं शिरसे तदनन्तरम्।
स्वाहायुक्तं ततो वाच्यं पवित्राङ्गुलिसंयुतम्॥३९॥

भैरवतन्त्र में कहते हैं कि बिन्दुयुक्त 'आ' का उच्चारण करके 'खड्गाय हृदयाय स्वाहा' द्वारा कनिष्ठा में न्यास करे। हे देवि! तत्पश्चात् करोड़ों चन्द्रमा की प्रभा वाले 'ई' का उच्चारण करके तदनन्तर सुखड्गाय कहकर पवित्राङ्गुलि-संयुक्त स्वाहान्त शिरसे कहकर अर्थात् अनामिकाद्वय से अंगुष्ठद्वय को संयुक्त करके 'ॐ ईं सुखड्गाय शिरसे स्वाहा' कहे।।३८-३९।।

ऊकारञ्च ततो वाच्यं बिन्दुलाञ्छितमस्तकम्।
सुवज्राय ततो वाच्यं शिखायै तदनन्तरम्।
स्वाहान्तं मध्यमायाञ्च विन्यसेत् तदनन्तरम्॥४०॥

तत्पश्चात् ऊं कहे जो बिन्दुयुक्त है। तत्पश्चात् सुवज्राय शिखायै कहे। तदनन्तर स्वाहा कहकर मध्यमाङ्गुलिद्वय का न्यास करे।।४०।।

मात्रां द्वादशिकां देवीं विन्यसेत्ततः परम्।
पाशायेति समुच्चार्य प्रवदेत् कवचाय च।
स्वाहान्तं विन्यसेन्मन्त्रं तर्जन्यां तदनन्तरम्॥४१॥

तदनन्तर द्वादश मात्रा (बारहवाँ स्वर) रूपिणी देवी को अर्थात् 'ऐं' तथा 'पाशाय' उच्चारण करके 'कवचाय' कहे। अन्त में स्वाहा लगाकर तर्जनीद्वय का न्यास करे।।४१।।

ॐङ्कारञ्च ततो देवि चाक्षुषाय ततः परम्।
नेत्रत्रयाय स्वाहान्तमङ्गुष्ठे करयोर्द्वयोः ।।४२।।

हे देवि! तदनन्तर ॐकार तथा अंकुशाय तदनन्तर नेत्रत्रयाय स्वाहा कहकर दोनों अंगूठों का न्यास करे।।४२।।

अकारञ्च विसर्गान्तं सुरक्षारक्षसंयुतम्।
असुरक्षायसंयुक्तं अस्त्रायेति ततः परम्।
फडक्षरसमायुक्तं विन्यसेत् करयोर्द्वयोः ।।४३।।

विसर्गान्त अ:कार, सुरक्षा असुरक्षाय तथा फट्स्वर संयुक्त अर्थात् अस्त्राय फट् कहकर करतलद्वय का न्यास करे।।४३।।

हृदि मूर्ध्नि शिखायाञ्च कवचे नेत्रमण्डले।
यावदस्त्रं चतुर्दिक्षु विदिक्षु च यथाक्रमम् ।।४४।।

चारो दिक् तथा विदिक् (आग्नेयादि कोण) में यथाक्रमेण हृदय, मस्तक, शिखा, कवच, नेत्रमण्डल तथा अस्त्रपर्यन्त का अंगन्यास करना चाहिये।।४४।।

विशेष—यहाँ तन्त्रसारोक्त अंगन्यास पर लेखक ने प्रकाश-प्रक्षेपण नहीं किया है। अत: उसे संदर्भित किया जाता है। जैसे हृदय—ॐ आं खड्गाय हृदयाय स्वाहा। मस्तक—ॐ ईं सुखड्गाय शिरसे स्वाहा। शिखा—ॐ ऊं सुवज्राय शिखायै स्वाहा। बाहुद्वय—ॐ ऐं पाशाय कवचाय स्वाहा। नेत्रत्रय—ॐ औं अङ्कुशाय नेत्रत्रयाय स्वाहा। करतलकरपृष्ठ—ॐ अ: सुरक्षासुरक्षाय अस्त्राय फट्।

अत्र दिग्विदिक्ष्विति कथनं षडङ्गपूजाविषयम्। त्रिशक्तितन्त्रे भैरववाक्यम्—उच्चरेत् प्रणवं पूर्वमाकारं बिन्दुसंयुतमित्यादि वाक्यादत्र कराङ्गेषु प्रणव-संवलितो न्यासः। ततो मूलेन मस्तकादिपादपर्यन्तं पादादिमस्तकपर्यन्त वारत्रयं न्यसेत्।।४५।।

यहाँ जो दिक् विदिक् के लिये लिखा गया है, वह षडङ्ग पूजा-विषयक है। त्रिशक्तितन्त्र में भैरववाक्य है कि उच्चरेत् प्रणवं पूर्वं आकारं बिन्दुसंयुक्तम् अर्थात् प्रणव तदनन्तर बिन्दुसंयुक्त आकार का उच्चारण करे। इस वाक्य से यह जाना जाता है कि यहाँ पर कराङ्गन्यास में प्रणवयुक्त मन्त्र का न्यास करना होगा। तदनन्तर मूल मन्त्र द्वारा मस्तक से पैरों तक तथा पैरों से मस्तक-पर्यन्त इसे एक बार न्यास मानकर ऐसे तीन बार व्यापक न्यास करना चाहिये।।४५।।

ततो ध्यानम्—

स्वनाभौ नीरजं ध्यायेन्मूद्‌र्ध्वं विकसितं सितम्।
तत्पद्मकायमध्ये तु मण्डलं चण्डरोचिषः ॥४६॥
जवाकुसुमसङ्काशं रक्तबन्धूकसन्निभम्।
रजः सत्त्वं तमो रेखा योनिमण्डलमण्डितम् ॥४७॥
मध्ये तु तां महादेवीं सूर्यकोटिसमप्रभाम्।
छिन्नमस्तां करे वामे धारयन्तीं स्वमस्तकम् ॥४८॥
प्रसरितमुखीमाभां लेलिहानोग्रजिह्विकाम्।
पिबन्तीं रौधिरीं धारां निजकण्ठविनिर्गताम् ॥४९॥
विकीर्णकेशपाशाञ्च नानापुष्पसमन्विताम्।
दक्षिणे च करे कर्त्रीं मुण्डमालाविभूषिताम् ॥५०॥
दिगम्बरीं महाघोरां प्रत्यालीढ़पदे स्थिताम्।
अस्थिमालाधरां देवीं नागयज्ञोपवीतिनीम् ॥५१॥
रतिकामोपरिष्ठाञ्च सदा ध्यायन्ति मन्त्रिणः।
सदा षोडशवर्षीयां पीनोन्नतपयोधराम् ॥५२॥

मन्त्रज्ञ साधक सदा नाभि से ऊर्ध्व की ओर विकसित श्वेत पद्म का ध्यान करे। उस कमल के कोषों में सत्व, रज तथा तमोरूप रेखात्रयरूप योनिमण्डल से मण्डित जवापुष्प के समान बन्धूक पुष्प की तरह रक्तवर्ण प्रचण्ड किरण वाले सूर्यमण्डल का ध्यान करे, इस मण्डलमध्य में सूर्य के समान प्रभायुक्त उन महादेवी का ध्यान करे, जिनके बाँयें हाथ में अपना कटा मस्तक है, जो कटे मुख को फैलाकर लपलपाती जिह्वा धारण करके अपने कण्ठ से निकली रुधिरधारा का पान कर रही हैं।

उनके केश चारो ओर विकीर्ण हैं। जो नाना प्रकार के पुष्प से विभूषित हैं। उनके दाहिने हाथ में कैंची है, मुण्डों की माला से विभूषित, नग्ना, महाघोरा, प्रत्यालीढ़पदा, अस्थि से बनी माला धारण करने वाली, ज्योतिर्मयी, नागयज्ञोपवीतधारिणी, सदा १६ वर्ष की लगने वाली (अर्थात् वे काल से परे हैं, काल उनकी आयु पर प्रभाव नहीं कर सकता), पीन उन्नत स्तनों वाली, विपरीत रतियुक्त रति-काम के ऊपर अवस्थिता का ध्यान करता हूँ।।४६-५२।।

डाकिनीवर्णिनीयुक्तां वामदक्षिणयोगतः।
देवीगलोच्छलद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम्।
विपरीतरतासक्तौ ध्यायेद् रतिमनोभवौ ॥५३॥

रति तथा कामदेव का विपरीत रति में आसक्त रूप से ध्यान करना चाहिये। देवी

के वाम तथा दक्षिण भाग में देवी के गले से निकलने वाली रक्तधारा का पान करने वाली डाकिनी तथा वर्णिनी से युक्त देवी छिन्नमस्ता का ध्यान करे।।५३।।

वर्णिनीं लोहितां सौम्यां मुक्तकेशीं दिगम्बरीम् ।
कपालकर्त्रिकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः ॥५४॥
नागयज्ञोपवीताढ्यां ज्वलत्तेजोमयीमिव ।
प्रत्यालीढपदां दिव्यां नानालङ्कारभूषिताम् ।
सदा द्वादशवर्षीयामस्थिमालाविभूषिताम् ॥५५॥

वर्णिनी (जो देवी के पार्श्व में हैं) रक्तवर्णा, सौम्या, मुक्तकेशी, विवस्त्रा, वाम हस्त में कपाल तथा दाहिने हाथों में कैंची धारिणी हैं, नागरूप यज्ञोपवीत-धरिणी हैं, ज्वलन्त तेजोमयी, दिव्य नानालङ्कार-भूषिता, सदा १२ वर्ष की लगने वाली अस्थिमाला-विभूषिता वर्णिनी का ध्यान करे।।५४-५५।।

डाकिनीं वामपार्श्वे तु कल्पसूर्यानलोपमाम् ।
विद्युज्जटां त्रिनयनां दन्तपंक्तिवलाकिनीम् ॥५६॥
दंष्ट्राकरालवदनां पीनोन्नतपयोधराम् ।
महादेवीं महाघोरां मुक्तकेशीं दिगम्बरीम्॥५७॥
लेलिहानमहाजिह्वां मुण्डमालाविभूषिताम् ।
कपालकर्त्रिकाहस्तां वामदक्षिणयोगतः ॥५८॥
देवीगलोच्छलद्रक्तधारापानं प्रकुर्वतीम् ।
करस्थितकपालेन भीषणेनातिभीषणाम् ।
आभ्यां निषेव्यमानां तां ध्यायेद्देवीं विचक्षणः ॥५९॥

पिबन्तीमिति मुखेनेति शेषः।

देवी के वाम पार्श्व में महादेवी डाकिनी को प्रलयकालीन सूर्य तथा अग्नि के समान उज्ज्वला, विद्युत् के समान जटा वाली, शुभ्रवदना, दंष्ट्रा-करालवदना, पीन स्तनों वाली, महाघोरा, मुक्तकेशी, दिगम्बरी, अतिबृहद् लपलपाती जिह्वा वाली, मुण्डमाला-भूषिता, वाम हस्त में कपाल तथा दक्षिण हस्त में कर्त्रिका-धारिणी, वाम हस्त में स्थित अपने कपाल के मुख में देवी के गले से निकल रही रक्तधारा का पान करने वाली, कपाल के कारण अतिभीषण देवी डाकिनी का ध्यान करना चाहिये। साथ ही इन वर्णिनी तथा डाकिनी द्वारा सेविता देवी छिन्नमस्ता का विचक्षण साधक को ध्यान करना चाहिये।।५६-५९।।

तथा च भैरवतन्त्रे—

स्वमस्तकं सखर्परं रक्तधारापूरितम्।
ललज्जिह्वं महाभीमं धृतं वामभुजे तथा ॥६०॥

भैरव तन्त्र में कहते हैं कि उनके वाम हस्त में स्थित धृत (शवारूढा देवी) रक्तधारा से परिपूर्ण खर्पर के मध्य में अपने मस्तक का ध्यान करे। इस प्रकार इनके शवारूढा तथा चतुर्भुजी होने का कोई प्रमाण नहीं है।।६०।।

एवञ्चास्याः शवारूढत्वे चतुर्भुजत्वे च प्रमाणं नास्तीति तत्त्वम्। अथवा ध्यानान्तरम्—

स्वनाभौ नीरजं ध्यायेद्भानुमण्डल संयुतम्।
योनिचक्र समायुक्तं गुणात्रितयसंज्ञितम् ॥६१॥

अथवा अन्यध्यान कहते हैं—यति अपने नाभि में सत्व रज तमरूप त्रिगुण नामक योनिचक्र-भूषित सूर्यमण्डल द्वारा युक्त एक कमल का ध्यान करे।।६१।।

ततो मध्ये महादेवीं छिन्नामस्तां स्मरेद् यतिः।
प्रदीपकलिकाकारामद्वितीयव्यवस्थिताम्।
योनिमुद्रासमायुक्तां हृदयस्थितलोचनाम् ॥६२॥
ध्येयमेतद् यतीनाञ्च गृहस्थानां निशामय।

उसके मध्य प्रदीप की कलिका के समान आकार वाली अद्वैतरूप से अवस्थिता योनिमुद्रायुता हृदयगत लोचनयुता महादेवी छिन्नमस्ता का स्मरण करना चाहिये। छिन्नमस्ता का यह रूप यतिगण के लिये ध्येय है। अव गृहस्थ के लिये ध्येय रूप कहा जाता है।।६२।।

यथा—

अन्तरा स्वशरीरस्य नाभिनीरजसङ्गताम् ॥६३॥
निर्लेपां त्रिगुणां सूक्ष्मां बालचन्द्रसमप्रभाम्।
समाधिपात्रगम्यन्तु गुणत्रितयवेष्टिताम्।
कलातीतां गुणातीतां मुक्तिमार्गप्रदायिनीम् ॥६४॥

अपने शरीर के मध्य नाभिकमल में मणिपूर में अवस्थिता छिन्नमस्ता के निर्लिप्ता, निर्गुणा, सूक्ष्मा, बालचन्द्र के समान प्रभा धारण करने वाली, समाधिमात्र में ही व्यक्त होने वाली त्रिगुण से वेष्टिता होने पर भी कलातीता तथा गुणातीता—इन मुक्ति देने वाली देवी का ध्यान करे।।६३-६४।।

ध्यानस्यावश्यकत्वमाह तन्त्रे—

प्रचण्डचण्डिकामेवमध्यात्वा यस्तु पूजयेत्।
सद्यस्तस्य शिरश्छित्वा देवी पिबति शोणितम्॥६५॥

प्रचण्डचण्डिकामित्युपलक्षणम्। सर्वत्रैव ध्यानमावश्यकम्।

तन्त्र में ध्यान आवश्यक है। कहते हैं कि जो व्यक्ति प्रचण्डचण्डिका का इस प्रकार ध्यान किये विना पूजा करता है, देवी तत्क्षण ही उसके मस्तक को काटकर रक्तपान करती हैं। इस श्लोक में प्रचण्डचण्डिका उपलक्षणमात्र है। सभी देवी-देवों के पूजन में ध्यान आवश्यक है।।६५।।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य तारिणीवच्छङ्खस्थापनं कुर्यात्। ततो यन्त्रादौ पीठपूजां कुर्यात्॥६६॥

इस प्रकार से ध्यान करके, मानसोपचार पूजन कर तारिणी प्रकरण के विधानानुसार विशेषार्घ्य स्थापन करे। तदनन्तर यन्त्रादि में पीठपूजन करे।।६६।।

यन्त्रमाह भैरवतन्त्रे यथा—

त्रिकोणं विन्यसेदादौ तन्मध्ये मण्डलत्रयम्।
तन्मध्ये विन्यसेद्योनिं द्वारत्रयसमन्विताम्॥६७॥
वह्निरष्टदलं पद्मं भूबिम्बत्रितयं पुनः।
कूर्चबीजं लिखेन्मध्ये त्रिकोणे फट्समन्वितम्॥६८॥

यन्त्र के सम्बन्ध में भैरवतन्त्र में कहा है कि प्रथमतः एक त्रिकोण बनाकर उसके मध्य में तीन मण्डल (वृत्त बनाये), उसमें द्वारत्रय-युक्त योनिचक्र स्थापित करे। उसके बाहर अष्टदल कमल बनाये। उसके बाहर तीन भूपुर बनाकर त्रिकोण में हुं फट् लिखे।।६७-६८।।

यन्त्रान्तरं तत्रैव—

सितकुर्याद्दलंपूर्वमाग्नेयं रक्तवर्णकम्।
याम्यं कृष्णमतः पीतं शुक्लं रक्तं सितासितम्॥६९॥
तस्य पीतां प्रकुर्वीत कर्णिकां तस्य मध्यगाम्।
तन्मध्ये तु प्रकुर्वीत मण्डलं चण्डरोचिषः।
रजः सत्वं तमो रेखा रक्ता शुक्ला सिता क्रमात्॥७०॥

वहीं पर अन्य यन्त्र का भी वर्णन है। उस यन्त्र के पूर्वदल को शुभ्र बनाये। आग्नेय दल को रक्तवर्ण, दक्षिण दल को कृष्णवर्ण, यथाक्रमेण अन्य दलों को क्रमशः पीत, शुक्ल, रक्त, सित तथा असित बनाये।

तदनन्तर उसके मध्य की कर्णिका को पीतवर्ण रंगे। उस कर्णिका में सूर्यमण्डल अंकित करे। इस सूर्यमण्डल में यथाक्रम से रजोरूप रक्तरेखा, सत्वरूप शुक्लरेखा तथा तमोरूप कृष्ण रेखा का एक त्रिकोण बनाये।।६९-७०।।

मायायुग्मं ततो न्यस्य फडक्षरसमन्वितम्।
बाह्यं तस्य च चक्रस्य कुर्यात्प्राकारवेष्टितम्।।७१।।
पूर्वं रक्तं तथा कृष्णं सितं पीतं यथाक्रमात्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं क्षेत्रपालैरधिष्ठितम्।।७२।। इति।

तदनन्तर मध्य में फट् के साथ दो माया (हूं हूं) लिखे। उस चक्र के बहिर्भाग को प्राकार से वेष्टित करे। अब उसमें चार द्वार बनाकर प्रथम को रक्तवर्ण, द्वितीय को कृष्णवर्ण, तृतीय को श्वेतवर्ण तथा चतुर्थ को पीतवर्ण बनाकर उसमें क्षेत्रपालों को अधिष्ठित करे।।७१-७२।।

ततः पीठपूजां कुर्यात्। सा यथा ॐ आधारशक्तये नमः। एवं कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यौ, क्षीरसमुद्राय, रत्नद्वीपाय, कल्पवृक्षाय; तदधः स्वर्ण-सिंहासनाय, आनन्दकन्दाय, संविन्नालाय, सर्वतत्त्वात्मकपद्माय, सं सत्त्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने। पद्ममध्ये रतिकामाभ्याम्।।७३।।

तदनन्तर पीठपूजा करे; यथा—ॐ आधारशक्तये नमः। ऐसे ही अन्य मन्त्रों में भी प्रथमतः ॐ लगाकर अन्त में नमः लगाये; जैसे—ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ क्षीरसमुद्राय नमः, ॐ रत्नद्वीपाय नमः, ॐ कल्प वृक्षाय नमः। उसके अधोभाग में ॐ स्वर्णसिंहासनाय नमः, ॐ आनन्दकन्दाय नमः, ॐ संविन्नालाय नमः, ॐसर्वतत्त्वात्मकपद्माय नमः, ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः, ॐ आं आत्मने नमः, ॐ अं अन्तरात्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः। इसके बाद पद्ममध्य में ॐ रतिकामाभ्यां नमः कहे।।७३।।

भैरवमते तु—

आधारशक्तिं कूर्मञ्च नागराजमतः परम्।
पद्मनालञ्च पद्मञ्च पूजयेन्नरः।।७४।।
मङ्गलं चतुरस्रञ्च रजः सत्त्वं तमस्तथा।
रतिकामौ च सम्पूज्य शक्तिपूजां समाचरेत्।।७५।।

किन्तु भैरवमतानुसार आधारशक्ति, कूर्म, नागराज, पद्मनाल तथा पद्म की मन्त्रज्ञ

साधक पूजा करे। तदनन्तर मण्डल, चतुरस्र, रजः, सत्त्व, तथा तम एवं रति तथा काम की पूजा करके शक्तिपूजा करनी चाहिये।।७४-७५।।

रतिकामोपरि ॐ वज्रवैरोचनीये देहि देहि एहि एहि गृह्ण गृह्ण मम सिद्धिं देहि देहि मम शत्रून् मारय मारय करालिके हुं फट् स्वाहेति पीठमन्त्रेण पूजयेत्। सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजनम्। पुनर्ध्यात्वावाहयेत्।।७६।।

रति-काम के ऊपर 'ॐ' से लेकर 'स्वाहा' तक मूलोक्त पीठमन्त्र पढ़कर पूजन करे। सर्वत्र आरम्भ में प्रणव तथा अन्त में नमः लगाकर पूजा करनी चाहिये। पुनः ध्यानोपरान्त आवाहन करना चाहिये।।७६।।

तद्यथा—सर्वसिद्धिवर्णिनीये सर्वसिद्धिडाकिनीये वज्रवैरोचनीये इहावह इहावह पुनस्तन्मन्त्रमुच्चार्य इह तिष्ठ इह तिष्ठ इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि इह सन्निरुध्यस्व इह सन्निरुध्यस्व इत्यनेनावाह्य आं ह्रीं क्रों हंसः इत्यनेन प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा अं आं खड्गाय हृदयाय स्वाहा इत्यादिना षडङ्गं विन्यस्य यथाशक्ति पूजां कृत्वा बलिं दद्यात्। यथा— वज्रवैरोचनीये देहि देहि एहि एहि गृह्ण गृह्ण मम शत्रून् मारय मारय करालिके हुं फट् स्वाहेति मन्त्रेण। ततो देव्या दक्षिणे 'वर्णिन्यै नमः' वामे डाकिन्यै नमः। ततो देव्यङ्गे षडङ्गं सम्पूज्य दक्षिणे ॐ शङ्खनिधये नमः, वामे ॐ पद्मनिधये नमः पूर्वादिदिक्षु लक्ष्मीं, लज्जां, मायां, वाणीञ्च पूजयेत्। विदिक्षु ब्रह्माविष्णुरुद्रेश्वरान्। मध्ये सदाशिवम्। सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। ततः पुष्पाञ्जलीन् दत्त्वावरणानि पूजयेत्। यथा–अग्नीशासुरवायूषु मध्ये दिक्षु च ॐ आं खड्गाय हृदयाय स्वाहा इत्यादिना षडङ्गानि सम्पूज्याष्टपत्रेषु पूर्वादिक्रमेण ॐ ह्रीं काल्यै नमः, ॐ ह्रीं वर्णिन्यै नमः। एवं डाकिन्यै, महाभैरव्यै, भैरव्यै, इन्द्राक्ष्यै, पिङ्गाक्ष्यै, संहाकारिण्यै। सर्वं प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्।।७७।।

'ॐ सर्वसिद्धिवर्णनीये, ॐ सर्वसिद्धिडाकिनीये, ॐ वज्रवैरोचनीये इहावह इहावह' पुनः इस मन्त्र का उच्चारण करके पुनः 'इह तिष्ठ इह तिष्ठ' कहे। पुनः उक्त मन्त्र का उच्चारण करके 'इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि' कहकर पुनः उक्त मन्त्रोच्चार करके 'इह सन्निरुध्यस्व इह सन्निरुध्यस्व' कहे। पुनः उक्त मन्त्र का उच्चारण करके 'अत्राधिष्ठानं कुरु मम पूजां गृहाण' इस प्रकार कहे। अब 'ॐ आं ह्रीं क्रों हंसः' मन्त्र से प्राणप्रतिष्ठा करके 'ॐ आं खड्गाय हृदयाय स्वाहा' इत्यादि मन्त्र से षडङ्ग न्यास करके यथाशक्ति देवी-पूजनोपरान्त बलि प्रदान करनी चाहिये। बलिमन्त्र है—'ॐ

वज्रवैरोचनीये देहि देहि एहि एहि गृह्ण गृह्ण इमां बलिं मम सिद्धिं देहि देहि मम शत्रून् मारय मारय करालिके हुं फट् स्वाहा। तत्पश्चात् देवी के दक्षिण में 'ॐ वर्णिन्यै नमः', बाँयें 'ॐ डाकिन्यै नमः' मन्त्र से वर्णिनी एवं डाकिनी की पूजा करके देवी के अङ्ग में 'ॐ आं खड्गाय हृदयाय स्वाहा, ॐ ईं सुखड्गाय शिरसे स्वाहा, ॐ ऊं सुवज्राय शिखायै स्वाहा, ॐ ऐं पाशाय कवचाय स्वाहा, ॐ औं अङ्कुशाय नेत्रत्रयाय स्वाहा, ॐ अः सुरक्षासुरक्षाय अस्त्राय फट् स्वाहा मन्त्रों से षडङ्ग देवगण का पूजन करके दक्षिण में ॐ शङ्खनिधये नमः, वाम में ॐ पद्मनिधये नमः, पूर्व में ॐ लक्ष्म्यै नमः, दक्षिण में ॐ लज्जायै नमः, पश्चिम में ॐ मायायै नमः, उत्तर में ॐ वाण्यै नमः मन्त्र द्वारा पूजन करे। अग्न्यादि कोण में यथाक्रम से आदि में प्रणव तथा अन्त में नमः लगाकर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर की तथा मध्य में सदाशिव की पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर पञ्च पुष्पाञ्जलि से आवरण देवगण का पूजन करे। जैसे—अग्नि, ईश, असुर, वायु, मध्य दिक्समूह में ॐ आं खड्गाय हृदयाय स्वाहा से षडङ्ग की पूजा करके आठ पत्रों में पूर्वादिक्रमेण ॐ ह्रीं काल्यै नमः, ॐ ह्रीं वर्णिन्यै नमः। ऐसे ही 'ॐ ह्रीं' आदि में तथा अन्त में 'नमः' लगाकर डाकिन्यै, महाभैरव्यै, भैरव्यै, इन्द्राक्ष्यै, पिङ्गाक्ष्यै, संहारकारिण्यै कहकर पूजन करे।।७७।।

यथा—

एकां नामाभिधां कालीं वर्णिनीं डाकिनीं तथा।
भैरवीञ्च महापूर्वां भैरवीं तदनन्तरम्।
इन्द्राक्षीञ्च सपिङ्गाक्षीं ततः संहारकारिणीम्।।७८।।
पूर्वादिके दले पूज्याः शक्तयश्च यथाक्रमम्।
प्रणवादिनमोऽन्तेन लज्जाबीजं समुच्चरन्।।७९।।

महापूर्वामित्यस्य पूर्वभैरव्यामन्वयः।

जैसा कि तन्त्र में कहा गया है—काली, वर्णिनी, डाकिनी, महाभैरवी, भैरवी, इन्द्राक्षी, पिङ्गाक्षी, संहारकारिणी की क्रमशः पूर्वादि दलों में आदि में 'ॐ ह्रीं' एवं अन्त में 'नमः' लगाकर पूजा करनी चाहिये।।७८-७९।।

तथा च कवचे—

डाकिनी दक्षिणे पातु श्रीमहाभैरवीञ्च माम्।
नैर्ऋत्यां सततं पातु भैरवी पश्चिमेऽवतु।।८०।।

छिन्नमस्ता कवच में कहा गया है कि डाकिनी दक्षिण में मेरी रक्षा करे, श्रीमहाभैरवी नैर्ऋत्य में रक्षा करे एवं भैरवी बराबर मेरी रक्षा करे।।८०।।

पद्ममध्ये तु हुं हुं फट् नमः स्वाहा नमः। देव्या दक्षिणे ॐ सम्राट्छन्दसे नमः। देव्या उत्तरे ॐ सर्ववर्णेभ्यो नमः। पुनर्दक्षिणे ॐ बीजशक्तिभ्यां नमः। पत्राग्रेषु पूर्वादिक्रमेण ब्राह्म्यै, माहेश्वर्यै, कौमार्यै, वैष्णव्यै, वाराह्यै, इन्द्राण्यै, चामुण्डायै, महालक्ष्म्यै। सर्वत्र प्रणवादिनमोऽन्तेन पूजयेत्। ततश्चतुर्दिक्षु द्वारेषु ॐ करालाय नमः, ॐ विकरालाय नमः। एवं अतिकरालाय, महाकरालाय॥८१॥

यथा भैरवीये—

पूर्वद्वारे करालञ्च विकरालञ्च दक्षिणे।
पश्चिमेऽतिकरालञ्च महाकरालमुत्तरे॥८२॥

पद्ममध्य में 'हुं हुं फट् नमः स्वाहा नमः', देवी के दक्षिण में 'ॐ सम्राट्छन्दसे नमः', देवी के उत्तर में 'ॐ सर्ववर्णेभ्यो नमः'; पुनः दक्षिण में 'ॐ बीजशक्तिभ्यां नमः', पत्रसमूह के अग्र में पूर्वादिक्रमेण प्रणव आदि में एवं नमः अन्त में लगाकर अर्थात् ॐ ब्राह्म्यै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः, ॐ कौमार्यै नमः, ॐ वैष्णव्यै नमः, ॐ वाराह्यै नमः, ॐ इन्द्राण्यै नमः, ॐ चामुण्डायै नमः, ॐ महालक्ष्म्यै नमः द्वारा पूजन करे। तदनन्तर चतुर्दिक् द्वार पर ॐ करालाय नमः, ॐ विकरालाय नमः, ॐ अतिकरालाय नमः तथा ॐ महाकरालाय नमः कहकर पूजा करनी चाहिये। भैरवीय तन्त्र में कहा भी है—पूर्वद्वार पर कराल की, दक्षिण द्वार पर विकराल की, पश्चिम द्वार पर अतिकराल की एवं उत्तर द्वार पर महाकराल की पूजा करनी चाहिये।।८१-८२।।

ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। विसर्जने त्वयं विशेषः—संहारमुद्रां प्रदर्श्य निर्माल्यपुष्पाण्यञ्जलावारोप्याघ्राय तत्पुष्पाञ्जलितो वामनासापुटेन

योनिमुद्रासमारूढां प्रदीपकलिकोज्ज्वलाम्।
कृष्णपक्षे विधुमिव क्रमेण क्षीणताङ्गताम्॥

देवीं विचिन्त्य 'उत्तरे शिखरे देवि भूम्यां पर्वतवासिनी'त्यादिकालीपूजोक्तमन्त्रमुच्चार्य नाभ्युपरिस्थितपद्मकोशान्तर्गतसूर्यमण्डले निवेशयेत्॥८३॥

तदनन्तर धूपदान से विसर्जन-पर्यन्त समस्त कार्य का अन्त करे। विसर्जन में विशेष विधि यह है कि संहरमुद्रा का प्रदर्शन करके निर्माल्य पुष्पों को अंजलि में रखकर उस पुष्पाञ्जलि से वाम नासिका-पर्यन्त योनिमुद्रा-समारूढ़ा, प्रदीपकलिका के समान उज्ज्वला, कृष्णपक्ष के चन्द्र के समान क्षीणत्व को प्राप्त देवी का चिन्तन करके

ॐ उत्तरे शिखरे देवि! भूम्यां पर्वतवासिनि' इत्यादि कालीपूजोक्त मन्त्र का उच्चारण करके नाभि के ऊपर स्थित पद्मकोष के अन्तर्गत सूर्यमण्डल में उनका निवेश कराना चाहिये।।८३।।

अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः, सिद्धविद्यात्वात्। बलिदाने तु भैरवीये–

रात्रौ बलिः प्रदातव्या मत्स्यमांससुरादिभिः।
अथवा मधुपानाद्यैर्मधुरैर्विभवक्रमैः ॥८४॥

मन्त्रस्तु—

उच्चरेत्प्रणवं पूर्वं सर्वसिद्धिप्रदेऽन्वितम्।
वर्णनीये ततो वाच्यं सर्वसिद्धिप्रदे ततः ॥८५॥
एह्येहीति ततो वाच्यं देवीनाम ततः परम्।
गृह्ण गृह्ण ततः प्रोक्त्वा मम सिद्धिमनन्तरम् ॥८६॥
देहि देहीति माये च ततः फट् स्वाहया युतः।
बलिमन्त्रः समाख्यातः पूजितेयं सुरेश्वरि ॥८७॥ इति।

देवीनाम वज्रवैरोचनीये इति सम्बुद्ध्यन्तम्। माये भुवनेशीबीजद्वय-मिति॥८८॥

सिद्ध विद्या होने के कारण एक लाख जप से इसका पुरश्चरण सम्पन्न होता है। बलि प्रदान करने के सम्बन्ध में भैरवीय तन्त्र में कहा गया है कि मत्स्य-मांस-सुरा आदि से रात्रि में बलि प्रदान करनी चाहिये अथवा सामर्थ्य के अनुसार मधुपानादि द्वारा मधुर बलि देनी चाहिये। बलिमन्त्र इस प्रकार है—प्रथमत: प्रणव (ॐ) कहे, तदनन्तर 'सर्वसिद्धिप्रदे वर्णनीये' कहे। तदनन्तर पुन: 'सर्वसिद्धिप्रदे डाकिनीये', तत्पश्चात् 'वज्र-वैरोचनीये' कहना चाहिये। तदनन्तर 'एहि एहि' कहकर 'बलिं गृह्ण गृह्ण' के बाइ 'मम सिद्धिं' कहकर 'देहि देहि' कहे। तत्पश्चात् 'ह्रीं ह्रीं' को स्वाहा से युक्त करे अर्थात् 'फट् स्वाहा' कहे। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ सर्वसिद्धिप्रदे वर्णिनीये सर्वसिद्धिप्रदे डाकिनीये वज्रवैरोचनीये एहि एहि इमं बलिं गृह्ण गृह्ण मम सिद्धिं देहि देहि ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा। यह छिन्नमस्ता का प्रसिद्ध बलिमन्त्र है, इसी से इन सुरेश्वरी की पूजा की जाती है।

तन्त्रे—

तथा सर्वप्रयत्नेन सर्वोपास्या च षोडशी।
लक्ष्मीबीजादिका सैव सर्वैश्वर्यप्रदायिनी ॥८९॥
लज्जाद्या स्वर्गभूनागयोषिदाकर्षिणी परा।
कूर्चाद्या सर्वजन्तूनां महापातकनाशिनीम् ॥९०॥

तन्त्र में कहा गया है कि इस प्रकार यह षोडशाक्षरी विद्या समस्त प्रयत्नों से उपास्या है। इसके आदि में लक्ष्मीबीज (श्रीं) लगाने से यह स्वर्ग, मर्त्य तथा नागलोक की स्त्रियों का आकर्षण करने वाला श्रेष्ठ मन्त्र होता है। इसके आदि में कूर्च (हुं) लगाने से यह महापातक का नाश करता है।।८९-९०।।

वाग्भवाद्या यदा विद्या वागीशत्वप्रदायिनी।
एषा तु षोडशी विद्या वेद्या सप्तदशाक्षरी ।।९१।।
श्रीबीजपुटिता सा तु लक्ष्मीवृद्धिकरी सदा।
लज्जया पुटिता विद्या त्रैलोक्याकर्षिणी परा ।।९२।।
कूर्चेन पुटिता सर्वपापिनां पापहारिणी।
वाग्बीजपुटिता चैषा वागीशत्वप्रदायिनी ।।९३।।
चतुर्विधेति विद्यैषा प्रिये! सप्तदशाक्षरी।
ताराद्या षोडशी चान्या भवेत्सप्तदशाक्षरी।
एषा विद्या महाविद्या भुक्तिमुक्तिकरी सदा ।।९४।।

इति सप्तदशाक्षरी।

जब इस षोडशाक्षरी विद्या के आदि में वाग्भव बीज (ऐं) लगता है तब यह योगैश्वर्यप्रद हो जाती है। अब सप्तदशाक्षरी विद्या को कहते हैं। यह षोड़शाक्षरी जब श्रीबीज से पुटित होती है तब सर्वदा ऐश्वर्य-वृद्धि करने वाली हो जाती है। लज्जाबीज से पुटित होकर यह त्रैलोक्य का आकर्षण करने वाली होती है। कूर्चबीज (हुं) से पुटित होने पर यह सभी पापियों के पाप का विनाश करती है। वाग्भवबीज से पुटित होने पर यह वागैश्वर्य-प्रदायिनी हो जाती है। हे प्रिये! इस प्रकार यह सत्रह अक्षरों वाली विद्या चार प्रकार की कही गई है। आदि में प्रणव लगाने से यह विद्या अन्य प्रकार से सत्रह अक्षरों वाली हो जाती है। यह विद्या सर्वदा भोग तथा मोक्ष प्रदान करने वाली है।

अथ मन्त्रान्तरम्—

भुवनेशी कामबीजं कूर्चबीजञ्च वाग्भवम्।
भुवनेशी कूर्चबीजं वाग्भवं तदनन्तरम् ।।९५।।
वज्रवैरोचनीये च हुं फट् स्वाहा ततः परम्।
न्यासपूजादिकं चास्या षोडशीवत्समाचरेत् ।।९६।।

भुवनेशी (ह्रीं), कामबीज (क्लीं), कूर्चबीज (हुं), वाग्भवबीज (ऐं), भुवनेशी बीज (ह्रीं), कूर्चबीज (हुं), वाग्भवबीज (ऐं) कहे; तदनन्तर 'वज्रवैरोचनीये' कहकर 'हुं फट् स्वाहा' कहना चाहिये। मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—ह्रीं क्लीं हुं ऐं ह्रीं हुं ऐं

वज्रवैरोचनीये हुं फट् स्वाहा। इस विद्या का न्यास सर्वत्र षोडशाक्षरी के समान ही करना चाहिये।।९५-९६।।

तथा—

हृल्लेखा मादनं लक्ष्मीं वाग्बीजं कूर्चमेव च।
अस्त्रान्ता छिन्नमस्ताया महाविद्या प्रकीर्तिता ॥९७॥
अस्याश्च सदृशी विद्या जगत्स्वपि न विद्यते।
षड्वर्णोऽयं मनुः साक्षान्मोक्षदो नात्र संशयः ॥९८॥

हृल्लेखा माया। मादनं कामबीजम्।

हृल्लेखा (ह्रीं), मादन (क्लीं), लक्ष्मी (श्रीं), वाग्बीज (ऐं), कूर्च (हुं) अर्थात् 'ह्रीं क्लीं श्रीं ऐं हुं फट्' यह छिन्नमस्ता की षडक्षरी महाविद्या है। इसके समान जगत् में कोई दूसरी महाविद्या नहीं है। यह षडक्षर मन्त्र साक्षात् मोक्ष प्रदान करने वाला है, इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये।।९७-९८।।

अस्या ध्यानमहं वक्ष्ये शृणुष्व कमलानने ॥९९॥

हे कमलानने! अब मैं इसका ध्यान कहता हूँ, श्रवण करो।।९९।।

प्रत्यालीढपदां सदैव दधतीं छिन्नं शिरःकर्त्तृकां
दिग्वस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधारां पिबन्तीं मुदा।
नागाबद्धशिरोमणिं त्रिनयनां हृद्युत्पलालंकृतां
रत्यासक्तमनोभवोपरिदृढां ध्यायेज्जवासन्निभाम् ॥१॥
दक्षे चातिसिता विमुक्तचिकुरा कर्त्रीं तथा खर्परं
हस्ताभ्यां दधती रजोगुणभवा नाम्नापि सा वर्णिनी।
देव्याश्छिन्नकबन्धतः पतदसृग्धारां पिबन्ती मुदा
नागाबद्धशिरोमणिर्मनुविदा ध्येया सदा सासुरैः ॥२॥
वामे कृष्णतनुं तथैव दधती खड्गं तथा खर्परं
प्रत्यालीढपदा कबन्धविगलद्रक्तं पिबन्ती मुदा।
सैषा या प्रलये समस्तभुवनं भोक्तुं क्षमा तामसी
शक्तिः सापि परात्परा भगवती नाम्ना परा डाकिनी ॥३॥

प्रत्यालीढपदा, सर्वदा छिन्न शिर वाली एवं कैंची धारण करने वाली, दिग्वस्त्रा, आनन्द के साथ अपने कबन्ध से बहती शोणितरूपी सुधाधारा का पान करने वाली, नागबद्ध शिरोमणि-धारिणी, त्रिनेत्रा, हृदस पर उत्पलों से अलंकृत, रति में आसक्त, मनोभव के ऊपर दृढ़ता से खड़ी हुई, जवासदृश रक्तवर्णात्मिका का ध्यान करता हूँ।

देवी के दक्षिण भाग में अत्यन्त शुक्ला, मुक्तकेशी, दो होथों द्वारा कैंची तथा खर्पर धारण करने वाली, रजोगुण वाली वर्णिनी नामक देवी के कबन्ध से बहती रक्तधारा का आनन्द से पान करने वाली, नागबद्ध शिरोमणि-धारिणी का मन्त्रवित् साधक तथा देवगण सदा चिन्तन करते हैं।

देवी के वामभाग में कृष्ण वर्ण शरीर वाली, खड्ग तथा खर्पर-धारिणी, प्रत्यालीढ़ पद से खड़ी आनन्दपूर्वक देवी के कबन्ध से निकल रही रक्तधारा का पान करने वाली जो तामसी शक्ति प्रलय में समस्त जगत् का भक्षण करती है, उन डाकिनी नाम वाली भगवती का श्रेष्ठ से श्रेष्ठ रूप में ध्यान करना चाहिये।।१-३।।

इति ध्यात्वा पूजादिकं सर्वं षोडशीवत्कुर्यात्। तथा—तारं लज्जाद्वयं वज्रवैरोचनीये हुं फट् स्वाहा। इयमपि चतुर्दशाक्षरी। अस्यापि ध्यान-पूजादिकं षोडशीवत्॥४॥

इस प्रकार ध्यानोपरान्त पूजादि षोडशाक्षरी पूजा के ही समान सम्पन्न करना चाहिये। तन्त्र में और भी कहा है कि यह विद्या चौदह अक्षरों वाली है; इसकी भी पूजा षोडशाक्षरी के ही समान करनी चाहिये। वह अन्य मन्त्र है-—तार (ॐ), लज्जाद्वय (ह्रीं ह्रीं) वज्रवैरोचनीये हुं फट् स्वाहा। मन्त्रोद्धार है—ॐ ह्रीं ह्रीं वज्रवैरोचनीये हुं फट् स्वाहा।।४।।

वियत्सूत्रयुतं बिन्दुनादयुक्तं ततः प्रिये।
एकाक्षरी महाविद्या त्रैलोक्यवशकारिणी ॥५॥

सूत्रं दीर्घोकारः। तेन कूर्चबीजमात्रम्। सर्वं पूर्ववत्।

हे प्रिये! वियत् (ह) सूत्र (ऊ) युक्त हो। उसके पश्चात् बिन्दुनाद-युक्त हो। यह 'हूं' एकाक्षरी विद्या त्रैलोक्य को वश में करने वाली कही गई है। सूत्रं—दीर्घ ऊकार। इससे कूर्चबीजमात्र होता है। इसका समस्त विधान पूर्ववत् होता है।।५।।

ताराद्यन्ता भवत्येषा चतुर्वर्गफलप्रदा।
तेन प्रणवपुटितं कूर्चमित्यपि त्र्यक्षरी।
ठठान्तैषा महाविद्या त्रैलोक्यमोहकारिणा॥
ठः स्वाहा द्विठत्वात्। तथाच कूर्चं स्वाहेति त्र्यक्षरी ॥६॥

यदि इस विद्या के आदि तथा अन्त में प्रणव रहे, तब यह चतुर्वर्ग-फलदायिनी होता है। इससे प्रणव पुटित कूर्च होता है। यह भी त्र्यक्षरी है। यह महाविद्या स्वाहान्ता होने पर त्रैलोक्यवशकारिणी होती है। ठं ठं द्विठ = स्वाहा। इस प्रकार मन्त्रोद्धार है—हूं स्वाहा।।६।।

तथा—

वज्रवैरोचनीये च कूर्चयुग्मं सफट्ठठः।
ताराद्यैषा महाविद्या सर्वतेजोऽपहारिणी।
त्रैलोक्याकर्षिणी विद्या चतुर्वर्गफलप्रदा ॥७॥

तेन ॐ वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहेति त्रयोदशाक्षरी। ध्यानपूजादिकं सर्वं षोडशीवत्॥८॥

तन्त्र में कहा है कि वज्रवैरोचनीये कूर्चयुग्म, फट् के साथ स्वाहा लगाने पर मन्त्रोद्धार होता है—वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा। इसके प्रारम्भ में प्रणव लगाने से यह सभी के तेज का नाश करती है। यह आकर्षिणी (त्रिलोकी का) तथा चतुर्वर्ग फलदायिनी है। अत: ॐ वज्रवैरोचनीये हूं हूं फट् स्वाहा—यह १३ अक्षरों वाली विद्या है। इसका ध्यान पूजनादि १६ अक्षरी विद्या के समान होता है।।७-८।।

अथाष्टादशाक्षरी विद्या यथा—

कमला भुवनेशानी कूर्चबीजं सरस्वती।
वज्रवैरोचनीये च पूर्वबीजानि चोच्चरेत् ॥९॥
फट् स्वाहा च महाविद्या वसुचन्द्राक्षरी परा।
ताराद्यैकोनविंशार्णा ब्रह्मविद्यास्वरूपिणी ॥१०॥

अब १८ अक्षरों वाली विद्या कहते हैं। कमला (श्रीं) भुवनेशी (ह्रीं) कूर्चबीज (हूं) सरस्वती (ऐं) 'वज्रवैरोचनीये' तथा पुन: श्रीं ह्रीं हूं ऐं फट् स्वाहा—यह १८ अक्षरों की विद्या है। मन्त्रोद्धार होता है—श्रीं ह्रीं हूं ऐं वज्रवैरोचनीये श्रीं ह्रीं हूं ऐं फट् स्वाहा। यदि इसके पूर्व में प्रणव लगाया जाय तब यह उन्नीस अक्षरों वाली ब्रह्मविद्या हो जाती है।।९-१०।।

एते विद्योत्तमे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदे शुभे।
लक्ष्म्यादिपुटिता पूर्वा रन्ध्रचन्द्राक्षरी भवेत् ॥११॥
चतुर्थी च महाविद्या चतुर्वर्गफलप्रदा।
प्रणवाद्या यदा चैषा भोगमोक्षकरी सदा ॥१२॥

हे देवि! यह १८ अक्षर वाली तथा १९ अक्षरों वाली विद्या विद्योत्तमा, शुभा, भुक्तिमुक्ति-प्रदायिनी है। १८ अक्षरों वाली विद्या लक्ष्मीबीज, लज्जाबीज, कूर्चबीज तथा वाग्भव बीज से पुटिता होकर चतुर्वर्ग को देने वाली महाविद्या हो जाती है। अष्टादशाक्षरी के आदि में प्रणव लगा देने से उन्नीस अक्षरों वाली विद्या सर्वदा भोग-मोक्ष देने वाली हो जाती है।।११-१२।।

विद्यान्तरं प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय।
हृल्लेखाकूर्चवाग्बीजे वज्रवैरोचनीये हूं ॥१३॥
अस्त्रं स्वाहा महाविद्या चतुर्दशाक्षरी मता।
सर्वैश्वर्यप्रदा चैषा सर्वसम्मोहकारिणी ॥१४॥

अब इसका विद्यान्तर कहते हैं, सावधान होकर सुनो। हृल्लेखा (ह्रीं) कूर्च (हूं) वाग्बीज (ऐं) तथा वज्रवैरोचनीये हुं तथा अस्त्र (फट्) तथा स्वाहा—यह १४ अक्षरों वाली महाविद्या है, जो सभी ऐश्वर्य को देने वाली तथा सर्वसम्मोहनकारी है। मन्त्रोद्धार होता है—ह्रीं हूं ऐं वज्रवैरोचनीये फट् स्वाहा।।१३-१४।।

भुवनेशी त्रितत्त्वञ्च वाग्बीजं प्रणवन्ततः।
वज्रवैरोचनीये च फट् स्वाहा च तथा परा ॥१५॥
चतुर्दशाक्षरी चैषा चतुर्वर्गफलप्रदा।
एषा विद्या महाविद्या जन्ममृत्युविनाशिनी ॥१६॥

त्रितत्त्वं प्रणवः।

भुवनेश्वी (ह्रीं) त्रितत्त्व (ॐ) वाग्बीज (ऐं) प्रणव (ॐ) वज्रवैरोचनीये फट् स्वाहा। यह १४ अक्षरों की श्रेष्ठ महाविद्या है, जो चतुर्वर्ग फल को देने वाली तथा सर्वसम्मोहन- कारिणी एवं जन्म-मृत्यु का नाश करने वाली है।।१५-१६।।

तथा—

रमा कामस्तथा लज्जा वाग्भवं वज्रवैपदम्।
रोचनीये लज्जाद्वन्द्वमन्त्रं स्वाहासमन्वितम् ॥१७॥
इयं सा षोडशी प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा।
कथिताः सकला विद्याः सारात्सारतराः शुभाः ॥१८॥

इसी प्रकार की और एक विद्या तन्त्र में कही गयी है। रमा (श्रीं), काम (क्लीं), लज्जा (ह्रीं) वाग्भव (ऐं), वज्रवैरोचनीये, दो लज्जा (ह्रीं ह्रीं) तथा फट् स्वाहा। यह षोडशाक्षरी विद्या सर्वकाम-फलप्रदा कही गयी है। इस प्रकार श्रेष्ठतर शुभा सभी विद्यायें कही गयी हैं।।१७-१८।।

आसां ऋषिर्भैरवोऽहं नाम्ना तु क्रोधभूपतिः।
सम्राट्छन्दो देवता च छिन्नमस्ता प्रकीर्त्तिता ॥१९॥

इस विद्यासमूह का मैं क्रोधभूपति भैरव ऋषि, सम्राट छन्द एवं छिन्नमस्ता देवता कहे गये हैं।।१९।।

षड्दीर्घभाक्स्वरेणैव प्रणवाद्येन सुन्दरि ।
खड्गाद्येन ठठान्तानि षडङ्गानि प्रकल्पयेत् ॥२०॥

(प्रणव आदि में) प्रणवादि वाले दीर्घ छः स्वरों द्वारा खड्गादि तथा स्वाहान्त अर्थात् 'ॐ आं खड्गाय हृदयाय नमः स्वाहा' इत्यादि मन्त्रों से षडङ्गन्यास करना चाहिये।।२०।।

सकलेषु च वर्णेषु सकलेष्वाश्रमेषु च ।
अन्तिमेषु च वर्णेषु भुक्तिमुक्तिप्रदायिका ॥२१॥

इन सब विद्यासमूह में अरिदोष नहीं है (यह सब दोष ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में विवेचित हैं)। ये सभी विद्यायें सभी वर्ण वाले एवं सभी आश्रम वालों के लिये आश्रयस्वरूप हैं। यह अन्तिम वर्ण शूद्र को भी भुक्ति-मुक्ति देने वाली कही गयी है।।२१।।

प्रणवाद्या च या विद्या शूद्रादौ न समीरिता ।
अस्याश्चैव विशेषोऽयं योषिच्चेत् समुपासयेत् ॥२२॥
डाकिनी सा भवत्येव डाकिनीभिः प्रजायते ।
पतिहीना पुत्रहीना यथा स्यात् सिद्धयोगिनी ॥२३॥

प्रणवाद्या विद्या में यह विशेष है कि यदि स्त्री इसकी उपासना करे तब वह डाकिनी गण के यहाँ डाकिनी का जन्म लेती है। सिद्धयोगिनी भी पतिहीना एवं पुत्रहीना हो जाती है। अतः जिस मन्त्र अथवा विद्या के आदि में प्रणव है, वह स्त्री तथा शूद्र के लिये उपास्य नहीं है।।२२-२३।।

इति ते कथितं तत्त्वं रहस्यमखिलं प्रिये! ।
अतिस्नेहतरङ्गेन भक्त्या दासोऽस्मि ते प्रिये ॥२४॥

हे प्रिये! अति स्नेहतरंग में विह्वल होकर मैं तुमसे यह सब रहस्य तत्त्व कह रहा हूँ। हे प्रिये! भक्ति से मैं तुम्हारा आज्ञाकारी हूँ।।२४।।

षड्दीर्घेत्यादि षोडश्युक्तक्रमेण बोध्यम्। तथा च—ॐ आं खड्गाय हृदयाय स्वाहा इत्यादि प्रयोज्यम्। एतासां ध्यानपूजादिकं सर्वं षोडशीवत् कार्यमिति॥२५॥

इति छिन्नमस्ताप्रकरणम्

षड्दीर्घेत्यादि का अर्थ षोडशाक्षरी विद्याक्रम में बतला दिया गया है। वहीं से समझना होगा। इनका ध्यान पूजादि विधान भी षोडशी प्रकरणवत् है।।२५।।

अथ त्रिपुरभैरवी

ब्रह्मादयोऽपि यां वेत्तुं तत्त्वतः प्रभवन्ति नो।
तां जगन्मातरं वन्दे भैरवीं त्रिपुरभैरवीम्॥१॥

ब्रह्मादि देवगण भी जिसे तत्त्वत: नहीं जान पाते, उन जगन्माता त्रिपुरभैरवी की मैं वन्दना करता हूँ।।१।।

अथ भैरवीप्रकरणम्। तत्रादौ त्रिपुरभैरवी। त्रिपुरायास्त्रैविध्यं ज्ञानार्णवे व्यक्तम्। यथा त्रिविधा त्रिपुरा देवीति। तथा च—त्रिपुरभैरवी त्रिपुरा बाला त्रिपुरसुन्दरीति भेदत्रयम्॥२॥

अब भैरवी-प्रकरण कहते है। उनमें प्रथमत: त्रिपुरभैरवी की विद्या कही जायेगी। ज्ञानार्णव में त्रिविधा त्रिपुरा कही गई है। जैसे—त्रिपुरभैरवी, त्रिपुरा बाला, त्रिपुरसुन्दरी।।२।।

त्रिपुरापदव्यत्पत्तिस्तु वाराहीतन्त्रे—

ब्रह्मविष्णुमहेशादित्रिदशैरर्चिता पुरा।
त्रिपुरेति ततो नाम कथितं दैवतैस्तव॥३॥ इति।

त्रिपुरा पद की व्युत्पत्ति में वाराहीतन्त्र में कहा है कि ब्रह्मा, विष्णु महेशादि देवगण द्वारा पुरा काल में अर्चिता होने से ही इन्हें त्रिपुरा नाम से कहा गया है।।३।।

अथ मन्त्राः शारदायाम्—

वियद् भृगु हुताशस्थो भौतिको बिन्दुशेखरः।
वियत्तदादिकेन्द्राग्निस्थितं वामाक्षिबिन्दुमत्॥४॥

अब इनका मन्त्र कहते हैं। शारदातिलक में कहा है कि वियत् (ह) भृगु (स) हुताश (र) ये जिस बिन्दु के मस्तक पर है, वह भौतिक (ऐ) तादृश वियत् भृगु हुताशस्थ भौतिक अर्थात् हसरैं। वियत् (ह) हकार से पहले वाला वर्ण (स) क, इन्द्र (ल) अग्नि (र) ये स्थापित हैं जिस बिन्दुमत् वामाक्षि पर, तादृश वियत् तदादि केन्द्राग्निस्थित बिन्दुमत् वामाक्षि अर्थात् 'हसकलरीं' यह मन्त्रोद्धार होता है।।४।।

आकाशभृगुवह्निस्थो मनुः सर्गेन्दुखण्डवान्।
पञ्चकूटात्मिका विद्या वेद्या त्रिपुरभैरवी॥५॥

आकाश (ह) भृगु (स) वह्नि (र) ये स्थित हैं जिस सर्ग में (:) और इन्दुखण्ड (ꣳ) वान् मनु से (ओ) तादृश आकाश भृगु वह्निस्थ सर्गेन्दु खण्डवान मन्त्र अर्थात् मन्त्रोद्धार है—हसरौः। इसे पञ्चकूटरूपा त्रिपुरभैरवी विद्या कहते हैं।।५।।

प्रथमं वाग्भवं कूटं द्वितीयं कामबीजकम्।
तृतीयं शक्तिकूटाख्यं त्रिभिर्बीजैरुदाहृतम् ।।६।।

प्रथम कूट है—वाग्भव, द्वितीय है—कामबीज एवं तृतीय है—शक्तिकूट। इस प्रकार तीन बीज द्वारा तीन कूटों को कहा गया है।।६।।

अस्यार्थः वियत हकारः। भृगुर्दन्त्यसकारः। हुताशो रेफः। तदाश्रितो भौतिक ऐकारः। स च बिन्दुशेखरा बिन्दुमान्। बिन्दुरनुनासिकस्तेन हकारसकार-रेफैकारबिन्दुभिर्वाग्भवाख्यं प्रथमं कूटम्।।७।।

अब अर्थ कहते हैं। वियत् = ह। भृगुः = स। हुताश = र। तदाश्रित भौतिक = ऐ। यह ऐकार बिन्दुशेखरः अर्थात् बिन्दुयुक्त ऐं। बिन्दु = अनुनासिक अनुस्वार। अतएव ह, स, रेफ, ए तथा विन्दु से मन्त्रोद्धार होता है—'हसरैं' यह वाग्भव कूट नामक प्रथम कूट होता है।।७।।

वियत् हकारस्तस्यादिस्तदादिर्दन्त्यसकारः। कः ककारः स्वरूपः। इन्द्रो लकारः। अग्नी रेफः। तत्र स्थितं वामाक्षि दीर्घेकारः तेन हकार-दन्त्यसकारककारलकाररेफचतुर्थस्वरबिन्दुभिः कामबीजाख्यं द्वितीयं कूटम्।।८।।

वियत् = ह। इससे पूर्व का वर्ण = स। कः = क, इन्द्र = ल। अग्नि = र। उसमें स्थित वामाक्षि = ई, इसके हकार, सकार, ककार, लकार, रकार, चतुर्थ स्वर तथा बिन्दु। मन्त्रोद्धार होता है—'हसकलरीं'; जिसे कामबीज नामक द्वितीय कूट कहा गया है।।८।।

आकाशो हकारः भृगुर्दन्त्यसकारः वह्नी रेफः, तत्रस्थो मनुरौकारः। सर्गो विसर्गः। इन्दुखण्डमनुस्वारः। तेन हकारसकाररेफचतुर्दशस्वर-विसर्गानुस्वारैः शक्तिकूटाख्यं तृतीयं कूटम्। पञ्चकूटेति पञ्चभिर्व्य-ञ्जनैर्हकारसकारककारलकाररेफस्वरूपैः कूटं यस्यां सा। तेन हसरैं हसकलरीं हसरौः इति सिद्धम्। इयं त्रिपुरभैरवी।।९।।

आकाशः = ह। भृगु = स। वह्नि = र। इस रेफ में स्थित मनु = ओ। सर्गः = विसर्ग। इन्दुखण्ड = अनुस्वार। इस प्रकार ह, स, र, ओ, विसर्ग तथा अनुस्वार से तृतीय कूट शक्तिकूट होता है।

पंचकूटा का तात्पर्य है—ह, स, क, ल, र—इन पाँच के द्वारा जिसका कूट है, वह पञ्चकूट। इस प्रकार शक्तिकूट का मन्त्रोद्धार है—हसरौः। यही विद्या त्रिपुरसुन्दरी कहलाती है।।९।।

अस्याः पूजा—प्रातःकृत्यादिप्राणायामान्तं विधाय पीठन्यासं कुर्यात्। पूर्वोक्तमाधारशक्त्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं विन्यस्य हृत्पद्मस्य पूर्वादिकेशरेषु ॐ इच्छायै नमः। एवं ज्ञानायै नमः। क्रियायै, कामिन्यै, कामदायिन्यै, रत्यै, रतिप्रियायै, नन्दायै। मध्ये मनोन्मन्यै। तदुपरि ऐं परायै, अपरायै, परापरायै, ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः इति पीठशक्तिः पीठमनुञ्च विन्यस्य ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्॥१०॥

अब इस विद्या की पूजा कहते हैं। प्रातःकृत्य से प्राणायाम-पर्यन्त करके पीठन्यास करे। यथा—पूर्वोक्त क्रम से आधारशक्ति-प्रभृति से 'ह्रीं ज्ञानात्मने नमः' तक न्यास करके हृदयपद्म में पूर्वादि केशर में यथाक्रम से 'ॐ इच्छायै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ कामिन्यै नमः, ॐ कामदायिन्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ रतिप्रियायै नमः, ॐ नन्दायै नमः, मध्य में ॐ मनोन्मन्यै नमः, उसके ऊपर ॐ ऐं परायै नमः, ॐ अपरायै नमः, ॐ परापरायै नमः, ॐ ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः मन्त्र से पीठशक्ति तथा पीठमन्त्र का न्यास करके ऋष्यादि न्यास करे।।१०।।

शिरसि—दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नमः। मुखे—पंक्तिछन्दसे नमः। हृदि—त्रिपुरभैरव्यै देवतायै नमः। गुह्ये—वाग्भवाय बीजाय नमः। पादयोः—तार्त्तीयशक्तये नमः। सर्वाङ्गे—कामाराजाय कीलकाय नमः॥११॥

अब इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे—अस्य त्रिपुरभैरवीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्ति ऋषिः पङ्क्तिच्छन्दः त्रिपुरभैरवी देवता वाग्भवबीजं तार्त्तीयबीजं शक्तिः कामराजबीजं कीलकं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे पूजने विनियोगः। तदनन्तर इस प्रकार न्यास करे—मस्तक पर—ॐ दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नमः। मुख में—ॐ पङ्क्तिछन्दसे नमः। हृदय में—ॐ त्रिपुरभैरव्यै देवतायै नमः। गुह्य में—ॐ वाग्भवाय बीजाय नमः। पादद्वय में—ॐ तार्त्तीयशक्तये नमः। सर्वाङ्ग में—ॐ कामराजाय कीलकाय नमः।।११।।

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाम्—

ऋषिस्तु दक्षिणामूर्त्तिरमुं शिरसि विन्यसेत्।
छन्दः पङ्क्तिस्तु विज्ञेयं मुखे विन्यस्य देवताम्॥१२॥
हृदये त्रिपुरेशा वाग्भवं बीजमुच्यते।
शक्तिबीजं शक्तिरेव कामबीजञ्च कीलकम्॥१३॥

दक्षिणामूर्त्ति संहितानुसार इसके दक्षिणामूर्त्ति ऋषि हैं, इनका मस्तक में न्यास करे। पंक्ति छन्द है। मुख में छन्द का न्यास करके हृदय में त्रिपुरेशानी देवता का न्यास करे। वाग्भव बीज ही बीज है, शक्तिबीज शक्ति तथा कामबीज कीलक कहा गया है।।१२-१३।।

ततो नाभ्यादि चरणान्तं—हसरैं नमः। हृदयान्नाभिपर्यन्तं—हसकलरीं नमः। शिरसो हृदयान्तं—हसरौः नमः। एवमाद्यबीजं दक्षिणे करे। द्वितीयबीजं वामकरे। तृतीयबीजमुभयकरे। ततो मूर्ध्नि मूलाधारे हृदि यथासंख्येन त्रीणि बीजानि न्यसेत्॥१४॥

अब बीजन्यास कहा जाता है—नाभि से चरण-पर्यन्त स्थान में ॐ हसरैं नमः। हृदय से नाभि-पर्यन्त ॐ हसकलरीं नमः। शिर से हृदय-पर्यन्त ॐ हसरौः नमः। इसी प्रकार दक्षिण हाथ में—ॐ हसरैं नमः। वाम हाथ में—ॐ हसकलरीं नमः। दोनों हाथ में—ॐ सहरौः नमः। मस्तक पर—ॐ हसरैं नमः। मूलाधार में—ॐ हसकलरीं नमः। हृदय में—ॐ सहरैः नमः से न्यास करे।।१४।।

तथा च निबन्धे—

नाभेराचरणे न्यस्येद् वाग्भवं मन्त्रवित्तमः।
हृदयान्नाभिपर्यन्तं कामराजं प्रविन्यसेत्।
शिरसो हृत्प्रदेशान्तं तार्त्तीयं विन्यसेत्ततः॥१५॥

निबन्ध में कहा है कि श्रेष्ठ मन्त्रज्ञ साधक नाभि से चरण-पर्यन्त वाग्भव बीज का न्यास करे। हृदय से नाभि-पर्यन्त कामराज बीज का न्यास करे। तदनन्तर मस्तक से हृदयपर्यन्त तृतीय शक्तिबीज का न्यास करे।।१५।।

ततो नवयोनिन्यासः। आद्यबीजं दक्षिणकर्णे द्वितीयबीजं वामकर्णे तृतीयबीजं चिबुके। एवं गण्डयोर्वदने। नेत्रयोर्नसि। अंसयोर्जठरे। कूर्परयोः कुक्षौ। जानुनोर्लिङ्गे। पादयोर्गुह्ये। पार्श्वयोर्हृदि। स्तनयोः कण्ठे॥१६॥

निबन्धे—

आद्यं द्वितीयं करयोस्तार्तीयमुभयोरपि।
मूर्ध्न्याधारे हृदि न्यस्येद्भूयो बीजत्रयं क्रमात्॥१७॥

अब नवयोनि न्यास कहते हैं—दाहिना कान—ॐ हसरैं नमः। वामकर्ण—ॐ हसकलरीं नमः। चिबुक—ॐ सहरैः नमः। दक्षिण गण्डदेश—ॐ हसरैः नमः। वामगण्ड—ॐ हसकलरीं नमः। वदन—ॐ सहरैं नमः। दाहिना नेत्र—हसरैः नमः। वामनेत्र—ॐ हसकलरीं नमः। जठर—ॐ सहरैः नमः। दक्ष कोहनी में—ॐ हसरैः नमः। वाम कोहनी में—ॐ हसकलरीं नमः। कुक्षि में—ॐ सहरैः नमः। दक्ष जानु—ॐ हसरैः नमः। वाम जानु—ॐ हसकलरीं नमः। लिङ्गाग्र—ॐ सहरैः नमः। दक्षिण पैर—ॐ हसरैः नमः। वाम पैर—ॐ हसकलरीं नमः। गुह्य—ॐ सहरैः नमः। दक्षिण स्तन—ॐ हसरैः नमः। वाम स्तन—ॐ हसकलरीं नमः।

कण्ठ—ॐ हसरैं नमः से न्यास करे निबन्ध में कहते हैं कि वाम तथा दक्षिण कर में क्रमशः प्रथम तथा द्वितीय बीज एवं दोनों हाथों में तृतीय बीज का न्यास करे। मस्तक, मूलाधार, हृदय में पुनः यथाक्रमेण तीनों बीज का न्यास करे।।१६-१७।।

तथा च निबन्धे—

नवयोन्यात्मकं न्यासं बीजैस्त्रिभिः क्रमात्।
कर्णयोश्चिबुके भूयो गण्डयोर्वदने पुनः ।।१८।। इत्यादि ।

तीन बीज से क्रम से नवयोनि न्यास करे। १. दक्षिण कर्ण, वामकर्ण तथा चिबुक में। २. पुनः दक्षिण गण्ड, वामगण्ड तथा वदन में। ३. पुनः दक्षिण नेत्र, वाम नेत्र तथा नासिकाद्वय में। ४. पुनः दक्षिण स्कन्ध, वाम स्कन्ध तथा जठर में। ५. तत्पश्चात् दक्षिण कूर्पर, वाम कूर्पर तथा कुक्षि में। ६. दक्षिण जानु, वाम जानु तथा लिङ्गाग्र में। ७. दक्षिण पाद, वाम पाद, गुह्य देश में। ८. दक्षिण पार्श्व, वाम पार्श्व तथा हृदयकमल में। ९. दक्षिण स्तन, वाम स्तन तथा कण्ठ में। इस प्रकार तीन-तीन स्थान में तीन-तीन बीज का न्यास करे।।१८।।

ततो रत्यादिन्यासः। मूलाधारे ॐ ऐं रत्यै नमः। हृदि क्लीं प्रीत्यै नमः। भ्रूमध्ये सौः मनोभवायै नमः। पुनर्भ्रूमध्ये सौः अमृतेश्यै नमः। हृदि क्लीं योगेश्यै नमः। मूलाधारे ऐं विश्वयोन्यै नमः।।१९।।

अब रत्यादि न्यास ऊपर लिखे अनुसार करना चाहिये। इसमें प्रत्येक मन्त्र के पहले ॐ लगाना चाहिये।।१९।।

निबन्धे—

मूलं रतिं हृदि प्रीतिं भ्रुवोर्मध्ये मनोभवाम्।
बालाबीजैस्त्रिभिर्न्यस्येत् स्थानेष्वेष्वेनुलोमतः ।।२०।।
अमृतेशीञ्च योगेशीं विश्वयोनिं क्रमादिमाः ।
विलोमबीजैर्विन्यस्येन्मूर्त्तिन्यासमथाचरेत् ।।२१।।

निबन्ध में कहा है कि विलोम में तीन बालाबीज से मूलाधार में रति का, हृदय में प्रीति का, भ्रूमध्य में मनोभवा का न्यास करे। अमृतेशी, योगेशी तथा विश्वयोनि इनका क्रम से तीन स्थान में विलोम बालाबीज से न्यास करे। अनन्तर मूर्त्तिन्यास करना चाहिये।।२०-२१।।

अथ मूर्त्तिन्यासः। मूर्ध्नि—सहरों ईशानमनोभवाय नमः। वक्त्रे—सहरें तत्पुरुषमकरध्वजाय नमः। हृदि—सहरुं अघोरकुमारकन्दर्पाय नमः। गुह्ये—सहरिं वामदेवमन्मथाय नमः। पादयोः—सहरं सद्योजात-

कामदेवाय नमः। एव मूर्ध्वप्राग्याम्येत्तरपश्चिममुखेषु ईशानमनोभवादि-पञ्चमूर्त्तिस्तत्तद्बीजादिकान्न्यसेत्॥२२॥

अब मूर्त्ति न्यास कहते हैं। मस्तक पर—ॐ सहरों ईशानमनोभवाय नमः। मुख में—ॐ सहरें तत्पुरुषमकरध्वजाय नमः। हृदय में—ॐ सहरुं अघोरकुमारकन्दर्पाय नमः। गुह्य में—ॐ सहरिं वामदेवमन्मथाय नमः। पादद्वय में—ॐ सहरं सद्योजातकामदेवाय नमः। इसी प्रकार ऊर्ध्वमुख, पूर्वमुख, दक्षिणमुख, उत्तरमुख तथा पश्चिमुख में ईशान मनोभवादि पञ्च मूर्त्ति का उन-उन बीज को मन्त्र के आदि में देकर न्यास करे। जैसे ऊर्ध्व मुख में—ॐ सहरों ईशानमनोभवाय नमः। पूर्वमुख में—ॐ सहरैं तत्पुरुषमकरध्वजाय नमः। दक्षिणमुख में—ॐ सहरुं अघोरकुमारकन्दर्पाय नमः। उत्तरमुख में—ॐ सहरिं वामदेवमन्मथाय नमः। पश्चिममुख में—ॐ सहरं सद्योजातकामदेवाय नमः।।२२।।

तथा च निबन्धे—

स्वस्वबीजादिकं पूर्वं मूर्ध्नीशानमनोभवम्।
न्यसेद् वक्त्रे तत्पुरुषमकरध्वजमात्मवित्॥२३॥
हृद्यघोरकुमारादिं कन्दर्पं तदनन्तरम्।
गुह्यदेशे प्रविन्यस्येद् वामदेवादि मन्मथम्॥२४॥
सद्योजातं कामदेवं पादयोर्विन्यसेत्ततः।
ऊर्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखेषु तान्॥२५॥
प्रविन्यसेद् यथापूर्वं भृगुव्योमाग्निसंस्थितः।
सद्यादिपञ्चह्रस्वाढ्यं बीजमासां प्रकीर्त्तितम्॥२६॥

निबन्ध में कहा है कि आत्मज्ञ साधक प्रथमतः मस्तक में अपने बीज को आगे लगाकर ईशान मनोभव का न्यास करे। मुख में तत्पुरुष मकरध्वज का न्यास करे। हृदय में अघोरकुमारादि कन्दर्प का अर्थात् कामदेव का न्यास करे। ऊर्ध्वमुख, पूर्वमुख, दक्षिणमुख, उत्तरमुख तथा पश्चिम मुख में उनका पहले की तरह न्यास करे। भृगुः (स) व्योम (ह) तथा अग्नि (र) में ऊर्ध्व तथा अधःक्रम से अर्थात् अग्र-पश्चात् क्रम से संयुक्त सद्यादि पञ्च ह्रस्व (उ ए उ इ अ) द्वारा युक्त होने पर इन्हें मूर्त्तियों का बीज कहते हैं।।२३-२६।।

भृगुर्दन्त्यसकारः। व्योम—हकारः। अग्नी रेफः। सद्यः ओकारस्तदादित्वं पूर्वपूर्वक्रमेण। आसां मूर्तीनाम्। ततः करयोरङ्गुलिषु क्रमेण पञ्चबाणान् पञ्चकामांश्च न्यसेत्॥२७॥

भृगुः—दन्त्य सकार। व्योम—हकार। अग्नि—रेफ (रकार)। सद्यः—ओकार। तदादि अर्थात् ओकारादि पूर्व-पूर्व क्रम से अर्थात् ओ ए ई उ अ इस क्रम से युक्त होगा। आसां—मूर्त्तिसमूह का। तदनन्तर दोनों हाथ की अंगुलियों में पञ्चबाण तथा पञ्चकाम का न्यास करे।।२७।।

तत्र बाणन्यासः—अङ्गुष्ठयोः द्रां द्राविण्यै नमः। तर्जन्योः द्रीं क्षोभिण्यै नमः। मध्यमयोः क्लीं वशीकरिण्यै नमः। अनामिकयोः ब्लू आकर्षिण्यै नमः। कनिष्ठयोः सः सम्मोहिन्यै नमः॥२८॥

अब बाण न्यास करे। अंगुष्ठद्वय में—ॐ द्रां द्राविण्यै नमः, तर्जनीद्वय में—ॐ क्षोभिण्यै नमः, मध्यमाद्वय में—ॐ क्लीं वशीकरिण्यै नमः, अनामिकाद्वय में—ॐ ब्लूं आकर्षिण्यै नमः, कनिष्ठाद्वय में—ॐ सम्मोहिन्यै नमः।।२८।।

ततः क्रमेण कामन्यासः। ह्रीं कामाय नमः। क्लीं मन्मथाय नमः। ऐं कन्दर्पाय नमः। ब्लूं मकरध्वजाय नमः। स्त्रीं मीनकेतनाय नमः। ततो मूर्ध्नि पादे वक्त्रे गुह्ये हृदि पूर्वोक्तपञ्चबाणान् पञ्चकामांश्च न्यसेत्॥२९॥

तदनन्तर यथाक्रम से कामन्यास कहते हैं। अंगुष्ठद्वय—ॐ ह्रीं कामाय नमः। तर्जनीद्वय—ॐ क्लीं मन्मथाय नमः। मध्यमाद्वय—ॐ ऐं कन्दर्पाय नमः। अनामाद्वय—ॐ ब्लूं मकरध्वजाय नमः। कनिष्ठाद्वय—ॐ स्त्रीं मीनकेतनाय नमः। मस्तक, पाद, वक्त्र, गुह्य, हृदय में पूर्वोक्त पञ्च बाण तथा पञ्च काम का न्यास करे। बाण न्यास कहते हैं—मस्तक—ॐ ॐ द्रां द्राविण्यै नमः। पादद्वय—ॐ द्रीं क्षोभिण्यै नमः। वक्त्र—ॐ क्लीं वशीकरिण्यै नमः। गुह्य—ॐ ब्लूं आकर्षिण्यै नमः। हृदय—ॐ सः सम्मोहिन्यै नमः।

अव कामन्यास कहते हैं। मस्तक—ॐ ह्रीं कामाय नमः, पादद्वय—ॐ क्लीं मन्मथाय नमः, वक्त्र—ॐ ऐं कन्दर्पाय नमः, गुह्य—ॐ ब्लूं मकरध्वजाय नमः, हृदय—ॐ स्त्रीं मीनकेतनाय नमः।।२९।।

तथा च ज्ञानार्णवे—

थान्तद्वयं समालिख्य वह्निसंस्थं क्रमेण हि।
मुखवृत्तेन नेत्रेग वामेन परिमण्डितम्॥३०॥
बाणद्वयमिदं प्रोक्तं मादनं भूमिसंस्थितम्।
चतुर्थस्वरबिन्द्वाढ्यं नामरूपं वरानने॥३१॥

थान्त दकारद्वय लिखकर वह्निसंस्थ ('र' संयुक्त) करके उसे यथाक्रमेण मुखवृत्त (आ) तथा वामनेत्र (ई) से परिमण्डित होकर नादबिन्दुयुक्त होकर दो बाणबीज होता

है। हे वरानने! मादन (क) भूमि (ल) संयुक्त होकर चतुर्थ स्त्रर ई तथा विन्दु से युक्त होकर नादरूप तृतीय बाणबीज उद्भूत होता है।।३०-३१।।

फान्तं शक्रसमायुक्तं वामकर्णविभूषितम्।
नादबिन्दुसमायुक्तं सर्गवांश्चन्द्रमा भवेत्॥३२॥

फान्त बकार शक्र (ल) से संयुक्त होकर 'ऊँ' द्वारा विभूषित होकर चतुर्थ बाणवीज होता है। चन्द्रमा (स) विसर्गयुक्त होकर पञ्चम बाणबीज होता है।।३२।।

पञ्चबाणान् महेशानि नामतः शृणु पार्वति।
द्रावणः क्षोभणो वश्यस्तथाकर्षणसंज्ञकः।
अथोन्मादः क्रमेणैव नामानि परमेश्वरि॥३३॥

हे महेशानि! पार्वति, परमेश्वरि! पञ्चबाण का नाम सुनो। द्रावण, क्षोभण, वश्य, आकर्षण, उन्माद अर्थात् सम्मोहन—ये क्रमशः पञ्चबाण हैं।।३३।।

न्यासे तु सर्वत्र स्त्रीलिङ्गेन प्रयोगः। तथा च निबन्धे—

द्रामाद्यां द्राविणीं मूर्ध्नि द्रीमाद्यां क्षोभणीं पदे।
क्लीं वशीकरणीं वक्त्रे गुह्ये ब्लूं बीजपूर्विकाम्॥३४॥
आकर्षणीं हृदि पुनः सर्गान्तर्भृगुसंस्थिताम्।
सम्मोहनीं क्रमादेवं बाणन्यासोऽयमीरितः॥३५॥

न्यास में सर्वत्र स्त्रीलिंग का प्रयोग होता है, जैसा कि निबन्ध में कहा है कि मस्तक में मन्त्र के आदि में द्राम् लगाकर द्राविणी का, आदि में स्त्रीं लगाकर क्षोभिणी का, वक्त्र में क्लीं आदि में लगाकर वशीकरणी का, ब्लूं बीज आदि में लगाकर गुह्य में आकर्षणी का, सः लगाकार सम्मोहनी का न्यास करे। यह बाणन्यास कहा गया है।।३४-३५।।

कामास्तत्रैव विज्ञेयास्तेषां बीजानि संशृणु।
पराबीजं मध्यबाणं वाग्भवं परमेश्वरि॥३६॥
तुर्यबाणं ततश्चैव स्त्रीबीजञ्च क्रमात् प्रिये।
पञ्चकामा इमे देवि! नामानि शृणु पार्वति॥३७॥

कामन्यास को इस बाण न्यास के ही स्थान पर जानना चाहिये। उनका बीज इस प्रकार है। परावीज (ह्रीं) मध्यवाण वीज (क्लीं) वाग्भव (ऐं) तुर्यबाण अर्थात् चतुर्थवाणबीज (ब्लूं) हे प्रिये! तत्पश्चात् स्त्रीं। इसे क्रमशः कामगण का बीज जानना चाहिये। हे देवी पार्वति! ये ही इस प्रकार पञ्चकाम हैं। अब उनके नाम को सुनो।।३६-३७।।

कामममन्मथकन्दर्पमकरध्वजसंज्ञकाः ।
मीनकेतुर्महेशानि! पञ्चमः परिकीर्त्तितः ।
पञ्चकामांस्ततो देवि! बाणस्थानेषु विन्यसेत् ॥३८॥

हे महेशानि! काम, मन्मथ, कन्दर्प, मकरध्वज नामक चार काम हैं। मीनकेतु पाँचवाँ नाम है। बाण न्यास करके बाण स्थान पर पाँच 'काम' का न्यास करना चाहिये।।३८।।

पराबीजं मायाबीजम्। मध्यबाणं मध्यबाणबीजं—कामबीजम्। तुर्यबाणं चतुर्थबाणबीजम् वकारलकारवामकर्णविन्द्वात्मकम्॥३९॥

पराबीजं = ह्रीं। मध्यबाणं—मध्यवाण बीज 'क्लीं'। तुर्यबाणम्—चतुर्थ वाणबीज अर्थात् व, ल, ऊ तथा बिन्दु मिलनरूप ब्लूं बीज।।३९।।

ततः कराङ्गन्यासौ। यथा हसरां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। हसरीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। हसरां मध्यमाभ्यां वषट्। हसरैं अनामिकाभ्यां हूं। हसरौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। हसरः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु। तथा च निबन्धे—

षड्दीर्घयुक्तेनाद्येन बीजेनाङ्गक्रिया मता ॥४०॥

तत्पश्चात् कराङ्गन्यास करना चाहिये। जैसे—ॐ ह्स्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ह्स्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ह्स्रुं मध्यमाभ्यां वषट्। ह्स्रैं अनामिकाभ्यां हुं। ह्स्रौं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ह्स्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। इसी प्रकार से हृदयादि स्थान में न्यास करे। जैसे—ॐ ह्स्रां हृदयाय नमः। ह्स्रीं शिरसे स्वाहा। ह्स्रुं शिखायै वषट्। ह्स्रैं कवचाय हूं। ह्स्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ह्स्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।।४०।।

ततः ऋष्यादिन्यासः। भाले—ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः सुभगायै नमः। भ्रूमध्ये—ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगायै नमः। वदने—ऐं क्लं ब्लूं स्त्रीं सः भगसर्पिण्यै नमः। कनिष्ठायां—ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः भगमालिन्यै नमः। कण्ठे—ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गायै नमः। हृदि—ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गकुसुमायै नमः। नाभौ—ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमेखलायै नमः। लिङ्गमूले—ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः अनङ्गमदनायै नमः॥४१॥

अब कराङ्गन्यास कहते हैं। ऊपर मूल में लिखे मन्त्रों के पूर्व में 'ॐ' लगाकर न्यास करना चाहिये। यही निवन्ध में भी कहा गया है।।४१।।

निबन्धे—

भालभ्रूमध्यवदने कण्ठिकाकण्ठहृत्सु च ।
नाभ्यधिष्ठानयोः पञ्च ताराद्याः सुभगादिकाः ॥४२॥

न्यस्तव्यं विधिना देव्या मन्त्रिणा सुभगा भगा।
भगसर्पिण्यथ परा भगमालिन्यतः परम् ॥४३॥
अनङ्गमदना सर्वामदविभ्रममन्थराः।
अनङ्गानङ्गकुसुमा भूयश्चानङ्गमेखला।
वाक्कामबीजं ब्लूं स्त्रीं सस्ताराः पञ्चोदितास्त्वमी ॥४४॥

निबन्ध में कहा है कि भाल, भ्रू, वदन, मुखमध्य स्थित घण्टी, कण्ठ, हृदय, नाभि तथा लिंगमूल में पञ्चतार (ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः) मन्त्र के पूर्व में लगाकर सुभगादि शब्द को चतुर्थी विभक्त्यन्त (जैसे सुभगा = सुभगायै) तथा पूर्व में प्रणव एवं अन्त में नमः लगाकर देवी का विधान के अनुसार न्यास करना चाहिये।

मन्त्रज्ञ साधक द्वारा न्यास किये जाने वाली देवी का नाम है—सुभगा, भगा, भगसर्पिणी, भगमालिनी, अनङ्गा, अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमेखला, अनङ्गमदना। ये सभी मदविभ्रम मन्थरा हैं। वाग् वाग्भव बीज (ऐं), काम कामबीज (क्लीं), ब्लूं स्त्रीं सः—यह पाँच तार कहे गये हैं।।४२-४४।।

ततो भूषणन्यासः यथा शिरसि—ॐ अं नमः। भाले—ॐ आं नमः। भ्रुवोः—ॐ इं ईं नमः। कर्णयोः—ॐ उं ऊं नमः। नेत्रयोः—ॐ ऋं ॠं नमः। नसि (नासिकयोः)—ॐ ऌं नमः। गण्डयोः—ॐ ॡं एं नमः। ओष्ठयोः—ॐ ऐं ओं नमः। दन्तपङ्क्त्योः—ॐ औं अं नमः। मुखे—ॐ अः नमः। चिबुके—ॐ कं नमः। गले—ॐ खं नमः। कण्ठे—ॐ गं नमः। पार्श्वयोः—ॐ घं ङं नमः। स्तनयोः—ॐ चं छं नमः। दोर्मूलयोः—ॐ जं झं नमः। कूर्परयोः—ॐ ञं टं नमः। पाण्योः—ॐ ठं डं नमः। करपृष्ठयोः—ॐ ढं णं नमः। नाभौ—ॐ तं नमः। गुह्ये—ॐ थं नमः। ऊर्वोः—ॐ दं धं नमः। जानुनोः—ॐ नं पं नमः। जङ्घयोः—ॐ फं बं नमः। स्फिचोः—ॐ भं मं नमः। पत्तलयोः—ॐ यं नमः। चरणाङ्गुष्ठयोः—ॐ रं नमः। काञ्च्योः—ॐ वं नमः। ग्रीवायां—ॐ लं नमः। कटके—ॐ शं नमः। हृदि—ॐ षं नमः। गुह्ये—ॐ क्षं नमः। कर्णयोः—ॐ सं नमः। गण्डयो—ॐ ळं नमः। मौलौ—ॐ हं नमः॥४५॥

तथा च निबन्धे—

न्यसेच्छिरसि भालभ्रूकर्णाक्षियुगले नसि।
गण्डयोरोष्ठयोर्दन्तपङ्क्त्योरास्ये न्यसेत्स्मरान् ॥४६॥

चिबुकेऽथ गले कण्ठे पार्श्वयोः स्तनयुग्मके।
दोर्मूलयोः कूर्परयोः पाण्योस्तत्पृष्ठदेशतः ॥४७॥
नाभौ गुह्ये पुनश्चोर्वो जानुनोर्जङ्घयोस्ततः।
स्फिचोः पत्तलयोः पश्चाच्चरणाङ्गुष्ठयोर्द्वयोः।
कादिरान्तान् न्यसेद्वर्णान् स्थानेष्वेषु समाहितः ॥४८॥

मस्तक, ललाट, भ्रू, दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नासिका, गण्डद्वय, ओष्ठद्वय, दन्तपंक्ति तथा मुख में स्वरवर्ण का न्यास करे।

चिबुक, गला, कण्ठ, दोनों पार्श्व, स्तनद्वय, दोनों बाहुमूल, दोनों हाथ, हस्तपृष्ठद्वय, नाभि, गुह्य, दोनों ऊरु, दोनों गुल्फ, दोनों पैरों का तल, पैर के दोनों अंगूठे में साधक समाहित चित्त होकर क से र पर्यन्त व्यञ्जन का न्यास करे।।४५-४८।।

विशेष—राघवभट्ट ने कहा है कि पाणि एवं पाणि के पृष्ठ देश में एक-एक वर्ण का न्यास होना चाहिये। इस ग्रन्थ में कटि में 'ल', हृदय में 'श' तथा कर्णकुण्डलद्वय में ष तथा स का न्यास करना कहा गया है।

काञ्च्यां ग्रैवेयकं पश्चात् कटके हृदिगुह्यके।
कर्णयोर्गण्डयोर्मौलौ बलशान् यक्षसान् ळहौ।
अष्टाविमान् प्रविन्यस्येदेवं साधकसत्तमः ॥४९॥

साधकोत्तम व्यक्ति काञ्ची में, ग्रैवेयक में, कटक में, हृदय में, गुह्य में, कर्णद्वय में, गण्डद्वय में तथा मस्तक में क्रमशः व ल श ष क्ष स तथा ळ ह इन अष्टवर्ण का इस प्रकार से न्यास करे।।४९।।

ततस्त्रिखण्डां मुद्रां बद्ध्वा ध्यायेत्।
उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणां क्षौमां शिरोमालिकां
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वराम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारबिन्दश्रियं,
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्दे समन्दस्मिताम् ॥५०॥

तदनन्तर त्रिखण्डा मुद्रा बनाकर इस प्रकार ध्यान करे—उदीयमान सहस्र सूर्य के समान कान्तियुता, रक्तवर्ण पट्टवस्त्र धारण करने वाली, मुण्डमाला-धारिणी, रत्नचन्दन-लिप्त स्तनों वाली, हाथों में जपमाला, पुस्तकमुद्रा, अभय तथा वरमुद्राधारिणी, नेत्रद्वय से शोभायमान मुखकमलों वाली, चन्द्रकलायुक्त रत्नमुकुट-धारिणी, तनिक मन्दहास्ययुक्त देवी की मैं वन्दना करता हूँ।।५०।।

तथा च—रक्तवर्णां रक्तवस्त्रां मुण्डमालरक्तालिप्तकुचां दक्षिणे ऊर्ध्वे जपमालां वामोदूर्ध्वे विद्यां पुस्तकम् वामाधोऽभयं दक्षिणाधो वरं दधतीं ध्यायेत्।।५१।।

अतएव देवी को रक्तवर्णा, रक्तवस्त्रा, मुण्डमाला तथा रक्तचन्दन लिप्त स्तनों वाली, दाहिने ऊपरी हाथ में जपमाला, बाँयें ऊपरी हाथ में पुस्तक मुद्रा-धारिणी तथा बाँयें निचले हाथों में अभयमुद्रा एवं दाहिने नीचे वाले हाथ में वरमुद्रा-धारिणी का ध्यान करना चाहिये।।५१।।

एवं ध्यात्वा मानसैरुपचारैरभ्यर्च्यार्घ्यं संस्थाप्याधारशक्त्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं सम्पूज्य पूर्वादिकेसरेषु मध्ये च

इच्छा ज्ञाना क्रिया चैव कामिनी कामदायिनी।
रति रतिप्रिया नन्दा नवमी च मनोन्मनी ॥

एताः प्रणवादिनमोऽन्तेन सम्पूज्य प्राग्योनिमध्ययोन्यन्तराले ॐ गुरुभ्यो नमः। ॐ गुरुपादुकाभ्यो नमः। ॐ परमगुरुभ्यो नमः। ॐ परमगुरुपादुकाभ्यो नमः। ॐ परात्परगुरुभ्यो नमः। ॐ परात्परगुरुपादुकाभ्यो नमः। ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः। ॐ परमेष्ठिगुरुपादुकाभ्यो नमः। एवमाचार्येभ्यस्तत् पादुकाभ्यश्च।।५२।।

इस प्रकार से ध्यान करके मानसोपचार पूजन, अर्घ्यस्थापन, आधार शक्ति से 'ह्रीं ज्ञानात्मने नमः' पर्यन्त पूजा करके पूर्वादि केशर के मध्य में तथा दिक् समूह में ॐ इच्छायै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ कामिन्यै नमः, ॐ कामदायिन्यै नमः, ॐ रत्यै नमः, ॐ रतिप्रियायै नमः, ॐ नन्दायै नमः, ॐ मनोन्मन्यै नमः से पूजा करके ॐ ऐं परायै नमः, ॐ ऐं अपरायै नमः, ॐ ऐं परापरायै नमः तथा 'ॐ ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः' मन्त्र से पीठमन्त्र का पूजन करके त्रिकोण तथा मध्य त्रिकोण के बीच के अन्तराल में ॐ गुरुभ्यो नमः, ॐ गुरुपादुकाभ्यो नमः, ॐ परमगुरुभ्यो नमः, ॐ परमगुरुपादुकाभ्यो नमः, ॐ परात्परगुरुभ्यो नमः, ॐ परात्पर-गुरुपादुकाभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः, ॐ परमेष्ठिगुरुपादुकाभ्यो नमः कहकर गुरुपंक्ति का पूजन करे। इसी प्रकार से ॐ आचार्येभ्यो नमः, ॐ आचार्यपादुकाभ्यों नमः कहकर आचार्य-पूजन भी करना चाहिये।।५२।।

विशेष—श्रीगुरुक्रम तीन प्रकार से कहा गया है—दिव्यौघ, सिद्धौघ, मानवौघ। दिव्यौघ हैं—परप्रकाशानन्द, परमेशानन्द, परमशिवानन्द, कामेश्वरानन्द, मोक्षानन्द, कामानन्द तथा अमृतानन्द। सिद्धौघ हैं—ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा

सदानन्द। मानवौघ हैं—अपने गुरु का सम्प्रदाय, उनके गुरु अर्थात् परमगुरु, परापरगुरु तथा परमेष्ठिगुरु। पीठ के उत्तर में इनका पूजन करना चाहिये।

अथ पूजायन्त्रम्

शारदायाम्—

पद्ममष्टदलोपेतं नवयोन्याढ्यकर्णिकम्।
चतुर्द्वारसमायुक्तं भूगृहं विलिखेत्ततः ।।५३।।

अब पूजायन्त्र कहते हैं। शारदातिलक में कहा है कि नवयोनियुक्त कर्णिका-विशिष्ट एक अष्टदल पद्म बनाकर चतुर्द्वारयुक्त भूगृह बनाये। यह देवी का पूजायन्त्र होता है।।५३।।

ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें ह्सौः इति बिन्दुचक्रे देव्या मूर्त्तिं सङ्कल्प्य त्रिखण्डामुद्रया पूर्ववद्देवीं ध्यात्वावाहयेत्।।५४।।

तदनन्तर 'ऐं ह्रीं श्रीं ह स ख फ्रे ह्सौः' इस मन्त्र से बिन्दुचक्र में देवी की मूर्त्ति की कल्पना करके त्रिखण्डा मुद्रा में पूर्ववत् देवी का ध्यान करके श्लोकमन्त्र पढ़ते-पढ़ते देवी का आवाहन करे।।५४।।

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ।।५५।।

हे देवेशि! हे भक्तिसुलभे! हे परिवारसमन्विते! मैं तुम्हारी जब तक पूजा करूँ तब तक तुम सुस्थिर होकर रहो।।५५।।

तथा च निबन्धे—

पञ्चभिः प्रणवैर्मूर्त्तिः तस्यामावाह्य देवताम्।
तारावाक्शक्ति कमला ह स ख फ्रे हसौः स्मृताः ।।५६।।

एते पञ्चताराः प्रणवाः स्मृताः इत्यर्थः।

निबन्ध में कहा है पारिभाषिक पञ्च प्रणव द्वारा मूर्त्ति की कल्पना करके उस मूर्त्ति में देवी का आवाहन करके समाहित होकर आगमोक्त विधान से पूजा करे। वाग्भव (ऐं) शक्तिबीज (ह्रीं) लक्ष्मीबीज (श्रीं) ह्स्ख्फ्रें ह्सौः—इन पारिभाषिक पञ्च प्रणव से पूजा आरम्भ करे।।५६।।

ततः आवाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणपूजामारभेत्। यथा देव्या वामकोणे—ऐं रत्यै नमः। दक्षिणकोणे—क्लीं प्रीत्यै नमः। अग्रकोणे—सौः मनोभवाय नमः। केशरेष्वग्न्यादिकोणेषु मध्ये दिक्षु

च पूर्वोक्ताङ्गमन्त्रेण पूजयेत्।तथा च ज्ञानार्णवे—

अग्नीशासुरवायव्यमध्यदिक्ष्वङ्गपूजनम् ।।५७।।

तत्पश्चात् आवाहन से पञ्चपुष्पाञ्जलि-दानपर्यन्त का कार्य करके आवरण पूजा आरम्भ करना चाहिये। देवी के वाम कोण में—ॐ ऐं रत्यै नम:। दक्षिण कोण में—ॐ क्लीं प्रीत्यै नम:। अग्रकोण में—ॐ सौ: मनोभवाय नम:। केशर के अग्न्यादिकोण में, मध्य में तथा दिक् समूह में पूर्वोक्त अंगमन्त्र से छ: अंगदेवताओं का पूजन करना चाहिये। जैसे ॐ ह्स्रां हृदयाय नम:। ईशानकोण में—ॐ ह्स्रीं शिरसे स्वाहा नम:। नैर्ऋत्य कोण में—ॐ ह्स्रुं शिखायै वषट् नम:। वायुकोण में—ॐ ह्स्रैं कवचाय हूं नम:। मध्य में—ॐ ह्स्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् नम:। सम्मुख दिशा में—ॐ ह्स्र: करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् नम:। ज्ञानार्णव में भी कहा है कि अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायुकोणों में एवं मध्य तथा दिक् समूह में अंगदेवता का पूजन करना चाहिये।।५७।।

तत उत्तरे—ॐ द्रां द्राविण्यै नम:। ॐ द्रीं क्षोभण्यै नम:। दक्षिणे ॐ क्लीं वशीकरण्यै नम:। ॐ ब्लूं आकर्षण्यै नम:। अग्रे—ॐ स: सम्मोहन्यै नम:।।५८।।

तत्पश्चात् उत्तर में—ॐ द्रां द्राविण्यै नम:। ॐ द्रीं क्षोभण्यै नम:। दक्षिण में—ॐ क्लीं वशीकरण्यै नम:। ॐ ब्लूं आकर्षण्यै नम:। आगे—ॐ स: सम्मोहन्यै नम: से पूजन करे।।५८।।

तत: पञ्चकामान् पूजयेत्। उत्तरे—ह्रीं कामाय नम:, क्लीं मन्मथाय नम:। दक्षिणे—ऐं कन्दर्पाय नम:, ब्लूं मकरध्वजाय नम:। अग्रे—स्त्रीं मीनकेतनाय नम:।।५९।।

अब पञ्चकाम का पूजन होगा। जैसे उत्तर में—ॐ ह्रीं कामाय नम:, ॐ क्लीं मन्मथाय नम:। दक्षिण में—ॐ ऐं कन्दर्पाय नम:, ॐ ब्लूं मकरध्वजाय नम:। आगे—ॐ स्त्रीं मीनकेतनाय नम:।।५९।।

तथा च ज्ञानार्णवे—

उत्तरस्यां द्वयं देवि दक्षिणस्यां द्वयं दिशि।
अग्रे चैकं क्रमेणैव पञ्चबाणास्ततो यजेत्।
पञ्चकामास्तथा देवि बाणवत् परिपूजयेत्।।६०।।

ज्ञानार्णव में कहा है कि हे देवि! उत्तर में दो बाण की तथा दक्षिण में भी दो बाण

की एवं आगे एक बाण की पूजा करे। तदनन्तर हे देवि! इसी प्रकार पञ्चबाण की तरह ही पञ्चकाम का भी पूजन करना चाहिये।।६०।।

ततोऽष्टयोनिषु पूर्वादितः ऐं क्लीं ब्लूं स्त्रीं सः सुभगायै नमः। ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं भगायै नमः। ॐ ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं भगसर्पिण्यै नमः। ॐ ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं भगमालिन्यै नमः। ॐ ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं अनङ्गायै नमः। ॐ ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं अनङ्गकुसुमायै नमः। ॐ ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं अनङ्गमेखलायै नमः। ॐ ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं अनङ्गमदनायै नमः। ततोऽष्टपत्रेषु पूर्वादितः ॐ असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नमः। ॐ रुरुमाहेश्वरीभ्यां नमः। ॐ चण्डकौमारीभ्यां नमः। ॐ क्रोधवैष्णवीभ्यां नमः। ॐ उन्मत्त वाराहीभ्यां नमः। ॐ कपालीन्द्राणीभ्यां नमः। ॐ भीषणचामुण्डाभ्यां नमः। ॐ संहारमहा-लक्ष्मीभ्यां नमः। तथा च निबन्धे—

अष्टयोनिष्वष्टशक्तीः पूजयेत् सुभगादिकाः ।।६१।।
मातरो भैरवाङ्कस्था मदविभ्रमविह्वलाः ।
अष्टपत्रेषु सम्पूज्या ह्यथावत् कुसुमादिभिः ।।६२।।

तदनन्तर अष्टयोनि में पूर्वादि क्रमेण मूलोक्त प्रकार से सुभगादि की पूजा करके मूलोक्त प्रकार से मातृगण के साथ असिताङ्गादि भैरव की पूजा उनके-उनके क्रोड़ में स्थित मदविभ्रम विह्वला ब्राह्मी आदि मातृगण की पूजा करे। जैसाकि निबन्ध में कहा भी है कि अष्टयोनि में सुभगादि अष्ट शक्ति का पूजन करे। असिताङ्गादि भैरव के क्रोड़ में स्थित मदविह्वल ब्राह्मी-प्रभृति का पूजन अष्टपत्र में करना चाहिये।।६१-६२।।

ततस्तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। नैवेद्यानन्तरं श्रीविद्योक्तबलिचतुष्टयमत्र कर्त्तव्यम्।।६३।।

तदनन्तर उसके बाहरी भाग में इन्द्रादि लोकपाल तथा वज्रादि अस्त्र की पूजा करके धूपदान से विसर्जन-पर्यन्त कर्म समाप्त करना चाहिये। नैवेद्य के पश्चात् श्रीविद्योक्त विधानानुसार वहीं पर चार बलि प्रदान करनी चाहिये।।६३।।

अस्य पुरश्चरणं दशलक्षजपः। होमस्तु द्वादशसहस्रम्। तथा च निबन्धे—

दीक्षां प्राप्य जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं जितेन्द्रियः ।
पुष्पैर्भानुसहस्राणि जुहुयाद् ब्रह्मवृक्षजैः ।
त्रिमध्वक्तैः प्रसूनैर्वा करवीरसमुद्भवैः ।।६४।।

इसका पुरश्चरण दस लाख जप से होता है। होम बारह हजार करे। निबन्ध में कहा है कि जो व्यक्ति पूर्वजन्मार्जित पुण्य से इस विधानानुसार परमदेवता की उपासना

करता है, वह साक्षात् शंकर होता है। ब्रह्मवृक्ष की समिधा से अथवा त्रिमधुर से लिपटे कनेरपुष्प से १२००० होम करना चाहिये।।६४।।

●

अथ सम्पत्प्रदाभैरवी

ज्ञानार्णवे—

यथासौ त्रिपुरा बाला तथा त्रिपुरभैरवी।
सम्पत्प्रदा नाम तस्याः शृणु निर्मलमानसे ॥१॥
शिवचन्द्रौ वह्निसंस्थौ वाग्भवं तदनन्तरम्।
कामराजं तथा देवि! शिवचन्द्रान्वितं ततः ॥२॥
पृथ्वीबीजन्तु वह्न्याढ्यां तार्तीयं शृणु वल्लभे।
शक्तिबीजे महेशानि शिववह्निं नियोजयेत् ॥३॥
कुमार्याः परमेशानि छित्वा सर्गन्तु वैन्दवम्।
त्रिपुराभैरवी देवी महासम्पत्प्रदा प्रिये ॥४॥

अब सम्पत्प्रदाभैरवी का वर्णन करते हैं। ज्ञानार्णव में कहा है कि जैसी त्रिपुराबाला हैं वैसी ही त्रिपुरभैरवी भी हैं। हे निर्मल मन वाली! उनका सम्पत्प्रदा नाम सुनो। शिव (ह) चन्द्र (स) वह्नि (र) से संयुक्त तथा वाग्वीज (ऐं) मन्त्रोद्धार होता है—ह्स्रैं। हे देवि! तदनन्तर कुमारी बाला का कामवीज, शिव (ह) तथा चन्द्र से युक्त होकर कामबीजस्थ पृथ्वीबीज लकार में रकार युक्त होगा। इससे ह्स्क्ल्रीं होगा। हे वल्लभे! तार्त्तीय बीज सुनो। हे महेशानि! कुमारी बाला भैरवी का शक्तिबीज 'स' शिव (ह) तथा वह्नि के ऊपर तथा नीचे योग करे। शक्तिबीज के विसर्ग का परित्याग करे। उसमें बिन्दु अनुस्वार का योग करे। इससे 'हसरौं' मन्त्रोद्धार होता है। हे प्रिये! इस त्रिपुराभैरवी देवी को ही महासम्पत्प्रदा देवी भी जानना चाहिये।।१-४।।

अस्यार्थः—शिवो हकारश्चन्द्रो दन्त्यसकारस्तौ रेफस्थौ। ततो वाग्भवमिति हकारदन्त्यसकाररेफवाग्भवैः प्रथमकूटम्। शिवचन्द्रान्वितमिति। शिवचन्द्रयोरधोगतं कुमार्या बालायाः कामराजं कामराजकूटं कामबीजमित्यर्थः। कामबीजमिति पाठे कुमार्यानन्वयेऽपि न क्षतिः। तथा पृथ्वीबीजस्य कामबीजस्थलकारस्यान्ते वह्न्याढ्यं रेफयुक्तम्। तथा च हकारदन्त्यसकारककारलकाररेफ चतुर्थस्वरबिन्दु-भिर्द्वितीयकूटम्। अथ तात्तीर्यं बीजं शृणु। शक्तिबीज इति। कुमार्या बालाभैरव्या यत् शक्तिबीजं दन्त्यसकारः चतुर्दशस्वरविसर्गघटितं वक्ष्यमाणं तृतीयकूटं तत्र शिववह्नी

हकाररेफौ नियोजयेत् उपर्यधोभावेन मिश्रयेत्। तथा चादौ हकारस्ततो दन्त्यसकारस्ततो रेफ इति सिद्धम्। तत्र च विसर्गं हित्वा बिन्दुं योजयेत्। एवञ्च हकारदन्त्यसकाररेफचतुर्दशस्वरबिन्दुभिस्तृतीयकूटम्। तथाच त्रिपुरभैरवी विसर्गरहिता चेत् सम्पत्प्रदा भैरवीति तत्त्वम्। तेन हसरैं इति प्रथमकूटम्। हसकलरीं इति द्वितीयकूटम्। हसरौं इति तृतीयकूटमिति सिद्धम्। इयं सम्पत्प्रदा भैरवी॥५॥

अर्थात् शिव (ह) चन्द्र (दन्त्य स)—इन दोनों को 'र' के साथ मिलाया। तदनन्तर वाग्बीज ऐ हो गया। ह, सकार तथा वाग्भव बीज द्वारा प्रथम कूट होता है—हसरैं। शिवचन्द्रान्वितम् अर्थात् शिव तथा चन्द्र के परवर्त्ती कुमारी बाला का कामराजकूट कामबीज। 'कामबीजं' यह पाठ होने के कारण कुमारी के साथ इसका सम्बन्ध न होने पर भी कोइं क्षति नहीं है। इसी प्रकार पृथ्वी बीजस्थ लकार के अन्त में वह्नियुक्त रकारयुक्त है। इससे हकार, स, क, ल, र, ई तथा बिन्दु द्वारा द्वितीय कूट ह्स्क्ल्रीं होगा। इस ग्रन्थ में तृतीय कूट भी कहा गया है। कुमारी बालाभैरवी का यह शक्तिबीज १४वें स्वर तथा सर्ग (:) घटित दन्त्य सकार है, जो तृतीयकूट है। उस सकार से शिव (ह) तथा वह्नि (र) का योग करे अर्थात् आगे तथा अधोभाव से मिश्रित करे। इस प्रकार आदि में हकार तथा अधोभाव में रकार सिद्ध होता है। यहाँ विसर्ग का त्याग करके बिन्दु का योग करे। अत: हकार, सकार, रकार, चतुर्दशस्वर औ तथा बिन्दु द्वारा तृतीय कूट होता है। इस प्रकार से यदि त्रिपुरभैरवी विसर्गरहित होकर बिन्दुयुक्ता हो जाती हैं तब वे सम्पत्प्रदा भैरवी हैं। यही तत्त्व है। अत: 'ह्स्रैं' प्रथम कूट, 'ह्स्क्ल्रीं' द्वितीय कूट एवं 'ह्स्रौं' यह तृतीय कूट है। यही त्रिकूटा सम्पत्प्रदा भैरवी हैं।।५।।

अस्या ध्यानम्—

आताम्रार्कसहस्राभां स्फुरच्चन्द्रकलज्जटाम्।
किरीटरत्नविलसच्चित्रचित्रितमौक्तिकाम् ॥६॥
स्रवद्रुधिरपङ्काढ्यां मुण्डमालाविराजिताम्।
नयनत्रयशोभाढ्यां पूर्णेन्दुवदनान्विताम् ॥७॥
मुक्ताहारलता राजत् पीनोन्नतघनस्तनीम्।
रक्ताम्बरपरीधानां योवनोन्मत्तरूपिणीम् ॥८॥
पुस्तकं चाभयं वामे दक्षिणे चाक्षमालिकाम्।
वरदानरतां नित्यां महासम्प्रत्प्रदां स्मरेत् ॥९॥

अर्थात् अरुणवर्णा, सहस्र सूर्यसम कान्तियुता, चन्द्रकलाविकसित जटाधारिणी,

रत्नविलसित चित्रचित्रत मुक्ताघटित किरीट-धारिणी, गलित रक्त पङ्कयुक्त मुण्डमालाधारिणी, नयनत्रय की शोभा से शोभिता, पूर्ण चन्द्रवदना, मुक्तामय हारलता से शोभित पीन तथा उन्नत स्तनों, रक्त वाली वस्त्र धारण करने वाली, यौवनोन्मत्ता, वाम हस्त में पुस्तक मुद्रा तथा अभय मुद्रा-धारिणी दाहिने हाथ में अक्षमाला तथा वरमुद्रा-धारिणी नित्य सम्पत्ति देने वाली भैरवी का ध्यान करना चाहिये।।६-९।।

तेन वामोर्ध्वे पुस्तकं वामाधोऽभयम्। दक्षिणपार्श्वे जपमालां दक्षिणाधो ऊर्ध्व- हस्ते जपमाला एवं अधोहस्ते वरं दधतीं ध्यायेत्। न्यासपूजादिकन्तु त्रिपुरभैरवीवत्। अत्राङ्गमन्त्रे तु विशेषः—द्विरुक्तैस्तु त्रिभिर्बीजैः कराङ्ग-न्यासकल्पनेति। अस्याः पुरश्चरणं त्रिलक्षजपः॥१०॥

इससे ज्ञात होता है कि बाँयें ऊपरी हाथ में पुस्तक मुद्रा तथा बाँयें नीचे वाले हाथ में अभय मुद्रा है। दाहिने ऊपरी हाथ में जपमाला तथा अधोहस्त में वरमुद्रा-धारिणी का ध्यान करे। न्यास तथा पूजादि समस्त विधान त्रिपुरभैरवी के समान करना होगा। इस पूजा के अंगन्यास मन्त्र में यह विशेष है कि द्विरावृत्त तीन बीजों द्वारा कराङ्गन्यास मन्त्र होता है। इनका पुरश्चरण तीन लाख जप से होता है।।१०।।

यथा ज्ञानार्णवे—

बालावदस्या पूजादि कुर्यात् साधकसत्तमः।
गुणलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहूयात् तद्दशांशतः॥११॥
न्यासपूजादिकं सर्वं कुमार्या इव सुव्रते।
एकलक्षं जपेन्मन्त्रं सिद्धये साधकोत्तमः॥१२॥

इति वचनात् सिद्धविद्यात्वाच्च एकलक्षजपः पुरश्चरणमिति वदन्ति॥१३॥

ज्ञानार्णव में कहा है कि साधकश्रेष्ठ इसे बाला मन्त्र से विधानानुसार अनुष्ठित करे। गुण (३) लक्ष मन्त्र जप करे एवं दशांश होम करे। हे सुव्रते! इसका न्यास-पूजादि समस्त विधान 'बाला' के समान ही होता है। साधक सिद्धि हेतु एक लाख जप करे। इस वचन के अनुसार तथा सिद्ध विद्या होने के कारण कुछ विद्वान् एक लाख जप से पुरश्चरण करने का विधान करते हैं।।११-१३।।

अथ कौलेशभैरवी

ज्ञानार्णवे—

सम्पत्प्रदा भैरवीवद् विद्धि कौलेशभैरवीम्।
हसाद्या सैव देवेशि त्रिषु बीजेषु पार्वति!॥१४॥

सैव सम्पत्प्रदा भैरव्येव।

अब कौलेशभैरवी प्रकरण कहते हैं। ज्ञानार्णव में कहा है कि हे देवेशि! हे पार्वति! सम्पत्प्रदा भैरवी के समान ही कौलेशी भैरवी को भी जानना चाहिये। वे सम्पत्प्रदा भैरवी हसाद्या तीन बीजों में अधिष्ठित होकर स्थित हैं।।१४।।

इयन्तु सहराद्या स्यात् पूजा ध्यानादिकं तथा।

इयन्तु कौलेशभैरवी तु। अस्यार्थः—सौ दन्त्यसकारः। हरो हकारस्ताराद्यौ यस्यास्तादृशी। तथा च त्रिकूटेषु हकार दन्त्यसकारयोर्व्यत्ययश्चेत्तदा कौलेशभैरवी भवति। तेन सहरैं सहकलरीं सहरौं इति सिद्धम्। इयं कौलेशभैरवी। अस्या ध्यानपूजादिकन्तु सम्पत्प्रदाभैरवीयं बोद्धव्यम्॥१५॥

यह कौलेशीभैरवी विद्या सहराद्या होती है (अर्थात् ह्सूरैं मन्त्र आगे रहता है)। इनका पूजन ध्यानादि सब सम्पत्प्रदा के ही समान करना होता है। यह कौलवी भैरवी स = दन्त्य सकार। हर = ह। जिसकी विद्या (मन्त्र) में सकार तथा हकार आदि में है। उस प्रकार की सहराद्या यह विद्या है। इससे यह कह सकते हैं कि तीनों कूट में यदि हकार तथा दन्त्य सकार का यदि व्यत्यय होता है तो वही कौलेशी भैरवी है। इससे 'स्ह्रैं स्ह्क्ल्रीं स्ह्रौं' यह मन्त्रोद्धार होता है। यह विद्या ही कौलेश भैरवी है। इनका पूजा-ध्यानादि सब सम्पत्प्रदा भैरवी के समान ही होता है।।१५।।

अथ भयविध्वंसिनी भैरवी

सम्पत्प्रदाभैरवी आद्यन्तकूटयो रेफवर्जिता चेद्भयविध्वंसिनी भैरवी भवति, दक्षिणामूर्त्तौ तथा दर्शनात्। ध्यानपूजादिकं सर्वं सम्पत्प्रदावत्। तेन ह्सैं ह्स्क्ल्रीं ह्सौं इति सिद्धम्। इयं भयविध्वंसिनी भैरवी॥१६॥

अब भयविध्वंसिनी भैरवी प्रकरण कहते हैं। यदि सम्पत्प्रदा भैरवी विद्या का आदि कूट तथा अन्त्य कूट रेफवर्ज़ित हो जाता है तब वह भयविध्वंसिनी विद्या होती है। ऐसा दक्षिणामूर्त्ति संहिता में कहा गया है। इनका ध्यान-पूजादि सब सम्पत्प्रदा भैरवी के तुल्य होता है। मन्त्रोद्धार है—ह्स्क्ल्रीं ह्सौं। यह भय का विध्वंस करती हैं।

अथ सकलसिद्धिदा भैरवी

ज्ञानार्णवे कौलेशभैरवीमधिकृत्य—

एतस्या एव विद्याया आद्यन्ते रेफवर्जिते।
तदयं परमेशानि नाम्ना सकलसिद्धिदा।
सम्पत्प्रदाभैरवीवद् ध्यानपूजादिकं भवेत्॥१७॥

अव सकलसिद्धिदा भैरवी कहते हैं। ज्ञानार्णव में कौलेशभैरवी प्रकरण में कहा है कि हे परमेशानि! यदि कौलेशभैरवी विद्या का आदिकूट तथा अन्त्यकूट रेफवर्जित हो तब वह विद्या सकलसिद्धिदा भैरवी विद्यारूप समस्त सिद्धिदात्री हो जाती है। इस विद्या का ध्यानपूजादि सब कुछ सम्पत्प्रदा भैरवी के समान होता है।।१७।।

अस्यार्थः—कौलेशभैरवी आद्यन्ते रेफरहिता चेत् सकलसिद्धिदा भैरवी भवति। तेन 'स्हैं स्ह्क्ल्रीं स्हौं इति सिद्धम्। इयं सकलासिद्धिदा भैरवी॥१८॥

इसका अर्थ है कि कौलेश भैरवी विद्या के आदि तथा अन्त को रेफरहित करने पर वह समस्तसिद्धिदा भैरवी होती है। इससे 'स्हैं स्ह्क्ल्रीं स्हौं' यह मन्त्रोद्धार सिद्ध होता है। यही विद्या सकलसिद्धिदा भैरवी होता है।।१८।।

अथ चैतन्यभैरवी

यथा ज्ञानार्णवे—

वाग्भवबीजमुच्चार्य जीवप्राणसमन्वितम्।
सकला भुवनेशानी द्वितीयं बीजमुद्धरेत्॥१९॥
जीवं प्राणं वह्निसंस्थं शक्रस्वरविभूषितम्।
विसर्गाढ्यं महेशानि! विद्यात्रै लोक्यमातृका॥२०॥

अस्यार्थः—अत्र जीवो दन्त्यसकारः। प्राणो हकारस्ताभ्यां युक्तं वाग्भवबीजमिति प्रथमबीजम्। सकला इति स्वरूपम्। भुवनेशानी माया इति द्वितीयम्। तथाच चन्द्रशिवद्वादशस्वरात्मकं बिन्दुना कलाढ्यं प्रथमबीजम्। चन्द्रकामपृथिवीमायाभिर्द्वितीयबीजम्। चन्द्रशिववह्निचतुर्दशस्वरविसर्गाढ्यं तृतीयबीजम्। तेन सहैं इति प्रथमकूटम्। सकलह्रीं इति द्वितीयकूटम्। सहरौः इति तृतीयकूटमिति सिद्धम्। इयं चैतन्य भैरवी॥२१॥

अब चैतन्यभैरवी प्रकरण कहते हैं। ज्ञानार्णव में कहा गया है कि जीव (स) तथा प्राणसमन्वित वाग्भव बीज (ऐं) अर्थात् सहैं का उच्चारण करके द्वितीय बीज स्क्ल् तथा भुवनेशानी (ह्रीं) अर्थात् 'स्क्ल्ह्रीं' का उद्धार करे।

हे महेशानि जीव (स) प्राण (ह) तथा वह्नि (र) मिलित होकर शक्रस्वर (चतुर्दश स्वर) औ से विभूषित होकर तथा विसर्गयुक्त होकर त्रैलोक्यमातृका विद्या (चैतन्य भैरवी विद्या) होती है।।१९-२१।।

अस्या पूजायन्त्रम्—

त्रिकोणञ्चैव षट्कोणं वसुपत्रं वरानने।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत्॥२२॥

अब इन चैतन्यभैरवी का पूजायन्त्र कहा जाता है। हे वरानने! एक त्रिकोण, तदनन्तर एक षट्कोण तथा अष्टदल, तदनन्तर चतुर्द्वारयुक्त चतुरस्र ऐसा मण्डल बनाना चाहिये।।२२।।

अस्याः पूजा—आधारशक्त्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः इत्यन्तं विन्यस्य पूर्वादिकेशरेषु वामां ज्येष्ठां रौद्रीं अम्बिकामिच्छां ज्ञानां क्रियां कुब्जिकां चित्रां विषघ्निकां भ्रामरीमानन्दां विन्यस्य ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः इति न्यसेत्। सम्प्रत्प्रदा बाला कौलेशी सकलेष्टदा विद्यानामेताभ्यः पीठशक्तये एव ज्ञानार्णवोक्ताः॥२३॥

इनकी पूजा कहते हैं। आधारशक्त्यादि ह्रीं ज्ञानात्मने नमः-पर्यन्त न्यास करके केशर में वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका, इच्छा, ज्ञाना, क्रिया, कुब्जिका, चित्रा, विषघ्निका, भ्रामरी तथा आनन्दा का न्यास करके मध्य में 'ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः' मन्त्र से पीठमन्त्र का न्यास करना चाहिये। ज्ञानार्णवतन्त्रोक्त सम्पत्प्रदा, बाला, कौलेशी तथा सकलेष्टदा विद्यासमूह पीठशक्ति हैं।।२३।।

ततः ऋष्यादिन्यासः। शिरसि—ॐ दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नमः। मुखे—ॐ पङ्क्तिछन्दसे नमः। हृदये—ॐ चैतन्यभैरव्यै देवतायै नमः॥२४॥

अब इस प्रकार कराङ्गन्यास किया जाता है—ॐ स्हैं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ हस्क्लह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ स्ह्रौः मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ स्हैं अनामिकाभ्यां हुं। ॐ हस्क्लह्रीं कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ स्ह्रौः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

इसी प्रकार हृदय में—ॐ स्हैं हृदयाय नमः। मस्तक—ॐ हस्क्लह्रीं शिरसे स्वाहा। शिखा—ॐ स्ह्रौः शिखायै वषट्। बाहुद्वय—ॐ स्हैं कवचाय हुं। नेत्रत्रय—ॐ हस्क्लह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्। करतलकरपृष्ठ—ॐ स्ह्रौः करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।

क्योंकि वचन है कि 'द्विरावृत्या षडङ्गानि विन्यस्य साधकं सदा' अर्थात् साधक प्रथमादि बीजों की दो बार आवृत्ति करके सदा कराङ्गन्यास करे।।२४।।

ततो ध्यानम्—

उद्यद्भानुसहस्राभां नानालङ्कारभूषिताम्।
मुकुटाग्रलसच्चन्द्ररेखां रक्ताम्बरान्विताम्॥२५॥
पाशाङ्कुशधरां नित्यां वामहस्तकपालिनीम्।
वरदाभयशोभाढ्यां पीनोन्नतघनस्तनीम्॥२६॥

अर्थात् उदीयमान सहस्र सूर्य के समान द्युति वाली, नाना अलङ्कार भूषिता, मुकुट के अग्रभाग में उज्वल चन्द्र रेखा-धारिणी, रक्त वस्त्र धारण करने वाली, नित्या, दाहिने हाथों में पाशांकुश तथा वरमुद्रा, वाम हस्तों में कपाल तथा अभय मुद्रा धारिणी एवं पीनोन्नतस्तनी चैतन्यभैरवी का ध्यान करता हूँ।।२५-२६।।

एवं ध्यात्वार्घ्यं संस्थाप्याधारशक्त्यादि वामाज्येष्ठादि पीठशक्तिः पीठमनुञ्च सम्पूज्य त्रिपुरभैरव्युक्तगुरुपंक्तिं सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वावाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणानि पूजयेत्॥२७॥

इस प्रकार ध्यानोपरान्त विशेषार्घ्य स्थापन, आधारशक्ति प्रभृति से लेकर वामा, ज्येष्ठादि पीठशक्ति तथा पीठ मन्त्र-पर्यन्त पूजन करे। त्रिपुर भैरवी प्रकरणोक्त गुरुपंक्ति का पूजन करके पुनः ध्यान करके आवाहनादि पञ्चपुष्पाञ्जलि-पर्यन्त विधान सम्पन्न करने के अनन्तर आवरण देवताओं का पूजन करे।।२७।।

तत्र प्रथमं षडङ्गपूजा। यथा अग्निकोणे—प्रथमबीजमुच्चार्य हृदयाय नमः। एवमीशाने द्वितीयं शिरसे स्वाहा। नैर्ऋते तृतीयं शिखायै वषट्। वायौ पुनः प्रथमं कवचाय हूं। मध्ये द्वितीयं नेत्रत्रयाय वौषट्। चतुर्दिक्षु—तृतीयमस्त्राय फट्। ततः पूर्ववद् रत्यादिकं सम्पूज्य अग्रे ॐ वसन्ताय नमः। वामे—कामदेवाय। दक्षिणे—चापाय। ततः पूर्ववद्बाणान् सम्पूज्य षट्कोणे पूर्वादितः—ॐ डाकिन्यै नमः। एवं काकिन्यै, लाकिन्यै, राकिन्यै, साकिन्यै, हाकिन्यै। अष्टदलेषु पूर्वादितः पूर्वोक्तानङ्गकुसुमाद्याः। पूर्वादिपत्राग्रेषु ॐ परभृताय नमः। एवं सारसाय, शुकाय, मेघाह्वाय, मेघायेति वा अपाङ्गाय, भ्रूविलासाय, हाराय, भावाय। ततः इन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्याः पुरश्चरणं लक्षजपः॥२८॥

प्रथमतः षड़ङ्गपूजा करनी चाहिये। अग्निकोण—ॐ स्हैं हृदयाय नमः। ईशान—ॐ ह्स्क्लह्रीं शिरसे स्वाहा। नैर्ऋत्य—ॐ स्ह्रौः शिखायै वषट्। वायुकोण—ॐ स्हैं कवचाय हुं। मध्य—ॐ ह्स्क्लह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्। चारो ओर—ॐ स्ह्रौः अस्त्राय फट्।

अब रति प्रभृति का पूजन पूर्वोक्त प्रकरणानुसार करके आगे—ॐ वसन्ताय नमः। वाम में—ॐ कामदेवाय नमः। दक्षिण में—ॐ चापाय नमः से पूजन करे। इसके पश्चात् पूर्ववत् बाणगण (पञ्च) का पूजन करके छः कोणों में पूर्वादि क्रम से ॐ डाकिन्यै नमः, ॐ राकिन्यै नमः, ॐ लाकिन्यै नमः, ॐ काकिन्यै नमः, ॐ

साकिन्यै नमः, ॐ हाकिन्यै नमः कहकर पूजा करके अष्टदल में पूर्वादि क्रम से पूर्वोक्त अनङ्गकुसुमादि की पूजा करे। पूर्वादि पत्र के अग्रसमूह में ॐ परभृताय नमः, ॐ सारसाय नमः, ॐ शुक्राय नमः, ॐ मेघाह्वाय नमः, ॐ अपाङ्गाय नमः, ॐ भ्रूविलासाय नमः, ॐ हाराय नमः, ॐ भावाय नमः कहकर पूजन करना चाहिये। तदनन्तर इन्द्रादि लोकपाल तथा उसके वज्रादि अस्त्रसमूह की पूजा करके धूपदान से विसर्जन-पर्यन्त समस्त कार्य शेष करे। इसका पुरश्चरण एक लाख जप कहा गया है।।२८।।

अथ कामेश्वरी भैरवी

ज्ञानार्णवे—

कामेश्वरी च रुद्रार्णा पूर्वसिंहासने स्थिता।
एतस्या एव विद्याया बीजद्वयमुदाहृतम् ।।२९।।
तदन्ते परमेशानि नित्यक्लिन्ने मदद्रवे।
एतस्या एव तार्त्तीयं रुद्रार्णा परमेश्वरि ।।३०।।

अब कामेश्वरी भैरवी कहते हैं। ज्ञानार्णव में कहा है कि एकादश अक्षरों वाली कामेश्वरी सिंहासन के पूर्व में स्थिता हैं। हे परमेशानि! इस चैतन्यभैरवी विद्या (कामेश्वरी) के दो बीज कहे गये हैं—स्हैं तथा स्क्ल्ह्रीं। उसके अन्त में नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्ह्रौः का उद्धार करे। यह ११ अक्षरों वाली कामेश्वरी विद्या होती है।।२९-३०।।

ध्यानपूजादिकं देवि चैतन्या इव पूर्ववत्।
त्रिकोणे तु विशेषोऽस्ति कथयामि तवानघे ।।३१।।
अग्रकोणक्रमेणैव नित्यां क्लिन्नां मदद्रवाम्।
षड़ङ्गावरणं पश्चात् पूजयेत् सर्वसिद्धये ।।३२।।

हे देवि! इनका ध्यान-पूजनादि सब कुछ चैतन्यभैरवी के समान होता है। हे अनघे! पूजा में त्रिकोण विशेष रूप है, जिसे तुमसे कहता हूँ।।३१-३२।।

पूर्वेति। शिवाध्यासितसिंहासनस्य पूर्वस्मिन् स्थितेत्यर्थः। केचित् तु शिव-मुखस्य सिंहासनसंज्ञा इत्याहुः। स्थानत्रये इत्यस्य चैतन्यभैरव्या इत्यर्थः। बीजद्वयमिति आद्यबीजद्वयमित्यर्थः। तेन स्हैं स्क्ल्ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे सहरौं इति सिद्धम्। इयं कामेश्वरी भैरवी।।३३।।

पूर्व इत्यादि का अर्थ—शिव के अध्यासित सिंहासन पर पूर्व में स्थित। किसी का मत है कि शिवमुख सिंहासन का नाम है अर्थात् शिवमुख को सिंहासन संज्ञा दी गयी है। स्थानत्रये एतस्याः का अर्थ है—चैतन्य भैरवी के। बीजद्वयम् = अर्थात् प्रथम बीजद्वय। अतः मन्त्रोद्धार होता है—स्हैं स्क्ल्ह्रीं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे स्ह्रौं। यही विद्या कामेश्वरी भैरवी कही गई है।।३३।।

विशेष—इस मन्त्र को ११ अक्षरों वाला कहा है; परन्तु इसमें अधिक अक्षर हैं। रहस्य यह है कि जो स्वररहित व्यञ्जन हैं, उनको अर्धाक्षर माना गया है। स्वरयुक्त ही अक्षर हैं। अतः स्वरहीन अनुच्चार्य स्हैं इत्यादि को आधा अक्षर ही माना जाता है।

अथ षट्कूटा भैरवी

ज्ञानार्णवे—

डाकिनीराकिनीबीजे लाकिनीकाकिनीयुगम्।
साकिनीहाकिनीबीजे आहृत्य सुरसुन्दरि ॥३४॥
आद्यमैकारसंयुक्तमन्यदीकारसंयुतम् ।
शक्रस्वरान्वितं देवि! तार्त्तीयं बीजमालिखेत्।
बिन्दुनादकलाकान्तं त्रितयं शैलसम्भवे ॥३५॥

अब षट्कूटा भैरवी कहते हैं। ज्ञानार्णव में कहा है कि हे सुरसुन्दरि! डाकिनी बीज (ड) राकिनी बीज (र) लाकिनी (ल) तथा काकिनी (क) साकिनी बीज (स) तथा हाकिनी बीज (ह)—इन सबका उद्धार करके प्रथम डरलकसह को ऐकार से संयुक्त तथा डरलकसह को ईकार से संयुक्त करे। तृतीय डरलकसह को शक्रस्वर (चौदहवाँ स्वर) औ द्वारा युक्त करके लिखे। हे शैलसम्भवे! इन तीनों को बिन्दु तथा नाद कला से युक्त करे।।३४-३५।।

डाकिनीबीजं टवर्गतृतीयाक्षरम्। राकिनीबीजं रेफः। लाकिनीबीजं लकारः। काकिनीबीजं ककारः। साकिनीबीजं दन्त्यसकारः। अतएव साकिनीशब्दोऽपि दन्त्यादिरेव। हाकिनीबीजं हकारः। पदत्रयं कर्मविभक्त्यन्तं अन्यद्वितीयबीजम्। शक्रस्वरश्चतुर्दशस्वरः। त्रितयं कूटत्रयं बिन्दुनादाढ्यं षड्भिर्व्यञ्जनैकूटं यस्या सा इति नामार्थः। तेन डरलकसहैं डरलकसहीं डरलकसहौं इति सिद्धम्। इयं षट्कूटा भैरवी॥३६॥

डाकिनी बीज = टवर्ग का तीसरा अक्षर ड। राकिनी बीज = र। लाकिनी बीज = लकार। काकिनी बीज = क। साकिनीबीज = दन्त्य सकार। अतएव साकिनी शब्द भी दन्त्यादि अर्थात् दन्त्य सकारादि। हाकिनी बीज = ह। तीनों पद कर्म विक्त्यन्त। अन्य = द्वितीय बीज। शक्रस्वर = चतुर्दश स्वर औ। त्रितय—कूटत्रय। कूटत्रितय—बिन्दु नादयुक्त। छः व्यञ्जन वर्ण द्वारा कूट हुआ है जिस विद्या का, वह षट्कूटा। इससे ड्र्ल्क्स्हैं, ड्र्ल्क्स्हीं, ड र ल क स हौं यह षट्कूटा भैरवी विद्या होती है।।३६।।

तृतीयबीजं सविसर्गमित्यपि मतम्। यथा दक्षिणामूर्त्तिसंहितायां—

डरौक्ष्मामादनं चन्द्रं शिवमन्त्रं त्रिधा लिखेत्।

अर्केलाशक्रकलया क्रमात्तं मण्डितं कुरु।
बिन्दुनादान्वितञ्चाद्ययुग्ममन्त्यं विसर्गवत् ॥३७॥

तृतीय बीज सविसर्ग है। इसमें भी मतभिन्नता है; जैसे दक्षिणामूर्त्ति संहिता में कहा है कि ड्र् क्षा (ल) मादन (क) चन्द्र (स) शिव (ह) अर्थात् ड् र् ल् क् स् ह् को इस विद्या में तीन बार लिखे। इस त्रितय को अर्क (द्वादश स्वर से) इला (ई) शक्र (औ) तथा कल (बिन्दु-नाद) द्वारा इन तीन को क्रम-क्रम से युक्त करे। प्रथम दो बिन्दु-नाद से युक्त होगा, अन्त्य तीसरा विसर्ग से युक्त होगा।।३७।।

अर्को द्वादशस्वरः। ईला चतुर्थस्वर। शक्रश्चतुर्दशस्वरः। अर्केण माया-शक्राभ्यां क्रमात्तं मण्डितं कुरु। इत्यपि क्वचित् पाठस्तत्र माया चतुर्थ-स्वरः॥३८॥

अर्क = बारहवाँ स्वर। इला = ई। शक्र = ऐ। 'अर्केण मायाशक्राभ्यां' इत्यादि का अर्थ है कि अर्क (बारहवें स्वर) द्वारा माया को तथा शक्र द्वारा उसे क्रमशः मण्डित करे। ऐसा भी कहते हैं। इस पाठ से माया चतुर्थस्वर है।।३८।।

अस्या ध्यानम्—

बालसूर्यप्रभां देवीं जवाकुसुमसन्निभाम्।
मुण्डलामावलीरम्यां बालसूर्यसमांशुकाम् ॥३९॥
सुवर्णकलसाकारपीनोन्नतपयोधराम्।
पाशाङ्कुशौ पुस्तकञ्च तथा च जपमालिकाम् ॥४०॥

बाल सूर्यवत् प्रभायुक्त, जवापुष्प के समान रक्तवर्णा, मुण्डमालावली द्वारा मनोहरा, बाल सूर्यतुल्य रक्तवस्त्र-धारिणी, सुवर्ण कलश के आकार के पीन तथा उन्नत स्तनों वाली, पाश, अंकुश, पुस्तक तथा जपमाला-धारिणी देवी का चिन्तन करना चाहिये।।३९-४०।।

द्विरावृत्त्या षड़ङ्गानि विधाय परमेश्वरि।
यन्त्रमस्या वरारोहे त्रिकोणं तत्पुटं लिखेत् ॥४१॥
बहिरष्टदलं पद्मं रविपत्रं ततो लिखेत्।
चतुरस्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत् ॥४२॥

हे परमेश्वरि! बीजत्रय की दो बार आवृत्ति करके षड़ङ्ग न्यास करना चाहिये। जैसे—ॐ डरलकसहैं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ डरलकसहीं तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ डरलकसहौं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ डरलकसहौं करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। इसी प्रकार से ॐ डरलकसहैं हृदयाय नमः इत्यादि से अंगन्यास करना चाहिये। हे वरारोहे! इस

विद्या का यन्त्र इस प्रकार होता है—एक त्रिकोण, उसके बाहर षट्कोण, उसके बाहर १२ दलों का पद्म, उसके बाहर चतुर्द्वार तथा चतुष्कोण।।४१-४२।।

षड्ङ्गावरणं देवि पूर्ववत् पूजयेच्छिवे।
रत्यादित्रितयं देवि त्रिकोणे परिपूजयेत्॥४३॥

हे देवि! पूर्ववत् अङ्गावरण का पूजन करे। जैसे—ॐ डरलकसहैं हृदयाय नमः, ॐ डरलकसहैं शिरसे स्वाहा। ॐ डरलकसहौं शिखायै वषट्। ॐ डरलकसहैं कवचाय हुं। ॐ डरलकसहौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ डरलकसहौं अस्त्राय फट्। हे देवि! त्रिकोण में रति, प्रीति तथा मनोभवा का पूजन करे; यथा—ॐ रत्यै नमः, ॐ प्रीत्यै नमः, ॐ मनोभवायै नमः।।४३।।

डाकिन्याद्यास्तु षट्कोणे वसुपत्रे ततः परम्।
ब्राह्मयादियुगलं पश्चाद्रविपत्रे ततः परम्॥४४॥
बालायाः पीठशक्तिस्तु वामाद्याः पूजयेत्क्रमात्।
चतुरस्त्रे लोकपालान् सायुधान् परमेश्वरि॥४५॥
तत्पुटं त्रिकोणद्वयमध्यगतं षट्कोणान्तर्गतमिति यावत्॥४६॥

अब षट्कोण में ॐ डाकिन्यै नमः, ॐ राकिन्यै नमः, ॐ लाकिन्यै नमः, ॐ काकिन्यै नमः, ॐ साकिन्यै नमः, ॐ हाकिन्यै नमः से इनका पूजन करना चाहिये। अष्टदल में ब्राह्मी आदि युगल का पूजन करे। यथा—ॐ असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नमः, रुरुमाहेश्वरीभ्यां नमः, ॐ चण्डकौमारीभ्यां नमः, ॐ क्रोधभैरवीभ्यां नमः, ॐ उन्मत्त-वाराहीभ्यां नमः, ॐ कपालीन्द्राणीभ्यां नमः, ॐ भीषणचामुण्डाभ्यां नमः, ॐ संहार-महालक्ष्मीभ्यां नमः। तदनन्तर द्वादश दल में बाला की पीठशक्तियों का पूजन यथाक्रम से करना चाहिये। जैसे—ॐ वामायै नमः, ॐ ज्येष्ठायै नमः, ॐ रौद्रयै नमः, ॐ अम्बिकायै नमः, ॐ इच्छायै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ कुब्जिकायै नमः, ॐ विचित्रायै नमः, ॐ विषघ्निकायै नमः, ॐ भूचर्यै नमः, ॐ आनन्दायै नमः। हे परमेश्वरि! इसके पश्चात् चतुरस्र में वज्रादि अस्त्रों के साथ लोकपालों की पूजा करनी चाहिये। इस विधान से षट्कूटा भैरवी की पूजा करनी चाहिये।।४४-४६।।

अथ भोगमोक्षदा भैरवी

यथा ज्ञानार्णवे—

एतस्या एव विद्यायाः षड्वर्णान् क्रमशः स्थितान्।
विपरीतान् वद प्रौढे! विद्येयं भोगमोक्षदा।
न्यासपूजादिकं सर्वमस्याः पूर्ववदाचरेत्॥४७॥

अब ज्ञानार्णवोक्त भोगमोक्षदा भैरवी प्रकरण कहते हैं। हे प्रौढ़े! यह षट्कूटा भैरवी विद्या क्रम से अवस्थित वर्ण की विपरीत स्थिति से प्रकट है। यह भोगमोक्षप्रदा भैरवी है। इनका सब विधान पूर्वोक्त प्रकरण के अनुसार करना चाहिये।।४७।।

विपरीतान् इति षट्कूटाभैरव्या एव वर्णा विपरीता इत्यर्थः। तेनादौ हकारस्ततो दन्त्यसकारस्ततः ककारस्ततो लकारस्ततो रेफस्ततो डकारः इत्येवक्रम इत्यर्थः। इयमेव नित्या भैरवी उच्यते। तेन—हसकलरडैं हसकलरडीं हसकलरडौं इति सिद्धम्। इयं भोगमोक्षदा भैरवी।।४८।।

विपरीतान्—षट्कूटा भैरवी के वर्ण को विपरीत करे। इससे क्रमशः ह, स, क, ल, र, ड यह होता है। यही नित्या भैरवी भी कही गयी हैं। मन्त्रोद्धार होता है—हसकलरडैं हसकलरडीं हसकलरडौं।।४८।।

अथ रुद्रभैरवी

यथा ज्ञानार्णवे—

शिवचन्द्रौ मादनान्तं पान्तः वह्निसमन्वितम्।
शक्तिभिन्नं बिन्दुनादकलाढ्यं वाग्भवं प्रिये।।४९।।
सम्पत्प्रदाया भैरव्याः कामराजं तदेव हि।
सदाशिवस्य बीजन्तु महासिंहासनस्य च।
एषा विद्या महेशानि वर्णितुं नैव शक्यते।।५०।।

अब ज्ञानार्णवोक्त रुद्रभैरवी प्रकरण कहते हैं। ज्ञानार्णव में कहा है—हे प्रिये! शिव (ह्) और चन्द्र (स्) मादनान्त (ख्) वह्निसमन्वित, पान्त (फ) शक्ति (ए) सहित भिन्न (मिश्रित) तथा बिन्दु एवं नाद कलायुक्त, यह वाग्भव कूट है। सम्पत्प्रदा भैरवी का मध्यम कूट कामराज ही इसका मध्यम कूट है। महासिंहासन शिव का प्रेतबीज ही इस विद्या का तृतीय बीज है। हे महेशानि! मैं भी इस विद्या (की महिमा का) का वर्णन नहीं कर सकता।।४९-५०।।

शिवो हकारश्चन्द्रो दन्त्यसकारः मादनान्तं खकारः। पान्तं फकारः। वह्नि रेफः। शक्तिरेकादशस्वरः। इति वाग्भवकूटम्। सम्पत्प्रदाया मध्यमकूटमस्या मध्यमकूटमेव। आसनीभूतशिवस्य बीजं प्रेतबीजं तृतीयं शक्तिकूटमित्यर्थः। तेन ह स ख फ्रें हसकलरीं ह्सौः इति सिद्धम्। इयं रुद्रभैरवी।।५१।।

शिव = ह। चन्द्र = स। मादनान्त = क। पान्त = फ। वह्नि = र। शक्ति = एकादश स्वर अर्थात् ऐ। यह वाग्भव कूट है। सम्पत्प्रदा भैरवी का मध्यम कूट इस

विद्या का मध्यम कूट है। आसनीभूत प्रेत शिव का बीज अर्थात् प्रेतबीज इस विद्या का शक्तिकूट है। यह तात्पर्य है। यह विद्या ही रुद्र भैरवी है। मन्त्रोद्धार है—हसखफ्रें हसकलरीं ह्सौ:।।५१।।

अस्या पूजायन्त्रम्—

त्रिकोणञ्चैव वृत्तञ्च वृत्ताष्टदलपङ्कजम्।
वृत्तं भूमण्डलञ्चेति भैरव्या यन्त्रमुत्तमम्।।५२।।

इस विद्या का पूजा-यन्त्र कहते हैं—एक त्रिकोण, तत्पश्चात् वृत्त, पुन: एक वृत्त, तत्पश्चात् अष्टदल कमल। उसके बाहर वृत्त तथा भूमण्डल (चतुर्द्वारयुक्त चतुरस्र—भूपुर)। यह भैरवी का उत्तम यन्त्र है।।५२।।

अस्या: पूजा—प्रात:कृत्यादि प्राणायामान्तं विधाय चैतन्यभैरवीवत् पीठन्यासं कुर्यात्। अस्या: पीठमन्त्रस्तु—अघोरे ऐं घोरे घोरे ह्रीं सर्वत: सर्वसर्वेभ्यो घोरघोरतरे श्रीं नमोऽस्तु रुद्ररूपेभ्य: ऐं क्लीं सौं इति।।५३।।

इस विद्या की पूजा कहते हैं—प्रात:कृत्यादि से प्राणायाम-पर्यन्त विधान करके चैतन्यभैरवी की ही तरह पीठन्यास करे, जैसे—आधारशक्त्यादि से लेकर ह्रीं ज्ञानात्मने नम: पर्यन्त न्यासोपरान्त पूर्वादि दिशा से प्रारम्भ करके ॐ वामायै नम:, ॐ ज्येष्ठायै नम:, ॐ रौद्र्यै नम:, ॐ अम्बिकायै नम:, ॐ इच्छायै नम:, ॐ ज्ञानायै नम:, ॐ क्रियायै नम:, ॐ कुब्जिकायै नम:, ॐ चित्रायै नम:, ॐ विषघ्निकायै नम:, ॐ भूचर्यै नम:, ॐ आनन्दायै नम: मन्त्र से पीठशक्ति का न्यास करके मध्य में पीठमन्त्र का न्यास करे। इनका पीठमन्त्र है—ॐ अघोरे ऐं घोरे घोरे ह्रीं सर्वत: सर्वसर्वेभ्यो घोरघोरतेरभ्य: श्रीं नमोऽस्तु रुद्ररूपेभ्य: ऐं क्लीं सौं ह्रीं।।५३।।

विशेष—इस ग्रन्थ में लिखे पीठमन्त्र से तन्त्रसार में भिन्नता है। तन्त्रसार में मन्त्र है—अघोरे ऐं घोरे ह्रीं सर्वत: सर्वसर्वेभ्यो घोरघोरतरे श्रीं नमोऽस्तु रुद्ररूपेभ्य: ऐं ह्रीं श्रीं। इसलिये सम्प्रदाय के गुरु-निर्देशानुसार मन्त्रवरण करना चाहिये।

तत: ऋष्यादिन्यास:। शिरसि—दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नम:, मुखे—पंक्तिच्छन्दसे नम:। हृदि—रुद्रभैरव्यै देवतायै नम:। कूटत्रयेण द्विरावृत्त्या कराङ्गन्यासौ पूर्ववत् कृत्वा ध्यायेत्।।५४।।

तत्पश्चात् ऋष्यादि न्यास करे; जैसे मस्तक—ॐ दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नम:। मुख—ॐ पंक्तिच्छन्दसे नम:। हृदय—ॐ रुद्रभैरव्यै देवतायै नम:।

तदनन्तर इस प्रकार कराङ्गन्यास करना चाहिये—ॐ हसखफ्रें अङ्गुष्ठाभ्यां नम:,

ॐ हसकलरीं तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ हेसौ: मध्यमाभ्यां वषट्, ॐ हसखफ्रें अनामिकाभ्यां हूं, ॐ हसकलरीं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, ॐ ह्सौ: करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। इसी प्रकार हृदय में—ॐ हसखफ्रें हृदयाय नम:, ॐ हसकलरीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्सौ: शिखायै वषट्, ॐ हसखफ्रें कवचाय हूं, ॐ हसकलरीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ.ह्सौ: करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। इसी प्रकार से द्विरावृत्त कूटत्रय से पूर्ववत् कराङ्गन्यास करके ध्यान करे।।५४।।

उद्यद्भानुसहस्राभां चन्द्रचूडां त्रिलोचनाम्।
नानालङ्कारसुभगां सर्ववैरिनिकृन्तनीम्।।५५।।
वमद्रुधिरमुण्डालीकलितां रक्तवाससम्।
त्रिशूलं डमरुं खड्गं तथा खेटकमेव च।।५६।।
पिनाकञ्च शरान् देवीं पाशाङ्कुशयुगं क्रमात्।
पुस्तकञ्चाक्षमालाञ्च शिवसिंहासने स्थिताम्।।५७।।

उदीयमान सहस्र सूर्य के समान दीप्तियुता, चूड़ा में चन्द्रमा को धारण करने वाली, नानालङ्कार से प्रियदर्शिनी लगने वाली, सर्ववैरि-विनाशिनी, मुण्डमाला के मुण्डों से गिर रहे रक्त से विभूषिता, रक्त वस्त्र-धारिणी, क्रमश: त्रिशूल, डमरू, खड्ग, खेटक, धनु, शर, पाश, अंकुश, पुस्तक मुद्रा तथा अक्षमाला-धारिणी शिवसिंहासन-स्थिता देवी का ध्यान करता हूँ।।५५-५७।।

इयं दशभुजा। एवं ध्यात्वा मानसैरभ्यर्च्यार्घ्यं संस्थाप्य चैतन्यभैरव्युक्त-पीठपूजां विधाय एतन्मन्त्रोक्तपीठमन्त्रेण पीठं सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वावाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानान्तं विधायावरणाणि पूजयेत्।।५८।।

ये दशभुजा हैं। इस प्रकार से ध्यान करके मानसोपचार पूजन करके विशेषार्घ्य स्थापन करके चैतन्यभैरवी प्रकरणोक्त आधारशक्ति प्रभृति का पूजन करके वामादि पीठशक्ति की इस मन्त्रोक्त पीठमन्त्र से पूजा करके त्रिपुरभैरवी प्रकरणोक्त गुरुपंक्ति की पूजा करके पुन: ध्यान करके आवाहनादि से पञ्चपुष्पाञ्जलि दान-पर्यन्त कार्य करके आवरणसमूह का पूजन करना चाहिये।।५८।।

चैतन्यभैरवीवदग्निकोणादौ षड़ङ्गेनाभ्यर्च्य त्रिकोणे रत्यादिकं पत्र-मूलेऽनङ्गादिका: पूर्वादिपत्रेषु चासिताङ्गब्राह्म्यादीन् भूगृहे इन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्या: पुरश्चरणं लक्षजप:।।५९।।

तदनन्तर इस प्रकार आवरण-पूजा करे—अग्निकोण—ॐ हसखफ्रें हृदयाय नम:। ईशान कोण—ॐ हसकलरीं शिरसे स्वाहा। नैर्ऋत्य कोण—ॐ ह्सौ:

शिखायै वषट्। वायुकोण—ॐहसखफ्रें कवचाय हूं। मध्य—ॐ हसकलरीं नेत्रत्रयाय वौषट्। चारो ओर—ॐ ह्सौः अस्त्राय फट्। इस प्रकार षडङ्ग-पूजन करके देवी के वामकोण में—ॐ रत्यै नमः। दक्षिणकोण में—ॐ प्रीत्यै नमः। अग्निकोण में—ॐ मनोभवायै नमः। दलमूल में पूर्व दिशाक्रम से—ॐ अनङ्गकुसुमायै नमः, ॐ अनङ्गमेखलायै नमः, ॐ अनङ्गमदनायै नमः, ॐ अनङ्गमदनातुरायै नमः, ॐ अनङ्गमदनवेगायै नमः, ॐ अनङ्गसम्भवायै नमः, ॐ अनङ्गभुवनपालिन्यै नमः, ॐ अनङ्गशशिरेखायै नमः मन्त्र से इनकी पूजा करनी चाहिये। अब पूर्वादि (पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके) पत्रसमूह में ॐ असिताङ्गब्राह्मीभ्यां नमः, ॐ रुरुमाहेश्वरीभ्यां नमः, ॐ चण्डकौमारीभ्यां नमः, ॐ क्रोधवैष्णवीभ्यां नमः, ॐ कपालीन्द्राणीभ्यां नमः, ॐ उन्मत्तवाराहीभ्यां नमः, ॐ भीषणचामुण्डाभ्यां नमः, ॐ संहारमहालक्ष्मीभ्यां नमः मन्त्र से इनकी पूजा करके भूपुर में इन्द्रादि लोकपाल तथा वज्रादि अस्त्रसमूह का पूजन करके धूपदान से विसर्जनपर्यन्त कर्म समाप्त करे। इसका पुरश्चरण एक लाख जप से होता है।।५९।।

अथ भुवनेश्वरी भैरवी

यथा ज्ञानार्णवे—

हसाद्यं वाग्भवश्चाद्यं हसकान्ते सुरेश्वरि।
भूबीजं भुवनेशानी द्वितीयं बीजमुद्धृतम्।
शिवचन्द्रौ महेशानि! भुवनेशी च भैरवी ॥६०॥

ज्ञानार्णव के आधार पर भुवनेश्वरी भैरवी प्रकरण कहा जाता है। 'हस' को आदि में रखकर वाग्भवबीज (ऐं) लगाये। यह प्रथम बीज है। हे सुरेश्वरि! 'हसक' के अन्त में भूबीज (लं) तथा भुवनेशानी (ह्रीं)—यह द्वितीय बीज है। शिव (ह) चन्द्र (स) तथा औः—यह तृतीय बीज है। हे महेशानि! यही भुवनेशी भैरवी है।।६०।।

त्रिपुरार्णवेऽपि—

हंसास्त्रयो दन्त्यसकाररूढाख्याब्धि पंक्तिस्वरस्वंविभिन्नाः।
आदौ सविन्दुः परतो विसर्गी मध्ये विरिञ्चीन्द्रहराग्नियुक्तः ॥६१॥

त्रिपुरार्णव ग्रन्थ में कहा गया है कि तीन हंस (ह), दन्त्य सकार पर आरूढ़ रविस्वर (द्वादश स्वर ऐ), अब्धिस्वर (अर्थ स्वर ई) तथा पङ्क्तिस्वर (औ) सहित मिलित, प्रथम दो स्वर बिन्दुयुक्त, तृतीय विसर्गयुक्त, मध्य 'हस' विरिञ्चि (क) इन्द्र (ल) हरशिव (ह) तथा अग्नि (र) युक्त से भुवनेशी भैरवी का मन्त्र बनता है।।६१।।

तथा च हकारसकारद्वादशस्वरबिन्दुभिः प्रथमं वाग्भवकूटम्। हकारदन्त्य-

सकारककारलकारमायाबीजैर्द्वितीयं कामराजकूटम्। हकारदन्त्यसकार-चतुर्दशस्वरविसर्गघटितं प्रेतबीजं तृतीयं शक्तिकूटम्। तेन हसैं, हसकलह्रीं, ह्सौः इति सिद्धम्। इयं भुवनेश्वरीभैरवीवत्।।६२।।

पूजा तु चैतन्यभैरव्युक्तदिशा ऋष्यादिन्यासान्तं कृत्वा कराङ्गन्यासौ कुर्यात् हसकलह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादिक्रमेण, षड्दीर्घभाजा मध्येन कुर्यादङ्गक्रियां मनोरिति वचनात्।।६३।।

इस प्रकार ह, स, ऐ तथा बिन्दु से प्रथम वाग्भव कूट; ह, स, क, ल, ह्रीं से द्वितीय कामराजकूट एवं ह, स, औ तथा विसर्गयुक्त प्रेतबीज से तृतीय शक्तिकूट निष्पन्न होता है। अत: मन्त्रोद्धार होता है—ह्सैं, हसकलह्रीं, ह्सौः। इसमें तीनों कूट हैं। इनका पूजायन्त्र चैतन्य भैरवी के समान होता है।।६२-६३।।

जवाकुसुमसङ्काशां दाड़िमीकुसुमोपमाम्।
चन्द्ररेखाजटाजूटां त्रिनेत्रां रक्तवाससाम्।
नानालङ्कारसुभगां पीनोन्नतघनस्तनीम्।
पाशाङ्कुशवराभीतिर्धारयन्तीं शिवां श्रये।।६४।।

अन्यत्सर्वं चैतन्यभैरवीवत् कार्यम्।

जवाकुसुम तथा अनार के पुष्प के समान रक्तवर्णा, चन्द्रलेखायुक्त जटाजूट-धारिणी, त्रिनेत्रा, रक्त वस्त्र-धारिणी, नाना अलङ्कार से प्रियदर्शिनी, पीन उन्नत घनस्तनी, पाश, अंकुश, वर तथा अभयमुद्रा-धारिणी शिवा का मैं आश्रय लेता हूँ। इसका अन्य सब विधान चैतन्य भैरवी के समान करना चाहिये।।६४।।

भुवनेश्वरी भैरव्या भेदान्तरमथोच्यते।
सहाद्या सैव देवेशि तदा सा सकलेश्वरी।
ध्यानपूजादिकं सर्वमेतस्या एव पार्वति।।६५।।

एतस्या एव भुवनेश्वरीभैरव्या एव। इयं सहाद्या चेत् सकलेश्वरी भैरवी भवति।।६६।।

भुवनेश्वरी भैरवी का अन्य प्रकार बताते हुये कहा गया है कि हे देवेशि! भुवनेश्वरी भैरवी का बीज जब सहादि अर्थात् (जिसमें प्रारम्भ में स हो) सकलह्रीं तथा सहौं: हो तब वे सकलेश्वरी भैरवी विद्या हैं। हे पार्वति! इनका ध्यान-पूजनादि सभी भुवनेशी भैरवी की पूजा के समान ही करना चाहिये, जिसे पहले कहा गया है।।६५-६६।।

अथ त्रिपुरा बाला

अधरो विन्दुमानाद्यं ब्रह्मेन्द्रस्थः शशीयुतः।

द्वितीयं भृगुसर्गाढ्यो मनुस्तार्तीयमीरितम्।
एषा बालेति विख्याता त्रैलोक्यवशकारिणी ॥६७॥

तथा च वाग्भवं कामबीजं सौरिति बीजत्रयम्। तेन ऐं क्लीं सौः इति सिद्धम्। इयं त्रिपुरा बाला॥६८॥

अव त्रिपुरा बाला कहते हैं। शारदातिलक के अनुसार बिन्दुयुक्त अधर (ऐं) आद्यवीज है। इन्द्रस्थ) (लकारस्थ) व्रह्मा (क) शशि (बिन्दु) तथा ई युक्त होने पर क्लीं द्वितीय बीज है। मनु (औ) भृगु (स) सर्ग (:) द्वारा अग्रपश्चात् भाव युक्त होने पर तृतीय वीज कहा जाता है। ये बाला नाम से ख्यात हैं। ये त्रैलोक्य वश करने वाली हैं। इस प्रकार वाग्भव बीज (ऐं) कामबीज (क्लीं) सौः—यह बीजत्रय यहाँ है। मन्त्रोद्धार होता हैं—ऐं क्लीं सौः। ये ही त्रिपुराबाला हैं।।६७-६८।।

अस्याः पूजादिकन्तु त्रिपुरभैरवीवत्। ज्ञानार्णवे तु विशेषः—न्यासादिकमेतद्बीजेनैव कुर्यात्। कराङ्गन्यासौ तु द्विरुक्त्येति। अस्याः पुरश्चरणं त्रिलक्षजपः॥६९॥

इनका पूजनादि सब त्रिपुरभैरवी के समान है। किन्तु ज्ञानार्णव में विशेषतः कहा गया है कि नवयोन्यादिन्यास इसी बीजमन्त्र से करना होगा। इस मन्त्र की दो आवृत्ति से कराङ्गन्यास होगा। इस विद्या का पुरश्चरण तीन लाख जप से होता है।।६९।।

इतरेषान्तु लक्षजपः, श्रीविद्यायां लक्षजपस्योक्तव्यात् ।।७०।।

अन्य विद्याओं का पुरश्चरण एक लाख जप से होता है। इसीलिये श्रीविद्या में एक लाख जप का विधान कहा गया है।।७०।।

अथ मन्त्रान्तरं ज्ञानार्णवे—

सूर्यस्वरं महेशानि बिन्दुनादकलान्वितम्।
स्वरान्तं पृथिवीसंस्थं तुर्यस्वरसमन्वितम् ॥७१॥
बिन्दुनादकलाक्रान्तं सर्गवान् भृगुरव्ययः।
शक्रस्वरसमायुक्तो विद्येयं त्र्यक्षरी मता ॥७२॥

अन्य मन्त्र ज्ञानार्णव में इस प्रकार कहा है—हे महेशानि बिन्दु-नादयुक्त सूर्यस्वर (द्वादश स्वर ऐं) यह प्रथम बीज है। स्वर के अन्त में (क) पृथिवी (ल) युक्त होकर चतुर्थ स्वर (ई) तथा बिन्दु नाद द्वारा अन्वित होने पर द्वितीय बीज है। विसर्गयुक्त भृगु बिन्दुयुक्त होकर शक्र (चतुर्दश) स्वर के साथ मिलित होकर तृतीय बीज है। इसीलिये इसे त्र्यक्षर विद्या कहा जाता है।।७१-७२।।

अस्यार्थः—सूर्यस्वर ऐकारः। स्वरान्तं ककारः। पृथिवी लकारः। भृगुर्दन्त्यसकारः। अव्ययो बिन्दुः। दक्षिणामूर्त्तिसंहितायामप्येवम्। तेन वाग्भवमात्रं प्रथमबीजम् कामबीजमात्रं द्वितीयम्। दन्त्यसकारचतुर्दश-स्वरविसर्गबिन्दुस्तृतीयम्। शारदोक्तमन्त्रो बिन्दुरहितः अयन्तु बिन्दुसहित इति भेदः। एषा विसर्गविन्द्वन्ता विद्या शप्ता, एतां विद्यामुद्धृत्य सार-समुच्चयादौ तत्र शापबोधनात्।।७३।।

सूर्य स्वर = ऐ। स्वरान्त = क। पृथ्वी = ल। भृगु = स। अव्यय = बिन्दु। दक्षिणामूर्त्ति संहिता में इसी प्रकार से कहा गया है। इस प्रकार वाग्भवबीज ऐं प्रथम बीज है। कामबीज क्लीं द्वितीय बीज है। दन्त्य सकार अर्थात् 'स' चतुर्दश स्वर औ, विसर्ग बिन्दु से तृतीय बीज है। शारदातिलक में कथित मन्त्र में बिन्दु नहीं कहा गया है, जबकि दक्षिणामूर्ति संहिता का मन्त्र बिन्दुयुक्त है। यही दोनों में भेद है। यह विद्या अभिशप्ता है। सारसमुच्चय ग्रन्थ में इस विद्या का उद्धार करते समय शाप प्रतिपादित किया गया है।।७३।।

यथा—

विद्यामूलोत्पत्तिरेषा मयोक्ता ज्ञातव्येयं सर्वदा सिद्धिकामैः।
देव्या शप्ता येन विद्येयमाद्या पूर्वं तेन प्राणहीना भवेत्सा ।।७४।।

सारसमुच्चय ग्रन्थ के अनुसार कहते हैं कि विद्यामूल की उत्पत्ति कहता हूँ। समस्त सिद्धिकामी के लिये इसे जानना आवश्यक है। देवी के शाप से जब यह आद्या अभिशप्ता हो गयी, तब से यह प्राणहीना है।।७४।।

मुण्डमालातन्त्रेऽपि—

कुमारी या च विद्येयं त्वया शप्ता पतिव्रते ।।७५।।

मुण्डमाला तन्त्र में भी कहा है कि हे पतिव्रते, यह कुमारी विद्या तुम्हारे दिये शाप से अभिशप्त हो गई है।।७५।।

उत्तरषट्केऽपि—

आदिमेन तु सा लुप्ता मध्यमेन तु कीलिता।
अन्तिमेन तु सम्भिन्ना तेन विद्या न सिद्ध्यति ।।७६।।

उत्तरषट्क ग्रन्थ में कहते हैं कि जिस कारण यह विद्या अभिशप्ता है, उसी से यह विद्या प्रथम बीज द्वारा लुप्त है, द्वितीय बीज द्वारा कीलित है एवं अन्तिम बीज (तृतीय बीज) द्वारा संभिन्न (मिश्रित एकीभूत) है। इसीलिये यह सिद्ध नहीं होती।।७६।।

शापोद्धारस्तु मुण्डमालातन्त्रे—

केवलं शिवरूपेण शक्तिरूपेण केवलम्।
मया प्रतिष्ठिता विद्या ताराचन्द्रस्वरूपिणी ।।७७।।

मुण्डमालातन्त्रानुसार ईश्वर कहते हैं—हे पतिव्रते! केवल शिवरूप से (ह रूप से) तथा केवल शक्तिरूप (स) से मैं इस तारा मध्यवर्ती चन्द्रतुल्या बाला विद्या की प्रतिष्ठा करता हूँ।।७७।।

अस्यार्थः—शिवो हकारः। शक्तिर्दन्त्यसकारः। तथाच हकारदन्त्यसकारौ वाग्भवबीजे कामबीजे च दद्यात्। तेन मध्यकूटे रेफो नास्तीति तत्त्वम्। तृतीय बीजे तु हकारमात्रं दन्त्यसकारस्य स्वभावसिद्धत्वात्। अन्यत्र तथा दर्शनाच्च।।७८।।

अर्थात् शिव = ह। शक्तिः = स। इस प्रकार हकार तथा दन्त्य सकार को वाग्भव तथा कामबीज में दिया जाय। इससे ज्ञात हुआ कि मध्यम कूट में रेफ नहीं है। यही तत्त्व है। तृतीय बीज में 'ह' मात्र दिया जाय। उसमें 'स' स्वभावसिद्ध है। अन्यत्र भी ऐसा ही देखा जाता है।।७८।।

रुद्रयामलेऽपि—

वाग्भवं प्रथमं देवि कामबीजं द्वितीयकम्।
तृतीयं शक्तिबीजन्तु शिवयुक्तं यदा भवेत्।
एषा बाला समाख्याता सर्वदोषविवर्जिता ।।७९।।

रुद्रयामल में भी कहा है कि हे देवि! प्रथम वाग्भवबीज (ऐं), द्वितीय कामबीज (क्लीं) तथा सौः—यह तीन वीज वाला भैरवी के हैं।

इनकी पूजा आदि भैरवी के समान (लिखे अनुसार) होती है। ज्ञानार्णव में द्विरावृत्त के समान न्यास कहा गया है, जबकि रुद्रयामल में बीज द्वारा न्यास कहते हैं। रुद्रयामल ने इसे सर्वदोष-विवर्जित कहा है।।७९।।

इदमपि शापोद्धारप्रकारान्तरम्। तथा च वाग्भवं कामबीजं सौरिति बीजत्रयं बालाभैरवी भवतीति। अस्याः पूजादिकन्तु त्रिपुरभैरवीवत्। ज्ञानार्णवे तु विशेषः—न्यासादिकमेतद्बीजत्रयेणैव कुर्यात्। कराङ्गन्यासौ तु द्विरुक्त्येति। अस्याः पुरश्चरणं त्रिलक्षजपः।।८०।।

यह भी शापोद्धार का प्रकारान्तर है। इससे वाग्भव, कामबीज तथा सौंः—ये तीनों बीज बाला भैरवी के हैं। इस विद्या की पूजा आदि भैरवी के समान ही होती है।

ज्ञानार्णव में द्विरावृत्त मन्त्र से कराङ्गन्यास कहा गया है। इसका पुरश्चरण तीन लाख जप से सम्पन्न होता है।।८०।।

तथा च ज्ञानार्णवे—

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं दशांशं हवनञ्चरेत्।
तर्पणञ्च तथा कुर्यात्सर्वसौभाग्यभाग्भवेत्।।८१।।

इतरेषान्तु लक्षजपः। श्रीविद्यायां लक्षजपस्योक्तत्वात्।

ज्ञानार्णव में कहा है कि इस मन्त्र का तीन लाख जप करे। जप के दशमांश का हवन और उसी प्रकार से तर्पण करना चाहिये। इससे सर्वसौभाग्य प्राप्त होता है। अन्य विद्वान् एक लाख जप कहते हैं। श्रीविद्या में भी ऐसा ही कहा गया है। (गुरु परम्परा से जप संख्या का निर्णय करे)।।८१।।

मन्त्रान्तरं श्रीक्रमे—

वाग्भवं क्लेदिनीबीजमीकारान्तं ततः पठेत्।
नादबिन्दुसमाक्रान्तं बीजं परमदुर्लभम्।।८२।।

अव श्रीक्रम शास्त्र में कहा गया मन्त्रान्तर बतलाते हैं—वाग्भव (ऐं) तदनन्तर क्लेदिनी बीज (क्लीं) को नादयुक्त तथा बिन्दुयुक्त करना चाहिये। यह अत्यन्त दुर्लभ बीज कहा गया है।।८२।।

शक्तिमौकारसंयुक्तां विसर्गं तदधः पठेत्।
एतद्बीजत्रयं देवि सौः क्लीञ्च तदनन्तरम्।
इयं पञ्चाक्षरी विद्या कथिता भुवि दुर्लभा।।८३।।

शक्ति (स) को औकार से संयुक्त करके उस पर विसर्ग का पाठ करे (विसर्ग लगाये)। हे देवि! ऐं क्लीं सौः यह बीजत्रय तथा उसके पश्चात् सौः क्लीं यह पञ्चाक्षरी मुनियों को भी दुर्लभ विद्या है। मन्त्रोद्धार है—ऐं क्लीं सौः सौः क्लीं।।८३।।

क्लेदिनीबीजं लकारवान् ककारः। शक्तिर्दन्त्यसकारः। तेन वाग्भवं कामबीजं सौरिति त्रयम्। ततः पुनः सौस्ततः कामबीजमिति पञ्चाक्षरी।।८४।।

क्लेदिनी बीज अर्थात् लकारयुक्त ककार = क्ल। शक्ति दन्त सकार। उसमें वाग्बीज ऐं, कामबीज क्लीं तथा सौः—यह तीन। तदनन्तर पुनः सौः, तदनन्तर पुनः कामबीज क्लीं—यही पञ्चाक्षरी विद्या है।।८४।।

तत्रैव—

बालाबीजत्रयं देवि हंसाद्यं वा जपेत्सुधी:।
हंसान्तं वा महाभागे शप्तादिदोषशान्तये ॥८५॥

वहीं यह भी कहते है कि हे महेशानि! अथवा सुधी साधक अभिशापादि दोष-नाशार्थ बाला का तीन बीज हंसाद्य करके अर्थात् आदि में हंस: कहकर आगे बाला का तीन बीज लगाये। अथवा बाला के तीनों बीज के अन्त में हंस: लगाकर जप करना चाहिये।।८५।।

तथा तत्रैव—

पाशबीजं महेशानि शक्तिशैवं सवह्निकम्।
द्वादशस्वरसंयुक्तं नादबिन्दुसमन्वितम् ॥८६॥
कामराजं प्रवक्ष्यामि ह्रींङ्कारं शक्तिशैवकम्।
मादनञ्चेन्द्रबीजञ्च वह्निवामाक्षिबिन्दुमत् ॥८७॥

वहीं यह भी कहा गया है कि हे महेशानि! पाशबीज (आं) शक्ति (स) सवह्नि (र के साथ) शैव (ह), यह द्वादशस्वर युक्त तथा नादबिन्दु-समन्वित होगा। यह वाग्भव कूट है। मन्त्रोद्धार है—आं स्ह्रैं।

अव कामराजकूट कहते हैं। ह्रीं शक्तिशैव (स्ह्) मादन (क) इन्द्रवीज (ल) वामाक्षि (ई) बिन्दुमत (ं)। मन्त्रोद्धार है—'ह्रीं स्ह्क्ल्रीं' यह कामराजकूट है।।८६-८७।।

शक्तिकूटं महादेवि क्रोङ्कारं शक्तिशैवकम्।
वह्निबीजं मनोर्युक्तं नादबिन्दुससर्गकम् ॥८८॥

हे महादेवि! अब शक्तिकूट कहा जाता है। क्रों, शक्ति शैव (स् ह्), वह्निबीज (र) तथा मनु (औ) युक्त नादबिन्दु तथा विसर्ग-समन्वित। मन्त्रोद्धार है—'क्रों स्ह्रौं:'। यह शक्तिकूट है।।८८।।

चतुर्दशाक्षरी विद्या षोडशीं शृणु चाम्बिके।
हंसबीजं तत: पश्चात् षोडशी कथिता मया ॥८९॥

हे अम्बिके! यह १४ अक्षरों की विद्या है (वाग्भव कूट कामराज कूट तथा शक्तिकूट अर्थात् 'आं स्ह्रैं, ह्रीं स्ह्क्ल्रीं क्रों स्ह्रौं:)। यदि इस चतुर्दश अक्षरों वाली विद्या के अन्त में 'हंस:' लगा दिया जाय तब यह १६ अक्षरों वाली हो जाती है।।८९।।

अस्या: पुरश्चरणं त्रिलक्षजप:। एतस्या अन्ते हंस इत्यक्षरद्वयञ्चेत् षोडशी भवति॥९०॥

इसका पुरश्चरण तीन लाख जप से होता है। इस विद्या के अन्त में 'हंसः' लगाने से यही सोलह अक्षरों वाली हो जाती है।।९०।।

अथ नवाक्षरी

यथा श्रीक्रमे—

शिवः शक्तिश्च वाग्बीजं बिन्दुनादकलान्वितम् ।
वाग्भवं कथितं देवि कामराजं शृणु प्रिये ।।१।।
शिवशक्तिमादनेन्द्रवह्निमायासमन्वितम् ।
नादबिन्दुकलाक्रान्तं कूटं परमदुर्लभम् ।।२।।
शिवश्चन्द्रश्च सत्यान्तं सर्गबिन्दुकलान्वितः ।
एषा नवाक्षरी बाला सर्वदोषविवर्जिता ।।३।।

अब नवाक्षरी कहते हैं, जैसा कि श्रीक्रम में कहा है। हे देवि! शिव (ह) शक्ति (स) वाग्बीज (ऐं) बिन्दुनादकलान्वित होने पर वागभव कूट कहा जाता है। अब कामराजकूट सुनो। शिव (ह्) शक्ति (स्) मादन (क्) इन्द्र (ल्) वह्नि (र्) माया (ई) समन्वित नादबिन्दु कलायुक्त कामराजकूट अति दुर्लभ है। शिव (ह) सन्त्यन्त औकारान्त चन्द्र (स) तथा बिन्दुकला (ँ) द्वारा युक्त होने पर शक्तिकूट होता है। यह नवाक्षरी बाला सभी दोषों से रहित है।।१-३।।

वाग्बीजमत्र केवलमैकारस्तथा च हकारसकारवाग्भवैः प्रथमं वाग्भवकूटम्। हकारदन्त्यसकारककारलकाररेफतुर्यस्वरबिन्दुभिर्द्वितीयं कामराजकूटम्। हकारदन्त्यसकारचतुर्दशस्वरबिन्दुविसर्गैस्तृतीयं शक्तिकूटम्। तेन हसैं हसकलरीं हसौः इति सिद्धम्। अयं मन्त्रो दन्त्यसकारादिश्च भवति।।४।।

यहाँ वाग्बीज केवल ऐकार है। इससे ह, स, वाग्भव द्वारा प्रथम वाग्भवकूट होता है। ह, स, क, ल, र, चतुर्थ स्वर एवं बिन्दु से द्वितीय कामराज कूट होता है। ह, स, औ, बिन्दु (ं) तथा विसर्ग से तृतीय शक्तिकूट होता है। अतः मन्त्रोद्धार होता है—ह्सैं, ह्स्क्ल्रीं, ह्सौः। यह मन्त्र पूर्व में 'स' लगाने से भी होता है अर्थात् स्हैं, स्हक्ल्रीं स्हौः।।४।।

तथा च त्रिपुरासारसमुच्चये—

भैरवीयमुदिताऽकुलपूर्वा देशिकैर्यदि भवेत् कुलपूर्वा ।
सैव शीघ्रफलदा भुवि विद्येत्युच्यते पशुजनेष्वतिगोप्या ।।५।।

त्रिपुरासारसमुच्चय में कहा है कि देशिक गणों ने इस विद्या को अकुल (ह) पूर्वा कहा है (अर्थात् मन्त्र के आदि में 'ह')। यदि वह कुल (स) पूर्वा है तब ऐसी कुलपूर्वा विद्या भूमण्डल में त्वरित फल देती है। पशुभावापन्न साधकों से इसे गोप्य रखना चाहिये।।५।।

अस्यार्थः—अकुलं हकारः, कुलं दन्त्यसकारस्तथा च हकारत्रयपरस्थितं दन्त्यसकारत्रयं हकारत्रयादौ योज्यमिति। इयं शक्तिबाला भैरवी॥६॥

अकुल = ह। कुल = स। तीन हकार के आगे स्थित तीन दन्त्य सकार को तीन हकार के आदि में योग करे। ऐसा करने से यह शक्तिबाला भैरवी विद्या हो जाती है।।६।।

अथ मन्त्रान्तरं त्रिपुरासारे—

शिवाष्टमं केवलमादिबीजं भगस्य पूर्वाष्टमबीजमन्यत्।
परं शिरोऽन्तं गदिता त्रिवर्णा सङ्केतविद्या गुरुवक्त्रगम्या ॥७॥

त्रिपुरासार ग्रन्थ में मन्त्रान्तर इस प्रकार कहा गया है—शिव (उ) से अष्टम ऐ तथा केवल (÷) होने पर होता है प्रथम बीज। भग के ऐ से पूर्व आठवाँ 'ई' अर्थात् 'ऐ' बारहवाँ स्वर है, उससे आठ पहले अर्थात् चतुर्थ स्वर (ई) केवल (÷) युक्त होने पर तृतीय बीज होता है। यह संकेत विद्या गुरुगम्य है।।७।।

अस्यार्थः—शिव उकारस्तस्याष्टमं ऐकारः स्वरूपम्। भगमैकारस्तस्य पूर्वाष्टमबीजं चतुर्थस्वरः। शिरोऽनुस्वारः। स एवास्तु यस्य तादृशमौकार-रूपम्। परं शेषबीजम्। तत्त्रयं कीदृशः? केवलं। के मस्तके बलते केवलो बिन्दुस्तद्वत् अर्श आदित्वात्। तथा च ऐं ईं औं इति त्रिवर्णा बाला उद्धृता। अतएव ऐं ईं औं मे मध्यदेशं बीजविद्या सदाऽवत्विति तत्कवचेऽपि प्रतिपादितम्। केचित्तु केवलं शुद्धं वर्णत्रयं ऐ ई औ इति मन्त्रमाहुः॥८॥

आशय यह है कि शिव—उ। उससे अष्टम स्वर 'ऐ'। वह यथावत् रहेगा। भग—ऐ, इससे आठ स्वर पूर्व है 'ई'। शिर—अनुस्वार। वह अनुस्वार जिस वर्ण के अन्त में है, वह है—शिरो ऽन्त वर्ण। वह औकार रूप है। पर = शेष बीज। वह तीन वर्ण किस रूप है? केवल। केवल का अर्थ है कि के अर्थात् जो मस्तक—जो आस्तरण करे, वह है केवल। वह है बिन्दु। तद्वत् = बिन्दुमत्। अर्श आदित्व हेतु अ प्रत्यय। अतएव त्रिवर्ण उद्धृत होता है—ऐं ईं औं। इसीलिये ऐं ईं औं—यह बीज विद्या सदा मेरे मध्य देश की रक्षा करे, यह कवच स्तोत्र में भी प्रतिपादित किया गया है। कोई विद्वान् केवल शुद्ध ऐ ई औ वर्णत्रय को ही मन्त्र कहते हैं।।८।।

मन्त्रान्तरं श्रीक्रमे—

शक्तिः शिरो वह्निबीजं द्वादशस्वरबिन्दुकम्।
शक्तिर्महेशः कामश्च इन्द्रो वह्नीन्दुमायया ॥९॥
शक्तिः शिवश्च वह्निश्च मनुस्वरविसर्गकः।
नादबिन्दुकलाक्रान्तं बीजमेतत्प्रकीर्त्तितम् ॥१०॥

मन्त्रान्तर का वर्णन श्रीक्रम में कहते हैं। शक्ति (स) शिव (ह) वह्निबीज (र) बारहवाँ स्वर (ऐ) तथा बिन्दु। मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—स्ह्रैं। शक्ति (स) शिव (ह) काम (क) इन्द्र (ल) वह्नि (र) इन्दु (ं) तथा माया द्वारा द्वितीय कूट होता है। शक्ति, शिव, मनुस्वर (औ) विसर्ग-विशिष्ट वह्नि, नाद-बिन्दु-कलायुक्त होकर तृतीय बीज कहा गया है।।९-१०।।

अस्यार्थः—दन्त्यसकारहकाररेफवाग्भवैः प्रथमम्। दन्त्यसकारहकार-ककारलकाररेफचतुर्थस्वरबिन्दुभिर्द्वितीयम्। दन्त्यसकारहकाररेफ-चतुर्दशस्वरविसर्गबिन्दुभिस्तृतीयकूटम्। तेन सहरैं सहकलरीं सहरौं इति सिद्धम्॥११॥

अर्थात् दन्त्य सकार, हकार, रेफ, वाग्भव तथा बिन्दु से प्रथम कूट; दन्त्य सकार, हकार, ककार, लकार, रकार, चतुर्थ स्वर तथा बिन्दु से द्वितीय कूट एवं दन्त्य सकार, हकार, चतुर्दश स्वर औ, विसर्ग तथा बिन्दु द्वारा तृतीय कूट होता है। मन्त्रोद्धार होता है—स्ह्रैं, ह्स्क्ल्रीं तथा स्ह्रौंः।।११।।

अथ नवकूटा बाला

तत्रैव—

बालाबीजत्रयं देवि कूटत्रयनवाक्षरम्।
वियत्कूटत्रयं देवि भैरव्या नवकूटकम् ॥१२॥

अब नवकूट बाला कहा जाता है। वहाँ कहते हैं—हे देवि! बाला का कूटत्रय है—ऐं क्लीं सौः, ह्सैं, ह्स्क्ल्रीं ह्सौः। यह नवाक्षर कूटत्रय है। हे देवि! ह्स्रैं ह्स्क्ल्रीं, ह्स्रौंः—यह वियत् कूटत्रय भैरवी का नवकूट है।।१२।।

बालाबीजत्रयं अधरो बिन्दुमानाद्यमित्यादिनोक्तम्। नवाक्षरमिति शिवः शक्तिश्च वाग्बीजमित्यादिनोक्तम्। वियत्कूटत्रयं वियत्प्रदघटितोद्धारक-प्रथमोक्तत्रिपुरभैरवीकूटत्रयम्। एतानि मिलित्वा भैरव्या बालाया नव-कूटकः भवतीत्यर्थः॥१३॥

बाला बीजत्रय 'अधरो बिन्दुमान्' इत्यादि वाक्य द्वारा कहा गया है। नवाक्षर कूटत्रय 'शिवः शक्तिश्च वाग्बीजं' इत्यादि वाक्य द्वारा प्रतिपादित किया गया है। वियत् कूटत्रय वियत् पद घटित मन्त्रोद्धारकारक प्रथमोक्त त्रिपुराभैरवी का कूटत्रय है। इन सबको मिलाकर बाला का नवकूट होता है।।१३।।

अस्याः पुरश्चरणं त्रिलक्षजपः। एतासां त्रिपुराबालानां पूजायन्त्रं ध्यान-पूजादिकञ्च त्रिपुरभैरवीवत्। पुरश्चरणन्तु लक्षजपः, श्रीक्रमोक्तत्वात्॥१४॥

इस विद्या का पुरश्चरण तीन लाख जप से होता है। इनका पूजायन्त्र, ध्यान-पूजादि सभी त्रिपुरभैरवी प्रकरणानुसार करना चाहिये। किन्तु श्रीक्रम शास्त्र में मात्र एक लाख जप से पुरश्चरण करने का विधान है (अतः गुरुपरम्परा से जपसंख्या निश्चित करनी चाहिये)।।१४।।

दीपनी विद्या

एतासां त्रिपुराबालानां दीपनीविद्या श्रीक्रमे—

वदयुग्मं महेशानि वाग्वादिनि ततः परम्।
एषा त्वष्टाक्षरी विद्या वाग्भवाद्ये नियोजयेत्॥१५॥

एतामिति शेषः।

श्रीक्रमशास्त्र में त्रिपुरा बाला-समूह की दीपनी विद्या कहते हैं—हे महेशानि! पहले युग्म वद कहे (वद वद), तत्पश्चात् वाग्वादिनि लगाने से यह अष्टाक्षरी विद्या होती है। इसे वाग्भवकूट—'ह्स्रैं' के आदि में योग करे—वद वद वाग्वादिनि ह्स्रैं।।१५।।

क्लिन्न क्लेदिनि देवेशि महामोक्षं ततः कुरु।
कामराजं समुच्चार्य प्रणवं तदनन्तरम्॥१६॥
महामोक्षं कुरु पश्चात् शक्तिकूटं तथोच्चरेत्।
जपेदादौ जपेत् पश्चात् सप्तवारमनुक्रमात्॥१७॥

हे देवेशि! तत्पश्चात् 'क्लिन्ने क्लेदिनि महामोक्षं' कहकर 'कुरु' तथा कामराजकूट 'ह्स्क्ल्रीं' का उच्चारण करके प्रणव 'ॐ' अनन्तर 'महामोक्षं कुरु' तदनन्तर 'ह्स्रौंः' इस शक्तिकूट का उच्चारण करे। इससे दीपनी विद्या का मन्त्रोद्धार इस प्रकार होगा—वद वद वाग्वादिनि। ह्स्रैं क्लिन्ने क्लेदिनि महामोक्षं कुरु ह्स्क्ल्रीं ॐ महामोक्षं कुरु ह्स्रौंः। इस विद्या का प्रयोग जप के आदि में सात बार तथा जप के अन्त में सात बार करना चाहिये (इसे जपमन्त्र की दीपनी विद्या कहा गया है, इसका अलग से पुरश्चरण नहीं किया जाता)।।१६-१७।।

अथान्नपूर्णेश्वरी भैरवी

यथा ज्ञानार्णवे—

तारञ्च भुवनेशानि श्रीबीजं कामबीजकम्।
हृदयान्ते भगवति माहेश्वरि पदस्ततः।
अन्नपूर्णेऽग्निजाया च विद्येयं विंशदक्षरी॥१८॥

अब अन्नपूर्णा भैरवी कहते हैं। ज्ञानार्णव में कहा है कि प्रथमतः तार (ॐ) भुवनेशानी (ह्रीं) श्रीबीज (श्रीं) कामबीज (क्लीं) हृदय (नमः), इसके अन्त में 'भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे' लगाकर अग्निजाया (स्वाहा) लगाना चाहिये। मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा। यह २० अक्षरों वाली विद्या है।।१८।।

तथा कल्पे—

कामबीजं विना देवि त्रिबीजपूर्विका यदा।
ऊनविंशाक्षरी देवि धनधान्यसमृद्धिदा॥१९॥

इस प्रकार कल्प में कहा है कि हे देवि! जब यह विद्या कामबीज 'क्लीं' के विना कही जाती है तब यह १९ अक्षरों वाली होती है और यह विद्या देवी धन-धान्य-समृद्धि प्रदान करने वाली है। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ ह्रीं श्रीं नमो भगवति माहेश्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा।।१९।।

अस्याः पूजा—प्रातकृत्यादिसामान्योक्तपीठन्यासं विधाय, पूर्वादिकेशरेषु ॐ वामायै नमः, ॐ ज्येष्ठायै नमः, रौद्र्यै, काल्यै, कलविकरण्यै, बल-विकरिण्यै, बलप्रमथन्यै, सर्वभूतदमन्यै। मध्ये—मनोन्मन्यै। तत्समीपे—ॐ जयायै, विजयायै, अजितायै, अपराजितायै, नित्यायै, विलासिन्यै, दोग्ध्र्यै, अघोरायै। मध्ये—मङ्गलायै, ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः॥२०॥

इन विद्या की पूजाविधि कहते हैं। प्रातःकृत्य से लेकर सामान्य पूजा-पद्धति में कहे विधानानुसार पीठन्यास करके पूर्वादि केशरसमूह में ॐ वामायै नमः, ॐ ज्येष्ठायै नमः, ॐ रौद्र्यै नमः, ॐ काल्यै नमः, ॐ कलविकरण्यै नमः, ॐ बलविकरण्यै नमः, ॐ बलप्रमथन्यै नमः, ॐ सर्वभूतदमन्यै नमः। मध्य में—ॐ मनोन्मन्यै नमः, उसके समीप—ॐ जयायै नमः, ॐ विजयायै नमः, ॐ अजितायै नमः, ॐ अपराजितायै नमः, ॐ नित्यायै नमः, ॐ विलासिन्यै नमः, ॐ दोग्ध्र्यै नमः, ॐ अघोरायै नमः, मध्य में—ॐ मङ्गलायै नमः, ह्सौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः मन्त्रों से पूजन करे।।२०।।

तत्रः ऋष्यादिन्यासः। शिरसि—ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः। मुखे—ॐ पङ्क्तिछन्दसे नमः। हृदि—ॐ अन्नपूर्णेश्वर्यै भैरव्यै देवतायै नमः। गुह्ये—ॐ ह्रीं बीजाय नमः। पादयोः—ॐ श्रीं शक्तये नमः। सर्वाङ्गे—श्रीं क्लीं कीलकाय नमः॥२१॥

मूलोक्त प्रकार से ऋष्यादि न्यास करना चाहिये।।२१।।

ततः कराङ्गन्यासः—ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि॥२२॥

तदनन्तर कराङ्गन्यास तथा ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा—इत्यादि प्रकार से (षड्दीर्घ प्रकार से) अङ्गन्यास करना चाहिये। षड्दीर्घ अर्थात् ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः।।२२।।

ततः पदन्यासः—मूर्ध्नि—ॐ नमः, चक्षुषोः—ॐ ह्रीं नमः, ॐ नमः। कर्णयोः—ॐ क्लीं नमः, ॐ नमो नमः। नासिकयोः—ॐ भगवत्यै नमः, ॐ माहेश्वर्यै नमः। मुखे—ॐ अन्नपूर्णे नमः। गुह्ये—ॐ स्वाहा नमः। पुनर्गुह्यादिमूर्द्धान्तं न्यसेत्॥२३॥

मूलोक्त विधान से मूर्धा से गुह्य-पर्यन्त नवद्वार न्यास करके पुनः गुह्य से प्रारम्भ करके मूर्धा-पर्यन्त न्यास करना चाहिये।।२३।।

यथा तत्रैव—

एकमेकं पुनश्चैकं पुनरेकं द्वयं ततः।
चतुश्चतुस्तथा द्वाभ्यां पदान्येतानि पार्वति॥२४॥
पदान्येतानि देवेशि नवद्वारेषु विन्यसेत्।
मूर्द्धादिगुह्यपर्यन्तं पुनस्तेषु वरानने।
गुह्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तं पदानां नरकं न्यसेत्॥२५॥

वहीं कहा गया है कि एक पद, तदनन्तर एक पद, तदनन्तर एक पद, पुनः एक पद, तत्पश्चात् दो अक्षरों वाला एक पद, चार-चार अक्षरों वाला तीन पद, दो अक्षरों वाला एक पद। हे पार्वति! यह सब पद हैं।

हे देवेशि! इन नौ पदों का मस्तक से गुह्यपर्यन्त न्यास करे। हे वरानने! गुह्य से पुनः मस्तक पर्यन्त उन-उन स्थानों पर नौ पदों का क्रमशः न्यास करना चाहिये।।२४-२५।।

ततो ब्रह्मरन्ध्रमुखहृदयमूलाधारेषु चतुर्बीजानि विन्यस्य शेषाणि भ्रूमध्यनासिकाकण्ठनाभिलिङ्गेषु नमोऽन्तानि न्यसेत्। तदुक्तं तत्रैव—

ब्रह्मरन्ध्रास्यहृदयमूलाधारेष्वनुक्रमात् ।
चतुर्बीजानि विन्यस्य परेष्वन्यांश्च विन्यसेत् ॥२६॥
भ्रूमध्यनासिकाकण्ठनाभिलिङ्गेषु पञ्चसु ।
पूर्ववत् क्रमतो देवि नमःप्रकृतिकं न्यसेत् ॥२७॥

तत्पश्चात् ब्रह्मरन्ध्र, मुख, हृदय, मूलाधार में मन्त्र के अन्त में नमः लगाकर चार बीजों का न्यास करके शेष पाँच पदों में भी नमः अन्त में लगाकर भ्रूमध्य, नासिका, कण्ठ, नाभि तथा लिंग में न्यास करना चाहिये। यहाँ यही कहा गया है कि ब्रह्मरन्ध्र, मुख, हृदय तथा मूलाधार में अनुक्रम से चार बीज का न्यास करके अन्यान्य स्थान में अन्य पदों का न्यास करे। हे देवि! पूर्ववत् क्रम से भ्रूमध्य, नासिका, कण्ठ, नाभि तथा लिङ्ग— इन स्थानों में बीज के अन्त में नमः लगाकर न्यास करना चाहिये।।२६-२७।।

ततो मूलेन व्यापकं कृत्वा ध्यायेत्—

तप्तकाञ्चनवर्णाभां बालेन्दुकृतशेखराम् ।
नवरत्नप्रभादीप्तमुकुटां कुङ्कुमारुणाम् ॥२८॥
चित्रवस्त्रपरीधानां सफराक्षीं त्रिलोचनाम् ।
सुवर्णकलसाकारं पीनोन्नतपयोधराम् ॥२९॥
गोक्षीरधामधवलं पञ्चवक्त्रं त्रिलोचनम् ।
प्रसन्नवदनं शम्भुं नीलकण्ठविराजितम् ॥३०॥
कपर्दिनं स्फुरत्सर्पभूषणं कुन्दसन्निभम् ।
नृत्यन्तमनिशं हृष्टं दृष्ट्वानन्दमयीं पराम् ॥३१॥
सानन्दमुखलोलाक्षीं मेखलाढ्यां नितम्बिनीम् ।
अन्नदानरतां नित्यां भूश्रीभ्यां समलङ्कृताम् ॥३२॥

तत्पश्चात् मूल मन्त्र से व्यापक न्यास करके इस प्रकार ध्यान करना चाहिये— तप्त स्वर्ण की दीप्ति-युक्त, बाल चन्द्रखचित शेखर-धारिणी, नवरत्न की प्रभा से दीप्त मुकुट- धारिणी, कुङ्कुम के समान अरुणवर्णा, चित्रवस्त्र-धारिणी, सफरी मछली के समान त्रिनेत्रों वाली, सुवर्ण कलश के समान पीनोन्नत स्तन-धारिणी, गोदुग्ध के समान धवल पञ्चानन त्रिलोचन प्रसन्न वदन नीलकण्ठ कपर्दी (जटाधारी) से उल्लसित सर्परूप आभूषण से भूषित कुन्दतुल्य धवल (कुन्दपुष्प के समान श्वेत) शम्भु को सर्वदा नृत्यरत देखकर आनन्दमुखी, चञ्चल नेत्रों वाली, मेखलायुक्त नितम्ब वाली, अन्नदान में सदा निरत, नित्या, पृथ्वी तथा श्री (लक्ष्मी) द्वारा अलंकृता अन्नपूर्णेश्वरी भैरवी का ध्यान करता हूँ।।२८-३२।।

एवं ध्यात्वा मानसोपचारैरभ्यर्च्यार्घ्यं स्थापयेत्। अस्याः पूजायन्त्रम्—

त्रिकोणञ्च चतु:पत्रं वसुपत्रं ततः परम्।
कलापत्रञ्च भूबिम्बं चतुर्द्वारं समालिखेत्॥३३॥

इस प्रकार से ध्यानोपरान्त मानसोपचार से पूजा करके विशेषार्घ्य स्थापन करना चाहिये। इनका पूजायन्त्र कहते हैं—एक त्रिकोण, वृत्त, चार पत्र, पुन: आठ पत्र, तत्पश्चात् षोडशपत्र बनाये। अन्त में चतुर्द्वारयुक्त भूपुर (चतुरस्र = भूबिम्ब) बनाये।।३३।।

ततः पीठपूजां विधाय पुनर्ध्यात्वावाहनादिपञ्चपुष्पाञ्जलिदानपर्यन्तं विधायावरणानि पूजयेत्। कर्णिकायां अग्नीशासुरवायुषु मध्ये दिक्षु च—ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना पूजयेत्।

त्रिकोणाग्रे—ॐ हौं नमः शिवायेति शिवं पूजयेत्। वामकोणे—ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुव:स्व:पतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहेति वराहं पूजयेत्। दक्षिणकोणे—ॐ नमो नारायणायेति नारायणं पूजयेत्। ततो वामे दक्षिणे च ग्लौं श्रीं अन्नं मह्यमन्नं देह्यन्नाधिपतये ममान्नं ददापय स्वाहा श्रीं ग्लौं इत्यनेन भूमिश्रियौ पूजयेत्। ततश्चतुर्दलेषु पुरतः आरभ्य ॐ परविद्यायै नमः। ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः। श्रीं कमलायै नमः। क्लीं सुभगायै नमः॥३४॥

तदनन्तर पीठपूजा, पुन: ध्यान, आवाहन से लेकर पञ्चपुष्पाञ्जलि दान-पर्यन्त विधान करके आवरण देवगण का पूजन करे। कर्णिका के अग्नि, ईशान, नैर्ऋत्य, वायुकोण, मध्य तथा दिक् समूह में ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादि मन्त्र से षडङ्गपूजन करना चाहिये। त्रिकोण के आगे—'ॐ हौं नमः शिवाय:' से शिव का पूजन करे। वामकोण में—'ॐ नमो भगवते वराहरूपाय भूर्भुव:स्व:पतये भूपतित्वं मे देहि ददापय स्वाहा' से वराह भगवान् का, दक्षिणकोण में—ॐ नमो नारायणाय द्वारा नारायण का, वाम तथा दक्षिण में—ॐ ग्लौं श्रीं अन्नं मह्यमन्नं देह्यन्नाधिपतये ममान्नं ददापय स्वाहा श्रीं ग्लौं इस मन्त्र से भूमि तथा श्री का पूजन करे। तत्पश्चात् चार दलों में सम्मुख से प्रारम्भ करके ॐ परविद्यायै नमः, ॐ ह्रीं भुवनैश्वर्यै नमः, ॐ श्रीं कमलायै नमः, ॐ क्लीं सुभगायै नमः से पूजा करनी चाहिये।।३४।।

तथा च ज्ञानार्णवे—

तारेण परविद्याञ्च भुवनेशीं तदात्मना।
कमलां रमया भद्रे कामेन सुभगां यजेत्॥३५॥

ज्ञानार्णव में कहा गया है—हे भद्रे! प्रणव के साथ परविद्या की, भुवनेशी स्वरूप

ह्रीं बीज के साथ भुवनेशी की, रमा (श्रीं) के साथ कमला की एवं काम (क्लीं) के साथ सुभगा की पूजा करे।।३५।।

अष्टपत्रेषु पश्चिमादितो ब्राह्म्यादिमातृः पूजयेत्। षोडशपत्रेषु नं अमृतायै अन्नपूर्णायै नमः। एवं मों मानदायै, भं तुष्ट्यै, गं पुष्ट्यै, वं प्रीत्यै, तिं रत्यै, मं क्रियायै, हें श्रियै, श्वं सुधायै, रिं रात्र्यै, अं ज्योत्स्नायै, त्रं हिमवत्यै, पूं छायायै, र्णें पूर्णिमायै, स्वां नित्यायै, हां अमावास्यायै, एता अन्नपूर्णापदान्ता पूजयेत्। तथा च ज्ञानार्णवे—

स्वैः स्वैर्वर्णैः प्रपूज्याश्च अन्नपूर्णान्तशब्दिकाः ।।३६।।

अष्ट पत्रसमूह में पश्चिम दिशा से लेकर ब्राह्मी-प्रभृति मातृगण का पूजन करना चाहिये। षोडश पत्र में एक-एक मन्त्रवर्ण के साथ पूजा करे। जैसे—ॐ नं अमृतायै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ मों मानदायै नमः, ॐ भं तुष्ट्यै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ गं पुष्ट्यै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ वं प्रीत्यै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ तिं रत्यै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ मं क्रियायै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ हें श्रियै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ स्वं सुधायै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ रिं रात्र्यै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ अं ज्योत्स्नायै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ त्रं हिमवत्यै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ पूं छायायै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ र्णें पूर्णिमायै अन्न-पूर्णायै नमः, ॐ स्वां नित्यायै अन्नपूर्णायै नमः, ॐ हां अमावास्यायै अन्नपूर्णायै नमः।

ज्ञानार्णव में कहा भी है कि बीजचतुष्टय के अतिरिक्त अवशिष्ट एक-एक मन्त्रवर्ण के साथ अन्नपूर्णा शब्द अन्त में देकर इनकी पूजा करे।।३६।।

ततश्चतुरस्रे लोकपालान् पूजयेत्। यथा तत्रैव—

चतुरस्रे लोकपालान् क्रमेण परिपूजयेत् ।

ततो धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्याः पुरश्चरणं लक्षजपः।।३७।।

तदनन्तर चतुरस्र में लोकपालगण की पूजा करे। जैसे कहा है कि चतुरस्र में लोकपालगण का क्रमशः पूजन करना चाहिये। इसके अनन्तर धूपदान से विसर्जन-पर्यन्त कर्म समाप्त करे। इस विद्या का पुरश्चरण एक लाख जप से होता है।।३७।।

तथा च कल्पे—

एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं लक्षसंख्यमनन्यधीः ।
साज्येनान्नेन जुहूयात्तद्दशांशमनन्तरम् ।।३८।।

कल्प में कहा है कि इस प्रकार ध्यानोपरान्त संयतचित्त से एक लाख जप करना चाहिये। तदनन्तर घृतयुक्त अन्न से दशांश होम करना चाहिये।।३८।।

अथ श्मशानभैरवी

श्मशानभैरवि! नवरुधिरास्थिवसाभक्षिणि सिद्धिं मे देहि मम मनोरथान् पूरय हुं फट् स्वाहेति मन्त्रः। अनेन यावत् क्रूरकर्मणि प्रयोगः कार्यः ॥३९॥

इति भैरवीप्रकरणम्

अब श्मशान भैरवी कहते हैं। इनका मन्त्र है—श्मशानभैरवि नवरुधिरास्थिवसाभक्षिणी सिद्धिं मे देहि मम मनोरथान् पूरय हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र से क्रूरकर्म का प्रयोग करना चाहिये।।३९।।

वन्दितामिन्द्रचन्द्राद्यैश्चन्द्रशेखरसुन्दरीम ।
वन्दे सर्वेष्टसिद्ध्यर्थं महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥१॥

इन्द्र-चन्द्रादि देवगण से वन्दिता चन्द्रशेखर सुन्दरी महात्रिपुरसुन्दरी की वन्दना समस्त इष्टसिद्धि के लिये करता हूँ।।१।।

ज्ञानार्णवे—

भूमिश्चन्द्रः शिवो माया शक्तिः कृष्णाध्वमादनौ ।
अर्धचन्द्रश्च विन्दुश्च नवार्णो मेरुरुच्यते ।
महात्रिपुरसुन्दर्या मन्त्रामेरुसमुद्भवा ॥२॥

ज्ञानार्णव में कहा है कि भूमि (ल) चन्द्र (स) शिव (ह) माया (ई) शक्ति (ए) कृष्णाध्वा वह्नि (र) मादन (क) अर्धचन्द्र (ँ) बिन्दु (-ं)—इन ९ अक्षर को मेरु कहा गया है। महात्रिपुरसुन्दरी का मन्त्र इस मेरु से उद्धृत है।।२।।

भूमिर्लकारः, चन्द्रो दन्त्यसकारः, शिवो हकारः, माया चतुर्थस्वरः, शक्तिरेकादशाक्षरः। कृष्णाध्वा वह्निः, स तु रेफः। मादनः ककारः। अर्धचन्द्रबिन्दुं वक्तव्या इत्यर्थः। प्रकृतिभूतकामराजादिविद्या वक्तव्या इत्यर्थः। तेन षोडश्यादौ बीजान्तरसत्त्वेऽपि न क्षतिः॥३॥

भूमि = ल। चन्द्र = स। शिव = ह। माया = ई। शक्ति = ए। कृष्णाध्वा वह्नि = र। मादन = क। अर्ध चन्द्रबिन्दु का अर्थ स्पष्ट है। इन नौ अक्षरों से मेरु है। इन वर्णों से घटित इनके मन्त्रों के लिये कहा है। इसलिये अर्थ है कि षोडशी-प्रभृति में वीजान्तर होने से भी कोई क्षति नहीं है।।३।।

ज्ञानार्णवे—

शक्त्यन्तस्तुर्यवर्णोऽयं कलमध्ये वरानने ।
वाग्भवं पञ्चवर्णैस्तु कामराजमथोच्यते ॥४॥

मादनं शिवचन्द्राद्यं शिवान्तं मीनलोचने।
कामराजमिदं भद्रे! षड्वर्णं सर्वमोहनम् ॥५॥

ज्ञानार्णव के अनुसार कहते हैं—हे वरानने! कल-मध्य अर्थात् 'क' तथा 'ल' के मध्य शक्ति 'ए' के अन्त में चतुर्थ वर्ण ई, अन्त में मायाबीज—इन पञ्चवर्ण से वाग्भव कूट होता है। अब कामराज कूट कहा जाता है। हे मीनलोचने! मादन ककार के अन्त में हकार तथा अन्त में 'ल' तथा मायाबीज। यह षड्वर्णयुक्त सर्वमोहन कामराजबीज होता है।।४-५।।

शक्तिबीजं वरारोहे! चन्द्राद्यं सर्वसिद्धिदम्।
चतुरक्षररूपन्तु त्र्यक्षरी त्रिपुरा भवेत् ॥६॥
एतामुपास्य देवेशि कामः सर्वाङ्गसुन्दरः।
कामराजो भवेद्देवि विद्येयं ब्रह्मरूपिणी ॥७॥

हे वरारोहे! सर्वसिद्धिप्रद शक्तिबीज चन्द्राद्य (सकारादि) अर्थात् आदि में 'स' है। वह चार अक्षरस्वरूपा है। त्रिपुरा त्र्यक्षरी बीज है। हे देवेशि! साधक इसकी उपासना करके सर्वाङ्ग सुन्दर, काम तथा कामराज हो जाता है। यह विद्या ब्रह्मस्वरूपिणी है।।६-७।।

अस्यार्थः—शक्तिरेकादशस्वरस्तस्यान्तर्भूतस्तूर्यवर्णो दीर्घेकारस्तथा च तौ ककारलकारयोर्मध्ये लेख्यौ। एतद्वाग्भवं पञ्चवर्णैरुच्यते। तेन शेषवर्णो वचनान्तरैकवाक्यतया मायाबीजम् ॥८॥

शक्तिः—११वाँ स्वर। उसके अन्तर्भूत है—तूर्य स्वरवर्ण दीर्घ 'ई'। अतः 'ए' एवं 'इ' को ककार तथा लकार के मध्य में लिखना चाहिये। इन पञ्चवर्ण से वाग्भव बीज कहा गया है। इसलिये अर्थात् पाँच वर्ण न होने से शेष वर्ण वचनान्तर के साथ एकवाक्यता के कारण मायाबीज होगा।।८।।

तथा तत्रैव—

सकला भुवनेशानी कामेशी बीजमुद्धृतम्।
अनेन सकला विद्याः कथयामि विशेषतः ॥९॥

कहा भी गया है—सकला भुवनेशानी (ह्रीं) अर्थात् 'क्लह्रीं' को कामबीज कहा गया है। इसके द्वारा विशेष रूप से सकला विद्या कहते हैं।।९।।

अस्यार्थः—कलाभ्यां सह वर्त्तमाना सकला ककारलकारात्मकवर्ण-द्वयान्विता भुवनेशी मायाबीजं कामेश्वरीबीजं भवति। अतएव वशिन्या-

दिन्यासे—

कवर्णान्ते महेशानि कामेशी बीजमुत्तमम्।
मेरुभूतं समुच्चार्य वाग्देवीं पूजयेत्ततः ॥१०॥

इति ज्ञानार्णववचनं वक्ष्यमाणं तद्बीजप्रदर्शकतया उपयुज्यते। अनेनेति तेन। कलह्रीमिति कामेश्वरीबीजं प्रकृतिभूतकामराजिसर्वविद्याघटकं तेनैकाक्षरमन्त्राघटकत्वेपि न क्षतिः। अतएव मेरुभूतमित्युक्तम्। तथा चैकवर्णाकाङ्क्षायां विशेषीभूता भुवनेशी। वर्णद्वयाकाङ्क्षायां सान्निध्यवशात् लकारवती भुवनेशी। वर्णत्रयाकाङ्क्षायां कलवती भुवनेशीविद्याघटिका। एवञ्च ककारैकादशस्वरचतुर्थस्वरलकारमायाबीजैर्वाग्भवकूटं मायाबीजस्यानेकवर्णघटितत्वेप्येकं बीजरूपत्वात् एवमन्यत्रापि॥११॥

इसका अर्थ है—क तथा ल के साथ जो वर्त्तमान है, उसे 'सकला' कहा गया है। 'क' 'ल' स्वरूप वर्ण से युक्ता भुवनेशी मायाबीज कामेश्वरी कामबीज है। इसीलिये इसके वशिन्यादि न्यास में कहते हैं—हे महेशानि। कवर्ण के अन्त में मेरुभूत उत्तम कामेशी बीज का उच्चारण करके उसके पश्चात् वाग्देवी का पूजन करे।

यह ज्ञानार्णव तन्त्र का वचन कामेश्वरी बीज के प्रदर्शनरूप में उपयोगी है। 'अनेन' का अर्थ है—इसी कामेश्वरी बीज द्वारा। 'क्ल्ह्रीं' कामेश्वरी बीज प्रकृतिभूत कामराजादि सभी विद्या का घटक है। इससे इस एकाक्षर मन्त्र का घटक न होने से कोई क्षति नहीं है। इसीलिये उसे मेरुभूत कहा गया है। इसीलिये एक वर्ण की आकांक्षा में भुवनेशी (ह्रीं) विशेष्य होगा। वर्णद्वय की आंकाक्षा में सान्निध्य के लिये भुवनेशी लकारवती होगी। वर्णत्रय की आंकाक्षा में कलवती भुवनेशी विद्या का घटक होगा। इस प्रकार क, ए, ई, ल तथा मायाबीज से वाग्भव कूट घटित होता है। मायाबीज अनेक वर्ण घटित होने पर भी (ह + र + ई + म) बीजरूप में एक ही वर्ण माना जाता है। यही अन्य स्थल में भी जानना चाहिये।।१०-११।।

मादनमिति मादनं ककारः। शिवचन्द्रौ हसौ ताराद्यौ यस्य तादृशम्। शिवान्तमिति, शिवो हकारः स एवान्तो यस्य इति मादनविशेषणद्वयम्। तेन चतुर्वर्णप्राप्तौ षड्वर्णत्वेन वर्णद्वयाकाङ्क्षायां वचनान्तरैकवाक्यतया कामेश्वरीशेषाक्षरस्वरस्य परिशेषेण दातव्यत्वादन्ते लकारमायाबीजञ्च। तेन हकारदन्त्यसकारककारहकारलकारमायाबीजैः षड्वर्णात्मकं कामराजकूटं भवति॥१२॥

मादनं = क। शिवश्चन्द्रौ = ह तथा स। यह ह तथा स दोनों के आदि में है,

जिसके तादृश मादन। शिवान्तं = शिव 'ह'। वह जिस वर्ण का अन्त है। शिवचन्द्राद्य तथा शिवान्त—यह मादन का विशेषण है। इससे चार वर्ण की प्राप्ति होने पर विद्या के छः वर्णरूप होने से दो वर्ण की आकांक्षा के कारण वचनान्तर के साथ एकवाक्यता प्रयुक्त कामेश्वरी के शेष अक्षरद्वय के परिशेष में दिये जाने के कारण अन्त में ल तथा ह्रीं दिया जाय। इससे ह, स, क, ह, ल तथा ह्रीं द्वारा षड्वर्ण का कामराज कूट होता है (ह् स् क् ह् ल् ह्रीं)।।१२।।

अथ शक्तिकूटमुच्यते। शक्तिबीजं चतुरक्षरूपस्त्विति। सान्निध्यात् कामराजस्य चन्द्राद्यं चतुरक्षरस्वरूपं शक्तिबीजमित्यर्थः। तेन दन्त्यसकारककारलकारमायाबीजैश्चतुरक्षरं शक्तिकूटं भवति॥१३॥

अब इस ग्रन्थ द्वारा शक्तिकूट कहते हैं—शक्तिबीजं चतुरक्षरं। सान्निध्य के कारण कामराज का सकाराद्य (आदि से 'स') चतुरक्षररूप शक्तिबीज अर्थात् शक्तिकूट, यह अर्थ है। उसमें स, क, ल, ह्रीं ये चार अक्षर होते हैं।।१३।।

न च चन्द्रादिचतुरक्षरस्य ग्राह्यत्वे कहलान्यतमत्यागे विनिगमनाविरह इति वाच्यम्, चन्द्राद्यपदेन शिवबीजराहित्यस्य विवक्षणात्। तावतैव कामराजस्य हकारद्वयराहित्यलाभात् वचनान्तरैकवाक्यत्वाच्च॥१४॥

चन्द्रादि चार अक्षर ग्राह्य होगा। 'कहल' का अन्यतम त्याज्य होगा यह एकतरफा पक्षपातिनी युक्ति नहीं है। ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि चन्द्राद्य पद द्वारा शिव बीज- राहित्य ही विवक्षित हो रहा है। उसके द्वारा ही कामराज के हकारद्वय की त्याग प्राप्ति हो सकी है और वचनान्तर के साथ एकवाक्यता भी होती है।।१४।।

यथा चतुःशत्याम्—

मादनं तमधः शक्तिस्तदन्ता बिन्दुमालिनी ।
इन्द्रश्च भुवनेशानी बीजं तद्वाग्भवं भवेत् ॥१५॥
शिवबीजं त्रिधा कृत्वा सृष्टिस्थितिलयक्रमात् ।
द्वयमाद्येन रहितमाद्याधो मादनाक्षरम् ॥१६॥

जैसा कि चतुःशती ग्रन्थ में कहा भी है—मादन (क) उसके अधः अनन्तर शक्ति (ए) तदनन्तर बिन्दु मालिनी (ई) इन्द्र (ल) तथा भुवनेशानी (ह्रीं) यह वाग्भव कूट है। शिवबीज (ह) को सृष्टि-स्थिति-लयक्रम से त्रिधा करके अर्थात् तीन स्थान में लिखकर मध्य तथा शेष हकारद्वय को शिवाद्य (स) रहित करे। आद्य के अधोभाग में मादनाक्षर ककार होगा।।१५-१६।।

परस्थितिशिवाधस्तादिन्द्रबीजं नियोजयेत्।
तथा लयशिवाधोऽपि वह्नितुर्यस्वरेन्दुमान्।
एवमेतन्महाबीजं कामराजं महोदयम्॥१७॥

परवर्त्ती स्थितिरूप द्वितीय हकार के पश्चात् इन्द्रबीज (ल) का योग करना होगा। इस प्रकार लयरूप तृतीय शेष शिव बीज के अनन्तर वह्नि (र) चतुर्थ स्वर ई तथा बिन्दु (ं) युक्त होगा। तव कामराज महाबीज कामराज कूट उदित होगा।।१७।।

अस्यार्थः—मादनं ककारः शक्तिरेकारः, बिन्दुमालिनी दीर्घेकारः। सप्तशती-मूलभूते मेरुचन्द्रे चतुर्थस्वराभिधानात्। तन्त्रान्तरेपि तुर्यवर्ण इत्यभि-धानाच्च॥१८॥

वाराहीतन्त्रे तु—

कृत्व तु मादनञ्चादौ तत्पाताले भगं कुरु।
दक्षाक्षीन्द्रं शिवा चैव बाणार्णं पुण्यमेव तत्॥१९॥

इत्यत्र दक्षाक्षीत्युक्तम्, तत्र वामदक्षक्रमेण न्यास इति शिष्टाः।

मादन ककार, शक्ति एकार, बिन्दुमालिनी दीर्घ ई। सप्तशती के मूलभूत मेरुचन्द्र ग्रन्थ में बिन्दुमालिनी को चतुर्थ स्वर भी कहा गया है। तन्त्रान्तर में भी इसे तुर्यस्वर कहा गया है; किन्तु वाराही तन्त्र में कहते हैं कि प्रथमत: मादन (क) का उच्चारण करके उसके अधोभाग में अर्थात् आगे भग (ऐ) का उच्चारण करना चाहिये। तदनन्तर दक्षाक्षि (ई) इन्द्र (ल) तथा शिव (ह) का उच्चारण करना चाहिये। यह पञ्चवर्ण पुण्य-स्वरूप होता है।।१८-१९।।

वस्तुतस्तु दक्षाक्षी इति दीर्घान्तश्चतुर्थस्वरसंज्ञाशब्दोऽस्तीति प्रत्येकाक्षरस्तोत्रे तृतीये—

ईशानादि महाप्रेत मौलिलालितपादुके।
ईश्वरीन्द्रादिभूतानां सुन्दरि! त्वां समाश्रये॥२०॥

इत्यभिधानाच्च चतुर्थस्वरः सुव्यक्तमुक्तः।

वास्तव में दक्षाक्षी दीर्घान्त चतुर्थ स्वर (ई) का संज्ञावाचक शब्द है। प्रत्येकाक्षर स्तोत्र के तृतीय स्तोत्र में कहा गया है कि ईशानादि महाप्रेत के मस्तक द्वारा सेवित पादुके (अर्थात् वे इस पादुका पर मस्तक झुकाते हैं) तुम देववृन्द की ईश्वरी हो। हे सुन्दरि! हग आपका आश्रय लेते हैं। इस प्रकार स्पष्ट रूप से इसे चतुर्थ स्वर कहा गया है।।२०।।

इन्द्रं लकारः। भुवनेशी मायाबीजम्। इति वाग्भवकूटम्। शिवबीजं हकारः। त्रिधेति त्रिषु स्थानेषु उपर्यधोभावेन लिखित्वेत्यर्थः। द्वयमिति। मध्यमचरमहकारद्वयमित्यर्थः। आद्येन शिवाद्येन दन्त्यसकारेण रहितम्। एवञ्च प्रथमशिवानन्तरं दन्त्यसकारोऽर्थात् आद्याधः दन्त्यसकारयुक्त-हकाराधः। परस्थितिशिवेति। परो द्वितीयः स्थितिरूपो यः शिवस्तदधस्ता-दित्यर्थः। इन्द्रबीजं लकारः। लयशिवस्तृतीयशिवः। वह्नि रेफः। काम-राजमिति कामराजकूटमित्यर्थः। शक्रसंयुतमिति तेन लकाराधः ककार इत्यर्थः। चन्द्रो दन्त्यसकारः। संहारो वैपरीत्यम्। तेन चादौ दन्त्य-सकारस्ततः ककारस्ततो लकारस्तदन्ते मायाबीजमित्यर्थः। शक्तिबीजमिति शक्तिकूटमित्यर्थः॥२१॥

इन्द्र—ल। भुवनेशी मायावीज—यह वाग्भवकूट है। शिवबीज = ह। त्रिधा का अर्थ है—तीन स्थान-स्थान में ऊर्ध्व तथा अधोभाव से लिखकर। द्वयम् = मध्यम तथा चरम हकारद्वय। आद्येन = शिवाद्य दन्त्य सकार से रहित। यह है प्रथम शिव के अनन्तर अर्थात् दन्त्य सकाररहित। आद्याधः = दन्त्य सकारयुक्त हकार के अधः। परस्थितिशिव = पर अर्थात् द्वितीय स्थितिरूप जो शिव है, उसके अधः। इन्द्रबीज = लकार। लयशिव—तृतीयशिव। वह्नि—रकार। कामराज = कामराज कूट। शक्रसंयुत = लकार के अधोभाग में ककार। चन्द्र—दन्त्य सकार। संहार = वैपरीत्य। अब स, क, ल, ह्रीं—यह अर्थ है। शक्तिबीजम्—शक्तिकूट।।२१।।

अथवा—शक्तिबीजं वरारोहे चन्द्राद्यं सर्वसिद्धिदम्। चतुरक्षररूपन्त्वित्य-स्यैवमर्थः। चन्द्राद्यं चतुरक्षरं शक्तिकूटं चतुरक्षरस्य सकारादित्वप्राप्तौ परिशेषात् कामेश्वरीवर्णत्रयस्य सकारादित्वं लभ्यते। अतएव कामेश्वरी-मन्त्रसम्बन्धिन एकाक्षरस्य वाग्भवे द्व्यक्षरस्य कामराजे त्र्यक्षरस्य शक्तिकूटे परिषेशात् समुपयोगः। इत्थञ्च ककारैकादशस्वरतुर्यस्वरभूमिलज्जा-बीजैर्वाग्भवकूटं प्रथमम्। शिवचन्द्रकामशिवभूमिलज्जाभिः कामराजकूटं द्वितीयम्। चन्द्रकामभूमिलज्जाभिः शक्तिकूटं तृतीयम्। इत्युक्तप्रकारेण त्र्यक्षरी त्रिपुरा भवेदिति निर्गलितार्थः॥२२॥

अथवा—शक्तिबीजं वरारोहे इत्यादि (श्लोक छः) अर्थात् सर्वसिद्धिप्रद शक्तिबीज चन्द्राद्य अर्थात् जिसके आदि में चन्द्रबीज 'स' हो। यह चार अक्षरस्वरूप है। यह शक्तिकूट है। चतुरक्षर का सकारादित्व प्राप्त होने पर परिशेष में कामेश्वरी के वर्णत्रय का सकारादित्व प्राप्त होता है। अतः परिशेष में कामेश्वरी मन्त्र-सम्बन्धित एकाक्षर का

वाग्भव में, द्व्यक्षर का कामराज में तथा त्र्यक्षर का शक्तिकूट में उपयोग होता है। इस प्रकार से ककार, 'ए', ई, भूमि (ल) तथा लज्जाबीज (ह्रीं) द्वारा प्रथम वाग्भवकूट होता है। शिव (ह) चन्द्र (स) काम (क) शिव (ह) भूमि (ल) तथा लज्जाबीज द्वारा द्वितीय कामराजकूट होता है। चन्द्र (स) काम (क) भूमि (ल) तथा लज्जाबीज द्वारा तृतीय शक्तिकूट होता है। इस प्रकार से त्रिपुरा त्र्यक्षरी होती है।।२२।।

तथा चन्द्रपीठे—

स्मरो भगं बिन्दुमती लपरा वाग्भवं मतम्।
शिवो जीवः स्मरः शम्भुर्लपरा कामकूटके।
भृगुः कामः क्षमा माया कामराजाभिधा मता ॥२३॥

चन्द्रपीठ ग्रन्थ में कहा गया है कि स्मर (क), भग (ए) बिन्दुमती (ई) 'ल' तथा परा 'ह्रीं' वाग्भवकूट है। शिव (ह) जीव (स) स्मर (क) शम्भु (ह) ल तथा परा (ह्रीं) कामराज कूट है। भृगु (स) काम (क) क्षमा (ल) तथा (माया) को कामराज विद्या कहते हैं।।२३।।

इयं कामोपासिता पञ्चदशाक्षरी। इयं त्र्यक्षरीं विद्या विद्याराज्ञीत्युच्यते कामराजाख्या च। 'कामराजो भवेद्देवि! विद्येयं ब्रह्मरूपिणी'त्यभिधानात्। तथा च कामराजपदेन क्वचिद्विद्याविशेषोऽयं क्वचित् कामराजाख्य-मध्यमकूटमप्युच्यते। इदन्तु बोध्यं—सर्वविद्यानामेव कूटत्रयस्य वाग्भवादि-परिभाषाऽस्तीति। तेन कएईलह्रीं। हसकहलह्रीं। सकलह्रीं इति सिद्धम्॥२४॥

यह पन्द्रह अक्षरों वाली विद्या कामोपासिता है। यह त्र्यक्षरी विद्या को ही विद्यारात्री भी कहते हैं और कामराजविद्या भी कही जाती है। कहा भी है—'हे देवि! यह ब्रह्मरूपी विद्या कामराज है। 'अतएव कामराज पद द्वारा कहीं इसे पञ्चदशाक्षरी विद्याविशेष कहते हैं, तो कहीं पर कामराज नामक मध्यम कूट भी कहा जाता है। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि सभी विद्याओं के कूटत्रय को वाग्भव कूट, कामराजकूट तथा शक्तिकूट कहा गया है। अत: मन्त्रोद्धार होता है—कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं।।२४।।

ज्ञानार्णवे—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि लोपामुद्राभिधां पराम्।
कामराजाख्यविद्यायाः शक्तिं तूर्यञ्च सुन्दरि।
हित्वा मुखे शिवेन्दुभ्यां लोपामुद्रा प्रकाशिता।
अगस्त्योपासिता विद्या त्रैलोक्यक्षोभकारिणी ॥२५॥

ज्ञानार्णव में कहा है कि हे देवि! लोपामुद्रा नामक अपरा विद्या सुनो। हे सुन्दरि! कामराज नामक विद्या को वाग्भव नामक प्रथम कूट से शक्ति तथा चतुर्थ स्वर निकाल कर उससे 'ह' तथा 'स' से युक्त करने से लोपामुद्रा विद्या प्रकाशित होती है। त्रैलोक्य-क्षोभकारिणी यह विद्या अगस्त्य ऋषि द्वारा उपासिता है।।२५।।

अस्यार्थः—कामराजाख्यविद्याया वाग्भवाख्ये आदिकूटे द्वितीय-तृतीयस्वरद्वयं हित्वा हकारदन्त्यसकारौ प्रथमं दद्यामित्यर्थः। तेन शिव-चन्द्रकामभूलज्जाभिः प्रथमकूटम्। शेषद्वयन्तथैव। इयमगस्त्योपासिता प्रथमलोपामुद्रा पञ्चदशाक्षरी, कामराजप्रथमलोपामुद्रयोरवान्तरविशेषमग्रे वक्ष्यामः॥२६॥

कामराज नामक विद्या के वाग्भव नामक आदिकूट के द्वितीय तथा तृतीय स्वर का त्याग करके 'ह' तथा 'स' को आदि में लगाये। इससे शिव (ह) चन्द्र (स) काम (क) भू (ल) तथा लज्जा (ह्रीं) से लोपामुद्रा का प्रथम कूट होता है। कामराज कूट तथा शक्तिकूट में भी ऐसा ही होगा। यह १५ अक्षरों वाली विद्या अगस्त्य ऋषि द्वारा उपासिता प्रथम लोपामुद्रा है। कामराज तथा प्रथम लोपामुद्रा के विशेष वर्णन को आगे कहा जायेगा।।२६।।

तत्रैव—

कामराजाख्यविद्यायास्तृतीयं सुरवन्दिते।
सहाद्यं शक्तिबीजं स्याद्विद्यागस्ताप्रपूजिता।
लोपामुद्राप्रभावेण साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणी॥२७॥

तृतीयं शक्तिबीजमित्यन्वयः।

वहीं कहा गया है कि हे सुरवन्दिते! कामराज नामक विद्या का तृतीय शक्तिकूट में आदि में 'स' होगा। यह विद्या अगस्त्य से उपासिता है। लोपामुद्रा के प्रभाव से यह विद्या साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिणी है।।२७।।

सहाद्यमिति कामराजख्यविद्याया यदेव वाग्भवकूटं कामराजकूटञ्चास्या अपि तदेव। शक्तिकूटन्तु सहाद्यमिति विशेषः। तेन चन्द्रशिवचन्द्र-कामभूलज्जाभिस्तृतीयकूटमित्यर्थः। तथा च कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सहसकलह्रीं इति सिद्धम्। इयं सप्तदशाक्षरी द्वितीयलोपामुद्रा। इयमप्य-गस्त्योपासिता द्वितीयलोपामुद्रा॥२८॥

तथा च कामराजविद्यामधिकृत्य चन्द्रपीठे—

अस्याश्च शक्तिकूटञ्चेद् भृगुशम्भुपुरस्सरः।
भुक्तिमुक्तिप्रदा विद्या लोपामुद्राद्युपासिता॥२९॥

सहाद्यं = कामराजनामक विद्या का जो वाग्भव कूट तथा कामराज कूट है, वही इस विद्या का भी होगा। केवल शक्तिकूट में आदि में 'स' लगेगा, यह विशेष है। इससे चन्द्र, शिव, चन्द्र, काम, भू, लज्जा द्वारा तृतीय कूट होगा—यह अर्थ है। अतएव—'कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सहसकलह्रीं' यह मन्त्रोद्धार होता है। यह १७ अक्षरों वाली द्वितीय लोपामुद्रा विद्या है। यह भी अगस्त्य द्वारा उपासिता है। चन्द्रपीठ ग्रन्थ में कहा भी है—

इस विद्या का शक्तिकूट भृगु (स) तथा शम्भु (ह) आदि में होगा। यह विद्या भुक्ति-मुक्तिप्रदा लोपमुद्रा आदि द्वारा उपासिता है।।२८-२९।।

तत्रैव—

कामराजाख्यविद्याया वाग्भवेन वरानने।
विद्योद्धारे प्रवक्ष्यामि शक्तिमादनमध्यगम् ।।३०।।
शिवं कुर्याद्वाग्भवे तु शिवाद्यं कामबीजकम्।
चन्द्राद्यन्तु तृतीयं स्याद्विद्येयं मनुपूजिता ।।३१।।

अस्यार्थः—अतः परं कामराजाख्यविद्याया वाग्भवेन वाग्भवेनैव विद्योद्धारं प्रवक्ष्यामि। मनु-चन्द्र-कुबेरपूजितानां तिसृणामेव विद्यानां उद्धारं प्रवक्ष्यामीत्यन्वयः। तथा चैतासां कूटत्रयं कामराजवाग्भवकूटघटितमेवेत्यर्थः। कामराजविद्याया वाग्भवकूटघटितकूटत्रयस्यापि प्रथमकूटं वागभवाख्यम्। द्वितीयं कामराजाख्यम्। तृतीयं शक्तिकूटाख्यम्। तत्र प्रथमे शक्तीति शक्तिरेकारः। मादनं ककारः। तयोर्मध्यगं शिवं हकारं कुर्यात्। प्रथमे वाग्भवाख्यकूटे एकारककारयोर्मध्ये हकारं दद्यादित्यर्थः। तेन कामशिवभगतूर्यस्वरभूलज्जाभिर्वाग्भवाख्यं प्रथमं कूटम्। शिववामभगतूर्यस्वरभूलज्जाभिः कामराजाख्यं द्वितीयकूटम्। चन्द्रकामभगतूर्यस्वरभूलज्जाभिः शक्तिकूटाख्यं तृतीयं कूटम्। तथा च 'क ह ए ई ल ह्रीं, ह क ए ई ल ह्रीं, स क ए ई ल ह्रीं' इति सिद्धम्। इयमष्टादशाक्षरी विद्या मनुपूजिता।।३२।।

वही कहा गया है—हे वरानने! कामराज नाम विद्या का वाग्भव द्वारा उद्धार कहा जाता है। इस विद्या के वाग्भवकूट में शिव (ह) शक्ति (ए) तथा मादन (क) को मध्यगत करे। कामराजकूट के आदि में शिव (ह) रहेगा। तृतीय शक्तिकूट के आदि में चन्द्र (स) होगा। यह विद्या मनु द्वारा पूजिता है।।३०-३२।।

तत्रैव—

सहाद्यं वाग्भवं देवि चन्द्राद्यं शिवमध्यगम्।

मादनं कामराजे तु शक्तिबीजं सदाननम्।
चन्द्राराधितविद्येयं भोगमोक्षफलप्रदा ॥३३॥

हे देवि! कामराज विद्या के वाग्भवकूट को यदि सहाद्य करें तब वह इस विद्या का वाग्भव कूट होता है। इस विद्या का कामराज में चन्द्राद्य तथा शिवमध्यगत मादन होगा। शक्तिकूट में सहानन (सहमुख अथवा सहाद्य) होगा। चन्द्र द्वारा आराधित यह विद्या भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली है।।३३।।

अस्यार्थः—कामराजविद्याया वाग्भवं सहाद्यश्चेदस्या वाग्भवम्। तस्या द्वितीयवाग्भवे ककारो यदि दन्त्यसकारादिर्हकारयोर्मध्यगतश्च यदि स्यात्, तदास्याः कामराजख्यकूटम्। तथा च कामराजकूटे आदौ दन्त्यसकारस्ततो हकारस्ततः ककारस्ततो हकारस्तत एकारस्तत ईकारस्ततो लकारस्ततो मायेति। सहाननमिति। तथा चास्या वाग्भवकूटमेव शक्तिकूटम्। तेन चन्द्र-शिव-काम-भग-तूर्यस्वर-भूलज्जाभिः प्रथमं वाग्भवं कूटम्। चन्द्रशिवकामभगतूर्यस्वरभूलज्जाभिर्द्वितीयं कामराजकूटम्। चन्द्र-शिव-काम-भगतूर्यस्वर-भूलज्जाभिस्तृतीयं शक्तिकूटम्॥३४॥

कामराज विद्या का वाग्भवकूट यदि सहाद्य होता है, तब वह इस विद्या का वाग्भवकूट होगा। इसके द्वितीय वाग्भव में ककार यदि दन्त्य सकारादि एवं हकारद्वय के मध्यगत हो तब वह इस विद्या का कामराजकूट होगा। ऐसी स्थिति में कामराजकूट में प्रथम दन्त्य सकार, तदनन्तर हकार, अनन्तर ककार, अनन्तर हकार, अनन्तर एकार-अनन्तर ईकार, अनन्तर लकार, अनन्तर माया। सहाननम् से यह विदित होता है कि इस विद्या का वाग्भव कूट ही शक्तिकूट है। इससे चन्द्र, शिव, काम, भग, चतुर्थस्वर, भू तथा लज्जाबीज द्वारा प्रथम वाग्भवकूट; चन्द्र, शिव, काम, शिव, भग, ई, भू तथा लज्जा बीज से द्वितीय कामराजकूट एवं चन्द्र, शिव, काम, भग, चतुर्थ स्वर, भू, लज्जाबीज द्वारा तृतीय शक्तिकूट निर्मित होता है।।३४।।

तथा च चन्द्रपीठे—

चन्द्रः शिवः कामभगे सर्पिणीक्ष्मापरेतिवाक्।
कामं कभगयोर्मध्ये शिवः शक्तौ भृगुः शिवः।
कभगे तूर्यलपरा चन्द्रेणोपासिता मता ॥३५॥

चन्द्रपीठ ग्रन्थ में कहा गया है कि चन्द्र, शिव, काम, भग, सर्पिणी (ई) क्ष्मा (ल) तथा परामाया बीज—यह है वाग्भवकूट। क तथा भग के मध्य (क तथा ए के मध्य) शिव होने पर कामराजकूट हो जाता है। शक्तिकूट में भृगु, शिव, क, भग, ई, ल तथा परा (लज्जाबीज) है। यह विद्या चन्द्र द्वारा उपासिता है।।३५।।

अस्यार्थः—वाक् वाग्भवकूटमित्यर्थः। अस्यैव वाग्भवकूटस्य ककारे-कारयोर्मध्ये शिव इति। कामं कामराजकूटमित्यर्थः। शक्तौ शक्तिकूटे इत्यर्थः। तथा च सहकएईलह्रीं, सहकहएईलह्रीं, सहकएईलह्रीं इति सिद्धम्। इयं चन्द्रोपासिता द्वाविंशत्याक्षरी॥३६॥

वाक् = वाग्भव कूट। इस वाग्भव कूट के क तथा ए के मध्य शिव स्थित है। कामं = कामराजकूट। शक्तौ = शक्तिकूट। फलस्वरूप मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—सहकएईलह्रीं, सहकहएईलह्रीं, सहकएईलह्रीं'। बाईस अक्षरों वाली यह विद्या चन्द्र द्वारा उपासिता है।।३६।।

तत्रैव—

हसाद्यं वाग्भवं बीजं शिवाद्यं सह मध्यगम्।
मादनं कामराजं तु तृतीयं शृणु पार्वति।
हसाद्यं शक्तिबीजन्तु कुबेरेण समर्चिता॥३७॥

वहीं यह भी कहा है कि कामराज विद्या का प्रथम वाग्भव कूट यदि हसाद्य है, तव वह विद्या का वाग्भव कूट होगा। द्वितीय वाग्भव में ककार यदि हकारादि तथा सकार- हकार के मध्यगत है, वह कामराज नामक कूट होगा। हे पार्वति! तृतीय शक्तिकूट सुनो! शक्तिकूट हसाद्य होगा। यह कुबेर द्वारा उपासित विद्या है।।३७।।

अस्यार्थः—कामराजाख्यविद्याया आद्यं वाग्भवकूटं हसाद्यञ्चेदस्या वाग्भवं बीजम्। तस्या द्वितीयवाग्भवे ककारो यदि हकारादिर्दन्त्यसकारहकार-योर्मध्यश्च स्यादस्याः कामराजाख्यकूटम्। तथा च कामराजकूटे आदौ हकारस्ततो दन्त्यसकारस्तत ककारस्ततो हकारस्तत एकारस्तत ईकार-स्ततो लकारस्ततो मायेति। हसाद्यमिति। तथा चास्या वाग्भवकूटमेव शक्तिकूटमित्यर्थः। तेन शिवचन्द्रकामभगतूर्यस्वरभूलज्जाभिः प्रथमं वाग्भवकूटम्। शिवचन्द्रकामशिवभगतूर्यस्वरभूलज्जाभिर्द्वितीयं कामराज-कूटम्। शिवचन्द्रकामभगतूर्यस्वरभूलज्जाभिस्तृतीयं शक्तिकूटम्॥३८॥

कामराज विद्या का प्रथम वाग्भव कूट यदि आदि में 'ह' 'स' वर्ण से युक्त हो, तब यह इस विद्या का वाग्भव कूट होगा। इसके द्वितीय वाग्भव का ककार यदि आदि में 'ह' से युक्त है और 'स' हकार के मध्यगत है तब वह उसका कामराज कूट होगा। इस प्रकार कामराज कूट में प्रथमतः ह, स, क, ह, ए, ई, ल, ह्रीं होगा। हसाद्यात् का अर्थ है कि ऐसा होने पर इसका वाग्भव कूट ही शक्तिकूट है। इसीलिये शिव, चन्द्र, काम, भग, चतुर्थ स्वर, भू तथा ह्रीं से प्रथम वाग्भवकूट; शिव, चन्द्र, काम,

शिव, भग, चतुर्थ स्वर, भू तथा लज्जाबीज से द्वितीय कामराजकूट एवं शिव, चन्द्र, काम, भग, चतुर्थ स्वर, भू तथा लज्जा बीज से तृतीय शक्तिकूट होता है।।३८।।

तथा च चन्द्रपीठे—

शिवो जीवस्ततः शम्भुर्भृगुः कामः शिवस्तथा।
शम्भुर्भृगुः कतो योज्या भगतुर्यक्षमापराः ॥३९॥

अस्यार्थः—शिवानन्तरं ततः ककारात् परं भगादि योज्यमिति वाग्भवम्। एवमेव शक्तिकूटम्। कामराजे तु कहानन्तरमेव भगादीति विशेषः। तथा च हसकएईलह्रीं, हसकहएईलह्रीं, हसकएईलह्रीमिति सिद्धम्। इयं कुबेरोपासिता द्वाविंशत्यक्षरी॥४०॥

चन्द्रपीठ में कहा है कि शिव के आगे जीव, शम्भु, भृगु, काम, शिव, शम्भु, भृगु, ककार के पश्चात् भग, चतुर्थ स्वर, क्षमा तथा परा का योग करे। मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—हसकएईलह्रींए हसकहएईलह्रींए हसकएईलह्रीं। बाईस अक्षरों वाली यह विद्या कुबेर द्वारा उपासित है।।३९-४०।।

तत्रैव—

कामराजाख्यविद्याया हित्वा भूमिं तृतीयके।
शक्तिबीजे स्थितां देवि! चन्द्राधः कुरु तत्र च।
इन्द्राराधितविद्येयं भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ॥४१॥

कामराजनामक विद्या के भूमि (ल) के तृतीय स्थान से हटाकर सकार के आगे रखे। ऐसी स्थिति में शक्तिकूट में प्रथमतः स, ल, क, ह्रीं होगा। अन्य दोनों वागभव तथा शक्तिकूट पूर्ववत् ही रहेंगे। अतः काम, भग, ई, ल तथा ह्रीं द्वारा प्रथम कूट; शिव, चन्द्र, काम, शिव, इन्द्र तथा ह्रीं से द्वितीय कूट एवं चन्द्र, इन्द्र, काम (क) तथा ह्रीं से तृतीय कूट होता है। ऐसी स्थिति में मन्त्रोद्धार होता है कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सलकह्रीं। यह १५ अक्षरों की विद्या इन्द्र द्वारा पूजिता है।।४१।।

तत्रैव—

कामराजाख्यविद्याया वाग्भवे मादनं त्यज।
चन्द्रं तत्रैव संयोज्य कामराजे ततः परम्।
हित्वा चन्द्रं मुखे कुर्याद् विद्येयं नन्दिपूजिता ॥४२॥

वहीं यह भी कहा है कि कामराज नामक विद्या के वाग्भव के ककार का त्याग करे। वहाँ 'क' के स्थान पर चन्द्र (स) का योग करके उसके पश्चात् कामराज के चन्द्र (स) का त्याग करके उसे प्रारम्भ में लगाये। यह विद्या नन्दी द्वारा पूजिता है।।४२।।

अस्यार्थः—कामराजाख्यविद्याया वाग्भवे ककारस्थाने दन्त्यसकारं दद्यात्। तथा च चन्द्रभगतूर्येन्द्रमायाभिर्वाग्भवकूटम्। कामराजे पुनः शिवान्ते चन्द्रं त्यक्त्वा मुखे शिवादौ दद्यात्। तथा च चन्द्रशिवकाम-शिवभूलज्जाभिः कामराजकूटम्। शक्तिकूटन्तु समानम्॥४३॥

कामराज नामक विद्या के वाग्भव कूट में ककार के स्थान पर दन्त्य सकार लगाये। इससे चन्द्र, भग, चतुर्थ स्वर, इन्द्र तथा मायाबीज द्वारा वाग्भव कूट होगा—सएईलह्रीं। कामराज कूट में पुन: शिवान्त चन्द्र का त्याग करके मन्त्र के आदि में शिव के पहले लगाये। इससे चन्द्र शिव काम शिव भू तथा लज्जावीज द्वारा कामराज कूट होगा—सहकहलह्रीं। शक्तिकूट समान रहेगा (सकलह्रीं)।।४३।।

तथा च चन्द्रपीठतन्त्रे—

भृगुर्भगं बिन्दुमती ल माया भृगुः शिवः कामहभूमिमायाः ।
भृगुः स्मरो भूर्भुवनेश्वरी च विद्येयमुक्ता भुवि नन्दिवन्द्या ॥४४॥

भृगु (स) भग (ए) बिन्दुमती (ई) ल, माया (ह्रीं); भृगु, शिव काम, ह, भूमि तथा माया। भृगु, स्मर, भू, भुवनेश्वरी (ह्रीं)। यह विद्या नन्दी द्वारा पूजिता के रूप में पृथिवी पर प्रकाशित है।।४४।।

भृगुर्दन्त्यसकारः। बिन्दुमती चतुर्थस्वरः। तथा च सएईलह्रीं, सहकह-लह्रीं। सकलह्रीं इति सिद्धम्। इयं नन्दिपूजिता पञ्चदशाक्षरी॥४५॥

भृगु (स), भग (ए), बिन्दुमती (ई)। अतएव सएईलह्रीं, सहकहलह्रीं, सकलह्रीं—यह पन्द्रह अक्षरों वाली विद्या नन्दि द्वारा पूजित है।।४५।।

तत्रैव—

त्रिकूटे भुवनेशानीं द्विधा कुरु महेश्वरि ।
बिन्दुहीना नादहीना दुर्वासःपूजिता भवेत् ॥४६॥

वहीं यह भी कहा गया है कि हे महेश्वरि! कामराज विद्या के त्रिकूट में जो तीन मायाबीज है, उसे दो भाग में (ह+री) करो। वह नाद-बिन्दुरहित होगी। यह दुर्वासा द्वारा पूजिता विद्या है।।४६।।

तन्त्रान्तरे—

कामराजाख्यविद्यायास्त्रिकूटेषु वरानने ।
या स्थित्वा भुवनेशानी द्विधा कुरु महेश्वरि ।
नादहीना बिन्दुहीना दुर्वासःपूजिता भवेत् ॥४७॥

तन्त्रान्तर में कहा है कि हे वरानने! कामराज नामक विद्या के त्रिकूट में जो भुवनेशानी ह्लीं बीज है, हे महेश्वरि! उसे द्विधा करो। वह नादहीना और बिन्दुहीना होकर दुर्वासा द्वारा पूजिता विद्या है।।४७।।

अस्यार्थः—कामराजाख्यविद्यायास्त्रिकूटेषु यन्मायाबीजत्रयं वर्त्तते, तत् त्रिधाकृत्य द्विखण्डीकृत्य नादबिन्दुहीनञ्च कृत्वोच्चरेत्। तेन हरी इति वर्णद्वयं मायास्थाने प्रयोज्यम्। दक्षिणामूर्त्यौ च—मायास्थाने हरीवर्णयुगलञ्च क्रमाँल्लिखेदिति। तेन काम-भग-तूर्येन्द्र-शिवरीकारैः प्रथमं कूटम्। शिवचन्द्रकामशिवभूशिवरीकारैः द्वितीयं कूटम्। चन्द्र-काम-भू-शिवरीकारैस्तृतीयं कूटम्। एतेनात्रैव विश्लिष्टोच्चारणस्य विहितत्वान्नान्यत्र संयुक्तबीजस्य विश्लेषेणोच्चारणं प्रतीयते, विश्लेषं विनाऽनुच्चार्याणां कूटानां स्वगत्यैव विश्लेषेणोच्चारणमिति ध्येयम्। तथा च कएईलहरी, हसकहलहरी, सकलहरी इति सिद्धम्। इयं दुर्वासः-पूजिता अष्टादशाक्षरी॥४८॥

कामराज नामक विद्या के तीन कूट में जो मायाबीज तीन संख्यक है, उसे द्विधा (दो खण्ड) करके नादहीन एवं बिन्दुहीन करके उच्चारण करे। उससे माया (ह्रीं) के स्थान पर ह+री इन वर्णद्वय का प्रयोग होगा। दक्षिणामूर्त्ति संहिता में कहा भी है—मायास्थाने हरीवर्णयुगलञ्च क्रमाँल्लिखेत्। इससे काम, भग, ई इन्द्र, ह+रीं द्वारा प्रथम कूट होगा। शिव, चन्द्र, काम, शिव, भू, शिव, 'री' द्वारा द्वितीय कूट होगा। चन्द्र, काम, भू, शिव तथा 'री' द्वारा तृतीय कूट होगा। इससे प्रतीयमान होता है कि यहाँ विभक्त वर्ण द्वारा उच्चारण विहित होने से अन्यत्र संयुक्त बीज के विश्लेषण में उच्चारण नहीं होगा। विश्लेष विना अनुच्चार्य कूट समूह का अगत्या विश्लेषण करने से उच्चारण होगा। अतएव मन्त्रोद्धार होता है—कएईलहरी, हसकहलहरी, सकलहरी। यह अट्ठारह अक्षरों वाली विद्या दुर्वासा द्वारा पूजित है।।४८।।

तत्रैव—

लोपामुद्राख्यविद्याया द्वितीयाया महेश्वरि।
कामराजभृगुं हित्वा मुखे कुर्यात्तमेव हि॥४९॥
शिवं विना चतुर्थन्तु तार्त्तीये सकगः शिवः।
एषा विद्या वरारोहे! त्रिपुरा सूर्यसेविता॥५०॥

वहीं कहा है कि हे महेश्वरि! द्वितीय स्थान में उद्धृत प्रथम लोपामुद्रा विद्या के भृगु को त्याग करके उसे मन्त्र के आदि में लगाये। चतुर्थ वर्ण शिव का त्याग करे। तृतीय शक्तिकूट में स क ल ह होगा। यह विद्या सूर्य द्वारा सेविता है।।४९-५०।।

अत्र द्वितीयलोपामुद्राभ्रमनिरासाय द्वितीयाया इति। उद्धारक्रमात् कामराजख्यविद्यापेक्षया द्वितीयायाः प्रथमलोपामुद्राया इति तदर्थः। तथा च प्रथमलोपामुद्रायाः कामराजकूटे भृगुं अर्थात् हकाराधःस्थदन्त्यसकारं त्यक्त्वा तमेव दन्त्यसकारमेव मुखे आदौ हकारोपरि कुर्यात्। चतुर्थन्तु शिवं विना अर्थात् द्वितीयहकारं त्यजेत्। तथा तृतीयशक्तिकूटे शिवो हकारः सकगः दन्त्यसकारककारयोरधोगामी वक्ष्यमाणचन्द्रपीठवचनैकवाक्यात्। वाग्भवकूटन्तु पूर्ववदेव तथा च शिवचन्द्रकामेन्द्रमायाभिर्वाग्भवकूटम्। चन्द्रशिवकामेन्द्रमायाभिः कामराजकूटम्। चन्द्रकामशिवेन्द्रमायाभिः शक्तिकूटम्॥५१॥

यहाँ द्वितीय लोपामुद्रा के सम्बन्ध में भ्रम-निवारणार्थ 'द्वितीयाया' कहा गया है। उद्धारक्रम से कामराज नामक विद्या की द्वितीया अर्थात् 'द्वितीय स्थानवर्ती प्रथम लोपामुद्रा का'—यह अर्थ है। इस प्रकार प्रथम लोपामुद्रा के कामराज कूट के भृगु (ह) के अध:स्थ 'स' का त्याग करके उस 'स' को मन्त्र के आदि में 'ह' के पहले लगाये। किन्तु द्वितीय 'ह'कार का त्याग करे। अत: तृतीय शक्तिकूट में वक्ष्यमाण चन्द्रपीठ तन्त्र के वचन के साथ एक वाक्यता प्रयुक्त शिव (ह) स क में से 'स' तथा क के अधोगामी होगा। इस प्रकार से वाग्भव कूट पूर्ववत् रहेगा। इस स्थिति में शिव (ह) चन्द्र (स) काम (क) इन्द्र (ल) तथा मायाबीज (ह्रीं) द्वारा वाग्भव कूट होगा हसकलह्रीं चन्द्र (स) शिव (ह) काम (क) इन्द्र (ल) तथा माया (ह्रीं) द्वारा कामराजकूट होगा सहकलह्रीं एवं चन्द्र (स) काम (क) शिव (ह) इन्द्र (ल) तथा माया (ह्रीं) द्वारा शक्तिकूट होगा सकहलह्रीं।।५१।।

दक्षिणामूर्त्तिसंहितायाञ्च प्रथमलोपामुद्रामधिकृत्य—

कानुस्थानाच्छिवं त्यक्त्वा हसाद्यं वाचि मन्मथे।
सहाद्यमन्ते सहयोर्मध्ये कः सूर्यपूजिता॥५२॥

दक्षिणामूर्त्ति संहिता में प्रथम लोपामुद्रा के बारे में कहते हैं कि मध्यम कूट में ककार के पश्चात् देश से 'ह'कार को हटाकर वाग्भव कूट होता है (अर्थात् 'क' के पश्चात् स्थित 'ह' को हटाये)। इसी प्रकार कामराज कूट में से 'ह' को त्याग कर वह यदि हसाद्य हो तब वह कामराज कूट होगा। अन्त में सहाद्य शक्तिकूट में 'स' तथा 'ह' के मध्य में 'क' होने पर शक्तिकूट होगा। यह विद्या सूर्यपूजिता है।।५२।।

अस्यार्थः—ककारस्यानुस्थानात् पश्चाद्देशात् हकारं परिशेषेण मध्यमकूटस्थद्वितीयहकारं त्यक्त्वा तदेव कूटं सहाद्यञ्चेदस्या मन्मथे काम-

राजकूटे भवति। अन्ते प्रथमलोपामुद्रायाः शक्तिकूटे सकारहकारयोर्मध्ये ककारश्चेदर्थात् ककारस्याधो हकारो दीयते चेदस्याः शक्तिकूटं भवतीति॥५३॥

इसका अर्थ यह है कि ककार के पश्चात् देश से हकार के परिशेष में मध्यम कूटस्थ द्वितीय 'ह' का त्याग करने से इस विद्या का वाग्भव कूट होता है। सहाद्यम् 'हस' स्वरूप की उक्ति है। इस प्रकार से द्वितीय हकार का त्याग करके उस कूट को सहाद्य करने से यह कामराज कूट हो जाता है। अन्त में प्रथम लोपामुद्रा विद्या के शक्तिकूट में 'स' तथा 'ह' के मध्य में 'क' लगाने से वह इस विद्या का शक्तिकूट हो जाता है।।५३।।

व्यक्तमाह चन्द्रपीठे—

शिवो भृगुः काम धरापराः सहकलाः परा।
जीवकामेशलपराः सौरि सर्वसमृद्धिदा॥५४॥

जीवो दन्त्यसकारः।

चन्द्रपीठ ग्रन्थ में कहते हैं कि शिव (ह) भृगु (स) काम (क) धरा (ल) तथा परा हसकलह्रीं, सहकलह्रीं तथा सकहलह्रीं—यह सूर्योपासिता सर्वसमृद्धिप्रदा विद्या है।।५४।।

एवञ्च द्वितीयलोपामुद्रामाश्रित्य तन्त्रसारोक्तकल्पनमयुक्तमेव चन्द्रपीठ-तन्त्रविरोधादिति ध्येयम्। तेन शिवभृगुकामधरापराभिर्वाग्भवकूटम्। सहकलपराभिः कामराजकूटम्। जीवकामेशलपराभिः शक्तिकूटम्। तथा च हसकलह्रीं, सहकलह्रीं, सकलहलह्रीं—इति सिद्धम्। इयं सूर्यपूजिता पञ्चदशाक्षरी॥५५॥

इति दशत्रिकूटाः

इस प्रकार से द्वितीय लोपामुद्रा को आश्रय करके तन्त्रसार ग्रन्थ की कल्पना अयुक्त है; क्योंकि वह चन्द्रपीठ तन्त्र से विरोधी है। अत: शिव (ह) भृगु (स) काम (क) धरा (ल) तथा परा ह्रीं—यह वाग्भव कूट है। सहकलह्रीं कामराज कूट है और जीव (स) काम (क) ईश (ह) ल तथा ह्रीं शक्ति कूट हैं (सकहलह्रीं)। इस प्रकार 'हसकलह्रीं, सहकलह्रीं, सकहलह्रीं' यह मन्त्रोद्धार होता है, जो कि सूर्यपूजिता पन्द्रह अक्षरों की विद्या है। इस प्रकार दस त्रिकूट का विवेचन किया गया।।५५।।

अथ चतुष्कूटा

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि चतुष्कूटाञ्च शाङ्करीम्।
लोपामुद्रां द्वितीयान्तु विलिख्य सुरवन्दिते॥५६॥

पुनर्विलिख्य तामेव चतुर्थे पञ्चमे स्थिताम्।
हित्वा तु भुवनेशानीमेकोच्चारेण चोच्चरेत्।
चतुष्कूटात्मिका विद्या शङ्करेण प्रपूजिता ।।५७।।

हे देवि! हे शंकरि! चतुष्कूटा कहता हूँ, सुनो। हे सुरवन्दिते! द्वितीय लोपामुद्रा को लिखकर पुन: उसे लिखे अर्थात् दुहरा कर लिखे। उसके चतुर्थ तथा पञ्चम कूट में स्थित भुवनेशी (ह्रीं) को त्याग करके एक उच्चारण में द्वितीय का उच्चारण करना चाहिये। यह चतु:ष्कूटा विद्या शंकर-पूजिता है।।५६-५७।।

अस्यार्थः—अत्र द्वितीयत्वं प्रथमलोपामुद्रापेक्षया, न तु कामराजापेक्षयेति तन्त्रसारकारादयस्तथा च द्वितीयलोपामुद्रायां द्विर्लिखितायां षट्कूटानि भवन्ति। तत्र चतुर्थपञ्चमकूटयोर्मायाबीजं त्यजेत्। तथा च प्रथमकूटत्रयं पृथगुच्चार्य शेषकूटत्रयमेकीकृत्योच्चारयेत्। तेन कामभगतूर्येन्द्रमायाभिः प्रथमकूटम्। शिवचन्द्रकामशिवेन्द्रमायाभिर्द्वितीयकूटम्। चन्द्रशिवचन्द्रकामेन्द्रमायाभिस्तृतीयकूटम्। कामभगतूर्येन्द्रशिवचन्द्रकामशिवेन्द्रचन्द्रशिवचन्द्रकामेन्द्रमायाभिश्चतुर्थकूटम्। तथा च कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सहसकलह्रीं, कएईलहसकईलसहसकलह्रीं, इति सिद्धम्। इत्येका चतुष्कूटा द्वात्रिंशदक्षरी शङ्करोपासिता।।५८।।

यहाँ द्वितीय है प्रथम लोपामुद्रा की अपेक्षा में। कामराज विद्या की अपेक्षा में नहीं है। यह तन्त्रसार का वचन है। इस प्रकार द्वितीय लोपामुद्रा को दो बार लिखने से छ: कूट हो जाता है (अर्थात् प्रत्येक में तीन कूट होने से दो बार लिखने पर छः कूट)। उसमें से चतुर्थ तथा पञ्चम कूट के मायाबीज (ह्रीं) का त्याग करना चाहिये।

इस प्रकार प्रथम कूट का अलग से उच्चारण करके शेष तीन कूट का एक साथ उच्चारण करना चाहिये। इससे—

काम, भग, तूर्य, चन्द्र तथा माया = प्रथम कूट।

शिव, चन्द्र, काम, शिव, इन्द्र तथा माया = द्वितीय कूट।

चन्द्र, शिव, चन्द्र, काम, इन्द्र तथा माया = तृतीय कूट।

काम, भग, ई, इन्द्र, शिव, चन्द्र, काम, शिव, इन्द्र, चन्द्र, शिव, चन्द्र, काम, इन्द्र, माया = चतुर्थ कूट।

इस प्रकार मन्त्रोद्धार होता है—कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सहसकलह्रीं, कएईलहसकईलसहसकलह्रीं। यह शंकर द्वारा उपासिता बत्तीस अक्षरों वाली विद्या है।।५८।।

अथ षट्कूटा

लोपामुद्रां तथा देवि विलिखेत्तदनन्तरम्।
नन्दिकेश्वरविद्याञ्च षट्कूटा वैष्णवी भवेत्॥५९॥

अब षट्कूटा कहते हैं। हे देवि! द्वितीय लोपामुद्रा के अनन्तर उसी प्रकार नन्दीपूजित विद्या को लिखे। यह वैष्णवी षट्कूटा होती है।।५९।।

अस्यार्थः—लोपामुद्रां द्वितीयलोपामुद्रां सन्निहितत्वात्, 'अगस्त्यस्य द्विधा विद्यां विलिख्य नन्दिपूजिता'मिति दक्षिणामूर्त्तिसंहितावचनाच्च। तन्त्रसार-कृतञ्च लोपामुद्रां पुनर्देवीति पाठं वदन्तः पुनःशब्दस्वरसात् द्वितीयां लोपामुद्रामित्यर्थ इत्याहुः। तेन कएईलह्रीं इति प्रथमम्। हसकहलह्रीं—इति द्वितीयम्। सहसकलह्रीं—इति तृतीयम्। सएईलह्रीं—इति चतुर्थम्। सहकहलह्रीं—इति पञ्चमम्। सकलह्रीं—इति षष्टकूटम्। तन्त्रकौमुदी-कृतस्तु प्रक्रान्तत्वात् प्रथमलोपामुद्रामाहुस्तन्न पुनःशब्दवैयर्थ्यात् दक्षिणा-मूर्त्तिविरोधाच्च। इत्येका षट्कूटा द्वाविंशत्यक्षरी विष्णूपासिता। इति शुद्धा द्वादशविद्यैवेति॥६०॥

यहाँ लोपामुद्रा दक्षिणामूर्त्ति संहितानुसार द्वितीय लोपामुद्रा है। तन्त्रसारकार ने 'लोपमुद्रा पुनर्देवि' कहकर पुनः शब्द के स्वारस्य (महिमा) से 'द्वितीयां लोपामुद्रां' यह अर्थ कहा है। इस प्रकार कएलईह्रीं—प्रथम। हसकहलह्रीं—द्वितीय। सहसकलह्रीं—तृतीय। सएईलह्रीं—चतुर्थ। सहकहलह्रीं—पञ्चम। सकलह्रीं—षष्ठम कूट निष्पन्न होता है। तन्त्रकौमुदीकार ने यहाँ आरम्भवशात् प्रथमा लोपामुद्रा कहा है। वह सङ्गत नहीं है; क्योंकि उससे पुनः शब्द के वैयर्थ्य का प्रसङ्ग उत्पन्न होता है। साथ ही दक्षिणामूर्त्ति संहिता के वचन का विरोध भी हो जाता है। यह षट्कूटा विष्णु द्वारा उपासिता है। यह शुद्धा विद्या बारह प्रकार की है।।६०।।

अथ पारिभाषिकषोडश्यः

एतासां द्वादशविद्यानामादौ ह्रीं श्रीं इति कूटद्वयं योजितञ्चेदन्या द्वादशविद्या भवन्ति॥१॥

अब पारिभाषिक षोडशी वर्ग कहते हैं। यदि ऊपर कही गयी १२ विद्याओं के आदि में 'ह्रीं श्रीं' यह कूटद्वय युक्त होता है, तब वह अन्य प्रकार की विद्या हो जाती है।।१।।

तथा ज्ञानार्णवे—

चन्द्रान्तं वारुणान्तञ्च शक्रादिसहितं पृथक्।
वामाक्षिबिन्दुना युक्तं विश्वमातृकलान्वितम्॥२॥

विद्यादौ योजयेद्देवि साक्षाज्जाग्रत्स्वरूपिणी ।
त्रिकूटा सकला भद्रे पञ्चकूटा भवन्ति हि ॥३॥
वैष्णवी वसुकूटा स्यात्षट्कूटा शाङ्करी भवेत् ।
द्वितीयोऽयं प्रकारः स्याद्दुर्लभो भुवनत्रये ॥४॥

ज्ञानार्णव में कहा है कि चन्द्रवर्ण 'स' का अन्त वर्ण 'ह', वरुण के अन्त वर्ण 'श' को शक्र के आदि वर्ण 'र' से पृथक् योग करके वामाक्षि (ई) तथा विश्वमातृकलारूप बिन्दु नाद से योग करने से यह विद्या साक्षात् ब्रह्मरूपिणी हो जाती है। दोनों को पूर्वोक्त विद्याओं के आदि में योग करने से यह त्रिकूट ही पञ्चकूट हो जाता है। विष्णु की उपासिता विद्या वैष्णवी वसुकूटा (अष्टकूटा) है। शंकर द्वारा उपासिता शांकरी विद्या षट्कूटा है। यह त्रिभुवन में दुर्लभ है।।२-४।।

अस्यार्थः—चन्द्रः सकारस्तस्यान्तो हकारः। वारुणो वकारस्तदन्तः शकार-शुद्धये पृथक्। शक्रादिना रेफेण सहितम्। वामाक्षिबिन्दुनादस्तद् युक्तम्। तथा विश्वमातृकला नादस्तद्युक्तम् ॥५॥

इसका अर्थ है—चन्द्र = स। उसके अन्त में 'ह'। वारुण = व। उसके अन्त में 'श'। यह दोनों पृथक् हैं। शक्र लकार के आदि रकार के साथ वामाक्षि ई तथा बिन्दु के साथ युक्त होकर विश्वमातृकला नाद के साथ युक्त होता है।।५।।

तथा च वर्णाभिधाने—

अर्द्धमात्रा कला वाणी नामोऽर्द्धेन्दुः सदाशिवः ।
अनुच्चार्या तुरीया च विश्वमातृकला परा ॥६॥ इति ।

वर्णाभिधान ग्रन्थ में कहते हैं कि अर्धमात्रा, कला, वाणी, नाद, अर्द्धेन्दु, सदाशिव, अनुच्चार्या, तुरीया, विश्वमातृकला तथा परा—ये सब नाद के वाचक हैं।।६।।

एवञ्च मायारमात्मकबीजद्वयं विद्यादौ प्रागुक्तद्वादशविद्यादौ योजयेत्। तदा विद्या साक्षाज्जाग्रत्स्वरूपिणी भवति। अनयोरुभयोरेव योगो नान्य-तरयोः। तेन चतुर्विंशतिविद्या उद्धृताः। मायादौ कूटव्यवहारस्तु गौण इत्युक्तः प्राक्। एवं मायारमाबीजयोरादौ प्रणवश्चेत् प्रयुज्येत तदा अन्येऽपि द्वादशप्रकाराः भवन्ति॥७॥

इस प्रकार माया तथा रमारूप बीजद्वय विद्या के आदि में अर्थात् पहले कही गयी १२ विद्याओं के आदि में योग करे। तब वह विद्या साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा हो जाती है। माया तथा रमा दोनों का (ह्रीं श्रीं) ही योग करना होगा। एक का योग करने से नहीं होगा। इससे १२ पहले वाली तथा प्रत्येक में ह्रीं श्रीं का योग करने से बनी १२ विद्या,

सब मिलाकर २४ विद्या उद्धृत होती हैं। आदि में माया लगाने से कूटव्यवहार गौण हो जाता है। यह पहले कहा जा चुका है। इसी प्रकार ह्रीं श्रीं के पहले 'ॐ' लगाने से अन्य १२ विद्यायें हो जाती हैं।।७।।

यथा—

वेदादिमण्डिता देवि शिवशक्तिमयी सदा।
तस्या भेदास्तु सकलाः षट्कूटाः परमेश्वरि।
वैष्णवी नवकूटा स्यात्सप्तकूटा तु शाङ्करी ।।८।।

कहा गया है कि हे देवि! जब शिव-शक्तिमयी (ह्रीं श्रीं) वेदादि (वेद के आदि ॐ) से युक्त होती है, तब हे परमेश्वरि! सभी कूट भिन्न-भिन्न षट्कूट हो जाते हैं। वैष्णवी नवकूट होती है। शांकरी सप्तकूट होती है। वैष्णवी = विष्णु-उपासिता विद्या। शांकरी = शिवोपासिता विद्या।

पूर्वोक्त बीजद्वयवती विद्या आदि में ओंकार द्वारा मण्डिता है अर्थात् विद्या के आदि में ओंकार है। तस्याः—त्रिकूटा के लिये प्रयुक्त हुआ है। षड्विंश = २६ विद्या इस प्रकार उद्धृत होती है। यह चतुर्विंशति विद्या ही पारिभाषिक षोडशी है।।८।।

अथ महाषोडशी

ज्ञानार्णवे—

आद्यबीजद्वयं भद्रे! विपरीतक्रमेण हि।
विलिख्य परमेशानि ततोऽन्यानि समुद्धरेत् ।।९।।
अन्तर्मुखी वरारोहे! कुमारी त्रिपुरेश्वरी।
एभिस्तु पञ्चसंख्याकैर्बीजैः सम्पुटिता यजेत्।
षट्कूटा परमेशानि विद्येयं षोडशाक्षरी ।।१०।।

अब महाषोडशी कहते हैं। ज्ञानार्णव में कहा है कि हे प्रिये! इस विद्या के तीन भेद कहे गये। अब महाविद्या को सुनो। हे भद्रे! हे परमेशानि! आद्य बीजद्वय ह्रीं श्रीं को विपरीत क्रम से लिखे अर्थात् श्रीं ह्रीं लिखे। तदनन्तर अन्य बीजों का उद्धार करना चाहिये। हे वरारोहे! कुमारी त्रिपुरेश्वरी अन्तर्मुखी हो अर्थात् बाला के अन्तःस्थित 'क्लीं' बीज के आदि में हो। बाला बीज है—क्लीं ऐं सौः। यह बीज अब इस प्रकार से होगा—श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः (श्री ह्रीं आदि में लगा है)। अब पञ्चबीज द्वारा षट्कूट कहा जाता है। कएईलह्रीं, हसकलह्रीं, ससहसकलह्रीं, सएईलह्रीं, सहकलह्रीं, सकलह्रीं। इनको अनुलोम विलोम से पुटित करके पूजा करे।।९-१०।।

त्रिकूटाः सकला भद्रे षोडशार्णा भवन्ति हि।
वैष्णव्येकोनविंशार्णा शैवी सप्तदशाक्षरी ॥११॥

हे भद्रे! सभी त्रिकूटायें १६ अक्षरों वाली होती हैं। वैष्णवी विद्या २१ अक्षरों वाली तथा शैवी विद्या १७ अक्षरों वाली होती है।।११।।

अस्यार्थः—आद्यबीजद्वयं प्रकृतद्वादशविद्यानामादौ प्रयुज्यमानं मायार-मात्मक- बीजद्वयं तस्य विपरीतक्रमः आदौ रमा पश्चान्माया। कुमारी च प्रागुक्ता ऐं क्लीं सौरिति बीजत्रयात्मिका सैव अन्तर्मध्ये स्थितामर्थात् कामबीजं मुखे आदौ यस्यास्तादृशी कार्या। क्लीं ऐं सौरिति संस्था-प्येत्यर्थः। ततश्च एतैः पञ्चसंख्याकैर्बीजैः षट्कूटां नवकूटां सप्तकूटां वा सम्पुटितां सम्पुटवत् कृतां यजेत्। तेनानुलोमविलोमतः पुटितमित्यर्थः॥१२॥

आद्य बीजद्वय = प्रकृत द्वादशविद्या के आदि में लगाये जाने वाले माया (ह्रीं) तथा रमात्मक (श्रीं) बीज। इसका विपरीत क्रम है—पहले रमा (श्रीं) तब माया (ह्रीं)। कुमारी = ऐं क्लीं सौः बीजत्रयरूपा। यही अन्तः तथा मध्य। वे अन्तर मध्य में स्थिता अर्थात् क्लीं ऐं औः यह रूप स्थापन किया है अर्थात् कामवीज क्लीं जिसके आदि में है—ऐसा करना होगा; अर्थात् 'ऐं' को मध्य में करके 'क्लीं' को आदि में रखना होगा। इसलिये पञ्चबीजों से षट्कूटा, नवकूटा तथा सप्तकूटा को सम्पुटित जैसे पूजन करे। अनुलोम-विलोम से पुटित करे, यह तात्पर्य है।।१२।।

तथा चायं निर्गलितार्थः—पूर्वोक्तानां द्वादशविद्यानामादौ प्रणवमायार-मायोगो यदि क्रियते, तदा सर्वा त्रिकूटा षट्कूटा भवति, षट्कूटा नवकूटा भवति, चतुष्कूटा सप्तकूटा भवति। तासाञ्च रमादिबीजपञ्चकसम्पुटं कुर्यात्। ततश्च सहजत्रिकूटा प्रणवमायारमाभिः षट्कूटा भूत्वा बीजपञ्चकपुटिता सति महाषोड़शी भवति। सहजषट्कूटा ताभिर्नवकूटा भूत्वा पञ्चपुटिता सती ऊनविंशतिवर्णा भवति। सहजषट्कूटा ताभिर्नवकूटा कृत्वा पञ्चपुटिता सती सप्तदशार्णा भवति। एवञ्च यद्यपि त्रिकूटामात्रं षोडशी भवति, तथापि कामराजघटिता लोपामुद्राघटिता च महाषोडशी मुख्या वक्ष्य-माणनिबन्धवचनस्वरसाम्। तत्रापि प्रथमलोपामुद्राघटितैव मुख्या। 'पञ्च-दशाक्षरीं पश्चादुद्धरेत् परमेश्वरि' इति वक्ष्यमाणगन्धर्वतन्त्रवचनात्। एवञ्च लोपामुद्रापदेन सर्वत्र पञ्चदशाक्षरी प्रथमलोपैव ग्राह्या, न तु सप्तदशाक्षरी द्वितीयापि, त्रिकूटापदेन तु साप्युच्यते एकोनविंशार्णा सप्तदशार्णा च परिभाषिक्येव। तेन श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः इति प्रथमं बीजपञ्चकं ततः

प्रणवस्ततो माया ततो रमा ततः कामराजविद्यायाः प्रथमलोपामुद्राया वा कूटत्रयं ततः सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं इति बीजपञ्चकम्, इत्येषा प्रधानषोडशी। एवमपरापर-त्रिकूट-मध्याप्यूह्या। तथा च श्री ह्रीं क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सौः ऐं क्लीं श्रीं इति सिद्धम्॥१३॥

एवं प्रथमलोपामुद्राघटिता षोडश्यूह्या॥१४॥

अत: इसका निर्गलितार्थ होगा कि पूर्वोक्त द्वादश विद्या के आदि में प्रणव, माया तथा रमा (ॐ ह्रीं श्रीं) का यदि योग होता है तब समस्त त्रिकूट शक्तिकूट हो जाते हैं तथा जो षट्कूट है, वह नवकूट हो जाता है। चतुष्कूटा विद्या सप्तकूटा हो जाती है। उनको भी रमादि बीजपञ्चक से सम्पुट करे (बीजपञ्चक—श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौ:)। तदनन्तर सहज त्रिकूट प्रणव, माया तथा रमा द्वारा षट्कूट होकर बीजपञ्चक द्वारा पुटित होकर महाषोडशी हो जाता है। स्वभावत: षट्कूट प्रणव माया तथा रमा द्वारा नवकूट होकर पञ्चबीज से पुटित होकर उन्नीस अक्षरों वाला हो जाता है। स्वभावत: सप्तकूट उनके द्वारा पुटित होकर सप्तदशार्ण होता है। इस प्रकार यद्यपि त्रिकूटा मात्र षोडशी होती है तथापि कामराजघटिता लोपामुद्रा विद्या से घटित महाषोडशी वक्ष्यमाण शारदातिलक के अभिप्रायानुसार मुख्या है। उनमें भी प्रथम लोपामुद्रा से घटिता मुख्या है। हे परमेश्वरि! इसके पश्चात् पञ्चदशाक्षरी का उद्धार करे—ऐसा ही गन्धर्वतन्त्र का वचन है। इस प्रकार होने पर लोपामुद्रा पद के द्वारा सर्वत्र पञ्चदशाक्षरी प्रथम लोपामुद्रा विद्या ही ग्रहणीय है; सप्तदशाक्षरी द्वितीय, लोपामुद्रा ग्रहणीय नहीं है। त्रिकूटा पद से भी यह कथित है। एकोनविंशार्णा तथा सप्तदशार्णा पारिभाषिक ही हैं। उनमें श्री ह्रीं क्लीं ऐं सौ: यह बीजपञ्चक, अनन्तर ॐ, ह्रीं श्रीं तदनन्तर कामराज विद्या अथवा प्रथम लोपामुद्रा का कूटत्रय, तदनन्तर सौ:, ऐं क्लीं, ह्रीं श्रीं यह बीजपञ्चक—यह प्रधान षोडशी है।

इसी प्रकार से अपरापर त्रिकूटों में विद्याओं को ऊह्य करना होगा। अत: मन्त्रोद्धार होता है—श्रीं ह्री क्लीं ऐं सौ: ॐ ह्रीं श्रीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सौ: ऐं क्लीं श्रीं।।१३-१४।।

केचित्तु अनुलोमतः सम्पुटितत्वमाहुस्तन्न तन्त्रविरोधात्॥१५॥

कोई-कोई कहते हैं कि अनुलोम से सम्पुट करना चाहिये; परन्तु यह तन्त्र के विपरीत है और समीचीन नहीं है।।१५।।

तथा च योगिनीतन्त्रे—

श्रीबीजमायास्मरयोनिशक्तिस्तारश्च मायाकमलाऽथ विद्या।
शक्त्यादिबीजैश्च विलोमतः सा श्रीषोडशीयन्तु शिवप्रदिष्टा॥१६॥

योगिनीतन्त्र में कहते हैं कि श्रीबीज, माया, स्मर (क्लीं), योनि (ऐं), शक्ति, तार (ॐ), माया, कमला (श्री); अनन्तर कामराजादि त्रिकूट विद्या। वही शक्ति आदि बीजों द्वारा विलोम पुटिता होकर शिव द्वारा उपदिष्ट श्रीषोडशी विद्या है।।१६।।

अत्र योनिर्वाग्भवबीजम्। यद्यपि योनिपदेन द्वादशस्वर एवोच्यते। तथा च वर्णाभिधानाम्—

क्षमात्मको जगद्योनिः परः परनिरोधकृत्। इति।

तथापि बीजमध्यपठितत्वात्तद्घटितबीजमेवोच्यते। एवमन्यत्रापि बोध्यम्। विद्या कामराजादित्रिकूटरूपा। विलोमतः इति। विलोमतः शक्त्यादि-बीजैः। शक्तिवाग्भवकाममायारमाभिरित्यर्थः॥१७॥

यहाँ योनि है—वाग्भव बीज (ऐं)। यद्यपि योनि पद से द्वादश स्वर कहा जाता है। वर्णाभिधान ग्रन्थ में भी कहा है कि क्षमात्मक, जगद्योनि, पर, परनिरोधकृत्। ये सभी ऐकार के वाचक हैं। तथापि यह योनि शब्द बीज में पठित होने से ऐकार से घटित बीज ही कहा जाता है। यही अन्य स्थल में भी जानना चाहिये। विद्या = कामराजादि त्रिकूटरूपा। विलोमत: = विलोम में शक्त्यादि बीज द्वारा शक्ति, वाग्भव, काम, माया रमाबीज द्वारा।।१७।।

गान्धर्वेऽपि—

रमाबीजं समुद्धृत्य मायाबीजं नियोजयेत्।
कामबीजं समालिख्य वाग्बीजं तदनन्तरम्॥१८॥
चतुर्दशस्वरोपेतं चन्द्रंविन्दुयुगान्वितम्।
प्रणवं भुवनेशानीं रमाञ्चैव महेश्वरि॥१९॥
व्युत्क्रमात् परमेशानीं पूर्वोक्तं बीजपञ्चकम्।
आलिख्य सम्पुटीकुर्याद्विद्येयं द्व्यष्टकूटिका॥२०॥

गन्धर्वतन्त्र में कहा है कि रमाबीज का उद्धार करके मायावीज लिखे। कामबीज को लिखकर वाग्भव बीज को लिखे। तदनन्तर चतुर्दश स्वर 'औ' तथा बिन्दुयुग (:) के साथ चन्द्र लिखे (सौ:)।

हे महेश्वरि! तत्पश्चात् प्रणव, ह्रीं, श्रीं लिखकर, पञ्चदशाक्षरी का उद्धार करे। हे परमेश्वरि! व्युत्क्रम में पूर्वोक्त बीजपञ्चक को लिखकर सम्पुट करे। यह विद्या द्विअष्ट (दो आठ = १६) अर्थात् षोडश कूटा होती है।।१८-२०।।

बिन्दुयुगं विसर्गः। पञ्चदशाक्षरी कामराजप्रथमलोपामुद्रान्यतरत्रिकूटम्। द्व्यष्टकूटिका षोडशकूटेत्यर्थः॥२१॥

बिन्दुयुग = विसर्ग। पञ्चदशाक्षरी = कामराजविद्या, प्रथम लोपामुद्रा इसका अन्यतर कूट। द्व्यष्टकूटिका = षोडश कूटिका।।२१।।

तथा च रुद्रयामले—

श्रीर्माया मदनो वाणी परा तारः शिवप्रिया।
हरिप्रिया त्रिकूटा सा परा वाणी मनोभवः।
मायालक्ष्मी महाविद्या श्रीविद्या षोडशी परा॥२२॥

परेति महतीत्यर्थः।

रुद्रयामल में कहा है कि श्रीं, माया (ह्रीं) मदन (क्लीं) वाणी (ऐं) परा (सौः) तार (ॐ) शिवप्रिया (ह्रीं) मनोभव (क्लीं माया (ह्रीं) लक्ष्मी (श्रीं)—यही हैं महाविद्या श्रीविद्या पराषोडशी। मन्त्रोद्धार होता है—श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः ॐ ह्रीं क्लीं ह्रीं श्रीं।।२२।।

दक्षिणामूर्त्तौ च—

द्वितीयस्यादियुग्मस्तु विपरीतं लिखेत् सुधीः।
बालां चान्तमुखीं कृत्वा विलिखेत्तदनन्तरम्॥२३॥
तारं मायां ततो लक्ष्मीं तथा कूटत्रयं लिखेत्।
कलया सम्पुटां कुर्याद्रमाख्यां परमेश्वरि॥२४॥

दक्षिणामूर्त्ति संहिता में कहते हैं कि सुधी साधक कल्पोक्त आदि बीजद्वय ह्रीं श्रीं को विपरीत भाव से अर्थात् श्रीं ह्रीं लिखना चाहिये। तदनन्तर बाला मन्त्र को इसके अन्दर लिखना चाहिये। तदनन्तर तार (ॐ) माया (ह्रीं) तथा लक्ष्मी (श्रीं) इन कूटत्रय को लिखना चाहिये। हे परमेश्वरि! रमा नामक पूर्वोक्त प्रणवादि षट्कूट को पूर्वोक्त बीजपञ्चकरूप कला से सम्पुट करना चाहिये।।२३-२४।।

अस्यार्थः—द्वितीयस्य द्वितीयकल्पोक्तस्य मायारमाघटितमन्त्रस्य। कलया पूर्वोक्तपञ्चवर्णात्मककलयेत्यर्थः। रमाख्यां प्रणवादिषट्कूटाम् उमाख्या-मिति पाठेऽप्ययमेवार्थः॥२५॥

द्वितीयस्य = द्वितीय कल्पोक्त माया-रमाघटित मन्त्र का। कलया = पूर्वोक्त पञ्चवर्णात्मक कला द्वारा। रमा = ॐ ह्रीं श्रीं कएईलह्रीं, हसकलह्रीं, सकलह्रीं। यह इस षट्कूटा को रमा के स्थान पर उमा से भी कहा जाता है।।२५।।

केचित्तु कलयेत्यस्य स्थाने बालयेति पाठं परमेश्वरीत्यत्र परमेश्वरीमिति पाठञ्च कल्पयन्ति, तेनान्तर्मुखया बालया सम्पुटां वदन्ति। रमाख्यां

श्रीबीजं परमेश्वरीं मायाबीजञ्च वदन्ति। तेनोत्तरदले क्लीं ऐं सौं श्रीं ह्रीं इति स्वीकुर्वते, तन्न सम्यक्। सम्पुटशब्दार्थापरिज्ञानात् अन्वयापत्तेः सर्वतन्त्रविरोधाच्च॥२६॥

कोई-कोई कलया के स्थान पर बालया पाठ बताते हैं। परमेश्वरि के स्थान पर परमेश्वरीं पाठ की कल्पना करते हैं। शब्द अन्तर्मुख द्वारा बाला का सम्पुट करने को कहते हैं। रमा को श्रीबीज एवं परमेश्वरी को मायाबीज कहते हैं। उसके उत्तर दल में क्लीं ऐं सौ: श्रीं ह्रीं को स्वीकार करते हैं; किन्तु यह यथार्थ नहीं है। क्योंकि सम्पुट शब्द का अर्थबोध नहीं है और अन्वय की भी आपत्ति होती है।।२६।।

श्रीर्माया मदनो योनिः परैतानि मुखे कुरु।
वेदादिभुवनेशानी श्रीबीजञ्च त्रिकूटकम्।
षट्कूटां सम्पुटां कुर्यादाद्यैः पञ्चभिरक्षरैः ॥२७॥

आद्यैरिति श्रीमायादिभिरित्यर्थः।

श्री, माया, मदन, योनि तथा परा—इन बीजों को मुख में प्रथम लिखे (आदि में लिखे)—वेदादि (ॐ) भुवनेशानी (ह्रीं) श्रीबीज तथा त्रिकूट। इन छ: त्रिकूट को प्रथम पाँच अक्षर द्वारा सम्पुट करे।।२७।।

मायातन्त्रे च—

लक्ष्मीः परा मदनयोनियुता च शक्तिस्तारं
परा च कमलाप्यथ मूलविद्या।
शक्त्यादिभिश्च विपरीततया प्रदिष्टं
श्रीमन्त्रराजमुदितं परदेवतायाः ॥२८॥

मायातन्त्र में कहा है कि लक्ष्मी, परा, मदन, योनियुक्ता, शक्ति, तार, परा, कमला के अनन्तर मूलविद्या (कामराज का त्रिकूट प्रभृति) शक्त्यादि द्वारा विपरीत भाव से उच्चरित होने पर उसे पर देवता का मन्त्रराज कहते हैं।।२८।।

लक्ष्मी रमाबीजम्। अत्र परा भुवनेशी न तु बालाशेषबीजं, षोडशी-प्रतिपादकवचनान्तरैकवाक्यत्वात्। मदनः कामबीजम्। योनिर्वाग्भव-बीजम्। शक्तिः सौरिति बीजम्। तारं प्रणवः। परा माया। कमला लक्ष्मीबीजम्। मूलविद्या कामराजत्रिकूटादिका शक्त्यादिभिरिति। शक्ति-वाग्भवकाममायारमाभिः। एतेनानुलोमतः पञ्चबीजैः सम्पुटामिति च मतं हेयम्। श्रुतौ च—श्रीर्भाया तारः परा लक्ष्मीः कुमारिका विद्या व्यस्ता बाला श्रीः परा तथा। व्यस्ता विपरीता बालेत्यर्थः। तथेति।

व्यस्तेत्यर्थः। कुमारी चान्तर्मुखी ग्राह्या। अत्र कुमारिकानन्तरं तारादिबीजत्रयसम्बन्धः, तन्त्रान्तरैकवाक्यत्वात्। श्रीः परा चेति पाठे न केवलं बाला व्यस्ता श्रीः परा चेति वाक्यार्थः। तथा चादौ रमा ततो माया ततो चान्तर्मुखा बाला ततस्तारस्ततो माया ततो रमा ततो मूलकूटत्रयं विद्या। ततोऽन्तर्मुखा बाला व्यस्ता, तेनादौ सौः ततो वाग्भवस्ततः कामस्ततो माया ततो रमेति समुदितार्थः। श्रुतौ विद्याषोडशवर्णस्वरूपकथनं वा न त्वग्रपश्चाद्भावोऽपि तत्र प्रतिपाद्यः॥२९॥

लक्ष्मी = श्रीं। यहाँ परा भुवनेशी है; बाला का शेष बीज नहीं है; क्योंकि षोडशी प्रतिपादक वचनान्तर के साथ एकवाक्यता है। मदन: = कामबीज। योनि = ऐं बीज। शक्ति: = सौ:। तार = ॐ। परा = माया। कमला = लक्ष्मीबीज। मूलविद्या = कामराज त्रिकूटादिका। शक्त्यादिभि: = शक्ति, वाग्भव, काम, माया तथा रमा द्वारा। इसके द्वारा अनुलोम-विलोम पञ्चबीज द्वारा सम्पुटा—यह मत हेय सिद्ध होता है।

श्रुति का भी वचन है कि श्री, माया, तार, परा, लक्ष्मी, कुमारीका विद्या व्यस्ता। अर्थात् बाला व्यस्ता तथा कुमारी अन्तर्मुखी ग्रहणीय है। यहाँ कुमारिका के अनन्तर तारादि बीजत्रय का सम्बन्ध है, क्योंकि तन्त्रान्तर के साथ एकवाक्यता है। श्रीपरा = इसका वाक्यार्थ है कि केवल बाला व्यस्ता नहीं है, श्रीपरा भी व्यस्ता हैं।

ऐसी स्थिति में आदि में रमा, तदनन्तर माया, तदनन्तर अन्तर्मुखा बाला, तदनन्तर प्रणव, तदनन्तर रमा, तदनन्तर मूलकूटत्रय विद्या। अनन्तर अन्तर्मुखा बाला व्यस्ता। इससे आदि में सौ:, क्रमश: वाग्भव, काम, माया, रमा यही समुदितार्थ है।

श्रुति में विद्या अथवा षोडश वर्णरूप कथित है। बीज का अग्र-पश्चात् भाव से श्रुति प्रतिपाद्य नहीं है।।२९।।

वस्तुतस्तु श्रीर्मायि मध्यादि बालिका तारो माया श्रीविद्यापरादि पञ्चबीजानि चेत्येव त्रैपुरी श्रुतिः। एतेन श्रीर्माया तारं माया श्रीर्बाला मूलत्रिकूटं व्यस्ता बाला रमा मायेति मन्त्र इति मतञ्च हेयम्॥३०॥

श्रीबीज, मायाबीज, मध्यादि बाला बीज (क्लीं ऐं सौ:), तार, श्रीबीज परा, मायाबीज अर्थात् ह्रीं श्रीं, व्यस्त द्वितीय पञ्चबीज अर्थात् सौं: ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं—यही त्रैपुरी श्रुति है। अत: श्री, मायाबीज, तार, मायाबीज, श्रीबीज, बालाबीज, मूल त्रिकूट, व्यस्त बाला (सौ: क्लीं ऐं) रमाबीज तथा मायाबीज यह मन्त्र है, यह मत भी हेय है।।३०।।

कुलामृते—

श्रीबीजं शक्तिबीजञ्च कामबीजञ्च वाग्भवम्।
बालान्तसंस्थितं बीजं प्रणवञ्च ततः परम्॥३१॥

शक्तिबीजं रमाञ्चैव विद्याञ्च परमेश्वरि।
लोपां वा कामराजं वा त्रिकूटामथवा पराम्॥३२॥
विन्यस्या पुनराद्यानि पञ्चबीजानि सुन्दरि।
विपरीतक्रमेणैव विन्यसेत् षोडशी परा॥३३॥

कुलामृत में कहते हैं कि श्रीबीज, मायाबीज, कामबीज, वाग्भवबीज, बाला के अन्त में संस्थित (शेष) बीज, प्रणव, मायाबीज, श्रीबीज, अनन्तर लोपामुद्रा, कामराज, त्रिकूट अथवा परा का विन्यास करके उसके पश्चात् आद्य पञ्चबीज का विपरीत क्रम से विन्यास करे। इससे अन्य एक षोडशी विद्या होती है।।३१-३३।।

यामले—

लक्ष्मीः परा मदनवाग्भवशक्तिबीजं
तारञ्च भूतिकमले कथिता च विद्या।
कूटत्रयञ्च विपरीततया नियुक्तं
श्रीषोडशाक्षरमिहागमसुप्रसिद्धम् ॥३४॥

यामल में कहा है कि श्रीबीज, माया, वाग्भव, शक्ति (सौः), प्रणव, माया, श्री, तार, भूति (ह्रीं) कमला, तदनन्तर मूल, कामराजादि विद्या, विपरीत भाव से प्रयुक्त बाला के कूटत्रय तथा विपरीत रमा, माया—यही आगम-प्रसिद्ध षोडश अक्षर वाली विद्या है।।३४।।

अस्यार्थः—अत्र परा मायाबीजं न तु बालाशेषबीजम्, षोडशीप्रतिपादक-वचनान्तरैकवाक्यत्वात्। शक्तिबीजं सौः। भूतिर्मायाबीजम्। कमला श्रीबीजम्। विद्याकामराजादिविद्येत्यर्थः। कूटत्रयञ्चेति। अन्तर्मुखबालाया इत्यर्थः। चकारादन्ते रमा माया च विपरीतेत्यर्थः॥३५॥

षोड़शी-प्रतिपादक वचनान्तर के साथ एकवाक्यता के कारण यहाँ परा है—मायाबीज, बाला का शेषबीज नहीं है। शक्तिबीज = सौः, भूति = मायाबीज। विद्या = कामराजादि विद्या। कूटत्रय = अन्तर्मुख बाला का कूटत्रय। चकार द्वारा शेष में रमा माया भी विपरीत हैं (अर्थात् क्रम है माया रमा, 'ह्रीं श्रीं', परन्तु यहाँ 'श्रीं ह्रीं' विपरीततः प्रयुक्त है)।।३५।।

निबन्धे च—

सान्तान्तं शिवपूर्वसप्तमयुतं सूक्ष्मान्तमस्तान्वितं
देवीं दक्षिणबाहुशक्रनयनं कामं कलालाञ्छितम्।
दन्तान्तोद्ध्र्वमुखं सशेषदशनं जीवं मुखेनान्वितं
बीजं पञ्चममित्थमेवमुदितं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्॥३६॥

वेदाद्यं त्रिगुणां रमामथ वदेत् कामेन संसेवितां
लोपां वा पुनरेव पञ्चकमथो पूर्वं विलोमक्रमैः ।
एषा श्रीः परमा परां परतमा सर्वार्थसिद्धिप्रदा
सरात् सारतया समस्तजगतामुत्पत्तिभूता शिवा ॥३७॥

अनयोरर्थः—दन्त्यसकार एवान्तो यस्य स सान्तो मूर्द्धन्यषकारः, स एवान्तो यस्य स सान्तान्तस्तालव्यशकारः। शिवो हकारस्तस्य पूर्वसप्तमो रेफः। सूक्ष्मान्तमीकारः, मस्तमनुस्वारः। तेन रमाबीजम्। सर्वत्र वदेदिति परपद्यस्थेनान्वयः। देवीं मायाम्। दक्षिणबाहुः ककारः। शक्रो लकारस्त-योर्नयनं मेलनं यस्येति कामविशेषणम्। कामो बिन्दुः। कला कामकला दीर्घेकारस्तेन कामबीजम्। दन्तान्त ऐकारः मुखस्योद्ध्वम् ऊर्ध्वमुखं बिन्दुः तेन वाग्भवबीजम्। जीवो दन्त्यसकारः। शेषदशनं औकारः। मुखं विसर्गः। तेन सौरिति पराबीजम्। वेदाद्यं प्रणवः। त्रिगुणा माया। लोपां प्रथमलोपाम्॥३८॥

निबन्ध में कहा है कि सान्तान्त (श) शिव का (हकार का) पूर्व सप्तम वर्ण (र) सूक्ष्मान्त (ई) मस्त (ं) इससे होता है—श्रीं। देवी (ह्रीं) दक्षिण बाहु (क) शक्र (ल) कला में ईकार में लांछित काम (ं) यह क्लीं हुआ (क+ल+ई+ं = क्लीं)। दन्तान्त (ऐ) ऊर्ध्वमुख (ं) =ऐं। शेषदशन (औ) के साथ मुख द्वारा (:) युक्त जीव (स) अर्थात् स + औ + : = सौः। सर्वार्थ-सिद्धिप्रद ये पाँच बीज आविर्भूत हैं अर्थात् श्रीं, क्लीं, ऐं, सौः।

वेदाद्य (ऊ) त्रिगुणा (ह्रीं) काम (क्लीं) सेविता (सहिता) रमा (श्रीं) कहे। तत्पश्चात् कामराज विद्या की प्रथम लोपामुद्रा कहे—कएईलह्रीं, हसकलह्रीं, सकलह्रीं। तदनन्तर पुनः वर्णपञ्चक (सौः ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं) कहे। यह श्रीविद्या परमा श्रेष्ठा, परतरा, समस्त चतुर्वर्ग-सिद्धिप्रदा, सार से सारतमा समस्त जगदुत्पत्तिभूता शिवा कल्याणमयी है। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं कएईलह्रीं हसकलह्रीं सकलह्रीं सौः ऐं ह्रीं क्लीं श्रीं।

इन दोनों श्लोको का अर्थ है कि दन्त्य सकार के अन्त में है जो वह है मूर्धन्य ष। मूर्धन्य ष' अन्त है जिस वर्ण का अर्थात् 'ष' से पूर्व का वर्ण अर्थात् 'श'। शिव = ह, उससे पूर्व का सातवाँ वर्ण अर्थात् 'र'। सूक्ष्मान्त = ई। मस्त = अनुस्वार। इससे रमाबीज होता है। दक्षिण बाहु = क। शक्र = ल। इन दोनों का मेलन है जहाँ, वह। दक्षिण बाहु शक्रनयन, यह कामं पद का विशेषण है। काम = बिन्दु (ं) है। कला = कामकला ई। इससे कामबीज होता है। दन्तान्त = ऐकार। मुख के ऊर्ध्व,

ऊर्ध्वमुख (-)। इससे वाग्भव ऐं होता है। जीव = स। शेष दशन = औ। मुख विसर्ग (:)। इससे सौः पराबीज होता है। वेदाद्य = प्रणव (ॐ) त्रिगुणा = ह्रीं। लोपा = प्रथम लोपा।।३६-३८।।

स्वच्छन्दसंग्रहे च—

लक्ष्मिर्लज्जा च कामेशि वाणीशक्तिस्तथौकृतिम्।
सविसर्गां पुरो दत्त्वा ततः प्रणव उच्यते।।३९।।
पूर्वोक्तैः पञ्चभिर्बीजैर्विलोमेन प्रपूरयेत्।
एषा विद्या सदा देवि पुत्रेऽपि च सुगोपिता।।४०।।

स्वच्छन्दसंग्रह में कहा है कि लक्ष्मीबीज, लज्जाबीज, कामेशी-बीज (क्लीं), वाणीबीज (ऐं) शक्ति (स) सविसर्ग औ अर्थात् सौः, पहले देकर तब प्रणव लगाये। तत्पश्चात् माया, रमा, लोपामुद्रा अथवा कामराजत्रिकूट, तदनन्तर पञ्चबीज को विलोम में लगाये। हे देवि! यह विद्या सदा अपने पुत्र तक से गोपनीय रखनी चाहिये।।३९-४०।।

कामेशी कामबीजम् शक्तिर्दन्त्यसकारः। लोपां प्रथमलोपाम्।।४१।।

कामेशी—क्लीं। शक्ति = स। लोपा = प्रथम लोपा।।४१।।

भेदान्तरमाह कुञ्जिकातन्त्रे—

परा च कमला कामो वाग्भवं शक्तिरेव च।
तारः शक्तिश्च कमला त्रिकूटां योजयेत् ततः।।४२।।
शक्त्याद्या व्युत्क्रमान्न्यस्यं स्यान्महाषोडशीपरा।
इमां विद्यां महादेवीं यतिर्भूपोऽथवा जपेत्।।४३।।

परा (ह्रीं), श्रीबीज, वाग्भव, शक्ति (सौः) प्रणव (ॐ) मायाबीज, श्रीबीज तदनन्तर त्रिकूट का योग करे। तदनन्तर शक्ति अर्थात् सौः को आगे आदि में रखकर व्युत्क्रम में पाँच बीज स्थापित करे। यह महाषोडशी विद्या होती है। हे महादेवि! इस विद्या का जप योगी तथा भूपति करते हैं।।४२-४३।।

भुक्तिमुक्तिप्रदा विद्या ह्यन्ते कैवल्यदायिनी।
पराद्या भुवनेशानि ज्ञेया भुवनसुन्दरी।।४४।।

यह विद्या इस लोक में भोग एवं मोक्ष प्रदान करने वाली है एवं देहान्त के पश्चात् कैवल्य प्रदान करने वाली है। हे भुवनेशानि! मायाबीज से आदि में युक्त इस विद्या को भुवनसुन्दरी जानना चाहिये।।४४।।

कमलाद्या महादेवि कमला सुन्दरी मता।
कामाद्या च महाविद्या विज्ञेया कामसुन्दरी।।४५।।

हे महेशानि! यह विद्या आदि में 'श्री' से युक्त होने पर कमलासुन्दरी के नाम से जानी जाती है। कामबीज के आदि में (पूर्व में) होने पर यही विद्या कामसुन्दरी के नाम से जानी जाती है।।४५।।

वाग्भवाद्या महाविद्या सदा वाक्सुन्दरी मता।
शक्त्याद्या च महाविद्या विज्ञेया शक्तिसुन्दरी।
ताराद्या वेदमाता च विज्ञेया वेदसुन्दरी ।।४६।।

आदि में जब वाग्भव बीज लगा हो तब उसे वाक्सुन्दरी कहते हैं। आदि में शक्तिबीज से युक्त होने पर यह शक्तिसुन्दरी होती है। आदि में प्रणव लगाने से यह विद्या वेदसुन्दरी कही जाती है।।४६।।

कामराजेन देवेशि लोपया च विशेषतः।
स्यान्महाषोडशी मन्त्रः चतुष्काद्यविपर्ययात् ।।४७।।

हे देवेशि! कामराज के द्वारा, विशेषतः लोपामुद्रा के द्वारा तथा चार आद्य वर्ण के विपर्यय द्वारा यह महाषोडशी होती है।।४७।।

अत्र परा माया, शक्तिः सौः। परतः शक्तिर्माया। आद्ये विपर्ययो न त्वन्तेऽपीति भावार्थः। ताराद्येति। अत्र मायास्थाने प्रणवो देयः। नात्र विपर्ययः।।४८।।

यहाँ परा = माया। शक्ति = सौः। पराशक्ति = माया। यहाँ आद्य विपर्यय है, अन्त में विपर्यय नहीं होता। यही भावार्थ है। ताराद्या—यहाँ माया (ह्रीं) के स्थान पर प्रणव लगाते हैं। यहाँ विपर्यय नहीं है।।४८।।

अथ बीजावली षोडशी

यथा रुद्रयामले षोडशीखण्डे—

श्रीबीजमाये संलिख्य तथैव च कुमारिकाम्।
श्रीबीजमाये कामञ्च वाङ्मया कमलास्तथा ।।४९।।

अब बीजावली षोडशी कहते हैं। रुद्रयामल के षोडशी खण्ड में कहते हैं कि श्रीबीज तथा मायाबीज लिखकर पूर्ववत् बालाबीज, श्रीबीज, मायाबीज, कामबीज, वाग्भवबीज, मायाबीज, कमलाबीज, पराबीज, कामबीज, वाग्भवबीज, मायाबीज तथा श्रीबीज लिखे। यह बीजावलि षोडशी समस्त तन्त्रों में गुप्त है।।४९।।

तथाच—श्रीबीजं मायाबीजं वाग्भवं कामं, सौः श्रीमायाकामवाग्भवमाया-श्रीबीजानि, चेति बीजषोडशी।।५०।।

ऐसा होने पर श्रीं ह्रीं, क्लीं ऐं क्लीं सौः, श्रीं ह्रीं क्लीं, ऐं, ह्रीं, श्रीं सौः क्लीं ऐं ह्रीं श्रीं षोडशी बीज होता है।।५०।।

तथाच ब्रह्मयामले—

आदौ लक्ष्मीं पराञ्चैव तथैव तु कुमारिकाम्।
श्रीबीजञ्च पराबीजं कामं वाग्भवमेव च ।।५१।।
परा श्रीबालिकाञ्चैव लिखेत् व्युत्क्रमयोगतः।
अन्ते दद्यात् परा श्रीश्च सम्पूर्णा कथितास्त्वयि।
बाला प्रधानविद्या च सर्वतन्त्रेषु गोपिता ।।५२।।

यही ब्रह्मयामल में कहा है कि प्रथमतः लक्ष्मीबीज, परा (माया), कुमारिका (बाला) बीज, श्रीबीज, पराबीज, कामबीज, वाग्भव बीज, पराबीज, मायाबीज, श्रीबीज, तदनन्तर व्युत्क्रम से बाला बीज लिखे। अन्त में पराबीज तथा श्रीबीज लगाये। इस प्रकार तुमसे सम्पूर्ण विद्या कही गई। बाला तथा प्रधाना विद्या समसत तन्त्रों में गोपिता है।।५१-५२।।

ज्ञानार्णवे प्रधानषोडशीमधिकृत्य—

वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।
वर्णितुं नैव शक्येयं श्रीविद्या षोडशाक्षरी ।।५३।।

ज्ञानार्णव में प्रधानषोडशी के सम्बन्ध में कहते हैं कि सैकड़ों करोड़ मुख से तथा सहस्र कोटि जिह्वा द्वारा भी इस षोडशाक्षरी विद्या को नहीं कहा जा सकता।।५३।।

वैखरी वाच्यभावत्वादशक्ता गुणवर्णने।
यतो निरक्षरं वस्तु परा तत्रैव कारणम् ।।५४।।
मूकीभूता हि पश्यन्ती मध्यमा मध्यमा भवेत्।
ब्रह्मविद्यास्वरूपा या भुक्तिमुक्तिफलप्रदा ।।५५।।

कण्ठ-स्थित वैखरी शक्ति इन्द्रियग्राह्य विषयों के वर्णन में समर्थ है; परन्तु इस विद्या का वर्णन करने में समर्थ नहीं है। यह विद्या निरक्षर वस्तु है अर्थात् अक्षर के द्वारा इसका प्रतिपादन नहीं हो सकता। पराशक्ति भी इसका वर्णन नहीं कर सकती। पश्यन्ती तथा मध्यमा वाक् शक्ति भी इनका गुणवर्णन करने में उदासीना हैं (थक गई हैं); इसलिये भोग- मोक्ष फलप्रदा यह षोडशी ब्रह्मस्वरूपा है।।५४-५५।।

एकोच्चारण देवेशि वाजपेयस्य कोटयः।
अश्वमेधसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा।
काश्यादितीर्थयात्राः स्युः सार्द्धकोटित्रयान्विताः ।।५६।।

हे देवेशि! एक बार इस विद्या का उच्चारण करने से करोड़ों वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है। सहस्र अश्वमेध, समस्त भूमण्डल की प्रदक्षिणा, साढ़े तीन करोड़ तीर्थ का फल भी इसके समान नहीं है। हे देवेशि! इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।।५६।।

षोडशार्णा महाविद्या न प्रकाश्या कदाचन।
गोपनीया त्वया भद्रे! स्वयोनिरिव पार्वति।।५७।।

हे गिरिजे! इस १६ अक्षरों की महाविद्या का कभी भी प्रकाशन नहीं करना चाहिये। हे पार्वति! यह अपनी योनि के समान तुम्हारे द्वारा गोपनीय है।।५७।।

वैखरी कण्ठस्थिता वर्णनकारिका शक्तिः, सा गुणवर्णने अशक्ता। कुतः? वाच्यभावत्वात्, वाच्यो वर्णनीयो भाव इन्द्रियविषयो यस्यास्तत्त्वात्, तथा चेन्द्रियागोचराया अस्या वर्णने सा अशक्तेत्यर्थः। तदेवाह यतः सा निरक्षरं अक्षरप्रतिपाद्यं वस्तु। तथा तत्रैव वर्णने कारणं पराशक्त्यन्तरं मूकीभूता। तथा मध्यमा वैखरी कुलकुण्डलिन्योर्मध्ये वर्त्तमाना मध्यमानाम्नी शक्तिरपि मूकीभूतेत्यर्थः।।५८।।

वैखरी—कण्ठस्थिता बोलने या वर्णन करने वाली शक्ति। यह वैखरी इस विद्या का गुणवर्णन करने में अक्षम है। किसलिये—वाच्यभावत्व के कारण। वाच्य = वर्णनीय भाव—इन्द्रिय-विषय है जिसका। जो वैखरी शक्ति हैं, वह ही वाच्यमान है। वह इन्द्रिय विषयों का वाच्यभाव है। वही वर्णन करने में समर्थ है, जो इन्द्रियों का विषय है। परन्तु जो इन्द्रिय का विषय ही नहीं है, उसका वर्णन कर सकने में नितान्त असमर्थ है। इसीलिये वचन है कि यह विद्या निरक्षर वस्तु है अर्थात् अक्षर द्वारा प्रतिपाद्य नहीं है। इसीलिये इसकी महिमा के वर्णन में पराशक्ति भी मूक है। इसीलिये कुलकुण्डलिनी में वर्त्तमाना मध्यमा वाक् भी इनके गुणवर्णन में असमर्थ है; अतः इसे मूक कहा गया है।।५८।।

यथा शारदायां—

शक्तिं ततो ध्वनिस्तस्मान्नादस्तस्मान्निरोधिका।
ततोऽर्द्धेन्दुस्ततो बिन्दुस्तस्मादासीत् परा ततः।
पश्यन्ती मध्यमा वाचि वैखरी शब्दजन्मभूः।

इत्युक्तं सृष्टिप्रक्रियायाम्।।५९।।

शारदातिलक में कहा है कि यह कुण्डलिनी मूल कारण शब्द के उन्मुखीकरण की अवस्था की सृष्टि करती है। उससे ध्वनि, ध्वनि से नाद, नाद से निरोधिका, उससे

अर्द्धेन्दु, अर्द्धेन्दु से बिन्दु, उससे परा, पश्यन्ती, मध्यमा तथा मुख में वैखरी का आविर्भाव होता है। यही सृष्टि-प्रक्रिया है।।५९।।

विशेष—मूल कारण का उन्मुखीकरण ही शक्ति है।

सिद्धयामले—

कामो माया रमा बाला त्रिकूटा स्त्री भगाङ्कुशौ।
काली कामकला कूर्चं सर्वादौ प्रणवः प्रिये।
श्रीमहाषोडशीयञ्च या ख्याता भुवनत्रये ॥६०॥

सिद्धयामल में कहते हैं कि कामबीज, मायाबीज, श्रीबीज, बालाबीज, त्रिकूटा, स्त्रीबीज, भगबीज, अंकुशबीज, कालीबीज, कामकला तथा कूर्च। इन सबके आदि में प्रणव लगाये। हे प्रिये! यह महाषोडशी त्रिभुवन में प्रसिद्ध है।।६०।।

ज्ञानेन मृत्युहा विद्या सर्वाम्नायैर्नमस्कृता।
सप्तलक्षमहाविद्यास्तत्रादौ कथिता प्रिये ॥६१॥

यह विद्या ज्ञान का विषय होकर मृत्यु का हरण करती है। यह सभी आम्नाय वालों से पूजिता है। हे प्रिये! तन्त्र के आदि में सात लाख महाविद्या कही गयी है।।६१।।

सारात्सारतरा भूता या या विद्याः सुगोपिताः।
बहुना किमिहोक्तेन तासां सारा हि षोडशी ॥६२॥

जो-जो महाविद्या सार का भी सार तथा अतिगोपनीय है, यह षोडशी उनका भी सार है। इससे अधिक क्या कहें?।।६२।।

अत्र भगं योनिर्वाग्भवबीजं बीजमध्यपठितत्वात्, न त्वेकादशस्वर इत्युक्तं प्राक्। आम्नायः शिवमुखप्रोक्तागमभागः। तेनादौ प्रणवस्ततः कामबीजं ततो माया ततो लक्ष्मीस्ततो बालाया प्रकृतिस्थिताया बीजत्रयम्। ततस्तत्तत् कूटत्रयम्। ततो वधूबीजं ततो वाग्भवबीजं ततोऽङ्कुशस्ततः क्रीं बीजम्। ततः कामकला ईङ्कारस्ततः कूर्चम्। तथा च ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः कएईलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं इति कामराजकूटं प्रथमलोपामुद्रा वा ततः स्त्रीं ऐं क्रों क्रीं ईं हूं इति सिद्धम्। अत्र त्रिकूटा इत्यत्र त्रिपुटा इति पाठः प्रामाणिकः, सुन्दरीमन्त्रमात्रस्य कामेशीबीजघटितत्त्वनियमात्॥६३॥

यहाँ भग (योनि = ऐं) वाग्भवबीज है। क्योंकि वह बीज के मध्य में पठित है। किन्तु पहले एकादशस्वर कहा गया है अर्थात् ए को भग कहा गया है। आम्नाय =

शिव के मुख से कहा गया आगम। उसमें प्रथम प्रणव, कामबीज, मायाबीज, लक्ष्मीबीज, प्रकृतिभूत बाला का बीजत्रय, तत्तत् कूटत्रय, वधूबीज, वाग्भवबीज, अंकुश बीज, क्रीं बीज, ईकार तथा कूर्च। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ क्लीं ह्रीं श्रीं ऐं क्लीं सौः कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं। यह कामराजकूट अथवा प्रथम लोपामुद्रा है। अब इसके आगे यह लगाना होगा—'स्त्रीं ऐं क्रों क्रीं ईं हूं। यह मन्त्र उद्धृत होता है। यहाँ त्रिकूटा ही त्रिपुटा है। यह पाठ प्रामाणिक है। क्योंकि सुन्दरी काममन्त्र कामेशी बीज-घटित होता है, यह नियम है।।६३।।

तथा चोक्तम्—

सकला भुवनेशानी कामेशीबीजमुद्धृतम्।
अनेन सकला विद्या कथयामि विशेषतः ॥६४॥

सकलह्रीं—यह कामेशी बीज है। इसके द्वारा विशेष रूप से कामराज प्रभति समस्त विद्या कही जायेगी।।६४।।

एकाक्षरमन्त्रस्य पञ्चदशाक्षरषोडशाक्षरबीजावलीद्वयस्य च एकाक्षरत्वेन बीजावलित्वेन च ग्रन्थान्तरे पृथङ्निर्देश इति तेष्वेव कामेशीराहित्यमिति। इयमपि महाषोडशी॥६५॥

एकाक्षर मन्त्र में पञ्चदशाक्षर, षोडशाक्षर बीजावलिद्वय का एकाक्षर रूप से तथा बीजावली स्वरूप से ग्रन्थान्तर में निर्णय है। इसीलिये सभी में कामेशी बीज का राहित्य है। ये भी महाषोडशी हैं।।६५।।

तन्त्रान्तरे—

दत्वा गोपालबीजन्तु कामराजस्य पूर्वतः।
षोडशी कामराजाख्या कन्दर्पाराधिता मता ॥६६॥

तन्त्रान्तर में कहते हैं—कामराज के पूर्व क्लीं (गोपालबीज) देकर कामराजनामक षोडशी विद्या का उद्धार करे। यह कन्दर्प द्वारा आराधिता विद्या है।।६६।।

मायापुरस्कृता विद्या षोडशी सा सुदुर्लभा।
श्रीकृष्णाराधिताख्येयं यतोऽभूदीश्वरः स्वयम् ॥६७॥

जो षोडशी माया (ह्रीं) से पुरस्कृता हैं अर्थात् जिनके पूर्व में माया (ह्रीं) है वह सुदुर्लभ विद्या है। यह कृष्ण से आराधिता है। कृष्ण इनकी आराधना द्वारा स्वयं ईश्वर हो गये।।६७।।

श्रीयुता षोडशी विद्या सर्वसौभाग्यदायिनी।
लक्ष्म्या आराधिना विद्या या विभर्त्ति जगत्त्रयम् ॥६८॥

श्रीयुक्ता षोडशी विद्या सभी सौभाग्य-प्रदा है। यह विद्या त्रिलोकी का पोषण करने वाली लक्ष्मी से आराधिता है।।६८।।

कामराजमहाविद्या तारपूर्वा च षोडशी।
उपास्या नारदेनेयं यतोऽभून्मानसी गतिः ॥६९॥

षोडशी प्रणव को आदि में लगाकर कामराज महाविद्या हो गयी। यह नारद द्वारा उपासिता है। इनकी कृपा से नारद को मानसी गति (मन के वेग से चलने की शक्ति) मिली है।।६९।।

विना गुरूपदेशेन श्रीविद्यां षोडशाक्षरीम्।
दृष्ट्वा प्रजपते यस्तु स भक्ष्यो योगिनीगणैः ॥७०॥

जो गुरु के उपदेश के विना षोडशाक्षरी श्रीविद्या का जप करते हैं, वे योगिनीगण के आहार बन जाते हैं।।७०।।

षोडशार्णा महाविद्या श्रीविद्या कथिता पुरा।
निधानमिव चौरेभ्यो रक्षणीया त्वया प्रिये ॥७१॥

हे प्रिये! षोडशाक्षरी महाविद्या को पूर्व में श्री विद्या कहा गया है। जैसे चोर से छिपाकर निधि को रखते हैं, वैसे ही इसे भी गोपनीय रखना चाहिये।।७१।।

तथा च पञ्चदशवर्णघटितकूटत्रयरूपायाः प्रकृतकामराजविद्याया आदौ कामबीजं मायाबीजं रमाबीजं प्रणवो वा यदि दीयते, तदा चतुर्विधाऽपरा षोडशी भवति॥७२॥

ऐसी स्थिति में १५ वर्ण-घटित कूटत्रयरूप प्रकृत कामराज विद्या के आदि में कामबीज, मायाबीज, रमाबीज तथा प्रणव यदि दिया जाता है, तब उससे चार प्रकार की षोडशी होती है।।७२।।

यथा रुद्रयामले—

लोपामुद्रा वाग्भवे तु पृथ्व्यन्ते शिवयोजनात्।
सकारं कामराजादौ लोपा तु षोडशाक्षरी।
अनया सदृशी विद्या न विद्यार्णवगोचरे ॥७३॥

अब प्रकारान्तर कहते हैं। रुद्रयामल के अनुसार लोपामुद्रा के वाग्भव कूट में पृथ्वी (ल) के पश्चात् शिव (ह) का योग करने से तथा कामराज कूट के आदि में 'स' लगाने से षोडशाक्षत्री लोपा हो जाती है। ऐसी विद्या विद्यारूप समुद्र में नहीं है।।७३।।

अस्यार्थः—प्रथमलोपामुद्राया वाग्भवकूटे या पृथ्वी लकारस्तदन्ते हकारान्त-योजनात् कामराजकूटस्यादौ दन्त्यसकारं यदि च दद्यात् अर्थात् हकार-स्याधस्थः दन्त्यसकारो यद्यूर्ध्वस्थो भवति, तदा लोपा षोडशी भवति। तेन शिवचन्द्रकामभूशिवमायाभिः प्रथमकूटम्, चन्द्रशिवकामशिव-भूमायाभिर्द्वितीयकूटम्। चन्द्रकामभूमायाभिस्तृतीयकूटं इति षोडशाक्षरी। तथा च हसकलह्रीं, सहकहलह्रीं, सकलह्रीं इति सिद्धम्। प्रथमलोपामुद्रा षोडशाक्षरी॥७४॥

इसका (श्लोक का) अर्थ कहते हैं—प्रथम लोपामुद्रा के वाग्भवकूट में जो 'ल' है, उसके अन्त में (आगे) 'ह' का योग करके कामराज कूट के आदि में यदि 'स' लगाया जाय, तब लोपामुद्रा षोडशी हो जाती है। इस प्रकार शिव (ह) चन्द्र (स) काम (क) भू (ल) शिव (ह) मायाबीज (ह्रीं) द्वारा प्रथम कूट है। चन्द्र (स) शिव (ह) काम (क) शिव (ह) भू (ल) तथा मायाबीज (ह्रीं) से द्वितीय कूट है। चन्द्र (स) काम (क) भू (ल) माया (ह्रीं) द्वारा तृतीय कूट है। यह षोडशाक्षरी है। इस प्रकार हसकलह्रीं, सहकहलह्रीं, सकलह्रीं यह सिद्ध होता है।।७४।।

रुद्रयामले—

विद्याराज्ञी वाग्भवे तु कान्तेऽनन्ते नियोजयेत्।
षोडशार्णा महाविद्या चिद्ब्रह्मैक्यमयी शुभा॥७५॥

रुद्रयामल में कहा है कि विद्या की अधीश्वरी कामराज विद्या के वाग्भव कूट में ककार के अन्त में (अनन्त) 'ह'कार का योग करने से १६ अक्षरों वाली शुभा महाविद्या हो जाती है। ये चिद्ब्रह्मैक्यमयी हैं।।७५।।

विद्याराज्ञी कामराजविद्या, वाग्भवे वाग्भवकूटे। कान्ते ककारस्यान्ते। अनन्तो हकारः॥७६॥

इति षोडशीप्रकरणम्।

विद्याराज्ञी = कामराज विद्या। वाग्भव = वाग्भवकूट। कान्ते—अर्थात् ककार के अन्त में। अनन्तः = ह।।७६।।

अथ सप्तदशाक्षरी

यथा रुद्रयामले—

लोपावाग्भवशक्रान्ते शिवबीजं नियोजयेत्।
तथैव शक्तिबीजे च लोपा सप्तदशाक्षरी॥७७॥

अस्याः स्मरणमात्रेण शिवो भवति नान्यथा।
अणिमाद्यष्टसिद्धीशः साक्षाद्भूमिपुरन्दरः ॥७८॥

अब सप्तदशाक्षरी कहते हैं। रुद्रयामल में कहा है प्रथम लोपा के वाग्भव कूट में शक्र (ल) के अन्त में यदि शिव (ह) का योग करे और ऐसा ही शक्तिकूट में भी करे तो इससे सप्तदशाक्षरी विद्या होती है (सप्तदशाक्षरी लोपा होती है)।।७७-७८।।

अस्यार्थः—प्रथमलोपाया वाग्भवकूटे शक्तिकूटे च शक्रस्य लकारस्यान्ते शिवबीजं हकारं यदि योजयेत्तदा सप्तदशाक्षरी विद्या भवति॥७९॥

प्रथम लोपा के वाग्भव कूट तथा शक्तिकूट में यदि अन्त में शिव (ह) का योग करे तब सप्तदशाक्षरी विद्या हो जाती है।।७९।।

प्रकारान्तरसप्तदशाक्षरी रुद्रयामले—

लोपायाः शक्तिकूटान्ते हंसबीज युता यदि।
तदा सप्तदशी विद्या साक्षात् जाग्रत्स्वरूपिणी ॥८०॥

सप्तदशाक्षरी के प्रकारान्तर को रुद्रयामल में इस प्रकार बतलाया गया है—लोपामुद्रा के शक्तिकूट के अन्त में यदि यह विद्या 'हंस' से युक्त हो तब वह साक्षात् जाग्रत् स्वरूपिणी सप्तदशाक्षरी विद्या हो जाती है।।८०।।

अष्टादशाक्षरी

प्रथमलोपामुद्रामधिकृत्य तत्रैव—

अधरं बिन्दुना युक्तं वाग्भवाद्ये नियोजयेत्।
मादनं कामराजाद्यैस्तार्त्तीयाद्ये महेश्वरि ॥१॥
भृगुः सर्गान्वितो देवि! मनुना च समन्वितः।
अष्टादशाक्षरी ह्येषा श्रीविद्या भुवि दुर्लभा ॥२॥
श्रीगुरोः कृपया देवि! नित्यसिद्धिप्रदायिनी।
नवलक्षं जपित्वा तु लोपामुद्रां महेश्वरीम् ॥३॥
अष्टादशाक्षरी विद्या पश्चाद् राध्या वरानने!।
अन्यथा शापमाप्नोति कुलं तस्य विनश्यति ॥४॥

अब अष्टादशाक्षरी कहते हैं। प्रथम लोपामुद्रा के प्रस्ताव में यहाँ कहते हैं कि हे देवि! हे महेश्वरि! वाग्भव कूट के आदि में बिन्दुयुक्त अधर (ऐं) का योग करे। कामराज कूट के आदि में मादन (क्लीं) का योग करे। तृतीय कूटशक्ति कूट के आदि में सर्ग (:) युक्त करे तथा मनुयुक्त (औ) भृगु (स) अर्थात् सौ: का योग करे। इससे १८ अक्षरों वाली विद्या का उद्धार होता है। यह श्रीविद्या पृथ्वी पर दुर्लभ है।

हे देवि! श्री गुरु की कृपा से यह नित्य सिद्धिप्रदायिका है। हे वरानने! प्रथमतः महेश्वरी लोपामुद्रा (यहाँ वैष्णव द्वारा उपासित लोपामुद्रा से तात्पर्य नहीं है, महेश्वर द्वारा उपासित लोपामुद्रा के लिये कहा गया है) का ९ लाख जप करने के उपरान्त इस अष्टादशाक्षरी की उपासना करनी चाहिये। अन्यथा शाप प्राप्त होता है और उसकी कुशलता नहीं रहती। उसके कुल का नाश होता है।।१-४।।

सर्वकल्याणदा देवि सर्वमङ्गलकारिणी।
अनया सदृशी विद्या त्रैलोक्ये चातिदुर्लभा ।।५।।

हे देवि! यह समस्त कल्याणदायिनी समस्त, विघ्ननाशिनी, समस्त सौभाग्य-प्रदायिनी, सर्वमंगलकारिणी विद्या है। ऐसी विद्या त्रिलोक में नहीं है।।५।।

रुद्रत्वं प्राप्तवानस्मि जप्त्वा चाष्टदशाक्षरीम्।
विष्णुत्वं प्राप्तवान् विष्णुर्ब्रह्मत्वञ्च पितामहः ।।६।।

मैंने इस विद्या का जप करके रुद्रत्व प्राप्त किया। विष्णु ने विष्णुत्व तथा पितामह ब्रह्मा ने इसी का जप करके ब्रह्मत्व अर्जित किया।।६।।

अस्यार्थः—अधरं द्वादशस्वरः बिन्दुनादयुक्तः अर्थात् वाग्भवबीजं वाग्भव-कूटस्यादौ दद्यात्। कामराजकूटस्यादौ मादनं कामबीजं दद्यात्। तथा तृतीयकूटाद्ये मनुना चतुर्दशस्वरेण समन्वितो भृगुर्दन्त्यसकारः स च विसर्गान्तः। तेन बालाबीजत्रयं त्रिकूटस्यादौ यथासंख्यं योज्यमित्य-ष्टादशाक्षरी। नवलक्षमिति। आदौ प्रमथलोपामुद्रां गृहीत्वा नवलक्षं जप्त्वा पश्चात् तद्घटितमष्टादशाक्षरीं गृह्णीयादित्यर्थः।।७।।

अधर = ऐ। बिन्दुनादयुक्त वाग्भवबीज को (ऐं को) वाग्भवकूट के आदि में लगाये। इसी प्रकार कामराजकूट के आदि में मादन (क्लीं) को लगाये। शक्तिकूट (जो तीसरा कूट हैं) के आदि में मनु (औ) द्वारा युक्त भृगु (स) को लगाये। (स + औ = सौ)। यह विसर्गान्त (:) होगा। अब मन्त्रोद्धार होता है—ऐं हसकलह्रीं, क्लीं ह सकहलह्रीं, सौः सकलह्रीं। यह १८ अक्षरों वाली विद्या है। प्रथम लोपामुद्रा का ९ लाख जप करके उस लोपामुद्रा विद्या से घटित अष्टादशाक्षरी विद्या का जप करना चाहिये।।७।।

तत्रैव—

कामराजाख्यविद्याया वाग्भवादौ तु वाग्भवम्।
भुवनेशी कामराजे श्रीबीजं शक्तिपूर्वतः ।।८।।

एषाप्यष्टादशी प्रोक्ता सर्वसिद्धिप्रदायिका।
भोगमोक्षप्रदा साक्षात् पुरुषार्थप्रदायिका॥९॥
अनया सदृशी विद्या न विद्यार्णवगोचरा।
नास्ति नास्ति पुनर्नास्ति सत्यं सत्यं वदामि ते॥१०॥

वहीं यह भी कहा गया है कि कामराज विद्या के वाग्भव कूट के आदि में वाग्भव बीज (ऐं) को लगाये। कामराज कूट के आदि में भुवनेशीबीज (ह्रीं) लगाये तथा शक्तिकूट के आदि में श्रीबीज (श्रीं) लगाये। यह समस्त सिद्धिप्रदा अष्टादशाक्षरी है। यह भोग- मोक्षप्रदा एवं साक्षात् पुरुषार्थ देने वाली है। इस विद्या के समान विद्या समस्त विद्यारूपी सागर में नहीं है, नहीं है, नहीं है। पुनः कहता हूँ कि नहीं है। तुम्हें जो कह रहा हूँ—वह सत्य है, सत्य है।।८-१०।।

योगिनीजालन्धरे कामराजविद्यामधिकृत्य—

वाङ्मायाशक्तिबीजाद्या त्रिकूटा क्रमयोगतः।
त्रिपुरामालिनी नाम्ना भवेदष्टादशाक्षरी॥११॥

योगिनी-जालन्धर तन्त्र में कामराजविद्या के सम्बन्ध में कहा गया है कि कामराजविद्या के तीनों कूट के आदि में अर्थात् वाग्भव कूट के आदि में 'ऐं' कामराजकूट के आदि में मारबीज (क्लीं) तथा शक्तिकूट के आदि में शक्ति (सौः) का योग करने से त्रिपुरामालिनी नाम १८ अक्षरों वाली विद्या होती है।।११।।

लोपावाग्भवमुद्धृत्य विलोमां बालिकां ततः।
प्रणवं सविसर्गन्तु ततो वै कुलसुन्दरीम्॥१२॥
शक्तिकूटमध्यभागे हकारं योजयेच्छिवे।
विलोमां बालिकां तत्र ब्रह्मार्णः सविसर्गकः॥१३॥

हे शिवे! लोपामुद्रा के वाग्भव कूट का उद्धार करके विलोम बालाबीज, तदनन्तर सविसर्ग प्रणव, कुलसुन्दरी बाला, तदनन्तर शक्तिकूट के मध्यभाग में 'ह' का योग करे। तदनन्तर विलोम बाला, तत्पश्चात् सविसर्ग प्रणव लगाये।।१२-१३।।

अस्यार्थः—कुलसुन्दरी बाला, कामाक्षरं ककारः, शक्तिवर्ण एकादश-स्वरः। पुरन्दरो लकारः, हरो हकारः, लोपा प्रथमलोपा, ब्रह्मार्णः प्रणवः; तथा च प्रणवः, वाग्भवं, कामबीजं, सौरिति बालाबीजत्रयम्, कएलहह्रीं, ततः सौः क्लीं ऐं इति विलोमबालाबीजत्रयं, ततः सविसर्गः प्रणवः, ततः कुलसुन्दरी बाला, लोपा वाग्भवो हसकलह्रीं, ततो विलोम-बालिका, ततः सविसर्गः प्रणवः, ततः कुलसुन्दरी बाला, ततः प्रथमलो-

पामुद्रा, शक्तिकूटमध्यभागे हकारयोजनात् सकहलह्रीं इति। ततो विलोम-बालिका, ततः प्रणवविसर्गौ चेति सप्तत्रिंशदक्षरीयं विद्या। अत्र विसर्ग-स्यानुच्चार्यत्वेऽपि ध्ययतेति ध्येयम्। तेन 'ॐ ऐं क्लीं सौः कएलहह्रीं सौः क्लीं ऐं ॐः ऐं क्लीं सौः हसकल ह्रीं सौः क्लीं ऐं ॐः ऐं क्लीं सौः सकहलह्रीं सौः क्लीं ऐं ॐः' इति सिद्धम्।।१४।।

कुलसुन्दरी = बाला। कामाक्षर = ककार। शक्तिवर्ण—एकादश स्वर। पुरन्दर = ल। हर = ह। लोपा—प्रथम लोपामुद्रा विद्या। ब्रह्मार्ण = प्रणव। इस प्रकार प्रणव, वाग्भव, काम, सौः यह बालाबीज त्रय। कएलहह्रीं, तत्पश्चात् सौः क्लीं ऐं यह बालाविलोम बीजत्रय। अब सविसर्ग प्रणव, तदनन्तर कुलसुन्दरी बाला, तत्पश्चात् लोपा विद्या प्रथम का वाग्बीज हसकलह्रीं तदनन्तर विलोम बालाबीज, तत्पश्चात् सविसर्ग प्रणव, तत्पश्चात् कुलसुन्दरी बाला, तदनन्तर प्रथम लोपामुद्रा तथा शक्तिकूट के मध्यभाग ह के योग से 'सकहलह्रीं' तदनन्तर विलोम बालिका (बाला) तदनन्तर प्रणव तथा विसर्ग। इस प्रकार यह सैंतीस अक्षरों की विद्या है। यहाँ पर प्रणव के आगे विसर्ग लगाया गया है। जिसका उच्चारण प्रणव के साथ नहीं हो सकता। लेकिन तब भी वह ध्येय है। यह स्मरण रखना चाहिये। मन्त्रोद्धार होता है—ॐ ऐं क्लीं सौं कएलहह्रीं सौः क्लीं ऐ ॐ ऐं क्लीं सौः हसकलह्रीं सौः क्लीं ऐं ॐ ऐं क्लीं सौः सकहलह्रीं सौः क्लीं ऐं ॐ।।१४।।

अथ ब्रह्मविद्या

ब्रह्मविद्येति या प्रोक्ता सृजिता न प्रकाशिता।

इति प्रश्नोत्तरं श्रीक्रमे—

तां विद्यां शृणु देवेशि! काममिन्द्रसमन्वितम्।।१५।।
नादबिन्दुकलाभेदात् तुरीयस्वरसंयुतम्।
महाश्रीसुन्दरी विद्या महात्रिपुरसुन्दरी।।१६।।

अब ब्रह्मविद्या कहते हैं। जिसे ब्रह्मविद्या कहा हैं, वह बनाई गई है, उसे किसी के द्वारा प्रकाशित नहीं किया गया है। इसके सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर रूप से श्रीक्रम में कहा गया है कि महात्रिपुरसुन्दरी विद्या ही ब्रह्मविद्या है।।१५-१६।।

ककारे सर्वमुत्पन्नं कामकैवल्यदायकम्।
लकारे सर्वमैश्वर्यमीकारे सर्वसौख्यकम्।
एवं बीजत्रयं देवि विज्ञानां सारसंग्रहम्।।१७।।

इसके ककार से सब उत्पन्न हुआ है तथा यह काम एवं कैवल्य को देने वाला

है। 'ल'कार में समस्त ऐश्वर्य तथा ईकार में सभी सुख प्राप्त होता है। हे देवि! यह तीन बीज समस्त विद्या का संग्रह स्वरूप है।।१७।।

वाग्भवं कामराजञ्च शक्तित्वेन नियोजयेत्।
एकाक्षरेण कथिता ब्रह्मविद्यैव केवला॥१८॥

यह तीन वाग्भवकूट, कामराजकूट तथा शक्तिकूट प्रयोग में लाना चाहिये। एकाक्षर क्लीं द्वारा केवल ब्रह्मविद्या ही कही जाती है।।१८।।

एतेन कामराजमस्या एकाक्षरमन्त्रः। तथा च क्लीं इति सिद्धम्। एवमिति ककारलकारेकाररूपं बीजत्रयं वाग्भवं कामराजं जानीयात् शक्तित्वेन च। नियोजयेत् जानीयादिति। तेन वर्णत्रयस्य कूटत्रयात्मकत्वं ककारो वाग्भवाख्यं लकारः कामराजाख्यं ईकारः शक्त्याख्यं कूटं तत् त्रयञ्च विद्यानां सारसंग्रहमिति भावार्थः। अत्रैकाक्षरे कूटत्वमौपचारिकम्॥१९॥

इसके द्वारा यह सिद्ध होता है कि इस विद्या का एक अक्षर कामराज बीज क्लीं है। एवम् इति = इसका तात्पर्य यह है कि ककार, लकार तथा ईकार रूप तीन बीजों को क्रमशः वाग्भवकूट कामराजकूट तथा शक्तिकूट जानना चाहिये। इसलिये ये वर्ण (क, ल, ई) कूटत्रयरूप हैं। 'क' = वाग्भव कूट। ल = कामराज कूट। ई = शक्ति कूट। ये तीन विद्याओं का सारसंग्रहरूप हैं। यहाँ एक अक्षर का कूटव्यवहार गौण है।।१९।।

इदानीं पूर्वोक्तायाः कामराजप्रथमलोपामुद्राया विशेषोऽभिधीयते। यथा—
तदधीकृत्य यथा कुलोड्डीशे—

श्रीपरा वाग्भवाख्यैश्च ईश्वरी तारमन्मथैः।
आद्यभूतैर्भिद्यमाना सुन्दरी षड्विद्या भवेत्॥२०॥

पूर्वोक्त कामराजविद्या तथा प्रथम लोपामुद्रा के सम्बन्ध में जो विशेष है उसे उसके प्रसंग में कहा जायेगा। जैसाकि कुलोड्डीशतन्त्र में कहा है—

आदिभूत श्रीबीज, परा (बाला) का शेष बीज सौः, वाग्भव बीज, ईश्वरीबीज ह्रीं, तार (ॐ) तथा मन्मथ बीज (क्लीं) द्वारा भिद्यमान होकर सुन्दरी कामराज विद्या तथा प्रथम लोपामुद्रा छः प्रकार की हो जाती है।।२०।।

अस्यार्थः—श्रीरमाबीजम् परा बालाशेषबीजं, न तु मायाबीजं, ईश्वर्या सह पौनरुक्त्यात्। वाग्भवं सेन्दुद्वादशस्वरबीजम्। तारः प्रणवः। मन्मथः कामबीजम्। प्रत्येकमेतैराद्यभूतैर्भिद्यमाना सुन्दरी कामराजविद्या प्रथमलोपा-

मुद्रा च प्रत्येकं षड्विद्या भवेत्। तथा च कामराजविद्यायाः प्रथमलोपा-मुद्रायाश्चादौ षड्बीजानामेकैकदाने षट् षट् भेदा भवन्तीत्यर्थः। अतएव 'स्मरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमाद्ये तव मनो'रिति भगवताचार्येणापि प्रतिपादितम्। तत्र च स्मरः कामबीजम्। योनिर्वाग्भवबीजम्। लक्ष्मीः श्रीबीजम्। त्रितयमिति प्रत्येकमित्यर्थात् न तु समुदितम् ॥२१॥

इसका अर्थ श्री = रमाबीज श्रीं। परा = बाला का शेष बीज, किन्तु माया बीज नहीं है। ईश्वरी के साथ पुनरुक्ति है। वाग्भव = ऐं अर्थात् इन्दुयुक्त (-) द्वादश स्वर ऐ। ईश्वरी = ह्रीं। तार = प्रणव। मन्मथ = क्लीं। आदिभूत इन बीजसमूहों द्वारा प्रत्येक द्वारा भिन्न होकर सुन्दरी कामराजविद्या तथा लोपामुद्रा (प्रथम) विद्या प्रत्येक छः प्रकार की होती है अर्थात् कामराज विद्या तथा लोपामुद्रा के प्रारम्भ में इन छः बीजो में से एक-एक को लगाने से इस प्रकार से छः भेद हो जाता है। इसी कारण भगवान् शंकराचार्य का वचन है कि तुम्हारे मन्त्र में स्मर (क्लीं) योनि (ऐं) तथा लक्ष्मी (ऐं)— ये तीन बीज हैं।।२१।।

तथा अनयोराद्ये काममायारमाबीजं मायाश्रीकामबीजं श्रीमायाकामबीजं वा यदि त्रयं त्रयं प्रयुक्तं स्यात्, तदा प्रत्येकं त्रिविधा अष्टादशाक्षरी भवति॥२२॥

इस प्रकार कामराज विद्या तथा प्रथम लोपामुद्रा के आरम्भ में कामबीज, मायाबीज तथा रमाबीज (क्लीं ह्रीं श्रीं) अथवा मायाबीज श्रीबीज तथा कामबीज (ह्रीं श्रीं क्लीं) अथवा श्रीबीज, मायाबीज, कामवीज (श्रीं ह्रीं क्लीं) यदि प्रयुक्त हो तव प्रत्येक से तीन प्रकार की अष्टादशाक्षरी विद्या होती है।।२२।।

काममायारमा पूर्वे मायालक्ष्मीः स्मरस्तथा।
रमा माया तथा कामो वसुचन्द्राक्षरी त्रिधा ॥२३॥

कामराज विद्या तथा लोपामुद्रा में प्रथमतः काम-माया-रमा बीज, माया-लक्ष्मी-कामबीज, रमा-माया-कामबीज होने से तीन प्रकार की अष्टादशाक्षरी होती है।।२३।।

केचित्तु लक्षणया योनिपदेन मायाबीजमुक्त्वा स्मरं योनिं लक्ष्मीमित्या-चार्यपद्यं समुदितपरतयाऽत्रोदाहरन्ति॥२४॥

कोई-कोई विद्वान् लक्षणा द्वारा योनि पद से मायाबीज का अर्थ ग्रहण करके 'स्मरं योनिं लक्ष्मीम्' इस आचार्य के सम्यक् वचन को यहाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं।।२४।।

अथ कामराजविद्यायाः शाम्भवशक्तिभेद उच्यते; यथा हंसमाहेश्वरे—

प्रकारभेदमनसा पूजयेद्यदि साधकः।
तां विद्यां शृणु देवेशि! क्रमेण कथयामि ते ॥२५॥

अब कामराज विद्या का शाम्भव शक्ति से भेद कहते हैं। हंसमाहेश्वर ग्रन्थ में कहा है कि हे देवेशि! यदि साधक प्रकार भेद मानकर मानसिक पूजा करता है, उस विद्या को क्रमश: तुमसे कहता हूँ।।२५।।

पूर्वोद्धृतं कामराजं तदेव शाम्भवं विदुः।
ककारादिर्यदा देवि! पूर्वाम्नायप्रचोदिता ॥२६॥
ज्ञेयं स कीलितो मन्त्रः सर्वदा सिद्धिदो न हि।
एतच्छाम्भवमुद्दिष्टं शृणु शाक्तं वरानने ॥२७॥

पहले जिस कामराज विद्या को कहा है, वह शाम्भव विद्या है। हे देवि! जब पूर्वाम्नाय में ककारादि मन्त्र का उपदेश दिया गया, तब उस मन्त्र को कीलित जानना चाहिये। वे सदा सिद्धिप्रद नहीं होते। अत: शाम्भव कामराज विद्या उद्दिष्ट है। हे वरानने! शाक्त कामराज विद्या को सुनो।।२६-२७।।

मायाबीजं ततो झिण्टी कामं शक्रं वियत्क्रमात्।
जातवेदो मृगाङ्केन लाञ्छितं परमेश्वरि ॥२८॥
एतद्वाग्भवकूटञ्च पूर्ववत् कामराजकम्।
तथैव शक्तिकूटञ्च सुन्दर्येण प्रकीर्त्तिता ॥२९॥

मायाबीज (ई) अनन्तर क्रम से झिण्टी (ए) काम (क), शक्र (ल) वियत् (ह) जात्वेद (र) मृगाङ्क (नादबिन्दु) द्वारा लांछित (युक्त) परमेश्वरी (ह्रीं)—ये वाग्भव कूट एवं पूर्व के समान कामराज कूट तथा शक्तिकूट—यह सुन्दरी विद्या हैं।।२८-२९।।

सवीर्या सिद्धिदा नित्या त्रैलोक्यवशकारिणी।
निष्कीलिता महाविद्या पूर्वाम्नायप्रचोदिता ॥३०॥

यह विद्या वीर्यवती, सर्वदा सिद्धिप्रदा तथा त्रैलोक्य को वशकारिणी है। यह महाविद्या निष्कीलिता होकर पूर्वाम्नाय में उपदिष्ट है।।३०।।

अस्यार्थः—यत् कामराजाख्यविद्यास्वरूपमुक्तं, तदेव शाम्भवं कामराजाख्यम्। स तु मन्त्रः कीलितः। अतः शाक्ताख्यकामराजविद्योपास्या। तत् क्रमेणाह—मायाबीजमिति। मायाबीजं दीर्घेकारः। झिण्टी ऐकारः। कामः ककारः। शक्रो लकारः। वियत् हकारः। जातवेदो रेफः। मृगाङ्को नादबिन्दू तैर्लाञ्छितं युक्तं वियत् परमेश्वरी दीर्घेकारः। तथा च—तूर्यस्वरैकादशस्वरकवर्गादिभूमायाबीजै-र्वाग्भवकूटम्। तेन ईएकलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं इति सिद्धम्। पूर्ववदिति। पूर्वोक्त-कामराजाख्यविद्याया यत् कामराजकूटं शक्तिकूटञ्च तदत्रापीत्यर्थः॥३१॥

कामराज विद्या का जो स्वरूप कहा गया है, वह शाम्भव कामराज है, किन्तु ये मन्त्र कीलित हैं। इसीलिये शाक्त नामक कामराज विद्या उपास्या है। मायाबीज द्वारा इसका क्रम इस ग्रन्थ में कह रहे हैं।

मायाबीज = दीर्घ ई। झिण्टी = ऐ। काम = क। शक्र = ल। वियत् = ह। जातवेद = र। मृगाङ्क = नादबिन्दु। इनके द्वारा लांछित अर्थात् युक्त वियत्। परमेश्वरी = ई। एकादश स्वर ए। कवर्ग का आदि = क। भू = ल। माया = ह्रीं से वाग्भव कूट। अत: मन्त्रोद्धार इस प्रकार होता है—ईएकलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं। पूर्ववत् = पूर्वोक्त कामराज नामक विद्या का जो कामराजकूट तथा शक्तिकूट है, वह भी यहाँ है।।३१।।

अत्रापि पूर्ववद्विद्यादौ श्रीपराद्यन्यतरयोगात् षड्विधत्वम्। काममायारमादि त्रिकत्रिकयोगात् त्रिविधत्वञ्च भवति। एवं परत्रापि॥३२॥

यहाँ पूर्व के समान ही प्रथमत: श्री तथा परादि, इसके अन्यतर के योग में छ: प्रकार की विद्या होती है। काम, माया तथा रमादि तीन-तीन के योग से तीन प्रकार की विद्या होती है। इसी प्रकार अन्यत्र भी होता है। यह जानना चाहिये।।३२।।

हंसमाहेश्वरे भेदान्तरमाह—

मोक्षबीजं ततो माया ब्रह्मा शक्रो हरोऽग्निना।
विधुना वामनेत्रेण नादबिन्दुविभूषितः।
पूर्ववत्कामशक्ती च ध्यायेत्कामकलात्मिके॥३३॥

हंसमाहेश्वर ग्रन्थ में भेदान्तर कहा है कि मोक्षबीज 'ऐ', तदनन्तर माया 'ई', ब्रह्मा 'क', शक्र 'ल', हर 'ह', अग्नि 'र', बिन्दु (ं) तथा वामनेत्र 'ई' द्वारा युक्त तथा नाद-बिन्दु से विभूषित होकर वाग्भव कूट होता है। पूर्ववत् कामराज तथा शक्तिकूट रहेगा (केवल वाग्भव कूट में उपरोक्त परिवर्तन होगा)। हे कामकलात्मिके! इसका ध्यान करना चाहिये।।३३।।

विद्या वेद्या परा गुप्ता संहाररूपवर्जिता।
एषा श्रीप्राणसंयुक्ता दारिद्र्यदुःखमोचनी॥३४॥

इनका वाग्भवकूट अन्य प्रकार का होने पर उसे अन्य विद्या जानना चाहिये। ये गुप्ता हैं तथा संहाररूप से रहित हैं। यह विद्या श्री तथा प्राण से संयुता होकर दु:ख-दरिद्रता की नाशिका है।।३४।।

मोक्षबीजमेकारः। माया दीर्घेकारः। तथा च श्रीक्रमे—

एतद् भगं ततो माया ब्रह्मा शक्रो हरोऽग्निना।

वामनेत्रेण संयुक्ता नादबिन्दुविभूषिता।
एतद् वाग्भवमुद्दिष्टं पूर्ववत् कामशक्तिकम्॥३५॥

मोक्षबीज = ए। माया = ई। श्रीक्रम शास्त्र में कहते हैं कि यह भग (ए), माया (ई), ब्रह्मा (क), शक्र (ल), हर (ह), अग्नि (र), वामनेत्र 'ई' से युक्त होकर नाद बिन्दुयुक्त होकर वाग्भवकूट कहा जाता है। शक्तिकूट तथा कामराजकूट पूर्ववत् होगा।।३५।।

भगमेकारः। माया दीर्घेकारः। तत्रैव भगादिमन्त्रे विशेषो यथा—

ब्रह्मबीजं यदा दद्यात् त्रिकूटे देवि दुर्लभे।
प्रथमा सुन्दरी देवी द्वितीया ब्रह्मसुन्दरी॥३६॥
शक्तिकूटे महेशानि अनन्तसुन्दरी मता।
एषा तु षोडशी विद्या मतभेदेन दर्शिता॥३७॥

भग = ए। माया = ई। इसी श्रीक्रम में भगादि मन्त्र में विशेष रूप से कहा है कि हे देवि! दुर्लभ त्रिकूट ब्रह्मबीज 'ॐ' जब लगाये तब प्रथमा विद्या सुन्दरी, द्वितीया ब्रह्मसुन्दरी होती है। हे महेशानि! शक्तिकूट का ब्रह्मबीज से योग करने पर अनन्तसुन्दरी विद्या होती है। मन्त्रभेद से यह विद्या प्रदर्शित की गयी है।।३६-३७।।

त्रिकूटान्ते हंसबीजं बिन्दुसर्गविभूषितम्।
एषा श्रीप्राणसंयुक्ता दारिद्र्यदुःखनाशिनी॥३८॥

त्रिकूट के अन्त में बिन्दु तथा विसर्ग से विभूषित हंस बीज होने पर तथा श्री एवं प्राणयुक्त होने पर यह विद्या दरिद्रता तथा दुःखनाशिनी हो जाती है (प्राण = हंस बीज)।।३८।।

अनयोरर्थः—ब्रह्मबीजं प्रणवः। स चाद्यकूटादौ चेत् प्रथमा सुन्दरी। द्वितीयकूटादौ चेद् ब्रह्मसुन्दरी। तृतीयकूटादौ चेदनन्तसुन्दरी भवति। एषा त्विति। त्रिकूटस्य पञ्चदशाक्षरत्वादिति भावः। त्रिकूटान्ते सर्वशेषे। प्राणो हंसबीजम्। इयं सप्तदशाक्षरी पारिभाषिकषोडशी भवति॥३९॥

इन दोनों श्लोक (३६-३७) का अर्थ इस प्रकार से है। ब्रह्मबीज ॐ। यदि यह प्रथम कूट के आदि में लगे तब प्रथम सुन्दरी हो जाती है अर्थात् प्रथम वाग्भवकूट सुन्दरीकूट हो जाता है। द्वितीय कूट के आदि में लगाने से वह ब्रह्मसुन्दरी होती है। तृतीय कूट के आदि में लगाने से अनन्तसुन्दरी कही गयी है। त्रिकूटान्ते = सर्वान्त में। प्राण = हंसः। ये १७ अक्षरों वाली पारिभाषिकी षोडशी हैं।।३९।।

अथ लोपामुद्रायाः शाम्भवशाक्तभेदमाह स्वच्छन्दमाहेश्वरे—

लोपामुद्रा महाविद्या प्रथमं या समीरिता।
सैव शाम्भवमुद्दिष्टं शृणु शाक्तं वरानने॥४०॥
शक्तिर्महेशः कामश्च इन्द्रबीजं ततः परम्।
महामाया ततः पश्चात्तर स्नेहाद्ददाम्यहम्॥४१॥
पूर्ववत् कामशक्त्याख्यौ वर्णौ निष्कीलितात्मकौ।
इति शाक्ता महाविद्या शक्तिराम्नाययोजिता॥४२॥

लोपामुद्रा का शाम्भव तथा शाक्तभेद से स्वच्छन्दमाहेश्वर में कहते हैं—हे वरानने! प्रथमतः जिस महाविद्या लोपामुद्रा को कहा है, वह शाम्भव है। अब शक्ति महाविद्या को श्रवण करो। शक्ति (स) महेश (ह) काम (क) इन्द्रबीज (ल) महामाया (ह्रीं) यह वाग्भवकूट तुम्हारे स्नेह से कहा जा रहा है। उसका पूर्ववत् कामराजकूट तथा शक्तिकूट (यथावत्) रहेगा, जो निष्कीलित स्वरूप है। यह शाक्त महाविद्या शिव के पश्चिम मुख से निर्गत शक्ति आम्नाय में योजित है।।४०-४२।।

शक्तिर्दन्त्यसकारः। पूर्ववत् कामराजविद्यावत्। आम्नायः शिवमुखप्रोक्ता-गमभागः। पश्चिमत्वं मुखस्य। तथा च सहकलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं इति सिद्धम्। अत्रापि श्रीपरादियोगात् षोढ़ा षोडशी। काममायारमात्रिका-दियोगात् त्रिविधाष्टादशी॥४३॥

शक्ति = दन्त्य 'स'। पूर्ववत् = कामराजविद्यावत्। आम्नाय = शिव द्वारा कहा गया आगम। मुख का पश्चिमत्व आम्नाय का पश्चिमत्व नहीं है। इस प्रकार 'सहकलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं' मन्त्रोद्धार होता है। यहाँ श्रीं तथा परादि के योग से छः प्रकार की षोडशी होती है। काम, माया तथा रमा के योग से अट्ठारह अक्षर की विद्या त्रिविधा होती है।।४३।।

श्रीक्रमे—

शिवबीजं शक्तिसोमं मादनञ्च पुरन्दरम्।
व्योमवह्निसमायुक्तं तुरीयस्वरबिन्दुकम्॥४४॥
पूर्ववत् कामराजन्तु शक्तिबीजं समुद्धरेत्।
एषा विद्या महेशानि वर्णितुं नैव शक्यते॥४५॥

श्रीक्रम में कहते हैं—शिवबीज (ह), शक्ति (स), सोम (स), मादन (क), पुरन्दर इन्द्र (ल), व्योम (ह), वह्नि (र) संयुक्त चतुर्थ स्वर तथा बिन्दु पूर्ववत्। कामराजकूट तथा शक्तिकूट का उद्धार करे। हे महेशानि! इस विद्या का मैं वर्णन नहीं कर सकता (अर्थात् इसकी महिमा नहीं कह सकता)।।४४-४५।।

शक्तिर्दन्त्यसकारः, सोमो दन्त्यसकारः। कामराजकूटं शक्तिकूटञ्च पूर्ववत् कामराजविद्यावत् समुद्धरेत्। अत्र बीजयोगो नास्ति। अत्र हि श्रीपराद्ये-कैकयोगे षोडशी निर्वहति। तत्र श्रीपरादियोगः। यत्र काममायारमात्रिका-दियोगे अष्टादशी निर्वहति, तत्रैव काममायारमात्रिकादियोगः क्रियते। एवमुत्तरत्रापि। इयमपि षोडशी॥४६॥

शक्ति = स। सोम = स। कामराजकूट तथा शक्तिकूट में पूर्ववत् कामराज विद्यावत् उद्धार करे। इस विद्या में अन्य बीज का योग नहीं है। यहाँ श्री परादि एक-एक बीजों के योग से षोड़शी का आविर्भाव होता है। वहाँ पर श्री परादि वीज का योग होता है। जहाँ पर काम, माया, रमा इस त्रिक के योग से अष्टादशाक्षरी का योग होता है, वहाँ काम, माया रमा रूप त्रिक का योग किया गया है। ऐसा ही उत्तरवर्त्ती स्थल में भी जानना चाहिये। यही षोडशी है।।४६।।

शिवः शक्ति भुवनेशी योगभवं बीजमुत्तमम्।
कामं व्योमं च देवेशि महामाया ततः परम्॥४७॥
सोमो व्योम महामाया नवार्णा परिकीर्त्तिता।
रुद्रशक्तिरियं देवि पूर्वाम्नाये हि नायिका॥४८॥

हे देवेशि! शिव (ह) शक्ति (स) भुवनेशानी (ह्रीं) यह उत्तम वाग्भव कूट है। काम (क) व्योम (ह) तथा महामाया (ह्रीं) यह कामराज कूट है। सोम (स) व्योम तथा महामाया, ये शक्तिकूट हैं। यह नवाक्षर मन्त्र कीर्त्तित है। मन्त्रोद्धार होता है—हसह्रीं, कहह्रीं, सहह्रीं। यह रुद्रशक्ति है, जो पूर्वाम्नाय की नायिका है।।४७-४८।।

मादनं गोत्रभित् सान्तो रेफो वामाक्षिचन्द्रवान्।
नादबिन्दुसमायुक्तः कथितः परमेश्वरि॥४९॥

हे परमेश्वरि! मादन (क) गोत्रभित् इन्द्र (ल) सान्त (ह) अग्नि (र) वामाक्षि (ई) तथा चन्द्रयुक्त नादबिन्दु-समन्वित—यह एक और मन्त्र कहा गया है।।४९।।

ब्रह्मा च गगनं शक्रो नकुलीशोऽनलस्तथा।
मायाबिन्दुसनादेन कामराजं समुद्धरेत्॥५०॥

ब्रह्मा (क), गगन (ह), शक्र (ल), नकुलीश (ह), अनल (र), माया (ई), बिन्दु तथा नाद-समन्वित कामराज का उद्धार करे।।५०।।

शक्तिर्मादनशक्रश्च हरो वह्निश्च मायया।
नादबिन्दुसमाक्रान्तं कथितः कामदो मनुः।
एषा विद्या महेशानि कथितैकादशाक्षरी॥५१॥

शक्ति (स) मादन (क) शक्र (ल) हर (ह) वह्नि (र) माया (ई) के साथ नाद-बिन्दुयुक्त होकर कामप्रद मन्त्र कहा गया है। हे महेशानि यह ११ अक्षरों वाली विद्या कही गयी है।।५१।।

गोत्रभित् लकारः। चन्द्रो नादः। नादबिन्दुर्नादमध्यगतबिन्दुः। बिन्दुसनादेन सनादबिन्दुनेत्यर्थः। अत्र बिन्दुरेव सनादा बिन्दुसनाद इति विग्रहः। उपमानावधारणे इत्यनेन समासः। तेन कामेन्द्रमायाभिः कामशिवेन्द्र-मायाभिः शक्तिकामेन्द्रमायाभिर्मन्त्रो बोध्यः। तथाच कलह्रीं, कहलह्रीं, सकलह्रीं इति सिद्धम्।।५२।।

गोत्रभित् = ल। चन्द्र = नाद। नादबिन्दु—नादमध्यगत बिन्दु। बिन्दुसनादेन—सनाद बिन्दु द्वारा। यहाँ बिन्दु ही है सनाद। बिन्दुसनाद यह विग्रहवाक्य है। उपमानावधारण में इसी सूत्र द्वारा समास होगा। इससे काम, इन्द्र, माया (ह्रीं) द्वारा; काम, शिव, इन्द्र तथा माया द्वारा; शक्ति, काम, इन्द्र तथा माया द्वारा मन्त्र को जानना चाहिये। मन्त्रोद्धार होता है—कलह्रीं, कहलह्रीं, सकलह्रीं।।५२।।

मादनं पञ्चवक्त्रञ्च लोहिता रुद्रयोगिनी।
पुरन्दरो महामाया वाग्भवं बीजमुत्तमम्।
पूर्ववत् कामशक्त्याख्यमुद्धरेद्देवि सुन्दरीम्।।५३।।

मादन (क), पञ्चवक्त्र (ह), लोहिता (क्ष), रुद्रयोगिनी (म), पुरन्दर (ल) तथा महामाया (ह्रीं)—यह उत्तम वाग्भवकूट है। हे देवि! पूर्ववत् सुन्दरी कामराज कूट तथा शक्तिकूट का उद्धार करना चाहिये।।५३।।

अस्यार्थः—लोहितो क्षकारः। रुद्रयोगिनी पवर्गपञ्चमः। पूर्ववत् कामराज-विद्यावत्। तेन कहक्षमलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं इति सिद्धम्।।५४।।

लोहित = क्ष। रुद्रयोगिनी = पवर्ग का पञ्चम वर्ण म। पूर्ववत् = कामराज विद्या के समान। इससे मन्त्रोद्धार होता है = कहक्षमलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं।।५४।।

भृग्वीशं गगनं हान्तं कालमिन्द्रं महेश्वरम्।
वामाक्षिवह्निविन्द्वाढ्यं वाग्भवं परमेश्वरि।
कामबीजं शक्तिकूटं पूर्ववत्तु समुद्धरेत्।।५५।।

भृग्वीश (स), गगन (ह), हान्त (क्ष), काल (म), इन्द्र (ल), महेश्वरी—यह वाग्भव कूट है। पूर्ववत् कामराज कूट के समान कामराजकूट तथा शक्तिकूट का उद्धार करना चाहिये।।५५।।

भृग्वीशो दन्त्यसकारः, गगनं हकारः, हान्तः क्षकारः, कालः पवर्ग-पञ्चमः। पूर्ववत् कामराजविद्यावत्। सर्वत्रैवायं क्रमः। तथा च सहक्ष-मलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं इति सिद्धम्॥५६॥

भृग्वीश = स। गमन = ह। हान्त = क्ष। काल = पवर्ग का पञ्चम वर्ण 'म'। पूर्ववत् = कामराज विद्या के समान। सभी मन्त्रों में यही क्रम है। इस प्रकार मन्त्रोद्धार होता है—सहक्षमलह्रीं, हसकहलह्रीं, सकलह्रीं।।५६।।

विष्णुरीशस्ततो हान्तः कालेशः पृथिवी ततः।
भुवनेशी ततः पश्चाद्वाग्भवं कथितं त्वयि।
कामराजं शक्तिकूटं पूर्ववत् कथितं प्रिये॥५७॥

विष्णु (अ), ईश (ह), हान्त (क्ष), कालेश (म), पृथिवी (ल), भुवनेशानी (ह्रीं)—यह वाग्भव तुमसे कहा। हे प्रिये! पूर्ववत् कहे अनुसार कामराजकूट तथा शक्तिकूट का उद्धार करना चाहिये।।५७।।

अस्यार्थः—विष्णुरकारः। ईशो हकारः, तथा च विशिष्टलक्षणया अकार-युक्तो हकार इत्यर्थः। कालेशो मकारः॥५८॥

विष्णु = अ। ईश = ह। इस प्रकार विशिष्ट लक्षणों द्वारा अकारयुक्त हकार। कालेश = म।।५८।।

अथ बीजावली पञ्चदशी

यथा नवरत्नेश्वरे—

मायाश्रीर्मदनैर्देवि! श्रीमायामदनैरपि।
मदनो मायया श्रीश्च श्रीश्च मदनमायया॥५९॥
मायया मदनं श्रीश्च कथिता परमेश्वरि।
त्रिपञ्चबीजरूपा हि गदिता मृत्युनाशिनी।
नास्त्यस्याः परमा विद्या विज्ञेया परमेश्वरि॥६०॥

अब बीजावली पञ्चदशी कहते हैं। नवरत्नेश्वर ग्रन्थ में कहा है कि हे देवि! मायाबीज (ह्रीं) श्रीबीज (श्रीं) मदनबीज (क्लीं), श्रीबीज, मायाबीज तथा मदनबीज द्वारा; मदन, माया तथा श्रीबीज द्वारा; मायाबीज तथा श्रीबीज द्वारा; श्रीबीज, मदनबीज तथा मायाबीज द्वारा एवं मायाबीज, मदनबीज तथा श्रीबीज द्वारा। हे परमेश्वरि! त्रिपञ्च (१५) बीजरूपा विद्या कही गयी है। यह मृत्युनाशिनी विद्या है। हे परमेश्वरि! इनसे बढ़कर परमविद्या और कोई नहीं है।।५९-६०।।

शक्तिः स्वयम्भुः शम्भुश्च शक्रस्तु भुवनेश्वरी।
शिवो मादनरुद्रेन्द्रो महामाया ततः परम्॥६१॥
कामः शिवस्ततो ब्रह्मा इन्द्रश्च भुवनेश्वरी।
एषा तु परमेशानि सुन्दरी सुभगोदया।
त्रिकूटान्ते हंसबीजं तदा सप्तदशी भवेत्॥६२॥

शक्ति (स), स्वयम्भु ब्रह्मा (क), शम्भु (ह), शक्र (ल), भुवनेश्वरी (ह्रीं), शिव (ह), मदन (क), रुद्र (ह), इन्द्र (ल), महामाया (ह्रीं)। तत्पश्चात् काम (क), शिव (ह), ब्रह्मा (क), इन्द्र (ह), भुवनेश्वरी (ह्रीं)—ये हैं सुभगोदया सुन्दरी विद्या। इस विद्या के त्रिकूट के अन्त में हंसबीज लगाने से यह विद्या सप्तदशाक्षरी हो जाती है।।६१-६२।।

त्रिकूटान्ते इत्यत्रास्या इति शेषः। तथा च सकहलह्रीं, हकहलह्रीं, कहकलह्रीं, इति सिद्धं सुभगायास्त्रिकूटम्॥३२॥

त्रिकूटान्त = यहाँ 'अस्या' इस पद का अध्याहार करना चाहिये। इससे मन्त्रोद्धार होता है—सकहलह्रीं, हकहलह्रीं, कहकलह्रीं। यह सुभगा का त्रिकूट है।।६३।।

वाग्बीजं विजया माया ब्रह्मा शक्रस्तु पार्वती।
मन्मथं शिवशक्ती च मदनो हर इन्द्रकः॥६४॥
महामाया ततः पश्चाच्छक्तिर्मनुः ससर्गकः।
चन्द्रः प्रजापतिः शक्रो महामाया ततः परा॥६५॥
अष्टादशाक्षरी विद्या महात्रिपुरसुन्दरी।
सर्वान्ते हंसयुक्ता चेत्तदा विंशाक्षरी भवेत्॥६६॥

वाग्बीज (ऐं) विजया (ए) माया (ई) ब्रह्मा (क) शक्र (ल) पार्वती (ह्रीं) मान्मथ (क्लीं) शिव (ह) शक्ति (स) मादन (क) हर (ह) इन्द्र (ल) महामाया (ह्रीं) तत्पश्चात् शक्ति (स) विसर्गयुक्त मनु (औ) चन्द्र (स) प्रजापति (क) शक्र (ल) महामाया (ह्रीं)—यह अष्टादशाक्षरी विद्या महात्रिपुरसुन्दरी है। यही अन्त में हंसयुक्त होकर बीस अक्षरो की विंशाक्षरी विद्या हो जाती है।।६४-६६।।

श्रीदेव्युवाच

भाषासृष्टिस्थितिहृतिर्निराख्याः पञ्चसुन्दरी।
कथयस्व प्रभो देव यदि ते रोचते मतिः॥६७॥

श्रीदेवी कहती हैं—हे देव! यदि तुम्हारी बुद्धि मेरे प्रति रुचिकर हो तब मुझसे भाषा सृष्टि स्थिति संहृति तथा निराख्या यह पञ्चसुन्दरी कहनी चाहिये।।६७।।

विजयाः एकारः। माया तूर्यस्वरः। अत्र कूटत्रयादौ बालाबीजत्रयं क्रमेण दत्तमित्यष्टादशाक्षरी। तथाच ऐं एईकलह्रीं, क्लीं हसकहलह्रीं सौः, सकलह्रीं इति सिद्धम्। इयमष्टाक्षरी। अस्याः शेषे हंसः इति बीज-द्वयञ्च विंशात्यक्षरीत्यर्थः॥६८॥

विजया = ए। माया = ई। यहाँ कूटत्रय के आदि में बाला बीजत्रय क्रम से प्रदत्त किया जाय। यह विद्या अट्ठारह अक्षरों वाली हैं; अतएव 'ऐं एईकलह्रीं, क्लीं हसकहलह्रीं, सौः सकलह्रीं' यह मन्त्रोद्धार है। यह अष्टादशाक्षरी है। यदि इसमें 'हंस' लगाये तब यह बीस अक्षरों वाली विद्या हो जाती है।।६८।।

ईश्वर उवाच

शिवो मादन इन्द्रश्च शक्तिश्च भुवनेश्वरी।
ब्रह्माशिवेन्द्रौ शक्तिश्च महामाया ततः परा॥६९॥
मादनेन्द्रौ शक्तिशिवौ महामाया तदन्तिके।
एषा पञ्चदशी भाषा साक्षात्त्रिपुरसुन्दरी॥७०॥

ईश्वर कहते हैं—शिव (ह) मादन (क) इन्द्र (ल) शक्ति (स) भुवनेश्वरी (ह्रीं) ब्रह्मा (क) शिव (ह) इन्द्र (ल) शक्ति (स) तथा महामाया (ह्रीं) तत्पश्चात् मादन (क) इन्द्र (ल) शक्ति (स) शिव (ह) और अन्त में पुनः महामाया (ह्रीं)—यह पञ्चदशाक्षरी विद्या है। यह साक्षात् त्रिपुरसुन्दरी है।।६९-७०।।

शक्तिर्दन्त्यसकारः। तेन शिवकामेन्द्रमायाभिः कामशिवेन्द्रशक्तिमायाभिः, कामेन्द्रशक्तिशिवमायाभिर्मन्त्रः। तथाच हकलसह्रीं, कहलसह्रीं, कलस-हह्रीं इति सिद्धम्। एषा भाषा॥७१॥

शक्ति = स। अतः शिव, काम, इन्द्र, माया एवं काम शिव, इन्द्र, शक्ति तथा माया एवं काम, इन्द्र, शक्ति, शिव तथा माया द्वारा मन्त्र होता है। इससे मन्त्रोद्धार होता है—हकलसह्रीं, कहलसह्रीं, कलसहह्रीं। ये भाषा सुन्दरी है।।७१।।

शिवश्चन्द्रस्तथा कामः शक्रश्च भुवनेश्वरी।
शिवेन्द्रौ कामरुद्रौ च चन्द्रश्च परमेश्वरी॥
शक्तिः कामश्च शक्रश्च महामाया ततः परम्।

इति सृष्टिः॥७२॥

शिव (ह), चन्द्र (स) तत्पश्चात् काम (क), शक्र (ल), भुवनेश्वरी (ह्रीं); शिव, इन्द्र (ल), काम (क), रुद्र (ह), चन्द्र (स) तथा परमेश्वरी (ह्रीं); शक्ति (स), काम (क), शक्र (ल) महामाया (ह्रीं)—ये सृष्टि सुन्दरी हैं।।७२।।

शिवेन्द्रौ कामशक्ती च महामाया ततः परा।
कामश्चन्द्रो महेशश्च इन्द्रः शक्तिश्च पार्वति।
ब्रह्मा महेश्वरः शक्तिः शक्रश्च भुवनेश्वरी।

इयं स्थितिः॥७३॥

शिव (ह), इन्द्र (ल), काम (क), शक्ति (स), महामाया (ह्रीं), तत्पश्चात् काम (क), चन्द्र (स), महेश (ह), इन्द्र (ल), शक्ति (स), पार्वती (ह्रीं), ब्रह्मा (क), महेश्वर (ह) शक्ति (स), शक्र (ल), भुवनेश्वरी (ह्रीं)। ये स्थितिसुन्दरी हैं।।७३।।

शिवेन्द्रकामाः शक्तिश्च तत्परा भुवनेश्वरी।
शिवशक्ती मादनेन्द्रौ शिवो वह्नीन्दुमायया।
शिवः शक्तिश्च कलहा वह्निमायेन्दुभूषिताः।

एषा संहतिः॥७४॥

शिव, इन्द्र, काम, शक्ति तथा परमेश्वरी; शिव, शक्ति मादन, इन्द्र, शिव, वह्नि, माया तथा बिन्दुयुक्त शिव; शक्ति (ह्रीं) क, ल, वह्नि माया तथा इन्दुभूषित 'ह' अर्थात् ह्रीं। ये संहतिसुन्दरी कही गयी हैं।।७४।।

शक्रो ब्रह्मा इन्द्रबीजं महामाया ततः परम्।
वाग्भवं कथितञ्चैतत् कामराजं ततः शृणु।
शक्तिः शिवो मादनेन्द्रौ तत्परा परमेश्वरी।
शिवः शक्तिश्च सोमश्च शून्यो ब्रह्मा महेश्वरी।
शून्यो हकारः। एषा निराख्या॥७५॥

शक्र (ल), ब्रह्मा (क), चन्द्र (स), महामाया (ह्रीं), तदनन्तर वाग्भव बीज (ऐं) यह है वाग्भवकूट। तत्पश्चात् कामराज कूट सुनो—शक्ति (स), शिव (ह), मादन (क), इन्द्र (ल), परमेश्वरी (ह्रीं)। शिव, शक्ति, सोम (स), शून्य (ह), ब्रह्मा (क), महेश्वरी (ह्रीं) यह शक्तिकूट है। ये निराख्या सुन्दरी हैं।।७५।।

देव्युवाच

स्वप्नावतीं मधुमतीं कथयस्व मयि प्रभो।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि यदि चास्ति कृपा मयि॥७६॥

देवी कहती हैं—हे प्रभो! यदि मेरे प्रति आपकी कृपा है तब स्वप्नावती तथा मधुमती विद्या कहिये। यह मैं सुनने की इच्छा करता हूँ।।७६।।

ईश्वर उवाच

शिवो मादनशक्रौ च शक्तिश्च भुवनेश्वरी।
महेशो ब्रह्मा हंसश्च इन्द्रश्च परमेश्वरी ॥७७॥
महेशः शक्तिः कामश्च पुरन्दरो वियत्तथा।
अग्निमायाकलायुक्तं नादबिन्दुविभूषितम्।
हंसो हकारः। मायाकला ईकारः॥७८॥
एषा स्वप्नावती ख्याता कला पञ्चदशी तथा।
तेन हकलसह्रीं, हकहलह्रीं, हसकलह्रीं इति स्वप्नावती ॥७९॥

ईश्वर कहते हैं—शिव (ह), मादन (क), शक्र (ल), शक्ति (स) तथा भुवनेशी (ह्रीं); महेश (ह), ब्रह्मा (क), हंस (ह), इन्द्र (ल) तथा परमेश्वरी (ह्रीं); महेश (ह), शक्ति (स), काम (क), पुरन्दर (ल) इस प्रकार अग्नि (र) मायाकला (ई) युक्त तथा बिन्दु-नाद-विभूषित होगा। हंसः = ह। मायाकला—ई।

ये स्वप्नावती हैं। ये पंचदशाक्षरी हैं। मन्त्रोद्धार होता है—हकलसह्रीं, हकहलह्रीं, हसकलह्रीं। ये स्वप्नावती कही जाती हैं।।७७-७९।।

ब्रह्मा महेश इन्द्रश्च शक्तिश्च भुवनेश्वरी।
ब्रह्मा वियन्मरुच्छक्रस्तत्परा भुवनेश्वरी ॥८०॥
मादनं सोमचन्द्रौ च शक्रश्च परमेश्वरी।
एषा मधुमती ख्याता सर्वशास्त्रेषु गोपिता ॥८१॥

ब्रह्मा (क), महेश (ह), इन्द्र (ल), शक्ति (स), भुवनेश्वरी (ह्रीं), ब्रह्मा, वियत् (ह) मरुत् (य), शक्र (ल), भुवनेश्वरी (ह्रीं)। मादन (क), सोम (स), चन्द्र (स), शक्र (ल), परमेश्वरी (ह्रीं), ये मधुमती हैं तथा सभी शास्त्रों में गोपिता हैं।।८०-८१।।

अस्यार्थः मरुद् यकारः। तेन कहलसह्रीं, कहयलह्रीं, कसहलह्रीमित्येषा मधुमती॥८२॥

अर्थ कहते हैं—मरुत् = य। मन्त्रोद्धार होता है—कहलसह्रीं, कहयलह्रीं, कससलह्रीं। यह मधुमती विद्या है।।८२।।

श्रीक्रमे—

कामकेश्वरविद्यैव त्रिकूटक्रमपाठिता।
सौभाग्यायास्त्रिकूटेन पञ्चम्याः पञ्चकूटकम् ॥८३॥
त्रिपुरा या महाविद्या कूटैकादशनिर्मिता।
सारात्सारतरा विद्या कथितैकादशाक्षरी ॥८४॥

श्रीक्रमशास्त्र में कहते हैं—यथाक्रम से पठित कामराज विद्या का त्रिकूट एवं सुभगा के त्रिकूट के साथ पञ्चमी का पञ्चकूट—इस एकादश कूट से महाविद्या त्रिपुरा होती है। यह सार का भी सार है। यह ग्यारह अक्षरों वाली है।।८३-८४।।

विशेष—इसमें ग्यारह कूट हैं; अतएव एक-एक कूट को एक-एक अक्षर मानकर ग्यारह अक्षरों वाली विद्या कहते हैं।

अस्यार्थः—कामराजविद्यायास्त्रिकूटं सुभगायाः कूटत्रयं, पञ्चमाः पञ्चकूटश्चेति एकादशकूटेयम्। १. कएईलह्रीं। २. हसकहलह्रीं। ३. सकलह्रीं। ४. हसकलह्रीं, ५. हसकहलह्रीं। ६. सकलह्रीं। ७. कए-ईलह्रीं। ८. इसकलह्रीं। ९. हकहलह्रीं। १०. कहयलह्रीं। ११. हकल-सह्रीं इति॥८५॥

इसका अर्थ है—कामराज विद्या का त्रिकूट एवं सुभगा का पञ्चकूट यह है—त्रिपुरा का एकादश कूट। यह है—१. कएईलह्रीं। २. हसकहलह्रीं। ३. सकलह्रीं। ४. हसकलह्रीं, ५. हसकहलह्रीं। ६. सकलह्रीं। ७. कएईलह्रीं। ८. हसकलह्रीं। ९. हकहलह्रीं। १०. कहयलह्रीं। ११. हकलसह्रीं।।८५।।

अथ पञ्चमी

अस्याः पञ्चकूटो मन्त्रः। तत्र प्रथममेककूटात्मकं वाग्भवकूटम्। ततः कूटत्रयात्मकं कामराजकूटम्। तत्रापि स्वप्नावत्या मध्यकूटेन द्वितीयकूटम्। मधुमत्या मध्यकूटेन तृतीयकूटम्। ततः शक्तिकूटम्। यथा तन्त्रे—

कामं विष्णुयुतं देवि! शक्तिमायेन्द्र एव च।
महामाया ततः पश्चाद् वाग्भवं बीजमुद्धरेत्॥८६॥

अब पञ्चमी विद्या कहते हैं। इसका पञ्चकूट मन्त्र है। उसमें प्रथम एक कूटात्मक वाग्भवकूट, तत्पश्चात् कूटत्रयात्मक कामराजकूट। इस कामराज कूट में स्वप्नावती के मध्यकूट द्वारा द्वितीय कूट। मधुमती के मध्यकूट द्वारा तृतीय कूट, तदनन्तर शक्तिकूट लगाये। जैसाकि श्रीक्रमशास्त्र में कहते हैं—हे देवि! विष्णु (अ) युक्त काम (क), शक्ति (ए), माया (ई), इन्द्र (ल) तदनन्तर मायाबीज (ह्रीं)—इस वाग्भवकूट का उद्धार करे।।८६।।

विष्णुयुतं कामराजयुतमित्यर्थः। शक्तिरेकारः। माया ईकारः। इन्द्रो लकारः। महामाया ह्रींकारः। तेन कएईलह्रीं इति वाग्भवकूटम्॥८७॥

विष्णुयुतं = अकारयुक्त। शक्तिः = ए। माया = ई। इन्द्र = ल। महामाया = ह्रीं। इससे—कएईलह्रीं वाग्भवकूट का उद्धार होता है।।८७।।

जीवप्राणौ महादेवि मादनं तदनन्तरम्।
इन्द्रबीजं ततः पश्चाद्भुवनेशी ततः परम्॥

जीवो दन्त्यसकारः। प्राणो हकारः। तथाच चन्द्रशिवकामेन्द्रमायाभिः शक्तिकूटं पञ्चमम्। तेन सहकलह्रीं इति सिद्धम्। वाग्भवादिकूटचतुष्कं पूर्ववदेव। इति द्विविधा पञ्चमी॥८८॥

जीव = स। प्राण = ह। इस प्रकार चन्द्र शिव काम इन्द्र माया से पञ्चम शक्तिकूट होता है। इससे सहकलह्रीं सिद्ध होता है। वाग्भवादि चार कूट पूर्ववत् रहते हैं। यह दो प्रकार की पञ्चमी कही गई है।।८८।।

वियच्चन्द्रस्ततः पश्चात्कलौ नकुलि वह्नि च।
मायास्वरेण संयुक्तं नादब्रिन्दुकलान्वितम्।
प्रथमं कामराजस्य कूटं परमदुर्लभम्॥८९॥

वियत् (ह), चन्द्र (स), तदनन्तर क ल, नकुलीश (ह), वह्नि (र), माया मायास्वर (ई) द्वारा युक्त तथा नाद एवं बिन्दुकला द्वारा मण्डित। यह अति दुर्लभ कामराज का प्रथम कूट कहा गया है।।८९।।

नकुलि—वह्नीति समाहारे द्वन्द्वः। कामराजस्येति बीजत्रयात्मकस्य कामराजस्य प्रथमकूटं वा पञ्चम्यास्तु द्वितीयकूटमित्यर्थः॥९०॥

नकुली वह्नि—इसमें समाहार द्वन्द्व समास है। कामराजस्य का अर्थ है—बीजत्रयात्मक कामराज का प्रथम कूट अथवा पञ्चमी का द्वितीय कूट।।९०।।

वियद्विष्णुयुतं कामो हंसः शक्रस्ततः परम्।
महामाया ततः पश्चात् स्वप्नावतीति कथ्यते॥९१॥

हंसो हकारः।

विष्णुयुत (अ युक्त) वियत् (ह), काम (क), हंसः (ह) तदनन्तर शक्र (ल) तत्पश्चात् महामाया (ह्रीं)—यह स्वप्नावती विद्या कही गई है।।९१।।

एतत् स्वप्नावतीमध्यकूटमयं कामराजस्य द्वितीयकूटं पञ्चम्यास्तु तृतीयकूटम्। यद्यपि स्वप्नावत्या मध्यकूटे प्रथमवर्णे स्वरो नास्ति पञ्चम्यास्तृतीयकूटे प्रथमवर्णे अकारो विद्यते इति वैषम्यं सम्भाव्यते, तथापि बहुतरसाजात्यादुच्चारणवैजात्याभावात् पारिभाषिकत्वाच्च तृतीयकूटं स्वप्नावतीत्युच्यत इति तत्त्वम्॥९२॥

यह स्वप्नावती के मध्यकूटमय कामराज के द्वितीयकूट, पञ्चमी का तृतीयकूट

है। यद्यपि स्वप्नावती के मध्यकूट के प्रथम वर्ण में स्वर नहीं है एवं पञ्चमी के तृतीय कूट के प्रथम वर्ण में अकार है, इसीलिये वैषम्य की सम्भावना है, तथापि दोनों के मध्य अनेक साजात्य है। अतएव उच्चारण की वैजात्यता नहीं है तथा पारिभाषिक भी है, इसीलिये तृतीय कूट को स्वप्नावती कहा गया है। यही तत्त्व है।।९२।।

मादनं शिवबीजञ्च वायुबीजस्ततः परम्।
इन्द्रबीजं ततः पश्चान्महामायां समुद्धरेत् ॥९३॥

वायुबीजं = यकारः। एतन्मधुमती मधुकूटमयं कामराजस्य तृतीयकूटं पञ्चम्यास्तु चतुर्थकूटं मधुमतीत्युच्यते॥९४॥

मादन (क), शिवबीज (ह), वायुबीज (यं) तत्पश्चात् इन्द्रबीज (ल) तत्पश्चात् महामाया बीज (ह्रीं) का उद्धार करे। वायुबीज = य। यह मधुमती मधुकूटमय कामराज का तृतीय कूट है। पञ्चमी का चतुर्थकूट मधुमती कहा जाता है।।९३-९४।।

शिवबीजं तथा काममिन्द्रं देवीं नियोजयेत्।
महामायां ततः पश्चाच्छक्तिकूटं समुद्धरेत् ॥९५॥

देवी सकारः। इयं पञ्चम्याः शक्तिकूटाख्यं पञ्चमकूटम्।

शिवबीज (ह), काम (क), इन्द्र (ल) देवी (स) का प्रयोग करे। तत्पश्चात् महामाया (ह्रीं) को देकर शक्तिकूट का उद्धार करे। देवी = स। ये पञ्चमी के शक्तिकूट नामक पञ्चकूट कहे गये हैं।।९५।।

तथाचोक्तम्—

वाग्भवं प्रथमं कूटं शक्तिकूटञ्च पञ्चमम्।
मध्यकूटत्रयं देवि कामराजं मनोहरम्।
कथिता पञ्चमी विद्या त्रैलोक्ये सुभगोदया ॥९६॥

इसे ही कुलोड्डीश तन्त्र ने इस प्रकार कहा है—प्रथम वाग्भवकूट, पञ्चम शक्तिकूट है। हे देवि! मध्यकूटत्रय (बीज के तीन कूट) को कामराजकूट कहा है। इस पञ्चमी विद्या को त्रिभुवन में सुभगोदय कहा गया है।।९६।।

तथाच—कएईलह्रीं, हसकलह्रीं, हकहलह्रीं, कहयलह्रीं, हकलसह्रीं इति सिद्धम्। पञ्चविंशत्यक्षरी त्रिपुरसुन्दरी पञ्चकूटात्मिका॥९७॥

इस प्रकार मन्त्रोद्धार होता है—कएईलह्रीं, हसकलह्रीं, हकहलह्रीं, कहयलह्रीं, हकलसह्रीं। पञ्चविंशत्यक्षरी त्रिपुरसुन्दरी पञ्चकूटात्मिका है।।९७।।

अथ प्रकारान्तरं शक्तिकूटम्। यथा—

ईश्वर उवाच

शृणु देवि महाभागे! शक्तिकूटं सुदुर्लभम्।
महेशः शक्तिः कामश्च पुरन्दरो वियत्तथा।
अग्निमायाकलायुक्तं बिन्दुनादविभूषितम्।
एषा स्वप्नावती ख्याता कलापञ्चदशी तथा॥९८॥

हंसो हकारः। मायाकला दीर्घेकारः, तथाच—हसकलह्रीं, हकहलह्रीं, हसकलह्रीं इति सिद्धम्। इयं स्वप्नावती पञ्चदशाक्षरी।

अब प्रकारान्तर से शक्तिकूट कहते हैं। जैसा कि ईश्वर कहते हैं—हे देवि! महाभागे! इस दुर्लभ शक्तिकूट को सुनो, जो अत्यन्त दुर्लभ है। महेश (ह), शक्ति (स), इन्द्र (ल), शक्ति (स), भुवनेश्वरी (ह्रीं), ब्रह्मा, वियत् (ह), मरुत् (य), इन्द्र (ल), तत्पश्चात् भुवनेश्वरी (ह्रीं), मादन (क), सोम (स), चन्द्र (स), शक्र (ल), परमेश्वरी (ह्रीं)। ये मधुमती नाम्नी हैं तथा समस्त शास्त्रों में गोपिता हैं।

हंस = ह। तथा मायाकला = ई। इस प्रकार हसकलह्रीं, हकहलह्रीं, हसकलह्रीं यह सिद्ध होता है। यह पञ्चदशाक्षरी स्वप्नावती है।।९८।।

ब्रह्मा महेश इन्द्रश्च शक्तिश्च भुवनेश्वरी।
ब्रह्मा वियन्मरुच्छक्रस्तत्परा भुवनेश्वरी।
मादनं सोमचन्द्रौ च शक्रश्च परमेश्वरी।
एषा मधुमती ख्याता सर्वशास्त्रेषु गोपिता॥९९॥

ब्रह्मा (क), महेश (ह), इन्द्र (ल), शक्ति (स) तथा भुवनेश्वरी (ह्रीं), ब्रह्मा (क), वियत् (ह), मरुत् (य), इन्द्र (ल), तदनन्तर भुवनेश्वरी (ह्रीं), मादन (क), सोम (स), चन्द्र (स), शक्र (ल) तथा परमेश्वरी (ह्रीं)। यह मधुमती कहलाती है। ये सर्वशास्त्र-गोपिता हैं।।९९।।

मरुत् यकारः। तथाच—कहलसह्रीं, कहयलह्रीं, कससलह्रीं इति सिद्धम्। इयं मधुमती पञ्चदशाक्षरी॥१००॥

मरुत् = य। अतएव मन्त्रोद्धार होता है—कहलसह्रीं, कहयलह्रीं, कससलह्रीं। यह पन्द्रह अक्षरों वाली मधुमती है।।१००।।

श्रीक्रमे—

कामकेश्वरीविद्यैव त्रिकूटक्रमपाठिता।
सौभाग्यायास्त्रिकूटेन पञ्चम्याः पञ्चकूटकम्॥१०१॥

त्रिपुरा या महाविद्या कूटैकादशनिर्मिता।
सारात्सारतरा विद्या कथितैकादशाक्षरी ॥१०२॥

श्रीक्रम शास्त्र में कहा है कि क्रम से पठित त्रिकूट कामकेश्वर (कामराज) विद्या अर्थात् कामराज विद्या का क्रम से पठित तीन कूट, सौभाग्या विद्या के तीन कूट के साथ पञ्चमी के पाँच कूट, इनके द्वारा त्रिपुरा महाविद्या के ग्यारह कूट उद्धृत होते हैं। यह एकादशाक्षरी (एकादशकूटा) विद्या सार का भी सार है।।१०१-१०२।।

अस्यार्थः—कामराजविद्यायास्त्रिकूटं शक्तिः स्वयम्भुः शम्भुश्चेत्युक्तसु-भगायाः कूटत्रयम्, ततः कामं विष्णुयुतम् देवीति वक्ष्यमाणप्रथमपञ्चम्याः पञ्चकूटञ्चेति एकादशकूटेयम्। अत्र पञ्चमग्रहणे प्रथमोपस्थितिस्तन्त्रम्। ईएकलह्रीं, हसकलह्रीं, सकलह्रीं। हकलसह्रीं, हकहलह्रीं, हसकलह्रीं, कएईलह्रीं, हसकलह्रीं, हकहलह्रीं, कहयलह्रीं, हकलसह्रीं इति सिद्धम्। इयमेकादशकूटा त्रिपुरसुन्दरी॥१०३॥

कामराज विद्या का त्रिकूट 'शक्तिः स्वयम्भुः शम्भुश्च' इत्यादि वचनोक्त सुभगा त्रिकूट, तत्पश्चात् 'कामं विष्णुयुतं देवि' वचनोक्त वक्ष्यमाण प्रथम पञ्चमी का पञ्चकूट, यह एकादश कूट—यह विद्या है। यहाँ पञ्चम को ग्रहण करने में प्रथम उपस्थिति ही हेतु है। ईएकलह्रीं, हसकलह्रीं, सकलह्रीं, हकलसह्रीं, हकहलह्रीं, हसकलह्रीं, कएईलह्रीं, हसकलह्रीं, हकहलह्रीं, कहयलह्रीं, हकलसह्रीं यह सिद्ध होता है। ये हैं—एकादशकूटा त्रिपुर सुन्दरी।।१०३।।

अथवा देवदेवेशि! सौभाग्यायाश्च वाग्भवम्।
कूटत्रयं कामराजं शक्तिबीजञ्च पूर्ववत् ॥१॥
वामनेत्रादिकूटं वा भगादिकूटमेव वा।
अरिहा सिद्धिदा विद्या सर्वदोषविवर्जिता ॥२॥

हे देवदेवेशि! अथवा सौभाग्या का वाग्भवकूट कामराज के तीनों कूट तथा पूर्ववत् शक्तिकूट का ग्रहण करे अथवा वामनेत्रादि कूट अथवा भगादिकूट का ग्रहण करे। यह विद्या शत्रुनाशिनी एवं सिद्धिप्रदा तथा सर्वदोष-रहिता है।।१-२।।

अस्यार्थः—शक्तिकूटद्वैविध्येन द्विविधायाः पञ्चम्या वाग्भवकूटं परित्यज्य सौभाग्यायाः प्रथमलोपामुद्राया वाग्भवकूटं योजयेत्। कामराजकूटत्रयं शक्तिकूटञ्च। पूर्ववत् = प्रागुक्तपञ्चमीवत्। तेनैतयोराद्यकूटं शिवेन्दुकाम-मायाभूबीजैः प्रयोज्यं तथाच हसकहलह्रीं इति सिद्धम्। सर्वमन्यत् पूर्ववदित्यपरभेदद्वयम्। वामनेत्रं चतुर्थस्वरः। तेन प्रथमोक्तयोः पञ्चम्यो-

वाग्भवकूटस्थाने यदि शक्तिकामराजाद्यभूतं दीर्घेकारादिकूटं प्रयुज्यते। कामराजकूटत्रयं शक्तिकूटञ्च प्रथमोक्तपञ्चमीवत्। तेन तयोराद्यकूटं चतुर्थैकादशस्वरकामशक्रमायाभिः प्रयोज्यम्। सर्वमन्यत् पूर्ववदित्य-परभेदद्वयम्। भगमेकादशस्वरः। तेन तयोराद्ये एकाराद्यकूटं प्रयुक्तं स्यात्तदा एकादशतूर्यस्वरकामशक्रमायाभिर्वाग्भवकूटम्। सर्वमन्यत् पूर्ववदित्य-परभेदद्वयम्॥३॥

अर्थात् शक्तिकूट द्विविध होने के कारण पञ्चमी विद्या के दो प्रकार के वाग्भवकूट का परित्याग करके सौभाग्य नामक प्रथम लोपामुद्रा के कूट का योग करे। कामराज के पूर्ववत् कूटत्रय तथा शक्तिकूट का योग करे। पूर्ववत् = पहले कहे गये पञ्चमी विद्यावत्। इस प्रकार यह दो आद्य कूट शिव (ह), इन्दु (स), काम (क), भू (ल) तथा मायाबीज (ह्रीं) द्वारा प्रयुक्त होगा। इस प्रकार हसकलह्रीं मन्त्र सिद्ध हो जाता है। अन्य सब पूर्ववत् है। अपर भेदद्वय है—वामनेत्र = ई। प्रथमोक्त दो पञ्चमी के वाग्भव कूट के स्थान पर यदि शक्ति कामराज के आदिभूत दीर्घ ईकारादि कूट प्रयुक्त होते हैं तथा कामराज कूटत्रय एवं शक्तिकूट प्रथमोक्त पञ्चमी के समान प्रदत्त होते हैं, तब इन दो आद्यकूट चतुर्थ स्वर (ई) एकादश स्वर (ए), काम (क), शक्र (ल) तथा मायाबीज (ह्रीं) द्वारा प्रयुक्त होगा। अन्य सब पूर्ववत् रहेगा। अन्य भेद है—भगम् = एकादश स्वर ए। इस प्रकार उन दो के आदि में एकादि जब प्रयुक्त होगा तब एकादश स्वर (ए), चतुर्थ स्वर (ई), काम (क), शक्र (ल) तथा मायाबीज (ह्रीं) द्वारा वाग्भव कूट होगा। अन्य सब पूर्ववत् रहेगा। यह अपर भेदद्वय है।।३।।

यामले—

द्विविधा पञ्चमी विद्या पञ्चपञ्चाक्षरी परा।
मध्ये षड्क्षरञ्चैव शक्तिश्च चतुरक्षरी॥४॥

यामल में कहा है कि पञ्चमी विद्या द्विविधा है। उसमें से एक प्रकार पाँच-पाँच अक्षर घटित पञ्चकूट रूप है। दूसरे में षडक्षरी तथा शक्तिकूट चतुरक्षरी होता है।।४।।

अस्यार्थः—पञ्चमी विद्या द्विविधा भवति। एका पञ्चपञ्चाक्षरी पञ्च-पञ्चाक्षरघटितपञ्चकूटा परा अन्या तु कथ्यते इति शेषः। तस्या मध्ये पञ्चकूटान्तर्गत- तृतीयकूटे स्वप्नावत्याख्ये षडक्षरं कूटं अर्थात् काम-राजविद्याया मध्यकूटं प्रयोज्यम्। तेन प्रथमोक्तपञ्चम्याः स्वप्नावत्याख्यकूटं दूरीकृत्य शिवचन्द्रकामशिवशक्रमायात्मकं षडक्षरं कूटं प्रयोज्यम्। एवं प्रथमोक्तपञ्चम्या यत् शक्तिकूटं द्विविधमुक्तं, तत् परित्यज्य चतुर-

क्षरकूटं अर्थात् कामराजविद्यायाः शक्तिकूटं चन्द्रकामेन्द्रमायात्मकं चतुरक्षररूपं प्रयोज्यम्। एतावतापि पञ्चम्याः पञ्चविंशतिवर्णात्मकत्वमक्षतम्। तेन कामभगतूर्यभूमायाभिः शिवचन्द्रकामभूमायाभिः शिवचन्द्रकामशिवभूमायाभिः कामशिववायुभूमायाभिः शक्तिकामभूमायाभिश्च कूटपञ्चकमित्येका पञ्चमी। तथाच—कएईलह्रीं, हसकलह्रीं, हसकहलह्रीं, कहयलह्रीं, सकलह्रीं इति सिद्धम्॥५॥

तात्पर्य यह है कि पञ्चमी विद्या दो प्रकार की होती है। एक पञ्चपञ्चाक्षरी अर्थात् पाँच-पाँच अक्षर पञ्चकूट है। परा अर्थात् अन्या पञ्चमी में पञ्चकूट के अन्तर्गत स्वप्नावती नामक तृतीय कूट षड़क्षर कूट अर्थात् कामराज विद्या का मध्यकूट प्रयोग करे। इससे प्रथमोक्त पञ्चमी स्वप्नावती नामक कूट का परित्याग करके वहाँ शिव (ह), चन्द्र (स), कान (क), शिव (ह), शक्र (ल) तथा मायाबीज (ह्रीं) रूप षड़क्षर कूट का प्रयोग करे। इस प्रकार से प्रथमोक्त पञ्चमी के जो दो प्रकार के शक्तिकूट कहे गये हैं, उसका परित्याग करके वहाँ चार अक्षर के कूट अर्थात् कामराज विद्या के चन्द्र (स), काम (क), इन्द्र (ल) तथा मायाबीज (ह्रीं) रूप चार अक्षर के शक्तिकूट का प्रयोग करे। इस प्रकार से होने पर पञ्चमी का पच्चीस वर्ण स्वरूपत्व अक्षत रहेगा। इससे काम, भग, तुर्यस्वर (ई) भू तथा मायाबीज द्वारा; शिव, चन्द्र, काम, भू तथा मायाबीज द्वारा तथा शिव, चन्द्र, काम, शिव, भू तथा मायाबीज द्वारा; काम, शिव, वायु, भू तथा मायाबीज द्वारा; शक्ति, काम, भू तथा मायाबीज द्वारा कूटपञ्चक होता है। एक पञ्चमी यह भी है। अत: मन्त्रोद्धार होता है—कएईलह्रीं, हसकलह्रीं, हसकहलह्रीं , कहयलह्रीं, सकलह्रीं।।५।।

अस्या वाग्भवकूटं परित्यज्य पूर्ववत् प्रथमलोपाया वाग्भवकूटं वामनेत्रादिकूटं भगादिकूटं वा यदि प्रयुज्यते, तदाऽपरभेदत्रयं भवतीत्येषा पञ्चमी चतुर्द्धा। एतेन द्वादशविद्या पञ्चमी दर्शिता। तथा एतयोरष्टधा चतुर्धा च व्यवस्थितयोः पञ्चम्योस्त्रिकूटात्मककामराजकूटस्य तृतीयकूटेमधुमत्याख्ये वक्ष्यमाणपञ्चम्या अन्येऽपि भेदाः॥६॥

इनके वाग्भव कूट का परित्याग करके वहाँ पूर्ववत् प्रथम लोपा का वाग्भव कूट, वामनेत्रादि कूट अथवा भगादि कूट यदि प्रदत्त हो, तब अपर तीन भेद होते हैं। इसीलिये यह पञ्चमी विद्या चार प्रकार की है। इसके द्वारा बारह प्रकार की पञ्चमी विद्या प्रदर्शित होगी। इस तरह से चार प्रकार तथा आठ प्रकार (सब मिलाकर बारह प्रकार) से अवस्थित इस पञ्चमी विद्या के त्रिकूटात्मक कामराज कूट के मधुमती नामक तृतीय कूट के वक्ष्यमाण अवान्तर भेद से पञ्चमी विद्या के अन्य भेद भी होते हैं।।६।।

यथा—

कामबीजं महेशानि! शिवबीजं ततः परम्।
तदधो हंसबीजन्तु इन्द्रबीजं विचिन्तयेत्।
महामाया ततः पश्चात् कूटं परमदुर्लभम्॥७॥

कहा है कि हे महेशानि! कामराज, शिवबीज, तदनन्तर उसके अधोभाग में हंसबीज (ह) तथा इन्द्रबीज (ल) का चिन्तन करे। तदनन्तर महामाया (ह्रीं)। यह कूट परम दुर्लभ है।।७।।

तथा च पञ्चकूटायाश्चतुर्थकूटं यदि कामशिवरुद्रमायात्मकपञ्चाक्षर-कूटात्मकं भवति, तदा याऽष्टविधा सा पुनरष्टविधा। अन्या या चतुर्विधा, सापि पुनश्चतुर्विधा भवतीति चतुर्विंशतिप्रकारा पञ्चमी॥८॥

पञ्चकूटा का चतुर्थ कूट यदि काम, शिव, रुद्र, भू तथा मायाबीजरूप पञ्चाक्षरों वाला कूट हो तब जो आठ प्रकार की पञ्चमी विद्या कही गयी है, वह और आठ प्रकार की हो जायेगी। इस प्रकार से चौबीस प्रकार की पञ्चमी विद्या होगी।।८।।

प्रकारान्तरं यथा तत्त्वबोधे कामाकाशपराशक्रसंस्थानकृतरूपिणीति। परा दन्त्यसकारः संस्थानकृतरूपिणी मायाबीजम्॥९॥

इसका अन्य प्रकार भी है। जैसे तत्त्वबोध में कहा गया है—काम (क), आकाश (ह), परा (स), शक्र (ल) तथा संस्थानकृतरूपिणी (ह्रीं)। परा = स।।९।।

तथा च तन्त्रे—

कामबीजं महेशानि शम्भुबीजं ततः परम्।
तदधश्चन्द्रबीजन्तु पृथ्वीबीजं ततो लिखेत्।
तदन्ते च महामाया कूटं परमदुर्लभम्॥१०॥

तन्त्र में कहा है कि हे महेशानि! कामबीज (क), शम्भुबीज (ह) तत्पश्चात् उसके आगे चन्द्रबीज (स) तदनन्तर पृथ्वीबीज (ल) लिखे। अन्त में महामाया (ह्रीं)। यह कूट परम दुर्लभ है।।१०।।

अस्यार्थः—पञ्चकूटाश्चतुर्थकूटं यदि कहलसह्रीमिति पञ्चाक्षरकूटात्मकं भवति, तदा याऽष्टविधा, सा पुनरप्यष्टविधा। अन्या या चतुर्विधा, सा पुनरपि चतुर्विधेति षट्त्रिंशद्रूपिणी पञ्चमी प्रतिपादिता भवति॥११॥

इति पञ्चमी।

अर्थात् पञ्चकूटा के चतुर्थ कूट में यदि कहलसह्रीं यह पञ्चाक्षर कूटात्मक हो,

तब जो आठ प्रकार की पञ्चमी विद्या है, वह पुन: आठ प्रकार की हो जाती है। इसी प्रकार से अन्य जो चार प्रकार की पञ्चमी विद्या है, वह पुन: चार प्रकार की हो जाती है। इस प्रकार से छत्तीस प्रकार की पञ्चमी विद्या प्रतिपादित की गयी है।।११।।

अथ प्राणयोगः

श्रीक्रमे—

एतासाञ्चैव विद्यानां प्राणं शृणु वरानने।
रमामायाहंसबीजं वाग्भवाद्ये नियोजयेत्॥१२॥
शक्त्यन्ते तु महादेवि हंसमायारमास्तथा।
एभिर्युक्तेन देवेशि विद्याजपनमाचरेत्॥१३॥

अब प्राणयोग कहते हैं। श्रीक्रम में कहा है—हे वरानने! इस विद्यासमूह में प्राण (जीवन) श्रवण करो। वाग्भव बीज के आदि में रमा, माया, हंसबीज (हंस:) का योग करे। हे महादेवि! शक्तिकूट के अन्त में हंस: माया तथा रमाबीज का योग करे। हे देवेशि! इन बीजों के योग के पश्चात् विद्या का जपानुष्ठान करना चाहिये।।१२-१३।।

एतासामिति पूर्वोक्तसर्वविद्यानामित्यर्थः। तासां श्रीक्रमेऽप्युक्ततया श्रीक्रमोक्तवचने एतत्पद्यस्यानासङ्गतिः। प्राणं जीवनम्; हंसबीजं हंसः-स्वरूपम्। 'त्रिकूटान्ते हंसबीजं तदा सप्तदशी भवेदि'त्यादिप्रागुक्तवचन-दर्शनात्। तेनादौ श्रीं ह्रीं हंसः इति जप्त्वा वाग्भवकूटं कामराजकूटं शक्तिकूटं जप्त्वा हंसः ह्रीं श्रीं इति जपादौ जपान्ते च सप्तवारान् जपेत् दीपन्यां तथा दर्शनादित्यर्थः॥१४॥

एतासां = पूर्वोक्त समस्त विद्या का। वह सब विद्या श्रीक्रम में कही गयी है। प्राणं—जीवन। हंसबीज = हंस:। वचन है कि त्रिकूट के अन्त में हंसबीज लगाने से वह सप्तदशी हो जाती है। अत: 'श्रीं ह्रीं हंस:' का जप करके वाग्भव कूट, कामराज कूट तथा शक्ति कूट का जप करके अन्त में पुन: 'हंस: ह्रीं श्रीं' का जप करे। आदि में सात बार 'श्रीं ह्रीं हंस:' का जप करे तथा अन्त में 'हंस: ह्रीं श्रीं' का जप करे। दीपनी प्रक्रिया में ऐसा ही उल्लेख देखा जाता है।।१४।।

पञ्चम्यां विशेषस्तु यथा—

रमां मायां हंसबीजं वाग्भवाद्ये नियोजयेत्।
शक्त्यन्ते तु महेशानि! हंसं मायां रमांस्तथा॥१५॥

तन्त्र में कहा है कि वाग्भव कूट में आदि में श्रीबीज, मायाबीज तथा हंसबीज प्रदान करना चाहिये। हे महेशानि! शक्तिकूट के अन्त में हंसबीज, मायाबीज तथा श्रीबीज प्रदान करना चाहिये।।१५।।

कामराजत्रये देवि ककारं शक्रसंयुतम्।
मायाविन्द्वीश्वरयुतं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
प्रथमं कामकूटस्य चाद्ये नियोजयेदिदम्॥१६॥

हे देवि! कामराज के तीनों में यथाक्रम से शक्र (ल), संयुक्त सूर्य कोटि समप्रभ (ई), बिन्दु (ँ) तथा ईश्वर (नाद) भूषित ककार अर्थात् क + ल + ई + ँ = क्लीं योग करे। कामराज कूट के आदि में प्रथम बीज क्लीं का योग करे।।१६।।

वान्तं वह्निसमायुक्तं वामनेत्रेण भूषितम्।
नादबिन्दुसमायुक्तं श्रियो बीजमुदाहृतम्।
द्वितीयं कामराजन्तु जपेदुक्त्वा तु सुन्दरि॥१७॥

वह्नि (र) संयुक्त वामनेत्र द्वारा भूषित तथा नाद-बिन्दुयुक्त वान्त (श) का उद्धार करे। यह श्रीं बीज होता है। हे सुन्दरि! यह 'श्रीं' कहकर कामराज का जप करना चाहिये।।१७।।

गगनं वह्निसंयुक्तं वामनेत्रविभूषितम्।
नादबिन्दुसमायुक्तं मायाबीजं प्रकीर्त्तितम्।
मधुमतीं जपेच्चापि सर्वकामफलप्रदाम्॥१८॥

वह्निसंयुक्त वाम नेत्र द्वारा भूषित गगन (ह) का उद्धार करे। यह नाद-बिन्दुयुक्त होकर मायाबीज (ह्रीं) कहा जाता है। यहाँ कामराज कूट के तृतीय कूट के आदि में 'ह्रीं' लगाकर जप करना चाहिये। सर्व कामफल प्रदात्री मधुमती विद्या का भी जप करे।।१८।।

अस्यार्थः—श्रीं ह्रीं हंसः इत्युच्चार्य वाग्भवकूटं जपेत्। ततः क्लीं इति कामबीजं जप्त्वा कामराजप्रथमकूटं जपेत्। ततः श्रीं इति रमाबीजं जप्त्वा द्वितीयकामराजकूटं जपेत्। ततो ह्रीं इति मायाबीजं जप्त्वा कामराजतृतीयकूटं जपेत्। ततः शक्तिकूटं जप्त्वा हंसः ह्रीं श्रीं इति जपेत्। एवं जपादौ जपान्ते च सप्तधा जपेत् इति प्राणयोगः॥१९॥

इसका अर्थ है कि 'श्रीं ह्रीं हंस:' का उच्चारण करके वाग्भव कूट का जप करे। तदनन्तर 'क्लीं' कामबीज का जप करके कामराज के प्रथम कूट का जप करे। तत्पश्चात् 'श्रीं' इस रमाबीज का जप करके द्वितीय कामराज कूट जप करे। तदनन्तर 'ह्रीं' का जप करके कामराज के तृतीय कूट का जप करना चाहिये। इस प्रकार जप के आदि में तथा अन्त में सात बार जप करे। यही प्राणयोग होता है।।१९।।

अथ श्रीविद्यादीपनी

तत्रादौ पञ्चम्याः—

तारं लक्ष्मीञ्च वाग्बीजं मन्मथं भुवनेश्वरीम्।
एतज्जप्त्वा ततः पश्चाद्वाग्भवाख्यं समुच्चरेत्॥२०॥
प्रणवं भुवनेशानीं रमां कामञ्च वाग्भवम्।
कामराजं ततो जप्त्वा त्रैलोक्यक्षोभकारकः॥२१॥

अब श्रीविद्या की दीपनी कहते हैं। उसमें प्रथमत: पञ्चमी की दीपनी कही जा रही है। प्रणव, लक्ष्मीबीज, वाग्बीज, मन्मथबीज तथा भुवनेश्वरी (ह्रीं)—इनका जप करके वाग्भवकूट का सम्यक् उच्चारण करना चाहिये। प्रणव, भुवनेशानी (ह्रीं), रमाबीज, कामबीज तथा वाग्भवबीज का जप करके तत्पश्चात् कामराजकूट का जप करके त्रैलोक्य को क्षोभित किया जा सकता है।।२०-२१।।

ॐकारञ्चैव वाग्बीजं रमामन्मथमायया।
स्वप्नावतीं महादेवि! जपेत् तत्र समाहितः॥२२॥

हे महादेवी! इस जपकाल में समाहित होकर ॐ, वाग्बीज, रमाबीज, मन्मथबीज (क्लीं) तथा मायाबीज जप करके स्वप्नावती विद्या का जप करे।।२२।।

प्रणवञ्चाधरं कामं रमाञ्च भुवनेश्वरीम्।
मधुमतीं ततो जप्त्वा मायां श्रीकूर्चबीजकम्॥२३॥
प्रणवाद्यञ्च देवेशि हंसबीजपुटीकृतम्।
एतद्बीजं समुच्चार्य शक्तिकूटन्ततो जपेत्।
एषा तु दीपनी विद्या अजपा प्राणरूपिणी॥२४॥

प्रणव, अधर (ऐं), कामबीज, रमाबीज, भुवनेश्वरी का जप करके मधुमती विद्या का जप करे। हे देवेशि! हंसः बीज द्वारा पुटीकृत प्रणवाद्य (आदि में प्रणव लगाकर) मायाबीज, श्रीबीज, कूर्चबीज—इनका उच्चारण करके तदनन्तर शक्तिकूट का जप करे। यह दीपनी विद्या समस्त विद्याओं की अजपा प्राणदायिनी है।।२३-२४।।

मायामिति। तेन हंसः ॐ ह्रीं हूं हंसः इति जप्त्वा शक्तिकूटं जपेदित्यर्थः। जपनियमन्तु—जपेदादौ जपेत् पश्चात् सप्तवारमनुक्रमात्। तेन जपादौ जपान्ते च एवं सप्तकृत्वो जपेदित्यर्थः॥२५॥

'हंसः ॐ ह्रीं श्रीं हूं हंसः' का जप करके शक्तिकूट का जप करे। जप का नियम है कि जप के आदि में सात बार तथा जप के अन्त में सात बार जप करना चाहिये।

इस अनुक्रम में जप करना चाहिये। अर्थ होता है कि जप के आदि में तथा जप के अन्त में इस प्रकार सात बार जप करके तब वाग्भवादि का जप करे।।२५।।

तथा—

कामराजादिविद्यानां दीपनीं चैव कारयेत्।
वाग्भवे कामराजे तु शक्तिकूटे सुरेश्वरि ॥२६॥

इस प्रकार कहते हैं कि हे सुरेश्वरि! कामराजादि विद्यासमूह में, वाग्भवकूट में, कामराजकूट में तथा शक्तिकूट में दीपनी करे।।२६।।

अत्र क्रमः। वाग्भवं शक्तिकूटयोर्दीपनी पञ्चमीवद्बोध्या। कामराजकूटे तु प्रणवं भुवनेशानीं रमां कामञ्च वाग्भवमिति जप्त्वा जपेदित्यध्याहृत्यान्वयः। दीपनी च मन्त्रकूटेऽधिकाक्षरसम्बन्धः॥२७॥

यहाँ क्रम यह है कि वाग्भवकूट तथा शक्तिकूट की दीपनी पञ्चमी विद्या के समान करनी चाहिये। कामराज कूट में प्रणव (ॐ), भुवनेशानी (ह्रीं), रमाबीज (श्रीं), कामबीज (क्लीं) तथा वाग्भवबीज (ऐं) का जप करे। दीपनी है—मन्त्रकूट में अधिक अक्षर का सम्बन्ध।।२७।।

तन्त्रे—

छिन्ना रुद्धा ये च मन्त्राः प्रसुप्ता मत्ता भीता मूर्च्छिता वीर्यहीनाः।
दग्धास्त्रस्ताः शक्रपक्षस्थिता ये बाला वृद्धा गर्विता यौवनेन॥
ये निर्वीर्य्या ये च सत्त्वेन हीनाः षण्डीभूताश्चाङ्गमन्त्रैर्विहीनाः।
एतैर्दुष्टा दीपनेनैव युक्ताः सर्वे मन्त्रा वीर्यवन्तो भवन्ति॥२८॥

तन्त्र का कहना है कि जो मन्त्र छिन्न, रुद्ध, प्रसुप्त, मत्त, भीत, मूर्च्छित, वीर्यहीन, दग्ध, त्रस्त तथा अरिपक्ष में हैं, जो बालक, वृद्ध, यौवनगर्वित, निर्बीज, सत्त्वहीन, षण्ड, अंगमन्त्र द्वारा हीन हैं, वे सभी दुष्ट मन्त्र दीपनी द्वारा वीर्यवान हो जाते हैं।।२८।।

अपरदेवतानां दीपनी पूर्वमुक्ता। इदमत्र बोध्यम्। कूटघटकव्यञ्जनानां सर्वेषां स्वरसम्बन्धोऽस्त्येव। यथा सुभगादिविद्यामधिकृत्य योगिनीहृदये—

स्वरव्यञ्जनभेदेन सप्तत्रिंशत् प्रभेदिनी।
सप्तत्रिंशत्प्रभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी॥२९॥
तत्त्वातीत स्वभावा च विद्यैषा भाव्यते सदा।
श्रीकण्ठदशकं तद्वदव्यक्तस्य हि वाचकम्।
प्राणभूतः स्थितो देवि तद्वदेकादशः परः॥३०॥

अपरदेवतासमूह की दीपनी पहले कहा जा चुका है। यहाँ ज्ञातव्य है कि कूटघटक के समस्त व्यञ्जनों का स्वरसम्बन्ध है। जैसे—सुभगादि विद्या के विषय में योगिनी तन्त्र में कहा गया है कि स्वर तथा व्यञ्जनभेद से विद्यासमूह ३७ प्रकार के हैं। ३७ भेद होने के कारण यह विद्या ३६ तत्त्वरूपा है। यह तत्त्वातीत-स्वभावा विद्या सदैव चिन्तनीय है। क्लीब वर्जित अकारादि दस वर्ण इस प्रकार के अव्यक्त व्यञ्जन के वाचक हैं। श्रेष्ठ एकादश स्वर अनुस्वार प्राणभूत होकर अवस्थित है।।२९-३०।।

सप्तत्रिंशदिति विशिष्टविद्यामादाय। षट्त्रिंशदिति विशिष्टविद्यायाः सर्वरूपत्वात् षट्त्रिंशद्वर्णानां षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपत्वमिति भावः। श्रीकण्ठेति। श्रीकण्ठः प्रथमस्वरः। तथा च क्लीबहीना अकारादिस्वरा अव्यक्तस्य व्यञ्जनस्य वाचका बोधकाः। एकादशोऽनुस्वारोऽपीत्यर्थः। तन्त्रसारकृतोऽप्येवम्। अधिकन्तु ऋणिधनिविचारेऽनुसन्धेयम्।।३१।।

विशिष्ट विद्या को लेकर सप्तत्रिंशत् कहा गया है। षट्त्रिंशत् का तात्पर्य है कि विशिष्ट विद्या सर्वरूप कही जाती है। अतः षट्त्रिंशत् (३६) वर्ण षट्त्रिंशत् तत्त्वस्वरूप हैं—यही तात्पर्य है। 'श्रीकण्ठदशकं वाक्ये' द्वारा अर्थात् प्रथम स्वर। इस प्रकार क्लीब स्वर (ऋ ॠ ऌ ॡ) रहित अकारादि स्वरसमूह अव्यक्त व्यञ्जनों का बोधक है। एकादश अनुस्वार भी व्यञ्जन का बोधक है। तन्त्रसार का भी यही मत है। अधिक बातों का ऋणी धनी चक्र विचार द्वारा अनुसन्धान करना होगा।।३१।।

अथ श्रीयन्त्रम्

यथा बिन्दुमत् त्रिकोणमध्यमष्टकोणं तत्त्रयं संहारचक्रम्। दशारद्वयं चतुर्दशारमेतत्त्रयं स्थितिचक्रम्। अष्टपत्रं षोडशपत्रं त्रिवृत्तं भूगृहत्रयं चतुर्द्वारयुक्तं एतत् सृष्ट्यात्मकम्। तदुक्तं यामले—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्ममन्वस्त्रनागदलसङ्गतषोडशारं।
वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः ।।३२।।

अब श्रीयन्त्र कहते हैं। जैसे—मध्य में एक बिन्दु, उसके बाहर त्रिकोण, यही बिन्दुमत त्रिकोण है, उसके बाहर अष्टकोण है, उस अष्टकोण के मध्य बिन्दुमत त्रिकोण है। अतएव यह अष्टकोण बिन्दुमत त्रिकोण के मध्य का अष्टकोण है। बिन्दु, त्रिकोण तथा अष्टकोण, इन तीन का नाम है—संहार चक्र। उसके बाहर दो दशकोण, उसके बाहर चतुर्दशकोण यह तीन स्थितिचक्र हैं। उसके बाहर अष्टदल कमल, उसके बाहर षोडशदल कमल, उसके बाहर तीन वृत्त, उसके बाहर चार द्वार—इसका नाम है सृष्टिचक्र। यामल में कहते हैं कि बिन्दु, त्रिकोण, वसुकोण (अष्टकोण), दो दशकोण,

मनु (चतुर्दश) कोणनाग (अष्ट) कोण, षोडशदल, तीन वृत्त, तीन भूगृह—यह श्रीविद्या का चक्रराज कहा गया है।।३२।।

दशदले वृत्तञ्च सर्वयन्त्रसाधारणतया देयम्। एवं चक्रराजं सिन्दूरकुङ्कुमादि-लिखितं सुवर्णरजतपञ्चरत्नस्फटिकताम्राद्युत्कीर्णं वा कुर्यात्॥३३॥

सर्वसाधारण दशदल वृत्त होगा। इस प्रकार चक्रराज को सिन्दूर-कुङ्कुमादि द्वारा लिखे अथवा सुवर्ण, रजत, पञ्चरत्न, स्फटिक अथवा ताम्रादि पर उत्कीर्ण (खुदाई करके) करे।।३३।।

भूतभैरवे—

योऽस्मिन् यन्त्रे महेशानि! केशराणि प्रकल्पयेत्।
योगिनीसहितास्तस्य हिंसां कुर्वन्ति भैरवाः।
इतिवचनान्नात्र केशराणि ॥३४॥

भूतभैरव में कहा है कि हे महेशानि, जो साधक इस यन्त्र के केशरसमूह की रचना करते हैं, योगिनीगण भैरवगण के साथ उसकी हिंसा करते हैं। इस वचन के कारण इस यन्त्र में केशर नहीं होता।।३४।।

अथ श्रीविद्यायाः संक्षेपपूजापद्धतिः

प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं सामान्यपद्धत्युक्तक्रमेण विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। अस्य त्रिपुरसुन्दरीमन्त्रस्य दक्षिणामूर्त्तिऋषिः पङ्क्तिच्छन्दस्त्रिपुर-सुन्दरी देवता वाग्भवबीजं कामराजं कीलकं तार्त्तीयं शक्तिः पुरुषार्थ-चतुष्टयसिद्ध्यर्थे विनियोगः। शिरसि—दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नमः। मुखे—पङ्क्तिछन्दसे नमः। हृदि—त्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः। गुह्ये—वाग्भवाय बीजाय नमः। पादयोः—तार्त्तीयशक्तये नमः। सर्वाङ्गे—कामराजाय कील-काय नमः॥३५॥

अब श्रीविद्या की संक्षेप में पूजापद्धति को कहते हैं। सामान्य पद्धतिक्रम के अनुसार प्रातःकृत्य से लेकर प्राणायाम तक का विधान करके ऊपर लिखे विधान से ऋष्यादि न्यास करना चाहिये। जैसे शिर पर—ॐ दक्षिणामूर्त्तये ऋषये नमः, मुख में—ॐ पंक्तिछन्दसे नमः, हृदय में—ॐ त्रिपुरसुन्दर्यै देवतायै नमः, गुह्य में—ॐ वाग्भवाय बीजाय नमः, पैरों पर—ॐ तार्त्तीयशक्तये नमः, सर्वाङ्ग में—ॐ कामराजाय कीलकाय नमः।।३५।।

अथ वशिन्यादिन्यासः। यथा—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं

औं अं अः रवलूं वशिनीवाग्देवतायै नमः ब्रह्मरन्ध्रे। कं खं गं घं ङं सकलह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः ललाटे। चं छं जं झं ञं नवलीं मोदिनीवाग्देवतायै नमः भ्रूमध्ये। टं ठं डं ढं णं यलूं विमलवाग्देवतायै नमः कण्ठे। तं थं दं धं नं यमलीं अरुणावाग्देवतायै नमः हृदि। पं फं बं भं मं हसलवयूं जयिनीवाग्देवतायै नमः नाभौ। यं रं लं वं झमरयूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः मूलाधारे। शं षं सं हं ळं क्षं क्षमरीं कौलिनी-वाग्देवतायै नमः सर्वाङ्गे॥३६॥

अब वशिन्यादिन्यास कहते हैं। ब्रह्मरन्ध्र में—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः रवलूं वशिनीवाग्देवतायै नमः। ललाट में—कं खं गं घं ङं सकलह्रीं कामेश्वरीवाग्देवतायै नमः। भ्रूमध्य में—चं छं जं झं ञं नवलीं मोदिनीवाग्देवतायै नमः। कण्ठ में—टं ठं डं ढं णं यलूं विमलावाग्देवतायै नमः। हृदय में—तं थं दं धं नं यमलीं अरुणावाग्देवतायै नमः। नाभि में—पं फं बं भं मं हसलवयूं जयिनीवाग्देवतायै नमः। मूलाधार में—यं रं लं वं झमरयूं सर्वेश्वरीवाग्देवतायै नमः। सर्वाङ्ग में—शं षं सं हं ळं क्षं क्षमरीं कौलिनीवाग्देवतायै नमः।।३६।।

यथा ज्ञानार्णवे—

अवर्गान्ते लिखेद् बीजं वह्निकान्तं क्षमान्वितम्।
वामकर्णविभूषाढ्यं बिन्दुनादान्वितं प्रिये॥३७॥
वशिनीं पूजयेद्वाचां देवतां देवि सुव्रते।
कवर्गान्ते महेशानि कामेशीबीजमुत्तमम्।
मेरुभूतं समुच्चार्य वाग्देवीं पूजयेत्ततः॥३८॥

मेरुभूतमिति सर्वविद्याघटक इत्यर्थः।

ज्ञानार्णव में कहा है कि हे प्रिये! अवर्ग के परे वह्नि (र), फान्त (ब), क्षमा (ल) द्वारा अन्वित वामकर्ण (उ) विभूषित और बिन्दु-नादयुक्त फान्त (व) लिखकर सुव्रते! वाक्य के देवता वशिनी की पूजा करनी चाहिये। हे महेशानि! कवर्ग के अन्त में मेरुभूत उत्तम कामेशीबीज (सकलह्रीं) का उच्चारण करके कामेश्वरी वाग्देवी की पूजा करनी चाहिये।।३७-३८।।

चवर्गान्ते धान्तलान्तक्षमातूर्यस्वरान्वितम्।
मोदिनीं पूजयेद्वाणीं नादबिन्दुविभूषिताम्॥३९॥

चवर्ग के अन्त में धान्त (न), लान्त (व) तथा चतुर्थ स्वरयुक्त (ई) नाद-बिन्दु-विभूषित क्षमा (ल) लिखकर मोदिनी वाणी की पूजा करे।।३९।।

टवर्गान्ते वायुबीजं भूमियुक्तं महेश्वरि।
वामकर्णेन्दुबिन्द्वाढ्यं विमलां वागधीश्वरीम् ॥४०॥

हे महेश्वरि! टवर्ग के अन्त में भूमि (ल) बीजयुक्त वायुबीज लिखकर उसको वामकर्ण तथा इन्दु-बिन्दु से युक्त करके विमला वाग्देवता की पूजा करे।।४०।।

तवर्गान्ते यमक्षान्तं वामनेत्रविभूषितम्।
बिन्दुनादान्वितं बीजं वाग्देवीमरुणां यजेत् ॥४१॥

तवर्ग के अन्त में यम तथा वामनेत्र-विभूषित बिन्दुनादयुक्त क्षान्त (ल) को लिखकर अरुणा वाग्देवी का पूजन करे।।४१।।

पवर्गान्ते व्योमचन्द्रक्ष्मातोयानिलसंयुतम्।
उकारः स्वरसंयुक्तं बिन्दुनादकलान्वितम्।
जयिनीं पूजयेद्वाचां देवतां वीरवन्दिते ॥४२॥

हे वीरवन्दिते! पवर्ग के अन्त में व्योम (ह), चन्द्र (स), क्षमा (ल), तोय (व), षष्ठ स्वरसंयुक्त बिन्दु तथा नाद कलायुक्त अनिल बीज (य) का उच्चारण करके जयिनी वाग्देवता का पूजन करे।।४२।।

यवर्गान्ते जान्तकालरेफवायुसमन्वितम्।
वामकर्णेन्दुशोभाढ्यं सर्वेशीं परिपूजयेत् ॥४३॥

यवर्ग के अन्त में जान्त (झ), काल (म), रेफ (र), वामकर्ण (उ), इन्दुयुक्त वायुबीज लिखकर सर्वेशी वाग्देवता का पूजन करना चाहिये।।४३।।

क्षमं वह्निगतं तूर्यस्वरेण परिवेष्टितम्।
नादबिन्दुकलाक्रान्तं कौलिनीं वाचमर्चयेत्।
शवर्गान्ते महेशानि न्यसेत् सर्वार्थसिद्धये ॥४४॥

हे महेशानि! शवर्ग के अन्त में वह्नि (र) गत 'क्षम' अर्थात् क्षम्र् को चतुर्थ स्वर 'ई' द्वारा युक्त करके नाद तथा बिन्दु-कला से भूषित करके सर्वार्थ-सिद्धि के लिये कौलिकी वाग्देवता का न्यास करे।।४४।।

शिरोललाटभ्रूमध्ये कण्ठहृन्नाभिदेशके।
आधारे व्यापके न्यासान् वर्गैरष्टभिराचरेत् इति ॥४५॥

मस्तक, ललाट, भ्रूमध्य, कण्ठ, हृदय, नाभि, आधार तथा व्यापक (सर्वाङ्ग) आठ वर्ग में न्यास आदि का अनुष्ठान करे।।४५।।

तथा चोक्तम्—

सकला भुवनेशानि कामेशी बीजमुत्तमम्।
अनेन सकला विद्याः कथयामि विशेषतः ।।४६।।

इति निरुक्तार्थकम्।

यहाँ कहते हैं कि सकल तथा भुवनेशानी (ह्रीं), कामेशी बीज को उत्तम कहकर उद्धृत किया गया है। इसके द्वारा सभी विद्याओं को विशेषरूप से जानना चाहिये।।४६।।

कामेशीबीजमुत्तममित्यनेन कामेश्वरीवाग्देवतात्र सूचिता। केचित्तु—

कवर्गान्ते महेशानि! कलह्रीं बीजमुत्तमम्।
कामेश्वरीं समुच्चार्य वाग्देवीं पूजयेत्ततः ।।४७।।

इत्यपि पाठः।

'कामेशीबीजमुत्तमम्' इसके द्वारा यहाँ कामेश्वरी वाग्देवता सूचित हुआ है। किसी का मत है कि कवर्ग के अन्त में उत्तम कलह्रीं बीज का उच्चारण करके तत्पश्चात् कामेश्वरी वाग्देवता की पूजा करनी चाहिये।।४७।।

अथ करन्यासः। अं मध्यमाभ्यां नमः, आं अनामिकाभ्यां नमः, सौः कनिष्ठाभ्यां नमः, अं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, आं तर्जनीभ्यां नमः, सौः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। अथाङ्गन्यासः—ऐं हृदयाय नमः, क्लीं सिरसे स्वाहा, सौः शिखायै वषट्। ऐं कवचाय हुं, क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्, सौः अस्त्राय फट्। ततो मूलेन व्यापकत्रयं कृत्वा ध्यायेत्।।४८।।

अब करन्यास करे—ॐ अं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ आं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ सौः कनिष्ठाभ्यां नमः, ॐ अं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ आं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ सौः करतलपृष्ठाभ्यां नमः।

अब अंगन्यास करे—ॐ ऐं हृदयाय नमः, ॐ क्लीं शिरसे स्वाहा, ॐ सौः शिखायै वषट्, ॐ ऐं कवचाय हुं, ॐ क्लीं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ सौः अस्त्राय फट्। इसके अनन्तर तीन बार व्यापक न्यास करके इस प्रकार ध्यान करे।।४८।।

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुत्रिलोचनाम्।
पाशाङ्कुशशरांश्चापं धारयन्तीं शिवां श्रये ।।४९।।

बाल सूर्यमण्डल के समान दीप्तियुक्त, चतुर्भुजा, त्रिलोचना, पाश-अंकुश-शर तथा चापधारिणी शिवा का आश्रय लेता हूँ।।४९।।

अथवा—

प्रातः पद्मनिभां देवीं बालार्ककिरणोज्ज्वलाम् ।
जावाकुसुमसङ्काशां दाडिमीकुसुमोपमाम् ॥५०॥
पद्मरागप्रतीकाशां कुङ्कुमारुणसन्निभाम् ।
स्फुरन्मालिकामुकुटकिङ्किणीजालमण्डिताम् ॥५१॥
कालालिकुलसङ्काशकुटिलालकपल्लवाम् ।
प्रत्यग्रारुणसङ्काशवदनाम्भोजमण्डलाम् ॥५२॥
किञ्चिदर्द्धेन्दुकुटिलललाटमृदुपट्टिकाम् ।
पिनाकिधनुराकारभ्रूलतां परमेश्वरीम् ॥५३॥
आनन्दमुदितोल्लासलीलान्दोलितलोचनाम् ।
स्फुरन्मयूखसङ्काशविलसद्धेमकुण्डलाम् ॥५४॥
सुगण्डमण्डलाभागे जितेन्दुमृदुमण्डलाम् ।
विश्वकर्मविनिर्माणसूत्रसुस्पष्टनासिकाम् ॥५५॥
ताम्रविद्रुमविन्द्धाढ्यं रक्तौष्ठीममृतोपमाम् ।
स्मितमाधुर्यविजितमाधुर्यरससागराम् ॥५६॥
अनौपम्यगुणोपेतचिबुकोद्देशशोभिताम् ।
कम्बुग्रीवां महादेवी मृणाललिलितैर्भुजैः ॥५७॥
रक्तोत्पलदलाकारसुकुमारकराम्बुजाम् ।
कराम्बुजनखज्योतिर्विभासितनभस्तलाम् ॥५८॥
मुक्ताहारलतोपेतसमुन्नतपयोधराम् ।
त्रिवलीवलयायुक्तमध्यदेशसुशोभिताम् ॥५९॥
लावण्यसरिदावर्त्ताकारनाभिविभूषिताम् ।
अनर्घरत्नघटितकाञ्चीयुतनितम्बिनीम् ॥६०॥
नितम्बबिम्बद्विरदरोमराजिवराङ्कुशाम् ।
कदलीललितस्तम्बसुकुमारोरुमीश्वरीम् ॥६१॥
लावण्यकुसुमाकारजानुमण्डलबन्धुराम् ।
लावण्यकदलीतुल्यजङ्घायुगलमण्डिताम् ॥६२॥
गूढ़गुल्फपदद्वन्द्वप्रपदाजितकच्छपाम् ।
तनुदीर्घाङ्गुलिस्वच्छनखराजिविराजिताम् ॥६३॥
ब्रह्मविष्णुशिरोरत्ननिघृष्टचरणाम्बुजाम् ।
सीतांशुशतसङ्काशकान्तिसन्तानहासिनीम् ॥६४॥

लौहित्यजितसिन्दूरजवादाड़िमरागिनीम् ।
रक्तवस्त्रपरीधानां पाशाङ्कुशकराम्बुजाम् ।।६५।।
रक्तपद्मनिविष्टान्तु रक्ताभरणभूषिताम् ।
चतुर्भुजां त्रिनेत्रान्तु पञ्चबाणधनुर्द्धराम् ।।६६।।
कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननाम् ।
महामृगमदोद्दामकुङ्कुमारुणविग्रहाम् ।।६७।।
सर्वशृङ्गारवेशाढ्यां सर्वाभरणभूषिताम् ।
जगदाह्लादजननीं जगद्रञ्जनकारिणीम् ।।६८।।
जगदाकर्षणकरीं जगत्कारणरूपिणीम् ।
सर्वमन्त्रमयीं देवीं सर्वसौभाग्यसुन्दरीम् ।
सर्वलक्ष्मीमयीं नित्यां सर्वशक्तिमयीं शिवाम् ।।६९।।

प्रात:कालीन बाल सूर्य की किरण के समान उज्ज्वल, जवाकुसुम-सदृश, अनार के पुष्प के समान पद्मराग-प्रतीकाश, कुसुमारुण के समान, उज्ज्वल माणिक्य के मुकुटस्थित किङ्किनी जाल द्वारा मण्डित, कृष्णवर्ण अलिकुल-सदृश कुन्तल पल्लव-मण्डित, नूतन अरुण के समान वदनमण्डल-धारिणी, ललाट पर किञ्चित् कुटिल (टेढ़ा) अर्धचन्द्र को धारण करने वाली, पिनाक धनुष के आकार की भ्रूलता-धारिणी, परमेश्वरी, आनन्द से मुदित तथा विकसित लीला से आन्दोलित लोचन-धारिणी, प्रस्फुरित किरणों वाले उज्ज्वल हेमकुण्डल पहनने वाली, कोमल इन्दुमण्ड को विजित करने वाले विस्तृत गण्डमण्डलों वाली, विश्वकर्मा के निर्माणसूत्र द्वारा रचित सुस्पष्ट नासिका वाली, ताम्र तथा विद्रुमबिन्दु के समान लाल ओठों वाली, अमृतोपम स्मित माधुर्य द्वारा माधुर्यरससागर-विजयिनी, उपमारहित गुणयुक्त चिबुक देश से शोभित, कम्बुवत् ग्रीवा-धारिणी, महादेवी, मृणाल के समान ललित बाहुसमूह से शोभित, लाल कमल के समान सुकुमार करपद्म- धारिणी, करपद्म की नखज्योति से नभस्थल-उज्ज्वलकारिणी, मुक्ताहार-लतायुक्त समुन्नत स्तनधारिणी, त्रिवली वलय-मण्डित मध्यदेश से शोभित, लावण्य नदी के भँवर के समान नाभि से विभूषित, महामूल्य रत्नखचित काञ्ची-मण्डित नितम्बधारिणी, नितम्बबिम्बरूप द्विरद कुम्भ में अंकुर के समान रोमधारिणी (जैसे अङ्कुर के चारो ओर महीन रोम होते हैं, वैसे ही), केला के ललित तने के समान सुकुमार ऊरुधारिणी, ईश्वरी, लावण्य कुसुम के आकार के उन्नतावनत जानुमण्डल-धारिणी, लावण्य कदलीतुल्य जंघायुगल से मण्डित, कच्छपपादाग्रजयी गूढगुल्फ पदद्वयधारिणी, क्षीण दीर्घाङ्गुलि-स्थित स्वच्छ नखराजि से मण्डित, ब्रह्मा तथा विष्णु के मुकुटों द्वारा जिनके चरण घर्षित हैं ऐसे चरणकमलों

वाली, शतचन्द्र की कान्ति के समान कान्ति द्वारा उद्भासित, सिन्दूर, जवा तथा अनार के वर्ण तुल्य लौहित्यधारिणी, रक्त वस्त्र पहनी हुई, करकमल में पाश तथा अंकुशधारिणी, लालकमल पर बैठी हुई, रक्ताभरण से भूषित, चार भुजाओं वाली, तीन नेत्रों वाली, पाँच बाण तथा धनुष-धारिणी, कर्पूर मिले ताम्बूल को मुख में धारण करने वाली, कस्तूरी द्वारा उद्दाम तथा रक्तवर्ण देहधारिणी, समस्त प्रकार के शृंगार वेशयुक्त, समस्त आभरण से भूषित, जगत् को आह्लाद प्रदान करने वाली, जगत् का मनोरंजन करने वाली, जगदाकर्षण-कारिणी, जगत्कारणरूपिणी, समस्त मन्त्रमयी, समस्त सौभाग्यसुन्दरी, नित्या, सर्वशक्तिमयी शिवा का ध्यान करता हूँ।।५१-६९।।

एवं ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य आनन्दोऽहमिति विभाव्य शङ्खस्थापनं कुर्यात्। यथा श्रीचक्रपुरतः स्ववामे षट्कोणमध्ये त्रिकोणं विलिख्य तत्र त्रिपदिकां संस्थाप्य मूलेन षट्कोणं पूजयेत्। फडिति शङ्खं प्रक्षाल्य तत्र गन्धकुसुमाक्षतं निक्षिप्य मूलेनापूर्य मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः इति त्रिपदिकायां, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः इति शङ्खे, ॐ डं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः इति जले सम्पूज्य ॐ गङ्गे चेत्यादिना सूर्यमण्डलात्तीर्थमावाह्य हुमित्यवगुण्ठ्य षडङ्गेन सम्पूज्य धेनुमुद्रां प्रदर्श्य मूलमष्टधा जप्त्वा तज्जलं किञ्चित् प्रोक्षणीपात्रे निक्षिप्य तेनोदकेनात्मानं पूजोपकरणञ्चाभ्युक्ष्य तद्दक्षिणे पाद्यादिपात्रं संस्थाप्यावरणानि पूजयेत्।।७०।।

इस प्रकार से ध्यान करके मानसोपचार पूजन के अनन्तर 'आनन्दोऽहम्' (मैं आनन्द हूँ) यह भावना करके शङ्ख का स्थापन करे। जैसे—श्रीचक्र के पुरोभाग में अपने वाम भाग के षट्कोण के मध्य त्रिकोण बनाकर वहाँ तिपाई स्थापन करके मूल मन्त्र द्वारा षट्कोण की पूजा करे। 'फट्' मन्त्र से शङ्ख का प्रक्षालन करके उस शंख में गन्ध, पुष्प तथा अक्षत प्रदान करके मूल मन्त्र से जल के द्वारा उसे भरकर 'ॐ मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' मन्त्र से त्रिपदिका का, 'ॐ अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' मन्त्र से शङ्ख का, 'ॐ डं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः' मन्त्र से जल का पूजन करके 'ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति, नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु' मन्त्र से सूर्यमण्डल से तीर्थ का आवाहन करके 'हुं' मन्त्र से अवगुण्ठन करके छः अंगमन्त्र से पूजा करके धेनुमुद्रा प्रदर्शित करके मूल मन्त्र का आठ बार जप करके कुछ उस जल को प्रोक्षणीपात्र में निक्षिप्त करके उस जल द्वारा आत्मा का तथा पूजा के उपकरण का अभ्युक्षण करके उसके दक्षिण में पाद्यादि पात्र का स्थापन करके आवरण-पूजन करे।।७०।।

यन्त्रस्य उपर्युपरि—ॐ आधारशक्तये नमः। एवं कूर्माय, पृथिव्यै, अनन्ताय, रसाम्बुधये, रत्नद्वीपाय, वकुलोद्यानाय, रत्नमण्डलाय, कल्पवृक्षाय, रत्नवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय। पीठोपरि वैन्दवचक्रे—नमः ह्स्रौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः। वैन्दवे—हसरै हसकलरीं हसकलरौं इति मन्त्रेण मूर्त्तिं सम्पूज्य त्रिखण्डां मुद्रां बद्ध्वा पूर्ववद्ध्यात्वा प्रवहन्नासापुटेन तेजोमयीं पुष्पाञ्जलावानीय—

ॐ महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे ।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि! ॥

इति मूर्त्तौ संस्थाप्यावाहनादि कृत्वा नैवेद्यान्तं यथोपचारेण सम्पूज्य बलिचतुष्टयं दद्यात्॥७१॥

यन्त्र के ऊपरी हिस्से के ऊपर ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ रसाम्बुधये नमः, ॐ रत्नद्वीपाय नमः, ॐ वकुलोद्यानाय नमः, ॐ रत्नमण्डलाय नमः, ॐ कल्पवृक्षाय नमः, ॐ रत्नवेदिकायै नमः, ॐ रत्नसिंहासनाय नमः से पूजन करे। पीठ के ऊपर वैन्दव चक्र में—ॐ ह्स्रौः सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनाय नमः; वैन्दव में—हसरैं हसकलरीं हसकलरौं' मन्त्र से मूर्त्ति की कल्पना करके त्रिखण्डा मुद्रा बनाकर पूर्ववत् ध्यान करके प्रवहमान नासापुट द्वारा तेजोमयी देवता की पुष्पाञ्जलि में भावना करके 'ॐ महापद्मवनान्तस्थे' इस ऊपर लिखे श्लोक से उसे मूर्त्ति में स्थापित करके आवाहनादि द्वारा आवाहनोपरान्त नैवेद्य-पर्यन्त यथायथ उपचारों से पूजन करके ईशानादि चार कोणों में बलिचतुष्टय प्रदान करे।।७१।।

यथा ईशानवायु निर्ऋतिवह्निकोणेषु त्रिकोणचतुर्मण्डलानि कृत्वा तेषु वां वटुकाय नमः, यां योगिनीभ्यो नमः, क्षां क्षेत्रपालाय नमः, गां गणपतये नमः इति सम्पूज्य तेषु द्रव्यभरितपात्राणि निक्षिप्य तत्तन्मन्त्रैर्बलिं दद्यात्। ततः षडङ्गानि पूजयेत्॥७२॥

जैसे ईशान कोण, वायुकोण, निर्ऋतिकोण, अग्निकोण—इन कोणों में चार त्रिकोण मण्डल बनाकर इनमें क्रमशः ॐ वां वटुकाय नमः, ॐ यां योगिनीभ्यो नमः, ॐ क्षां क्षेत्रपालाय नमः, ॐ गां गणपतये नमः मन्त्र से पूजन करके उस मण्डल में द्रव्यपूर्ण पात्र स्थापित करके पूर्वोक्त उस-उस मन्त्र के द्वारा बलि प्रदान करे। उसके पश्चात् षडङ्ग पूजन करना चाहिये।।७२।।

यथा अग्नीशासुरवायुषु मध्ये दिक्षु च वाग्भवकूटमुच्चार्य हृदयाय

कामराजकूटमुच्चार्य शिरसे स्वाहा, शक्तिकूटमुच्चार्य शिखायै वषट्, पुनर्वाग्भवमुच्चार्य कवचाय हुं, कामराजमुच्चार्य नेत्रत्रयाय वौषट्, शक्तिमुच्चार्य सर्वाङ्गे अस्त्राय फट्॥७३॥

षडङ्ग पूजा—यथा अग्निकोण, ईशान, नैर्ऋत, वायुकोण तथा मध्य में एवं दिक् समूह में वाग्भवकूट 'हसरैं' का उच्चारण करके 'हसरैं हृदयाय नमः' से हृदय का, कामराजकूट 'हसकलरीं शिरसे स्वाहा' से मस्तक का, 'हसरौं शिखायै वषट्' इस शक्तिकूट से शिखा का; पुनः 'हसरैं कवचाय हुं' से कवच का, 'हसकलरीं नेत्रत्रयाय वौषट्' से नेत्रों का, 'हसरौं अस्त्राय फट्' से सर्वाङ्ग का पूजन करे।।७३।।

ततो मध्यप्राक्त्र्यस्रमध्येषु गुरुपङ्क्तिं पूजयेत्। यथा ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गुरुभ्यो नमः। एवं ॐ ऐं ह्रीं श्रीं गुरुपादुकाभ्यो नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परमगुरुभ्यो नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परमगुरुपादुकाभ्यो नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परापरगुरुभ्यो नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परापरगुरुपादुकाभ्यो नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आचार्येभ्यो नमः। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आचार्यपादुकाभ्यो नमः॥७४॥

इसके पश्चात् मध्य, पूर्व, त्र्यस्र तथा मध्य में ऊपर लिखे मन्त्रों से गुरुपंक्ति तथा गुरुपादुका का पूजन करना चाहिये।।७४।।

अथावरणपूजा—ततश्चतुरस्रस्य प्रथमरेखायां ऐं ह्रीं श्रीं अणिमाद्यष्टसिद्धि-श्रीपादुकां पूजयामि नमः। सर्वत्रावरणपूजायां श्रीपादुकां पूजयामि पद-प्रयोगः॥७५॥

अब आवरण पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर चतुरस्र की प्रथम रेखा में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अणिमाद्यष्टसिद्धिश्रीपादुकां पूजयामि नमः से पूजा करे। आवरण पूजा में सर्वत्र 'श्रीपादुकां पूजयामि नमः' का प्रयोग करना चाहिये।।७५।।

तथाच तन्त्रान्तरे—

श्रीपदं पूर्वमुच्चार्य पादुकां पदमुद्धरेत्।
पूजयामि नमः पश्चात् पूजयेदङ्गदेवताः॥७६॥

पूर्व में श्री पद का उच्चारण करके पादुका पद का उच्चारण करना चाहिये। तदनन्तर पूजयामि नमः कहना चाहिये। इस मन्त्र से अंगदेवता का पूजन करे।।७६।।

एवं मध्यरेखायां—ऐं ह्रीं श्रीं ब्रह्माण्याद्यष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अन्तरेखायां—ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभण्यादिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र

त्रैलोक्यमोहने चतुरस्रे त्रिपुराचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अणिमाद्याः प्रकटतरयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु इत्यर्घ्यं जलेनमूलदेव्यै समर्पयेत्। ततः सव्यहस्ताङ्गुष्ठानामिकानखाग्रेण धृतश्रीपात्रार्घ्यविन्दुना अन्यहस्ताक्षिप्तपुष्पाक्षतक्षेपैर्मूलमन्त्रान्ते श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीं तर्पयामीति त्रिस्तर्पयेत्।

तदुक्तं स्वतन्त्रे—

अङ्गुष्ठानामिकायोगाद्वामहस्तस्य पार्वति।
तर्पयेत् सुन्दरीं देवीं समुद्राञ्च सवाहनाम्।।७७।।

इस प्रकार से मध्यरेखा में 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ब्राह्म्याद्याष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः', अन्त्यरेखा में—'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभण्यादिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः, चक्र के अग्रभाग में—'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराचक्रनायिकाश्रीपादुका पूजयामि नमः से पूजन करना चाहिये।

अब इन मन्त्रों द्वारा अर्घ्य जल द्वारा मूल देवी को समर्पण करे। मन्त्र है—'ॐ त्रैलोक्यमोहने चतुरस्त्रे त्रिपुराचक्रे नायिकाधिष्ठिते एता अणिमाद्यप्रकटयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवारा सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तुः'। तदनन्तर वाम हस्त के संयुत अंगूठा तथा अनामिका के नखाग्र द्वारा पकड़े श्रीपात्रार्घ्य-बिन्दु से पूजक द्वारा अन्य हाथ से पकड़े पुष्पाक्षत प्रक्षेप द्वारा मूल मन्त्र के अन्त में 'श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीं तर्पयामि' मन्त्र से तीन बार तर्पण करना चाहिये। स्वतन्त्रतन्त्र में कहा गया है कि हे पार्वति! वाम हाथ के अंगूठे तथा अनामिका के योग से मुद्रा तथा वाहन के साथ सुन्दरी देवी का तर्पण करना चाहिये।।७७।।

तर्पणानि मुखे देव्यास्त्रिवारं मूलविद्यया।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु नखैर्निर्दिष्टमुद्धृतम्।।७८।।
श्रीपात्रस्योदकं बिन्दुं तर्पयेत् कुलनायिकाम्।
अङ्गुष्ठो भैरवो देवि अनामा चण्डिका प्रिये।
सव्येन हस्तयोगेन तर्पयेद्वा कुलेश्वरीम्।।७९।।

देवी के मुख में मूल विद्या द्वारा तीन बार तर्पण करे। अंगुष्ठ तथा अनामिका द्वारा नख से उद्धृत श्रीपात्र के निर्दिष्ट उदकबिन्दु द्वारा कुलनायिका का तर्पण करे। हे देवि! हे प्रिये! भैरव अंगुष्ठ है तथा अनामा चण्डिका है। अथवा दक्षिण हाथ द्वारा कुलेश्वरी का तर्पण करे।।७८-७९।।

विशेषस्तु—

अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु वश्यकर्मणि तर्पयेत् ।
अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यान्तु शान्तिकर्मणि तर्पयेत् ॥८०॥

विशेष कहते हैं कि वश्यकर्म में अंगुष्ठ तथा अनामा द्वारा तर्पण करना चाहिये एवं शान्तिकर्म में अंगूठा तथा मध्यमा द्वारा तर्पण करना चाहिये।।८०।।

तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन तर्पयेदाभिचारके ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन स्तम्भने तर्पयेत् प्रिये ॥८१॥

अभिचार कर्म में तर्जनी तथा अंगूठे के द्वारा तर्पण करना चाहये एवं हे प्रिये! स्तम्भन कर्म में कनिष्ठा तथा अंगूठे के द्वारा तर्पण करना चाहिये।।८१।।

ततः षोडशदले—अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः ऐं ह्रीं श्रीं कामाकर्षिण्यादिषोडशनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरेशीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वाशापरिपूरके षोडशदलचक्रे त्रिपुरेशीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः कामाकर्षिण्याद्या गुप्ततरा योगिन्यः समुद्रा इत्यादिनार्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्॥८२॥

तदनन्तर षोडशदल में ऊपर लिखे 'अं आं' से लेकर 'षोडशनित्याकलाश्रीपादुकां पूजयामि' तक के मन्त्र से पूजन करे। इसी प्रकार चक्राग्र में 'ऐं ह्रीं श्रीं' से लेकर 'पूजयामि नमः' पर्यन्त मन्त्र से पूजन करना चाहिये। यहाँ पूर्ववत् सर्वाशापरिपूरक षोडशदल चक्र में 'त्रिपुरेशीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः कामाकर्षिण्याद्या गुप्ततरा योगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु' मन्त्र से अर्घ्य जल से मूल देवी को पूजा समर्पण करना चाहिये।।८२।।

अष्टदलेषु—ऐ ह्रीं श्रीं अनङ्गकुसुमाद्यष्टदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वसंक्षोभकरेऽष्टदलचक्रे त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अनङ्गकुसुमाद्या गुप्ततरा योगिन्यः समुद्रा इत्यादिनार्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्॥८३॥

अष्टदल-समूह में ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनङ्गकुसुमाद्यष्टदेवी श्रीपादुकां पूजयामि नमः, चक्राग्र में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः से पूजन करे। यहाँ सर्वसंक्षोभक अष्टदल चक्र में 'त्रिपुरसुन्दरीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता अनङ्गकुसुमाद्या गुप्ततरा योगिन्यः समुद्राः सायुधा सपरिवारा सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु' इस मन्त्र से अर्घ्य जल से मूल देवी को पूजा-समर्पण करे।।८३।।

चतुर्दशारचक्रे—ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सौभाग्यदायके चतुर्दशारचक्रे त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसंक्षोभिण्यादयः शक्तयः सम्प्रदाययोगिन्यः सशक्तयः समुद्राः इत्यादिनार्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्॥८४॥

चतुर्दशार चक्र में—'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसंक्षोभिण्यादिचतुर्दशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः, चक्राग्र में—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः से पूजन करे। यहाँ सौभाग्यदायक चतुर्दशार चक्र में 'त्रिपुरवासिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसंक्षोभिण्यादयः शक्तयः सम्प्रदाययोगिन्यः सशक्तयः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु' कहकर अर्घ्यजल से मूलदेवी को पूजा का समर्पण करना चाहिये।।८४।।

बाह्यदशारचक्रे—ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसिद्धिप्रदादिदशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वार्थसाधकबहिर्दशारचक्रे त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसिद्धिप्रदा देव्याः कुलकौलिन्यादियोगिन्यः समुद्रा इत्यादिनार्घ्य-जलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्॥८५॥

बाह्यदशार चक्र में—'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वसिद्धिप्रदादिदशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः' से पूजा करे। चक्राग्र में—'ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः' से पूजा करे। यहाँ सर्वार्थसाधक बहिर्दशारचक्र में—'त्रिपुराश्रीचक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वसिद्धिप्रदा देव्यः कुलकौलिन्यादियोगिन्यः समुद्रा सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिता सन्तु' मन्त्र द्वारा अर्घ्य जल से पूजा का समर्पण करे।।८५।।

अन्तर्दशारचक्रे—ऐं ह्रीं श्रीं सर्वज्ञादिदशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वरक्षाकरान्तर्दशारचक्रेत्रिपुरमालिनी चक्रनायिकाधिष्ठिते एताः सर्वज्ञाद्या देव्या निगर्वयोगिन्यः समुद्रा इत्यादिनार्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्॥८६॥

अन्तर्दशार चक्र में—'ऐं ह्रीं श्रीं सर्वज्ञादिदशदेवीश्रीपादुकां पूजयामि नमः', चक्राग्र में—'ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः' से पूजा करनी चाहिये। यहाँ सर्वरक्षाकरान्तर्दशार चक्र में 'त्रिपुरमालिनीचक्रनायिकाधिष्ठिते एता सर्वज्ञाद्या देव्यः निगर्वयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु' कहकर अर्घ्यजल से मूलदेवी को पूजा-समर्पण करना चाहिये।।८६।।

अष्टारचक्रे—ऐं ह्रीं श्रीं वशिन्याद्यष्टवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसिद्धाचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वरोगहराष्टारचक्रे त्रिपुरसिद्धा चक्रनायिकाधिष्ठिते एता वशिन्याद्या रहस्ययोगिन्यः समुद्रा इत्यादिनार्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्। अत्रान्तरालत्र्यस्त्रषडङ्गानि पूजयेत्॥८७॥

अष्टारचक्र में—'ऐं ह्रीं श्रीं वशिन्याद्यष्टवाग्देवताश्रीपादुकां पूजयामि नमः', चक्राग्र में—'ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुरसिद्धाचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः' से पूजन करे। यहाँ 'सर्वरोगहराष्टकचक्र में त्रिपुरसिद्धा चक्रनायिकाधिष्ठिते एता वशिन्याद्या रहस्ययोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु' यह कहकर अर्घ्यजल से मूल देवी को पूजा का समर्पण करे। यहाँ समस्त अन्तराल में त्रिकोण में षडङ्ग की पूजा करनी चाहिये। जैसे—अग्निकोण में, ईशान कोण में, नैर्ऋत्य कोण में, वायुकोण में, मध्य में तथा दिक्समूह में वाग्भव कूट कहकर हृदयाय नमः, कामराज कूट कहकर—शिरसे स्वाहा, शक्तिकूट कहकर—शिखायै वषट्, पुनः वाग्भव कूट कहकर कवचाय हुं, कामराजकूट कहकर नेत्रत्रयाय वौषट्, शक्तिकूट कहकर 'सर्वाङ्गे अस्त्राय फट्' से पूजन करना चाहिये।।८७।।

ततोऽग्रकोणेषु—ऐं ह्रीं श्रीं कामेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। दक्षिणकोणेषु—ऐं ह्रीं श्रीं वज्रेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराम्बिकाचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वसिद्धिप्रदे चक्रे चापबाणपाशाङ्कुशभूषितान्तरालेत्रिपुराम्बिका चक्रनायिकाधिष्ठिते एताः कामेश्वर्याद्या अतिरहस्ययोगिन्यः समुद्रा इत्यादिनार्घ्यजलेन मूलदेव्यै समर्पयेत्॥८८॥

तदनन्तर अग्रकोणसमूह में—ऐं ह्रीं श्रीं कामेश्वरी नित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः से, दक्षिण कोणसमूह में—ऐं ह्रीं श्रीं वज्रेश्वरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः से, वाम कोणसमूह में—ऐं ह्रीं श्रीं भगमालिनीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः से एवं चक्राग्र में—ऐं ह्रीं श्रीं त्रिपुराम्बिकाचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः से पूजन करना चाहिये। यहाँ सर्वसिद्धिप्रद त्र्यस्त्र में—'चाप-बाण-पाश-अंकुश-भूषितान्तराले त्रिपुराम्बिका-चक्रनायिकाधिष्ठिते एताः कामेश्वर्याद्या अतिरहस्ययोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु' कहकर अर्घ्यजल से मूल देवी को पूजा का समर्पण करना चाहिये।।८८।।

ततो बिन्दुमध्ये वाग्भवादिबीजत्रयं पूर्वमुच्चार्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-नित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः इति वारत्रयं पूजयेत्। वामे—योनिमुद्रा-

श्रीपादुकां पूजयामि नमः। चक्राग्रे—हसरैं हसकलरीं, हसरौः त्रिपुर-भैरवीचक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः। अत्र सर्वानन्दमये परब्रह्मस्व-रूपिणे वैन्दवचक्रे त्रिपुरभैरवीचक्रे नायिकाधिष्ठिते सर्वचक्रेश्वरीयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सवाहनाः सपरिवाराः पूजितास्तर्पिताः सन्तु इति मूल-देव्यै समर्प्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्॥८९॥

तदनन्तर बिन्दुमध्य में वाग्भवादि बीजत्रय—हसरैं हसकलरीं हसरौः कहकर श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीनित्याश्रीपादुकां पूजयामि नमः मन्त्र से तीन बार पूजन करे। वाम में—योनिमुद्राश्रीपादुकां पूजयामि नमः, चक्राग्र में—हसरैं, हसकलह्रीं, हसरौं, त्रिपुरभैरवी-चक्रनायिकाश्रीपादुकां पूजयामि नमः से पूजन करे। इस समय 'सर्वानन्दमये परब्रह्मस्वरूपिणे वैन्दवचक्रे त्रिपुरभैरवीचक्रनायिकाधिष्ठिते सर्वचक्रेश्वरीयोगिन्यः समुद्राः सायुधाः सपरिवाराः सवाहनाः पूजितास्तर्पिताः सन्तु' कहकर मूल देवी को अर्घ्य जल द्वारा पूजा-समर्पण करके विसर्जन-पर्यन्त समस्त कर्म समाप्त करे।।८९।।

अस्याः पुरश्चरणं लक्षजपः। तथा च वामकेश्वरतन्त्रे—

तत्र स्थित्वा जपेल्लक्षं साक्षाद्देवीस्वरूपधृक्।
किंशुकैर्हवनं कुर्याद्दशांशञ्च वरानने!।
कुसुम्भकुसुमैर्वापि मधुरत्रयमिश्रितैः॥९०॥

मधुरत्रयञ्च घृतमधुशर्करात्मकम्। इति संक्षेपपूजापद्धतिः। विस्तारपद्धतिश्च ग्रन्थान्तरेऽन्वेष्यः।

इति श्रीत्रिपुरसुन्दरीप्रकरणम्।

इसका पुरश्चरण एक लाख जप से होता है, जैसा कि वामकेश्वर तन्त्र में कहा है—उस स्थान पर बैठकर साक्षात् देवी-स्वरूप धारण करके एक लाख जप करे। हे वरानने! पलाशपुष्प से १०००० हवन करे अथवा मधुत्रय-मिश्रित कुसुम्भ पुष्प द्वारा जप का दशांश हवन करे।

मधुरत्रय = घृत, मधु तथा शर्करा। यही संक्षेप में पूजापद्धति है। विस्तृत पूजा पद्धति-हेतु ग्रन्थान्तर में अन्वेषण करना चाहिये।।९०।।

अथ बगलामुखी

तन्त्रान्तरे—

ब्रह्मास्त्रं सम्प्रवक्ष्यामि सद्यः प्रत्ययकारकम्।
साधकानां हितार्थाय स्तम्भनाय च वैरिणाम्।
यस्याः स्मरणमात्रेण पवनोऽपि स्थिरायते॥१॥

अब तन्त्रान्तर द्वारा बगलामुखी प्रकरण कहते हैं। साधक के हितकारी अर्थ-साधनार्थ तथा शत्रुवर्ग के स्तम्भनार्थ सद्यः प्रत्ययजनक ब्रह्मास्त्र कहता हूँ। इस विद्या के स्मरणमात्र से पवन भी स्तम्भित हो जाता है, प्रवाहित नहीं हो सकता।।१।।

प्रणवं स्थिरमायाञ्च ततश्च बगलामुखि।
तदन्ते सर्वदुष्टानां ततो वाचं मुखं पदम्॥२॥
स्तम्भयेति ततो जिह्वां कीलयेति पदद्वयम्।
बुद्धिं नाशय पश्चात्तु स्थिरमायां समालिखेत्॥३॥
लिखेच्च पुनरोङ्कारं स्वाहेति च पदन्ततः।
षट्त्रिंशदक्षरी विद्या सर्वसम्पत्करी मता॥४॥

प्रणव (ॐ) स्थिरमाया (ह्लीं) तत्पश्चात् 'बगलामुखि' 'सर्वदुष्टानां' तत्पश्चात् 'वाचं मुखं' तथा 'स्तम्भय' तत्पश्चात् 'जिह्वां' तदनन्तर 'कीलय कीलय' तथा 'बुद्धिं नाशय' तत्पश्चात् स्थिरमाया 'ह्लीं' लिखे। पुनः 'ॐ' तदनन्तर स्वाहा लिखे। यह छत्तीस अक्षरों वाली सर्वसम्पत्तिदायिनी विद्या है।।२-४।।

स्थिरमाया = ह्लीं। तथाच—वह्निहीनेन्द्रयुङ्माया स्थिरमाया प्रकीर्त्तिता। तथा चायं मन्त्रः—ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा॥५॥

स्थिरमाया—ह्लीं। कहा भी गया है कि वह्नि (र), हीन इन्द्र (ल) युक्त माया अर्थात् 'र' रहित 'ल' युक्त माया ही स्थिरमाया है। अतएव मन्त्रोद्धार है—ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा।।५।।

अथ मन्त्रान्तरम्—ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं विनाशय ह्लीं ॐ स्वाहा। इति चतुस्त्रिंशदक्षरी॥६॥

यह मन्त्रान्तर कहा गया है। यह चौंतीस अक्षरों वाला है।।६।।

अथानयोः पूजाप्रयोगः। प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। शिरसि—नारदाय ऋषये नमः। एवं मुखे—त्रिष्टुप् छन्दसे। हृदि–बगलामुख्यै देवतायै नमः। लिङ्गे—ह्लीं बीजाय नमः। पादयोः—स्वाहा शक्तये नमः॥७॥

प्रातःकृत्य से प्राणायाम-पर्यन्त विधान सम्पन्न करके ऋष्यादि न्यास करे। जैसे अस्याः श्री बगलामुखीविद्याया नारद ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः बगलामुखी देवता ह्लीं बीजं स्वाहा शक्तिः शत्रुस्तम्भने विनियोगः। मस्तके—ॐ नारदाय ऋषये नमः। मुखे—ॐ

त्रिष्टुप्छन्दसे नमः। हृदये—ॐ बगलामुख्यै देवतायै नमः। लिङ्गे—ॐ ह्लीं बीजाय नमः। पादद्वये—ॐ स्वाहा शक्तये नमः।।७।।

ततः कराङ्गन्यासौ—यथा ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। बगलामुखी तर्जनीभ्यां स्वाहा। सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां वषट्। वाचं मुखं स्तम्भय अनामिकाभ्यां हुं। जिह्वां कीलय कीलय कनिष्ठाभ्यां वौषट्। बुद्धिं नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा करतलकर- पृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु॥८॥

अब कराङ्गन्यास कहते हैं; यथा—ॐ ह्लीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ बगलामुखि तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ सर्वदुष्टानां मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ वाचं मुख स्तम्भय अनामिकाभ्यां हूं। ॐ जिह्वां कीलय कीलय कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ बुद्धिं नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। इसी प्रकार हृदय में—ॐ ह्लीं हृदयाय नमः। मस्तक में—ॐ बगलामुखि शिरसे स्वाहा। शिखा में—ॐ सर्वदुष्टानां शिखायै वषट्। बाहुद्वय में—ॐ वाचं मुखं स्तम्भय कवचाय हुं। नेत्रत्रय में जिह्वां कीलय कीलय नेत्रत्रयाय वौषट्। करतलकरपृष्ठ में—ॐ बुद्धिं नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्।।८।।

ततो मूलान्ते आत्मतत्त्वव्यापिनी बगलामुखीश्रीपादुकां पूजयामि मूलाधारे। मूलान्ते विद्यातत्त्वव्यापिनी बगलेत्यादि शिरसि। मूलान्ते सर्वतत्त्वव्यापिनी बगलेत्यादि सर्वाङ्गे॥९॥

तत्पश्चात् तत्त्वन्यास इस प्रकार करे—मूलाधार में—ॐ ह्लीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धिं नाशय ह्लीं ॐ स्वाहा आत्मतत्त्वव्यापिनी बगलामुखीश्रीपादुकां पूजयामि। मस्तक पर—मूलविद्यान्ते विद्यातत्त्वव्यापिनी बगलामुखी-श्रीपादुकां पूजयामि। सर्वाङ्ग में—मूलविद्यान्ते सर्वतत्त्वव्यापिनीबगलामुखीश्रीपादुकां पूजयामि कहकर पूजन करे।।९।।

विशेष—जहाँ 'मूलविद्यान्ते' लिखा है, वहाँ बगला का मूल मन्त्र ॐ ह्लीं से लेकर ॐ स्वाहा तक लगाना चाहिये।

ततश्च—

मूर्ध्नि भाले दृशोः श्रोत्रगण्डयोर्नसयोः पुनः।
ओष्ठयोर्मुखवृत्ते च दक्षिणांसे च कूर्परे॥१०॥
मणिबन्धेऽङ्गुलेर्मूले गले च कूर्चयोर्हृदि।
नाभौ कट्यां गुह्यदेशे वामांसे कूर्परे तथा॥११॥
मणिबन्धेऽङ्गुलेर्मूले ततश्च विन्यसेत् पुनः।

दक्षवामे चोरुजान्वोर्गुल्फयोरङ्गुलिमूलयोः ।
क्रमेण मन्त्रवर्णांस्तु न्यस्त्वा ध्यायेद् यथाविधि ॥१२॥

तदनन्तर मस्तक, भाल, दोनों आँखें, दोनो कान, दोनों नासिका, दोनों ओष्ठ, मुखवृत्त, दक्षिण स्कन्ध, कूर्पर, मणिबन्ध, अंगुलियें के मूल, गला, दोनों स्तन, हृदय, नाभि, कटि, गुह्यप्रदेश, वाम स्कन्ध, कूर्पर, मणिबन्ध, अंगुलिमूल, पुनः दक्षिण तथा वाम दोनों ऊरु, दोनों जानु, गुल्फ तथा अंगुलिमूल में वर्णद्वय का न्यास करना चाहिये। तदनन्तर क्रमशः मन्त्रवर्णों का न्यास करके विधिपूर्वक ध्यान करना चाहिये।।१०-१२।।

ततो ध्यानं—

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेदी-
सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम् ।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं
देवीं नमामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम् ॥१३॥

सुधासमुद्र के मध्य में मणिमय मण्डप के मध्य रत्नवेदिकामय सिंहासन पर स्थिता, पीतवर्णा, पीतवसना, आभरण तथा माला से विभूषित अंग वाली, मुद्गर तथा शत्रुजिह्वाधारिणी देवी बगलामुखी का मैं स्मरण करता हूँ।।१३।।

जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीड़यन्तीम् ।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि ॥१४॥

वाम हस्त से शत्रु की जिह्वा खींचकर दाहिने हाथ से गदा के आघात से शत्रु को पीड़ित करने वाली पीत वसनयुक्ता द्विभुजा बगलामुखी को प्रणाम करता हूँ।।१४।।

एतेन त्वियं द्विभुजां वामेन शत्रुजिह्वां दक्षिणेन मुद्गरं गदां वा विभ्रती। सिंहरूपं यदासनं, तदुपरि स्थिता ध्येया। एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्यार्घ्यं कुर्यात्। यथा अष्टाङ्गुलं चतुरस्रं विधाय ईशानादिकोणेषु पूर्वादिदिक्षु कुसुमाक्षतचन्दनैः ग्लौं गणपतये नमः इति गजदानेन सम्पूजय तैलेन मधुना वार्घ्यपात्रं पूजयेत्। ततो वारत्रयं विद्यया सम्पूज्याङ्गानि विन्यसेत्॥१५॥

इसके द्वारा ये द्विभुजा कही जाती हैं। वाम हस्त में शत्रु की जिह्वा, दाहिने हाथ में मुद्गर अथवा गदाधारिणी हैं। सिंहरूप आसन पर अवस्थिता हैं। इस प्रकार से ध्यान करके मानसोपचार पूजन करके विशेषार्घ्य स्थापन करे। यथा—आठ अंगुल का चतुरस्र बनाकर उसके ऊपर ईशानादि कोण में, पूर्वादि दिक् में पुष्प, अक्षत तथा चन्दन से 'ग्लौं गणपतये नमः' मन्त्र से गजमद-दानपूर्वक पूजा करके तैल अथवा मधु

द्वारा अर्घ्यपात्र का पूजन करे। तदनन्तर मूल विद्या द्वारा तीन बार पूजा करके पूर्वोक्त षडङ्ग न्यास करे। तदनन्तर धेनु तथा योनिमुद्रा का प्रदर्शन करके मधु अथवा तैल से अपना तथा पूजोपकरणों का तीन बार अभ्युक्षण करे।।१५।।

ततो मूलमुच्चार्याधारशक्तिकमलासनाय नमः, शक्तिपद्मासनाय नमः इति पीठं सम्पूज्य पूर्ववत् ध्यात्वावाह्य षड़ङ्गानि न्यसेत्। ततो मुद्रां प्रदर्श्य पुरतः षडङ्गेन मण्डलं यजेत्। ततो मूलेनाभिमन्त्र्य धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य आत्मविद्याशिवैस्तत्त्वै-र्बिन्दुत्रयं मुखे क्षिप्त्वा तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन साङ्गां सावरणां बगलामुखीं तर्पयेत्। तत उपचारैरभ्यर्च्यावरणानि पूजयेत्।।१६।।

तत्पश्चात् मूल विद्या का उच्चारण करके आधारशक्तिकमलासनाय नमः, शक्तिपद्मासनाय नमः मन्त्र से पीठ का पूजन करके पूर्ववत् ध्यान, आवाहन तथा षडङ्ग न्यास करे। तदनन्तर मुद्रा-प्रदर्शन करके पुरोभाग में षडङ्ग मन्त्र द्वारा मण्डल का पूजन करे। तत्पश्चात् मूल विद्या द्वारा देवी को अभिमन्त्रित करके धेनु तथा योनिमुद्रा दिखलाकर— ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा, ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा, ॐ शिवतत्त्वाय स्वाहा मन्त्र से तीन बिन्दु जल मुख से देकर तर्जनी तथा अंगुष्ठयोग से तर्पण इस मन्त्र द्वारा करे— ॐ साङ्गां सावरणां बगलामुखीं तर्पयामि नमः। तदनन्तर उपचारों से अर्चना करके आवरण देवों का पूजन करे।।१६।।

षट्कोणेषु पूर्वे—सुभगां। आग्नेये—भगसर्पिणीं। ईशाने—भगावहां। पश्चिमे—भगसिद्धां। नैर्ऋते = भगनिपातिनीं। वायौ—भगमालिनीं सम्पूज्याष्ट-पत्रेषु ब्राह्म्याद्याः पूजयेत्। पत्राग्रेषु—जया, विजया, अजिता, अपराजिता, जम्भिनी, स्तम्भिनी मोहिनी, आकर्षिणी, एतां सम्पूज्य धूपादिकं दत्त्वा यथाशक्ति जप्त्वा त्रिशूलमुद्रां प्रदर्श्य पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा देव्यै योनिमुद्रां प्रदर्श्य भैरवाय बलिं दत्त्वा विसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। अस्याः पुर-श्चरणं लक्षजपः।।१७।।

षट्कोण के पूर्व में सुभगा की, अग्नि कोण में भगसर्पिणी ईशान में भगावहा की, पश्चिम में भगसिद्धा की, नैर्ऋत्य में भगनिपातिनी की, वायुकोण में भगमालिनी की पूजा करके अष्टपत्रसमूह में ब्राह्मी प्रभृति शक्तिवर्ग का पूजन करे। पत्र के अग्रसमूह में जया, विजया, अजिता, अपराजिता, जम्भिनी, स्तम्भिनी, मोहिनी तथा आकर्षिणी का पूजन करके द्वारसमूह में ॐ भैरवाय नमः से भैरव का पूजन करके उसके बाहर इन्द्रादि लोकपाल तथा वज्रादि अस्त्रसमूह का पूजन करके धूपादि देकर यथाशक्ति जपोपरान्त त्रिशूल मुद्रा प्रदर्शित करके तीन पुष्पाञ्जलि देवी को देकर योनिमुद्रा प्रदर्शित करके

भैरव को बलि देकर विसर्जन-पर्यन्त कर्म समाप्त करना चाहिये। इस विद्या का पुरश्चरण एक लाख जप से होता है।।१७।।

तथा च—

पीताम्बरधरो भूत्वा पूर्वाशाभिमुखः स्थितः।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं हरिद्राग्रन्थिमालया ।।१८।।
ब्रह्मचर्यरतो नित्यं प्रयतो ध्यानतत्परः।
प्रियङ्गुकुसुमेनापि पीतपुष्पैश्च होमयेत् ।।१९।।

कहा गया है कि पीत वस्त्र पहनकर पूर्व की ओर मुख करके बैठकर हल्दी के ग्रन्थि की माला पर एक लाख जप करना चाहिये। साथ ही सर्वदा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये संयत एवं ध्यानपरायण होकर पीत पुष्प द्वारा अथवा प्रियंगुपुष्प द्वारा होम करना चाहिये।।१८-१९।।

जपहोमप्रयोगे च मन्त्रश्चाप्ययुतं जपेत् ।।२०।।
हरिद्राहरितालाभ्यां लवणं जुहूयान्निशि।
स्तम्भयेत् परसैन्यानि नात्र कार्या विचारणा ।।२१।।

अब प्रयोग कहते हैं। जप तथा होम के प्रयोग से वाक् तथा गति का स्तम्भन एवं दुष्टों की बुद्धि का नाश होता है। रात्रि में हल्दी, हरताल तथा लवण के साथ हवन करने से परसैन्य को स्तम्भित किया जा सकता है। यह निसंदिग्ध है।।२०-२१।।

अथवा पीतपुष्पैश्च त्रिमध्वक्तैश्च होमयेत्।
स्तम्भनेषु च सर्वेषु प्रयोगः प्रत्ययावहः ।।२२।।

अथवा त्रिमधुर से आप्लुत पीत पुष्प द्वारा होम करे। समस्त स्तम्भन इस प्रयोग से प्रत्ययकारक होते हैं।।२२।।

बगलामुखीधारणयन्त्रम्

ॐकारयोः सम्मुखयोरुदूर्ध्वधः: शिरसोर्लिखेत्।
मध्यगं नाम साध्यस्य तद्बाह्ये चाक्षरद्वयम् ।।२३।।
बीजं द्वितीयवर्गस्य तृतीयं बिन्दुभूषितम्।
चतुर्दशस्वरोपेतं संलिखेत् पृथिवीगतम् ।।२४।।
ठकारेण समावेष्ट्य चतुष्कोणपुटं बहिः।
तत्कोणरेखासंसक्तैः शूलैर्वज्राष्टकं लिखेत् ।।२५।।
त्रिशूलमध्यरेखायाः पृथ्वीबीजानि पार्श्वयोः।
अष्टस्वपि च कोणेषु तद्बहिर्बगलां लिखेत् ।।२६।।

पृथिव्यन्तरितं वाह्ये मातृकापरिमण्डलम् ।
आवेष्ट्य चाष्टधा पश्चात्तद्वाह्ये स्थिरमायया ॥२७॥
निरुध्याङ्कुशबीजेन नादसंमिताङ्घ्रिणा ।
लिखेत् पूर्ववदावेष्ट्य ठकारैर्बगलामुखीम् ॥२८॥

अब बगलामुखी का धारण-यन्त्र कहते हैं। ऊर्ध्व तथा अधोमस्तक पर परस्परभिमुखी दो ओंकार लिखे। ॐ के मध्य में जिस व्यक्ति का स्तम्भन करना हो उसका नाम लिखे तथा उसके बाहर दो अक्षर पृथ्वी (ल) गत चतुर्दशस्वर युक्त (ओ) बिन्दु-भूषित द्वितीय वर्ग के तृतीय बीज वर्ण अर्थात् 'ग्लौं' को लिखे। 'ठ' के द्वारा वृत्ताकार रूप में उसका वेष्टन करके चतुष्कोण पुट के बाहरी भाग में उसकी कोणरेखा से संलग्न शूल से आठ वज्रों का अंकन करे। त्रिशूल की मध्यरेखा के पार्श्वद्वय में पृथ्वीबीज (लं) लिखे। उसके बाहरी भाग के आठ कोणों में बगलामुखी विद्या को लिखे। उसके बाहर पृथ्वीबीज (लं) द्वारा व्यवहित मातृका वर्णो का वृत्ताकार में आठ बार वेष्टन करके तत्पश्चात् उसके बाहर 'ह्लीं' द्वारा पूर्ववत् आठ बार वेष्टन करके नादयुक्त अंकुशबीज (क्रों) द्वारा संरुद्ध (पुटित) (क्रों ह्लीं क्रों) लिखे। ठकार द्वारा बगलामुखी का वेष्टन करे।।२३-२८।।

पट्टे पाषाणपट्टे वा हरिद्रोन्मत्ततालकैः ।
दिव्यस्तम्भे मुखस्तम्भे लिखित्वा गाढमाक्रमेत् ।
विवादे यन्त्रमालिख्य भूर्जे तैरेव वस्तुभिः ॥२९॥

धातु के पत्र पर अथवा पत्थर के पट्टे पर देवस्तम्भ के लिये तथा मुखस्तम्भ के लिये हरिद्रा, धतूरे का रस तथा हरिताल द्वारा इस यन्त्र को लिखकर दृढ़ भाव से नि:शंक होकर विचरण करे। विवाद (परिवाद, मुकदमा) आदि में इन रसों से भोजपत्र पर यन्त्र बनाकर (धारण करके) दृढ़ भाव से विचरण करना चाहिये।।२९।।

प्रयोगान्तरम्—

कुम्भकारस्य चक्रस्य भ्रमतो विपरीततः ।
मृत्तिकां समुपादाय वृषभं कारयेत्ततः ॥३०॥
यन्त्रं तस्योपरि न्यस्य तालकेन विलिप्य च ।
तन्नासायां विनिक्षिप्य पीतरज्जुं निजे गृहे ॥३१॥
अर्चयेत्तं चतुष्कालं नित्यं पीतोपचारतः ।
दुष्टस्य स्तम्भयत्येव मुखं वाचस्पतेरपि ॥३२॥

अब अन्य प्रयोग कहते हैं—विपरीतभाव से भ्राम्यमाण कुम्भकार के चक्र से मिट्टी लाकर एक वृषभ का निर्माण करना चाहिये। इस वृषभ के ऊपर यन्त्र स्थापन

करके हरिताल द्वारा उसका लेपन करके वृषभ की नासिका में डोरी (पीले रंग की) लगाकर (लगाम लगाकर) अपने गृह में उसकी प्रतिदिन चारो काल में (प्रातः, मध्याह्न, सायाह्न तथा रात्रि में) पीले उपचारों द्वारा पूजा करे। इससे वृहस्पति के भी मुख का स्तम्भन हो जाता है। फिर दुष्ट के मुखस्तम्भन की तो बात ही क्या है?।।३०-३२।।

अस्याः पूजायन्त्रं—त्र्यस्त्र षडस्त्रं वृत्तमष्टदलं भूपुरान्वितम्। इयं महाविद्या, प्रागुक्तवचनात्।।३३।।

इति बगलाप्रकरणम्।

बगलामुखी का पूजायन्त्र इस प्रकार होता है—एक त्रिकोण, तत्पश्चात् षट्कोण, तत्पश्चात् वृत्त तथा अष्टदल पद्म बनाये। वह भूपुरयुक्त होगा। पूर्वोक्त वचनानुसार यह महाविद्या है।।३३।।

अथ मातङ्गी

वामकेश्वरतन्त्रे—

अथ वक्ष्ये महादेवीं मातङ्गीं सर्वसिद्धिदाम्।
अस्योपासनमात्रेण वाक्सिद्धिं लभते ध्रुवम्।।१।।
प्रणवञ्च ततो मायां कामबीजञ्च कूर्चकम्।
मातङ्गी ङेयुता चास्त्रं वह्निजायावधिर्मनुः।।२।।

अब मातङ्गी विद्या कहते हैं। वामकेश्वर तन्त्र में कहा है कि अनन्तर सर्वसिद्धिप्रदा महाविद्या मातङ्गी विद्या को कहता हूँ, जिनकी उपासनामात्र से निश्चय ही वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। प्रथमतः प्रणव (ॐ), माया (ह्रीं), कामबीज (क्लीं), कूर्चवीज (हुं), ङे विभक्तियुक्त मातङ्गी अर्थात् 'मातङ्ग्यै' तदनन्तर अस्त्र (फट्) तथा अन्त में वह्निजाया (स्वाहा)—यही मातङ्गी मन्त्र है। मन्त्र है—ॐ ह्रीं क्लीं हूं मातङ्ग्यै फट् स्वाहा।

अस्य दक्षिणामूर्त्तिर्ऋषिर्विराट् छन्दो मातङ्गी देवता सर्वार्थसिद्धये विनियोगः।

अङ्गन्यासकरन्यासौ कुर्यान्मन्त्री समाहितः।
षड्दीर्घभाजा बीजेन प्रणवाद्येन कल्पयेत्।।३।।

इस विद्या के दक्षिणामूर्त्ति ऋषि, विराट् छन्द एवं मातङ्गी देवता है; सर्वार्थ-सिद्धि के लिये इसका विनियोग होता है। साधक मन्त्री समाहित होकर अंगन्यास तथा कर-न्यास करे। प्रणवादि षट्दीर्घ-युक्त मायाबीज द्वारा अंगमन्त्र की कल्पना करे।।३।।

षट्कोणाष्टदलं पद्मं लिखेद्यन्त्रं मनोहरम्।
तत्र पूजा प्रकर्त्तव्या जपापुष्पेण मन्त्रवित्।।४।।

मातङ्गी की पूजा-हेतु है। मन्त्रवित् पूजक षट्कोण तथा अष्टकोण पद्मयुक्त मनोहर यन्त्र बनाये। इस यन्त्र की जवापुष्प द्वारा पूजा करनी चाहिये है।।४।।

पूर्वाद्यष्टदले रतिप्रीतिमनोभवाक्रियाश्रद्धानङ्गकुसुमानङ्गमदनामदनालसा इत्यष्टशक्तीः सम्पूज्य ध्यायेत्।

श्यामाङ्गी शशिशेखरां त्रिनयनां रत्नसिंहासनस्थितां।
वेदैर्बाहुदण्डैरसिखेटकपाशाङ्कुशधराम् ।।५।।

एवं ध्यात्वा पूजयेत्। अस्याः पुरश्चरणं षट्सहस्रजपः।

पूर्वादि आठ दल में रति, प्रीति, मनोभवा, क्रिया, शुद्धा, अनङ्गकुसुमा, अनङ्गमदना तथा मदनालसा—इन अष्टशक्ति की पूजा करके इस प्रकार ध्यान करे—श्यामांगी, चन्द्रशेखरा, त्रिनयना, रत्नसिंहासनासीना, वेद (चार) बाहु में असि, खेटक, पाश तथा अंकुश-धारिणी देवी का ध्यान करता हूँ। इस विद्या का पुरश्चरण छः हजार मन्त्र जप से सम्पन्न होता है।।५।।

पुरश्चरणकाले तु षट्सहस्रं मनुं जपेत्।
तद्दशांशं हुनेदाज्यैः शर्करामधुभिः सह।
ब्रह्मवृक्षोद्भवैः काष्ठैः साधकः शक्तिभिः सह ।।६।।

तन्त्र में कहा है कि पुरश्चरण काल में छः हजार मन्त्र जप करे। शर्करा तथा मधु एवं घृत के द्वारा जप का दशांश होम करे। साधक पलाश के काष्ठ द्वारा शक्तिगण के साथ देवी का होम करे।।६।।

रत्नाद्यष्टशक्तिभिः सह मूलदेव्या होमं कुर्यादिति समुदायार्थः। अस्याः पुरश्चरणान्ते प्रयोगः।।७।।

रतिप्रभृति अष्टशक्ति के साथ मूल देवी का होम करे। यही निहितार्थ है। इस पुरश्चरण के पश्चात् प्रयोग का अनुष्ठान करना चाहिये।।७।।

चतुष्पथे श्मशाने वा कलामध्ये च मान्त्रिकः।
मत्स्यं मांसं पायसञ्च दद्याद्धूपञ्च गुग्गुलुम् ।।८।।
रात्रियोगेन कर्त्तव्यं सदा पूर्णञ्च साधकः।
एवं प्रयोगमात्रेण कविता जायते ध्रुवम् ।।९।।
अग्निस्तम्भं जलस्तम्भं वाक्स्तम्भं कारयेद् ध्रुवम्।
शास्त्रे वादे कवित्वे च बृहस्पतिरिवापरः ।।१०।।

मन्त्रवित् साधक चतुष्पथ में, श्मशान में तथा स्त्रीगण के मध्य में धूप-गुग्गुलु-

मछली-मांस तथा पायस प्रदान करे। रात्रि में इसका प्रयोग करना चाहिये। इससे साधक में पूर्णता आती है। इस प्रयोग को करने मात्र से ही कवित्व-सिद्धि हो जाती है। अग्निस्तम्भन, जलस्तम्भन एवं वाक्स्तम्भन तो निश्चित रूप से सम्पन्न होता है। साथ ही साथ शास्त्र, वाद तथा कवित्व में वह साधक द्वितीय बृहस्पति के समान हो जाता है।।८-१०।।

नूनं तद् गृहमागत्य कुबेरो दीयते वसु।
विना मत्स्यैर्विना मांसैर्नार्चयेत् परदेवताम्॥११॥

इस विधान से मातङ्गी सिद्धि देती हैं। ऐसे साधक के घर में कुबेर स्वयं आकर धन प्रदान करते हैं। इस परदेवता की मत्स्य-मांस के विना कभी भी अर्चना नहीं करनी चाहिये।।११।।

अथोच्छिष्टचण्डालिनी

फेत्कारिण्याम्—

उक्त्वा चोच्छिष्टशब्दन्तु तथा चाण्डालिनीति च।
सुमुखीति ततो देवीं कीर्त्तयेत्तदनन्तरम्॥१२॥
महापिशाचिनीं पश्चाल्लज्जाबीजन्ततः परम्।
नादबिन्दुसमाक्रान्तं ठकारत्रितयं ततः॥१३॥
सविसर्गं महादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकम्॥१४॥

अब उच्छिष्टचण्डालिनी का मन्त्र कहा जाता है; मन्त्र है—उच्छिष्टचाण्डालिनि सुमुखि देवि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः ठः।

फेत्कारिणी तन्त्र में कहा है कि उच्छिष्टचाण्डालिनि पद, सुमुखि तत्पश्चात् देवि पद कहे। तदनन्तर महापिशाचिनि पद, तदनन्तर लज्जाबीज (ह्रीं) तत्पश्चात् नाद-बिन्दुयुक्त सविसर्ग तीन 'ठ' लगाये। हे महादेवि! यह सर्वसिद्धि-प्रदायक मन्त्र है।।१२-१४।।

अथ मन्त्रान्तरम्। तदुक्तं तन्त्रान्तरे—

अथवोच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गिपदमीरयेत्।
ततः सर्ववशङ्कान्ते करि! हृद्वह्निवल्लभा।
एकोनविंशतिर्वर्णैः सर्वसिद्धिकरो भवेत्॥१५॥ इति।

उच्छिष्टचाण्डलि मातङ्गि सर्ववशङ्करि नमः स्वाहा। इत्यूनविंशत्यक्षरम्॥१६॥

अब तन्त्रान्तर में लिखित मन्त्रान्तर कहते हैं—उच्छिष्टचाण्डालि! मातङ्गि पद का

उच्चारण करे। तत्पश्चात् सर्ववशं पद के अन्त में करि, हृत् तथा वह्निवल्लभा (स्वाहा) यह उन्नीस अक्षर का मन्त्र है।

मन्त्रोद्धार होता है—उच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गि सर्ववशङ्करि नमः स्वाहा। यह उन्नीस अक्षरों का मन्त्र है।।१५-१६।।

अथवा—वाग्भवं माया कामः सौः ऐं ज्येष्ठमातङ्गि नमामि उच्छिष्टचाण्डालि! त्रैलोक्यवशङ्करि स्वाहा—इत्यष्टविंशत्यक्षरी। इयमादि वाग्भवरहिता सती कूर्चाद्या च भवति॥१७॥

अथवा 'वाग्भव (ऐं) माया (ह्रीं) काम (क्लीं) सौः ऐं ज्येष्ठमातङ्गि नमामि उच्छिष्ट-चाण्डालि त्रैलोक्यवशङ्करि स्वाहा' यह अष्टविंशत्यक्षरी विद्या है। यह आदि में 'ऐं' बीज के स्थान पर 'हूं' बीज से युक्त भी हो सकती है। मन्त्रोद्धार होता है—ऐं ह्रीं क्लीं सौः ऐं ज्येष्ठमातङ्गि नमामि उच्छिष्टचाण्डालि त्रैलोक्यवशङ्करि स्वाहा।।१७।।

मन्त्रदेवप्रकाशिकायाम्—

इमां विद्यां जपेशानि चापरां हुं समन्विताम्।
इयं विद्या महाविद्या सर्वपापापहारिणी॥१८॥
सुखदा मोक्षदा चैव राज्यसौभाग्यदायिका।
यां यां प्रार्थयते सिद्धिं हठात्तां तामवाप्नुयात्॥१९॥

मन्त्रदेवप्रकाशिका में कहते हैं कि हे ईशानि! हुं से समन्वित अपरा विद्या का जप करना चाहिये। यह विद्या समस्त पापों का नाश करने वाली, सुखदा एवं राज्य तथा सौभाग्य देने वाली है। जो व्यक्ति जिस सिद्धि की कामना करता है, उसे वह हठात् मिल जाती है।।१८-१९।।

विधानञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु देवि वरानने।
भोजनानन्तरं देवि विनैवाचमने कृते॥२०॥
बलिं दद्यात् प्रथमतो मूलमन्त्रेण साधकः।
ततो मन्त्रं जपेद् ध्यात्वा देवीं तामीष्टसिद्धये॥२१॥

बलिमप्युच्छिष्टेम्।

हे देवि! वरानने! इनका विधान सुनो। हे देवि! साधक भोजनोपरान्त विना मुख धोये प्रथमतः मूल मन्त्र द्वारा बलि प्रदान करे। तत्पश्चात् इष्टसिद्धि हेतु देवी का ध्यान करके मन्त्र का जप करे। जूठन द्वारा बलि प्रदान करे।।२०-२१।।

ध्यानन्तु—

शवोपरि समासीनां रक्ताम्बरपरिच्छदाम्।
रक्तालङ्कारसंयुक्तां गुञ्जाहारविभूषिताम्॥२२॥
षोड़शाब्दाञ्च युवतीं पीनोन्नतपयोधराम्।
कपालकर्तृकाहस्तां परां ज्योति:स्वरूपिणीम्॥२३॥

मन्त्रज्ञ श्रेष्ठ साधक शव पर समासीना, रक्त वस्त्र पहनने वाली, रत्नालङ्कार-भूषिता, गुञ्जाहार से मण्डिता, षोडशवर्षीया युवती, पीन तथा उन्नत स्तनों वाली, हाथ में कपाल, कैंची-धारिणी, परा ज्योतिरूपिणी उच्छिष्ट चाण्डालिनी का दक्षिण तथा वाम मार्ग से ध्यान करे।।२२-२३।।

तथा—

उच्छिष्टेन बलिं दत्त्वा जपेत् तद्गतमानस:।
उच्छिष्टेन च कर्त्तव्या जापोऽस्या: सिद्धिमिच्छता।
उच्छिष्टे जपमानस्य शृणु देवि फलप्रदम्॥२४॥
होमञ्च तर्पणं चैव सर्वकामार्थसिद्धये।
उच्छिष्टजपमानस्य जायन्ते सर्वसिद्धये॥२५॥
स्थण्डिले मण्डलं कृत्वा चतुरस्त्रं समन्तत:।
पूजयेन्मण्डलं देवि मूलमन्त्रेण साधक:॥२६॥

और भी कहा है कि उच्छिष्ट द्रव्य से बलि देकर तद्गत चित्त होकर जप करे। सिद्धिकामी साधक जूठे मुख ही विद्या का जप करे तो उसे सर्वसिद्धि मिलती है। हे देवि! फलप्रद अन्य विधि कहता हूँ, सुनो। समस्त कामना की सिद्धि हेतु होम तथा तर्पण आवश्यक है। हे देवि! स्थण्डिल के चारो ओर भूपुर मण्डल बनाकर साधक मूल मन्त्र से इनकी पूजा करे।।२४-२६।।

स्थण्डिले चतुरस्त्रमण्डलं कृत्वा मूलमुच्चार्य ॐ मण्डलाय नम: इति मण्डलमभ्यर्च्य वह्निस्वरूपां देवतां ध्यात्वा जुहूयात्। तथा च—

ततो देवीं समाधाय वह्निरूपां व्यवस्थिताम्।
देवीं ध्यात्वा चरेद्धोमं दधिसिद्धार्थतण्डुलै:।
सहस्त्रमात्रहोमेन राजा च वशगो भवेत्।
मार्जारस्य तु मांसेन देव्या होमं समाचरेत्।
स प्राप्नोति परां विद्यां सर्वशास्त्रवशीकृताम्॥२७॥
छागमांसेन होमेन भवन्ति कुलसिद्धय:।
विद्याकामश्चरेद्धोमं शर्कराघृतपायसै:।
नूनं तस्य भवन्त्येव सद्यो विद्याश्चतुर्दश॥२८॥

स्थण्डिल में मण्डल बनाकर मूल मन्त्र द्वारा 'ॐ स्थण्डिलाय नमः' मन्त्र से अर्चना करके देवता का वह्निरूप से (अग्निरूप से) ध्यान करके होम करे। उसके पश्चात् भूपुर (चतुरस्र) मण्डल में अग्निरूपेण व्यवस्थिता देवी का आधान करके उनका ध्यान करे और दधि, सिद्धार्थ तथा तण्डुल से होम करे। इस प्रकार १००० होम से राजा भी वशीभूत हो जाता है। मार्जारमांस से देवी का होम करे। यह विधि सर्वशास्त्रों को वश में करने वाली विद्या प्रदान करती है। बकरे के मांस से होम से कुलसिद्धि मिल जाती है। विद्या चाहने वाला साधक शर्करा-पायस-घृत का मिश्रण करके हवन करे तो उसे तत्क्षण चौदह विद्याओं का लाभ होता है।।२७-२८।।

बिल्वपत्रैस्त्रिमध्वक्तैर्मासमेकं समाहितः।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं चिरजीविनमुत्तमम्॥२९॥
कर्केन्दुकुसुमं हूत्वा रक्तं मधुसमन्वितम्।
दुर्भगाया हठाद्देवी सौभाग्यं शुभदायकम्॥३०॥

त्रिमधुर से सने बिल्वपत्र से एक मास-पर्यन्त होम करने से वन्ध्या भी पुत्रवती होती है। हे देवि! रक्त तथा मधुयुक्त कर्केन्दु पुष्प से होम करने से दुर्भागी को भी हठात् शुभदायक सौभाग्य मिल जाता है।।२९-३०।।

रजस्वलाया वस्त्रेण मधुना पायसेन च।
होमं कृत्वा महादेवि त्रैलोक्यं वशमानयेत्॥३१॥
इत्येषा कथिता देवि सर्वपापप्रदायिनि।
उच्छिष्टे दूषणं त्यक्त्वा अपवित्रो जपेद् ध्रुवम्॥३२॥

हे महादेविः रजस्वला के वस्त्र के द्वारा, मधु के द्वारा तथा पायस के द्वारा होम करके त्रैलोक्य वश में किया जा सकता है। हे देवि! सर्वपापनाशिनी यह विद्या कही गयी। उच्छिष्ट को दोष न मानकर अपवित्र होकर जप करना चाहिये।।३१-३२।।

अत्र यद्यपि पुरश्चरणं नोक्तं, तथाप्यष्टोत्तरसहस्रं जपः तद्दशांशेन होमादिकञ्च बोध्यम्॥३३॥

यद्यपि यहाँ पुरश्चरण नहीं कहा गया है, तथापि १००८ जप तथा उसका दशांश हवन करना चाहिये।।३३।।

तथाच—

येषां जपे च होमे च संख्या नोक्ता मनीषिभिः।
तेषामष्टसहस्राणि संख्या स्याज्जपहोमयोः॥३४॥ इति।

कहा भी है कि जिस जप तथा होम की संख्या मनीषीगण ने नहीं कही है, उस मन्त्र समूह का जप १००८ तथा होम कहा गया है।।३४।।

अष्टसहस्रमष्टोत्तरसहस्रमिति सम्प्रदायः। आसां सिद्धविद्यात्वात्। पुरश्चरणं नास्तीति केचित्। तन्न, सिद्धविद्यानां पुरश्चरणस्योक्तत्वात्॥३५॥

इत्युच्छिष्टचाण्डालिनीप्रकरणम्

अष्टसहस्र का अर्थ है—अष्टोत्तर सहस्र। यही सम्प्रदाय है। यह विद्या सिद्ध विद्या है। इसका पुरश्चरण नहीं होता। ऐसा कुछ विद्वान् कहते हैं। किन्तु यह संगत नहीं है; क्योंकि अन्य सिद्ध विद्याओं के विषय में पुरश्चरण का विधान है।।३५।।

अथ धूमावती

फेत्कारिण्यां—

दान्तावर्घीशबिन्द्वन्तौ बीजं धूमावती द्विठः।
धूमावतीमनुः प्रोक्तो वैरिनिग्रहकारकः॥३६॥

तेन धूं धूं धूमावति स्वाहा इति सिद्धम्।

अब फेत्कारिणी तन्त्र के अनुसार धूमावती प्रकरण को कहते हैं। अर्घीश (अ) तथा बिन्दुयुक्त दो (ध वर्ण = ध = ऊ + ं) (धूं धूं) तदनन्तर धूमावति तथा द्विठ (स्वाहा) लगाना चाहिये। वैरी-निग्रह के लिये यह मन्त्र कहा गया है। मन्त्रोद्धार होता है—धूं धूं धूमावति स्वाहा।।३६।।

अस्याः पूजा—प्रातःकृत्यादि भूतशुद्ध्यादिप्राणायामान्तं विधाय ऋष्यादिन्यासं कुर्यात्। शिरसि पिप्पलादऋषये नमः। मुखे विराट् छन्दसे नमः। हृदि धूमावत्यै देवतायै नमः॥३७॥

प्रातःकृत्यादि से भूतशुद्धि तक का विधान करके प्राणयाम-पर्यन्त सम्पन्न करके इस प्रकार ऋष्यादि न्यास करे। मस्तक पर—ॐ पिप्पलादऋषये नमः। मुख में—ॐ विराट्च्छन्दसे नमः। हृदय में—ॐ धूमावत्यै देवतायै नमः।।३७।।

ततः कराङ्गन्यासौ। धां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। धीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादिना, धां हृदयाय नमः इत्यादिना च॥३८॥

तदनन्तर ॐ धां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ धीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि प्रकार से करन्यास करके ॐ धां हृदयाय नमः इत्यादि प्रकार से अंगन्यास करके ध्यानकरे।।३८।।

ततो ध्यानम्—

विवर्णा चञ्चला कृष्णा दीर्घा च मलिनाम्बरा।
विमुक्तकुन्तला रूक्षा विधवा विरलद्विजा॥३९॥

काकध्वजरक्षारूढा विलम्बितपयोधरा।
सूर्पहस्ताऽतिरूक्षाक्षी धूतहस्ता वरान्विता॥४०॥
प्रवृद्धघोणा तु भृशं कुटिला कुटिलेक्षणा।
क्षुत्पिपासार्द्दिता नित्यं भयदा कलहास्पदा॥४१॥

विवर्णा, चञ्चला, कृष्णा, दीर्घा, मलिनवसना, खुले केश वाली, रूक्षा, विधवा, विरलदन्ता, काकध्वज वाले रथ पर बैठी, विशेष रूप से लटके स्तनों वाली, हाथ में सूप लिये, अतिरूखे नेत्र वाली, कापते हाथों वाली, वरमुद्राधारिणी, लम्बी नाक वाली, अत्यन्त कुटिल, कुटिल नेत्रों वाली, सर्वदा भूख-प्यास से पीड़िता, भयप्रदा, कलहप्रिया धूमावती का ध्यान करे।।३९-४१।।

जपेत् कृष्णचतुर्दश्यां पुरश्चरणसिद्धये।
उपवासरतो मन्त्री शून्यागारे दिवानिशम्॥४२॥

पुरश्चरण-सिद्धि के लिये मन्त्रज्ञ साधक उपवास रखते हुये शून्य गृह में कृष्ण चतुर्दशी को दिन-रात जप करे।।४२।।

श्मशाने विपिने वापि जपेल्लक्षन्तु वाग्यतः।
सोष्णीश आर्द्रवासाश्च पुरश्चरणकर्मणि॥४३॥

श्मशान में, अरण्य में गीले कपड़े पहन कर तथा उष्णीश धारण करके पुरश्चरण में एक लाख मन्त्र का जप करे।।४३।।

आख्योपरि लिखेन्मन्त्रं तस्मिन् स्थाप्य शिवं यजेत्।
अवष्टभ्य शिवं शत्रुनाम्ना तु प्रजपेन्मनूम्॥४४॥
सहस्रस्यार्द्धतः शत्रुर्ज्वरेण परिभूयते।
पञ्चगव्येन शान्तिः स्याज्वरस्य पयसापि वा॥४५॥

शत्रु का नाम लिखकर उसके ऊपर मन्त्र लिखने के उपरान्त उस मन्त्र पर शिव की स्थापना करके पूजन करे। उस मन्त्र के साथ शत्रु नाम को लगाकर मन्त्र का जप करे। ५०० जप सम्पन्न होते ही शत्रु को ज्वर हो जाता है। तदनन्तर पञ्चगव्य तथा दूध से होम करने पर उस ज्वर की शान्ति होती है।।४४-४५।।

आख्योपरि—रिपुनामोपरि। तस्मिन्मन्त्रे अवष्टभ्यालम्ब्य शत्रुनाम्ना सह मन्त्रं जपेत्। शत्रुनामसहिताञ्च अमुकमुत्सादयेति शत्रुनामोत्तरयोगः। पञ्चगव्येन पयसा वा जुहूयात्। अरिणमभिषिञ्चेदिह अरस्य शान्तिर्भवतीत्यर्थः॥४६॥

आख्योपरि = शत्रुनाम के ऊपर। उस मन्त्र का अवलम्बन लेकर शत्रु के नाम के साथ जप करना होगा अर्थात् 'अमुकस्य उत्सादय' यहाँ अमुक के स्थान पर शत्रु का

नाम लगाये। पञ्चगव्य अथवा दूध से होम करे। ज्वरग्रस्त का अभिषेक करने से ज्वरशान्ति होती है—यह अर्थ है।।४६।।

तथा—

कृत्वा मन्त्रे दिपोराख्यामरण्ये यामिनीदले।
उत्सादो जायते शत्रोर्मनोरयुतजापतः ॥४७॥

यह भी कहा है कि अरण्य में हरिद्रा के पत्ते पर शत्रु का नाम लिखकर दस हजार मन्त्रजप से शत्रु का उन्मूलन होता है।।४७।।

अमुकमुत्सादय इत्यनन्तरं मन्त्रं संयोज्य यामिनीदलेऽर्द्धरात्रे मन्त्रस्यायुत-जपतः शत्रोरुन्मूलनं भवति॥४८॥

अमुकमुत्सादय में शत्रु का नाम अमुक के स्थान पर कहकर उसके आगे मन्त्र जोड़कर अयुत (१०००) जप करने से शत्रु का उन्मूलन हो जाता है।।४८।।

तथा—

दग्ध्वा काकं श्मशानाग्नौ तद्भस्मादाय मन्त्रितम्।
विरोधिनामष्टाशासु सद्य उच्चाटनं रिपोः ॥४९॥

यह भी कहा गया है कि श्मशान की अग्नि द्वारा कौवे को दग्ध करके उसका भस्म लाकर मन्त्र द्वारा १०८ बार अभिन्त्रित करके शत्रु के आठों दिशाओं में वह भस्म छिड़कने से शत्रु का तत्काल उच्चाटन हो जाता है।।४९।।

यामिनी हरिद्रा। तथा हरिद्रापत्रे मन्त्रं विलिख्य रिपोराख्यां अमुकं रिपुं नाशयेति स्वरूपां विलिख्य एतादृशमन्त्रमयुतं जपेदित्यर्थः। मन्त्रितमिति अष्टोत्तरशतेनेत्यर्थः। तथाच हरिद्रापत्रे शत्रोर्नाम लिखित्वा शत्रुनामष्टा-शास्वष्टदिक्षु क्षिपेदित्यर्थः॥५०॥

हरिद्रा के पत्ते पर मन्त्र में 'अमुकं नाशय' (अमुक के स्थान पर शत्रु का नाम) लिखकर मन्त्र लिखे और १०००० जप करे। मन्त्रितं = मन्त्र के द्वारा १०८ बार मन्त्रित। नाम पत्ते पर लिखकर १०८ बार अभिमन्त्रित कर शत्रु-नाम के आठों दिशाओं पर फेंके।।५०।।

तथा—

श्मशानभस्मना कृत्वा शिवं तस्योपरि न्यसेत्।
विरोधिनामसंरुद्धं कृष्णपक्षे समर्चयेत् ॥५१॥

यह भी कहा है कि श्मशान भस्म से शिव बनाकर ऊपर संरुद्ध अर्थात् उस शिव

के आदि मध्य तथा अन्त में शत्रु का नाम लिखकर कृष्णपक्ष में सम्यक् रूप से अर्चना करनी चाहिये।।५१।।

तस्य शिवस्य ऊपरि विरोधिनाम लिखेदित्यर्थः। नाम कीदृशं? संरुद्धं आद्यन्तमध्येषु योजितम् अर्थात् समुदायमूलमन्त्रेणेत्यर्थः। यथा—नाम्न आद्यन्तमध्येषु मन्त्रः स्याद्रोधनं तथेति रोधनलक्षणमुक्तम्।।५२।।

उस श्मशानभस्म से निर्मित शिव के ऊपर शत्रु का नाम लिखे। नाम किस प्रकार का हो? संरुद्ध हो आदि, मध्य तथा अन्त में समुदाय मन्त्र के द्वारा योजित हो यह अर्थ है। जैसे नाम के आदि, मध्य तथा अन्त में मन्त्र होगा।।५२।।

महिषीक्षीरधूपञ्च यद्यत् शत्रुविपत्करम्।
महिषीरूपमासाद्य स्वप्ने शत्रुं विनाशयेत्।।५३।।

शत्रु का जो विपद् युक्त नक्षत्र है (उसे ज्योतिष से जानकर) उसमें भैस के दूध की खीरयुक्त धूप दे। ऐसा करने से देवी स्वप्न में महिषी का रूप धारण करके शत्रु का नाश करती है।।५३।।

महिषीक्षीरधूपञ्चेति शत्रोर्विपन्नक्षत्रं यत् तदाहृत्य या औषधिस्तया महिषी-क्षीरयोगाद् धूपं कृत्वा दाह्य इत्यर्थः।।५४।।

आशय यह है कि शत्रु का जो विपद् नक्षत्र है, उसमें लाई गई औषधि के साथ महिषी का दुग्ध मिलाकर उसे जलाये।।५४।।

मन्त्रेणानेन निखनेत् तद्भस्म रिपुमन्दिरे।
शत्रुमुच्चाटयेन्नूनं नात्र कार्या विचारणा।।५५।।

इस भस्म को इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करके शत्रु के गृह में छोड़े तो यह अवश्य ही शत्रु का उच्चाटन करती है। इसमें सन्देह नहीं है।।५५।।

मन्त्रेणेति मूलमुच्चार्यामुकं नाशयेति मन्त्रेणेत्यर्थः। तद्भस्मेति चिताभस्म धूपभस्म वेत्यर्थः।।५६।।

अर्थात् मूल मन्त्र उच्चारण करके अमुकं नाशय कहकर मन्त्र का उच्चारण तद् भस्म = चिता भस्म अथवा धूप भस्म।।५६।।

श्मशानभस्मना लिङ्गं कृत्वा पुष्पादिनार्चयेत्।
भगवन्निति समाभास्य मनसा कर्म चिन्तयन्।।५७।।

श्मशान भस्म से शिवलिंग बनाकर उनको भगवान् कहकर मन ही मन चिन्तन करते हुये पुष्पादि से उनका पूजन करे।।५७।।

निम्बकाकाच्छदावेकीकृत्य चाष्टशतं जपेत्।
दद्याद् धूपं साध्यनाम्ना सद्यो विद्वेषयेदरीन्॥५८॥

अस्यार्थः—निम्वकाकपक्षावेकीकृत्य तदुपरि अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तेन द्रव्येणामुकं द्वेषय द्वेषय इत्युच्चार्य मूलमुच्चार्य च धूपं दद्यात्॥५९॥

नीम तथा कौवे के पंख को एक करके १०८ मन्त्र जपे। तत्पश्चात् पुनः साध्य (शत्रु) का नाम लेकर धूप प्रदर्शित करे। ऐसा करने से यह तत्क्षण शत्रुगण को विद्विष्ट करती है अर्थात् नीम तथा कौवे के पंख को एक करके १०८ बार जप करने के उपरान्त 'अमुकं द्वेषय द्वेषय' कहकर मूल मन्त्र पढ़कर नीम तथा काकपक्ष से धूप प्रदान करना चाहिये।।५८-५९।।

तथा—

चितिकाष्ठजले क्षीरहोमाच्छान्तिं सदा भवेत्॥६०॥

चिति काष्ठ की अग्नि में क्षीर से होम करने पर इस क्रिया की सदैव शान्ति होती है।।६०।।

तथा—

रजोधूपप्रदानेन गृध्ररूपेण कालिका।
मारयत्यरिमागत्य शान्तिर्निर्माल्यधूपतः॥६१॥

यह भी कहा है कि शत्रु के पैर के नीचे की रज से धूप प्रदान करने से कालिका शत्रु के पास गृध्ररूप में आकर उसे मार देती है। निर्माल्य द्वारा धूप प्रदान करने से इसकी शान्ति होती है।।६१।।

वराहकर्णधूपेन हन्याच्छूकररूपिणी।
अश्वत्थपत्रधूपेन शान्तिर्भवति नान्यथा॥६२॥

वराह के कर्ण से निर्मित धूपदान करने से कालिका शूकर का रूप धारण करके वैरी की हत्या करती हैं। अश्वत्थ के पत्ते से धूप देने पर इसकी शान्ति होती है। अन्य प्रकार से शान्ति नहीं होती।।६२।।

शान्तिः सर्वाभिचारस्य पञ्चगव्येन जायते।
क्षीरेण वापि देवेशि मधुरत्रितयेन वा॥६३॥

हे देवेशि! समस्त अभिचार में पञ्चगव्य से, दुग्ध से अथवा घृत-शर्करा-मधु के मिश्रण से होम करने पर शान्ति होती है।।६३।।

कीले क्षीरतरोर्विदर्भ्य विलिखेन्मन्त्रेण नामाक्षरं
जप्त्वालिख्य पदद्वये तु निखनेदुच्चाटनं विद्विषाम्।

तत्पादद्वयधूलिकीर्णहविषा दद्याद् द्विजेभ्यो बलिं
तज्जप्त्वा चितिभस्मकीलितमरेर्गेहे तदुच्चाटनम् ।।६४।।

क्षीरवृक्ष के कील से मन्त्र द्वारा शत्रु का नाम खोदकर लिखे। उससे अंकित पदद्वय में इस मन्त्र-विदर्भित नामाक्षर को लिखकर उस पर मन्त्र जप करके शत्रु के गृह में गाड़ दें। इससे शत्रुगण का उच्चाटन होगा। उस शत्रु के पैर के नीचे की धूल-मिश्रित हवि के साथ पक्षी को बलि प्रदान करना चाहिये।

इसी मन्त्र का जप करके चिताभस्म को शत्रु के घर में गाड़ देने से उसशत्रु का उच्चाटन हो जाता है।।६४।।

अस्यार्थः—क्षीरितरोरश्वत्थवटपर्कट्यान्यतमस्य कीले कीलद्वये मनुष्याकारलिखितशत्रोः पदद्वये निखनेत्। किं कृत्वा? नामाक्षरं मन्त्रेण विदर्भ्य।।६५।।

क्षीर वृक्ष है—पीपल, पाकड़। इनकी कील पर मनुष्याकृति उत्खचित करे। अब उस मनुष्य के पदद्वय में नामाक्षर लिखना चाहिये।।६५।।

विदर्भलक्षणञ्च

द्वे द्वे मन्त्राक्षरे यत्र एकैकं साध्यनामकम् ।
विदर्भितस्तु तत् प्रोक्तं सर्वरक्षाकरं परम् ।।६६।।

जहाँ दो-दो मन्त्राक्षर के पश्चात् एक-एक साध्य शत्रु के नाम का अक्षर लिखा जाय, उसे विदर्भित कहते हैं। यह श्रेष्ठ रक्षाकर होता है (मन्त्र का दो अक्षर तब शत्रु के नाम का एक अक्षर)।।६६।।

तथा—

मन्त्रार्णद्वयमध्यस्थं साध्यनामाक्षरं लिखेत् ।
विदर्भ एष विज्ञेय इति च ।।६७।।

यह भी कहा है कि मन्त्रवर्ण के दो अक्षर के बीच में साध्य नाम का अक्षर लिखे तो इसे भी विदर्भ कहते हैं।।६७।।

तथा च—आदौ मन्त्राक्षरद्वयं ततः साध्याक्षरद्वयं ततः साध्याक्षरमेकं पुनर्मन्त्राक्षरद्वयं ततः साध्याक्षरमेकं एवं क्रमेण यावदक्षरसमाप्तिं लिखेत्। अत्र मन्त्रादीनां द्वयोरक्षरयोरन्तरे साध्यनामाक्षरद्वयं योजयेत्। साध्याक्षरयोर्द्वयोरन्तरे च मन्त्राणामेकैकाक्षरं योजयेदिति सुभगानन्दः। द्विजेभ्य इति पक्षिभ्य इत्यर्थः।।६८।।

इति धूमावतीप्रकरणम्

प्रथमतः मन्त्राक्षरद्वय लिखे, तत्पश्चात् शत्रु के नाम का एक अक्षर, पुनः मन्त्र का दो अक्षर, तत्पश्चात् पुनः शत्रु के नाम का एक अक्षर। ऐसा अक्षर समाप्ति-पर्यन्त लिखे। यहाँ सुभगानन्द यह कहते हैं कि मन्त्र के दो अक्षर के बाद शत्रु के नाम के अक्षर लिखे।।६८।।

अथ कर्णपिशाची

तदुक्तं तन्त्रान्तरे—

कर्णास्येक्षणलोहितो वकगतोऽनन्तश्चिकारो वदा-
ऽतीतानागतशब्दयुक्तभुवनेशीवह्निजायान्विता ।
ताराद्यो मनुरेष लक्षजपतो व्यासेन संसेवितः
सार्वज्ञ्यं लभतेऽचिरेण नियतं पैशाचिकी भक्तितः ॥१॥

तथा च 'ॐ कर्णपिशाचि वदातीतानागतं ह्रीं स्वाहा' इत्यक्षरो मन्त्रः॥२॥

अब कर्णपिशाची प्रकरण कहा जाता है। तन्त्रान्तर में कहते हैं कि कर्ण शब्द के पश्चात् ईक्षण (इ) युक्त लोहित (प) वकगत (शकारगत) अनन्त (आ) तदनन्तर 'चि' वद अतीतानागत शब्दयुक्त भुवनेशी (ह्रीं) वह्निजाया (स्वाहा शब्द युता प्रणवादि विद्या कर्णपिशाची होती है। मन्त्रोद्धार होती है—ॐ कर्णपिशाचि वदातीतानागतं ह्रीं स्वाहा। व्यास द्वारा उपासित यह मन्त्र है। कर्णपिशाची के प्रति भक्तिपरायण होकर १००००० जप करने से कम समय में ही सर्वज्ञत्व प्राप्त हो जाता है।।१-२।।

ध्यानं यथा—

कृष्णां रक्तविलोचनां त्रिनयनां खर्वाञ्च लम्बोदरीं,
बन्धूकारुणजिह्विकां वरवराभीयुक्करामुन्मुखीम् ।
धूमार्चिर्जटिलां कपालविलसत् पाणिद्वयां चञ्चलां,
सर्वज्ञां शवहृत्कृताधिवसतीं पैशाचिकीं तां नुमः ॥३॥

कृष्णवर्णा, रक्तलोचना, त्रिनयना, खर्वा, लम्बोदरी, बन्धूक पुष्प के समान अरुण वर्ण जिह्वा वाली, वर तथा अभय मुद्रायुक्त हाथों वाली, उन्मुखी, धूम्रवर्णा, शिखायुक्त शरीर वाली, जटिला, कपालद्वय से शोभमान हस्तद्वय-युता, सर्वज्ञा, शवहृदय पर समासीना पिशाची देवी को नमस्कार करता हूँ।।३।।

तन्त्रे—

निशायामर्द्धरात्रौ च हृदि न्यस्य पिशाचिकाम् ।
दग्धमीनं बलिं दत्त्वा रात्रौ सम्पूज्य सञ्जपेत् ॥४॥

तन्त्र का कथन है कि रात्रि में (अर्द्धरात्रि में) पिशाची देवी को हृदय में स्थापित करके दग्ध मछली की बलि देकर रात्रि में पूजनोपरान्त जप करे।।४।।

ॐ कर्णपिशाचि दग्धमीनबलिं गृह्ण गृह्ण मम सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा—इति दग्धमीनबलिं दद्यात्॥५॥

मूलोक्त मन्त्र से दग्धमीन की बलि प्रदान करे।।५।।

रक्तचन्दनबन्धूकजवापुष्पादिकन्तु यत्।
अमृतं कुरु देवेशि स्वाहेति प्रोक्षयेज्जलैः ॥६॥

रक्त चन्दन, बन्धूकपुष्प, जवापुष्प का 'ॐ अमृते कुरु देवेशि स्वाहा' मन्त्र से जल द्वारा प्रोक्षण करना चाहिये।।६।।

पूर्वाह्ने किञ्चिज्जप्त्वा मध्याह्ने एकभक्तं निरामिषं भुक्त्वा रात्रावपि तत्संख्यां जपेत्। अन्यत् किञ्चिन्न भोक्तव्यं ताम्बूलकादिकं विना। एवं क्रमेण लक्षमेकं जप्त्वा तत्तद्दशांशेन होमादिकं कुर्यात्। होमाशक्तौ जपदशांशतर्पणं कृत्वा वरं प्रार्थयेत्। मूलं रक्तचन्दनेन लिखित्वा तत्र पूजयेत्। सिद्धिलक्षणन्तु गगने हूङ्कारादिश्रवणं दीर्घाग्निशिखादर्शनञ्च॥७॥

पूर्वोक्त कुछ जप पूर्वाह्न में करके मध्याह्न में एक बार निरामिष भोजन करके रात्रि में भी पूर्वाह्न के समान संख्या में जप करे। विना ताम्बूलादि के भोजन न करे। इस क्रम से एक लाख जप करके दशांश होम करे। यदि होम में अशक्त हो तब १०००० तर्पण करके वर-प्रार्थना करनी चाहिये। कर्णपिशाची सिद्धि का लक्षण है—आकाश से हुङ्कारादि का सुनना अथवा दीर्घ अग्निशिखा देखना। रक्त चन्दन द्वारा मूल मन्त्र लिखकर उसका पूजन करे।।७।।

अथ मन्त्रान्तरम्—'ॐ ह्रीं कर्णपिशाचि मे कर्णे कथय हूं फट् स्वाहा' इति सप्तदशाक्षरं मन्त्रं प्रदीपतैलं पादयोर्दत्वा रात्रौ लक्षं जपेत्। ततः सर्वज्ञो भवति। नास्य पूजाध्यानम्॥८॥

तथा ॐ क्लीं जयादेवि स्वाहा इत्यष्टाक्षरम्। अस्यापि न्यासाद्यभावः। पूर्वं लक्षं जप्त्वा गृहगोधिकां निहत्य तत्रोपविश्य जयादेवीं यथाशक्ति सम्पूज्य तावज्जपेद् यावत् सा जीवति, ततः सिध्यति। सिद्धौ तु मनसापि प्रश्ने कृते सा आयाति, ततस्तस्याः पृष्ठे सर्वं भूतभविष्यादिकं पश्यति॥९॥

इति कर्णपिशाचिप्रकरणम्

अब कर्णपिशाची का मन्त्रान्तर कहता हूँ—ॐ ह्रीं कर्णपिशाचि मे कर्णे कथय

हुं फट् स्वाहा' इन १७ अक्षरों वाले मन्त्र के दोनों पाद पर दीपक का तैल देकर रात्रि में एक लाख जप करे। इससे साधक सर्वज्ञ हो जाता है। इस मन्त्र का पूजा ध्यान नहीं होता। 'ॐ क्लीं जयादवि स्वाहा' यह अष्टाक्षर मन्त्र है। इस मन्त्र में न्यास आदि नहीं है। पहले एक लाख जप करके गृह में छिपकली की हत्या करके वहीं बैठकर जयादेवी की यथाशक्ति पूजा करके जब तक वह जीवित नहीं हो जाती तब तक जप करे। इससे सिद्धि होती है। सिद्धि होने पर मन ही मन प्रश्न करने पर देवी आती हैं। तब वे साधक के पृष्ठ देश से भूत तथा भविष्य का दर्शन कराती हैं।।८-९।।

अथ विशालाक्षी

आदियामले—

ध्रुवमाद्यं समुद्धृत्य मायाबीजं समुद्धरेत्।
विशालाक्षीपदं ङेऽन्तं हृदन्तं मन्त्रमुद्धरेत्।।१०।।

ॐ ह्रीं विशालाक्ष्यै नमः इत्याष्टाक्षरी। सदाशिव ऋषिः पङ्क्तिच्छन्दो विशालाक्षी देवता ॐ शक्तिः ह्रीं बीजं धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः। ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः इत्यादिना ॐ ह्रां हृदयाय नमः इत्यादिना च कराङ्गन्यासौ। ततो मूलेन व्यापकं न्यस्य ध्यायेत्।।११।।

अब विशालाक्षी प्रकरण कहते हैं। आदियामल में कहते हैं कि प्रथमत: प्रणव का उद्धार करके मायाबीज कहे, तत्पश्चात् नम: तथा चतुर्थी विभक्त्यन्त विशालाक्षी अर्थात् विशालाक्ष्यै पद का उद्धार करे।

इससे 'ॐ ह्रीं विशालाक्ष्यै नम:' यह अष्टाक्षरी मन्त्र निष्पन्न होता है। इस मन्त्र के सदाशिव ऋषि हैं, पङ्क्ति छन्द हैं एवं विशालाक्षी देवता हैं। ॐ शक्ति, ह्रीं बीज है तथा धर्म अर्थ काम एवं मोक्ष के लिये इसका विनियोग होता है। ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नम:, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि प्रकार से करन्यास तथा ॐ ह्रां हृदयाय नम:, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा इत्यादि प्रकार से अंगन्यास किया जाता है। तत्पश्चात् मूल मन्त्र द्वारा व्यापक न्यासोपरान्त ध्यान करना चाहिये।।१०-११।।

ध्यायेद्देवीं विशालाक्षीं तप्तजाम्बूनदप्रभाम्।
द्विभुजामम्बिकां चण्डां खड्गखर्परधारिणीम्।।१२।।
नानालङ्कारसुभगां रक्ताम्बरधरां शुभाम्।
सदा षोडशवर्षीयां प्रसन्नास्यां त्रिलोचनाम्।।१३।।
मुण्डमालावलीरम्यां पीतोन्नतपयोधराम्।
शवोपरि महादेवीं जटामुकुटमण्डिताम्।।१४।।

शक्रक्षयकरीं देवीं साधकाभीष्टदायिकाम्।
सर्वसौभाग्यजननीं महासम्पत्प्रदां स्मरेत्॥१५॥

तप्त सुवर्ण के समान प्रभा वाली विशालाक्षी देवी का ध्यान करता हूँ। वे द्विभुजा, अम्बिका, चण्डा, खड्ग-खर्परधारिणी, नानालङ्कार से सौभाग्यशालिनी, रक्त वस्त्रधारिणी, शुभा, सदा षोडश वर्षीया, प्रसन्न मुख वाली, त्रिलोचना, मुण्डमाला से मनोहरा, पीनोन्नत स्तनों वाली, शव पर आसीना, जटा के मुकुट से मण्डिता, शत्रुक्षय करने वाली, साधक को अभीष्ट वर देने वाली, समस्त सौभाग्य-दायिनी एवं महान् सम्पत्ति देने वाली महादेवी विशालाक्षी का मैं स्मरण करता हूँ।।१२-१५।।

यन्त्रस्तु त्रिकोणमध्याष्टपत्रपद्मगर्भं वृत्तं चतुरस्रं चतुर्द्वारम्। मूलपूजान्ते पत्राग्रेषु पङ्कजाक्षी, विरूपाक्षी, रक्ताक्षी, सुलोचनैकनेत्रा, द्विनेत्रा, कोटराक्षि-त्रिलोचना, इत्यष्टयोगिनी पश्चिमादितः सम्पूज्य तद्बहिरिन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्। पुरश्चरणं वर्णलक्षजपः। घृतेन दशांशहोमः॥१६॥

विशालाक्षी का यन्त्र कहते हैं। मध्य में त्रिकोण, तदनन्तर वृत्त, अष्टदल पद्म, उसके बाहर वृत्त, चतुरस्र तथा चतुर्द्वार का अङ्कन करे। मूल देवता की पूजा के पश्चात् पत्र के आगे पश्चिम से प्रारम्भ करके पङ्कजाक्षी, विरूपाक्षी, रक्ताक्षी, सुलोचना, एकनेत्रा, द्विनेत्रा, कोटराक्षी तथा त्रिलोचना—इन अष्ट योगिनी का पूजन करके उसके बाहर इन्द्रादि लोकपाल तथा उनके वज्रादि अस्त्रसमूह का पूजन करके धूपदान से विसर्जन-पर्यन्त विधान सम्पन्न करे। इसका पुरश्चरण आठ लाख जप से होता है। होम उसका दशमांश होता है। इसी प्रकार से पुरश्चरण सम्पन्न करना चाहिये।।१६।।

अथ गौरी

ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हुं फट् स्वाहा।
ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि सवर्मफट्।
द्विठान्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रः सद्भिरुदीरितः॥१७॥

इति षोडशाक्षरी।

अब गौरी प्रकरण कहते हैं। ह्रीं गौरि, रुद्रदयिते योगेश्वरि वर्म, फट् अन्त में द्विठः। गौरी का यह षोडशाक्षर मन्त्र विद्वानों ने कहा है। मन्त्रोद्धार होता है—ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हुं फट् स्वाहा।।१७।।

अस्याः पूजा प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्तं कृत्वा ऋष्यादीन्न्यसेत्।

पर्वतऋषिर्गायत्रीछन्दो गौरी देवता। ततः षड्दीर्घभाजा मायाबीजेन कराङ्गन्यासौ॥१८॥

इसका पूजन कहते हैं—प्रातःकृत्यादि से प्राणायाम-पर्यन्त करके ऋष्यादि न्यास करे। इस मन्त्र के पर्वत ऋषि, गायत्री छन्द एवं गौरी देवता हैं। इसके पश्चात् षड्दीर्घ मायाबीज से कराङ्गन्यास करना चाहिये।।१८।।

ध्यानन्तु—

हेमाभां विभ्रतीं दोर्भिर्दपणाञ्जनसाधने।
पाशाङ्कुशौ सर्वभूषां तां गौरीं सर्वदा भजे॥१९॥

इनका ध्यान इस प्रकार है—स्वर्ण वर्णा, बाहुओं में दर्पण, अञ्जनशलाका, पाश तथा अंकुश धारण करने वाली; सर्वालङ्कार-भूषिता गौरी देवी का मैं सर्वदा भजन करता हूँ।।१९।।

एवं ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्यार्घ्यं संस्थाप्य जयादिपीठमन्वन्तं सम्पूज्य पुनर्ध्यात्वावाह्य देवीं सम्पूज्याग्न्यादिकोणेषु षडङ्गैरभ्यर्च्य पूर्वादिपत्रेषु सुभगां रतिं कामिनीं कामदायिनीं पाशमङ्कुशं दर्पणमञ्जनशलाकां पूजयित्वा इन्द्रादीन् वज्रादींश्च सम्पूज्य धूपादिविसर्जनान्तं कर्म समापयेत्॥२०॥

इस प्रकार से ध्यान करके मानसोपचार पूजा करके विशेषार्घ्य स्थापन, जयादि से लेकर पीठमन्त्र-पर्यन्त पीठपूजा, ध्यान, आवाहन, देवीपूजन, आग्नेय आदि कोणों में षड़ङ्ग पूजन, पूर्वादि पत्रसमूह में सुभगा, रति, कामिनी, कामदायिनी का पूजन, पाश, अंकुश, दर्पण, अंजनशलाका का पूजन करके इन्द्रादि लोकपाल तथा वज्रादि अस्त्रसमूह का पूजनकर, धूपदान से विसर्जन-पर्यन्त विधान द्वारा कर्म सम्पन्न करे।।२०।।

पुरश्चरणं लक्षजपः। आज्येन दशांश होमः। फलन्तु पुष्पाञ्जनभक्ष्य-चन्दनादिकं मूलमन्त्राभिमन्त्रितं यस्मै यस्मै दीयते स वश्यो भवति। तथा रात्रौ हरिद्रया वामोरुमध्ये प्रियस्त्रीनामाभिलिख्य वामकरेण पिधाय शतं सहस्रं वा जपन्निष्टां स्त्रियमाकर्षयति॥२१॥

इति गौरीप्रकरणम्

इसका पुरश्चरण एक लाख जप तथा घृत से दशांश होम से सम्पन्न होता है। इस प्रयोग में फल, पुष्प, अक्षत, भक्ष्य, चन्दनादि अभिमन्त्रित करके जिसे दिया जायेगा, वह वशीभूत होगा। इसी प्रकार वाम जंघा पर हल्दी से प्रिय स्त्री का नाम लिखकर बाँयें हाथ से उसे ढँक कर १०० बार अथवा १००० बार मन्त्रजप करने से वह स्त्री आकर्षित होती है।।२१।।

अथ कात्यायनी

श्रीभगवानुवाच—

शृणु देवि महामन्त्रं वाग्भवादि नमोऽन्तकम्।
वह्न्यासनं शिवं वान्तं बिन्दुशास्तिविभूषितम्॥२२॥

अब कात्यायनी प्रकरण कहते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं—हे देवि! महामन्त्र कहता हूँ, सुनो। प्रथमतः वाग्भव, अन्त में नमः, मध्य में वह्न्यासन (र युक्त) शास्ति (ई) तथा बिन्दु भूषित हकार तथा वान्त (श) अर्थात् ह्रीं श्रीं।।२२।।

चकारं बिन्दुना युक्तं चतुर्दशस्वरान्वितम्।
ङेयुता चण्डिका चैव मन्त्रः प्रोक्तो दशाक्षरः।
चिन्तामणिरिति ख्यातो मयाद्यापि विचिन्त्यते॥२३॥

चतुर्दश स्वरयुक्त (औ युक्त) बिन्दुभूषित चकार अर्थात् 'चौं' तदनन्तर चतुर्थी विभक्तियुक्त चण्डिका अर्थात् चण्डिकायै। यह १० अक्षरों वाला मन्त्र है। यह चिन्तामणि नाम से प्रसिद्ध है। मैं आज भी इसका ध्यान करता हूँ।।२३।।

विन्द्वादिविशेषणद्वयं शिववान्तयोरन्वितम्। तथा च ऐं ह्रीं श्रीं चौं चण्डिकायै नमः इति मन्त्रः सिद्धः॥२४॥

बिन्दुशास्ति विभूषितं तथा वह्न्यासनं यह विशेषण शिव तथा वान्त (श)—इन दोनों से अन्वित है। मन्त्रोद्धार होता है—ऐं ह्रीं श्रीं चौं चण्डिकायै नमः।।२४।।

तथा—

देवता चण्डिका छन्दो गायत्री कपिलो मुनिः।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं दशांशं जुहुयात् ततः॥२५॥

और भी कहते हैं—इस मन्त्र के देवता चण्डिका, कपिल ऋषि, गायत्री छन्द एवं चण्डिका देवता हैं। एक लाख जप करके दशमांश होम करना चाहिये।।२५।।

मातृकोक्ते जपेत् पीठे बीजेनाङ्गक्रिया मता।
आदावङ्गानि सम्पूज्य शस्त्रपूजा ततः परम्॥२६॥

ग्रन्थ में मातृकापटल में कथित विधान से इनका पूजन करे। मूल बीज से कराङ्ग न्यास तथा अंगन्यास करे। अंग देवगण का पूजन करके तब शस्त्रपूजादि करे।।२६।।

लोकपालास्ततः पूज्यास्तेषामस्त्राणि तद्बहिः।
डाकिनी योगिनी चैव खेचरी साकिनी तथा।
दिक्षु पूज्या इमा देव्यः सुसिद्धाः फलदायिकाः॥२७॥

तदनन्तर लोकपाल एवं उसके बहिर्भाग में उनके अस्त्रसमूह की पूजा करे। डाकिनी, योगिनी, खेचरी, साकिनी—इन सुसिद्धा फल देने वाली देवीगण का पूजन दिक् समूह में करना चाहिये।।२७।।

ध्यानं यथा—

सव्यपादसरोजेनाऽलङ्कृतोरुमृगाधिपाम् ।
वामपादाग्रदलितमहिषासुरनिर्भराम् ॥२८॥
सुप्रसन्नां सुवदनां चारुनेत्रत्रयान्विताम् ।
हारनूपुरकेयूरजटामुकुटमण्डिताम् ॥२९॥
विचित्रपट्टवसनामर्द्धचन्द्रविभूषिताम् ।
खड्गखेटकवज्राणि त्रिशूलं विशिखं तथा ॥३०॥
धारयन्तीं धनुः पाशं शङ्खं घण्टां सरोरुहाम् ।
बाहुभिर्लक्षितैर्देवीं कोटिचन्द्रसमप्रभाम् ॥३१॥
समावृतैर्दिविषदैर्देवैराकाशसंस्थितैः ।
भूयमानां मोदमानैर्लोकपालादिभिः सदा ॥३२॥

दक्षिण पादपद्म से सिंह को अलंकृत करने वाली अर्थात् दाहिना पैर सिंह पर है, वाम पैर के अग्रभाग से महिषासुर-निर्भरकारिणी, सुप्रसन्ना, मनोहर नेत्रत्रय-युक्ता, हार-नुपूर-केयूर-जटा तथा मुकुट-मण्डिता, विचित्र पट्ट, त्रिशूल, विशिख, धनु, पाश, शंख, घण्टा तथा कमल-धारिणी, कोटि चन्द्र-सम प्रभा वाली, द्युलोकवासी आकाशस्थ देवगण से घिरी हुई, सर्वदा मोदमान लोकपालों से स्तूयमान देवी का ध्यान करता हूँ।।२८-३२।।

एवं सञ्चिन्त्येद् देवीं जायते नरपुङ्गवः ।
क्षत्रियेषु यथा रामो देवेषु च पुरन्दरः ॥३३॥
भुजङ्गेषु यथा तार्क्ष्यः क्रूरकार्ये यथा शनिः ।
शकुन्तेषु यथा श्येनो मन्त्रज्ञो बलवांस्तथा ॥३४॥
इदन्ते परमं गुह्यं संक्षेपां कथित मया ।
इदानीं जपहोमानां विधानञ्च शृणु प्रिये ॥३५॥

इस प्रकार से देवी का चिन्तन करे। ऐसा करने से वह मन्त्रज्ञ नरश्रेष्ठ हो जाता है। जैसे क्षत्रियों में राम, देवों में इन्द्र, सर्पों में तक्षक एवं क्रूर कार्य में शनि हैं। जैसे शिकारी पक्षियों में बाज है, वैसे ही मन्त्रज्ञ भी बलवान् होता है। यह परम गुप्त तत्त्व संक्षेप में मैंने कहा। हे प्रिये! अब जप एवं होम का विधान कहते हैं।।३३-३५।।

मन्त्रोऽयं चिन्त्यते देवि सभायां पुरतो यदि।
कोटिसूर्यप्रतीकाशो दृश्यते वादिभिस्तथा।
पलायन्ते महादेवि! साध्वसेन क्षणात्ततः ।।३६।।

हे देवि! यदि इस मन्त्र को सभा में प्रतिवादी के सम्मुख याद किया जाय तब वह वादी को करोड़ों सूर्य के समान प्रतीत होता है और उससे विवाद करने वाले भ्रम में पड़कर वहाँ से भाग जाते हैं।।३६।।

इमे मास्यसिते पक्षे नवम्यामारभेज्जपम्।
सहस्रं प्रत्यहं कृत्वा सम्प्राप्य नवमीं सिताम् ।।३७।।
विजयं खड्गमादाय पूजयित्वा यथाविधि।
अर्द्धरात्रे बलिं दत्त्वा प्रातर्यात्रां समाचरेत् ।।३८।।

अश्विन मास के कृष्ण पक्ष की नवमी को जप करे। प्रतिदिन एक हजार जप करके शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को विजय खड्ग की यथाविधि पूजा करके अर्द्धरात्रि में बलि देकर प्रात: यात्रा करे।।३७-३८।।

वनभूमिं समासाद्य सहस्रं प्रजपेन्मनूम्।
तं दृष्ट्वा पुरुषं देवि हृत्क्षोभो जायते रिपोः ।।३९।।

रणभूमि में १००० मन्त्रजप करे। हे देवि! उसे देखकर शत्रु के हृदय में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है।।३९।।

सदूतं यममायातं मन्यमाना नराधिपा।
पलायन्ते महादेवि नात्र कार्या विचारणा ।।४०।।

राजन्य वृन्द भी ऐसे भ्रमित होते हैं मानो दूतों के साथ यमराज आये हों। इसलिये हे देवि! इसमें कोई विचार न करो।।४०।।

शुक्लाम्बरधरो मौनी ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
शुक्लवर्णां महादेवीं ध्यात्वा शुक्लविभूषणाम्।
सहस्रं मासमेकन्तु जपेन्नित्यं यथाविधि ।।४१।।

साधक श्वेत वस्त्र पहन कर मौनी ब्रह्मचारी होकर शुक्लवर्णा श्वेतालङ्कार-भूषिता महादेवी का ध्यान करके एक माह तक नित्य १००० जप करे।।४१।।

मालतीबकुलैः कुन्दैर्मन्त्री मधुरसंयुतैः।
सहस्रत्रितयं हूत्वा वागीशो जायतेऽचिरात् ।।४२।।

मन्त्रज्ञ साधक मधुर-मिश्रित (त्रिमधुर—घृत शर्करा मधु) मालती, बकुल तथा कुन्द पुष्प से तीन हजार होम करके वाक्पति हो जाता है।।४२।।

हेलया कवितां देवि विशदां कुरुते द्रुतम्।
जपं या कुरुते नित्यं शतशो वत्सरावधि ॥४३॥
वन्ध्यापि लभते पुत्रं कार्त्तिकेयपराक्रमम्।
दुर्भगा च भवेत् पत्युः सुभगातिमनोरमा ॥४४॥

हे देवि! पूर्वोक्त रूप से साधन द्वारा साधक कविता करने लगता है। जो स्त्री प्रतिदिन १०० बार मन्त्र-जप करती है, वह वन्ध्या होने पर भी कार्त्तिकेय भगवान् के समान पराक्रमी सन्तान की माता बन जाती है। जिसे स्वामी दुर्भगा समझता था, वह उसे अति मनोरमा मानने लगता है।।४३-४४।।

रूपं विचिन्त्य पूर्वोक्तं लक्षं जप्त्वायुतं ततः।
नीलोत्पलैः सरोजैर्वा हूत्वा वैश्रवणायते ॥४५॥

देवी का ध्यान द्वारा रूप-चिन्तन करके एक लाख जप के अनन्तर नील कमल अथवा पद्म से १०००० होम करने से साधक कुबेर-तुल्य हो जाता है।।४५।।

व्याघ्रचर्मपरीधानां मुण्डमालाविभूषिताम् ॥४६॥
रक्तवर्त्तुलभीमाक्षीं जिह्वया लोलयाऽसुरान्।
चर्वयन्तीं महाकालीं कालरात्रिमिवापराम् ॥४७॥
क्षोभयन्तीं जगत्सर्वं ससुरासुरपर्वतम्।
एवं ध्यात्वा जपेद्देवि श्मशाने वा चतुष्पथे ॥४८॥

व्याघ्र चर्मधारिणी, मुण्डमाला भूषिता, रक्त वर्ण, वर्त्तुल भीम नयना, लोल जिह्वा द्वारा असुरों को चबाने वाली, कालरात्रि के समान द्वितीय महाकाली, सुर-असुर तथा पर्वत के साथ समस्त जगत् को क्षोभकारिणी—इस प्रकार देवी का ध्यान करके श्मशान अथवा चौराहे पर जप करे।।४६-४८।।

सप्ताहं त्रिशतं कृत्वा व्रतस्थः स्थिरमानसः।
जपेद् यो नियतं देवि स रिपून्नाशयेद् ध्रुवम् ॥४९॥

हे देवि! जो व्रतपरायण स्थिरचित्त साधक नित्य ३०० जप सप्ताह में करता है, उसके शत्रुओं का निश्चय ही नाश होता है।।४९।।

अनेनैव विधानेन बलिं दद्यात् चतुष्पथे।
दग्धं मत्स्यं सरक्तान्नं पिण्डीकृत्य समाहितः।
आममांसं हरिद्राक्तं यं विचिन्त्य प्रदापयेत् ॥५०॥

सप्ताहाल्लभते शत्रुर्यमसद्म न संशयः ।
हरिर्वा शङ्करो वापि न शक्तो रक्षितुं क्वचित् ।।५१।।

इस विधान से समाहित मन से चौराहे पर दग्ध मछली, सरक्त पिण्डीकृत अन्न, हरिद्राक्त आममांस जो देवी को प्रदान करता है, उसके शत्रु एक सप्ताह में यमलोक चले जाते हैं। हरि तथा हर भी उसकी रक्षा में समर्थ नहीं होते।।५०-५१।।

बलिमन्त्रस्तु—

उमा बीजयुगञ्चादौ चामुण्डाबीजयुग्मकम् ।
कालि कालि पदञ्चोक्त्वा खादयद्वितयं ततः ।।५२।।
वशीकुरु महासत्वानादिद्वन्द्वं पुनर्वदेत् ।
वह्निजाया ततः प्रोक्तो बलिमन्त्रः सुखावहः ।।५३।।

बलिमन्त्र है—उमाबीज (ह्रीं) द्वय, कालीद्वय, 'नि' कहकर खादयद्वय, तदनन्तर वशीकुरु महासत्वान् तथा ह्रींद्वय पुनः कहे। तदनन्तर वह्निजाया 'स्वाहा' कहे। यह सुखप्रद बलिमन्त्र है।।५२-५३।।

उमाबीजं हल्लेखाबीजम्। चामुण्डाबीजं कालीबीजम्। तथा च 'ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं कालि कालि खादय खादय वशीकुरु महासत्वान् ह्रीं ह्रीं स्वाहा'।।५४।।

उमाबीज ह्रीं। चामुण्डा बीज—क्रीं। अतः मन्त्रोद्धार होता है—ह्रीं ह्रीं क्रीं क्रीं कालि कालि खादय खादय वशीकुरु महासत्वान् ह्रीं ह्रीं स्वाहा।।५४।।

तथा—

एनाजिनं परीधाय उपविश्य निजाङ्गने ।
आत्मानं घोररूपञ्च चिन्तयित्वा समाहितः ।।५५।।
अङ्गारकदिने चैव निन्दितासु तिथिस्वपि ।
पूजितं खड्गमादाय निशीथे बलिमाहरेत् ।।५६।।

और भी कहा है—मृगचर्म पहनकर अपने आँगन में बैठकर स्वयं का चिन्तन घोररूप में करके समाहित हो मंगलवार को निन्दित रिक्ता आदि तिथियों में रात्रि में पूजित खड्ग से बलि प्रदान करना चाहिये।।५५-५६।।

प्रहारशोणितञ्चास्य दद्याद्देव्यै यथाविधि ।
अच्छेद्याभेद्यकाय स्याद्रिपुणां नात्र संशयः ।।५७।।

खड्ग-प्रहारजनित शोणित को देवी को अर्पित करने से साधक शत्रुगण के सम्मुख अच्छेद्य देह तथा अभेद्य देह हो जाता है, यह निःसंदिग्ध है।।५७।।

अथ मन्त्रान्तरम्—

मायाबीजं समुद्धृत्य रमाबीजं ततः परम्।
कात्यायनीपदं ङेन्तं वह्नेर्भार्या ततः परम्।
अष्टाक्षरी महाविद्या सर्वकामफलप्रदा ॥५८॥

अब मन्त्रान्तर कहते हैं—मायाबीज तथा रमाबीज का उद्धार करके उसके पश्चात् चतुर्थी विभक्त्यन्त्य कात्यायनी अर्थात् 'कात्यायन्यै' तत्पश्चात् वह्निभार्या (स्वाहा) लगाये। यह आठ अक्षरों की विद्या सर्वकामफलप्रदा है।।५८।।

तेन ह्रीं श्रीं कात्यायन्यै स्वाहा इति सिद्धम्। ध्यानपूजादिकं सर्वं पूर्ववच्च समाचरेत्॥५९॥

इति कात्यायनीकल्पः

मन्त्रोद्धार होता है—ह्रीं श्रीं कात्यायन्यै स्वाहा। इसका ध्यान पूजादि सब पूर्ववत् करना चाहिये।।५९।।

अथ ब्रह्मश्रीमन्त्रः

यथा—ह्रीं नमो ब्रह्मश्रीः राजिते राजपूजिते जये विजये गौरि गान्धारि त्रिभुवनवशङ्करि सर्वलोकवशङ्करि सर्वस्त्रीपुरुषवशङ्करि सुयुद्धदुर्घोररावे ह्रीं स्वाहा॥१॥

मूलोक्त ब्रह्मश्री मन्त्र स्पष्ट है।।१।।

अङ्गन्यासस्तु राजिते राजपूजिते हृदयाय नमः। जये विजये गौरि गान्धारि शिरसे स्वाहा। त्रिभुवनवशङ्करि शिखायै वषट्। सर्वलोकवशङ्करि कवचाय हुं। सर्वस्त्रीवशङ्करि नेत्रत्रयाय वौषट्। सुयुद्धदुर्घोररावे ह्रीं स्वाहा अस्त्राय फट्॥२॥

मूलोक्त मन्त्रों से अंगन्यास करना चाहिये।।२।।

ततो ध्यानम्—

अविकलशशिराजन्मौलिराबद्धपाशा-
ङ्कुशरुचिरकराब्जा बन्धुजीवारुणाङ्गी।
अमरनिकरवन्द्या त्रीक्षणाशोणलेपां
शुककुसुमयता स्यात्सम्पदे पार्वती वः॥

अङ्गैर्मातृभिर्लोकपालैरस्यास्त्रीण्येवावरणानि। पुरश्चरणमयुतजपः। पायसेन दशांशहोमः। मधुरत्रययुतैस्तिलतण्डुलैर्लवणैर्मधुरफलैर्वा दिनत्रयं त्रिस-

हस्त्रहोमः। प्रातःकाले सूर्यमण्डलस्थां देवीं सञ्चिन्त्याष्टोत्तरशतं जपन् त्रिभुवनं वशयति॥३॥

इति ब्रह्मश्रीमन्त्रप्रकरणम्

अविकल शशि-विराजित मौली, मनोहर करपद्म में पाश तथा अंकुशधारिणी, बंधूक के समान अंग वाली (अरुण वर्ण वाली), देवों से वन्दनीया, त्रिनेत्रा, रक्तवर्ण वस्त्र जो रक्तवर्ण लेप से युक्त है, धारिणी, अंशुक कुसुम के आभरण से भूषिता पार्वती तुम्हारी सम्पत्ति की हेतु हों।

इनके अंग द्वारा, मातृकावर्ण द्वारा तथा लोकपालगण द्वारा तीन आवरण की पूजा करे। पुरश्चरण १०००० जप है। पायस से दशांश १००० होम करे। मधुरत्रययुक्त तिल, लवण अथवा मधुर फल से तीन दिन में तीन हजार होम करे। प्रात:काल में सूर्यमण्डल- स्थिता देवी का चिन्तन करके (पुरश्चरणोपरान्त) १०८ बार जप करके त्रिभुवन को वशीभूत कर सकता है।।३।।

अथ राजमुखीमन्त्रः

स तु द्विठत्वाद्विंशदक्षरः। यथा 'ॐ राजमुखि वश्यमुखि ह्रीं ह्रीं क्लीं देवि देवि महादेवि देवाधिदेवि सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा'॥४॥

राजमुखी मन्त्र यहाँ कहा गया है, जो ४२ अक्षरों वाला है।।४।।

अङ्गन्यासस्तु—'ॐ राजमुखि हृदयाय नमः। ॐ वज्रमुखि ह्रीं ह्रीं क्लीं शिरसे स्वाहा। ॐ देवि देवि शिखायै वषट्। ॐ महादेवि कवचाय हुं। ॐ देवाधिदेवि नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ सर्वजनस्य मुखं मम वशं कुरु कुरु स्वाहा अस्त्राय फट्।' सर्वं ब्रह्मश्रीमनोरिव। जपादौ सर्वजनस्थाने साध्यनाम देयमिति॥५॥

यहाँ अंगन्यास कहा है, जो स्पष्ट है। शेष पूजाविधान ब्रह्मश्री प्रकरण के अनुसार करना चाहिये। जप में 'ॐ सर्वजनस्य' के स्थान पर जिसे वश में करना है, उसका नाम लेना चाहिये।।५।।

अथ ज्वालामालिनी

यथा ॐ नमो भगवति ज्वालामालिनि गृध्रगणपरिवृते हुं फट् स्वाहा॥६॥

यह ज्वालामालिनी का मन्त्र है।।६।।

अस्याः कराङ्गन्यासौ—ॐ नमो अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ भगवति तर्जनीभ्यां

स्वाहा। ॐ ज्वालामालिनि मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ गृध्रगणपरिवृते अनामिकाभ्यां हुं। ॐ हुं फट् कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु॥७॥

मूलोक्त मन्त्रों से करङ्गन्यास करे। हृदयादि में अंगन्यास भी इसी प्रकार करे।।७।।

अभुक्त्वा नियतश्चैव जपेन्मन्त्री जपाज्जयी।
जपेदष्टसहस्रन्तु त्रयोविंशतिवासराम्॥८॥
प्रत्यहं साधनं सिद्धं ददाति च न संशयः।
स्मृतिमात्रेण वै मन्त्री रिपून् सर्वान् विनाशयेत्॥९॥

मन्त्र का साधक विना भोजन किये नियत संख्या में जप करे। इससे जयी होता है। २३ दिन में आठ हजार जप करने से जयी होता है। देवी उसे नित्य सिद्ध साधन प्रदान करती है। सिद्ध हो जाने पर मन्त्र के स्मरणमात्र से शत्रु का विनाश होता है।।८-९।।

फेत्कारीये—'ॐ ठं ठां ठिं ठीं ठुं ठूं ठें ठैं ठों ठौं ठं ठः अमुकं गृह्ण गृह्ण हूं ठं ठं'॥१०॥

अनेन मन्त्रेण श्रृगालास्थिमयं कीलकं पञ्चाङ्गुलं सहस्रेणाभिमन्त्र्य यस्य गृहे निखनेत्, यस्य नाम्ना श्मशाने वा निखनेत् स उन्मत्तो भवति॥११॥

फेत्कारी तन्त्रोक्त उपरोक्त मन्त्र से १००० बार श्रृगाल की पाँच अंगुल की हड्डी को अभिमन्त्रित करके जिसके घर में गाड़ दिया जाय अथवा जिसके नाम से श्मशान में गाड़ा जाय, वह उन्मत्त हो जाता है।।१०-११।।

'ॐ डं डां डि डीं डुं डूं डें डैं डों डौं डं डः अमुकं गृह्ण गृह्ण हुं ठं ठः।' अनेन मन्त्रेण मनुष्यास्थिमयं कीलकं वितस्तिप्रमाणं सहस्रेणाभिमन्त्र्य यस्य गृहे निखनेत् यस्य नाम्ना श्मशाने वा निखनेत् तस्य समस्तपरिवारः नश्यति। उद्धृते शान्तिः॥१२॥

उपर्युक्त मन्त्र से एक वित्ता की मनुष्य की अस्थि लेकर उसे इस मन्त्र से १००० बार अभिमन्त्रित करे। जिसके घर में यह गाड़ा जायेगा अथवा जिसका नाम लेकर श्मशान में गाड़ा जायेगा उसका समस्त परिवार नष्ट हो जाता है। इस कील को उखाड़ देने पर शान्ति हो जाती है।।१२।।

शान्तिमन्त्रो यथा—ॐ सः सं सं हः अमुकस्य शान्तिर्भवतु स्वाहा। अनेन मन्त्रेण घृतमधुसिक्तं क्षीरं जुहुयात् पिवेच्च तेन शान्तिर्भवति॥१३॥

इस मन्त्र से घृत-मधु मिली खीर से हवन करे तथा पान करे तो शान्ति होती है।।१३।।

'ॐ ढं ढां ढिं ढीं ढुं ढूं ढें ढैं ढों ढौं ढं ढः अमुकं मारय मारय ठं ठः' अनेन गर्दभास्थिमयं कीलकं त्रयोदशाङ्गुलं सहस्रेणाभिमन्त्रितं यस्य नाम्ना चितामध्ये निखनेत् स ज्वरेण विनश्यति॥१४॥

१००० बार इस उपर्युक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित १३ अंगुल की गर्दभ की हड्डी जिसका नाम लेकर चितामध्य में गाड़ी जायेगी, वह ज्वर से नष्ट हो जायेगा।।१४।।

'ॐ लं लां लिं लीं लुं लूं लें लैं लों लौं लं लः अमुकं नाशय नाशय ठं ठः'। अनेन खदिरकाष्ठमयं कीलकं षडङ्गुलं सहस्रेनाभिमन्त्र्य यस्य नाम्ना श्मशाने गृहे वा निखनेत् तस्य सर्वं नाशयति। सर्वत्र शान्तिं पूर्ववत्॥१५॥

१००० बार मूलोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित छः अंगुल की खदिर की लकड़ी जिसका नाम लेकर श्मशान अथवा शत्रुगृह में गाड़ दी जायेगी, उसका सब कुछ नष्ट हो जायेगा। इन सभी प्रयोगों में यदि शान्ति करनी हो तब पूर्वोक्त श्लोक १२ के विधान से करनी चाहिये।।१५।।

अथ निगडबन्धनमोक्षम्

यथा—ॐ नमः ऋते निर्ऋते तिग्मतेजो यन्मयं विव्रेता बन्धमेतं यमेन दत्तं तत्सम्विदानोत्तमे नाके अघोरोऽवैरम्।

अस्य निगडबन्धनमन्त्रस्य प्रजापतिर्ऋषिर्निर्ऋतिर्देवता त्रिष्टुप्छन्दो बन्धादि-व्यसनपरिहारे विनियोगः॥१६॥

अब निगडबन्धन मोक्ष मन्त्र कहते हैं। ॐ नमः' से अघोरोऽवैरं' पर्यन्त मन्त्र का स्वरूप है। इसके प्रजापति ऋषि, निर्ऋति देवता तथा त्रिष्टुप्छन्द है। बन्धादि व्यसन के परिहारार्थ इसका विनियोग किया जाता है।।१६।।

एवं ऋष्यादिकं न्यस्य अयुतं प्रजपेत् सुधीः।
ततो बन्धाद्व्यसनाच्च मुक्तो भवति नान्यथा॥१७॥

इति निगडबन्धनमोक्षप्रकरणम्

इस प्रकार न्यास करके सुधी साधक १००० जप करे तो वह बन्धन तथा व्यसन से छूट जाता है; यह वचन अन्यथा नहीं होता।।१७।।

अथ चिटिमन्त्रः

यथा—

तारं चिटिद्वयं ब्रूयाच्चाण्डालि च ततः परम्।
महदाद्यां ततो ब्रूयादमुकं मे ततः परम्॥१८॥

वशमानय ठद्वन्द्वं चिटिमन्त्रे उदाहृतः।
सप्तभिर्दिवसैर्भूपान् वशयेद्विधिनामुना ॥१९॥

तथा च—ॐ चिटि चिटि चाण्डालि महाचाण्डालि अमुकं मे वशमानय स्वाहा। अत्र प्रणवानन्तरवर्णचतुष्कं तृतीयस्वरवदिति बोध्यम्।

अब चिटिमन्त्र कहा जाता है। पहले चिटिद्वय कहे। तदनन्तर चाण्डालि महाचाण्डालि, तदनन्तर अमुकं कहे। तदनन्तर वशमानय एवं ठद्वय (स्वाहा) कहे। यह चिटिमन्त्र निष्पन्न है। इसके प्रभाव से सात दिनों में राजा भी वश में हो जाता है। मन्त्रोद्धार इस प्रकार है—ॐ चिटि चिटि चाण्डालि महाचाण्डालि अमुकं मे वशमानय स्वाहा। यहाँ प्रणव के अनन्तर चार वर्ण तृतीय स्वरवत् हैं।।१८-१९।।

विधिमाह—

विलिख्य तालपत्रे तं साध्यनाम्ना विदर्भितम्।
निक्षिप्य क्षीरसंमिश्रो जले तत् क्वाथयेन्निशि ॥२०॥
वश्यो भवति साध्यश्च नात्र कार्याविचारणा।

अब इसकी विधि कहते हैं—साध्य नाम से विदर्भित इस मन्त्र को तालपत्र पर लिखकर क्षीर-मिश्रित जल में फेंककर रात्रि में उसे अग्नि पर चढ़ाकर काढ़ा बनाने से साध्य वश में होता है, इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये।।२०।।

तालपत्रे लिखित्वेनं भद्रकालीगृहे खनेत्।
वश्याय सर्वजन्तूनां प्रयोगोऽयमुदाहृतः ॥२१॥

समस्त प्राणियों को वश में करने के लिये इसे तालपत्र पर लिखकर भद्रकाली के मन्दिर में गाड़ना चाहिये। यह प्रयोग कहा गया।।२१।।

विदर्भितमिति। द्वे द्वे मन्त्राक्षरे यत्र एकैकं साध्यनामम्। विदर्भितन्तु तत् प्रोक्तं सर्वरक्षाकरं परम् इति रीत्या विदर्भितमित्यर्थः॥२२॥

विदर्भित = दो मन्त्राक्षर लिखकर एक वर्ण साध्य के नाम का लिखे, पुनः दो मन्त्राक्षर लिखकर साध्य नाम का अगला वर्ण लिखना चाहिये। इसे सर्वरक्षाकर विदर्भित कहते हैं।।२२।।

अथ गरुड़मन्त्रः

यथा निबन्धे—

संवर्त्तको नेत्रयुतः पार्श्वस्तारोऽग्निसुन्दरी।
गारुडो मनुराख्यातो विषद्वयविनाशकः ॥२३॥

संवर्त्तकः क्षकारः। पार्श्व पकारः। तेन क्षिप ॐ स्वाहेति मन्त्रः।

अब गरुड़-मन्त्र कहते हैं। निबन्ध में कहा है कि नेत्रयुक्त (इ) संवर्त्तक (क्ष) पार्श्व (प) उससे 'क्षिप' हुआ। तत्पश्चात् तार (ॐ) एवं अग्निसुन्दरी (स्वाहा) कहे। यह स्थावर तथा जंगम विष का नाशक गरुड मन्त्र कहा गया है। संवर्त्तक = क्ष। पार्श्व = प। मन्त्रोद्धार होता है—क्षिप ॐ स्वाहा।।२३।।

तथा तत्रैव—

स्मरन् गरुडमात्मानं मन्त्रमेनं जपेन्नरः।
विषमालोकनेनैव हन्यान्नागकुलोद्भवम् ॥२४॥

वहाँ यह भी कहते हैं कि जो गरुड का ध्यान करते हुये इस मन्त्र को जपता है, उसके देखने-मात्र से ही नागविष का नाश हो जाता है।।२४।।

अस्य पूजा—प्रातःकृत्यादि वैष्णवोक्तपीठमन्वन्तं विन्यस्य ऋष्यादीन् न्यसेत्। रुद्र ऋषिः पङ्क्तिच्छन्दः पक्षीन्द्रो देवता ॐ बीजं स्वाहा शक्तिः॥२५॥

प्रात:कृत्य से पीठमन्त्र-पर्यन्त पूजन करके (विष्णु प्रकरणोक्त विधान से जो इस ग्रन्थ में है) ऋष्यादि न्यास करे। इस मन्त्र के रुद्र ऋषि, पंक्ति छन्द, पक्षीन्द्र देवता, ॐ बीज तथा स्वाहा शक्ति है।

ऋष्यादि न्यास इस प्रकार किया जाता है—अस्य श्रीगरुडमन्त्रस्य रुद्र ऋषि: पंक्तिच्छन्द: पक्षीन्द्रो देवता ॐ बीजं स्वाहा शक्ति: विषद्वयविनाशे विनियोग:। मस्तके—ॐ रुद्राय ऋषये नम:। मुखे—ॐ पंक्तिछन्दसे नम:। हृदये—ॐ पक्षीन्द्रदेवतायै नम:। गुह्ये—ॐ ॐ बीजाय नम:। पादद्वये—ॐ स्वाहा शक्तये नम:।।२५।।

ततः कराङ्गन्यासौ। ज्वलज्वल महामति स्वाहा—अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। गरुड-चूडामणे स्वाहा तर्जनीभ्यां स्वाहा। गरुड शिखि शिखे स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट्। गरुड प्रभञ्ज प्रभञ्ज प्रभेदन प्रभेदन विद्रावय विद्रावय विमर्दय विमर्दय स्वाहा अनामिकाभ्यां हुं। उग्ररूपधर सर्वविषहर भीषण भीषण स्वाहा कनिष्ठाभ्यां वौषट्। सर्वं दह दह भस्मीकुरु कुरु स्वाहा करतलकर-पृष्ठाभ्यां फट्। एवं हृदयादिषु। ततः करद्वयाङ्गुष्ठादिपञ्चाङ्गुलीषु पदकटिहृदय-मुखमूर्द्ध्वसु च मन्त्रपञ्चवर्णान् न्यसेत्॥२६॥

अब कराङ्गन्यास कहते हैं। ॐ ज्वल ज्वल महामति स्वाहा अंगुष्ठाभ्यां नम:। श्रीगरुड चूडामणे स्वाहा—तर्जनीभ्यां स्वाहा। ॐ गरुड शिखि शिखे स्वाहा मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ गरुड प्रभञ्ज प्रभञ्ज प्रभेदन प्रभेदन विद्रावय विद्रावय विमर्दय विमर्दय स्वाहा

अनामिकाभ्यां हुं। ॐ उग्ररूपधर सर्वविषहर भीषय भीषय स्वाहा कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ सर्वं दह दह भस्मीकुरु कुरु स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

इसी प्रकार हृदयादि में भी अंगन्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् करद्रय की अंगुष्ठादि पाँच अंगुलियों, पाद, कटि, हृदय, मुख तथा मस्तक में मन्त्र का पञ्चवर्ण-न्यास करना चाहिये। जैसे अंगूठा—ॐ क्षिं नमः। तर्जनी—ॐ पं नमः। मध्यमा—ॐ ॐ नमः। अनामा—ॐ स्वां नमः। कनिष्ठा—ॐ हां नमः। पाद—ॐ क्षिं नमः। कटि—ॐ पं नमः। हृदय—ॐ ॐ नमः। मुख—ॐ स्वां नमः। मस्तक—ॐ हां नमः।।२६।।

ततो ध्यानम्—

वर्मान्तर्वह्नियुग्माक्षरकमलगतं मञ्चभूताद्यवर्णं
क्लृप्ताकल्पं फणीन्द्रैरभयवरकरं पद्मनेत्रं सुवक्त्रम्।
दुष्टाहिच्छेदि तुण्डं स्मरदखिलविषप्रोक्षणं प्राणभूतं
प्राणाग्रण्यं त्रिवेदीतनुममृतमयं पक्षिराजं भजेऽहम्॥२७॥

तदनन्तर इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—वर्म = हुंकार अन्तर्गत वह्नि (र) द्रय स्थित मंचभूत आद्य वर्णयुक्त कमल पर आसीन, फणीन्द्रों के आभूषण से भूषित, अभय वरदहस्त, कमलनेत्र, सुवदन, दुष्ट सर्प छेदनकारी, तुण्डधर, स्मरण करने वालों के सभी विष का नाश करने वाले, प्राणभूत, प्राणाग्रगण्य, वेदत्रय देहधारी अमृतमय पक्षिराज का मैं भजन करता हूँ।।२७।।

अस्यार्थः—वर्म कवचं, तस्यान्तर्मध्ये, वह्नियुग्माक्षरं वेदद्वयं यत्र कमले, तत्र स्थितम्। मञ्चभूतौ खट्वाकारघटकौ आद्यवर्णौ क्षकारेकारौ यस्य। तथा च उपरि रेफद्वयं अधः क्षकारेकारौ खट्वाकारतया कर्णिकाया-मित्यर्थः॥२८॥

अर्थात् कवच (हुं) उसके अन्तः अर्थात् मध्य में वह्नि युग्माक्षर रेफद्वय जो कमल है, उस कमल-स्थित मञ्चभूत घटाकार का घटक जो आद्यवर्ण 'क्ष' तथा 'ई' रूप जो कमल है, उस पर समासीन। अतः ऊपर रेफद्वय तथा अधः क्षकार तथा ई खट्वाकार रूप से कर्णिका में अवस्थित अर्थात् पद्म की कर्णिका के हुंकार के मध्य ऊपर रकारद्वय तथा नीचे क्षकार तथा ईकार खट्वाकार में स्थित है, उस पर आसीन।।२८।।

एवं ध्यानं कृत्वा मानसैः सम्पूज्यार्घ्यं संस्थाप्य वैष्णवोक्तपीठमन्वन्त-पीठपूजां कृत्वा पुनर्ध्यात्वावाह्य हुङ्कारगर्भगतखट्वाकारस्थितरेफद्वय-क्षकारेकारवर्णचतुष्टययुक्तकर्णिके स्वरद्वन्द्वाष्टककेशरे कचटतपयशलाष्ट-वर्गयुक्ताष्टदले प्रमाणान्तरपरिप्राप्ते मातृका पद्मेपक्षिराजं पूजयेत्॥२९॥

इस प्रकार ध्यान करके मानसोपचार पूजन, विशेषार्घ्य-स्थापन (इस ग्रन्थ में), विष्णु प्रकरणोक्त पीठमन्त्र-पर्यन्त पीठपूजा, पुन: ध्यान, आवाहन करके प्रमाणान्तर प्राप्त हुङ्कार के गर्भगत खट्वा के आकार में स्थित रेफद्वय तथा क्षकार वर्णचतुष्टय युक्त स्वरद्वन्द्वाष्टक केशर में क च ट त प य श तथा ल रूप आठ वर्गविशिष्ट दलयुक्त मातृका पद्म में पक्षिराज का पूजन करना चाहिये।।२९।।

ततः आवरणपूजा। अङ्गैः प्रथमावरण्। अनन्तवासुकितक्षककर्कोटकपद्म-महापद्मशङ्खकुलिकाष्टनागैर्द्वितीयम्। इन्द्रादिभिस्तृतीयम्।।३०।।

अब आवरण पूजा करे। षडङ्ग से प्रथम आवरण पूजन करे। अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शङ्ख, कुलिक—इन आठ नागों से दूसरा आवरण पूजन करे। इन्द्रादि लोकपाल द्वारा तृतीयावरण पूजन करे।।३०।।

पुरश्चरणं पञ्चलक्षजपः। अथवा मूलमन्त्रयुतं प्रत्येकमक्षरसंख्यसहस्रं मालामन्त्रं जपेत्। घृताक्तैः कृष्णपुष्पैर्दशांशं होमः। मालामन्त्रो यथा—ॐ नमो भगवते गरुडाय कालाग्निवर्णाय एह्येहि कालानललोलजिह्वाय पातय पातय मोहय मोहय विद्रावय विद्रावय भ्रम भ्रम भ्रामय भ्रामय हन हन दह दह पच पच हुं फट् स्वाहा।।३१।।

इस मन्त्र का पुरश्चरण पाँच लाख जप अथवा मूल मन्त्र का दस हजार अथवा पाँच हजार की संख्या में मूलोक्त मालामन्त्र के जप से सम्पन्न होता है। घृत से सने कृष्ण वर्ण पुष्प से जप का दशमांश हवन करने का भी विधान है।।३१।।

क्षीराब्धिमध्ये तत्रोत्पलपूर्वोक्तमातृकाक्षरमयममृतात्मकं श्वेतपद्मं विचिन्त्य तत्पद्मे दष्टं विचिन्त्य दष्टस्य मूर्धवक्त्रहृदयनाभिषु रं हं ठं वं इति बीज-चतुष्टयममृतस्राविात्वेन विचिन्त्य दष्टशिरस उपरि चन्द्रकान्तधवलं सुधामयं गरुडं ध्यात्वा स्वहस्तस्थितामृतपूरितशङ्खनिर्गलदमृतधारया दष्टं प्लावयन्तं गरुडं ध्यायन् मन्त्रं जपेत्। एवं ध्यानमात्रेण दष्टो निर्विषं समुत्थाय चिरं जीवेत्।।३२।।

क्षीरसमुद्र के मध्य उस समुद्र में उत्पन्न पूर्वोक्त मातृका वर्णमय अमृतरूप श्वेत कमल का ध्यान करके उस पद्म में सांप से डसे व्यक्ति का चिन्तन करके उस सर्प से डसे व्यक्ति के मस्तक, मुख, हृदय तथा नाभि में 'रं हं ठं वं' इन चार बीजों की भावना अमृत-क्षरणकारी रूप से करके (अर्थात् इन चार बीजों से अमृत क्षरित होकर सांप से डसे व्यक्ति के मस्तक, मुख, हृदय तथा नाभि में पड़ रहा है) उस व्यक्ति के मस्तक पर चन्द्रकान्तमणि के समान श्वेत वर्ण गरुड़ का ध्यान करके अपने हाथ

में स्थित अमृत जलपूरित शंख से अमृतधारा की भावना करके सांप से डसे व्यक्ति पर छोड़ते हुये अमृत प्लावी गरुड़ का ध्यान करते-करते मन्त्र जप करे। इस ध्यानमात्र से सर्पदष्ट व्यक्ति निर्विष होकर दीर्घकाल-पर्यन्त जीवित रहता है।।३२।।

'ॐ नमो भगवते गरुडाय महेन्द्ररूपाय पर्वतशिखराकाररूपाय संहर संहर मोचय मोचय चालय चालय पातय पातय निर्विष निर्विष विषमप्यमृतं चाहाररूपसदृशमिदं प्रज्ञापयामि स्वाहा नमः लल लल रव रव हन हन क्षिप क्षिप हर हर स्वाहा'। अनेन गरुडमन्त्रेण मन्त्री गरुडो भूत्वा अभिमन्त्रितस्थावरविषं भक्षितमपि अमृतं करोति किमुतान्नपानादिकम्।।३३।।

ऊपर जो गरुड़ मन्त्र कहा गया है, इसके द्वारा साधक के गरुड़रूप होकर अभिमन्त्रित स्थाव विष खा लेने पर भी विपरीत प्रभाव नहीं होता; अपितु वह उसके लिये अमृतरूप हो जाता है। अन्न-पानादि तो अमृत हो ही जाता है, इसमें क्या अधिक कहें?।।३३।।

अथ गरुडस्तवः

सुपर्णं वैनतेयञ्च नागारिं नागभूषणम्।
जितान्तकं विषारिञ्च अजितं कश्यपनन्दनम्।।३४।।
द्वादशैतानि नामानि गरुडस्य महात्मनः।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय स्नाने वा शयनेऽपि वा।।३५।।
विषं नाक्रमते तस्य न च हिंसन्ति हिंसकाः।
संग्रामे व्यवहारे च विजयस्तस्य जायते।
बन्धनान्मुक्तिमायाति यात्रायां सिद्धिरेव च।।३६।।

इति गरुडस्तवः।

इति गरुडप्रकरणम्

अव गरुड़ स्तव कहते हैं। सुपर्ण, वैनतेय, नागारि, नागभूषण, जितान्तक (मृत्युजयी), विषारि, अजित, विश्वरूपी, गरुड़, पतंगश्रेष्ठ, तार्क्ष्य, कश्यपनन्दन— यह बारह नाम गरुड़ के हैं। जो व्यक्ति प्रात: शय्या से उठकर स्नानकाल में अथवा शयनकाल में इनका पाठ करता है, उसपर विष का आक्रमण नहीं होता। हिंसक उसकी हिंसा नहीं करते। संग्राम तथा लोक-व्यवहार में वह विजयी होता है। उसे बन्धन से मुक्ति तथा यात्रा में सिद्धि प्राप्त होती है।।३४-३६।।

अथ विषहराग्निमन्त्रः। स च विसर्गबिन्दुयुक्तखकारद्वयरूपः। तेन खः खं इति।।३७।।

अब विषहर अग्निमन्त्र कहा जाता है। यह विसर्ग एवं विन्दुयुक्त खकार है। मन्त्रोद्धार होता है—ख: खं।।३७।।

अस्य पूजा—प्रात:कृत्यादिकं कृत्वा ऋष्यादीन्न्यसेत्। अग्निर्ऋषिः पङ्क्तिच्छन्दः अग्निर्देवता खकारो बीजं बिन्दुः शक्तिः। कराङ्गन्यासौ तु दीर्घषट्कयुता खकारेण। ध्यानार्चने शारदोक्तवैश्वानरमन्त्रवत्।।३८।।

प्रात:कृत्यादि सम्पन्न करके ऋष्यादि न्यास करे। इसके अग्नि ऋषि, पंक्ति छन्द, अग्नि देवता, खकार बीज एवं बिन्दु शक्ति है। षट् दीर्घयुक्त खकार द्वारा कराङ्गन्यास करे। ध्यानपूजा शारदातिलक में वैश्वानर मन्त्र प्रसंग देखकर तदनुरूप करना चाहिये।।३८।।

पुरश्चरणं द्वादशसहस्रजपः। आज्येन दशांशहोमः। स्ववामहस्ततले पञ्चदलं श्वेतपद्मं ध्यात्वा तत्कर्णिकायां सविसर्गं खकारं तत्पञ्चदलेषु सानुस्वारं खकारं ध्यात्वा रक्तवर्णमयुतमयं विचिन्त्य तत्स्पर्शात् सर्वं विषं नाशयेत्। इत्थम्भूतकरेण विषरोगग्रस्तं स्पृष्ट्वाऽष्टसहस्रं जपेत्। सर्ववृश्चिकादिविष-ज्वालाजीर्णविसर्पदन्तादिशूलनेत्रादिरोगसर्वं वेदनानाञ्च ततः प्रशान्ति-र्भवति। इति विषहराग्निमन्त्रः।।३९।।

इस मन्त्र का पुरश्चरण १२००० जप से होता है। घृत द्वारा १२०० होम करे। अपने वाम हथेली पर पञ्चदल वाले श्वेत कमल का ध्यान करके उसके कर्णिका में सविसर्ग ख (ख:), उसके पाँच दलों में अनुस्वारयुक्त खकार (खं) का ध्यान करके उसे रक्तवर्ण की भावना करके स्पर्श कराने से (उस हथेली का स्पर्श कराने से) समस्त विष का नाश हो जाता है। ऐसी हथेली से विषग्रस्त का स्पर्श करके ८००० जप करना चाहिये। इससे सांप-बिच्छू का विष, जीर्ण विसर्ग रोग, दाँत का दर्द, नेत्ररोग तथा वेदना दूर हो जाती है।।३९।।

अथ वृश्चिकदंशहरमन्त्राः

ॐ स र ह स्फूः। ॐ हिलि मिलि चिलि ह स्फूः। ॐ हिलि हिलि चिलि ह स्फूः। ब्रह्मणे फूः। सर्वेभ्यो देवेभ्य स्फूः।।४०।।

यह विषहर (वृश्चिक विषहर) मन्त्र है।।४०।।

अथ मूषिकविषहरमन्त्रः

ॐ गैं कां ठः।।४१।।

मूषिक विषनाशक मन्त्र—ॐ सरणे फूः असरणे विसरणे फूः। श्वेत सरसों पर यह मन्त्र फूँककर फेंकने से मूषिक विष नष्ट हो जाते हैं।।४१।।

दुर्गायाः लूताविषहरमन्त्रः

ॐ ह्रां ह्रीं हूं जकृत ॐ स्वाहा गरुड हूं फट्॥४२॥

विष्णोः सर्वकीटजातिविषहरमन्त्रः

ॐ नमो भगवते विष्णवे सर सर हन हन हूं फट् स्वाहा॥४३॥

अथ सुखप्रसवमन्त्रः

ॐ मन्मथ मन्मथ वाहि वाहि स्वोदर मुञ्च मुञ्च स्वाहा। मुक्ता पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः। मुक्तं सर्वभयाद्गर्भ एह्येहि मारीच मारीच स्वाहा॥४४॥

एतयोरन्यतरेणाष्टवारं जलमभिमन्त्र्य देयम्। तत् पीत्वा सुखप्रसवा भवति॥४५॥

लूता के विष का हरण करने वाला दुर्गा का मन्त्र एवं समस्त कीटों के विष का हरण करने वाला विष्णु मन्त्र मूल में स्पष्ट है।

मूलोक्त सुखप्रसव मन्त्र से आठ वार जल अभिमन्त्रित करके पिलाने से सुखपूर्वक प्रसव सम्पन्न होता है।।४२-४५।।

अथ हनुमत्कल्पः

यथा गरुडतन्त्रे देवीश्वरसंवादे—

शङ्कर उवाच

शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि सावधानावधारय।
हनुमत् साधनं पुण्यं महापातकनाशनम्॥४६॥

गरुड़तन्त्र में देवीश्वर संवादरूप हनुमत् कल्प कहते हैं। शंकर कहते हैं—हे देवि! महापातक-नाशक हनुमान मन्त्र को कहता हूँ। सावधान होकर श्रवण करो। यह महापातक का भी नाश करने वाला है।।४६।।

वियत् सलवकं हनुमते च तदनन्तरम्।
रुद्रात्मकाय कवचं फडिति द्वादशाक्षरः॥४७॥
एतन्मन्त्रं समाख्यातं गोपनीयं प्रयत्नतः।
तव स्नेहेन भक्त्या च दासोऽस्मि तव सुन्दरि॥४८॥
एतन्मन्त्रश्चार्जुनाय प्रदत्तं हरिणा पुरा।
जयेन साधनं कृत्वा जितं सर्वं चराचरम्॥४९॥
नदीकूले विष्णुगृहे निर्जने पर्वते वने।
एकाग्रचित्तमादाय साधयेत् साधनं महत्॥५०॥

सलवक् (अनुस्वारयुक्त) वियत् (ह), हनुमते तदनन्तर रुद्रात्मकाय कवच (हुं) फट्। यह १२ अक्षरों का हनुमत् मन्त्र है। यह मन्त्र मेरे द्वारा कहा गया है, जो यत्नपूर्वक गोपनीय है। हे सुन्दरि! तुम्हारे स्नेह तथा भक्ति के कारण मैंने इसे कहा है; क्योंकि मैं तुम्हारा दास हूँ। प्राचीन काल में हरि ने अर्जुन को यह मन्त्र दिया था। जय (अर्जुन) ने इस मन्त्र का साधन करके चराचर जगत् को जीत लिया था। नदी के किनारे, विष्णुमन्दिर में, निर्जन में, पर्वत, वन में, एकाग्र होकर इस महान् मन्त्र की साधना करनी चाहिये।।४७-५०।।

अस्यार्थः—वियत् हकारः। लवोऽनुस्वारः। कवचं पचमस्वरवद् रूपम्। तथा च—हं हनुमतते रुद्रात्मकाय हुं फट् इति मन्त्रः। अत्र हनुमत् शब्दो ह्रस्वाकारमध्यः प्रकृतिरूपत्वात्। अस्य कराङ्गन्यासौ षड्दीर्घभाजादि-बीजेन। तथाच हां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहेत्यादिना च॥५१॥

वियत् = ह। लव = (ं), कवच = हं। अतएव मन्त्रोद्धार होता है = हं हनुमते रुद्रात्मकाय हुं फट्। यहाँ हनुमत् शब्द प्रकृतिस्वरूप होने के कारण उसमें 'नु' ह्रस्व उकार लगा है। दीर्घ ऊकार नहीं लगेगा। इसका कराङ्ग न्यास छः दीर्घयुक्त आदि बीज द्वारा होता है अर्थात् हां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ह्रीं तर्जनीभ्यां स्वाहा इत्यादि मन्त्र से षडङ्ग न्यास किया जाता है।।५१।।

ततो ध्यानम्—

महाशैलं समुत्पाट्य धावन्तं रावणं प्रति।
तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट घोररावं समुत्सृजन्॥५२॥
लाक्षारक्तारुणं रौद्रं कालान्तकयमोपमम्।
ज्वलदग्निस्फुरन्नेत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥५३॥
अङ्गदाद्यैर्महावीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम्।
एवं रूपं हनूमन्तं भावयेत् साधकोत्तमः॥५४॥

विशाल पर्वत उखाड़कर रावण की ओर दौड़ते हुये रे दुष्ट रावण खड़ा रह—इस प्रकार गर्जन करने वाले लाक्षा तथा रक्त के समान अरुण, रौद्र, कालान्तक यम के समान भयानक, जलती अग्नि के समान स्फुरित नेत्र, कोटिसूर्य के समान प्रभायुक्त, अंगदादि महावीरों से वेष्टित रुद्ररूपी हनुमान का साधकगण को धारण करना चाहिये।।५२-५४।।

प्रातः स्नात्वा नदीतीरे उपविश्य कुशासने।
प्राणायामं षडङ्गञ्च मूलेन सकरं न्यसेत्॥५५॥

प्रातःस्नान करके नदीतीर पर कुशा के आसन पर बैठकर प्राणायाम तथा उपरोक्त कराङ्ग न्यास-सहित छः अंग न्यास करना चाहिये।।५५।।

पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा ध्यात्वा रामं ससीतकम्।
ताम्रपात्रे ततः पद्ममष्टपत्रं सकेशरम्।।५६।।
रक्तचन्दनघृष्टेन लिखेत्तस्य शलाकया।
कर्णिकायां लिखेन्मन्त्रं तत्रावाह्य कपिप्रभुम्।।५७।।
कर्णिकायां हनूमन्तं ध्यात्वा पाद्यादिकं ततः।
गन्धपुष्पादिकञ्चैव निवेद्य मूलमन्त्रतः।।५८।।
सुग्रीवं लक्षणञ्चैव अङ्गदं नलनीलकम्।
जामवन्तञ्च कुमुदं केशरिणं दले दले।।५९।।
पूर्वादिक्रमतो देवि पूजयेद् गन्धचन्दनैः।
पवनञ्चाञ्जनाञ्चैव पूजयेद् दक्षवामतः।
दलाग्रेषु कपिभ्योऽपि पुष्पाञ्जल्यष्टकं ततः।।६०।।

आठ बार पुष्पाञ्जलि देकर सीताराम का ध्यान करके ताम्र पात्र में घिसा रक्त चन्दन से शलाका से केशरयुक्त अष्टदल कमल (रक्त कमल) बनाये। कर्णिका में हनुमत् मन्त्र लिखे। उस कर्णिका में कपिप्रभु हनुमान का आवाहन करके ध्यान, तदनन्तर मूल मन्त्र से पाद्यादि गन्ध-पुष्पादि निवेदन करे। हे देवि! सुग्रीव, लक्ष्मण, नल, नील, जाम्बवान्, कुमुद तथा केशरी की एक-एक दल में पूर्वादिक्रम से गन्ध-चन्दनादि से पूजा करे। दाहिने तथा वाम में पवन तथा अंजना का पूजन करे। दल के आगे कर्णिका में आठ बार पुष्पाञ्जलि प्रदान करे।।५६-६०।।

अस्य पुरश्चरणं लक्षजपः। आज्येन दशांशहोमः। जपान्ते महतीं पूजां कुर्यात्।।६१।।

इसका पुरश्चरण एक लाख जप से सम्पन्न होता है। घृत से उसका दशमांश होम किया जाता है। जप समाप्त होने पर महती पूजा करनी चाहिये।।६१।।

सुदृढं साधकं मत्वा निशीथे पवनात्मजः।
सुप्रसन्नस्ततो भूत्वा प्रयाति साधकाग्रतः।।६२।।
यथेप्सितं वरं दत्त्वा साधकाय कपिप्रभुः।
याति स्वमालयं लोके साधको विजयी भवेत्।।६३।।

साधक सुदृढ़ मन से पवननन्दन का जप करे। पवननन्दन प्रसन्न होकर रात्रि में साधक के पास आते हैं। कपिवर हनुमान साधक को इच्छित वर देकर अपने स्थान पर जाते हैं। साधक इस लोक में विजयी हो जाता है।।६२-६३।।

अथैतत् साधनम्। तत्र कराङ्गन्यासौ हां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः इत्यादिना। ततः प्राणायामः। अकारादिषोडशस्वरानुच्चार्य वामेन वायुं पूरयेत्। पञ्च-वर्गानुच्चार्य वायुं कुम्भयेत्। यकारादित्रिवर्गानुच्चार्य दक्षिणेन वायुं रेचयेत्॥६४॥

अब इस मन्त्र का साधन कहते हैं। इस साधन में 'हां अंगुष्ठाभ्यां नमः इत्यादि मन्त्र से कराङ्ग न्यास किया जाता है। तदनन्तर प्राणायाम करना चाहिये अर्थात् अ से अः तक षोडश स्वर द्वारा नासिका (वाम) में वायु खींचे। क च त ट प—इन २५ वर्ण को भावना से जपते हुये कुम्भक करे। यकारादि तीन वर्ग (य र ल व श ष स ह) का उच्चारण करते हुये वायु का रेचन करे।।६४।।

ततो ध्यानम्—

ध्यायेद्रणे हनूमन्तं कपिकोटिसमन्वितम्।
धावन्तं रावणं जेतुं दृष्ट्वा सत्वरमुत्थितम्॥६५॥
लक्ष्मणञ्च महावीरं पतितं रणभूतले।
गुरुञ्च क्रोधमुत्पाद्य गृहीत्वा गुरुपर्वतम्॥६६॥
हाहाकारैः सदर्पैश्च कम्पयन्तं जगत्त्रयम्।
आब्रह्माण्डं समारोप्य कृत्वा भीमं कलेवरम्॥६७॥

तदनन्तर रणभूमि में महावीर ने लक्ष्मण को गिरा देखकर तत्काल उठकर करोड़ों वानरों के साथ प्रचण्ड क्रोध से भारी पर्वत उखाड़कर अपने कलेवर को ब्रह्माण्डव्यापी करके दर्प के साथ हाः हाः स्वर से जगत्त्रय को कम्पित करके रावण को विजित करने के लिये रण में धावमान हनुमान का ध्यान करे।।६५-६७।।

इति ध्यात्वा षट् सहस्रं जपेत्॥६८॥

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्र का ६००० जप करे।।६८।।

अस्य मन्त्रश्च—

स्वबीजं पूर्वमुच्चार्य पवनञ्च ततो वदेत्।
नन्दनञ्च ततो देयं ङेऽवसानेऽनलप्रिया।
दशार्णोऽयं मनुः प्रोक्तो नराणां सुरपादपः॥६९॥

तेन हं पवननन्दनाय स्वाहा इति मन्त्रः।

इस साधन का मन्त्र इस प्रकार है। अपने बीज का प्रथमतः उच्चारण करके उसके पश्चात् पवन तथा नन्दन कहे। तदनन्तर चतुर्थी विभक्त्यन्त पवननन्दनाय तथा अन्त में स्वाहा लिखे। मनुष्यों के लिये कल्पवृक्ष के समान यह १० अक्षरों का मन्त्र कहा गया है। अतएव 'हं पवननन्दनाय नमः' यह मन्त्र स्पष्ट होता है।।६९।।

सप्तमदिवसे दिवरात्रिं जपेत्। ततो महाभयं दत्त्वा त्रिभागशेषायां निशि नियतमागच्छति। साधकोऽपि—

विद्यां वापि धनं वापि राज्यं वा शत्रुनिग्रहम्।
तत्क्षणादेव चाप्नोति सत्यं सत्यं सुनिश्चितम्॥७०॥

इति हनुमत्कल्पः

सातवें दिन इस मन्त्र का दिन-रात जप करे। तदनन्तर महावीर हनुमान महाभय प्रदान करके रात्रि के तीसरे भाग में निश्चय ही आते हैं। यदि साधक भय आदि त्याग करता है तब विद्या अथवा धन अथवा राज्य अथवा शत्रुनिग्रह तत्काल देते हैं। यह सुनिश्चित सत्य है। सत्य है।।७०।।

अथार्द्रपटी यथा—ॐ नमो भगवति चामुण्डे रक्तवाससे अप्रतिहतरूप-पराक्रमे अमुकवधाय विचेतसे स्वाहा इति मन्त्रः॥७१॥

अव आर्द्रपटी मन्त्र कहते हैं। इनका मन्त्र है—ॐ नमो भगवति चामुण्डे रक्त-वाससे अप्रतिहतरूपपराक्रमे अमुकवधाय विचेतसे स्वाहा।।७१।।

आर्द्ररक्तपटेनावृतः नदीतीरे ऊषरभूमौ वा दक्षिणामुख ऊर्ध्वबाहुर्जपेत्। यावत् पटः शुष्यति तावत् प्राणाः शुष्यन्ति शत्रोः। इत्यार्द्रपटी॥७२॥

आर्द्र रक्त वस्त्र से आवृत्त होकर नदी के तीर पर अथवा ऊषर भूमि में दक्षिणमुख तथा ऊर्ध्व बाहु होकर उक्त मन्त्र का जप करे। जब समस्त वस्त्र सूख जाय तो उस समय शत्रु का प्राण भी शुष्क हो जाता है।।७२।।

अथ बेतालसिद्धिः

कुलचूड़ामणौ—

भैरव उवाच

बेतालादिमहासिद्धिः कथं भवति चण्डिके।
तन्मे कथय देवेशि यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति॥७३॥

अब बेतालादि-सिद्धि कहते हैं। कुलचूड़ामणि में भैरव कहते हैं—हे चण्डिके! बेतालादि महासिद्धि किस प्रकार से होती है। यदि मेरे ऊपर प्रेम है तो इसे कहिये।।७३।।

देव्युवाच

निम्बवृक्षोद्भवं काष्ठं श्मशाने साधकोत्तमः।
भौमवारे मध्यरात्रौ गत्वा कुलयुगान्वितः॥७४॥

खनित्वा काष्ठलक्षं वै जपेन्महिषमर्दिनीम्।
तत् सहस्त्रं हुनेद्वत्स तत्रैव पितृकानने ॥७५॥

देवी कहती हैं—साधकश्रेष्ठ स्त्री-सहित श्मशान में मंगलवार की मध्यरात्रि में जाकर नीम वृक्ष के काठ को जमीन में गाड़कर आठ लाख महिषमर्दिनी का जप करे। हे वत्स! साथ ही उसी श्मशान में आठ हजार होम भी करे।।७४-७५।।

काष्ठमुद्धृत्य तस्मिन् वै दण्डं पादुकाचिह्नितम्।
कृत्वा दुर्गाष्टमीरात्रौ श्मशाने निक्षिपेत्ततः ॥७६॥

तदनन्तर उस श्मशान से उस नीम की लकड़ी को निकालकर पादुका चिह्नित करके उसे दुर्गाष्टमी के दिन रात्रि में श्मशान में छोड़े।।७६।।

तस्योपरि शवं कृत्वा पूजयित्वा यथाविधि।
शवासनगतो वीरो जपेदष्टसहस्त्रकम् ॥७७॥

उसके ऊपर शव-स्थापन करके यथाविधान पूजा करके उस शवासन पर बैठकर वीर साधक आठ हजार जप करे।।७७।।

ततो मातृबलिं दत्त्वा काष्ठमामन्त्रयेत्ततः।
स्फें स्फें दण्ड महाभाग योगिनीहृदयप्रिय।
मम हस्तस्थितो नाथ ममाज्ञां परिपालय ॥७८॥

तदनन्तर मातृगण को बलि देकर उस काष्ठ से कहे—स्फें स्फें दण्ड महाभाग योगिनीहृदयप्रिय मम हस्तस्थितो नाथ ममाज्ञां पारिपालय। इस मन्त्र से बेताल को आमन्त्रित करे।।७८।।

एवमामन्त्र्य बेतालं यत्र यत्र प्रयुज्यते।
तत्तु चूर्णीविधायाथ पुनरायाति कौलिकः ॥७९॥

इस प्रकार बेताल को आमन्त्रित करके जहाँ-जहाँ उसका प्रयोग किया जायेगा, उसे चूर्ण करके वह कौलिक वेताल पुनः वापस आ जायेगा।।७९।।

गच्छ गच्छ महाभागे पादुके वरवर्णिनि।
मत्पादस्पर्शमात्रेण गच्छ त्वं शतयोजनम् ॥८०॥

हे पादुके महाभागे वरवर्णिनि! जाओ, जाओ; मेरे स्पर्शमात्र से तुम सौ योजन दूर जाओ।।८०।।

अष्टलौहं समासाद्य पञ्चाशदङ्गुलाकृतिम्।
खड्गं कृत्वा तत्र मन्त्रं लिखित्वा पूजयेन्मनूम् ॥८१॥

पचास अंगुल के अष्टलौह का खड्ग बनाकर उस पर यही मन्त्र लिखकर उस मन्त्र का पूजन करे।।८१।।

तत्सहस्रं ततो हूत्वा महाशवकलेवरे ।
खनित्वा जीववृक्षाग्रे बद्ध्वा शुष्कस्तु भावयेत् ।।८२।।

आठ हजार होम करके उस महाशव के देह में इस खड्ग को भेदकर जीववृक्ष के आगे उसे बांधकर शुष्क करे।।८२।।

कुलाष्टम्यामर्द्धरात्रे चितामध्ये समाहितः ।
प्रीतिपूर्वं समामन्त्र्य हुनेत् पितृवने ततः ।।८३।।

कृष्णाष्टमी की अर्द्धरात्रि में श्मशान में जाकर प्रीतिपूर्वक उसे आमन्त्रित कर उस श्मशान की चिता में होम करे।।८३।।

मधुरत्रयसंयुक्तं बिल्वपत्रेण संयुतम् ।
पादादिमूर्द्ध्वपर्यन्तं होमान्ते बलिमाहरेत् ।।८४।।

होम के अन्त में उस सूखे शव को पैर से मस्तक-पर्यन्त मधुरत्रय से आप्लुत करके बिल्वपत्र से युक्त करके बलि देनी चाहिये।।८४।।

बल्यन्ते परमा माया देवी महिषमर्दिनी ।
आयाति बलिपूर्णास्या वरहस्ता हसन्मुखी ।
गृह्ण वत्सेति शब्दे वै खड्गमुत्तोल्य धारयेत् ।।८५।।

बलि के अन्त में हास्यमुखी वरहस्ता परमा माया देवी महिषमर्दिनी मुख में बलि को भरकर आती है एवं 'वत्स खड्ग उठाओ' कहकर खड्ग उठाकर धारण कराती है।।८५।।

घोरदंष्ट्रे महाकालि करवालस्वरूपिणि ।
आं घ्रां घ्रीं कुरु कल्याणं विपक्षच्छेदविस्तरम् ।।८६।।
एवमामन्त्र्य खड्गन्तु यमुद्दिश्य क्षिपेन्नरः ।
छित्वा छित्वा पुनश्छित्वा गच्छत्याकृष्य ते पुनः ।।८७।।

इति बेतालसिद्धिप्रकरणम्

इति श्रीरघुनाथतर्कवागीशभट्टाचार्यविरचिते आगमतत्त्वविलासे चतुर्थः खण्डः

साधक 'घोरदंष्ट्रे महाकालि करवालस्वरूपिणि आ घ्रां घ्रीं कुरु कल्याणं विपक्षच्छेदविस्तरम्' इस प्रकार से खड्ग को आमन्त्रित करके जिसके लिये उसे चलायेगा, वह खड्ग उसका छेदन करके पुनः साधक के पास आ जायेगा।।८६-८७।।

श्री रघुनाथ तर्कवागीश भट्टाचार्य-विरचित आगमतत्त्वविलास
का चतुर्थ खण्ड समाप्त।

परिशिष्टम्

परिशिष्टात्मक इस पञ्चम खण्ड में प्रात:स्मरणीय लेखक महोदय ने स्तोत्र-कवचादि का संग्रह किया है। इसका अनुवाद देकर ग्रन्थ के कलेवर की वृद्धि करना उचित प्रतीत नहीं होता; क्योंकि यह ग्रन्थ पुरश्चरण-प्रधान है और प्रत्येक पुरश्चरण के साथ उसका विधान भी अंकित है; साथ ही उस विधान में प्रत्येक पुरश्चरण के देवता का ध्यान भी अंकित है। किसी भी पुरश्चरण में स्तुति तथा कवच को स्थान नहीं दिया गया है। अतएव प्रतीत यह होता है कि जो साधक पुरश्चरण नहीं कर सकते, उस विधान का साङ्गोपाङ्ग अनुसरण नहीं कर सकते, उनके हितार्थ भक्तिपूर्ण स्तोत्र तथा न्यासादि के स्थान पर कवच का पाठ ही श्रेयस्कर समझकर विद्वान् लेखक ने इस पञ्चम खण्ड का संयोजन किया है। किसी भी स्तोत्र अथवा कवचादि की किसी भी पुरश्चरण की प्रक्रिया से कोई सम्वद्धता नहीं है। जो साधक प्रक्रियाबहुल पुरश्चरण तथा न्यासादि का अनुपालन करने में असमर्थ हैं, वे स्तोत्रादि के भक्तिपूर्ण पाठ से ही अपना कल्याण कर सकते हैं और कवच के पाठ से अपना अनुरक्षण भी कर सकते हैं। अतएव मूल ग्रन्थ की विषयवस्तु से असम्वद्ध होने के कारण इस पञ्चम खण्ड का भाषानुवाद प्रयोज्य नहीं है।

इस पञ्चम खण्ड में मैंने 'रामरक्षावेदसागर' स्तोत्र को अत्यन्त उपयोगी तथा चमत्कारी प्रभाव वाला होने के कारण अपनी ओर से जोड़ दिया है। प्राचीन प्रामाणिक भृगुसंहिता का प्रारम्भ इसी वेदसागर स्तोत्र से होता है, जो भगवान् श्रीराम की जन्मकुण्डली तथा उसका फलादेश-स्वरूप है। बाजार में उपलब्ध भृगुसंहिताओं में तथा अन्य हस्तलिखित भृगुसंहिता की प्रतियों में इसका उल्लेख नहीं है। महान् विद्वान् ब्रह्मलीन पं० सुधीर रंजन जी भादुड़ी महाशय का उल्लेख डॉक्टर पाल ब्रंटन ने अपने विख्यात ग्रन्थ 'ए सर्च इन सीक्रेट इण्डिया' के एक सम्पूर्ण अध्याय में किया है। इनके संग्रह में जो भृगुसंहिता संरक्षित है, उसी में यह स्तोत्र मुझे मिला था, जिसका अभूतपूर्व प्रभाव मैंने तथा अन्य लोगों ने भी अनुभूत किया है। यह शुद्ध भाषा में नहीं है? यह प्रश्न भादुड़ी महाशय से करने पर उनका आदेश था कि इसे विना शुद्ध किये यथावत् ही पढ़ना होगा। इसमें संशोधन कदापि न करें। अत: इस ग्रन्थ के पञ्चम खण्ड में मैं इसे भी जनकल्याणार्थ संयुक्त कर रहा हूँ।

यदि विद्वान् लेखक महोदय की दृष्टि में यह स्तोत्र आया होता, तो उस स्थिति में वे अपने इस पञ्चम खण्ड में उसे भी अवश्य ही स्थान देते, इस विश्वास के साथ मैं उसे संयुक्त करने की अनाधिकार चेष्टा कर रहा हूँ।

इसमें प्रत्येक स्तोत्र को पढ़ते समय स्तोत्र के आदि एवं अन्त में प्रणव (ॐ) लगाना आवश्यक है। ऐसी ही प्रक्रिया कवचादि में भी अपेक्षित है। यह वाराही तन्त्र का वचन है; अन्यथा इनके पाठ से कोई फल नहीं प्राप्त होता।

अनुवादक

ब्रह्मयामलोक्तं

श्रीसूर्यकवचम्

श्रीसूर्य उवाच

साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु मे कवचं शुभम्।
यज्जप्त्वा मन्त्रवित्सम्यक्फलमाप्नोति निश्चितम्॥१॥
यज्जप्त्वा च महादेवो गणानामधिपो भवेत्।
पठनाद्धारणाद्विष्णुः सर्वेषां पालकः सदा॥२॥
एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः।
कवचस्य ऋषिर्ब्रह्मा छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्॥३॥
श्रीसूर्यो देवता चात्र सर्वदेवनमस्कृतः।
यशआरोग्यमोक्षे च विनियोगः प्रकीर्त्तितः॥४॥
प्रणवो मे शिरः पातु घृणिर्मे पातु भालकम्।
सूर्योऽव्यान्नयनद्वन्द्वमादित्यः कर्णयुग्मकम्॥५॥
अष्टाक्षरो महामन्त्रः सर्वाभीष्टप्रदायकः।
ह्रीं ह्रीं बीजं मे मुखं पातु हृदयं भुवनेश्वरी॥६॥
चन्द्रबीजं विसर्गाढ्यं पातु मे गुह्यदेशकम्।
त्र्यक्षरोऽसौ महामन्त्रः सर्वतन्त्रेषु गोपितः॥७॥
शिवो वह्निसमायुक्तो वामाक्षिबिन्दुभूषितः।
एकाक्षरो महामन्त्रः श्रीसूर्यस्य प्रकीर्त्तितः॥८॥
गुह्याद्गुह्यतरो मन्त्रो वाञ्छाचिन्तामणिः स्मृतः।
शीर्षादिपादपर्यन्तं सदा पातु मनूत्तमः॥९॥
इति ते कथितं दिव्यं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
श्रीप्रदं कान्तिदं नित्यं धनारोग्यविवर्द्धनम्॥१०॥
कुष्ठादिरोगशमनं महाव्याधिविनाशनम्।
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यमरोगी बलवान् भवेत्॥११॥
बहुना किमिहोक्तेन यद्यन्मनसि वर्त्तते।
तत्तत्सर्वं भवत्येव कवचस्य च साधनात्॥१२॥

भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
ब्रह्मराक्षसबेताला नैव द्रष्टुमपि क्षमाः ॥१३॥
दूरादेव पलायन्ते तस्य सङ्कीर्तनादपि ।
भूर्जपत्रे समालिख्य रोचनागुरुकुङ्कुमैः ॥१४॥
रविवारे च संक्रान्त्यां सप्तम्याञ्च विशेषतः ।
धारयेत् साधकश्रेष्ठस्त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥१५॥
त्रिलोहमध्यगं कृत्वा धारयेद् दक्षिणे भुजे ।
शिखायामथवा कण्ठे सोऽपि सूर्यो न संशयः ॥१६॥
इति ते कथितं साम्ब! त्रैलोक्यमङ्गलाभिधम् ।
कवचं दुर्लभं लोके तव स्नेहात्प्रकाशितम् ॥१७॥
अज्ञात्वा कवचं दिव्यं जपेत् सूर्यमनूत्तमम् ।
सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटिशतैरपि ॥१८॥

इति ब्रह्मयामले त्रैलोक्यमङ्गलं नाम सूर्यकवचं समाप्तम्

सनत्कुमारतन्त्रोक्तं

त्रैलोक्यमङ्गलनाम श्रीकृष्णकवचम्

पुलस्त्य उवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ कवचं यत्प्रकाशितम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कृपया कथय प्रभो! ॥१॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र! कवचं परमाद्भुतम् ।
नारायणेन कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥२॥
ब्रह्मणा' कथितं मह्यं तव स्नेहाद्ददामि ते ।
अतिगुह्यतरं तत्त्वं ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम् ॥३॥
यद्धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा सृष्टिं वितनुते ध्रुवम् ।
पठनाद्धारणाच्छम्भुः संहर्त्ता सर्वतत्त्ववित् ॥४॥
यद्धृत्वा पठनात्पाति महालक्ष्मीजगत्त्रयम् ।
त्रैलोक्यजननी दुर्गा महिषादिमहासुरान् ॥५॥
वरदृप्ताञ्जघानैव पठनाद्धारणाद्यतः ।
एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥६॥

इदं कवचमत्यन्तं गुप्तं कुत्रापि नो वदेत्।
शिष्याय भक्तियुक्ताय साधकाय प्रकाशयेत् ॥७॥
शठाय परशिष्याय दत्त्वा च मृत्युमाप्नुयात्।
त्रैलोक्यमङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥८॥
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो नारायणः स्वयम्।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥९॥
प्रणवो मे शिरः पातु नमो नारायणाय च।
भालं पायान्नेत्रयुग्ममष्टार्णो भुक्तिमुक्तिदः ॥१०॥
क्लीं पायाच्छ्रोत्रयुग्मञ्चैकाक्षरः सर्वमोहनः।
क्लीं कृष्णाय सदा घ्राणं गोविन्दायेति जिह्विकाम् ॥११॥
गोपीजनपदं वल्लभाय स्वाहा भुजद्वयम्।
अष्टाक्षरो महामन्त्रः कण्ठं पातु दशाक्षरः ॥१२॥
क्लीं कृष्णः क्लीं करौ पायात्क्लीं कृष्णायाङ्गजोऽवतु।
हृदयं भुवनेशानि क्लीं कृष्णाय क्लीं स्तनौ मम ॥१३॥
गोपालायाग्निजाया च कुक्षियुग्मं सदावतु।
क्लीं कृष्णाय सदा पातु पार्श्वयुग्ममनूत्तमम् ॥१४॥
कृष्णगोविन्दकौ पातु स्मराद्यौ ङेयुतौ मनुः।
अष्टाक्षरः पातु नाभिं कृष्णेति द्व्यक्षरोऽवतु ॥१५॥
पृष्ठं क्लीं कृष्ण कङ्कालं क्लीं कृष्णाय द्विठान्तकः।
सक्थिनी पातु सततं श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्ण ठद्वयम् ॥१६॥
ऊरू सप्ताक्षरं पातु त्रयोदशाक्षरोऽवतु।
श्री ह्रीं क्लीं पदतो गोपीजनवल्लपदं ततः ॥१७॥
भाय स्वाहेति पायुं वै क्लीं ह्रीं श्रीं सदशार्णकः।
सर्वाङ्गं मे सदा पातु द्वारकानायको बली ॥१८॥
नमो भगवते पश्चाद् वासुदेवाय तत्परम्।
ताराद्यो द्वादशार्णोऽयं प्राच्यां मां सर्वदावतु ॥१९॥
श्री ह्रीं क्लीं च दशार्णस्तु क्लीं ह्रीं श्रीं षोडशाक्षरः।
गदाद्युदायुधो विष्णुर्भामग्नेर्दिशि रक्षतु ॥२०॥
ह्रीं श्रीं दशाक्षरो मन्त्रो दक्षिणे मां सदावतु।
तारो नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय च ॥२१॥
स्वाहेति षोडशार्णोऽयं नैर्ऋत्यां दिशि रक्षतु।
क्लीं हृषीके पदं शाय नभो मां वारणेऽवतु ॥२२॥

अष्टादशार्णः कामान्तो वायव्यां मां सदावतु।
श्रीं माया कामकृष्णाय गोविन्दाय द्विठो मनुः ॥२३॥
द्वादशार्णात्मको विष्णुरुत्तरे मां सदावतु।
वाग्भवं कामकृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय ततः परम् ॥२४॥
श्रीं गोपीजनवल्लान्ते भाय स्वाहा च सौस्ततः।
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो मामैशान्ये सदावतु ॥२५॥
कालीयस्य फणामध्ये दिवां नृत्यं करोति तम्।
नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमच्युतम् ॥२६॥
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रोऽप्यधो मां सर्वदावतु।
कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि ॥२७॥
तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयान्मां सदा पातु चोर्ध्वतः।
इति ते कथितं विप्र सर्वमन्त्रौघविग्रहम् ॥२८॥
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम्।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥२९॥
तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्।
गुरुं प्रणम्य विधिवत् कवचं प्रपठेत्ततः ॥३०॥
सकृद् द्विस्त्रिर्यथाज्ञानं सोऽपि सर्वतपोमयः।
मन्त्रेषु सकलेष्वेव देशिको नात्र संशयः ॥३१॥
शतमष्टोतरञ्चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।
स्पदर्ध्वामुद्धूय सततं लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ॥३२॥
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत्सकृत्।
संवत्सरसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥३३॥
भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥३४॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्यं स्तुवस्तथा ॥३५॥
कलां नार्हन्ति तान्येव सकृदुच्चारणात्ततः।
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥३६॥
त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव त्रैलोक्यविजयी भवेत्।
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्यः पुरुषोत्तमम्।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रस्तस्य सिध्यति ॥३७॥

इति सनत्कुमारतन्त्रे त्रैलोक्यमङ्गलं नाम श्रीकृष्णकवचं समाप्तम्

श्रीवीरतन्त्रोक्तं

ताराष्टकस्तोत्रम्

घोररूपे महारावे सर्वशत्रुक्षयङ्करि ।
भक्तेभ्यो वरदे देवि त्राहि मां शरणागतम् ॥१॥
सुरासुरार्चिते देवि सिद्धगन्धर्वसेविते ।
जाड्यपापहरे देवि त्राहि मां शरणागतम् ॥२॥
जटाजूटसमायुक्ते लोलजिह्वानुकारिणि ।
द्रुतबुद्धिकरे देवि त्राहि मां शरणगतम् ॥३॥
जडानां जडतां हन्ति भक्तानां भक्तवत्सले ।
मूढतां हर मे देवि! त्राहि मां शरणागतम् ॥४॥
हुंहुङ्कारमये देवि बलिहोमप्रिये शुभे ।
उग्रतारे नमस्तुभ्यं त्राहि मां शरणागतम् ॥५॥
सौभाग्यरूपे क्रोधरूपे चण्डरूपे नमोस्तु ते ।
सृष्टिरूपे नमस्तुभ्यं त्राहि मां शरणागतम् ॥६॥
बुद्धिं देहि यशो देहि कवित्वं देहि देवि मे ।
मूढ़त्वं हर मे देहि त्राहि मां शरणागतम् ॥७॥
इन्द्रादिदिविषद्वृन्दवन्दिते करुणामयि ।
तारे ताराधिनाथास्ये त्राहि मां शरणागतम् ॥८॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्यां यः पठेन्नरः ।
षण्मासैः सिद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥९॥
मोक्षार्थी लभते मोक्षं धनार्थी घनमाप्नुयात् ।
विद्यार्थी लभते विद्यां तर्कव्याकरणादिकाम् ॥१०॥
इदं स्तोत्रं पठेद्यस्तु सततं श्रद्धयान्वितः ।
तस्य शत्रुक्षयं याति महाप्राज्ञश्च जायते ॥११॥
पीडायां वापि संग्रामे जाप्ये दाने तथा भये ।
य इदं पठति स्तोत्रं शुभं तस्य न संशयः ॥१२॥

इति श्रीवीरतन्त्रोक्तं ताराष्टकस्तोत्रं समाप्तम्

अथ ताराकवचम्

देव्युवाच

तारापूजा श्रुता नाथ विद्याश्च सकलास्ततः।
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥१॥
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम सर्वापद्विनिवारकम्।
पुरैव सूचितं नाथ! कृपया मे प्रकाशय ॥२॥

भैरव उवाच

देवदानवविद्याधृक् पूजिते प्राणवल्लभे।
त्रैलोक्यमोहनं नाम कवचं श्रूयतां परम् ॥३॥
सर्वरक्षाकरं देवि! सर्वसिद्धिप्रदायकम्।
सर्वविद्यामयं देवि सर्वमन्त्रमयं ध्रुवम् ॥४॥
वेदव्यासोऽपि यद्धृत्वा सर्वज्ञः पठनाद्यतः।
यद्धृत्वा पठनादीशस्त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ॥५॥
धनाधिपः कुबेरोऽपि देवाधिपः शचीपतिः।
पठनाद्धारणात् सत्यं यतः सर्वे दिगीश्वराः।
सर्वसिद्धियुताः सन्तु सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥६॥
यस्य प्रसाददीशोऽहं भैरवानां सुरेश्वरि!।
क्रोधाधिपो महाभीमो देवेषु प्रथितः प्रभुः ॥७॥
न दद्यात् परशिष्येभ्यो दद्याच्छिष्येभ्य एव हि।
अभक्तेभ्योऽपि पुत्रेभ्यो दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ॥८॥
त्रैलोक्यमोहनस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः।
छन्दो विराट् देवता च सोग्रतारा प्रकीर्त्तिता।
चतुर्वर्गेषु विद्यायां विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥९॥
ॐ ह्रीं स्त्रीं मे शिरः पातु हुं फट् पातु ललाटकम्।
सार्द्धपञ्चाक्षरी तारा पायान्नेत्रयुगं मम ॥१०॥
ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं श्रुती पायान्नमः पातु च नासिकाम्।
तारा षडक्षरी पायाद्वदनं मुण्डभूषणा ॥११॥
ह्रीं स्त्रीं हुं फट् वदनं पातु जिह्वां पायान्महेश्वरी।
ह्रीं स्त्रीं हुं मे गलं पातु महानीलसरस्वती ॥१२॥
स्त्रीं स्कन्धौ पातु नियतं तारैकाक्षररूपिणी।
हुं स्वाहा मे सदा पातु बीजैकाक्षररूपिणी ॥१३॥

ऐं ह्रीं स्त्रीं हुञ्च फट् पायाद्वाक्तारा मे भुजद्वयम्।
श्रीं ह्रीं स्त्रीं हुं च फट् पायात् श्रीतारा मे स्तनद्वयम् ॥१४॥
ह्रीं ह्रीं स्त्रीं हुञ्च फट् पायात् तारा च हृदयं मम।
हुं ह्रीं स्त्रीं हुञ्च फट् बीजं तारा पृष्ठे सदावतु ॥१५॥
क्लीं ह्रीं स्त्रीं हुञ्च फट् पायात्पार्श्वौ कामस्वरूपिणी।
ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं नमः पायात् कुक्षिं महाषड़क्षरी ॥१६॥
ॐ सौः ॐ ऐं ह्रीं फट् स्वाहा कटिदेशं सदावतु।
अष्टाक्षरी महाविद्या साक्षाद् ब्रह्मस्वरूपिणी ॥१७॥
खं हुं हौं ॐ ऐं श्रीं ह्रीं सा गुह्यदेशं सदावतु।
सप्ताक्षरी चोग्रतारा मूलविद्यास्वरूपिणी ॥१८॥
ॐ ह्रीं हां हुं नमस्तारायै सकलपदं ततः।
दुस्तरं तारयपदं तारय प्रणवद्वयम् ॥१९॥
स्वाहेति च महाविद्या जानुनी सर्वदावतु।
ऐं सौः ॐ ऐं क्लीं फट् स्वाहा जङ्घे पातु परात्मिका ॥२०॥
ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं च फट् तारा हंसाद्यन्ता नवाक्षरी।
महोग्रतारा पादौ मे पातु नित्यं महेश्वरी ॥२१॥
ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौ वद वद वाग्वादिनीति च।
कामबीजत्रयं नीलसरस्वतीस्वरूपकम् ॥२२॥
ऐं ऐं औं ऐं काहि काहि कलरीं स्वाहेति सर्वदा।
चतुस्त्रिंशल्लिपिमयी पातु ताराखिलं वपुः ॥२२॥
इन्द्रो वामाक्षियुक् पृथ्वी सरस्वत्यनलप्रिया।
कूर्चाद्यन्ता पातु चोर्द्ध्वं मूलविद्या दशाक्षरी ॥२३॥
तारं माया वधुः कूर्चं काली कामकला ततः।
उग्रतारे भगं कामः परा लक्ष्मी शिवाङ्कुशौ ॥२४॥
सा महाषोडशी प्रोक्ता तारादेव्या मयाधुना।
विधिवद् ग्रहणादस्या मृत्यं मृत्युपथं नयेत् ॥२५॥
एषा विद्या मया गुप्ता तन्त्रादियामलेषु च।
साम्प्रतं कथिता तुभ्यं कवचाङ्गतया प्रिये ॥२६॥
इति ते कथितं देवि गुह्याद् गुह्यतरं परम्।
त्रैलोक्यमोहनं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥२७॥
मन्त्रविद्यामयं चैव कवचं प्रपठेद् यदि।
त्रिः सकृद्वा यथाज्ञानं भैरवस्तत्क्षणाद्भवेत् ॥२८॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः कुलकोटिः समुद्धरेत् ।
गुरुः स्यात्सर्वविद्यास्वप्यधिकारी जपादिषु ॥२९॥
शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ।
त्रैलोक्यं विचरेद्वीरो गणनाथो यथा गुहः ॥३०॥
गद्यपद्यमयी वाणी भवेद् गङ्गाप्रवाहवत् ।
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत्ततः ॥३१॥
पञ्चवर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ॥३२॥
पुरुषो दक्षिणे बाहौ योषिद्वामभुजे तथा ।
बहुपुत्रवती नारी पुरुषो बहुपुत्रवान् ॥३३॥
सर्व्वसिद्धियुतो भूत्वा विचरेद्भैरवो यथा ।
तद्गात्रं प्राप्य शस्त्राणि ब्रह्मस्त्रादीनि भैरवि! ॥३४॥
माल्यानि कुसुमान्येव भवन्ति सुखदानि च ।
तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीर्वाणी वक्त्रे वसेद् ध्रुवम् ॥३५॥
इदं कवचमज्ञात्वा तारां यो भजतेऽधमः ।
अल्पायुर्निर्धनो मूर्खो भवत्येव न संशयः ॥३६॥

इति भैरवीतन्त्रे भैरव-भैरवीसंवादे ताराकल्पे
त्रैलोक्यमोहनं नाम ताराकवचं समाप्तम्

रुद्रयामलोक्तं

उग्रताराकवचम्

ईश्वर उवाच

कोटितन्त्रेषु गोप्या हि विद्यातिभयमोचनी ।
दिव्यं हि कवचं तस्याः शृणुष्व सर्वकामदम् ॥१॥

ताराकवचस्याक्षोभ्यऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो भगवती तारा देवता सर्वमन्त्र-सिद्धिसमृद्धये विनियोगः॥२॥

ॐ प्रणवो शिरः पातु ब्रह्मरूपा महेश्वरी ।
ह्रींकारः पातु ललाटे बीजरूपा महेश्वरी ॥३॥
स्त्रींकारः पातु वदने लज्जारूपा महेश्वरी ।
हुङ्कारः पातु हृदये तारिणीशक्तिरूपधृक् ॥४॥

फट्कारः पातु सर्वाङ्गे सर्वसिद्धिफलप्रदा।
खर्वा मां पातु देवेशि गण्डयुग्मे भयापहा ॥५॥
लम्बोदरी सदा स्कन्धयुग्मे पातु महेश्वरी।
व्याघ्रचर्मावृतकरी पातु देवी शिवप्रिया ॥६॥
पीनोन्नतस्तनी पातु पार्श्वयुग्मे महेश्वरी।
रक्तवर्त्तुलनेत्रा च कटिदेशे सदावतु ॥७॥
ललज्जिह्वा सदा पातु नाभौ मां भुवनेश्वरी।
करालास्या सदा पातु लिङ्गे देवी हरप्रिया ॥८॥
पिङ्गोग्रैकजटा पातु जङ्घायां विघ्ननाशिनी।
प्रेतखर्परधरा पातु जानुचक्रे महेश्वरी ॥९॥
नीलवर्णा सदा पातु जानुनी सर्वदा मम।
नागकुण्डधरा देवी पातु पादयुगे तथा ॥१०॥
नागहारधरा देवी सर्वाङ्गे पातु सर्वदा।
नागाङ्गदधरा देवी पातु प्रान्तरदेशतः ॥११॥
चतुर्भुजा सदा पातु गमने शत्रुनाशिनी।
खड्गहस्ता सदा देवी पातु मां विजयप्रदा ॥१२॥
नीलाम्बरधरा देवी पातु मां विघ्ननाशिनी।
कर्त्रीहस्ता सदा पातु विवादे शत्रुमध्यतः ॥१३॥
ब्रह्मरूपधरा देवी संग्रामे पातु सर्वदा।
नागकङ्कणधरा देवी भोजने पातु सर्वदा ॥१४॥
शवकर्णा महादेवी शयने पातु सर्वदा।
वीरासनधरा देवी निद्रायां पातु सर्वदा ॥१५॥
धनुर्बाणधरा देवी पातु मां विघ्नसङ्कुले।
नागाञ्चितकरी पातु देवी मां सर्वकर्मसु ॥१६॥
छिन्नमुण्डधरा देवी कानने पातु सर्वदा।
चितामध्यस्थिता देवी मारणे पातु सर्वदा ॥१७॥
द्वीपिचर्मधरा देवी पुत्रदारधनादिषु।
अलङ्कारान्विता देवी पातु मां हरवल्लभा ॥१८॥
रक्ष रक्ष नदीकुञ्जे हुं हुं फट्समन्विता।
बीजरूपा महादेवी पर्वते पातु सर्वदा ॥१९॥
मणिधरि वज्रिणि देवि महाप्रतिसरे तथा।
रक्ष रक्ष सदा हुं हुं ॐ ह्रीं स्वाहा महेश्वरी ॥२०॥

पुष्पकेतुराजार्हते कानने पातु सर्वदा।
ॐ ह्रीं वज्रपुष्पे हुं फट् प्रान्तरे सर्वकामदा॥२१॥
ॐ पुष्पे पुष्पे महापुष्पे पातु पुत्रान् महेश्वरी।
हुं स्वाहा शक्तिसंयुक्ता दारान् रक्षतु सर्वदा॥२२॥
ॐ आं हुं फट् स्वाहा महेशानी पातु द्यूते हरप्रिया।
ॐ ह्रीं सर्वविघ्नोत्सारिणी देवी विघ्नान्मां सर्वदावतु॥२३॥
ॐ पवित्रवज्रभूमे हुं फट् स्वाहासमन्विता।
पृथिव्यां पातु मां देवी सर्वविघ्नविनाशिनी॥२४॥
ॐ आः सुरेखे वज्ररेखे हुं फट् स्वाहासमन्विता।
पाताले पातु मां देवी नागिनी नाम संज्ञिका॥२५॥
ह्रींकारी पातु मां पूर्वे शक्तिरूपा महेश्वरी।
स्त्रींकारी दक्षिणे पातु वधुरूपा महेश्वरी॥२६॥
हुंस्वरूपा महादेवी पातु मां क्रोधरूपिणी।
फस्वरूपा महामाया पश्चिमे पातु सर्वदा॥२७॥
उत्तरे पातु मां देवी ट्स्वरूपा हरप्रिया।
मध्ये मां पातु देवेशी हुंस्वरूपा नगात्मजा॥२८॥
त्वरिता पातु मां देवी सर्वविघ्नविनाशिनी।
नीलवर्णा सदा पातु सर्वत्र वाग्भवी सदा॥२९॥
भवानी पातु भवने सर्वैश्वर्यप्रदायिनी।
विद्यादानरता देवी पातु वक्त्रे सरस्वती॥३०॥
शास्त्रे वादे च संग्रामे जले च विषमे गिरौ।
भीमरूपा सदा पातु श्मशाने भयनाशिनी॥३१॥
भूतप्रेतालये घोरे दुर्गा मां भीषणावतु।
पातु नित्यं महेशानी सर्वत्र शिवदूतिका॥३२॥
कवचस्य च माहात्म्यं नाहं वर्षशतैरपि।
शक्नोमि कथितुं देवी भवेत्तस्य फलञ्च यत्॥३३॥
पुत्रदारेषु बन्धूनां सर्वदेशे च सर्वदा।
न विद्यते भयं तस्य नृपपूज्यो भवेच्च सः॥३४॥
लिखित्वा धारयेद्यस्तु कण्ठे वा मस्तके भुजे।
तस्य सर्वार्थसिद्धिः स्याद्यद्यन्मनसि वर्त्तते॥३५॥
गोरोचनाकुङ्कुमेन रक्तचन्दनकेन वा।
यावकैर्वा महेशानि लिखेन्मन्त्रं समाहितः॥३६॥

अष्टम्यां मङ्गलदिने चतुर्दश्यामथापि वा ।
सन्ध्यायां देवदेवेशि लिखेन्मन्त्रं समाहितः ॥३७॥
मघायां श्रवणायां वा रेवत्यां वा विशेषतः ।
सिंहराशौ गते चन्द्रे कर्कटस्थे दिवाकरे ॥३८॥
मीनराशौ गुरौ याते वृश्चिकस्थे शनैश्चरे ।
लिखित्वा धारयेद्यस्तु उत्तराभिमुखोभवन् ॥३९॥
श्मशाने प्रान्तरे वापि शून्यागारे विशेषतः ।
निशायां यो लिखेन्मन्त्रं तस्य सिद्धिरचञ्चला ॥४०॥
भूर्जपत्रे लिखेन्मन्त्रं गुरुणा च महेश्वरि ।
ध्यानधारणयोगेन धारयेद्यस्तु भक्तितः ।
अभिचारात्तस्य सिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥४१॥

इति रुद्रयामले उग्रताराकवचं समाप्तम्

●

अथ षोढाकवचम्

ॐ अथ वक्ष्याम्यहं देव्यास्तारायाः कवचं शुभम् ।
न सिद्ध्यति विना येन तारामन्त्रं कदापि हि ॥१॥
पुरा कैलासशिखरे तारां पप्रच्छ शङ्करः ।
गुप्तभावेन देवेशि कथयस्व तु सादरम् ॥२॥
केनोपायेन सहसा शरीरं सुदृढं भवेत् ।
कथं वा सिद्धिरतुला तव मन्त्रविदां प्रिये ॥३॥

तारोवाच

अतिगुह्यतरं वाक्यं निःसृतं वक्त्रपङ्कजात् ।
इदं रहस्यं परमं कथयामि त्वयि प्रभो ॥४॥
श्रूयतां परमं गुह्यं कवचं मन्मुखात्सृतम् ।
मधुकैटभयोर्युद्धे कथितं पद्मजन्मना ॥५॥
तत्प्रभावात्तु देवेश स्वयं विष्णुर्न गच्छति ।
भवत्सु कथितं पूर्वं तन्न स्मरसि मायया ॥६॥
उद्धृतं सारभूतानां कवचं योगिनीमतम् ।
न कस्यचित्प्रदातव्यं न प्रकाश्यं कथञ्चन ॥७॥

शपथं कुरु मे देव यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति।
श्रूयतां सावधानेन निखिलं सारविग्रहम् ॥८॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमेव पुनः पुनः।
कवचेन विना देव यो मामर्चयति क्षणात् ॥९॥
तमश्नाति महोग्रा सा योगिनीभिः सुनिश्चितम्।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां बीजं रक्षतु मूलकम् ॥१०॥
तदेव शक्तिबीजन्तु लिङ्गं रक्षतु यत्नतः।
मणिपूरं सदा पातु वधुबीजमशेषतः ॥११॥
अनाहतं कूर्चबीजं पातु मे हृदयस्थितम्।
अस्त्रन्तु सर्वदा पातु विशुद्धं कण्ठभूषणम् ॥१२॥
शेषन्तु पातु मे नित्यमाज्ञास्थानं द्विपत्रकम्।
शीर्षं पातु सदा तारा जटा पातु सदाननम् ॥१३॥
नीलसरस्वती पातु हृदयं सर्वदा पुनः।
मूलाधारं सदा पातु महानीलसरस्वती ॥१४॥
अक्षोभ्यः पातु सर्वाङ्गं बृहती पातु भालकम्।
उग्रतारा देवता मे गह्वरं पातु सर्वदा ॥१५॥
चरणौ मे सदा पातु हुं बीजं तदशेषतः।
स्तनद्वयं तथा पातु लक्ष्मीर्देवी च शाश्वती ॥१६॥
वसन्मन्त्रं सदा पातु सरस्वती प्रयत्नतः।
रतिः पातु सदा बीजं प्रीतिर्मे वदनं सदा ॥१७॥
कीर्त्तिः कीर्त्तिं सदा पातु शान्तिः शान्तिं सदावतु।
पुष्टिर्मे पातु पुष्टिञ्च तुष्टिस्तुष्टिं सदैव हि ॥१८॥
वैरोचनः पातु शङ्खं शङ्खपूर्वस्तथैव च।
पाण्डुरो मे सदा गण्डं पातु नित्यञ्च सर्वशः ॥१९॥
पद्मनाभः सदा पातु नाभिं मे दशपत्रिकाम्।
असिताभ्रः पातु लिङ्गं नाभकः पातु कर्णकम् ॥२०॥
सामको मे तथा हस्तौ पाण्डुरः पातु कण्ठकम्।
तारकः पातु हृदयं पृष्ठं पद्मान्तको मनः ॥२१॥
पार्श्वद्वन्द्वं सदा पातु यमान्तकनरान्तकौ।
चरणौ पातु मे नित्यं विघ्नान्तकसमाह्वयः ॥२२॥
तावत्ते पातु सततमष्टाङ्गं परमेश्वरी।
इतीदं कथितं देव कवचं मन्मुखात्सृतम् ॥२३॥

प्रमादाद्यदि देवेश यत्र कुत्र प्रकाश्यते।
योगिनिभिस्तदा हन्तु स्वयञ्च वधकारिणी ॥२४॥
दद्याच्छान्ताय शिष्याय तन्त्रमन्त्रयुताय च।
गुरुभक्तियुतायैव तदा सिद्धिरनुत्तमा ॥२५॥
रहस्यं कथितं सर्वमनन्तफलदायकम्।
गोपितव्यं त्वया देव न प्रकाश्यं कथञ्चन ॥२६॥

इति श्रीताराकवचं समाप्तम्

अथ महिषमर्द्दिनीस्तोत्रम्

भैरव उवाच

मच्चित्ते चर चण्डि चूर्णितदुराचारप्रचण्डासुरे
स्वैरं दारय भूरि दुर्द्धरदरद्रोहोर्मिमर्मापदः।
तेनायं निरुपद्रुतो निरूपमश्रीपादपद्माटवी-
प्राप्तानन्दरसार्णवे मम मनोहंसश्चिरं नन्दतु ॥१॥
हित्वा चण्डिहिरण्यदारणपटुप्रोद्दामहस्ताङ्गुलि-
स्फायत्कम्रसुमेरुसोदरसटाटोपं नृसिंहं सुराः।
मानस्तत्पशुपाशपेषणपटुश्रीपादसंसेविनं
सेवन्ते करिवैरिणं किमरिभिर्भीतिर्भवत्सेविनाम् ॥२॥
चण्डि! त्वद्विषयान्तराक्षरपदं श्रोत्रान्तरं चेद्गतं
तत्तत्त्वं पुरुषप्रकृत्यनुगतं ब्रह्मादिभिर्गीयते।
तस्माद्देवि! समस्तदैवतसुधाधारैकधामस्फुरत्
श्रीमत्पादपयोब्जचुम्बनपरं मामद्य सम्भावय ॥३॥
मन्निन्दा यदि वा स्तुते कुलपथाचाराद्दूरं मास्तु वा
कीर्त्तिः केशवकौशिकार्चनचरी नैवास्तु मत्सन्निधिः।
मातर्ब्रह्महरिस्मरादिहुतभुग्दैत्यारिसेवास्पद-
श्रीमत्पादपयोजचिन्तनविधौ चित्तं सदैवास्तु नः ॥४॥
निर्द्दिष्टोऽस्मि यदि त्वदीयपदभुक् पूर्वापरीभावने
निर्दिष्टस्य तदा ममापि विरलं किंवास्तु सिद्धास्पदम्।
तस्माद्देवि! कृपाभराञ्चिततरं श्रीपादपद्मद्वयं
मच्चित्तेऽक्षतसम्पदं प्रसरतु क्षेमङ्करि क्षम्यताम् ॥५॥

स्वात्मानं परिरभ्य भूतपतिरप्युन्मादमासादितः
स्फारं जीवनरक्षणे स च कृती नैवाभविष्यत्प्रभुः ।
दैवाद्विच्युतचन्द्रचन्दनरसप्राग्लभ्यगर्भं द्रवन्
माध्वीपूर्णभवत्पदैककमलामोदेन नास्वादितः ॥६॥
हा हा मातरनादिमोहजलधिव्याहारसिद्धाखिल-
ब्रह्मानन्दरसाभिषेकविलसत् स्वान्तोदरे मादृशि ।
युष्माकं सुरवृन्दनिर्भरमनस्तापाभिभूतिक्षमः
श्रीमद् भक्तिरसातिदुर्दिनपरी वाहः सदा सर्पतु ॥७॥
त्वत्पादस्फुरदंशुजालजठरच्चित्तांशुकोटिस्खलद्-
ध्वान्तस्वान्तविसारि निर्मलचिदानन्दत्रयं दैवतम् ।
सर्गं संसृजति स्थितिं वितनुते सृष्टिं पुनर्लुम्पति
प्रोद्भिन्नाञ्जननीलनीरदमहः चित्ते सदैवास्तु नः ॥८॥
या शश्वन्महिषच्छलस्फुटमिलद्गर्जद्विधावत्स्खल-
द्वक्त्रान्तःप्रसवत्त्वमस्तमशिरो दैत्यं समालम्बते ।
सा दुर्गा भयदुर्गदुर्गतिहरा लक्षान्तरत्रासिनी
दृप्यद्दैवतवैरिदारणपटुर्जीयाज्जयाह्लादिनी ॥९॥
नृत्यत् खेटकचामराञ्चलचलच्चक्राद्यसर्वावर-
स्फायत् सैन्यशिलीमुखोच्छलदनल्पानिक्षताम्राम्बुधौ ।
झञ्झावातविसर्पिनर्तितशिरः साटोपदुष्टासुर-
क्रव्यत्खण्डविखण्डिताखिलशकुन्तक्षुत्पिपासोज्वले! ॥१०॥
चञ्चत्कप्रविरामकालकलतीव्रास्फालसम्पादको-
न्माद्यन्माहिषतिर्यगानतशिरःशृङ्गान्तराले स्थले ।
वस्वर्णैर्वसुपत्रमध्यकलितैर्बद्धा श्रुतिर्मातृभिः
सेव्ये चारुरणाङ्गणे रणमुदा घूर्णायमानां स्मरेत् ॥११॥
ऊर्ध्वाधःक्रमसव्यवामकरयोश्चक्रं दरं कर्त्रिकां
खेटं बाणधनुस्त्रिशूलभयहृन्मुद्रां दधानां शिवाम् ।
श्यामां नीलघनोच्चकुन्तलचयप्रोनद्धजूटां स्खलद्-
वीरास्फाललसत्करालवदनां घोराट्टहासोद्भटाम् ॥१२॥
एवं ये तव देवि मूर्तिमनघां ध्यायन्ति दुर्गादिभिः
शक्राद्यैरभिपूजितां परपुरक्षोभादिकं कुर्वते ।
राज्यं शत्रुजयः समर्थधिषणां काव्यामृतादर्शन-
स्तम्भोच्चाटनमारणादिकृतिनां तेषां स्वयं जायते ॥१३॥

स्तोत्रं ते चरणारविन्दयुगलध्यानावधानान्मया
मन्त्रोद्धारकुलोपचारचरितं गूढ़ोपदिष्टं यदि।
ये शृण्वन्ति पठन्ति देवि! तरसा श्रीमोक्षकामादय-
स्तेषां हस्तगता भवन्ति जगतां मातर्नमस्ते जयः ॥१४॥

इति कुलचूड़ामणौ महिषमर्दिनीस्तोत्रं समाप्तम्

●

अथ महिषमर्दिनीकवचम्

ईश्वर उवाच

अथ वक्ष्ये महेशानि कवचं सर्वकामदम्।
यस्य प्रसादमासाद्य भवेत् साक्षात्सदाशिवः ॥१॥
ॐकारं पूर्वमुच्चार्य मन्त्री मन्त्रस्य सिद्धये।
प्रपठेत् कवचं नित्यं मन्त्रवर्णस्य सिद्धये ॥२॥
महिषमर्द्दिन्या कवचस्य भगवान् महाकाल ऋषिरनुष्टुप्
छन्दः आद्या शक्तिर्देवता चतुर्वर्गफलप्राप्तये विनियोगः ॥३॥
ह्रीं पातु मस्तके देवी कामिनी कामदायिनी।
मकारः पातु मां देवी चक्षुर्युग्मे महेश्वरी ॥४॥
हिकारः पातु वदनं हिङ्गलासुरनायिका।
षकारः पातु मां श्वेता जिह्वायाञ्चापराजिता ॥५॥
मकारः पातु मां देवी मर्दिनी सुरनायिका।
र्द्दिकारः पातु मां देवी सावित्री कलिनाशिनी ॥६॥
निकारः पातु मां नित्या हृदये बाहुपार्श्वयोः।
नाभौ लिङ्गे गुदे कण्ठे कर्णयोः पृष्ठके तथा ॥७॥
शिखायां कवचे पादे मुखे जङ्घायुगे तथा।
सर्वाङ्गे पातु मां स्वाहा सर्वशक्तिसमन्विता ॥८॥
कामाख्या पातु मां स्वाहा सर्वाङ्गे मर्द्दिनी शिवः।
दशाक्षरी महाविद्या सर्वाङ्गे पातु मर्दिनी ॥९॥
मर्दिनी पातु सततं मर्दिनी रक्षयेत् सदा।
राजस्थाने तथा दुर्गे सिंहव्याघ्रभयादिषु ॥१०॥
श्मशाने प्रान्तरे दुर्गे नौकायां वह्निमध्यतः।
मर्द्दिनी पातु सततं मर्दिनी रक्षयेत् सदा ॥११॥

दुर्गा पातु सदा देवी आर्या पातु सदा मम ।
प्रभा पातु महेशानी कनका सर्वदावतु ॥१२॥
कृत्तिका पातु सततं अभया सर्वदावतु ।
प्रभा पातु महामाया माया पातु सदा मम ॥१३॥
प्रभा पातु महेशानी विमला पातु सर्वदा ।
नन्दिनी पातु सततं सुप्रभा सर्वदावतु ॥१४॥
विजया पातु सर्वत्र देव्यङ्गे नव शक्तयः ।
शक्तयः पातु सततं मुद्राः पातु सदा मम ॥१५॥
जया पातु सदा सूक्ष्मा विशुद्धा पातु सर्वदा ।
जयदुर्गा सदा पातु मर्द्दिनी रक्षयेत् सदा ॥१६॥
योगिन्यः पान्तु सततं खेचर्यः पान्तु सर्वदा ।
डाकिन्यः पान्तु सततं सिद्धा पान्तु सदा मम ।
सर्वत्र सर्वदा पातु देवी महिषमर्द्दिनी ॥१७॥
इति ते कथितं दिव्यं कवचं सर्वकामदम् ।
यत्र तत्र न वक्तव्यं गोपितव्यं प्रयत्नतः ॥१८॥

इति विश्वसारतन्त्रे महिषमर्द्दिनीकवचं समाप्तम्

अथ भैरवीस्तोत्रम्

स्तुत्यानया त्वां त्रिपुरे! स्तोष्येऽभीष्टफलाप्तये ।
यया ब्रजन्ति तां लक्ष्मीं मनुजः सुरपूजिताम् ॥१॥
ब्रह्मादयः स्तुतिशतैरपि सूक्ष्मरूपां
जानन्ति नैव जगदादिमनादिमूर्त्तिम् ।
तस्माद्वयः कुचनतां नव कुङ्कुमाभां
स्थूला स्तुमः सकलवाङ्मयमातृभूताम् ॥२॥
सद्यः समुद्यतसहस्रदिवाकराभां
विद्याक्षसूत्रवरदाभयचिह्नहस्ताम् ।
नेत्रोत्पलैस्त्रिभिरलङ्कृतवक्त्रपद्मां
त्वां तारहाररुचिरां त्रिपुरे भजामः ॥३॥
सिन्दूरपूररुचिरं कुचभारनम्रं
जन्मान्तरेषु कृतपुण्यफलैकगम्यम् ।

अन्योन्यभेदकलहा कुलमानसास्ते
जानन्ति किं जड़धियस्तव रूपमम्ब ॥४॥
स्थूलां वदन्ति मुनयः श्रुतयो गृणन्ति
सूक्ष्मां वदन्ति वचसामधिवासमन्ये ।
त्वां मूलमाहुरपरे जगतां भवानि
मन्यामहे वयमपारकृपाम्बराशीम् ॥५॥
चन्द्रावतंसकलितां शरदिन्दुशुभ्रां
पञ्चाशदक्षरमयीं हृदि भावयन्ति ।
त्वां पुस्तकं जपवटीममृताढ्यकुम्भं
व्याख्याञ्च हस्तकमलैर्दधतीं त्रिनेत्राम् ॥६॥
शम्भुस्त्वमद्रितनयाकलितार्द्धभागो
विष्णुस्त्वमम्बकमलापरिबद्धदेहः ।
पद्मोद्भवस्त्वमसि वागधिवासभूमि-
स्तेषां क्रियाश्च जगति त्रिपुरे त्वमेव ॥७॥
आश्रित्य वाग्भवभवांश्चतुरः परादीन्
भावान् पदेषु विहितान् समुदीरयन्तीम् ।
कण्ठादिभिश्च करणैः परदेवतां त्वाम्
सच्चिन्मयीं हृदि कदापि न विस्मरामि ॥८॥
आकुञ्च्य वायुमवजित्य च वैरिषट्क-
मालोक्य निश्चलधिया निज नासिकाग्रम् ।
ध्यायान्ति मूर्ध्नि कलितेन्दुकलावतंसं,
तद्रूपमम्ब! कृतिनस्तरुणार्कमित्रम् ॥९॥
त्वं प्राप्य मन्मथरिपोर्वपुरर्द्धभागं
सृष्टिं करोमि जगतामिति वेदवादः ।
सत्यं तदद्रितनये जगदेकमात-
र्नो चेदशेषजगतः स्थितिरेव न स्यात् ॥१०॥
पूजां विधाय कुसुमैः सुरपादपानां
पीठे तवाम्ब कनकाचलगह्वरेषु ।
गायन्ति सिद्धवनिताः सह किन्नरीभि-
रास्वादितासववसारुणनेत्रपद्माः ॥११॥
विद्युद्विलासवपुषः श्रियमुद्वहन्तीं
यान्तीं स्ववासभवनाच्छिवराजधानीम् ।

सौषुम्नवर्त्मकमलानि विकाशयन्तीं
देवीं भजे हृदि परामृतषिक्तगात्रीम् ॥१२॥
आनन्दजन्मभवनं भवनं श्रुतीनां
चैतन्यमात्रतनुमम्ब तवाश्रयामि ।
ब्रह्मेशविष्णुभिरुपासितपादपद्मां
सौभाग्यजन्मवसतिं त्रिपुरे यथावत् ॥१३॥
शब्दार्थभाविभुवनं सृजतीन्दुरूपा
या तद्बिभर्त्ति पुनरर्कतनुस्वशक्त्या ।
वह्न्यात्मिका हरति तत्सकलं युगान्ते
तां शारदां मनसि जातु न विस्मरामि ॥१४॥
नारायणीति नरकार्णवतारिणीति
गौरीति खेदशमनीति सरस्वतीति ।
ज्ञानप्रदेति नयनत्रयभूषितेति
त्वामद्रिराजतनये बहुधा भणन्ति ॥१५॥
ये स्तुवन्ति जगन्मातः श्लोकैर्द्वादशभिः क्रमात् ।
त्वामम्ब प्राप्य वाक्सिद्धिं प्राप्नुयुस्ते परां गतिम् ॥१६॥

इति भैरवीतन्त्रे भैरवीस्तवराजः समाप्तः

अथ भैरवीकवचम्

देव्युवाच

भैरव्याः सकला विद्याः श्रुताश्चाधिगता मया ।
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि कवचं यत् पुरोदितम् ॥१॥
त्रैलोक्यविजयं नाम शस्त्रास्त्रविनिवारकम् ।
त्वत्तः परतरो नाथ! कः कृपां कर्त्तुमर्हति ॥२॥

ईश्वर उवाच

शृणु पार्वति वक्ष्यामि सुन्दरि प्राणवल्लभे! ।
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥३॥
पठित्वा धारयित्वेदं त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
जघान सकलान् दैत्यान् यद्धृत्वा मधुसूदनः ॥४॥

ब्रह्मा सृष्टिं वितनुते यद्वा त्वाभीष्टदायकम् ।
धनाधिपः कुबेरोऽपि वासवस्त्रिदशेश्वरः ॥५॥
यस्य प्रसादादीशोऽहं त्रैलोक्यविजयी विभुः ।
न देयं परशिष्येभ्योऽसाधकेभ्यः कदाचन ॥६॥
पुत्रेभ्य किमुतान्येभ्यो दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् ।
भैरव्याः कवचस्य ऋषिर्दक्षिणामूर्त्तिरिव च ॥७॥
विराट्छन्दो जगद्धात्री देवता बालभैरवी ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥८॥
अधरो बिन्दुमानाद्यः कामः शक्री शशीयुतः ।
भृगुर्मनुस्वरयुतः सर्गी बीजत्रयात्मिका ॥९॥
बालैषा मे शिरः पातु बिन्दुनादयुतापि सा ।
भालं पातु कुमारी सा सर्गहीना कुमारिका ॥१०॥
दृशौ पातु च वाग्बीजं कर्णयुग्मं सदावतु ।
कामबीजं सदा पातु घ्राणयुग्मं सदावतु ॥११॥
सरस्वतीप्रदा बाला जिह्वां पातु शुचिप्रभा ।
हसैं कण्ठं हसकलरीं स्कन्धं पातु हसौर्भुजौ ॥१२॥
पञ्चमी भैरवी पातु करौ ह्सरैं सदावतु ।
हृदयं हसकलरीं वक्षः पातु हसरौः स्तनौ ॥१३॥
पातु मां भैरवी देवी चैतन्यरूपिणी मम ।
हंस्त्रैं पातु सदा पार्श्वयुग्मं हसकलरीं सदा ॥१४॥
कुक्षिं पातु हसौर्मध्यं भैरवी भुवि दुर्लभा ।
ऐं ईं औं मे मध्यदेशं बीजविद्या सदावतु ॥१५॥
हसैं पृष्ठं सदा पातु नाभिं हसकलरीं सदा ।
पातु हसौः कटिदेशं षट्कूटा भैरवी मम ॥१६॥
हसरैं सक्थिनी पातु हसकलरीं सदावतु ।
गुह्यदेशं हेसौः पातु जानुनी भैरवी मम ॥१७॥
सम्पत्प्रदा सदा पातु हसैं जङ्घे हसरीं पदम् ।
पातु हसौः सर्वदेहं भैरवी सर्वदावतु ॥१८॥
हसैं मामवतु प्राच्यां हसकलरीं पावकेऽवतु ।
हसौः मे दक्षिणे पातु भैरवी चक्रसंस्थिता ॥१९॥
ह्रीं क्लीं ब्लूं मां सदा पातु नैर्ऋत्यां चक्रभैरवी ।
हसैं हसकलह्रीं हसरौं पश्चिमे पातु भैरवी ॥२०॥

क्रीं क्रीं क्रीं पातु वायव्ये हूं हूं पातु सदोत्तरे ।
ह्रीं ह्रीं पातु सदैशान्ये दक्षिणे कालिकेऽवतु ॥२१॥
ऊर्ध्वं प्रागुक्तबीजानि रक्षन्तु मामधःस्थले ।
दिग्विदिक्षु स्वाहा पातु कालिका खड्गधारिणी ॥२२॥
ॐ ह्रीं स्त्रीं हुं फट् सा तारा सर्वत्र मां सदावतु ।
संग्रामे कानने दुर्गे तोये तरङ्गदुस्तरे ॥२३॥
खड्गकर्त्रीधरा सोग्रा सदा मां परिरक्षतु ।
इति ते कथितं देवि सारात्सारतरं महत् ॥२४॥
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ।
य पठेत्प्रयतो भूत्वा पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥२५॥

इति रुद्रयामले देवीश्वरसंवादे त्रैलोक्यविजयं नाम भैरवीकवचं समाप्तम्

कालीस्तवः

श्रीमहाकाल उवाच

कर्पूरं मध्यमान्त्यस्वरपरिरहितं सेन्दुवामाक्षियुक्तं
बीजन्ते मातरेतस्त्रिपुरवधू त्रिःकृतं ये जपन्ति ।
तेषां गद्यानि पद्यानि च मुखकुहरादुल्लसन्त्येव वाचः
स्वच्छन्दं ध्वान्तधाराधररुचिरुचिरे सर्वसिद्धिं गतानाम् ॥१॥
ईशानः सेन्दुवामश्रवणपरिगतो बीजमन्यन्महेशि
द्वन्द्वन्ते मन्दचेता यदि जपति जनो वारमेकं कदाचित् ।
जित्वा वाचामधीशं धनदमपि चिरं मोहयन्नम्बुजाक्षी-
वृन्दं चन्द्रार्द्धचूड़े प्रभवति स महाघोरबाणावतंसे ॥२॥
ईशो वैश्वानरस्थः शशवरविलसद्वामनेत्रेण युक्तो
बीजन्ते द्वन्द्वमन्यद्विगलितचिकुरे कालिके ये जपन्ति ।
द्वेष्टारं घ्नन्ति ते च त्रिभुवनमपि ते वश्यभावं नयन्ति
सृक्वद्वन्द्वास्त्रधाराद्वयधरवदने दक्षिणे कालिकेति ॥३॥
ऊर्ध्वे वामे कृपाणं करकमलतले छिन्नमुण्डं तथाधः
सव्ये चाभिर्वरञ्च त्रिजगदधहरे दक्षिणे कालिके च ।
जप्त्वैतन्नाम ये वा तव मनुविभवं भावयन्त्ये तदम्ब
तेषामष्टौ करस्थाः प्रकटितवदने सिद्धयन्त्र्यम्बकस्य ॥४॥

वर्गाद्यं वह्निसंस्थं विधुरतिवलितं तत्त्रयं कूर्चयुग्मं
लज्जाद्वन्द्वञ्च पश्चात् स्मितमुखि तदधष्टद्वयं योजयित्वा।
मातर्षे ये जपन्ति स्मरहरमहिले! भावयन्तः स्वरूपं
ते लक्ष्मीलास्यलीलाकमलदलदृशः कामरूपा भवन्ति ॥५॥
प्रत्येकं वा त्रयं वा द्वयमपि च परं बीजमत्यन्तगुह्यं
तन्नाम्ना योजयित्वा सकलमपि सदा भावयन्तो जपन्ति।
तेषां नेत्रारविन्दे विहरति कमला वक्त्रशुभ्रांशुबिम्बे
वाग्देवी देवि मुण्डस्रगतिशयलसत् कण्ठिपीनस्तनाढ्ये ॥६॥
गतासूनां बाहुप्रकरकृतकाञ्चीपरिलसन्
नितम्बां दिग्वस्त्रां त्रिभुवनविधात्रीं त्रिनयनाम्।
श्मशानस्थे तल्पे शवहृदि महाकालसुरत-
प्रसक्तां त्वां ध्यायञ्जननि जड़चेता अपि कविः ॥७॥
शिवाभिर्घोराभिः शवनिवहमुण्डास्थिनिकरैः
परं सङ्कीर्णायां प्रकटितचितायां हरवधूम्।
प्रविष्टां सन्तुष्टामुपरिसुरतेनातियुवतीं
सदा त्वां ध्यायन्ति क्वचिदपि न तेषां परिभरः ॥८॥
वदामस्ते किं वा जननि! वयमुच्चैर्जडधियो
न धाता नापीशो हरिरपि न ते वेत्ति परमम्।
तथापि त्वद्भक्तिर्मुखरयति चास्माकमसि ते
तदेतत् क्षन्तव्यं न खलु पशुरोषः समुचितः ॥९॥
समन्तादापीनस्तनजघनधृग्यौवनवती-
रतासक्तो नक्तं यदि जपति भक्तस्तव मनूम्।
विवासास्त्वां ध्यायन् गलितचिकुरस्तस्य वशगाः
समस्ताः सिद्धौघा भुवि चिरतरं जीवति कविः ॥१०॥
समाः सुस्थीभूतां जपति विपरीतां यदि सदा
विचिन्त्य त्वां ध्यायन्नतिशयमहाकालसुरताम्।
तदा तस्य क्षोणीतलविहरमाणस्य विदुषः
कराम्भोजे वश्या हरवधू महासिद्धिनिवहाः ॥११॥
प्रसूते संसारं जननि! जगतीं पालयति च
समस्तं क्षित्यादि प्रलयसमये संहरति च।
अतस्त्वं धातापि त्रिभुवनपतिः श्रीपतिरपि
महेशोऽपि प्रायः सकलमपि किं स्तौमि भवतीम् ॥१२॥

अनेके सेवन्ते भवदधिकगीर्वाणनिवहान्
विमूढास्ते मातः किमपि न हि जानन्ति परमम्।
समाराध्यामाद्यां हरिहरविरिञ्च्यादिविबुधैः
प्रपन्नोऽस्मि स्वैरं रतिरसमहानन्दनिरताम् ॥१३॥
धरित्रीकीलालं शुचिरपि समीरोऽपि गगनं
त्वमेका कल्याणी गिरीशरमणी कालि सकलम्।
स्तुतिः का ते मातस्तव करुणया मामगतिकं
प्रसन्ना त्वं भूया भवमनु न भूयान्मम जनुः ॥१४॥
श्मशानस्थं सुस्थो गलितचिकुरो दिकपटधरः
सहस्रस्त्वर्काणां निजगलितवीर्येण कुसुमम्।
जपं स्वत् प्रत्येकं मनुमपि तव ध्याननिरतो
महाकालि! स्वैरं स भवति धरित्री परिवृढः ॥१५॥
गृहे सम्मार्जन्या परिगलितवीर्यं हि चिकुरं
समूलं मध्याह्ने वितरति चितायां कुजदिने।
समुच्चार्य प्रेम्णा मनुमपि सकृत्कालि सततं
गजारूढो याति क्षितिपरिवृढः सत्कविवरः ॥१६॥
स्वपुष्पैराकीर्णं कुसुमधनुषो मन्दिरमहो
पुरो ध्यायं ध्यायं जपति यदि भक्तस्तव मनूम्।
स गन्धर्वश्रेणीपतिरपि कवित्वामृतनदी
न दीनः पार्यन्ते परमपदलीनः प्रभवति ॥१७॥
त्रिपञ्चारे पीठे शवशिवहृदि स्मेरवदनां
महाकालेनोच्चैर्मदनरसलावण्यनिरताम्।
समासक्तो नक्तं स्वयमपि रतानन्दनिरतो
जनो यो ध्याये त्वा मयि जननि स स्यात्स्मरहरः ॥१८॥
सलोमास्थि स्वैरं पललमपि मार्जारमसिते
परञ्चोष्ट्रं मेषं नरमहिषयोश्छागमपि वा।
बलिन्ते पूजायामपि वितरतां मर्त्त्यवसतां
सतां सिद्धिः सर्वा प्रतिपदमपूर्वा प्रभवति ॥१९॥
वशी लक्षं मन्त्रं प्रजपति हविष्याशनरतो
दिवा मातर्युष्मच्चरणयुगलध्याननिपुणः।
परं नक्तं नग्नो निधुवनविनोदेन च मनुं
जपेल्लक्षं स स्यात्स्मरहरसमानः क्षितितले ॥२०॥

इदं स्तोत्रं मातस्तव मनुसमुद्धारणजनुः
स्वरूपाख्यं पादाम्बुजयुगलपूजाविधियुतम् ।
निशार्द्धे वा पूजासमयमधि वा यस्तु पठति
प्रलापस्तस्यापि प्रसरति कवित्वामृतरसः ॥२१॥
कुरङ्गाक्षीवृन्दं तमनुसरति प्रेमतरलं
वशस्तस्य क्षोणीपतिरपि कुबेरप्रतिनिधिः ।
रिपुः कारागारं कलयति च तं केलिकलया
चिरं जीवन्मुक्तः स भवति च भक्तः प्रतिजनुः ॥२२॥

इति वीरतन्त्रे परमरहस्ये स्वरूपाख्यस्तोत्रं समाप्तम्

अथ शिवस्तवः

धरापोऽग्निमरुद्व्योममखेशेन्द्वर्कमूर्त्तये ।
सर्वभूतान्तरस्थाय शङ्कराय नमो नमः ॥१॥
श्रुत्यन्तःकृतवासाय श्रुतये श्रुतजन्मने ।
अतीन्द्रियाय महसे शाश्वताय नमो नमः ॥२॥
स्थूलसूक्ष्मविभागाभ्यामनिर्देश्याय शम्भवे ।
भवाय भवभूताय दुःखहन्त्रे नमोऽस्तु ते ॥३॥
तर्कागमादिभूताय तपसां फलदायिने ।
चतुर्वर्गवदान्याय सर्वज्ञाय नमो नमः ॥४॥
आदिमध्यान्तशून्याय निरस्ताशेषभीतये ।
योगिध्येयाय महते निर्गुणाय नमो नमः ॥५॥
विश्वात्मनेऽविचिन्त्याय विलसच्चन्द्रमौलये ।
कन्दर्पदर्पनाशाय कालहन्त्रे नमो नमः ॥६॥
विषाशनाय विहरद्वृषस्कन्धमुपेयुषे ।
सरिद्धामसमाबद्धकपर्दाय नमो नमः ॥७॥
शुद्धाय शुद्धभावाय शुद्धानामन्तरात्मने ।
पुरान्तकाय पूर्णाय पुण्यनाम्ने नमो नमः ॥८॥
तुष्टाय निजभक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रदायिने ।
विवाससेऽनिवासाय विश्वशास्त्रे नमो नमः ॥९॥
त्रिमूर्त्तेर्मूलभूताय त्रिनेत्रायादिशम्भवे ।
त्रिधाम्नां धामरूपाय जन्मघ्नाय नमो नमः ॥१०॥

देवासुरशिरोरत्नकिरणारुणिताङ्घ्रये ।
कान्ताय निजकान्तायै दत्तार्द्धाय नमो नमः ॥११॥
स्तोत्रेणानेन पूजायां प्रीणयेज्जगतां पतिम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं भक्त्या सर्वज्ञं परमेश्वरम् ॥१२॥
तस्यासाध्यं त्रिभुवने न किञ्चिदपि वर्त्तते ।
ऐहिकं किं फलं तत्र मुक्तिरेव करे स्थितः ॥१३॥

इति शिवस्तोत्रं समाप्तम्

अथ शिवकवचम्

श्रीभगवानुवाच

प्रसादमन्त्रकवचस्य वामदेवऋषिः स्मृतः ।
पङ्क्तिश्छन्दश्च देवेशि सदाशिवोऽत्र देवता ।
साधकाभीष्टसिद्धौ च विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥१॥
ॐ शिरो मे सर्वदा पातु प्रसादाख्यः सदाशिवः ।
षड्क्षरस्वरूपो मे वदनन्तु महेश्वरः ॥२॥
अष्टाक्षरशक्तिरुद्धश्चक्षुषी मे सदावतु ।
पञ्चाक्षरात्मा भगवान् भुजौ मे परिरक्षतु ॥३॥
मृत्युञ्जयस्त्रिबीजात्मा आयु रक्षतु मे सदा ।
वटमूले समासीनो दक्षिणामूर्त्तिरव्ययः ॥४॥
सदा मां सर्वतः पातु षट्त्रिंशार्णस्वरूपधृक् ।
द्वाविंशार्णात्मको रुद्रः कुक्षि मे परिरक्षतु ॥५॥
त्रिवर्णात्मा नीलकण्ठः कण्ठं रक्षतु सर्वदा ।
चिन्तामर्णिर्बीजरूपो अर्द्धनारीश्वरो हरः ॥६॥
सदा रक्षतु मे गुह्यं सर्वसम्पत्प्रदायकः ।
एकाक्षरः स्वरूपात्मा कूटरूपी महेश्वरः ॥७॥
मार्त्तण्डभैरवो नित्यं पादौ मे परिरक्षतु ।
तुम्बुराख्यो महाबीजस्वरूपस्त्रिपुरान्तकः ॥८॥
सदा मां रणभूमौ च रक्षतु त्रिदशाधिपः ।
ऊर्ध्वमूर्द्धानमीशानो मम रक्षतु सर्वदा ॥९॥
दक्षिणस्यां तत्पुरुषोऽव्यान्मे गिरिनायकः ।
अघोराख्यो महादेवः पूर्वस्यां परिरक्षतु ॥१०॥

वामदेवः पश्चिमस्यां सदा मे परिरक्षतु।
उत्तरस्यां सदा पातु सद्योजातस्वरूपधृक् ॥११॥
इत्थं रक्षाकरं देवि कवचं देवदुर्लभम्।
प्रातःकाले पठेद्यस्तु सोऽभीष्टफलमाप्नुयात् ॥१२॥

इति भैरवतन्त्रे सदाशिवकवचं समाप्तम्

●

अथ बटुकस्तोत्रम्

श्रीभगवान् उवाच

शृणु देवि महामन्त्रमापदुद्धारहेतुकम्।
सर्वदुःखप्रशमनं सर्वशत्रुनिर्वहणम् ॥१॥
अपस्मारादिरोगाणां ज्वरादीनां विशेषतः।
नाशनं स्मृतिमात्रेण मन्त्रराजमिमं प्रिये ॥२॥
ग्रहराजभयानाञ्च नाशनं सुखवर्द्धनम्।
स्नेहाद्वक्ष्यामि ते मन्त्रं सर्वसारमिमं प्रिये ॥३॥
सर्वकामार्थदं देवि राज्यभोगप्रदं नृणाम्।
आपदुद्धारणं मन्त्रं वक्ष्यामीति विशेषतः ॥४॥
प्रणवं पूर्वमुच्चार्य देवीप्रणवमुद्धरेत्।
बटुकायेति वै पश्चादापदुद्धरणाय च ॥५॥
कुरुद्वयं ततः पश्चाद् बटुकाय पुनः क्षिपेत्।
देवीप्रणवमुद्धृत्य मन्त्रोद्धारमिमं प्रिये ॥६॥
मन्त्रोद्धारमिमं देवि त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम्।
धर्मार्थकामदं मन्त्रं राज्यभोगप्रदं नृणाम् ॥७॥
अप्रकाश्यमिमं मन्त्रं सर्वशक्तिसमन्वितम्।
स्मरणादेव मन्त्रस्य भूतप्रेतपिशाचकाः।
विद्रवन्ति भयार्त्ता वै कालरुद्रादिव प्रजाः ॥८॥
पठेद्वा पाठयेद्वापि पूजयेद्वापि पुस्तकम्।
नाग्निचौरभयं वापि ग्रहराजभयं तथा ॥९॥
न च मारीभयन्तस्य न च भूतभयं तथा।
न शत्रुभ्यो भयं तस्य सर्वत्र सुखवान् भवेत् ॥१०॥

अथ बटुकभैरवस्तवराजः

श्रीभगवानुवाच

यस्तु सङ्कीर्त्तयेदेतत् सर्वदुष्टनिबर्हणम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति साधकः सिद्धिमेव च ॥१॥
शृणु देवि! प्रवक्ष्यामि भैरवस्य महात्मनः ।
आपदुद्धारकस्येह नामाष्टशतमुत्तमम् ॥२॥
यानि संकीर्त्तयेन्मर्त्यः सर्वदुःखविवर्जितः ।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वापद्विनिवारणम् ॥३॥
सर्वकामार्थदं देवि साधकानां सुखावहम् ।
देहाङ्गन्यासनञ्चैव पूर्वं कुर्यात् समाहितः॥४॥
भैरवं मूर्ध्नि विन्यस्य ललाटे भीमदर्शनम् ।
अक्ष्णोर्भूताश्रयं न्यस्य वदने तीक्ष्णदर्शनम् ॥५॥
क्षेत्रपं कर्णयोर्मध्ये क्षेत्रपालं हृदि न्यसेत् ।
क्षेत्राख्यं नाभिदेशे तु कट्यां सर्वाघनाशनम् ॥६॥
त्रिनेत्रभूर्वा विन्यस्य जङ्घयो रक्तपाणिकम् ।
पादयोर्देवदेवेशं सर्वाङ्गे बटुकं न्यसेत् ॥७॥
एवं न्यासविधिं कृत्वा तदनन्तरमुत्तमम् ।
पठेदेकमनाः स्तोत्रं नामाष्टशतसंज्ञकम् ॥८॥
नामाष्टशतकस्यापि छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ।
बृहदारण्यको नाम ऋषिश्च परिकीर्त्तितः ॥९॥
देवता कथितो चेह सद्भिर्वटुकभैरवः ।
सर्वकामार्थसिद्ध्यर्थे विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥१०॥
भैरवो भूतनाथश्च भूतात्मा भूतभावनः ।
क्षेत्रदः क्षेत्रपालश्च क्षेत्रज्ञः क्षत्रियो विराट् ॥११॥
श्मशानवासी मांसाशी खर्पराशी मखान्तकृत् ।
रक्तपः प्राणपः सिद्धः सिद्धिदः सिद्धसेवितः ॥१२॥
करालः कालशमनः कलाकाष्ठातनुः कविः ।
त्रिनेत्रो बहुनेत्रश्च तथा पिङ्गललोचनः ॥१३॥
शूलपाणिः खड्गपाणिः कङ्काली धूम्रलोचनः ।
अभीरुर्भैरवो भीमो भूतपो योगिनीपतिः ॥१४॥

धनदो धनहारी च धनदः प्रतिभानवान्।
नागहारो नागकेशो व्योमकेशः कपालभृत् ॥१५॥
कालः कपालमाली च कमनीयः कलानिधिः।
त्रिलोचनो ज्वलन्नेत्रस्त्रिशिखी च त्रिलोकपात् ॥१६॥
त्रिवृत्तनयनो डिम्भः शान्तः शान्तजनप्रियः।
बटुको बटुकेशश्च खट्वाङ्गवरधारकः ॥१७॥
भूताध्यक्षः पशुपतिर्भिक्षुकः परिचारकः।
धूर्त्तो दिगम्बरः शौरिर्हरिणः पाण्डुलोचनः ॥१८॥
प्रशान्तः शान्तिदः शुद्धः शङ्करः प्रियबान्धवः।
अष्टमूर्त्तिर्निधीशश्च ज्ञानचक्षुस्तमोमयः ॥१९॥
अष्टाधारः सर्पयुक्तः शशी विषधरः शिवः।
भूधरो भूतराधीशो भूपतिर्भूतधारकः ॥२०॥
कङ्कालधारी मुण्डी च नागयज्ञोपवीतवान्।
जृम्भणो मोहनः स्तम्भो मारणः क्षोभणस्तथा ॥२१॥
शुद्धनीलाञ्जनप्रख्यदेहो मुण्डविभूषितः।
बलिभुग्बलिभूतात्मा कामी कामः पराक्रमः ॥२२॥
सर्वापत्तारको दुर्गो दुष्टभूतनिषेवितः।
काली कलानिधिः कान्तः कामिनी वशकृद्वशी ॥२३॥
सर्वसिद्धिप्रदो वैद्यः प्रभविष्णुः प्रभाववान्।
अष्टोत्तरशतं नाम भैरवस्य महात्मनः ॥२४॥
मया ते कथितं देवि रहस्यं सर्वकामदम्।
य इदं पठति स्तोत्रं नामाष्टशतमुत्तमम् ॥२५॥
न तस्य दुरितं किञ्चिन्न रोगेभ्यो भयं तथा।
न शत्रुभ्यो भयं किञ्चित्प्राप्नोति मानवः क्वचित् ॥२६॥
पातकानां भयं नैव पठेत् स्तोत्रमनन्यधीः।
मारीभये राजभये तथा चौराग्निजे भये ॥२७॥
औत्पातिके महाघोरे तथा दुःस्वप्नजे भये।
बन्धने च महाघोरे पठेत् स्तोत्रं समाहितः ॥२८॥
सर्वे प्रशमनं यान्ति भयाद् भैरवकीर्त्तनात्।
एकादशसहस्रन्तु पुरश्चरणमिष्यते ॥२९॥
त्रिसन्ध्यं यः पठेद्देवि! संवत्सरमतन्द्रितः।
स सिद्धिं प्राप्नुयादिष्टां दुर्लभामपि मानुषः ॥३०॥

षण्मासान् भूमिकामस्तु स जप्त्वा लभते महीम्।
राजा शत्रुविनाशाय जपेन्मासाष्टकं पुनः ॥३१॥
रात्रौ वारत्रयञ्चैव नाशयत्येव शास्त्रवान्।
जपेन्मासत्रयं रात्रौ राजानं वशमानयेत् ॥३२॥
धनार्थी च सुतार्थी च दारार्थी यस्तु मानवः।
पठेद्वारत्रयं यद्वा वारमेकं तथा निशि ॥३३॥
धनं पुत्रांस्तथा दारान् प्राप्नुयान्नात्र संशयः।
ध्यानं वक्ष्यामि देवस्य यथा ध्यात्वा पठेन्नरः ॥३४॥
शुद्धस्फटिकसकाशं सहस्रादित्यवर्चसम्।
अष्टबाहुं त्रिनयनं चतुर्बाहुं द्विबाहुकम् ॥३५॥
भुजङ्गमेखलं देवमग्निवर्णं शिरोरुहम्।
दिगम्बरं कुमारीशं बटुकाख्यं महाबलम् ॥३६॥
खट्वाङ्गमसिपाशञ्च शूलञ्चैव तथा पुनः।
डमरुञ्च कपालञ्च वरदं भुजगं तथा ॥३७॥
नीलजीमूतसङ्काशं नीलाञ्जनचयप्रभम्।
दंष्ट्राकरालवदनं नूपुराङ्गदसङ्कुलम् ॥३८॥
आत्मवर्णसमोपेतसारमेयसमन्वितम्।
ध्यात्वा जपेत्सुसंहृष्टः सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥३९॥
ॐ करकलितकपालं कुण्डलीदण्डपाणि-
स्तरुणतिमिरनीलो व्यालयज्ञोपवीती।
क्रतुसमयसपर्याः विघ्नविच्छेदहर्त्ता
जयति बटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम् ॥४०॥

इति विश्वसारे आपदुद्धारकल्पे बटुकभैरवस्तवराजः समाप्तः

●

अथ योगप्रक्रिया

(नियम है कि योगक्रिया विना गुरु के नहीं करनी चाहिये; अतएव यहाँ अनुवाद करने का कोई प्रयोजन नहीं है)

गौतमीये—

गौतम उवाच

देवर्षे योगयुक्तात्मन् योगानुभवदर्शक! ।
सांख्ययोगविशेषज्ञ कर्मयोगनिषेवक ॥

विना योगं न सिद्ध्येत्तु कुण्डलीचंक्रमः प्रभो।
मूलपद्मे कुण्डलिनी यावन्निद्रायिता प्रभो! ।
तावत् किञ्चिन्न सिद्ध्यन्ते यन्त्रमन्त्रार्चनादिकम्॥
जागर्त्ति यदि सा देवी बहुभिः पुण्यसञ्चयैः।
तदा प्रसादमायान्ति यन्त्रमन्त्रार्चनादयः।
शिववद्विहरेल्लोकेष्वष्टैश्वर्यसमन्वितः ।
योगयोगाद्भवेन्मुक्तिर्मन्त्रसिद्धिरखण्डितः ॥
सिद्धे मनौ परावाप्तिरिति शास्त्रार्थनिर्णयः।
तस्मात् कार्यं परं योगं कथयस्व मुनीश्वर! ।
मुक्तात्मा येन विहरेत् स्वर्गे मर्त्ये रसातले।
जीवन्मुक्तश्च देहान्ते निर्वाणपदमाप्नुयात्॥

नारद उवाच

कथयामि तव स्नेहात् योगयोग्योऽसि गौतम!
संसारोत्तारणे युक्तिर्योगशब्देन कथ्यते।
ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः।
तव स्नेहात्समाख्याता योगे विघ्नकरास्त्विमे।
कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यसंज्ञकाः ।
योगाङ्गैरेभिर्निर्जित्य योगिनो योगमाप्नुयुः।
यमं नियममासनप्राणायामौ ततः परम्।
प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं सार्द्धं समाधिना।
अष्टाङ्गान्याहुरेतानि योगिनो योगसाधने।
अहिंसासत्यमस्त्येयब्रह्मचर्यं दयार्जवम्।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचञ्चेति यदा दश॥
तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम्।
सिद्धान्तश्रवणञ्चैव ह्रीमतिश्च जपो हुतम्।
दशैते नियमा प्रोक्ता योगशास्त्रविशारदैः॥
आसननि पूर्वमुक्तानि।
इड़याकर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया।
धारयेत्पूरितं योगी चतुःषष्ट्या च मात्रया॥
सुषुम्नामध्यगं सम्यग् द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः।
नाड्या पिङ्गलया चैनं रेचयेद्योगवित्तमः॥

प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः ।
भूयोभूयः क्रमात्तस्य व्यत्ययेन समाचरेत् ॥
मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यक् द्वादश षोडश ।
प्राणायामो हि द्विविधः सगर्भोऽगर्भ एव च ।
जपध्यानादिभिर्युक्तं सगर्भं तं विदुर्बुधाः ॥
तदपेतं विगर्भञ्च प्राणायामं परे विदुः ।
क्रमादभ्यसतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः ।
मध्यमः कम्पसंयुक्तो भूमित्यागः परो मतः ।
उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमीष्यते ॥
इन्द्रियाणां विचरतां विशेषेषु निरर्गलम् ।
बलादाहरणन्तेभ्यः प्रत्याहारोऽभिधीयते ।
अङ्गुष्ठगुल्फजानूरूसीमनीलिङ्गनाडिषु ।
हृद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु लम्बिकायां तथा नसि ॥
भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशान्ते यथाविधि ।
धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते ।
समाहितेन मनसा चैतन्यान्तरवर्त्तिना ।
आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते ॥
समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः ।
समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम् ।
इत्यादिकथितं विप्र कामादिषट्कनाशनम् ।
इदानीं कथये तेऽहं मन्त्रयोगमनुत्तमम् ।
विश्वं शरीरमित्युक्तं पञ्चभूतात्मकं मुने ।
चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ।
तिस्रः कोट्यस्तदर्द्धेन शरीरे नाड्यो मताः ।
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्तासु तिस्रो व्यवस्थिताः ।
प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी ।
इड़ा यामे स्थिता नाडी शुक्ला तु चन्द्ररूपिणी ।
शक्तिरूपा च सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा ।
दाडिमी कुसुमप्रख्या विषाख्या मुनिभिः स्मृताः ।
मेरुमध्ये स्थिता या तु मूलादाब्रह्मविग्रहा ।
सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्ना बहुरूपिणी ।
तस्या मध्ये विचित्राख्या अमृतस्राविणी शुभा ॥

सर्वदेवमयी सा तु योगिनां हृदयङ्गमा ।
विसर्गाद्विन्दुपर्यन्तं व्याप्य तिष्ठति तत्त्वतः ॥
मूलाधारे त्रिकोणाख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मके ।
मध्ये स्वयम्भुलिङ्गन्तु कोटिसूर्यसमप्रभम् ।
तदूर्ध्वे कामबीजन्तु कलशान्तीन्दुनादकम् ।
तदूर्ध्वे तु शिखाकारा कुण्डली ब्रह्मविग्रहा ।
तद्वाह्ये हेमवर्णानां रसवर्णचतुर्दलम् ।
द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विभावयेत् ॥
तदूर्ध्वेऽग्निसमप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम् ।
वादिलान्तषड़र्णेन युक्ताधिष्ठानसंज्ञकम् ॥
मूलमाधारषट्कानां मूलाधारं ततो विदुः ।
स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः ॥
तदूर्ध्वे नाभिदेशे तु मणिपूरं महत्प्रभम् ।
मेघाभं विद्युदाभञ्च रत्नतेजोमयं ततः ।
तत्पद्मं मणिवद्भिन्नं मणिपूरं तथोच्यते ।
दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफान्ताक्षरान्वितम् ॥
शिवेनाधिष्ठितं पद्मं विश्वलोकैककारणम् ।
तदूर्ध्वेऽनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम् ॥
कादिठान्ताक्षरैरर्कपत्रैश्च समधिष्ठितम् ।
तन्मध्ये बाणलिङ्गन्तु सूर्यायुतसमप्रभम् ।
शब्दब्रह्ममयं शब्दोऽनाहतस्तत्र दृश्यते ।
तेनानाहतपद्मं तन्मुनिभिः परिकीर्त्तिते ।
आनन्दसदनं तत्तु पुरुषाधिष्ठितं परम् ।
तदूर्ध्वन्तु विशुद्धाख्यं दलं षोडशपङ्कजम् ।
स्वरैः षौडशकैर्युक्तं धूम्रवर्णं महत्प्रभम् ।
विशुद्धिं तनुते यस्माज्जीवस्य हंसलोकनात् ।
विशुद्धिं पद्ममाख्यातं आकाशाख्यं महत्परम् ।
आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वे तु आत्मनाधिष्ठितं परम् ।
इक्षवर्ण समायुक्तं द्विदलं शुक्लभास्वरम् ।
आज्ञासंक्रमणं तत्र गुरोराज्ञेति कीर्त्तितम् ।
कैलाशाख्यं तदूर्ध्वे तु बोधनीन्तु तदूर्ध्वतः ।

एवञ्च शिवचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रते।
सहस्राराम्बुजं बिन्दुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम्॥
इत्येतत् कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम्।
आदौ पूरकयोगेन स्वाधारे योजयेन्मनः॥
गुदमेढ्रान्तरे शक्तिं तामाकुञ्च्य प्रबोधयेत्।
लिङ्गभेदे क्रमेणैव बिन्दुचक्रन्तु प्रापयेत्॥
शम्भुना तां पराशक्तिमेकीभावं विचिन्तयेत्।
पाययित्वा च तां शक्तिं कृष्णाख्यां योगसिद्धिदाम्।
षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया॥
आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं ततो सुधीः।
एवमभ्यस्यमानस्य अहन्यहनि मारुतम्।
जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात्।
पूर्वोक्तदूषिता मन्त्राः सर्वे सिद्ध्यन्ति नान्यथा॥
ये गुणाः सन्ति देवस्य पञ्चकृत्यविधायिनः।
ते गुणाः साधकवरे भवन्त्येव च नान्यथा।
इत्येतत् कथितं सर्वं वायोर्धारणमुत्तमम्।
इदानीं धारणाख्यान्तु शृणुष्वावहिता मुने॥
दिक्कालाद्यनवच्छिन्ने कृष्णे चेतो निधाय च।
तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवब्रह्मैक्ययोजनात्॥
अथवा समलं चित्तं यदा क्षिप्रं न सिध्यति।
तदावयवयोगेन योगी योगान् समभ्यसेत्।
पादाम्भोजे मनो दद्यान्नखकिञ्जल्कचित्रिते।
जङ्घायुग्मे तथारामकदलीकाण्डशोभिते।
ऊरूद्वये मत्तहस्तीकरदण्डसमप्रभे।
गङ्गागर्त्तगभीरे तु नाभौ सिद्धबिले ततः॥
उदरे वक्षसि तथा हारे श्रीवत्सकौस्तुभे।
पूर्णचन्द्रायुतप्रख्ये ललाटे चारुकुन्तले॥
शङ्खचक्रगदाम्भोजे दोर्दण्डपरिमण्डिते।
सहस्रादित्यसङ्काशे किरीटकुण्डलद्वये॥
स्थाने नियोजयेन्मन्त्री विशुद्धः शुद्धचेतसा।
मनो निवेश्य कृष्णे वै तन्मयो भवति ध्रुवम्॥

यावन्मनो लयं याति कृष्णे स्वात्मनि चिन्मये।
तावदिष्टमनुर्मन्त्री जपहोमं समभ्यसेत्।
अतः परं न किञ्चिच्च कृत्यमस्ति तथा हरेः।
विदिते परतत्त्वे तु समस्तैर्नियमैरलम्॥
तालवृन्तेन किं कार्यं लब्धे मलयमारुते।
कृष्ण इत्युपलक्षणम्।

ज्ञानयोगः

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मकपञ्चभूतात्मकं शरीरम्। तत्र शरीरे सार्द्धकोटित्रयी नाडी सर्वाऽधोमुखी। तासु मुख्या दश—इडा पिङ्गला सुषुम्ना गान्धारी हस्तिजिह्वा पयस्विनी अनुकूला कुहूः शङ्खिनी चेति। तास्वपि मुख्यास्तिस्रः—इड़ा पिङ्गला सुषुम्ना चेति। तासु च मध्ये मेरुदण्डस्य वामे इडा शुक्लवर्णा च रूपिणी अमृतमयी शक्तिरूपा, दक्षिणे पिङ्गला रक्तवर्णा सूर्यरूपिणी विषमयी पुंरूपा। मेरुदण्डमध्ये सुषुम्ना सर्वतेजोमयी सान्ध्रा सोमसूर्याग्निरूपिणी। सा च शिफाभ्यां पादाङ्गुष्ठद्वयं संयुज्याऽधोमुखीभूय शिरसा मूलाधारस्थशिवलिङ्गाग्रपर्यन्तं व्याप्य तिष्ठति। सुषुम्नास्ये तान्यधोमुखानि मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धाज्ञाख्यानि षट्पद्मानि। यत्तु महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं मितं स्वाधिष्ठाने इत्यादि शङ्कराचार्यपद्ये द्वितीयपद्मस्य मणिपूरत्वकथनम्, तत् स्वाधिष्ठाने कं मणिपूरे हुतवहमिति व्यत्यासान्वयादविरुद्धं छन्दोनुरोधाच्च तथोक्तमिति तत्त्वम्। सुषुम्नामध्ये चित्राख्याऽधोमुखी नाड़ी अमृतस्राविणी सर्वदेवमयी विसर्गाद् बिन्दुपर्यन्तं व्याप्य तिष्ठति। विसर्गः प्रकृतिः। बिन्दुः पुमान्। षण्णां पद्मानां किञ्जल्कमध्ये शक्तिरूपाणि षट् त्रिकोणानि। तेषाञ्च मध्येऽधोमुखानि प्रेतरूपाणि सरन्ध्राणि शिवलिङ्गानि षट्। तेषु मध्ये मूलाधारे स्वयम्भुरनाहते बाणः। आज्ञाचक्रे ईश्वर इति लिङ्गत्रयं प्रधानम्। षट्पत्रेषु ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वरसदाशिवपरमशिवाख्याः षट्शिवाः। ब्रह्मादीनां मूर्त्तयस्तु पूर्वमुक्ताः।

गुदस्थानाद् द्व्यङ्गुलोपरि पीतं पार्थिवं पृथिवीयुक्तं वशषसयुक्तं चतुर्दलाढ्यं डाकिनीदेवताकं मूलाधारपद्मम्। आधारषट्कानां मूलत्वान्मूलाधारमुच्यते। तस्याधस्तेजसं सहस्रदलं रक्तवर्णं तत् किञ्जल्कमध्ये दलमध्ये च शक्तयो विद्युत्प्रभाः। तत्कर्णिकामध्यतश्च कुलदेवी मूलाधारपद्मकर्णिकान्तर्गतत्रिकोणाकारमहायोन्यन्तर्गताधोमुखस्वयम्भुलिङ्गं शङ्खाकारदक्षिणावर्त्तक्रमेण सार्द्धवेष्टनत्रयेणालिङ्ग्याधोमुखतया स्थित्वा सुषुम्नामुखं स्वमुखेनावृत्य स्थिता निद्राणा

प्रसुप्तभुजगाकारा तड़ित्कोटिप्रख्या नीवारशूकवत् तन्वी त्रिकोणस्थानलशिखोपरि स्थिता मूलविद्यामयी कुलकुण्डलिनी वर्त्तते। ततो हुङ्कारेण त्रिकोणमण्डलस्थाग्निना कुलकुण्डलिनीं सजागरां विधाय हंस इति मन्त्रेण सुषुम्नाविवरब्रह्मवर्त्मना चित्रानाड़िकया शिवलिङ्गरन्ध्रद्वारेण लिङ्गान्निष्क्रमया आधारपङ्कजस्य द्व्यङ्गुलोर्ध्वे आप्ये जलवति विद्युदाभे बभमयरलयुक्तषड्दले सावित्रीब्रह्मसहिते राकिनीदेवताके लिङ्गमूलस्थे स्वस्य लिङ्गस्याधिष्ठानतया स्वाधिष्ठाननामके पद्मे तां समानीय तत्रत्यलिङ्गरन्ध्रेण लिङ्गं प्रवेशयित्वा ततो निर्गमय्य स्वाधिष्ठानादेकादशाङ्गुलोपरि तेजसे तेजस्विनि नीलवर्णे डढणतथदधनपफयुक्तदशदलेन लक्ष्मीनारायणसहिते लाकिनीसहिते लाकिनीदेवताके नाभिमूलस्थे मणिपूरके पद्मे समानीय तत्रत्यलिङ्गरन्ध्रेण लिङ्गं प्रवेशयित्वा ततो निर्गमय्य मणिपूराद् द्वादशाङ्गुलोपरि हृदयस्थे वायव्ये वायुमते रक्तवर्णे कखगघङचछजझञटठयुक्तद्वादशे दले पार्वतीशङ्करान्विते मध्यगतकाकिनीदेवताके कालरात्र्यादिशक्त्यावृत्ते नादोद्यानादियुक्तसूर्यबिम्बसहिते अनाहते पद्मे समानीय तत्रत्यलिङ्गरन्ध्रेण लिङ्गं प्रवेशयित्वा ततो निर्गमय्यानाहतादेकादशाङ्गुलोपरि कण्ठदेशस्थे आकाशमये आकाशवति धूम्रवर्णे अकारादिषोडशस्वरयुक्तषोडशदलेन मध्यगतशाकिनीदेवताके विघ्नेश्वरसहिते अमृतादिशक्तियुक्तबाह्यपत्रे चन्द्रबिम्वसहिते विशुद्धाख्ये पद्मे समानीय तत्रत्यलिङ्गरन्ध्रेण लिङ्गं प्रवेशयित्वा ततो निर्गमय्य विशुद्धपद्माच्चतुरङ्गुलोपरि भ्रूमध्यस्थे शुक्लवर्णे हक्षयुक्तदलद्वययुक्तहंसवतीक्षमासहितपार्श्वद्वयके मध्यस्थितहाकिनीदेवताके मालाधिष्ठिते आज्ञाचक्राख्यपद्मे समानीय तत्रत्यलिङ्गरन्ध्रेण लिङ्गं प्रवेशयित्वा ततो निर्गमय्य शिरःस्थितश्वेतसर्ववर्णयुक्तसहस्रदलयुक्तारुणकेशराधोमुखकमलकर्णिकान्तर्गतचक्रमण्डलमध्यस्थत्रिकोणान्तर्गतबिम्बरूपपरमशिवे महामायायुक्ते तत्रत्यलिङ्गं रन्ध्रद्वारेण तां कुलकुण्डलिनीं योजयेत्।

अयं षट्चक्रभेदप्रकारः। एवंक्रमेण कुलकुण्डलिनीं परमशिवे संयोज्य पुनस्तेनैव पथा व्युत्क्रमेण पद्मषट्कं विभिद्य शिवशक्तियोगजनितसुधाधाराप्लावितदेहः सन् पुनस्ताममृतलोलीभूतां मूलाधारमानयेदिति रहस्यार्थः। एतत्प्रमाणन्तु प्रागुक्तेषु समयातन्त्रोक्तान्तर्यागप्रकरणगौतमीयतन्त्रोक्तमन्त्रयोगप्रकरणशारदातिलकोक्तयोगप्रकरणसमयातन्त्रोक्तकर्मयोगप्रकरणेषु यथायथमालोकनीयम्। अधिकञ्च तन्त्रान्तरे—

ध्यायेदाधारपद्मं स्फुरदरुणचतुःपत्रकं वादिसान्तै-
र्वर्णैः पीतं चतुर्भिर्युतमुपरि लसत्कर्णिकायां त्रिकोणे।

शङ्खावर्त्तेभसार्द्धत्रिवलययुतया मण्डितं कुण्डलिन्या
बालार्कद्योतिबिम्बं तदुपरि मिलितां डाकिनीदेवताञ्च ॥
स्वाधिष्ठानं षड्दलोपेतमुद्युद्विद्युत्प्रख्यं वादिलान्तैश्च वर्णैः ।
युक्तं सावित्रीसहायं विरिञ्चिं ध्यायेदस्मिन् राकिनीदेवताञ्च ॥
नीलनीरदनिभे दशपत्रे डादिफान्तदशवर्णसमेते ।
चिन्तयेत्कमलया कमलाक्षं लाकिनीञ्च सहितां मणिपूरे ।
अनाहतं सरोरुहं तरुणरक्तसन्ध्यारुण-
प्रभापटलसङ्कुलं स्फुरत्पार्वतीशङ्करम् ।
प्रतिच्छदसमुल्लसद्द्विदलकादिठान्ताक्षरं
तदन्तरेऽपि चिन्तयेत्त्रिदशवन्दितां काकिनीम् ॥
तदुपरि विशुद्धाख्यां कुन्दावदातसमप्रभं
स्वरपरिणतं मध्ये पत्रं समुज्ज्वलकर्णिकम् ।
कमलममलं विद्येश्वरावपीह निवासिनौ स्थिरमति-
रधिष्ठात्रीं देवीं स्मरेदथ शाकिनीम् ।
आज्ञापुरं द्विदलकं शरदिन्दुकान्ति-
ज्योतिर्मयं सलिलपञ्चमहान्तयुक्तम् ।
श्रीबुद्धिशक्तिसहिता गुरुरत्र देवी
हाकिन्यमन्दनिजशक्तिपरप्रभावा ।
सरोरुहमधोमुखं प्रविलसत् सहस्रच्छदं
क्रमादरुणकेशरं प्रकरभास्वरं निर्मलम् ।
तदन्तरपि चिन्तयेदमृतरोचिषे मण्डले
पुराणपुरुषं परं परिगतं महामायया ॥

तथा—

शान्तिरूपं शिवाकारं सर्वाभ्यासनिजालयम् ।
गुदमेढ्रान्तरं देवि पञ्चाङ्गुलसमुच्छ्रितम् ॥
गुदमेकाङ्गुलं मध्ये द्विरङ्गुलविसारिणम् ।
तस्य मूले महायोनिस्त्रिकोणाकाररूपिणी ॥
सुषुम्ना योनिमध्यस्था तस्य मूले महेश्वरि ।
अधःपद्मं सहस्रारं कर्णिकाकेशरान्वितम् ॥
तेजसं रत्नवद्दीप्तं तद्दलस्थितशक्तिभिः ।

प्रतिकिञ्जल्कसंस्थाभिः शक्तिभिश्च युतं प्रिये।
कर्णिकामध्यतो देवि कुलदेवी च संस्थिता॥

तथा—

आधारपङ्कजं पीतं चतुष्पत्रं सुकेशरम्।
अधोमुखञ्च तन्मध्ये कुण्डली परमेश्वरी॥
स्वयम्भुमध्यगा चिन्त्या यादिवर्णैः समावृता।
पार्थिवं पङ्कजं ह्येतत् तस्याधः पङ्कजं परम्॥
तैजसं परमेशानि तन्मध्ये पीठशक्तयः।
निविष्टाहृष्टमनसो विद्युत्पुञ्जनिभाः स्मरेत्॥
तदूर्ध्वकर्णिकामध्ये विद्धि बिम्बं तदूर्ध्वगम्।
पूर्णपीठञ्च तन्मध्ये डाकिनी संस्थिता शिवे॥
आधारपङ्कजस्योर्ध्वे सार्द्धद्व्यङ्गुलकोपरि।
तैजसं साष्टपत्रञ्च पीतकर्णिकया युतम्॥
हृल्लेखा कर्णिकाध्ये स्थिता लङ्काधिदेवता।
एतस्माद् द्व्यङ्गुलादूर्ध्वं स्वाधिष्ठानं षडस्रकम्॥
आप्यञ्च राकिनीशक्तिः पूर्वाभिः शक्तिभिर्वृतम्।
ततश्च भावयेद्देवि नाभिमेकाङ्गुलोपरि॥
तत्पद्मं मणिपूरञ्च दशपत्रञ्च तैजसम्।
लाकिनीमध्यगं तच्च भ्रामर्यादिभिरावृतम्॥
ततो दशाङ्गुलादूर्ध्वे मणिपूराख्यपङ्कजात्।
पङ्कजं काकिनीमध्यं वायव्यं द्वादशारकम्॥
तत्रस्थकालरात्र्यादिशक्तिभिश्च समावृतम्।
तत्रस्थसूर्यबिम्बे च नादोद्यानादिपीठकम्॥
तस्मादेकाङ्गुलादूर्ध्वं विशुद्धं षोडशारकम्।
मध्यगा शाकिनी बाह्यपत्रेषु परमेश्वरि॥
अमृताद्यास्तदाकाशं चन्द्रबिम्बं तदूर्ध्वतः।
कण्ठोर्ध्वे परमेशानि लम्बिका चतुरङ्गुले॥
आज्ञाधारं द्विपत्राब्जः हक्षद्विदलसंयुतम्।
हंसवती क्षमा पार्श्वद्वये मध्ये तु हाकिनी॥

अथात्र समाधिमुखसमाधानार्थमस्मत्प्रपञ्चः—

पृथ्व्याम्बुतेजोमरुद्व्योमरूपैः शरीरं कृतं पञ्चभिर्भाति भूतैः ।
तनौ सार्द्धकोटित्रयी तत्र नाड़ी स्थिताऽधोमुखी तासु मुख्या दश स्युः ॥
इडा पिङ्गलाख्या सुषुम्ना च गान्धारिका हस्तजिह्वा च पूषा च नाड़ी ।
पयस्विन्ययान्यानुकूला कुहूः शङ्खिनी चेति तासाञ्च तिस्रो वरेण्याः ॥
इड़ावामभागे स्थिता शुक्लवर्णाऽमृतात्मेन्दुरूपिण्यसौ शक्तिरूपा ।
तथा दक्षिणे पिङ्गला रक्तवर्णा विषात्मा च पुंरूपिणी सूर्यरूपा ॥
तथा मेरुदण्डस्य मध्ये सुषुम्ना स्थिता सर्वतेजोमयी रन्ध्रयुक्ता ।
असौ सोमसूर्याग्निरूपा शिफाभ्यां पदाङ्गुष्ठयुग्मेषु संयुज्य नम्रा ॥
स्थिताधारपद्मस्थितेशानलिङ्गाग्रपर्यन्तमावृत्य विद्योतमाना ।
अनुस्यूतपङ्केरुहश्रेणिकस्त्रग्गुणस्पर्द्धनार्द्धनावर्द्धमाना ॥
अथाधारकाधिष्ठिते पूरकनाहताख्ये विशुद्धं तथाज्ञापुरञ्च ।
इदं तत्र चक्राभिधाम्भोजषट्कं निबद्धं सुषुम्नाख्ययाऽधोमुखं सत् ॥
सुषुम्नान्तराले सुधास्राविणी सर्वदेवात्मिका नाड़िकान्यास्ति चित्रा ।
विसर्गादियं बिन्दुपर्यन्तमेका परिव्याप्य तिष्ठत्यतीवानुरूपा ॥
तथा षट् सरोजन्मकिञ्जल्कमध्ये त्रिकोणानि षट्शक्तिरूपाणि सन्ति ।
त्रिकोणान्तरे प्रेतरूपाणि रन्ध्रान्विताधोमुखानीशलिङ्गानि षड्वा ॥
अचैतन्यभाजाममीषार्णमध्ये शिवानामुभौ ब्रह्मविष्णूपदिष्टौ ।
परौ चापि रुद्रेश्वराख्यौ सदाशिवनामा परोऽन्यः पराख्यः शिवश्च ॥
गुदस्थानतो द्व्यङ्गुलोर्ध्वे सुपीतं कुमद्वापि सान्तार्णयुतैश्चतुर्भिः ।
दलैः शोभितं पार्थिवं डाकिनीदेवताकं तदाधारपद्मं पुरस्तात् ॥
अधस्तैजसं तस्य रक्तप्रभाकं दलानां सहस्रेण विभ्राजमानम् ।
लसद्विद्युदुद्द्योतितानेकशक्तिस्फुरन्मध्यकिञ्जल्कमेकं सरोजम् ॥
अधःकर्णिकामध्यतः शङ्खभङ्गीक्रमभ्राजिना दक्षिणावर्त्तनेन ।
प्रसुप्ताहिरूपा तड़ित्कोटिकान्तिः समालिङ्ग्य सार्द्धेन वेष्टत्रयेण ॥
तदाधारनामादिमाम्भोजमध्यस्फुरत्कर्णिकान्तर्निविष्टत्रिकोणाकृतिस्पृडम् ।
महायोनिमध्यस्थिताधोमुखोद्यत् स्वयम्भुप्रदख्यातलिङ्गम् ॥
सुषुम्नामुखं स्वाननेनाणुषज्य स्थिताधोमुखी चिन्तनीयैव निद्रावशा ।
पङ्कनीवारशुकातितन्वी परं मूलविद्यामयी कुण्डलिनी ॥
ततस्था त्रिकोणस्थिताग्नेः शिखाभिः स्मरन् कूर्चबीजं विनिद्रां विदध्यात् ।
अथोऽहंसमुच्चारयंस्तां सुषुम्नान्तरब्रह्ममार्गेण चित्राधमन्या ॥
तदीशानलिङ्गान्तरा रन्ध्रगत्या सुयोगेन निष्क्रामयेल्लिङ्गतोऽस्मात् ।
ततो मूलपद्मादपि द्व्यङ्गुलोर्ध्वे स्फुरद्विद्युदाभे पयस्वत्यथाप्ये ॥

वकारादिलान्तार्णवत्षड्दलाढ्ये समाधित्रिकब्रह्मयुक्ते पुनस्ताम् ।
परं लिङ्गमूलस्थिते राकिनीदैवते वारिजन्मन्याधिष्ठानसंज्ञे ॥
समानीय लैङ्गेन रन्ध्रेण लिङ्गं प्रवेशास्य निष्क्रामयेत्साधकेन्द्रः ॥
अथैकादशानामुपर्यङ्गुलीनां सुनीलप्रभे तैजसे तेजसाढ्ये ।
डकारादिफान्ताक्षरस्तोयराजद्दलोत्फुल्लपत्रान्विते नाभिमूले ॥
सलक्ष्मीकनारायणाधिष्ठिते लाकिनीदैवते पूरकाख्ये सरोजे ।
समानीय तत्रत्यलिङ्गेन तद्वत्समायुज्य तस्मात्पुनश्चालयेत्ताम् ॥
ततोऽस्माद्दलानामुपर्यङ्गुलीनां हृदिस्थे सरायौ च वायव्यरूपे ।
ककारादिठान्ताक्षरास्तोमराजद्दलद्योतमाने सरोजे ॥
जवाकान्तिके पार्वती शङ्कराढ्ये तथा कालरात्र्यादिशक्तिप्रयुक्ते ।
लसत्काकिनीकेऽपि नादादियुक्तस्फुरत्सूर्यबिम्बान्वितेऽनाहताख्ये ॥
समानीयतां तत्र तत्रत्यलिङ्गे समायुज्य निष्क्रामयेद् योगिराजः ।
अथैकादशानामुपर्यङ्गुलीनां नभोनिर्मिते कण्ठदेशस्थिते ताम् ॥
नभस्वत्यकारादिभिः षोडशार्णैः स्फुरद्भिर्दलैः षोडशाङ्कैः समेते ।
लसत्साकिनीदेवताके च विद्येश्वराढ्यो लसच्चन्द्रबिम्बे सुधूम्रे ॥
विशुद्धाख्यपद्मे समानीय तद्वच्छिवे योजयित्वा नयेदूर्ध्वमेनाम् ।
विशुद्धाख्यपद्माच्चतुष्काङ्गुलोर्ध्वे भ्रुवोर्मध्यगे शुक्लवर्णाभिरामे ॥
तथा हक्षराजद्दलद्वन्द्वयुक्तेऽन्तरा हाकिनीदैवते सन्मनस्के ।
क्षमा हंसवत्युल्लसत्पार्श्वयुग्मे समायोजयेत्तामथाज्ञासरोजे ॥
ततस्तत्र लिङ्गे वशी योजयित्वा ततो निर्गमय्य प्रकाशस्वरूपम् ।
शिरस्थे स्थिते सर्ववर्णानुभाजा दलानां सहस्रेण विद्योतमाने ॥
जवास्फुरत्केशरेऽधोमुखेऽब्जे समानीयतां कुण्डलीदीप्यमानाम् ।
तदीयस्फुरत् कर्णिकान्तर्निविष्टक्षपानाथसन्मण्डलादन्तराले ॥
स्थितस्य त्रिकोणस्य मध्ये तु बिन्दुस्वरूपे महामायया भासमाने ।
परस्मिन् शिवलिङ्गरन्ध्रेण देवीं समायोजयेद् योगतः साधकेन्द्रः ॥
अयं साधु षट्चक्रभेदप्रकारो मया वर्णितः शास्त्रयोगीन्द्रयोगात् ।
अनेन प्रकारेण शम्भौ पराख्ये पराद्योजयित्वोत्क्रमेणापि भूयः ॥
विभिद्याजषट्कं यथा तेन मूलाम्बुजे स्थापयेदन्तरानन्दसान्द्राम् ।
परस्मिन् शिवे कुण्डलिन्या सुसङ्गात् समुद्भावितैः शास्त्रपीयूषवर्यैः ॥
कृतान्तर्निषेकः प्रजातप्रमोदः कृती पूतदेहो भवेद्देवतुल्यः ।
त्रिधैवं यदि स्यान्महाकुण्डलिन्यागतामात्रधारापथाम्भःशिवानाम् ।
तदा योनिमुद्रा निरुक्तेयमेषा जपादौ सदा मन्त्रिभिः कल्पनीया ॥

ऊर्ध्वाम्नाये—

योऽन्येभ्यो दर्शनेभ्यश्च भुक्तिं मुक्तिञ्च काङ्क्षति।
स्वप्नलब्धधनेनैव धनवान् स भवेद्यदि॥
शुक्तौ रजतविभ्रान्तिर्जायते पार्वति यथा।
तथान्यदर्शनेभ्यश्च भुक्तिं मुक्तिञ्च कांक्षति॥

यामले—

आगमे सर्वविद्याश्च आगमे सर्वसम्पदः।
आगमे सर्वयज्ञाश्च सर्वशास्त्राणि चागमे।
आगमे देवि वेदा हि आगमाच्च परा गतिः॥

ताराप्रदीपे—

आगमोक्तविधानेन कलौ देवान् यजेत्सुधीः।
न हि देवा प्रसीदन्ति कलौ चान्यविधानतः॥
सत्ये श्रुत्यर्थमार्गः स्यात्त्रेतायां स्मृतिसम्भवः।
द्वापरे तु पुराणोक्तः कलावागमसम्भवः॥

यामले—

येऽभ्यस्यन्ति त्विदं शास्त्रं पठन्ति पाठयन्ति वा।
सिद्धयोऽष्टौ करे तेषां धनधान्याद्धि सूनवः॥
आदृता शिवलोकेषु भोगिनः क्षोभकारकः।
आप्नुवन्ति परं ब्रह्म सर्वशास्त्रविशारदाः॥

तथा—

आगतः शिववक्त्रेभ्यो गतश्च गिरिजामुखम्।
मलत्रयव्यपायत्वादागमस्तेन कथ्यते॥

●

अथ रामस्तवः

श्रीहनमानुवाच

तिरश्चामपि राजेति समवायं समीयुषाम्।
यथा सुग्रीवमुख्यानां यस्तमुग्रं नमाम्यहम्॥१॥
सकृदेव प्रपन्नाय विशिष्टाभैरयच्छ्रियम्।
विभीषणायाद्धि तटे यस्तं वीरं नमाम्यहम्॥२॥

योमहान् पूजितो व्यापी महाब्धेः करुणामृतम्।
स्तुतो जटायुना यस्तं महाविष्णुं नमाम्यहम्॥३॥
तेजसाप्यायिता यस्य ज्वलन्ति ज्वलनादयः।
प्रकाशते स्वतन्त्रो यस्तं ज्वलन्तं नमाम्यहम्॥४॥
सर्वतोमुखता येन लीलया दर्शिता रणे।
राक्षसेश्वरयोधानां तं वन्दे सर्वतोमुखम्॥५॥
नृभावन्तु प्रपन्नानां हिनस्ति च यथा नृषु।
सिंहः सत्वेष्विवोत्कृष्टस्तं नृसिंहं नमाम्यहम्॥६॥
यस्माद्विभाति वातार्कज्वलनेन्द्राः समुत्थवः।
भियं धिनोतु पापानां भीषणं तं नमाम्यहम्॥७॥
परस्य योग्यतापेक्ष्यरहितो नित्यमङ्गलम्।
ददात्येवं निजौदार्याद्यस्तं भद्रं नमाम्यहम्॥८॥
यो मृत्युं निजदासानां मारयत्यखिलेष्टदः।
तत्रोदाहृतयोर्बन्धो मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥९॥
यत्पादपद्मप्रणतो भवेदुत्तमपूरुषः।
तदीशं सर्वदेवानां नमनीयं नमाम्यहम्॥
आत्मभावं समुत्क्षिप्य दास्येनैव रघूद्वहम्।
भजेऽहं प्रत्यहं राम ससीतं सह लक्ष्मणम्॥१०॥
नित्यं श्रीरामभक्तस्य किङ्करा यमकिङ्कराः।
शिवमय्यो दिशस्तस्य सिद्धयस्तस्य दासिका;॥११॥
इमं हनुमता प्रोक्तं मन्त्रराजात्मकं स्तवम्।
पठेदनुदिनं यस्तु स रामे भक्तिमान् भवेत्॥१२॥

इति हनुमत्कल्पे मन्त्रराजात्मकं श्रीरामस्तोत्रं समाप्तम्

अथापरस्तवः

पटजलधरधीरध्वानमादाय चापं
पवनजवनमेकं बाणमाकृष्य तूणात्।
अभयवचनदायी सानुजः सर्वतो मे
रणहतदनुजेन्द्रो रामचन्द्रः सहायः॥१॥
दशरथकुलदर्पो राम बाहुप्रतापो
दशवदनसकोपः क्षालिताशेषपापः।

सुररिपुकृततापो वन्दितानेकभूपो
विरतविमलचन्द्रो रामचन्द्रः सहायः॥२॥
नीलकुमुदगवाक्षैरङ्गदाद्यैः सनीलैः
विरचितकपिवेशैर्देववृन्दैः सनाथैः।
सततमनुगतो मे कुम्भकर्णेभसिंहो
भज दनुजफणीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥३॥
पवनतनुजहस्तन्यस्तपादाम्बुजन्मा
कलसभवरजोभिः प्राप्तमाहेन्द्रधन्वा ।
अपरिमितशरौघैः पूर्णतूणीरधारी
लघुनिहतकपीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥४॥
कुशिकतनययागं रक्षितुं लक्ष्मणाढ्यः
पवनशरनिकाय क्षिप्तमारीचकाय ।
विदलितहरचापो मेदिनीनन्दनाया
नयनकुमुदचन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥५॥
असुरकुलकृशानुर्मानसाम्भोजभानुः
सुरनरनिकराणामग्रणीर्भेवधूणां ।
अगणितगुणसीमा नीलमेघौघधामा
लसदमितमुनीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥६॥
कुवलयदलनीलः कामितार्थप्रदो मे
मुनिजनकृतरक्षो रक्षसात्महस्ता ।
परिहृतदुरितौघो नाममात्रेण पुंसा-
मखिलसुरनृपेन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥७॥
कनककमलकान्त्या कान्तयासङ्गतोऽसौ
मुनिमनुजशरण्यः कामदः सत्यसन्धः।
सुजननिरहबन्धुर्लीलया बद्धसिन्धुः
स्तवदखिलकवीन्द्रो रामचन्द्रः सहायः ॥८॥
अनुदिनमनुरामं रामचन्द्राष्टकं यः
पठति लिखति तं नो वीक्षते भूतसंघः ।
अतिबहुलसमृद्धिश्चानुभूयात्र भूमा-
वनुपममभिरामं राममन्तो जिहीते ॥९॥

इति रामाष्टकस्तोत्रं समाप्तम्

●

अथ रामाष्टकशतकम्

वेदव्यास उवाच

श्रृणु गाङ्गेय वक्ष्यामि रामस्याद्धुतकर्मणः।
नामाष्टशतकं पुण्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥१॥
नातः परतरं गुह्यं त्रिषु लोकषु विद्यते।
कैलासशिखरे रम्ये नानारत्नविभूषिते ॥२॥
एकाग्रः प्रयतो भूत्वा विष्णुमाराध्य भक्तितः।
उपविष्टस्ततो भोक्तुं पार्वतीं शङ्करोऽब्रवीत् ॥३॥
पार्वत्येहि मया सार्द्धं भोक्तुं भुवनवन्दिते।
तमाह पार्वती देवी जप्त्वा नामसहस्रकम् ॥४॥
ततो भोक्ष्याम्यहं देव भुज्यतां भवता प्रभो।
ततस्तां पार्वतीं प्राह प्रहसन् परमेश्वरः ॥५॥
धन्यासि कृतपुण्यासि विष्णुभक्तासि पार्वति।
दुर्लभा वैष्णवी भक्तिर्भागधेयं विनेश्वरि ॥६॥
रकारादीनि नामानि श्रृण्वतो मम पार्वति।
मनः प्रसन्नतामेति रामनामाभिशङ्कया ॥७॥
रमन्ते योगिनोऽनन्तो सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥८॥
रामरामेति रामेति रामरामे मनोरमे।
सहस्रनामभिस्तुल्यं रामनाम वरानने ॥९॥
रामेत्युक्त्वा महादेवि भुंक्ष्व सार्द्धं मयाधुना।
ततो रामेति नामोक्त्वा सह भुक्त्वा च पार्वती ॥१०॥
ततो भुक्त्वा महादेवी पतिना सह संस्थिता।
पप्रच्छ श्रीमहादेवं प्रीतिप्रवणमानसा ॥११॥
सहस्रनामभिस्तुल्यं रामनाम त्वयोदितम्।
तस्यान्यान्यपि नामानि सन्ति चेद्रावणद्विषः।
कथ्यतां मम देवेश तत्र मे प्रीतिरुत्तमा ॥१२॥

श्रीशङ्कर उवाच

श्रृणु नामानि वक्ष्यामि रामचन्द्रस्य पार्वति।
लौकिका वैदिकाः शब्दा ये केचित्सन्ति पार्वति ॥१३॥

नामानि रामभद्रस्य सहस्रं तेषु चाधिकम् ।
तेषु चात्यन्तमुख्यं हि नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ॥१४॥
विष्णोरेकैकनामानि सर्ववेदाधिकं मतम् ।
तादृङ्नामसहस्रेण रामनाम परं मतम् ॥१५॥
जपता सर्ववेदाश्च सर्वमन्त्राश्च पार्वति ।
तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते ॥१६॥
अथ श्रीरामाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रस्य ईश्वर ऋषिरनुष्टुप्छन्दः ।
श्रीरामचन्द्रो देवता श्रीरामप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ॥१७॥
ॐ श्रीरामो रामभद्रस्य रामचन्द्रस्य शाश्वतः।
राजीवलोचनः श्रीमान् राजेन्द्रः रघुपुङ्गवः ॥१८॥
विश्वामित्रप्रियो दान्तः शरण्यः त्राणतत्परः ।
बालिप्रमथनो वाग्मी सत्यवाक् सत्यविक्रमः ॥१९॥
सत्यव्रतो व्रतफलः सदा हनुमदाश्रयः ।
कोशलेशः खरध्वंसी विराधवधपण्डितः ॥२०॥
विभीषणपरित्राता दशग्रीवशिरोहरः ।
सप्तपातालभेत्ता च हरकोदण्डखण्डनः ॥२१॥
जामदग्न्यमहादर्पदमनस्ताड़कान्तकः ।
वेदान्तसारोऽमेयात्मा भववैद्यश्च भेषजः ॥२२॥
दूषणस्त्रिशिरोहन्ता त्रिमूर्त्तिस्त्रिगुणस्त्रयी ।
त्रिविक्रमस्त्रिलोकात्मा पुण्यचारित्र्यकीर्त्तनः ॥२३॥
त्रिलोकी रक्षको धन्वी दण्डकारण्यपुण्यकृत् ।
अहल्यापावनश्चैव पितृभक्तो वरप्रदः ॥२४॥
जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितलोभोः जगद्गुरुः ।
ऋक्षवानरसंघाती चित्रकूटसमाश्रयः ॥२५॥
जयन्तप्राणवरदः सुमित्रापुत्रसेवितः ।
सर्वदेवाधिदेवश्च मृतबालकजीवनः ॥२६॥
मायामारीचहन्ता च महाभागो महाभुजः ।
सर्वदेवस्तुतः सौम्यो ब्रह्मण्यो मुनिसंस्तुतः ॥२७॥
महायोगी महोदारः सुग्रीवेप्सितराज्यदः ।
सर्वपुण्याधिकफलस्तीर्थः सर्वाघनाशनः ॥२८॥
आदिपुरुषो महापुरुषः परमः पुरुषस्तथा ।
पुण्योदयो दयासारः पुराणपुरुषोत्तमः ॥२९॥

स्मितवक्त्रो मितभाषी पूर्णभाषी च राघवः।
अनन्तगुणगम्भीरो वीरोदात्तगुणोत्तमः ॥३०॥
मायामानुषचारित्रो महादेवाभिपूजितः।
सेतुकृज्जितवारीशः सर्वतीर्थमयो हरिः ॥३१॥
श्यामाङ्गसुन्दरः शूरः पीतवासा धनुर्द्धरः।
सर्वयज्ञाधिपो यज्ञो जरामरणवर्जितः ॥३२॥
शिवलिङ्गप्रतिष्ठाता सर्वाघगणवर्जितः।
परमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः ॥३३॥
परंज्योतिः परंधाम पराकाष्ठा परात्परः।
परेशः पारगः पारः सर्ववेदात्मकः शिवः ॥३४॥
इत्येतद्रामभद्रस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम्।
गुह्याद्गुह्यतरं देवि! तव प्रीत्या प्रकीर्त्तितम् ॥३५॥
यः पठेत् शृणुयाद्वापि भक्तियुक्तेन चेतसा।
स सर्वैर्मुच्यते पापैः कल्पकोटिशतोद्भवैः ॥३६॥
जलानि स्थलतां यान्ति शत्रवो यान्ति मित्रताम्।
राजानो दासतां यान्ति वह्नयो यान्ति शैत्यताम् ॥३७॥
आनुकूल्यञ्च भूतानि स्थैर्यं यान्ति चलाः श्रियः।
अनुग्रहं ग्रहा यान्ति शान्तिमायान्त्युपद्रवाः।
पठतो भक्तिभावेन जनस्य गिरिसम्भवे ॥३८॥
यः पठेत्परया भक्त्या तस्य वश्यं जगत्त्रयम्।
यद्यत्कामयते चित्ते तत्तदाप्नोति कीर्त्तनात् ॥३९॥
यः पठेद्रामचन्द्रस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम्।
ज्ञानेनापि च कुर्वाणो न स पापेन लिप्यते ॥४०॥
सर्ववेदेषु तीर्थेषु दानेषु च व्रतेषु च।
तत्फलं कोटिगुणितं स्तवेनानेन लभ्यते ॥४१॥
पुण्यकालेषु सर्वेषु पठन्नानन्त्यमश्नुते।
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥४२॥
वैकुण्ठे वासमाप्नोति दशपूर्वैर्दशापरैः।
रामं दूर्वादलश्यामं पद्माक्षं पीतवाससम्।
स्तुवन्ति नामभिर्दिव्यैर्न ते संसारिणो नराः ॥४३॥
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥४४॥

इमं मन्त्रं महेशानि! जपन्नेव दिवानिशम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥४५॥
इत्येतद्रामभद्रस्य माहात्म्यं वेदसम्मतम्।
कथितं तव गाङ्गेय यतस्त्वं वैष्णवोत्तमः ॥४६॥
वन्दामहे महेशानं हरकोदण्डखण्डनम्।
जानकीहृदयानन्दचन्दनं रघुनन्दनम् ॥४७॥

इसके अनन्तर लेखक महोदय ने रामकवच को स्थान दिया है, जो पद्मपुराणोक्त वज्रपञ्जराख्य श्रीरामकवच है। यह अति प्रचलित तथा गीताप्रेस आदि से प्रकाशित है। अतः उसे यहाँ नहीं लिखा जा रहा है। उसके स्थान पर रामरक्षावेदसागर स्तोत्र संयोजित कर रहा हूँ, जो महर्षि भृगु-प्रणीत है तथा सर्वथा अप्रकाशित एवं अनन्त फलदायक है। यह भगवान् श्रीराम की जन्मकुण्डली तथा तदनुसार फलादेश होने के कारण सर्वजनवन्द्य भी है, जिसे भगवान् के मर्त्यलोक में आविर्भाव के सहस्रों वर्ष पूर्व महर्षि भृगु ने लिखा था।

श्रीरामरक्षावेदसागरः

पूर्णत्रिंशतिक्षेपा च कर्कटे चन्द्रवाक्पतिः।
कन्याया सिंहिकापुत्र तुलास्थो रविनन्दनः ॥१॥
पाताले मेदिनीपुत्रः वृषस्थश्चन्द्रमाः सुतः।
आकाशे मेषभे सूर्यः झषस्थौ केतुभार्गवौ ॥२॥
सर्वग्रहानुमानेन योगोऽयं वेदसागरः।
वेदसागरके ज्ञातो पूर्वजन्मनि भार्गव ॥३॥
पूर्णब्रह्म स्वयंकर्त्ता स्वप्रकाशो निरञ्जनः।
निर्गुणो निर्विकल्पश्च निरीहः सच्चिदात्मकः ॥४॥
गिरा ज्ञानञ्च गोऽतीतः इच्छाकारी स्वरूपधृक्।
विना घ्राणं सदा घ्राणी विना नेत्रं च वीक्षकः ॥५॥
अकर्णेन श्रुतं सर्वं गिराहीनं च भाषितम्।
करहीनं कृतं सर्वकर्माणि च शुभाशुभम् ॥६॥
पदहीना गतिः सर्वा कुशला सफलक्रिया।
स्वरूपो रूपहीनश्च समर्थः सर्वकर्मषु ॥७॥
त्रिविधस्त्रिगुणः कालः त्रिलोकी स चराचरः।
महेन्द्रो देवताः सर्वा नागकिन्नरपन्नगाः ॥८॥

सिद्धविद्याधरा यक्षाः गन्धर्वाः सकलाः कवे।
राक्षसा दानवाः सर्वे मानवा वानराण्डजाः ॥९॥
सागराश्च खगा वृक्षाः पशुकीटादयस्तथा।
शैला नद्यः कला सर्वा मोहमायादिकाः क्रियाः ॥१०॥
इच्छामायास्त्रिवेदाश्च निर्मिता विविधा क्रियाः।
शरण्यः सर्वदा शान्तः अलक्ष्यो लक्षकः सदा ॥११॥
जरामरणहीनश्च महाकालस्य चान्तकः।
सर्वसर्वविहीनोऽपि सचराचरदर्शकः ॥१२॥
पूर्वापरक्रियाज्ञानी शृणु शुक्र न चान्यथा।
प्रेरिता सर्वदेवैश्च कालान्तरगते कवे ॥१३॥
धरित्री ब्रह्मणो लोके जगाम दुःखपीडिता।
शिवो ब्रह्मा सुराः सर्वे प्रार्थनाञ्च कृता मुहुः ॥१४॥
सदुःखवचनं श्रुत्वा दैववाणी भवेत्कवे।
धैर्यवन्तः सुराः सर्वे प्रार्थना सफला भवेत् ॥१५॥
श्रुत्वा हृष्ट्वा सुरा सर्वे जगाम क्षितिमण्डले।
नरवानररूपञ्च धृत्वा ब्रह्मेच्छया कवे ॥१६॥
यत्र तत्र सुराः सर्वे हरिदर्शनमानसाः।
अधर्मनिरतान् लोकान् दृष्ट्वा कष्टेन पीडितान् ॥१७॥
तत इच्छाप्रभावेण गोब्राह्मणसुरार्थकम्।
मायामानुषरूपेण जगदानन्दहेतवे ॥१८॥
आजगाम धरापृष्ठे कौशलाख्ये महापुरे।
इच्छ्वाकुवंशे भो शुक्र भूत्वा मानुषरूपधृक् ॥१९॥
सरय्वा दक्षिणे भागे महापुण्ये च क्षेत्रके।
मधुमासे च धवले नवम्यां भौमवासरे ॥२०॥
पुनर्वसौ च सौभाग्ये मातृगर्भात् समुद्भवः।
मन्मथानां च कोटीनां सुन्दरं सागरोपमम् ॥२१॥
श्यामाङ्गं मेघवर्णाभं मृगाक्षं कान्तिमत्परम्।
भव्याङ्गं भव्यवर्णञ्च सर्वसौन्दर्यसागरम् ॥२२॥
सर्वाङ्गेषु मनोहरं ह्यतिवरं शान्तमुद्रं प्रशान्तम्।
वन्दे लोकाभिरामं मुनिजनसहितं शैवमन्त्रं शरण्यम् ॥२३॥
कोटिवाक्पतिधीमांश्च कोटिभास्करभास्वरः।
दयाकोटिसमुद्रश्च यशः शीलः पराक्रमी ॥२४॥

सर्वसारः सदा शान्तः वेदसागर भार्गव ।
दशवर्षसहस्राणि भूतले स्थितिमानसौ ॥२५॥
चतुर्दशसमाः शुक्र बभ्राम च वने वने ।
राक्षसानां वधार्थाय दुष्टानां निग्रहाय च ॥२६॥
प्रादुर्भूतो जगन्नाथो मायामानुषवत् कवे ।
अयोध्यानगरे शुक्र बहुवर्षसहस्रकम् ॥२७॥
नानामुनिगणैर्युक्तो विहरन् धर्मवत्सलः ।
सर्वैः साकं स्वमायाभिः अन्तर्धानं भवेत्कवे ॥२८॥
इच्छया लीलया युक्तो स्वीये लोके वसेत्सदा ।
माया क्रीडा पुनर्भूयात् काले काले युगे युगे ॥२९॥
लोकानां च हितार्थाय कलौ चैव विशेषतः ।
पठनाच्छ्रवणात् पुण्यं कल्याणं सततं भवेत् ॥३०॥
निर्भयो नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं न संशयः ॥३१॥

●

अथ श्रीकृष्णस्तोत्रम्

प्रसीद भगवन् मह्यमज्ञानकुण्ठितात्मने ।
तवाङ्घ्रिपङ्कजरजो रागिनीं भक्तिमुत्तमाम् ॥१॥
अज! प्रसीद भगवन्नमितद्युतिपञ्जर ।
अप्रमेय! प्रसीदास्मन् दुःखघ्न पुरुषोत्तम ॥२॥
स्वसंवेद्य प्रसीदास्मदानन्दात्मन्ननामय ।
अचिन्त्यसार! विश्वात्मन्! प्रसीद परमेश्वर! ॥३॥
प्रसीद तुङ्ग! तुङ्गानां प्रसीद शिवशोभने! ।
प्रसीद गुणगम्भीर! गम्भीराणां महाद्युते ।
प्रसीदार्द्रार्द्रजातीनां प्रसीदान्तान्तदायिनाम् ॥४॥
गुरोर्गरीयान् सर्वेश! प्रसीदानन्तदेहिनाम् ।
जय माधव मायात्मन् जय शाश्वतशङ्खभृत् ॥५॥
जय शङ्खधर श्रीमान् जय नन्दकनन्दन ।
जय चक्रगदापाणे! जय देव जनार्दन ॥६॥
जय रत्नवराबद्धकिरीटाक्रान्तमस्तक! ।
जय पक्षिपतिच्छायानिरुद्धार्ककरारुण ॥७॥

नमस्ते नरकाराते नमस्ते मधुसूदन! ।
नमस्ते ललितापाङ्ग नमस्ते नरकान्तक! ॥८॥
नमः पापहरेशान! नमः सर्वभयापह ।
नमः सम्भूतसर्वात्मन्नमः सम्भूतकौस्तुभः ॥९॥
नमस्ते नयनातीत! नमस्ते भयहारक! ।
नमो विभिन्नदेहाय नमः श्रुतिपथातिग ॥१०॥
नमस्त्रिमूर्त्तिभेदेन सर्गस्थित्यन्तहेतवे ।
विष्णवे त्रिदशाराति जिष्णवे परमात्मने ॥११॥
चक्रभिन्नारिचक्राय चक्रिणे चक्रबन्धवे ।
विश्वाय विश्ववन्द्याय विश्वभूतानुवर्त्तिने ॥१२॥
नमस्ते योगिध्येयाय नमोऽस्त्वध्यात्मरूपिणे ।
भक्तिप्रदाय भक्तानां नमस्ते मुक्तिदायिने ॥१३॥
स्तवनं हवनं चेष्टा ध्यानं पूजा नमस्क्रिया ।
देवेश कर्म सर्वं मे भवेदाराधनं तव ॥१४॥
इति हवनजपार्चा भेदतो विष्णुपूजा-
नियतहृदयकर्मा यस्तु मन्त्री चिराय ।
स खलु सकलकामान् प्राप्य कृष्णान्तरात्मा
जननमृतिविमुक्तामुत्तमां मुक्तिमेति ॥१५॥
गोगोपगोपिकवीतं गोपालं गोषु गोप्रदम् ।
गोपैरीड्यं गोसहस्रैर्नौमि गोकुलनायकम् ॥१६॥
प्रीणयेदनया स्तुत्या जगन्नाथं जगन्मयम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामाप्तये पुरुषोत्तमम् ॥१७॥

इति श्रीकृष्णस्तव समाप्तः

अथ गोपालस्तवः

नारद उवाच

नवीननीरदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् ।
वल्लवीनन्दनं वन्दे कृष्णं गोपालरूपिणम् ॥१॥
स्फुरद्बर्हदलोद्बद्धनीलकुञ्चितमूर्द्धजम् ।
कदम्बकुसुमद्वन्द्ववनमालाविभूषितम् ॥२॥

गण्डमण्डलसंसर्गि चलत्काञ्चनकुण्डलम् ।
स्थूलमुक्ताफलोदारहारद्योतितवक्षसम् ॥३॥
हेमाङ्गदतुलाकोटिकिरीटोज्ज्वलविग्रहम् ।
मन्दमारुतसंक्षोभवल्गिताम्बरसञ्चयम् ॥४॥
रुचिरौष्ठपुटन्यस्तवंशीमधुरनिःस्वनैः ।
लक्षद्गोपालिका चेतो मोहयन्तं मुहुर्मुहुः ॥५॥
वल्लवीवदनाम्भोजमधुपानमधुव्रतम् ।
क्षोभयन्तं मनस्तासां सस्मेरापाङ्गवीक्षणैः ॥६॥
यौवनाद्भिन्नदेहाभिः संसक्ताभिः परस्परम् ।
विचित्राम्बरभूषाभिर्गोपनारिभिरावृतम् ॥७॥
प्रभिन्नाञ्जनकालिन्दीजलकेलिफलोत्सुकम् ।
बोधयन्तं क्वचिद्गोपान् व्याहरन्तं गवां गणम् ॥८॥
कालिन्दीजलसंसर्गिशीतलानिलकम्पिते ।
कदम्बपादपच्छाये स्थितं वृन्दावने क्वचित् ॥९॥
रत्नभूधरसंलग्नरत्नासनपरिग्रहम् ।
कल्पपादपमध्यस्थहेममण्डपिकागतम् ॥१०॥
वसन्तकुसुमामोदसुरभिकृतदिङ्मुखे ।
गोवर्द्धनगिरौ रम्ये स्थितं रासरसोत्सुकम् ॥११॥
सव्यहस्ततलन्यस्तगिरिवर्यातपत्रकम् ।
खण्डिताखण्डलोन्मुक्तमुक्तासारघनाघनम् ॥१२॥
वेणुवाद्यमहोल्लासकृतहुङ्कारनिःस्वनैः ।
सवत्सैरुन्मुखैः शश्वद्गोकुलैरभिवीक्षितम् ॥१३॥
कृष्णमेवानुगायद्भिस्तच्चेष्टावशवर्त्तिभिः ।
दण्डपाशोद्यतकरैर्गोपालैरुपशोभितम् ॥१४॥
नारदाद्यैर्मुनिश्रेष्ठैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ।
प्रीतिसुस्निग्धया वाचा स्तूयमानं परात्परम् ॥१५॥
य एवं चिन्तयेद्देवं भक्त्या संस्तौति मानवः ।
त्रिसंध्यं तस्य तुष्टोऽसौ ददाति वरमीप्सितम् ॥१६॥
राजवल्लभतामेति भवेत् सर्वजनप्रियः ।
अचलां श्रियमाप्नोति स वाग्मी जायते ध्रुवम् ॥१७॥

इति गौतमीये श्रीगोपालस्तोत्रं समाप्तम्

अथ श्रीकृष्णकवचम्

पुलस्त्य उवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ कवचं यत्प्रकाशितम्।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कृपया कथय प्रभो ॥१॥

सनत्कुमार उवाच

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र कवचं परमाद्भुतम्।
नारायणेन कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥२॥
ब्रह्मणा कथितं मह्यं तव स्नेहाद्वदामि ते।
अतिगुह्यतरं तत्त्वं ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम् ॥३॥
यद्धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा सृष्टिं वितनुते ध्रुवम्।
यद्धृत्वा पठनात् पाति महालक्ष्मीर्जगत्त्रयम्।
पठनाद्धारणात् शम्भुः संहर्त्ता सर्वतत्त्ववित् ॥४॥
त्रैलोक्यजननी दुर्गा महिषादिमहासुरान्।
वरदृप्तान् जघानैव पठनाद्धारणाद्यतः ॥५॥
एवमिन्द्रादयः सर्वे सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः।
इदं कवचमत्यन्तं गुप्तं कुत्रापि नो वदेत् ॥६॥
शठाय परशिष्याय दत्त्वा च मृत्युमाप्नुयात्।
त्रैलोक्यमङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥७॥
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो नारायणः स्वयम्।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥८॥
प्रणवो मे शिरः पातु नमो नारायणाय च।
भालं पायान्नेत्रयुग्ममष्टार्णो भुक्तिमुक्तिदः ॥९॥
क्लीं कृष्णाय सदा घ्राणं गोविन्दायेति जिह्विकाम्।
गोपीजनपदं वल्लभाय स्वाहा भुजद्वयम् ॥१०॥
अष्टाक्षरो महामन्त्रः कण्ठं पातु दशाक्षरः।
क्लीं कृष्णं क्लीं करौ पायात्क्लीं कृष्णायाङ्गजोऽवतु ॥११॥
हृदयं भुवनेशानी क्लीं कृष्णाय क्लीं स्तनौ मम।
गोपालयाग्निजाया च कुक्षियुग्मं सदावतु ॥१२॥
क्लीं कृष्णाय सदा पातु पार्श्वयुग्ममनूत्तमः।
कृष्णगोविन्दकौ पातु स्मराद्यौ ङेयुतौ मनुः ॥१३॥

अष्टाक्षरः पातु नाभिं कृष्णेति द्व्यक्षरोऽवतु।
पृष्ठं क्लीं कृष्णकङ्कालं क्लीं कृष्णाय द्विठान्तकः ॥१४॥
सक्थिनी पातु सततं श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्ण ठद्वयम्।
ऊरू सप्ताक्षरः पातु त्रयोदशाक्षरोऽवतु ॥१५॥
श्रीं ह्रीं क्लीं पदतो गोपीजनवल्लपदं ततः।
भाय स्वाहेति पायुं वै क्लीं ह्रीं श्रीं सदशार्णकः ॥१६॥
सर्वाङ्गं मे सदा पातु द्वारकानायको बली।
नमो भगवते पश्चाद् वासुदेवाय तत्परम् ॥१७॥
ताराद्यो द्वादशार्णोऽयं प्राच्यां मां सर्वदावतु।
श्रीं ह्रीं क्लीं च दशार्णस्तु क्लीं ह्रीं श्रीं षोडशाक्षरः ॥१८॥
गदाद्युदायुधो विष्णुर्मामग्नेर्दिशि रक्षतु।
ह्रीं श्रीं दशाक्षरो मन्त्रो दक्षिणे मां सदावतु ॥१९॥
तारो नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय च।
स्वाहेति षोडशार्णोऽयं नैर्ऋत्यां दिशि रक्षतु ॥२०॥
क्लीं हृषीकेपदं शाय नमो मां वारुणेऽवतु।
अष्टादशार्णः कामान्तो वायव्यां मां सदावतु ॥२१॥
श्रीं माया कामकृष्णाय गोविन्दाय द्विठो मनुः।
द्वादशार्णात्मको विष्णुरुत्तरे मां सदावतु ॥२२॥
वाग्भवं कामकृष्णाय ह्रीं गोविन्दाय ततः परम्।
श्रीं गोपीजनवल्लान्ते भाय स्वाहा च सौस्तुतः ॥२३॥
द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो मामैशान्ये सदावतु।
कालीयस्य फणामध्ये दिव्यं नृत्यं करोति तम् ॥२४॥
नमामि देवकीपुत्रं नृत्यराजानमच्युतम्।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रोऽप्यधो मां सर्वदावतु ॥२५॥
कामदेवाय विद्महे पुष्पबाणाय धीमहि।
तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयान्मां सदा पातु चोर्ध्वतः ॥२६॥
इति ते कथितं विप्र सर्वमन्त्रौघविग्रहम्।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम् ॥२७॥
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं नारायणमुखाच्छ्रुतम्।
तव स्नेहान्मया ख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥२८॥
गुरुं प्रणम्य विधिवत् कवचं प्रपठेत्ततः।
सकृद्द्विस्त्रिर्यथाज्ञानं सोऽपि सर्वतपोमयः ॥२९॥

मन्त्रेषु सकलेष्वेव देशिको नात्र संशयः ।
शतमष्टोत्तरञ्चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ॥३०॥
स्पर्द्धामुद्धूय सततं लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ।
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत्सकृत् ॥३१॥
संवत्सरसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ॥३२॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ।
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च ॥३३॥
महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा ।
कलां नार्हन्ति तान्येव सकृदुच्चारणात्ततः ॥३४॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।
त्रैलोक्यं क्षोभयत्येव त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥३५॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद्यः पुरुषोत्तमम् ।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रस्तस्य सिध्यति ॥३६॥

इति सनत्कुमारतन्त्रे त्रैलोक्यमङ्गलं नाम श्रीकृष्णकवचं समाप्तम्

अथ नृसिंहकवचम्

नारद उवाच

इन्द्रादिदेववृन्देश! तातेश्वर! जगत्पते ।
महाविष्णुनृसिंहस्य कवचं ब्रूहि मे प्रभो ॥१॥
यस्य प्रपठनाद्विद्वान् त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
स्रष्टाहं जगतां वत्स! पठनाद्धारणाद्यतः ॥२॥
लक्ष्मीर्जगत्त्रयं पाति संहर्त्ता च महेश्वरः ।
पठनाद्धारणाद्देवा बभूवुश्च दिगीश्वराः ॥३॥
ब्रह्ममन्त्रमयं वक्ष्ये भूतादिविनिवारकम् ।
यस्य प्रसादाद् दुर्वासास्त्रैलोक्यविजयी मुनिः ॥४॥
पठनाद्धारणाद्यस्य शास्ता च क्रोधभैरवः ।
त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥५॥
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री नृसिंहो देवता विभुः।
सर्वाभिलाषसिद्ध्यर्थं विनियोगः प्रकीर्त्तित ॥६॥

क्ष्रौं मे शिरः सदा पातु चन्द्रवर्णा महामनुः ।
उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ॥७॥
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ।
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो मन्त्रराजः सुरद्रुमः ॥८॥
कण्ठं पातु ध्रुवं क्ष्रौं हृद्भगवते चक्षुषी मम ।
नरसिंहाय च ज्वालामालिने पातु कर्णकम् ॥९॥
दीप्तदंष्ट्राय च तथाग्निनेत्राय च नासिकाम् ।
सर्वरक्षोघ्नाय सर्वभूतविनाशनाय च ॥१०॥
सर्वज्वरविनाशय दहदह पचद्वयम् ।
रक्ष रक्षद्वयं पश्चात्स्वाहा पातु मुखं मम ॥११॥
तारादिरामचन्द्राय नमः पायात् गुदं मम ।
क्लीं पायात् पार्श्वयुग्मं मे तारो नमः पदन्ततः ॥१२॥
नारायणाय पायुञ्च आं ह्रीं क्ष्रौं क्रौं च हुञ्च फट् ।
षडक्षरः कटिं पातु ॐ नमो भगवते पदम् ॥१३॥
वासुदेवाय पृष्ठं क्लीं कृष्णाय क्लीमुरुद्वयम् ।
क्लीं कृष्णाय सदा पातु जानुनी च मनूत्तमः ॥१४॥
क्लीं ग्लौं क्लीं श्यामलाङ्गाय नमः पायात्पदद्वयम् ।
क्ष्रौं नरसिंहाय क्ष्रौञ्च सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥१५॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् ।
तव स्नेहान्मया ख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥१६॥
गुरुपूजां विधायाथ गृह्णीयात् कवचं ततः ।
सर्वपुण्ययुतो भूत्वा सर्वसिद्धियुतो भवेत् ॥१७॥
शतमष्टोत्तरञ्चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ।
हवनादीन् दशांशेन कृत्वा तत्साधयेद् ध्रुवम् ॥१८॥
ततस्तु सिद्धकवचः पूर्णात्मा मदनोपमः ।
स्पर्द्धामुद्धूय भवने लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ॥१९॥
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत्सकृत् ।
अपि वर्षसहस्राणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥२०॥
भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ नरसिंहो भवेत्स्वयम् ॥२१॥
योषिद् वामभुजे चैव पुरुषो दक्षिणे भुजे ।
विभृयात् कवचं पुण्यं सर्वसिद्धियुतो भवेत् ॥२२॥

काकवन्ध्या च या नारी मृतवत्सा च या भवेत्।
जन्मवन्ध्या नष्टपुष्पा बहुपुत्रवती भवेत्॥२३॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।
त्रैलोक्यं क्षोभयन्त्येव त्रैलोक्यविजयी भवेत्॥२४॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च राक्षसा दानवाश्च ये।
तं दृष्ट्वा प्रपलायन्ते देशाद्देशान्तरं ध्रुवम्॥२५॥
यस्मिन् गेहे च कवचं ग्रामे वा यदि तिष्ठति।
तं देशन्तु परित्यज्य प्रयान्ति चातिदूरतः॥२६॥

इति ब्रह्मसंहितायां त्रैलोक्यविजयं नाम नृसिंहकवचं समाप्तम्

अथ विष्णुनामाष्टकस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम्।
हंसं नारायणञ्चैव एतन्नामाष्टकं शुभम्॥१॥
त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नित्यं तस्य पापं न विद्यते।
शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःस्वनं सुस्वनं भवेत्॥२॥
गङ्गायां मरणञ्चैव दृढा भक्तिश्च केशवे।
ब्रह्मविद्याप्रबोधश्च तस्मान्नित्यं पठेन्नरः॥३॥

इति ब्रह्मपुराणे श्रीविष्णुनामाष्टकस्तोत्रं समाप्तम्

अथ नारायणोपनिषत्

ॐ अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत प्रजाः सृजयेति। नारायणात् प्राणो जायते मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी। नारायणाद् ब्रह्मा जायते। नारायणाद् रुद्रो जायते। नारायणदिन्द्रो जायते। नारायणात् प्रजापतिः प्रजायते। नारायणाद् द्वादशादित्या रुद्राः वसवः। सर्वाणि च्छन्दांसि नारायणादेव समुत्पद्यन्ते। नारायणात् प्रवर्त्तन्ते। नारायणे प्रलीयन्ते। एतद् ऋग्वेदशिरोऽधीते। अथ नित्या नारायणः ब्रह्मा च नारायणः, शिवश्च नारायणः, शक्रश्च नारायणः, कालश्च नारायणः, दिशश्च नारायणः, विदिशश्च नारायणः, ऊर्ध्वञ्च नारायणः, अधश्च नारायणः, अन्तर्बहिश्च नारायणः,

नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्। निष्कलङ्को निरञ्जनो निर्विकल्पो निराख्यात: शुद्धो देव एको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित्। य एवं वेद स विष्णुरेव भवति। स विष्णुरेव भवति। य एतद्यजुर्वेदशिरोऽधीते। ॐ इत्यग्रे व्याहरेत् नम इति पश्चान्नारायणायेत्युपरिष्टात्। ॐमित्येकाक्षरं नम इति द्वे अक्षरे। नारायणायेति पञ्चाक्षराणि। एतद्वै नारायणस्याष्टाक्षरं पदम्। यो ह वै नारायणस्याष्टाक्षरं पदमध्येति, सोऽनुपप्लव: सर्वमायुरेति। विन्देत प्राजापत्यं गौपत्यम् ततोऽमृतत्वमश्नुते।।

इति नारायणोपनिषत् समाप्ता

अथर्वाङ्गिरसम्

प्रत्यगानन्दं ब्रह्मस्वरूपं प्रणवस्वरूपं अकार उकार मकार इति। ता अनेकधा समभवत् तदेव उमिति। यमुक्त्वा मुच्यते योगी जन्मसंसारबन्धनात्। ॐ नमो नारायणायेति। ॐ नमो नारायणायेति मन्त्रोपासको वैकुण्ठभुवनं गमिष्यति। तदिदं पुण्डरीकं विज्ञानघन तस्मात्तड़िदाभमात्रम्। ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदन:। ब्रह्मण्य: पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्यो विष्णुरच्युत इति सर्वभूतस्थमेकं वै ॐ नारायणं कारणरूपमकारणं परं ब्रह्म। एतदथर्वशिरो योऽधीते, प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति, सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। तत् सायं प्रातरधीयानोऽपापो भवति। मध्यन्दिनमादित्याभिमुखोऽधीयान: पञ्चमहापातकोपपातकात् प्रमुच्यते। सर्ववेदपरायणपुण्यं लभते नारायणसायुज्यमवाप्नोति य एवं वेद।

इत्यथर्वाङ्गिरसं समाप्तम्

अथापामार्जनस्तोत्रम्

ॐ नम: परमार्थायेत्यपामार्जनमन्त्रस्य पुलस्त्य ऋषिरनुष्टुप्छन्द: श्रीनरसिंहो देवता हरामुकस्येति बीजं अच्युतानन्देति शक्ति: तप्तहाटकेशाग्रेति कीलकं अमुकगोत्रस्य श्रीअमुकदेवशर्मणो झटित्युत्पन्नव्याधिप्रशमनार्थं पाठे विनियोग:।

पुलस्त्य उवाच

ॐ नम: परमार्थाय पुरुषाय महात्मने।
अरूपबहुरूपाय व्यापिने परमात्मने ।।१।।

निष्कल्मषाय शुद्धाय ध्यानयोगरताय च ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तं सिद्ध्यतु मे वचः ॥२॥
त्रिविक्रमाय रामाय वैकुण्ठाय नमो नमः ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतु मे वचः ॥३॥
वराह नरसिंहेश वामनेश त्रिविक्रम ।
हयग्रीवेश सर्वेश हृषीकेश हराशुभम् ॥४॥
अपराजितचक्राद्यैश्चतुर्भिः परमायुधैः ।
अखण्डितानुभावैस्त्वं सर्वदुष्टहरो भव ॥५॥
हरामुकस्य दुरितं दुष्कृतं दुरुपोषितम् ।
मृत्युर्बन्धार्तिभयदं दुरितस्य च यत्फलम् ॥६॥
गरस्पर्शमहारोगदुर्योगजरयाजर ।
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः कृष्णाय खड्गिने ॥७॥
नमः पुष्करनेत्राय केशरायादिचक्रिणे ।
नमः कमलकिञ्जल्कपीतनिर्मलवाससे ॥८॥
महाहररिपुस्कन्धयुष्टचक्राय चक्रिणे ।
दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृति त्रयीमूर्त्तिमते नमः ॥९॥
महायज्ञवराहाय शेषभोगाङ्गशायिने ।
तप्तहाटककेशाग्रज्वलत्पावकलोचने ॥१०॥
वज्राधिकनखस्पर्शदिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ।
काश्यपायातिह्रस्वाय ऋग्यजुःसामभाषिणे ॥११॥
तुभ्यं वामनरूपाय सृजते गां नमो नमः ।
वराहाशेषदुष्टानि सर्वपापफलानि च ॥१२॥
मर्द्द मर्द्द महादंष्ट्र मर्द मर्द च दुष्कृतम् ।
नरसिंहकरालास्यदन्तप्रान्ते ज्वलानल ॥१३॥
भुञ्ज भुञ्ज निनादेन दुष्टान्यस्यार्त्तिनाशन ।
ऋग्यजुःसामगर्भाभिर्वाग्भिर्वामनरूपधृक् ॥१४॥
प्रशमं सर्वदुष्टानि नयत्वस्य जनार्दनः ।
ऐकाहिकं द्व्याहिकञ्च तथा त्रिदिवसज्वरम् ॥१५॥
चातुर्थकं तथात्युग्रं तथैव सततज्वरम् ।
दोषोत्थं सन्निपातोत्थं तथैवागन्तुकज्वरम् ॥१६॥
शमं नयाशु गोविन्द छिन्धि छिन्ध्यस्य वेदनाम् ।
नेत्रदुःखं शिरोदुःखं दुःखञ्चोदरसम्भवम् ॥१७॥

अन्तःश्वासं बहिःश्वासं परितापं सवेपथुम् ।
गुदघ्राणाङ्घ्रिरोगांश्च कुष्ठरोगं तथा क्षवम् ॥१८॥
कामलं पाण्डुरोगांश्च प्रमेहांश्चातिदारुणान् ।
भगन्दरातिसारांश्च मुखरोगान् सविद्रधीन् ॥१९॥
अश्मरीमूत्रकृच्छ्रांश्च रोगानन्यांश्च दारुणान् ।
ये रोगा ये महोत्पाता यद्विषं ये महाग्रहाः ॥२०॥
यानि च क्रूरभूतानि विषरोगाश्च दारुणाः ।
तानि सर्वाणि सर्वात्मा परमात्मा जनार्दनः ॥२१॥
अपामार्जनकं शस्तं विष्णोर्नामाभिमन्त्रितम् ।
एते कुशा विष्णुशरीरसम्भवा जनार्दिनोऽहम् ॥२२॥
शान्तिरस्तु शिवञ्चास्तु दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ।
यदस्य दुरितं किञ्चित् क्षिप्तं नारायणार्णवे ॥२३॥
स्वास्थ्यमस्य सदैवास्तु हृषीकेशस्य कीर्तनात् ।
यत एवागतं पापं तत्रैव प्रतिगच्छतु ॥२४॥
एतद्रोगाभिभूतानां जन्तूनां हितमिच्छता ।
विष्णुभाजनकर्त्तव्य अपामार्जनकं शुभम् ॥२५॥
अनेन सर्वदुष्टानि प्रशमं यान्त्यसंशयः ।
सर्वभूतहितार्थाय कुर्यात्तस्मात्सदैव हि ॥२६॥

अपामार्जनस्तोत्रं समाप्तम्

अथ विष्णुस्तवः

आदाय वेदाः सकलाः समुद्रान्निहत्य शङ्खं रिपुमत्युदग्रम् ।
दत्ताः पुरा येन पितामहाय विष्णुं तमादिं भज मत्स्यरूपम् ॥१॥
दिव्यामृतार्थं मथिते महाब्धौ देवासुरैर्वासुकिमन्दराद्यैः ।
भूमिर्महावेगविघूर्णितायास्तं कूर्ममाधारगतं नमामि ॥२॥
समुद्रकाञ्ची सरिदुत्तरीया वसुन्धरामेरुकिरीटभारा ।
दन्ताग्रतो येन समुद्धृता भूस्तमादिकालं शरणं प्रपद्ये ॥३॥
भक्तार्तिभङ्गक्षमया प्रियायाः स्तम्भान्तरालादुदितो नृसिंहः ।
रिपुं सुराणां निशितैर्नखाग्रैर्विदारयन्तं न च विस्मरामि ॥४॥
चतुःसमुद्राभरणा धरित्री न्यासाय नालं चरणस्य यस्य ।
एकस्य नान्यस्य पदं सुराणां त्रिविक्रमं सर्वगतं नमामि ॥५॥

त्रिःसप्तवारं नृपतीन्निहत्य यस्तर्पणं रक्तमयं पितृभ्यः ।
चकार दोर्दण्डबलेन सम्यक्तमादिशूरं प्रणमामि विष्णुम् ॥६॥
कुले रघूनां समवाप्य जन्म विधाय सेतुं जलधेर्जलान्तम् ।
लब्धेश्वरं यः समयाञ्चकार सीतापतिं तं प्रणमामि भक्त्या ॥७॥
हलेन सर्वान् नृपतीन्निकृष्य चकार चूर्णं मुषलप्रहारैः ।
यः कृष्णमासाद्य बलं बलीयान् भक्त्या भजेत्तं बलभद्ररामम् ॥८॥
पुरा सुराणामसुरान् विजेतुं सभावयन् चीवरचिह्नवेशम् ।
चकार यः शास्त्रममोघकल्पं तं मूलभूतं प्रणतोऽस्मि बुद्धम् ॥९॥
कल्पावसाने निशितैः खुराग्रैः संघट्टयामास निमेषमात्राम् ।
यस्तेजसा निर्दहतीति भीमो विष्ण्वात्मकं तं तुरगं भजामः ॥१०॥
शङ्खं सुचक्रं सुगदां सरोजं दोर्भिर्दधानं गरुडाधिरूढम् ।
श्रीवत्सचिह्नं जगदादिमूलं तमालनीलं हृदि विष्णुमीडे ॥११॥
क्षीराम्बुधौ शेषविशेषतल्पे शयानमन्तःस्मितशोभिवक्त्रम् ।
उत्फुल्लनेत्राम्बुजमम्बुजाभमाद्यं श्रुतीनामसकृत्स्मरामि ॥१२॥
प्रीणयेदनया स्तुत्या जगन्नाथं जगत्त्रयम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामाप्तये पुरुषोत्तमम् ॥१३॥

इति विष्णुस्तोत्रं समाप्तम्

अथ सरस्वतीस्तोत्रम्

ह्रीं ह्रीं हृद्येकबीजे शशिरुचिकमलाकल्पविस्पष्टशोभे
भव्ये भव्यानुकूले कुमतिवनदवे विश्ववन्द्याङ्घ्रिपद्मे ।
पद्मे पद्मोपविष्टे प्रणतजनमनोमोदसम्पादयित्रि
प्रोत्प्लुष्टाज्ञानकूटे हरिनिजदयिते देवि संसारसारे ॥१॥
ऐं ऐं ऐं इष्टमन्त्रे कमलभवमुखाम्भोजभूतिस्वरूपे ।
रूपारूपप्रकाशे सकलगुणमये निर्गुणे निर्विकारे ।
न स्थूले नापि सूक्ष्मेऽप्यविदित निष्कले नित्यशुद्धे ॥२॥
ह्रीं ह्रीं ह्रीं जन्यतुष्टे हिमरुचिमुकुटे वल्लकीव्यग्रहस्ते
मातर्मातर्नमस्ते दह दह जड़तां देहि बुद्धिं प्रशस्ताम् ।
विद्ये वेदान्तगीते श्रुतिपरिपठिते मोक्षदे मुक्तिमार्गे
मार्गातीतप्रभावे भव मम वरदा शारदे शुभ्रहारे ॥३॥

धीर्धीर्धीर्धारणाख्ये धृतिमतिनुतिभिर्नामभिः कीर्त्तनीये ।
नित्येऽनित्ये निमित्ते मुनिगणनमिते नित्यशुद्धे सुवर्णे ।
मात्रे मात्रार्द्धतत्त्वे नतिमतिमतिदे माधवप्रीतिदाने ॥४॥
ह्रीं क्ष्रीं धीं ह्रींस्वरूपे दह दह दुरितं पुस्तकव्यग्रहस्ते
सन्तुष्टाकारचित्ते स्मितमुखि सुभगे स्तम्भिनी स्तम्भविद्ये ।
मोहे मुग्धप्रभावे कुरु मम कुमतिध्वान्तविध्वंसमीड्ये
गीर्गोर्वाग्भारतीं त्वं कविवृषरसनासिद्धिदा सिद्धविद्या ॥५॥
स्तौमि त्वां त्वाञ्च वन्दे भज मम रसनां मां कदाचित्त्यजेथाः
मा मे बुद्धिर्विबुद्धा भवतु न च मनो देवि मे यातु पापम् ।
मा मे दुःखं कदाचिद्विपदि च समयेऽप्यस्तु मे नाकुलत्वं
शास्त्रे वादे कवित्वे प्रसरतु मम धीर्मास्तु कुण्ठा कदाचित् ॥६॥
इत्येतैः श्लोकमुख्यैः प्रतिदिनमुषसि स्तौति यो भक्तिनम्रो
वाणीं वाचस्पतेरप्यभिमतविभवो वाक्पटुर्मृष्टपङ्कः ।
न स्यादिष्टार्थलाभो सुतमिव सततं पालयेत्तञ्च देवी
सौभाग्यं तस्य गेहे प्रसरति कविता विघ्नमस्तं प्रयाति ॥७॥
ब्रह्मचारी व्रती मौनी त्रयोदश्यां निरामिषः ।
सारस्वतस्तोत्रपाठाद् भवेदिष्टार्थलाभवान् ॥८॥
पक्षद्वयेऽपि यो भक्त्या त्रयोदशैकविंशतिम् ।
अविच्छेद्यं पठेद्धीमान् ध्यात्वा देवीं सरस्वतीम् ॥९॥
शुक्लाम्बरधरां देवीं शुक्लाभरणभूषिताम् ।
वाञ्छितं फलमाप्नोति स लोके नात्र संशयः ॥१०॥
इति ब्रह्मा स्वयं प्राहुः सरस्वत्या स्तवं शुभम् ।
प्रयत्नेन पठेन्नित्यं सोऽमृतत्वञ्च गच्छति ॥११॥

इति ब्रह्मकृतं सरस्वतीस्तोत्रं समाप्तम्

अथ प्रचण्डचण्डिकास्तोत्रम्

नाभौ शुद्धसरोजमध्यविलसद्बन्धूकपुष्पारुणं
भास्वद्भास्करमण्डलं तदुदरे तद्योनिचक्रं महत् ।
तन्मध्ये विपरीतमैथुनरतप्रद्युम्न तत्कामिनी-
पृष्ठस्थां तरुणार्ककोटिविलसत्तेजःस्वरूपां शिवाम् ॥१॥

वामे छिन्नशिरोधरां तदितरे पाणौ महत्कर्त्रिकां
प्रत्यालीढपदां दिगन्तवसनामुन्मुक्तकेशस्त्रजाम् ।
च्छिन्नात्मीयशिरःसमुल्लसदसृग्धारं पिबन्तीं परां
बालादित्यसमप्रकाशविलसन्नेत्रत्रयोद्भासिनीम् ॥२॥
वामादन्यत्र नालं बहुबहुलगलद्रक्तधाराभिरुच्चैः
पायन्तीमस्थिभूषां करकमललसत्कर्त्तृकामुग्ररूपाम् ।
रक्ताभां रक्तकेशीमपगतवसनां वर्णिनीमात्मशक्तिं
प्रत्यालीढोरुपादामरुणितनयनां योगिनीं योगनिद्राम् ॥३॥
दिग्वस्त्रां मुक्तकेशीं प्रलयघनघटां घोररूपां प्रचण्डां
दंष्ट्रादुष्प्रेक्ष्यवक्त्रोदरविवरलसल्लोलजिह्वाग्रभासाम् ।
विद्युल्लोलाक्षियुग्मं हृदयतटलसद्भागिभीभां सुमूर्त्तिं
सद्यश्छिन्नात्मकण्ठप्रगलितरुधिरैर्डाकिनीं वर्द्धयन्तीम् ॥४॥
ब्रह्मेशानाच्युताद्यैः शिरसि विनिहितामन्दपादारविन्दै-
रात्मज्ञैर्योगिमुख्यैः प्रतिपदमनिशं चिन्तिताचिन्त्यरूपाम् ।
संसारे सारभूतां त्रिभुवनजननीं छिन्नमस्तां प्रशस्ता-
मिष्टां तामिष्टदात्रीं कलिकलुषहरां चेतसा चिन्तयामि ॥५॥
उत्पत्तिस्थितिसंहृतिर्घटयितुं धत्ते त्रिरूपां तनुं
त्रैगुण्याज्जगतो यदीयविकृतिर्ब्रह्माच्युतः शूलभृत् ।
तामाद्यां प्रकृतिं स्मरामि मनसा सर्वार्थसंसिद्धये
यस्याः स्मेरपदारविन्दयुगले लाभं भजन्तेऽमराः ॥६॥
अलिपिशितपरस्त्रीयोगपूजापरोऽहं
बहुविधजनभावारम्भसम्भावितोऽहम् ।
पशुजनविरतोऽहं भैरवीसंस्थितोऽहं
गुरुचरणपरोऽहं भैरवोऽहं शिवोऽहम् ॥७॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं ब्रह्मणा भाषितं पुरा ।
सर्वसिद्धिप्रदां साक्षान्महापातकनाशनम् ॥८॥
यः पठेत्प्रातरुत्थाय देव्याः सन्निहितोऽपि वा ।
तस्य सिद्धिर्भवेद् देवि वञ्छितार्थप्रदायिनी ॥९॥
धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च ।
वसुन्धरां महाविद्यामष्टसिद्धिर्लभेद् ध्रुवम् ॥१०॥
वैयाघ्राजिनरञ्जिते स्वजघने रम्ये प्रलम्बोदरे ।

कर्त्री कुन्दरुचिं विचित्रललितां ज्ञानं दधाने पदे ।
मातर्भक्तजनानुकम्पिनि महामायेऽस्तु तुभ्यं नमः ॥११॥

इति प्रचण्डचण्डिकास्तोत्रं समाप्तम्

●

अथ प्रचण्डचण्डिकाकवचम्

भैरव उवाच

शृणु वक्ष्यामि देवेशि सर्वदेवनमस्कृते ।
त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं सर्वमोहनम् ॥१॥
सर्वविद्यामयं साक्षात् सुरासुरजयप्रदम् ।
धारणात् पठनादीशस्त्रैलोक्यविजयी विभुः ॥२॥
ब्रह्मा नारायणो रुद्रो धारणात्पठनाद्यतः ।
कर्त्ता पाता च संहर्त्ता भुवनानां सुरेश्वरि ॥३॥
न देयं परशिष्येभ्यो ह्यभक्तेभ्यो विशेषतः ।
देयं शिष्याय भक्ताय प्राणेभ्योऽप्यधिकाय च ॥४॥
देव्याश्च छिन्नमस्तायाः कवचस्य तु भैरवः ।
ऋषिर्विराट्छन्दश्च देवता छिन्नमस्तका ॥५॥
त्रैलोक्यविजये मुक्तौ विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।
हुंकारो मे शिरः पातु छिन्नमस्ता बलप्रदा ॥६॥
ह्रीं हुं हूं ऐं त्र्यक्षरी पातु भालं रक्ता दिगम्बरी ।
श्रीं ह्रीं हूं ऐं दृशौ पातु मुण्डकर्त्रींधराऽपि सा ॥७॥
सा विद्या प्रणवाद्यन्ता श्रुतियुग्मं सदावतु ।
वज्रवैरोचनीये हुं फट् स्वाहा च ध्रुवादिका ॥८॥
घ्राणं पातु छिन्नमस्ता स्वमुण्डकर्त्रींधारिणी ।
श्रीमायाकूर्चवाग्बीजैर्वज्रवैरोचनीये हुं ॥९॥
हुं फट् स्वाहा महाविद्या षोडशी ब्रह्मरूपिणी ।
स्वपार्श्वे बालिकाश्चासृग्धारां पाययती मुदा ॥१०॥
वदनं सर्वतः पातु छिन्नमस्ता सशक्तिका ।
मुण्डकर्त्रींधरा रक्ता साधकाभीष्टदायिनी ॥११॥
वर्णिनी डाकिनी युक्ता सापि मामभितोऽवतु ।
रसाद्या पातु जिह्वाञ्च लज्जाद्या पातु कण्ठकम् ॥१२॥
कूर्चाद्या हृदयं पातु वागाद्या स्तनयुग्मकम् ।
रमया पुटिता विद्या पार्श्वौ पातु सुरेश्वरी ॥१३॥

मायया पुटिता पातु नाभिदेशं दिगम्बरी ।
कूर्चेन पुटिता देवी पृष्ठदेशं सदावतु ॥१४॥
वाग्बीजपुटिता चैषा मध्यं पातु सशक्तिका ।
ईश्वरी कूर्चवाग्बीजे वज्रवैरोचनीये हुं ॥१५॥
फट्स्वाहेति महाविद्या सूर्यकोटिसमप्रभा ।
छिन्नमस्ता सदा पायादुरुयुग्मं सशक्तिका ॥१६॥
ह्रीं हूं वर्णिनी जानु श्रीं ह्रीं हुं च डाकिनीपदम् ।
सर्वविद्यास्थिता नित्या सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥१७॥
प्राच्यां पायादेकलिङ्गा योगिनी पावकेऽवतु ।
डाकिनी दक्षिणे पातु श्रीमहाभैरवी च माम् ॥१८॥
नैर्ऋत्यां सततं पातु भैरवी पश्चिमेऽवतु ।
इन्द्राक्षी पातु वायव्येऽसिताङ्गी पातु चोत्तरे ॥१९॥
संहारिणी सदा पातु शिवकोणे सकर्त्तृका ।
क्रीं क्रीं क्रीं पातु सा पूर्वे हुं हुं मां पातु पावके ॥२०॥
ह्रीं ह्रीं मां दक्षिणे पातु दक्षिणे कालिकेऽवतु ।
क्रीं क्रीं क्रीं चैव नैर्ऋत्यां हुं हुं मां पश्चिमेऽवतु ॥२१॥
ह्रीं ह्रीं पातु मरुत्कोणे स्वाहा पातु सदोत्तरे ।
महाकाली खड्गहस्ता रक्षःकोणे सदावतु ॥२२॥
तारो माया वधु कूर्च फट्कारोऽयं महामनुः ।
खड्गकर्त्रीधरा तारा चोर्ध्वदेशं सदावतु ॥२३॥
ह्रीं स्त्रीं हुं फट् पाताले मां पातु चैकजटा सती ।
तारास्त्ररहिता खेऽव्यान्महानीलसरस्वती ॥२४॥
इति ते कथितं देव्याः कवचं मन्त्रविग्रहम् ।
यद्धृत्वा पठनाद्भीमः क्रोधाख्यो भैरवः प्रभुः ॥२५॥
सुरासुरमुनीन्द्राणां कर्त्ता हर्त्ता भवेत्स्वयम् ।
यस्याज्ञया मधुमती याति सा साधकान्तिकम् ॥२६॥
भूतिन्याद्याश्च योगिन्या यक्षिण्याद्याश्च खेचराः ।
आज्ञां गृह्णन्ति तास्तस्य कवचस्य प्रसादतः ॥२७॥
देवीमभ्यर्च्य गन्धाद्यैर्मूलेनैव पठेत् सकृत् ।
संवत्सरकृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥२८॥

इति भैरवीतन्त्रे छिन्नमस्ताकल्पे त्रैलोक्यविजयं नाम छिन्नमस्ताकवचं समाप्तम्

अथ बगलामुखीकवचम्

चलत्कनककुण्डलोल्लसितचारुगण्डस्थलीं
लसत्कनकचम्पकद्युतिमदिन्दुबिम्बाननाम् ।
गदाहतविपक्षकां कलितलोलजिह्वाञ्चलां
स्मरामि बगलामुखीं विमुखसन्मनःस्तम्भिनीम् ॥१॥
पीयूषोदधिमध्यचारुविलसद्रक्तोत्पले मण्डले
यत्सिंहासनमौलिपातितरिपुप्रेतासनाध्यासिनीम् ।
स्वर्णाभां करपीडितारिरसनां भ्राम्यद्गदाविभ्रमा-
मित्थं ध्यायति यान्ति तस्य सहसा सद्योऽथ सर्वापदः ॥२॥
देवी तच्चरणाम्बुजार्चनकृते यः पीतपुष्पाञ्जलिं
भक्त्या वामकरे विधाय च मनुं मन्त्री मनोज्ञाक्षरम् ।
पीठध्यानपरोऽथ कुम्भकवशद्बीजं स्मरेत्पार्थिवं
तस्या मित्रमुखस्य वाचि हृदये जाड्यं भवेत्तत्क्षणात् ॥३॥
वादी मूकति रङ्कति क्षितिपतिर्वैश्वानरः शीतति
क्रोधी शाम्यति दुर्जनः सुजनति क्षिप्रानुगः खञ्जति ।
गर्वी खर्वति सर्वविच्च जड़ति जन्मन्त्रिणा यन्त्रितः
श्रीनित्ये बगलामुखि प्रतिदिनं कल्याणि तुभ्यं नमः ॥४॥
मन्त्रस्तादनलं विपक्षदलने स्तोत्रं पवित्रञ्च ते
यन्त्रं वादिनियन्त्रणं त्रिजगतां जैत्रन्तु चित्रं नुते ।
मातः श्रीबगलेति नाम ललितं यस्यास्ति जन्तोर्मुखे
तन्नामग्रहणेन संसदि मुखस्तम्भो भवेद्वादिनाम् ॥५॥
दुष्टस्तम्भनमुग्रविघ्नशमनं दारिद्र्यविद्रावणं
भूभृद्भीशमनं बलान्मृगदृशां चेतःसमाकर्षणम् ।
सौभाग्यैकनिकेतनं मम दृशः कारुण्यपूर्णामृतं
मृत्योर्मारणमाविरस्तु पुरतो मातस्त्वदीयं वपुः ॥६॥
मातर्भञ्जय मे विपक्षवदनं जिह्वां चलां कीलय
ब्राह्मीं मुद्रय नाशयाशु धिषणामुग्रां गतिं स्तम्भय ।
शत्रूंश्चूर्णय देवि तीक्ष्णगदया गौराङ्गि पीताम्बरे
विघ्नौघं बगले हर प्रणमतां कारुण्यपूर्णेक्षणे ॥७॥
मातर्भैरवि भद्रकालि विजये वाराहि विश्वाश्रये
श्रीविद्ये समये महेशि बगले कामेशि रामे रमे ।

मातङ्गि त्रिपुरे परात्परतरे स्वर्गापवर्गप्रदे
दासोऽहं शरणागतः करुणया विश्वेश्वरि त्राहि माम् ॥८॥
संरम्भे चौरसङ्घे प्रहरणसमये बन्धने व्याधिमध्ये
विद्यावादे विवादे प्रकुपितनृपतौ दिव्यकाले निशायाम् ।
वश्ये वा स्तम्भने वा रिपुवधसमये निर्जने वा वने वा
गच्छैस्तिष्ठंस्त्रिकालं यदि पठति शिवं प्राप्नुयादाशु धीरः ॥९॥
नित्यं स्तोत्रमिदं पवित्रमिह यो देव्याः पठत्यादरात्
धृत्वा यन्त्रमिदं तथैव समरे बाहौ करे वा गले ।
राजानोऽप्यरयो मदान्धकरिणः सर्पा मृगेन्द्रादिका-
स्ते वै यान्ति विमोहिता रिपुगणा लक्ष्मीः स्थिराः सिद्धयः ॥१०॥
त्वं विद्या परमा त्रिलोकजननी विघ्नौघसम्भेदिनी
योषाकर्षणकारिणी जनमनःसम्मोहसन्दायिनी ।
स्तम्भोत्सारणकारिणी पशुमनःसम्मोहसन्दायिनी
जिह्वां कीलय भैरवी विजयते ब्रह्मादिमन्त्रो यथा ॥११॥
विद्यां लक्ष्मीं सर्वसौभाग्यमायुः पुत्रैः पौत्रैः सर्वसाम्राज्यसिद्धिम् ।
मानं भोगो वश्यमारोग्यसौख्यं प्राप्तं तत्तद्भूतलेऽस्मिन्नरेण ॥१२॥
यत्कृतं जपसन्नाहं पतितं परमेश्वरम् ।
दुष्टानां निग्रहार्थाय तं गृहाण नमोऽस्तु ते ॥१३॥
ब्रह्मास्त्रमिति विख्यातं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
गुरुभक्ताय दातव्यं न देयं यस्य कस्यचित् ॥१४॥
पीताम्बरां द्विभुजाञ्च त्रिनेत्रां गोत्रकोज्ज्वलम् ।
शीलां मुद्गरहस्ताञ्च स्मरेत्तां बगलामुखीम् ।
प्रातर्मध्याह्नकाले स्तवपठनमिदं कार्यसिद्धिप्रदं स्यात् ॥१५॥

इति रुद्रयामले बगलामुखीस्तोत्रं समाप्तम्

अथान्नपूर्णास्तोत्रम्

नमः कल्याणदे देवि नमः शङ्करवल्लभे ।
नमो भक्तप्रिये देवि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥१॥
नमो मायागृहीताङ्गि नमः शङ्करवल्लभे ।
माहेश्वरि नमस्तुभ्यमन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥२॥

महामाये शिवे धर्मपत्नीरूपे हरप्रिये ।
वाञ्छादात्रि जगद्धात्रि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥३॥
षट्कोणपद्ममध्यस्थे षडङ्गयुवतीमये ।
ब्रह्मण्यादिस्वरूपे च अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥४॥
देवि चन्द्रकृतापीड़े सर्वसाम्राज्यदायिनि ।
सर्वानन्दकरे देवि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥५॥
इन्द्राण्यञ्चितपादाब्जे रुद्रादिरूपधारिणी ।
सर्वसम्पत्प्रदे देवि अन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥६॥
पूजाकाले पठेद्यस्तु स्तोत्रमेतत्समाहितः ।
तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीर्जायते नात्र संशयः ॥७॥
प्रातःकाले पठेद्यस्तु मन्त्रं जापपुरःसरम् ।
तस्य चान्नसमृद्धिः स्याद्वर्द्धमाना दिने दिने ॥८॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं न प्रकाश्यं कदाचन ।
प्रकाशात्कार्यहानिः स्यात्तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ॥९॥

इत्यन्नपूर्णास्तोत्रं समाप्तम्

●

अथान्नपूर्णाकवचम्

देव्युवाच

कथिताश्चान्नपूर्णाया या या विद्याः सुदुर्लभाः ।
कृपया कथिताः सर्वाः श्रुताश्चाधिगता मया ॥१॥
साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि कवचं यत् पुरोदितम् ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥२॥

ईश्वर उवाच

शृणु पार्वति वक्ष्यामि सावधानावधारय ।
ब्रह्मविद्यास्वरूपञ्च महदैश्वर्यदायकम् ॥३॥
पठनाद्धारणान्मर्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्यमाप्नुयात् ।
त्रैलोक्यरक्षणस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः ॥४॥
छन्दो विराडन्नपूर्णा देवता सर्वसिद्धिदा ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥५॥

ह्रीं नमो भगवत्यन्ते माहेश्वरिपदं ततः ।
अन्नपूर्णे ततः स्वाहा चैषा सप्तदशाक्षरी ॥६॥
पातु मामन्नपूर्णा सा या ख्याता भुवनत्रये ।
विमाया प्रणवाद्यैषा तथा सप्तदशाक्षरी ॥७॥
पात्वन्नपूर्णा सर्वाङ्गं रत्नकुम्भान्नपात्रदा ।
श्रीबीजाद्या भ्रुवौ पातु कण्ठं वाग्बीजपूर्विका ॥८॥
कामबीजादिका चैषा हृदयान्ते महेश्वरि ।
तारं ह्रीं श्रीं नमोऽन्ते च भगवतिपदं ततः ॥९॥
माहेश्वरिपदं चान्नपूर्णे स्वाहेति पातु मे ।
नाभिमेकोनविंशार्णा पायान्माहेश्वरी सदा ॥१०॥
तारं माया रमा कामः षोडशार्णास्ततः परम् ।
ध्वजञ्च सर्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिका च या ॥११॥
अन्नपूर्णा महाविद्या ह्रीं पातु भुवनेश्वरी ।
शिरः श्रीं ह्रीं तथा क्लीञ्च त्रिपुटा पातु मे गुदम् ॥१२॥
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडङ्गानि पुनन्तु माम् ।
करौ पादौ सदा पातु रमा कामो ध्रुवस्तथा ॥१३॥
इन्द्रो मां पातु पूर्वे च वह्निकोणेऽनलेऽवतु ।
यमो मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां निर्ऋतिश्च माम् ॥१४॥
पश्चिमे वरुणः पातु वायव्यां पवनोऽवतु ।
कुबेरश्चोत्तरे पातु मामैशान्यां शिवोऽवतु ॥१५॥
ऊर्ध्वाधः सततं पातु ब्रह्मानन्तो यथाक्रमात् ।
वज्राद्याश्चायुधः पान्तु दशदिक्षु यथाक्रमात् ॥१६॥
इति ते कथितं पुण्यं त्रैलोक्यरक्षणं परम् ।
यद्धृत्वा पठनाद्देवाः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥१७॥
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च पठनाद्धारणाद्यतः ।
सृजत्यवति हन्त्येव कल्पे कल्पे पृथक्पृथक् ॥१८॥
पुष्पाञ्जल्यष्टकं देव्यै मूलेनैव पठेत्ततः ।
युगायुतकृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥१९॥
चाञ्चल्यरहिता लक्ष्मीः पुत्रपौत्रावधिस्थिता ।
वाणी वक्त्रे वसेत्तस्य सत्यं सत्यं न संशयः ॥२०॥
अष्टोत्तरशतञ्चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः ।
भूर्जे विलिख्य गुलिकां स्वर्णस्थां धारयेद्यदि ॥२१॥

कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि सर्वतपोमयः ।
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि तद्गात्रं प्राप्य पार्वति ॥२२॥
माल्यानि कुसुमान्येव भवन्त्येव न संशयः ॥२३॥

इति भैरवतन्त्रे अन्नपूर्णाकवचं समाप्तम्

अथ भुवनेश्वरीस्तवः

अथानन्दमयीं साक्षात् शब्दब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
इड़े सकलसम्पत्त्यै जगत्कारणमम्बिकाम् ॥१॥
आद्यामशेषजननीमरविन्दयोने
विष्णोः शिवस्य च वपुः प्रतिपादयित्रीम् ।
सृष्टिस्थितिक्षरकरीं जगतां त्रयाणां
स्तुत्वा गिरं विमलयाम्यहमम्बिके त्वाम् ॥२॥
पृथ्व्या जलेन शिखिना मरुताम्बरेण
होत्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्त्तिभाजः ।
देवस्य मन्मथरिपोरपि शक्तिमत्ता
हेतुस्तमेव खलु पर्वतराजपुत्रि! ॥३॥
त्रिस्रोतसः सकलदेवसमर्चिताया:
वैशिष्ट्यकारणमवैमि तदेव मातः ।
त्वत् पादपङ्कजपरागपवित्रितासु
शम्भोर्जटासु सततं परिवर्त्तनं यत् ॥४॥
आनन्दयेत्कुमुदिनीमधिपः कलानां
नान्यानि नः कमलिनीमथ नेतरां वा ।
एकस्य मोदनविधौ परमेक इष्टे
त्वस्तु प्रपञ्चमभिनन्दयसि स्वदृष्ट्या ॥५॥
अध्याप्यशेषजगतां नवयौवनासि
शैलाधिराजतनयाप्यतिकोमलासि ।
त्रय्याः प्रसूरपि तया न समीक्षितासि
ध्येयापि गौरि मनसो न पथि स्थितासि ॥६॥
आसाद्य जन्म मनुजेषु चिराद्दुरापं
तत्रापि पाटवमवाप्य निजेन्द्रियाणाम् ।

नाभ्यर्चयन्ति जगतां जनयित्रि ये त्वां
निःश्रेणिकाग्रमधिरुह्य पुनः पतन्ति ॥७॥
कर्पूरचूर्णहिमवारिविलोडितेन
ये चन्दनेन कुसुमैश्च सुजातगन्धैः।
आराधयन्ति हि भवानि समुत्सुका त्वां
ते खल्वशेषभुवनाधिभुवः प्रथन्ते ॥८॥
आविश्य मध्यपदवीं प्रथमे सरोजे
सुप्ता हि राजसदृशी विरचय्य विश्वम्।
विद्युल्लतावलयविभ्रममुद्वहन्ती
पद्मानि पञ्च विदलया खमश्नुवाना ॥९॥
तन्निर्गतामृतरसैरभिषिच्य गात्रं
मार्गेण तेन निलयं पुनरप्यवाप्ता।
येषां हृदि स्फुरति जातु न ते भवेषु
मातर्महेश्वरकुटुम्बिनि गर्भभाजः ॥१०॥
आलम्बिकुण्डलभरामभिरामवक्त्रा-
मापीवरस्तनतटीं तनुवृत्तमध्याम्।
चिन्ताक्षसूत्रकलसां लिखिताढ्यहस्ता-
मावर्त्तयामि मनसा तव गौरिमूर्त्तिम् ॥११॥
आस्थाय योगमवजित्य च वैरिषट्क-
मावध्य चेन्द्रियगणं मनसि प्रसन्ने।
पाशाङ्कुशाभयवराढ्यकरां सुवक्त्रा-
मालोकयन्ति भुवनेश्वरि योगिनस्त्वाम् ॥१२॥
उत्तप्तहाटकनिभा करिभिश्चतुर्भि-
रावर्जितामृतघटैरभिषिच्यमाना।
हस्तद्वयेन ललिते रुचिरे वहन्ती
पद्मापि साभयवरा भवसि त्वमेव ॥१३॥
अष्टाभिरुग्रविविधायुधवाहिनीभि-
र्दोर्वल्लरीभिरधिरुह्य मृगाधिराजम्।
दूर्वादलद्युतिरमर्त्त्यविपक्षपक्षान्
न्यक्कुर्वती त्वमसि देवि भवानि दुर्गा ॥१४॥
आविर्निदाघजलशीकरशोभिवक्त्रां
गुञ्जाफलेन परिकल्पितहारयष्टिम्।

पत्रांशुकामसितकान्तिमनङ्गतन्त्रा-
माद्यां पुलिन्दतरुणीमसकृत् स्मरामि ॥१५॥
हंसैर्गतिक्वणितनूपुरदूरकृष्टे-
र्मूर्तैरिवाप्तवचनैरनुगम्यमानौ ।
पद्मारिवोर्ध्वमुखरुढसुजातनालौ
श्रीकण्ठपत्नि शिरसैव दधे ज्वलाङ्घ्रि ॥१६॥
द्वाभ्यां समीक्षितमतृप्तिमतीव दृग्भ्या-
मुत्पाद्य भालनयनं वृषकेतनेन ।
सान्द्रानुरागतरलेन निरीक्ष्यमाणे
जङ्घे उभे अपि भवानि तवानतोऽस्मि ॥१७॥
ऊरू स्मरामि जितहस्तिकरावलेपो
स्थौल्येन मार्दवतया परिभूतरम्भौ ।
श्रोणीभरस्य सहनौ परिकल्प्य दत्तौ
स्तम्भाविवाम्बवयसा तव मध्यमेन ॥१८॥
श्रोणौ स्तनौ च युगपत्प्रथयिष्यतोच्चै-
र्बाल्यात् परेण वयसा परिकृष्टसारः ।
रोमावलीविलसितेन विभाव्य मूर्त्ति-
मध्यस्तव स्फुरतु मे हृदयस्य मध्ये ॥१९॥
सख्या स्मरस्य हरनेत्रहुताशभीरो-
र्लावण्यवारिभरितं नवयौवनेन ।
आपाद्य दत्तमिव पल्लवमप्रघृष्यं
नाभिं कदापि तव देवि न विस्मरेयम् ॥२०॥
ईशोपगूढपिशुनं भसितं दधाने
काश्मीरकर्दममनुस्तनपङ्कजे ते ।
स्नातोत्थितस्य करिणः क्षणलक्ष्यफेणौ
सिन्दूरितौ स्मरयतः समदस्य कुम्भौ ॥२१॥
कण्ठातिरिक्तगलदुज्ज्वलकान्तिधारा-
शोभौ भुजौ निजरिपोर्मकरध्वजेन ।
कण्ठग्रहाय रचितौ किल दीर्घपाशौ
मातर्मम स्मृतिपथं न विलङ्घयेताम् ॥२२॥
नात्यायतं रुधिरकम्बुविलासचौर्य
भूषाभरेण विविधेन विराजमानम् ।

कण्ठं मनोहरगुणं गिरिराजकन्ये
सञ्चिन्त्य तृप्तिमुपयामि कदापि नाहम् ॥२३॥
आतायताक्षमभिजातललाटपट्टं
मन्दस्मितेन दरफुल्लकपोलरेखम् ।
बिम्बाधरं वदनमुन्नतदीर्घनासं
यस्ते स्मरत्यसकृदम्ब स एव जातः ॥२४॥
आविस्तुषारकरलेखमनल्पगन्ध-
पुष्पोपरि भ्रमदलिव्रजनिर्विशेषम् ।
यश्चेतसा कलयते तव केशपाशं
तस्य स्वयं गलति देवि पुराणपाशः ॥२५॥
श्रुतिसुचरितपाकं धीमतां स्तोत्रमेतत्
पठति य इह मर्त्त्यो नित्यमार्त्तान्तरात्मा ।
स भवति पदमुच्चैः सम्पदां पादनम्र-
क्षितिपमुकुटलक्ष्मीलक्षणाणां चिराय ॥२६॥

इति भुवनेश्वरीस्तोत्रं समाप्तम्

अथ भुवनेश्वरीकवचम्

श्रीदेव्युवाच

भुवनेश्वर्याश्च देवेश! या या विद्याः प्रकाशिताः ।
श्रुताश्चाधिगताः सर्वाः श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥१॥
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं यत् पुरोदितम् ।
तत् प्रकाशय देवेश! यदि स्नेहोऽस्ति मां प्रति ॥२॥

ईश्वर उवाच

शृणु पार्वति वक्ष्यामि सावधानावधारय ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं मन्त्रविग्रहम् ॥३॥
सिद्धविद्यामयं देवि सर्वैश्वर्यप्रदायकम् ।
पठनाद्धारणन्मर्त्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्यभाग्भवेत् ॥४॥
त्रैलोक्यमङ्गलस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः ।
छन्दो विराट् जगद्धात्री देवता भुवनेश्वरी ॥५॥

धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ।
ह्रीं बीजं मे शिरः पातु भुवनेशी ललाटकम् ॥६॥
ऐं पातु दक्षनेत्रं मे ह्रीं पातु वामलोचनम् ।
श्रीं पातु दक्षकर्णं मे त्रिवर्णात्मा महेश्वरी ॥७॥
वामकर्णं सदा पातु ऐं घ्राणं पातु मे सदा ।
ह्रीं पातु वदनं देवी ऐं पातु रसनां मम ॥८॥
वाक्पुटा च त्रिवर्णात्मा कण्ठं पातु परात्मिका ।
श्रीं स्कन्धौ पातु नियतं ह्रीं भुजौ पातु सर्वदा ॥९॥
क्लीं करौ त्रिपुरेशानी त्रिपुरैश्वर्यदायिनी ।
आं पातु हृदयं ह्रीं मे मध्यदेशं सदावतु ॥१०॥
क्रों पातु नाभिदेशं सा त्र्यक्षरी भुवनेश्वरी ।
सर्वबीजं सदा पृष्ठं पातु सर्ववशङ्करी ॥११॥
ह्रीं पातु गुह्यदेशं मे नमो भगवति कटिम् ।
माहेश्वरी सदा पातु सक्थिनी जानुयुग्मकम् ॥१२॥
अन्नपूर्णे सदा पातु स्वाहा पातु पदद्वयम् ।
सप्तदशाक्षरी पायादन्नपूर्णाखिलं वपुः ॥१३॥
तारं माया रमा कामः षोडशार्णा ततः परम् ।
शिरस्था सर्वदा पातु विंशद्वर्णात्मिका परा ॥१४॥
तारं दुर्गे युगं रक्षणि स्वाहेति च दशाक्षरी ।
जयदुर्गा घनश्यामा पातु मां पूर्वतो मुदा ॥१५॥
मायाबीजादिका चैषा दशार्णा च तथापरा ।
उत्तप्तकाञ्चनाभासा जयदुर्गाऽनलेऽवतु ॥१६॥
तारं ह्रीं दुं दुर्गायै च नमोऽष्टार्णात्मिका परा ।
शङ्खचक्रधनुर्बाणधरा मां दक्षिणेऽवतु ॥१७॥
महिषमर्द्दिनी स्वाहा वसुवर्णात्मिका परा ।
नैर्ऋत्यां सर्वदा पातु महिषासुरनाशिनी ॥१८॥
माया पद्मावती स्वाहा सप्तार्णा परिकीर्त्तिता ।
पद्मावती पद्मसंस्था पश्चिमे मां सदावतु ॥१९॥
पाशाङ्कुशपुटां मायैहि परमेश्वरि स्वाहा ।
त्रयोदशार्णा ताराद्या साश्वारूढानिलेऽवतु ॥२०॥
सरस्वती पञ्चशरो नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ।
स्वाहा रव्यक्षरी नित्या मामुत्तरे सदावतु ॥२१॥

तारं माया च कवचं खे च ह क्ष ततो वधुः ।
हुं क्षे ह्रीं फट् महाविद्या द्वादशार्णाखिलप्रदा ॥२२॥
त्वरिताष्ठाहिभिः पायाच्छिवकोणे सदा च माम् ।
ऐं क्लीं सौः सा ततो बाला मामूर्ध्वदेशतोऽवतु ॥२३॥
विन्दन्ता भैरवी बाला भूमौ मां सर्वदाऽवतु ।
इति ते कथितं पुण्यं त्रैलोक्यमङ्गलं परम् ॥२४॥
सारात्सारतरं पुण्यं महाविद्यौघविग्रहम् ।
अस्यापि पठनात्सद्यः कुबेरोऽपि धनेश्वरः ॥२५॥
इन्द्राद्याः सकला देवाः धारणात्पठनाद्यतः ।
सर्वसिद्धीश्वराः सन्तः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥२६॥
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा मूलेनैव पठेत्सकृत् ।
संवत्सरकृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥२७॥
प्रीतिमन्योन्यतः कृत्वा कमला निश्चला गृहे ।
वाणी च निवसेद्वक्त्रे सत्यं सत्यं न संशयः ॥२८॥
यो धारयति पुण्यात्मा त्रैलोक्यमङ्गलाभिधम् ।
कवचं परमं पुण्यं सोऽपि पुण्यवतां वरः ॥२९॥
सर्वैश्वर्ययुतो भूत्वा त्रैलोक्यविजयी भवेत् ।
पुरुषो दक्षिणे बाहौ नारी वामभुजे तथा ॥३०॥
बहुपुत्रवती भूत्वा वन्ध्यापि लभते सुतम् ।
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि नैव कृन्तन्ति तज्जनम् ॥३१॥
एतत् कवचमज्ञात्वा यो भजेद् भुवनेश्वरीम् ।
दारिद्र्यं परमं प्राप्य सोऽचिरान्मृत्युमाप्नुयात् ॥३२॥

इति रुद्रयामले देवीश्वरसंवादे त्रैलोक्यमङ्गलं
नाम भुवनेश्वरीकवचं समाप्तम्

अथ त्रिपूटास्तवः

वराभीतिहस्तं द्विबाहुं प्रसन्नं
शिवः सुप्रसन्नं स्वशक्त्योपविष्टम् ।
प्रसन्नास्यबिम्बं प्रकाशस्वरूपं
शिरः पद्ममध्ये गुरुं भावयामि ॥१॥

बकं वह्निसंस्थं त्रिमूर्त्या प्रजुष्टं
शशाङ्केन युक्तं तवाद्यं स्वबीजम् ।
सुवर्णप्रभं ये जपन्ति त्रिशक्तेः
श्रियं सौभगत्वं लभन्ते नरास्ते ॥२॥
नमो वायुमित्रं ततो वामनेत्रं
सुधी धामबिम्बं नियोज्यैकवक्त्रम् ।
द्वितीयं स्वबीजं सुरश्रेणिवन्द्या-
त्त्वदीयं विभाव्य श्रियं प्राप्नुवन्ति ॥३॥
विरिञ्चिं क्षितिस्थं ततो वामनेत्रं
विधुं नादयुक्तं दिनेशाभबीजम् ।
विभाव्यैव सम्मोहयन्ति त्रिलोकीं
जपादीश्वरत्वं लभन्ते नरेन्द्राः ॥४॥
त्रयं सन्नियोज्य स्मराभिप्रिये ये
त्रिसन्ध्यं जपन्ति त्वदङ्गं विभाव्य ।
न तेषां रिपुर्वाक्प्रयोगं करोति
स्मरास्तेऽङ्गनानां गृहे श्रीस्तु तेषाम् ॥५॥
मुखे भारती गद्यपद्यप्रबन्धा
न हिंसन्ति हिंस्रोः सुरास्तान्नमन्ति ॥६॥
वने पारिजातद्रुमाणां पृथिव्याः
सुवर्णप्रभायां मणिव्यूहगेहे ।
स्मरद्वेदिकायां लसद्रत्नसिंहा-
सने पद्ममष्टारकं संविचिन्त्य ॥७॥
स्फुरत्कर्णिकायां परं योनियुग्मं
तदन्तर्गतामुष्णहेमप्रभां ताम् ।
लसत्कुण्डलामिन्दुवक्त्रां त्रिनेत्रां
स्फुरत्कम्बुकण्ठां सुवक्षोजनम्राम् ॥८॥
महारत्नवज्रोल्लसद्बाहुवृन्दैः
सुपद्मद्वयं पाशकं कार्मुकञ्च ।
सुवर्णाङ्कुशं पुष्पबाणान्दधानां
बृहद्रत्नभूषां सुमध्यां सुकाञ्चीम् ॥९॥
तुलाकोटिरम्यस्फुरत्पादपद्मां
किरीटाद्यलङ्कारयुक्तां प्रसन्नाम् ।

सिते चामरे दर्पणं तत्करण्डं
समुद्गं सुकर्पूरपूर्णं घृताभिः ॥१०॥
त्रिलोकीविधात्रीं जगत्तापहन्त्रीं
जगत्क्षोभकर्त्रीं जगल्लोकधात्रीम् ।
सदानन्दपूर्णां हकारार्द्धवर्णां
त्रिबिन्दुस्वरूपां त्रिशक्तिं भजामि ॥११॥
चिरं चिन्तयित्वा तदेतत्स्वरूपां
पुरोयन्त्रमध्ये समावाह्य भक्त्या ।
स्वयम्भुप्रसूनादिभिः पूजयित्वा
चतुर्वर्गसिद्धिं लभेत्पामरोऽपि ॥१२॥
श्रियं श्रीपतिं पार्वतीमीश्वरञ्च
रतिं कामदेवं षडङ्गेन सार्द्धम् ।
स्वयोनौ तथा मन्त्रमुक्त्वा भवानीं
क्रमात्पूजयित्वा नरेन्द्रो भवेत्सः ॥१३॥
निधी द्वौ च पार्श्वद्वये संविभाव्य
प्रपूज्य महिष्यस्ततो लोकपालाः ।
तदस्त्राणि तत्तद्दलाग्रे प्रपूज्य
भवस्याष्टसिद्धिं लभेन्मानवोऽपि ॥१४॥
क्षितित्वं विधात्री जगत्सृष्टिकर्त्री
त्वमायोऽपि विष्णुर्जगत्पालिका च ।
त्वमग्निस्तु रुद्रो जगत्क्षेमकर्त्री
त्वमैश्वर्ययुक्ता जगद्वायुरूपा ॥१५॥
त्वमाद्या शिवे शम्भुकान्ते शरण्ये
जगद् ब्रह्मरन्ध्रे सदारं भ्रमीषि ।
निराधारगम्या भवस्यैकपुण्या
त्वमाकाशकल्पा भवानि प्रसीद ॥१६॥
भवान्तोऽब्धिमध्ये निपात्यैव सर्वं
मुनीनाञ्च गर्वं सुखर्वं करोषि ।
अतस्त्वां न जाने चिदानन्दरूपे
प्रकाशस्वरूपे भवानि प्रसीद ॥१७॥
जपित्वा तु विद्यां जनो मन्दचेता
जपन्नेकलक्षं कवित्वं करोति ।

विचिन्त्य स्वरूपं त्वदीयं त्रिलोक्यां
लभेद् दुर्लभत्वं भवानि प्रसीद ॥१८॥
त्वमाधारशक्तिस्त्वमाधेयरूपा
जगद्व्यापिका त्वं जगद्व्याप्यरूपा ।
अभावस्त्वमेका गुणातीतरूपा
त्वमेवासि भावो भवानि प्रसीद ॥१९॥
अणुस्त्वं विभुस्त्वं त्वमेवासि विश्वं
स्तुतिः कामवत्या जगत्या विभाति।
तथापि त्वदीया गुणा मां दिशन्ति
स्तुतिं कर्त्तुमेवं भवानि प्रसीद ॥२०॥
इदं स्तोत्रमत्यन्तगुह्यं नरा ये
पठन्ति त्रिसन्ध्यं कुलास्ते जपित्वा ।
न तेषामसाध्यं त्रिलोक्यां जनानां
लभन्ते स्वरूपं भवानि प्रसीद ॥२१॥

इति त्रिपूटास्तोत्रं समाप्तम्

अथ त्रिपूटाकवचम्

देव्युवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ।
त्रिशक्तिरूप लक्ष्म्याश्च कवचं यत्प्रकाशितम् ॥१॥
सर्वार्थसाधनं नाम कथयस्व मयि प्रभो ।

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचं परमाद्भुतम् ॥२॥
सर्वार्थसाधनं नाम त्रैलोक्ये चातिदुर्लभम् ।
सर्वसिद्धिमयं देवि सर्वैश्वर्यप्रदायकम् ॥३॥
पठनाद्धारणान्मर्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्यभाग्भवेत् ।
सर्वार्थसाधनस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिव ॥४॥
छन्दो विराड् त्रिशक्तिः श्री जगद्धात्री च देवता ।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥५॥

श्रीं बीजं मे शिवः पातु लक्ष्मीरूपा ललाटकम्।
ह्रीं पातु दक्षनेत्रं मे वामनेत्रं सुरेश्वरी ॥६॥
क्लीं पातु दक्षकर्णं मे वामं कामेश्वरी तथा।
लक्ष्मीर्घ्राणं सदा पातु वदनं पातु केशवः ॥७॥
गौरी तु रसनां पातु कण्ठं पातु महेश्वरः।
स्कन्धदेशं रतिः पातु भुजौ तु मकरध्वजः ॥८॥
शङ्खनिधिः करौ पातु वक्षः पद्मनिधिः सदा।
ब्राह्मी मध्यं सदा पातु नाभिं पातु महेश्वरी ॥९॥
कुमारी पृष्ठदेशं मे गुह्यं रक्षतु वैष्णवी।
वाराही सक्थिनी पातु ऐन्द्री पातु पदद्वयम् ॥१०॥
भार्या रक्षतु चामुण्डा लक्ष्मी रक्षतु पुत्रकान्।
इन्द्रः पूर्वे सदा पातु अग्नेय्यामग्निदेवता ॥११॥
याम्ये यमः सदा पातु वायव्यां वायुदेवता।
सौम्ये सोमः सदा पातु ऐशान्यामीश्वरोऽवतु ॥१२॥
ऊर्ध्वं प्रजापतिः पातु अधश्चानन्तदेवता।
राजद्वारे श्मशाने च अरण्ये प्रान्तरे तथा ॥१३॥
जले स्थले चान्तरिक्षे शत्रूणां निचये तथा।
एताभिः सहिता देवी त्रिबीजात्मा महेश्वरी ॥१४॥
त्रिशक्तिश्च महालक्ष्मीः सर्वत्र मां सदावतु।
सर्वार्थसाधनं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥१५॥
इति ते कथितं देवि सारात्सारतरं परम्।
अस्यापि पठनात्सद्यः कुबेरोऽपि धनेश्वरः ॥१६॥
इन्द्राद्याः सकला देवाः धारणात्पठनाद्यतः।
सर्वसिद्धीश्वराः सन्तः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ॥१७॥

इति रुद्रयामले त्रिशक्त्याः सर्वार्थसाधनं नाम कवचं समाप्तम्

अथापरस्तवः (त्रिपूटादेव्याः)

हेमाजाभां कुटिलचिबुकां रत्नमञ्जीररम्यां
स्तोष्ये स्तोत्रैः प्रणतिबहुलैः सिद्धये सर्वसिद्धेः।
चापं पाशाम्बुजसरसिजान्यङ्कुशं पुष्पबाणान्
नाविभ्राणां भुवनशुभगैः षड्भुजैस्तु त्रिनेत्राम् ॥१॥

ब्रह्मेन्द्राद्यैरमरनिवहैर्वन्द्यपादाब्जयुग्मां
रम्येऽरण्ये कुसुमविलसत् कल्पभूमिरुहाणाम्।
मध्ये तेषां मणिमयगृहे रत्नसिंहासनस्थां
ग्रैवयाद्यैर्विलसिततनुं शूलिशक्तिं नमामि ॥२॥
ब्रह्मोपेन्द्रत्रिपुरमथनस्वर्निवासिव्रजाना-
मानम्राणां मुकुटमणिभिर्हारिणीराजतौ तौ।
यस्त्वत्पादौ स्मरति जगतामम्बिके हेलया स
जीवन्मुक्तः प्रभवतितरां क्ष्मातले विश्ववन्द्ये ॥३॥
लक्ष्मीमायामदनकलितं सर्वसम्पत्प्रदं हि
बीजैरेभिर्भुवनभिहिते गौरि पूर्णेन्दुवक्त्रे।
मन्त्रं यस्ते जपति करुणाशालिपङ्केरुहाक्षि
क्षिप्रं तस्य प्रभवति गृहे रत्नराशिः सुकेशि ॥४॥
मातस्तेऽहं न हि मम पुलस्त्वं गिरीशकशक्ते
सामुद्रो हि श्रुत इह तरङ्गो न तारङ्ग ईड्ये।
सिन्धुः कुत्र प्रभवति शिवे शैलराजस्य कन्ये
मत्वेदं मां सकरुणभृशा सिञ्च दीनं भवानि ॥५॥
अन्वैश्वर्यं धनमुथसुतारोग्यरूपाणि कीर्त्तिं
भाग्यं भूमिं नतिमतितरां देहि धर्मोऽचलां मे।
त्वत्पादाब्जे स्मरहरशिरोभूषणे भूरि भूरि
दूरीभूतसकलजगतामम्बिकेऽस्तु प्रणामः ॥६॥
ये सेवन्ते चरणयुगलं पर्वतेन्द्रात्मजाया-
स्ते ते भूयो जगति नितरां सन्ति नो देहभाजः।
योगीन्द्राणां मननपथगे हृत्सरोजासनस्थे
कोटीन्द्वर्कद्युतिधरतनो विश्ववन्द्ये नुमस्त्वाम् ॥७॥
सौषुम्नाध्वप्रकटितगते सूक्ष्मविद्युत्प्रकाशे
मूलाधारेष्वपि विजगतामेकचैतन्यरूपे।
षट्चक्रोर्ध्वं नयति निपुणो य परं वामनित्यं
मुक्तस्तेऽस्माद्भवजलनिधेः सन्तरत्येव पारम् ॥८॥
स्तोत्रेणानेन यो मर्त्यस्तोषयेत् त्रिपुटां पराम्।
चञ्चलापि स्थिरा लक्ष्मीर्गेहे तस्यैव तिष्ठति ॥९॥
सिद्धयोऽष्टौ करे मातस्तस्य वश्यं जगत्त्रयम्।
शत्रवो विलयं यान्ति महाप्रज्ञा च जायते ॥१०॥

पठनात् स्तवराजस्य दुःस्वप्नप्रशमो भवेत् ।
वर्षणे लोकश्चाप्नोति सर्वसिद्धिमनुत्तमाम् ॥११॥

इति गन्धर्वतन्त्रे त्रिपुटास्तोत्रं समाप्तम्

अथ दुर्गायाः शतनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने ।
यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत्सती ॥१॥
ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी ।
आर्या दुर्गा जया आद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी ॥२॥
पिनाकधारिणी चित्रा चण्डखण्डा महातपाः ।
मनोबुद्धिरहङ्कारा चित्तरूपा चिता चितिः ॥३॥
सर्वमन्त्रमयी नित्या सत्यानन्दस्वरूपिणी ।
अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याऽभव्या सदागतिः ॥४॥
शाम्भवी देवमाता च चिन्तारत्नमयी सदा ।
सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी ॥५॥
अपर्णानिकपर्णा च पाटला पाटलावती ।
पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीररञ्जिनी ॥६॥
अमेयविद्रुमा क्रूरा सुन्दरी पुरसुन्दरी ।
वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता ॥७॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा ।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः ॥८॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रियासत्या च बुद्धिदा ।
बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना ॥९॥
निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्द्धिनी ।
मधुकैटमहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी ॥१०॥
सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी ।
सर्वशास्त्रमयी सत्या सर्वास्त्रधारिणी तथा ॥११॥
अनेकशस्त्रहस्ता च अनेककास्त्रस्य धारिणी ।
कुमारी चैव कन्या च कैशोरी युवती यती ॥१२॥

अप्रौढा चैव प्रौढा च माता वृद्धा बलप्रदा।
महादेवी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला ॥१३॥
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी।
नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी ॥१४॥
शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी।
कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी ॥१५॥
गोरोचनालक्तककुङ्कुमेन सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण।
विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो भवेत्सदा धारयते पुरारिः ॥१६॥
भौमावास्यनिशाभागे चन्द्रे शतभिषां गते।
विलिख्य प्रपठेत्स्तोत्रं स भवेत्सम्पदां पदम् ॥१७॥

इति विश्वसारतन्त्रे दुर्गाशतनामस्तोत्रं समाप्तम्

अथ दुर्गाकवचम्

श्रृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वसिद्धिदम्।
पठित्वा धारयित्वा च नरो मुच्येत सङ्कटात् ॥१॥
इदं गुह्यतमं देवि कवचं तव कथ्यते।
गोपनीयं प्रयत्नेन सावधानावधारय ॥२॥
अज्ञात्वा कवचं देवि दुर्गामन्त्रञ्च यो जपेत्।
स नाप्नोति फलं तस्य परे च नरकं व्रजेत् ॥३॥
उमा देवी शिरः पातु ललाटं शूलधारिणी।
चक्षुषी खेचरी पातु कर्णौ चत्वरवासिनी ॥४॥
सुगन्धा नासिकां पातु वदनं सर्वसाधिनी।
जिह्वाञ्च चण्डिका देवी ग्रीवां सौभद्रिका तथा ॥५॥
अशोकवासिनी चेतो द्वौ बाहू वज्रधारिणी।
कण्ठं पातु महावाणी जगन्माता स्तनद्वयम् ॥६॥
हृदयं ललिता देवी उदरे सिंहवाहिनी।
कटिं भगवती पातु द्वावूरू विन्ध्यवासिनी ॥७॥
एवं स्थितासि देवि त्वं त्रैलोक्यरक्षणात्मिके।
रक्ष मां सर्वगात्रेषु दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥८॥
इत्येतत् कवचं देवि महाविद्याफलप्रदम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वतीर्थफलं लभेत् ॥९॥

इदं गुह्यतमं देवि कवचं तव कथ्यते ।
गोपनीयं प्रयत्नेन सावधानावधारय ॥१०॥

इति कुञ्जिकातन्त्रे दुर्गाकवचं समाप्तम्

अथ श्रीविद्यास्तोत्रम्

कल्याणवृष्टिभिरिवामृतपूरिताभि-
र्लक्ष्मीः स्वयंवरणमङ्गलदीपिकाभिः ।
सेवाभिरम्ब तव पादसरोजमूले
नाकारि किं मनसि भक्तिमतां जनानाम् ॥१॥
एतावदेव जननि स्पृहणीयमास्ते
त्वद्वन्दनेषु सलिलस्थसरोजनेत्रे ।
सान्निध्यमुद्यदरुणाम्बुजसोदरस्य
त्वद्विग्रहस्य सुधया परया प्लुतस्य ॥२॥
ईषत्प्रभावकलुषाः कति नाम सन्ति
ब्रह्मादयः प्रतिदिनं प्रलयाभिभूताः।
एकः स एव जननि स्थिरसिद्धिरास्ते
यः पादयोस्तव सकृत् प्रणतिं करोति ॥३॥
लब्ध्वा सकृत्त्रिपुरसुन्दरि तावकीनं
कारुण्यकन्दलितकान्तिभरं कटाक्षम् ।
कन्दर्पभावसुभगास्त्वयि भक्तिभाजः
सम्मोहयन्ति तरुणीर्भुवनत्रयेऽपि ॥४॥
ह्रींकारमेव तव नाम गृणन्ति देवाः
मातस्त्रिकोणनिलये त्रिपुरे त्रिनेत्रे ।
त्वं संस्मृतौ यमभयाभिभवं विहाय
दिव्यन्ति नन्दनवने सह लोकपालैः ॥५॥
हस्तः पुरामधिगतं परिपूर्णमानः
क्रूरः कथं न भविता गरलस्ववेगः।
नाश्वासनाय यदि मातरिदं तवार्द्धं
देहस्य शश्वदमृताप्लुतशीतलस्य ॥६॥
सर्वज्ञतां सदसि वाक्पटुतां प्रसूते
देवि त्वदङ्घ्रिसरसीरुहयोः प्रणामः ।

किञ्चित् स्फुरन्मुकुटमुज्ज्वलमातपत्रं
द्वे चामरे च महतीं वसुधां ददाति ।।७।।
कल्पद्रुमैरभिमतप्रतिपादनेषु
कारुण्यवारिनिधिरम्ब भवत्कटाक्षैः ।
आलोकय त्रिपुरसुन्दरि मामनाथं
त्वय्येव भक्तिभरितं त्वयि बद्धदृष्टिम् ।।८।।
हस्तेतरंदपि निधाय मनांसि चान्ये
भक्तिं वहन्ति किल पामरदैवतेषु ।
त्वामेव देवि मनसाऽमननुस्मरामि
त्वामेव नौमि शरणं जननि त्वमेव ।।९।।
लक्षेषु सत्स्वपि तवाक्षि विलोकनामा-
मालोकय त्रिपुरसुन्दरि मा कदाचित् ।।१०।।
नूनं मया च सदृशं करुणैकपात्रं
जातो जनिष्यति जनो न च जायते वा ।।११।।
ह्रीं ह्रींमिति प्रतिदिनं जपतां तवाख्यां
किं नाम दुर्लभमिह त्रिपुराधिवासे ।
मालाकिरीटमदवारणकारणीयां-
स्तान् सेवते मधुमती स्वयमेव लक्ष्मीः ।।१२।।
सम्पत्कराणि सकलेन्द्रियनन्दनानि
साम्राज्यदानकुशलानि सरोरुहाक्षि ।
त्वद् वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि
मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यम् ।।१३।।
कल्पोपसंहरणकल्पिततताण्डवस्य
देवस्य खण्डपरशोः परभैरवस्य ।
पाशाङ्कुशै क्षवशरासनपुष्पबाणा
सा साक्षिणी विजयते तव मूर्त्तिरेका ।।१४।।
लब्धं सदा भवतु मातरिदं त्वदीयं
तेजः परं बहुलकुङ्कुमपङ्कशोणम् ।
भास्वत् किरीटममृतांशुकलावतंसः
रूपं त्रिकोणमुदितं परमामृताक्तम् ।।१५।।
ह्रींकारत्रयसम्पुटेन महता मन्त्रेण सन्दीपितं
स्तोत्रं यः प्रतिवासरं तव पुरो मातर्जपेन्मन्त्रवित् ।

तस्य क्षोणिभुजो भवन्ति वशगा लक्ष्मीश्चिरस्थायिनी
वाणी निर्मलसूक्तिभारभरिता जागर्त्ति दीर्घं यशः ॥१६॥

इति ब्रह्मविरचितं कल्याणीस्तोत्रं समाप्तम्

अथ किङ्किणीस्तोत्रम्

किं किं दुःखं सकलजननि क्षीयते न स्मृतायां
का का कीर्त्तिः कुलकमलिनि प्राप्यते नार्चितायाम्।
किं किं सौख्यं सुरवरनुते प्राप्यते न स्तुतायां
कं कं योगं त्वयि न तनुते चित्तमालम्बितायाम् ॥१॥
स्मृता भवभयं हंसि पूजितासि शुभङ्करि।
स्तुता त्वं वाञ्छितं देवि ददामि करुणाकरे ॥२॥
परमानन्दबोधाब्धि रूपे तेजःस्वरूपिणि।
देववृन्दशिरोरत्ननिघृष्टचरणाम्बुजे।
चिद्विभ्रान्ति महासत्तामात्रे मात्रे नमोऽस्तु ते ॥३॥
सृष्टिस्थित्युपसंहारे हेतुभूते सनातनि।
गुणत्रयात्मिकासि त्वं जगतः करणेच्छया ॥४॥
अनुग्रहाय भक्तानां गृहीते दिव्यविग्रहे।
भक्तस्य मे नित्यपूजायुक्तस्य परमेश्वरि ॥५॥
ऐहिकामुष्मिकीं सिद्धिं देहि त्रिदशवन्दिते।
भावत्रयपरिम्लानभाजनं त्राहि मां शिवे ॥६॥
नान्यं वदामि न शृणोमि न चिन्तयामि
नान्यं भजामि न स्मरामि न चाश्रयामि।
त्यक्त्वा त्वदीयचरणाम्बुजमादरेण
मां त्राहि देवि कृपया मयि देहि सिद्धिम् ॥७॥
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा कैवल्यात्साधनस्य च।
यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥८॥
द्रव्यहीनं क्रियाहीनं श्रद्धामन्त्रविवर्जितम्।
तत्सर्वं कृपया देवि क्षमस्व त्वं दयानिधे ॥९॥
यन्मया क्रियते कर्म तन्महत्स्वल्पमेव वा।
तत्सर्वज्ञ जगद्धात्रि क्षन्तव्यमयमञ्जलिः ॥१०॥

इति किङ्किणीस्तोत्रं समाप्तम्

अथ श्रीकवचम्

श्रीमहादेव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कवचं देवदुर्लभम्।
अप्रकाश्यं परं गुह्यं साधकाभीष्टदायकम्॥१॥
कवचस्य ऋषिर्देवि दक्षिणामूर्त्तिरव्ययः।
छन्दः पङ्क्तिः समुद्दिष्टं देवी त्रिपुरसुन्दरी॥२॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां विनियोगस्तु साधने।
वाग्भवः कामराजश्च शक्तिबीजं महेश्वरि॥३॥
वाग्भवः पातु शीर्षे मां कामराजस्तथा हृदि।
शक्तिबीजं सदा पातु नाभौ गुह्ये च पादयोः॥४॥
ऐं क्लीं सौर्वदने पातु बाला मां सर्वसिद्धये।
ह्सैं हसकलरीं ह्सौः पातु भैरवी कण्ठदेशतः॥५॥
सुन्दरी नाभिदेशेऽव्याच्छीर्षे कामकला सदा।
भ्रूनासयोरन्तराले महात्रिपुरसुन्दरी॥६॥
ललाटे सुभगा पातु भगा मां कण्ठदेशतः।
भगोदया तु हृदये उदरे भगसर्पिणी॥७॥
भगमाला नाभिदेशे लिङ्गे पातु मनोभवा।
गुह्ये पातु महादेवी राजराजेश्वरी शिवा॥८॥
चैतन्यरूपिणी पातु पादयोर्जगदम्बिका।
नारायणी सर्वगात्रे सर्वकार्ये शुभङ्करी॥९॥
ब्रह्माणी पातु मां पूर्वे दक्षिणे वैष्णवी तथा।
पश्चिमे पातु वाराही उत्तरे च महेश्वरी॥१०॥
आग्नेय्यां पातु कौमारी महालक्ष्मीश्च नैर्ऋते।
वायव्यां पातु चामुण्डा इन्द्राणी पातु ईशके॥११॥
जले पातु महामाया पृथिव्यां सर्वमङ्गला।
आकाशे पातु वरदा सर्वत्र भुवनेश्वरी॥१२॥
इदं तु कवचं देव्या देवानामपि दुर्लभम्।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय शुचिः प्रयतमानसः॥१३॥
नाधयो व्याधयस्तस्य न भयञ्च क्वचिद्भवेत्।
न च मारीभयं तस्य पातकानां भयं तथा॥१४॥

न दारिद्र्यवशं गच्छेत् तिष्ठेन्मृत्युवशे न च।
गच्छेच्छिवपुरं देवि सत्यं सत्यं वदामि ते ॥१५॥
इदं कवचमज्ञात्वा श्रीविद्यां यो जपेत् प्रिये।
स नाप्नोति फलं तस्य प्राप्नुयाच्छस्त्रघातनम् ॥१६॥

इति सिद्धयामले त्रिपुरसुन्दरीकवचं समाप्तम्

अथ महात्रिपुरसुन्दरी कवचम्

अस्य राजराजेश्वरी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीषोडशीविद्याकवचस्य महादेवऋषिः प्रस्तारः पंक्तिच्छन्दो राजराजेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी देवता सर्वार्थसाधने विनियोगः।

ईश्वर उवाच

पूर्वे मां भैरवी पातु बाला मां पातु दक्षिणे।
मालिनी पश्चिमे पातु त्रासिनी तूत्तरेऽवतु ॥१॥
ऊर्ध्वं पातु महादेवी महात्रिपुरसुन्दरी।
अधस्तात् पातु देवेशी पातालतलवासिनी ॥२॥
आधारे वाग्भवः पातु कामराजस्तथा हृदि।
डामरः पातु मां नित्यं मस्तके सर्वकामदः ॥३॥
ब्रह्मरन्ध्रे सर्वगात्रे छिद्रस्थानेषु सर्वदा।
महाविद्या भगवती पातु मां परमेश्वरी ॥४॥
ऐं क्लीं ललाटे मां पायात् ह्रीं ब्लूं सः पातु नेत्रयोः।
नासायां कर्णयोश्चैव द्रीं द्रैं द्रां द्रीं चिबुके तथा ॥५॥
सौः पातु च गले सह्रीं हृदये नाभिदेशके।
कलह्रीं क्लीं स्त्रीं गुह्यदेशे सह्रींञ्च पातु पादयोः ॥६॥
स क्लीं मां सर्वतः पातु कल पातु च सन्धिषु।
सहह्रीं मां सर्वतः पातु सक्लीं पातु च सन्धिषु ॥७॥
जले स्थले तथाकाशे दिक्षु राजगृहे तथा।
हूं क्षे मां त्वरिता पातु सह्रीं सक्लीं मनोभवा ॥८॥
हंसः पातु महादेवी परं निष्कलदेवता।
विजया मङ्गला दूती कल्याणी भगमालिनी।
ज्वाला च मालिनी नित्या सर्वदा पातु मां शिवा ॥९॥

इत्येवं कवचं देवि देवानामपि दुर्लभम्।
तव प्रीत्या मयाख्यातं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥१०॥
इदं रहस्यं परमं गुह्याद् गुह्यतरं प्रिये।
धन्यं यशस्यमायुष्यं भोगमोक्षप्रदं शुभम् ॥११॥

इति कुलानन्दसंहितायां श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीषोडशीकवचं समाप्तम्

●

अथ लक्ष्मीस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

त्रैलोक्यपूजिते देवि! कमले विष्णुवल्लभे।
यथा त्वं सुस्थिरा कृष्णे तथा भव मयि स्थिरा ॥१॥
ईश्वरी कमला लक्ष्मीश्चला भूतिर्हरिप्रिया।
पद्मा पद्मालया सम्पदुच्चैः श्रीः पद्मधारिणी ॥२॥
द्वादशैतानि नामानि लक्ष्मीं सम्पूज्य यः पठेत्।
स्थिरा लक्ष्मीर्भवेत्तस्य पुत्रदारादिभिः सह ॥३॥

इति लक्ष्मीस्तोत्रं समाप्तम्

●

अथ लक्ष्मीकवचम्

ईश्वर उवाच

अथ वक्ष्ये महेशानि कवचं सर्वकामदम्।
यस्य विज्ञानमात्रेण भवेत् साक्षात्सदाशिवः ॥१॥
नार्चनं तस्य देवेशि मन्त्रमात्रं जपेन्नरः।
स भवेत् पार्वतीपुत्रः सर्वशास्त्रपुरस्कृतः।
विद्यार्थिना सदा सेव्या विशेषे विष्णुवल्लभा ॥२॥

अस्याश्चतुरक्षरीविष्णुवनितायाः कवचस्य भगवान् श्रीशिव ऋषिरनुष्टुप्छन्दो वाग्भवी देवता वाग्भवं बीजम् लज्जा शक्तिः रमा कीलकं कामबीजात्मकं कवचं मम सुकवित्व-सुपाण्डित्यसर्वसिद्धिसमृद्धये विनियोगः।।३।।

ऐंकारो मस्तके पातु वाग्भवी सर्वसिद्धिदा।
ह्रीं पातु चक्षुषोर्मध्ये चक्षुर्युग्मे च शङ्करी ॥४॥

जिह्वायां मुखवृत्ते च कर्णयोर्गण्डयोर्नसि।
ओष्ठाधरे दन्तपङ्क्तौ तालुमूले हनौ पुनः ॥५॥
पातु मां विष्णुवनिता लक्ष्मीः श्रीवर्णरूपिणी।
गण्डयुग्मे भुजद्वन्द्वे स्तनद्वन्द्वे च पार्वती ॥६॥
हृदये मणिबन्धे च ग्रीवायां पार्श्वयोः पुनः।
पृष्ठदेशे तथा गुह्ये वामे च दक्षिणे तथा ॥७॥
उपस्थे च नितम्बे च नाभौ जङ्घाद्वये पुनः।
जानुचक्रे पदद्वन्द्वे घुटिकेऽङ्गुलिमूलके ॥८॥
सधातुप्राणशक्त्यात्मसीमन्यां मस्तके पुनः।
सर्वाङ्गे पातु कामेशी महादेवी समुन्नतिः ॥९॥
व्युष्टिः पातु महामाया उत्कृष्टिः सर्वदावतु।
ऋद्धि पातु सदा देवी सर्वत्र शम्भुवल्लभा ॥१०॥
वाग्भवी सर्वदा पातु पातु मां हरगेहिनी।
रमा पातु सदा देवी पातु माया सुराट् स्वयम् ॥११॥
सर्वाङ्गे पातु मां लक्ष्मीर्विष्णुमाया सुरेश्वरी।
विजया पातु भवने जया पातु सदा मम ॥१२॥
शिवदूती सदा पातु सुन्दरी पातु सर्वदा।
ईश्वरी पातु सर्वत्र भेरुण्डा सर्वदावतु ॥१३॥
त्वरिता पातु मां नित्यमुग्रतारा सदावतु।
पातु मां कालिका नित्यं कालरात्रिः सदावतु ॥१४॥
वनदुर्गा सदा पातु कामाख्या सर्वदावतु।
योगिन्यः सर्वदा पान्तु मुद्राः पान्तु सदा मम ॥१५॥
मात्राः पान्तु सदा देव्यश्चक्रस्था योगिनीगणाः।
सर्वत्र सर्वकार्येषु सर्वकर्मेषु सर्वदा ॥१६॥
पातु मां देवदेवी च लक्ष्मीः सर्वसमृद्धिदा।
विलिख्य कवचं दिव्यं स्वयम्भुकुसुमैः शुभैः ॥१७॥
स्वशुक्रैः परशुक्रैश्च नानागन्धसमन्वितैः।
गोरोचनाकुङ्कुमेन रक्तचन्दनकेन वा ॥१८॥
सुतिथौ शुभयोगे वा श्रवणायां रवेर्दिने।
अश्विन्यां कृत्तिकायां वा फल्गुन्याञ्च मघासु च ॥१९॥
पूर्वभाद्रपदायोगे स्वात्यां मङ्गलवासरे।
विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं शुभयोगे सुरालये ॥२०॥

आयुष्मत् प्रीतियोगे वा ब्रह्मयोगे विशेषतः।
इन्द्रयोगे शुभयोगे शुक्रयोगे तथैव च ॥२१॥
कौलवे बालवे चैव वणिजे चैव सत्तम।
शून्यागारे श्मशाने वा विजने च विशेषतः ॥२२॥
कुमारीं पूजयित्वा च यजेद्देवीं सनातनीम्।
मत्स्यैर्मांसैः शाकसूपैः पूजयेत् परदेवताम् ॥२३॥
घृताद्यैः सोपकरणैः पूपसूपैर्विशेषतः।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा च पूजयेत्परमेश्वरीम् ॥२४॥
आखेटकमुपाख्यानं ततः कुर्याद्दिनत्रयम्।
तदा धरेन्महारथां शङ्करेणेति भाषितम् ॥२५॥

इति विश्वसारतन्त्रे लक्ष्मीकवचं समाप्तम्

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

तन्त्रशास्त्र के महत्वपूर्ण ग्रन्थ-मूल संस्कृत एवं हिन्दी टीका सहित

- तन्त्रसार : परमहंस मिश्र (1-2 भाग)
- कुलार्णवतन्त्रम् : परमहंस मिश्र
- नित्योत्सव : (श्रीविद्याविमर्शकसद्ग्रन्थ) परमहंस मिश्र
- त्रिपुरारहस्यम् : (ज्ञान एवं महात्म्य खण्ड) जगदीशचन्द्र मिश्र (1-2 भाग)
- तन्त्रालोक : राधेश्याम चतुर्वेदी (1-5 भाग)
- स्वच्छन्दतन्त्रं : राधेश्याम चतुर्वेदी (1-2 भाग)
- नेत्रतन्त्रम् : राधेश्याम चतुर्वेदी
- कामाख्यातन्त्रम् : राधेश्याम चतुर्वेदी
- महाकालसंहिता : (कामकला-कालीखण्ड) राधेश्याम चतुर्वेदी
- महाकालसंहिता : (गुह्यकाली-खण्ड) राधेश्याम चतुर्वेदी (1-5 भाग)
- रुद्रयामलम् : सुधाकर मालवीय (1-2 भाग)
- शारदातिलकम्-सुधाकर मालवीय (1-2 भाग)
- मन्त्रमहोदधि : सुधाकर मालवीय
- लक्ष्मीतन्त्रम् : कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- तन्त्रराजतन्त्रम्-कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- महानिर्वाणतन्त्रम् : कपिलदेवनारायण
- कामकलाविलास : श्यामाकान्त द्विवेदी
- वरिवस्यारहस्यम् : श्यामाकान्त द्विवेदी
- स्पन्दकारिका : श्यामाकान्त द्विवेदी
- सर्वोल्लासतन्त्रम् : एस. खण्डेलवाल
- नीलसरस्वतीतन्त्रम् : एस. खण्डेलवाल
- भूतडामरतन्त्रम् : एस. खण्डेलवाल
- सिद्धनागार्जुनतन्त्रम् : एस. खण्डेलवाल
- अन्नदाकल्पतन्त्रम् : एस. खण्डेलवाल
- त्रिपुरार्णवतन्त्रम् : एस. खण्डेलवाल
- विज्ञानभैरव : वापूलाल अँजना
- श्रीविद्यार्णवतन्त्रम् : कपिलदेवनारायण (1-5 भाग सम्पूर्ण)
- देवीरहस्यम् : (रुद्रयामलतन्त्रोक्तम्) कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- स्वर्णतन्त्र : भाषा टीका
- महानिर्वाणतन्त्रम् : कपिलदेवनारायण
- बृहत्तन्त्रसार : कपिलदेवनारायण (1-2 भाग)
- सौन्दर्यलहरी : लक्ष्मीधरी टीका सहित सुधाकर मालवीय
- सिद्धसिद्धान्तपद्धति : द्वारकादास शास्त्री
- आगमतत्त्वविलास : एस.एन.खण्डेलवाल (1-4 भाग सम्पूर्ण)
- राधातन्त्रम् : एस.एन. खण्डेलवाल
- सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्रम् एस.एन.खण्डेलवाल

डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी द्वारा हिन्दी में लिखित
तंत्र विषयक महत्त्वपूर्ण शास्त्रीय ग्रन्थ

- श्रीविद्या-साधना : (श्रीविद्या-उपासना का साङ्गोपाङ्ग शास्त्रीय विवेचन) (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- भारतीय शक्ति-साधना : (शक्ति-विज्ञानः स्वरूप एवं सिद्धान्त का शास्त्रीय विवेचन)
- ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना : (महाविद्याबगला-उपासना का शास्त्रीय विवेचन)
- काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र : (शिवसूत्र, शक्तिसूत्र एवं स्पन्दसूत्र के सन्दर्भ में)
- मुद्राविज्ञान एवं साधना : (नित्यकर्मीय एवं तान्त्रिक मुद्राओं का सचित्र एवं शास्त्रीय विवेचन)

श्रीविष्णुमहापुराणम्

(मूल संस्कृत-भावप्रकाशिका हिन्दीटीका श्लोकानुक्रमणिका सहित)

श्री शिवप्रसाद द्विवेदी

वितरक
चौखाम्बा पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली - 110002
फोन न. 011-23286537, 32996391

प्रकाशक
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी-221001
फोन न. 0542-2335263, 2335264